॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१८३

श्रीकाशीनाथोपाध्यायविरचितः

धर्मसिन्धुः

'धर्मदीपिका' विशदहिन्दीव्याख्यया

'सुधा'टिप्पणया च समलङ्कृतः

धर्मदीपिकाकारः

श्रीवशिष्ठदत्तमिश्रः धर्मशास्त्राचार्यः

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य भूतपूर्वधर्मशास्त्रप्राध्यापकः

सुधाटिप्पणीकारः

श्रीसुदामामिश्रशास्त्री

प्रस्तावनालेखकः

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-धर्मशास्त्रकाननप्रचण्डपञ्चानन-धर्ममार्तण्ड-धर्मरत्न-शास्त्ररत्नाकर-

महामहोपाध्याय-श्रीसदाशिवशास्त्रिमुसलगांवकरः

गवालियर-राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्य भूतपूर्वाध्यक्षः ।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९६८

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला
१८३

श्रीकाशीनाथोपाध्यायविरचितः

धर्मसिन्धुः

'धर्मदीपिका' विशदहिन्दीव्याख्यया
'सुधा'टिप्पणया च समलङ्कृतः

धर्मदीपिकाकारः
श्रीवशिष्ठदत्तमिश्रः धर्मशास्त्राचार्यः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य भूतपूर्वधर्मशास्त्रप्राध्यापकः

सुधाटिप्पणीकारः
श्रीसुदामामिश्रशास्त्री

प्रस्तावनालेखकः
सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-धर्मशास्त्रकाननप्रचण्डपञ्चानन-धर्ममार्तण्ड-धर्मरत्न-शास्त्ररत्नाकर-
महामहोपाध्याय-श्रीसदाशिवशास्त्रिमुसलगांवकरः
गवालियर-राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्य भूतपूर्वाध्यक्षः ।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१
१९६८

प्रास्ताविकम्

अचेतनापि चैतन्ययोगेन परमात्मनः।
अकरोद् विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृतिः॥

यह सम्पूर्ण विश्व प्रकृति का विस्तार है, जहाँ भी देखते हैं वहाँ उसी की प्रभा पाते हैं। प्रकृति ही विश्वोत्पत्ति की सामग्री है। प्रकृति गुणमयी है, उसके पाश से मुक्त होकर अपनी आत्मशक्ति को कैसे प्राप्त करें? यह चिन्ता होने पर महर्षि वेदव्यास कहते हैं—

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना
नैवाप्तभावमुपयान्ति कुतो वशित्वम्॥

अभ्युदय के लिये सतत प्रयत्नशील लोगों की बुद्धि, धर्म में स्थित हो, परलोक में वही एक मात्र हितकारी सखा है। बड़े-बड़े चतुर कार्यकुशल लोगों की परिचर्या से भी धन और युवतियां अपनी आत्मीय नहीं बन पातीं, तब वह वशंगत कैसे हो सकती हैं। 'न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः। 'धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये' 'एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः। शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति॥' एक धर्म ही ऐसा मित्र है, जो मरने पर भी जीव के साथ जाता है, और सब तो शरीर के नाश होते ही उसे छोड़कर चले जाते हैं। इत्यादि के द्वारा सभी के लिये धर्म की अत्यन्त आवश्यकता प्रकट की गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् ने इसकी आवश्यकता बताई है-'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' 'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वम्' 'स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः,' इत्यादि। एक बार अनेक मुनियों ने धर्म की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सभी वर्णधर्मों की शिक्षा देने के लिये भगवान् मनु से प्रार्थना की थी। याज्ञवल्क्यस्मृति के आरम्भ में भी इसीप्रकार धर्म की आवश्यकता बताई गई है। तन्त्रवार्तिक के रचयिता भट्टपाद ने भी 'सर्वधर्मसूत्राणां वर्णाश्रमधर्मोपदेशित्वाद्' लिखकर वर्णाश्रमधर्म की शिक्षा देना ही धर्मसूत्रों का कार्य बताया है। धर्म से ही चित्तशुद्धि होती है। चित्तशुद्धि के विना भगवान् की ओर ले चलने वाले कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग, और ज्ञानयोग के मार्ग पर कोई चल नहीं सकता। धर्म को आवश्यक समझ कर ही भगवती श्रुति आज्ञा देती है 'धर्मं-चर' 'धर्मेण सुखमासीत' धर्मान्न प्रमदितव्यम्'—धर्म करो, धर्म से सुख होता है, धर्म में प्रमाद (असावधानी) नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि विश्व की सुस्थिति के लिये धर्म की अत्यन्त आवश्यकता है। अतएव कहागया है—'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। अतः तपः पूत एवं त्रिकालज्ञ- निर्मलहृदय, कर्मनिष्ठ तथा ब्रह्मनिष्ठ हितैषी अपने पूर्वज महर्षियों की दी हुई उपर्युक्त साक्ष्य को ध्यान में रखकर भारतीय जनता स्वयं विचार कर ले कि राष्ट्र को धर्मनिरपेक्ष रखना संगत है या धर्मसापेक्ष। अब प्रश्न यह उठता है कि वह धर्म क्या है? जिसके बल पर विश्व की सुस्थिति निर्भर है। अतः सर्वप्रथम धर्म शब्द के अर्थ की ओर ध्यान दिया जाय।

'धर्म' शब्द 'धृञ्' धारणे धातु के आगे 'मन्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकार से हो सकती है—१ 'ध्रियते लोकः अनेन' इति। २ 'धरति धारयति वा लोकम्' इति। ३ 'ध्रियते यः सः धर्मः' इति। पहिला—जिससे लोक धारण किया जाय, वह

दूसरा—जो लोक को धारण करे वह धर्म है। तीसरा—जो दूसरों से धारण किया जाय, वह धर्म है। महाभारतकार धर्म का लक्षण करते हैं—'धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।' (कर्णप० ६९-५८)। धारण करने से लोग इसे धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे वह धर्म है। इससे स्पष्ट है कि 'धर्म' शब्द बहुत व्यापक है। अमरकोषकार ने भी 'धर्म' शब्द के अनेक अर्थ बताए हैं—१ सुकृत या पुण्य, २ वैदिकविधि यागादि, ३ यमराज, ४ न्याय, ५ स्वभाव, ६ आचार, ७ सोमरस पीने वाला—'स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः, धर्मस्तु तद्विधिः' 'धर्माः पुण्ययम-न्यायस्वभावाचारसोमपाः इत्यादि। कोषान्तरों में अन्यान्य अर्थ भी उपलब्ध होते हैं—१ शास्त्रोक्त कर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न होने वाले भावी फल का साधनस्वरूप शुभ अदृष्ट अथवा पुण्यापुण्यरूपभाग्य, २ श्रौत और स्मार्त धर्म, ३ विहित क्रिया से सिद्ध होनेवाला गुण या कर्मजन्य अदृष्ट, ४ आत्मा, ५ देह को धारण करने से जीवात्मा, आचार, ६ वस्त्र का गुण, ७ स्वभाव, ८ उपमा, ९ याग, १० अहिंसा, ११ न्याय, १२ उपनिषद्, १३ धर्मराज, १४ सोमा-ध्यायी, १५ सत्संग, १६ धनुष्, १७ भाग्यभवन, १८ दान आदि–तथापि व्याकरण की दृष्टि से धर्म शब्द का अर्थ तो धारण करना ही होता है। निरुक्त में 'धर्म' शब्द का अर्थ 'नियम' बताया है। दोनों को दृष्टिगत करते हुए धर्म शब्द का यही अर्थ प्रतीत होता है कि जिस नियम ने समस्त विश्व को धारण कर रक्खा है वही 'धर्म है। अब देखें कि वह कौन सा नियम सूत्र है, जिसने इस विश्व को धारण कर रक्खा है, और किन नियमों के अनुसार चलने से सुख-शान्ति-सन्तोष आदि का लाभ होता है। 'धनाद्धर्मं ततः सुखम्' की उक्ति तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। ऐहलौकिक और पारलौकिक भेद से सुख भी दो प्रकार का है। अतः कहना होगा कि जिससे दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो सके वही 'धर्म' है। सभी लोग सुख की प्राप्ति के लिये ही प्रयत्नशील रहते हैं। अतएव वैशेषिक दर्शन के रचयिता महर्षि कणाद ने धर्म का यह लक्षण किया 'यतोऽभ्यु-दयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' जिससे इह लोक में उन्नति और परलोक में कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है। श्रीमद्भागवत में भी—'वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः—(६-१-४४) वेद ने जिसका विधान किया हो वह धर्म और उसके विपरीत अधर्म है। मीमांसासूत्रकार महर्षि जैमिनि, धर्म का लक्षण कहते हैं—'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः,—वेद के विधानानुसार अनुष्ठेय कर्म ही 'धर्म' है। सम्राट् मनु अपने संविधान अर्थात् अनुस्मृति में धर्म का लक्षण बताते हैं—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।। (२-१२)

वेद, स्मृति, सदाचार, और अपनी आत्मा की प्रसन्नता—ये चारों, धर्म के परिचायक हैं। 'श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत् स धर्मः प्रकीर्तितः'—वेद तथा धर्मशास्त्र में जो बताया गया है उसे धर्म कहते हैं।

'श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् (२-९)

'श्रुति और स्मृति के द्वारा प्रतिपादित धर्म का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य इस लोक में यश को पाता है और मृत्यु के पश्चात् परलोक में उत्तम सुख को पाता है।

'आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।। (१-१०८)

श्रुति एवं स्मृतिप्रतिपादित सदाचार, श्रेष्ठ धर्म है, अतः आत्मज्ञानी द्विज सदैव सदाचार

से युक्त रहे। भगवती श्रुति ने धर्म के तीन स्कन्ध बताये हैं—'त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति। (छा० उ० २-२३-१) धर्म के तीन आधारस्तम्भ हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान—यह प्रथम स्कन्ध है। तप ही दूसरा स्कन्ध है। आचार्य कुल में रहनेवाला ब्रह्मचारी जो आचार्य कुल में अपने शरीर को अत्यन्त क्षीण कर लेता है—यह तीसरा स्कन्ध है। ये सभी पुण्य लोक के भागी होते हैं। और संन्यासी अमृतत्व को प्राप्त करता हैं। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय हिन्दू जनता अपने धर्म को सदा से श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त मानती चली आ रही है।

इसी 'धर्म' शब्द के पूर्व 'स्व' जोड़ने से 'स्वधर्म' शब्द बनता है, जिसका अर्थ 'अपना वर्णाश्रम धर्म' होता है। उसी के पूर्व 'पर' जोड़ने से 'परधर्म' शब्द बनता है; जिसका अर्थ अपने वर्णाश्रम धर्म को छोड़कर दूसरे का धर्म है। उसी के पहले 'वि' उपसर्ग लगाने से 'विधर्म' शब्द बनता है, जिसका अर्थ विगतः धर्माद् विधर्मः जो अपने धर्म से गिर जाय, अर्थात् धर्मान्तर का परिग्रह कर लेना। श्रुति, स्मृति, पुराणों में कहे हुए धर्मों के अतिरिक्त सभी धर्म, विधर्म हैं। इसलिए अपने धर्म को छोड़कर अन्य धर्म को स्वीकार करने वाले को विधर्मी कहा जाता है। उसीके पूर्व 'कु' उपसर्ग लगाने से 'कुधर्म' शब्द बनता है, जिसका अर्थ जिस धर्म की निन्दा की जाती है वह कुधर्म है। अर्थात् बुरे आचरण या पापाचरण को कुधर्म कहते हैं। 'कुधर्म शब्द का एक अन्य अर्थ भी है, तथाहि :—

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः॥

जो धर्म, दूसरे धर्म में बाधा पाहुंचावे, वह धर्म ही नहीं है, किन्तु कुधर्म है; जो धर्म समस्त धर्मों का अविरोधी है वही यथार्थ धर्म है। धर्म के पहले 'नञ्, जोड़ने पर 'न धर्मः अधर्मः अधर्म शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—जो धर्म से अत्यन्त विपरीत हो वह अधर्म है। इस अधर्म के पांच भेद हैं—१–विधर्म, १–परधर्म ३–धर्माभास, ३ उपधर्म, और ५ छल धर्म। दम्भ (ढोंग) को उपधर्म कहते हैं। अपने ही मन से किसी काम को धर्म समझ लेना और तदनुसार आचरण करना 'धर्माभास' है। परम्पराप्राप्त अर्थ को छोड़कर कुतर्क के सहारे अन्य अर्थ कर धर्म की व्याख्या करना 'छल धर्म' कहलाता है। अतः इन छहों प्रकार के अधर्मों का परित्याग करना ही धर्म है। अपना स्वधर्म ही शान्ति, सुख, सन्तोष को देता है। इसी बात को भगवान् कहते हैं—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' स्वधर्म में मर जाना लाभप्रद हैं, किन्तु परधर्म का परिग्रह करना उचित नहीं क्योंकि वह भयप्रद है। इसी धर्म को लक्ष्य करके कहा गया है—

धर्मेण हन्यते व्याधिः धर्मेण हन्यते ग्रहः।
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः॥

धर्म से रोग नष्ट होते हैं, धर्म से ग्रहों की पीडा नष्ट होती है, धर्म से ही शत्रुओं का विनाश होता है।, और जहां धर्म होता है वहां विजय होती है।

अब उस धर्मस्वरूप नियमसूत्र पर भी थोड़ा सा विचार कर लिया जाय, जिसका संकेत पहले किया गया है। यह सृष्टि त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सृष्टि के तीन गुण हैं, जिन्हें सत्व, रज और तम कहते हैं। सृष्टि की सभी वस्तुओं में ये तीनों गुण उपलब्ध होते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, रजोगुण से होती है, सत्वगुण से उसकी स्थिति, और तमोगुण से उसका संहार (प्रलय) होता है। यह समस्त विश्व, इन तीन अवस्थाओं के वशीभूत है। इसी प्रकार यह जीव भी जन्म लेता है,

बढता है और मरता है। इसी अवस्था भेद से जीव की सृष्टि स्थिति और मुक्ति समझी जा सकती है। जैसे अहंकार से मोहित होकर जीव, कर्मप्रवाह में बहा अर्थात् उसकी उत्पत्ति हुई, पुनः वह कुछ समय तक इस सृष्टि के साथ बहता रहा अर्थात् कुछ समय तक उसकी स्थिति बनी रही और अन्त में अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् ब्रह्म को पहचान लेता है तो वह इस मायाप्रवाह से विरत हो जाता है अर्थात् उसका मोक्ष (ब्रह्मरूप) हो जाता है। यही तीन अवस्थाएँ प्रत्येक जीव की होती हैं। अतः धर्म वही है, जो इस सृष्टि क्रिया के स्वाभाविक नियम में बाधा न पहुचाता हो और अधर्म वह है जो इस नियम में बाधा पहुचावे। तात्पर्य यह है कि जीव सृष्टिप्रवाह में पड़ने के अनन्तर क्रमशः अपने गुणभेद के कारण उन्नत होता हुआ मुक्त होता है। इस क्रमोन्नति में जो कर्म सहायक हो, वह धर्म है, और इस क्रमोन्नति में जो कर्म बाधक हो वह अधर्म है इसीलिये भारतीय वर्णाश्रमधर्मियों के यहाँ खाना, पीना, सोना, जागना, उठना, बैठना, कहना, सुनना, पहनना, जाना, आना आदि प्रत्येक कर्म के साथ धर्माधर्म का दृढ सम्बन्ध माना गया है। जिस कर्म से तमोगुण और रजोगुण की निवृत्ति हो और सत्त्वगुण की वृद्धि हो वही धर्म है और जिस कर्म से सत्त्वगुण की हानि और रजोगुण, तमोगुण की वृद्धि हो वह अधर्म है। भगवान् स्वयं धर्मरूप है। वे स्वयं कहते हैं धर्मोहं वृषरूपधृक्, (भा. ११-१७-११) तप, शौच, दया, और सत्य नाम के चार पैरोंवाले वृषभ का रूप धारण करने वाला धर्म मै (भगवान्) स्वयं हूँ।' विष्णुसहस्रनाम में भी 'धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी, धर्म की रक्षा करने वाले, धर्म को बनाने वाले और समस्त धर्मों के आधार स्वयं भगवान् हैं। इसीलिये कहा गया है 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' धर्मका त्याग करने पर वह उस व्यक्ति का नाश कर देता है और पालन किया हुआ धर्म उस व्यक्ति की रक्षा करता है। 'आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः' धर्म आचार से उत्पन्न होता है और उस धर्म के अच्युत-भगवान् स्वयं रक्षक हैं। इसीलिये धर्म सदैव पालन करने योग्य है, वह उपहास की वस्तु नहीं है।

एक समय था जब कि धर्मजिज्ञासु लोग धर्म का ज्ञान वेदों से ही प्राप्त कर लिया करते थे। उस युग में चारो वेदों का अध्ययन-अध्यापन होता था। लोगों के आहार-विहार संयत थे जिससे पवित्र एवं स्वतंत्र विचारशक्तिसम्पन्न प्रतिभा दमकती चमकती रहती थी। धर्मानुष्ठान के समय जब कभी कोई समस्या उपस्थित होती थी तो तत्कालीन प्रतिभासम्पन्न ऋषिगण स्वयं ही अपनी प्रतिभा से तत्तद्विषयों की मीमांसा कर समस्या को सुलझा लेते थे। इस बात का प्रमाण आज हमें जैमिनि के सूत्रों से उपलब्ध होता है। जैमिनि ने अपने सूत्रों में तत्कालीन या पूर्ववर्ती स्वतन्त्रप्रज्ञ ऋषियों के नामों का निर्देश जहां तहां किया है। जैसे—१-१-५ में बादरायण ३-१-३ में बादरि, ३-२-४३ में ऐतिशायन, ६-१-२६ में आत्रेय, ६-७-३५ में कार्ष्णाजिनि, ६-७-३७ में लावुकायन, ११-१-५७ में कायुकायन आदि।

इनके अतिरिक्त भी कितने ही ऋषि होंगे जिनका निर्देश जैमिनि ने न भी किया हो। तात्पर्य यह है कि उस युग का वातावरण, दिनचर्या, आहार-विहार, आयुर्मर्यादा, प्रतिभा की प्रगल्भता, ज्ञान की गरिमा, तप की महिमा, शक्ति की विपुलता, आदि सभी बातों की अनुकूलता होने से चारों वेदों के अध्ययनाध्यापन की परिपाटी चल रही थी, जिससे तत्कालीन विद्वानों को धर्म का ज्ञान, वेदों से प्राप्त कर लेना, कोई कठिन कार्य प्रतीत नहीं होता था।

काल के साथ ही जब युग बीतने लगा और भावी प्रजा में शक्ति की क्षीणता प्रतीत होने लगी, वातावरण परिवर्तित हुआ सा दृष्टिगोचर होने लगा तब धर्मजिज्ञासुओं के अवलंबनार्थ धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्रों की सृष्टि हुई जिसके सहारे धर्मानुष्ठान में विस्मृतिवश किसी प्रकार से वैगुण्य न होने पाये। उपलब्ध गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि, वसिष्ठ, विष्णु, हारीत, शंख-लिखित, मानव, वैखानस, अत्रि, उशना, कण्व, कश्यप, गार्ग्य, च्यवन, जातूकर्ण्य,

देवल, पैठीनसि, बुध, बृहस्पति, भरद्वाज, शातातप, सुमन्तु, आदि महर्षियों के सूत्रों में गौतम-धर्मसूत्र अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। ये धर्मसूत्र गद्यमय या गद्यपद्यमिश्रित हैं।

पुनः कुछ समय व्यतीत होने पर वातावरण में बढ़ता हुआ परिवर्तन दिखाई दिया, साथ ही साथ भावी प्रजा में तपःशक्ति,विद्याशक्ति. शारीरिक शक्ति का ह्रास होता दीखने लगा तब तत्कालीन ऋषियों ने स्मृतियों की रचना करना आरम्भ किया। धर्मसूत्रों और स्मृतियों में अन्तर यह है कि धर्मसूत्रों की विषयवस्तु व्यवस्थितरूप से नहीं है जब कि स्मृतियों में ऐसी अव्यवस्था नहीं पाई जाती। स्मृतियों का विषय प्रायः आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त इन तीन प्रमुख शीर्षकों में होता है। स्मृति एवं धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है—श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः (मनु २-१०) मनु-बृहस्पति-दक्ष-गौतम-यम-अंगिरस-याज्ञावल्क्य-प्रचेतस्-शातातप-पराशर-संवर्त-उशना-शंख-लिखित-अत्रि-विष्णु-आपस्तंब-हारीत-आदि ये मुख्य स्मृतिकार हैं। इसके अतिरिक्त उपस्मृतिकार भी हैं तथा अन्य स्मृतिकार भी हैं। (वी. मि. परिभा. प्र. पृ. १८)

मनु (२०० ई० पू०—१०० ई० उ०)

मनु स्मृति के अनेक व्याख्याकार हो चुके हैं। मनु के विषय में तो यहां तक कहा गया है कि—"यत् किंचन मनुरवदत् तद् भेषजं भेषजतायाः।" (ताण्ड्य० २३.१६.१७)

मनुस्मृति में १२ अध्याय और २६९४ श्लोक हैं। मनुस्मृति सरल एवं धाराप्रवाह शैली में है। इसका व्याकरण प्रायः पाणिनिसम्मत है। इसके सिद्धान्त गौतम बौधायन, एवं आपस्तम्ब के धर्मसूत्रों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसके बहुत से श्लोक वसिष्ठ एवं विष्णु के धमसूत्रों में भी पाये जाते हैं। मनुस्मृति में तीन वेदों के नाम आये हैं आयुर्वेद को अथर्वाङ्गिरसी श्रुति (११, ३३) कहा है। इसी प्रकार आरण्यक, छह वेदांगों, धर्मशास्त्रों की चर्चा आयी है। मनुने अत्रि, उतथ्यपुत्र (गौतम), भृगु शौनक, वसिष्ठ, वैखानस आदि धर्मशास्त्रकारों का तथा आख्या, इतिहास, पुराण और खिलों का उल्लेख किया है। मनु ने ब्रह्म का वर्णन कर उपनिषद् की ओर संकेत किया है एवं 'वेदबाह्याः स्मृतयः' की चर्चा कर जैन, बौद्धों की ओर संकेत किया है, उन्होंने धर्मविरोधियों और उनके व्यावसायिक श्रेणियों का उल्लेख किया है। अनेक प्रकार की बोलियों की चर्चा की है। 'केचित्', 'अपरे', 'अन्ये' कहकर अन्य मतों का उद्घाटन किया है। इसके व्याख्याकारो में मेधातिथि, गोविन्दराज और कुल्लूक बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त नारायण, राघवनन्द, नन्दन, रामचन्द्र, असहाय, उदयकर, भागुरि, भोजदेव, धरणीधर आदि भी इनके व्याख्याकार हुए हैं। मेधातिथि ने अपने पूर्ववर्ती भाष्यकारों की ओर संकेत किया है।

याज्ञवल्क्य (१०० ई० उ०—३०० ई० उ०)

याज्ञवल्क्यस्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा सुव्यवस्थित है। इसके अनेक व्याख्या कार हो चुके हैं यह तीन भागों में विभक्त है, और तत्तद् विषयोंका उचितस्थान पर प्रतिपादन किया गया है। इसमें पुनरुक्तिदोष प्रायः नहीं है। मनु और याज्ञवल्क्यस्मृति के विषय अधिकांश समान रहने पर भी याज्ञवल्क्यस्मृति मनु की अपेक्षा संक्षिप्त है, किन्तु इसकी शैली सरल और धाराप्रवाही है। धर्मशास्त्र के इतिहास में म० म० काणे लिखते हैं—'याज्ञवल्क्य ने विष्णुधर्मसूत्र की बहुत सी बातें मान ली हैं। इनकी स्मृति एवं कौटिलीय में पर्याप्त समानता दिखाई पड़ती है। याज्ञवल्क्यस्मृति के बहुत से श्लोक मनु के कथन के मेल में बैठ जाते हैं। किन्तु याज्ञवल्क्य मनु की बहुत सी बातें नहीं मानते। जैसे—मनु ब्राह्मण को शूद्रकन्या से विवाह करने का आदेश देते हैं (३-१३), किन्तु याज्ञवल्क्य नहीं (१-५९)। मनु ने नियोग का वर्णन करके उसकी भर्त्सना की है (९,५९-६८) किन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा नहीं किया (१, ६८-६९)। मनु ने १८ व्यवहारपदों के नाम लिये हैं, किन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा

न करके केवल व्यवहारपद की परिभाषा की है और एक अन्य प्रकरण में व्यवहारपर विशिष्ट श्लोक जोड़ दिये हैं। मनु, पुत्रहीन पुरुष की विधवा पत्नी के दायभागपर मौन से हैं, किन्तु इस विषय में याज्ञवल्क्य बिलकुल स्पष्ट है। उन्होंने विधवा को सर्वोपरि स्थान रखा है। मनु ने जूए की भर्त्सना की है, किन्तु याज्ञवल्क्य ने उसे राज्य नियंत्रण में रखकर कर का एक उपादान बना डाला है। (२. २००-२०३)।

याज्ञवल्क्यस्मृति पर कई टीकायें हैं, जिनमें विश्वरूप, विज्ञानेश्वर अपरार्क एवं शूलपाणि अधिक प्रसिद्ध हैं। भारत में विज्ञानेश्वर विरचित मिताक्षरा पर आधारित व्यवहारों का अधिक प्रचलन है, इसकारण याज्ञवल्क्य को अधिक गौरव प्राप्त है।

पराशर (१–५ शताब्दी का मध्यकाल)

पराशरस्मृति में १२ अध्याय हैं। इसमें केवल आचार और प्रायश्चित्त पर चर्चा हुई है। इसके टीकाकार माधव ने अपनी ओर से व्यवहार संबन्धी विवेचन जोड़ दिया है। पराशर नाम बहुत प्राचीन है। तैत्तिरीय आरण्यक और बृहदारण्यक में क्रम से व्यासपाराशर्य एवं पाराशर्य नाम आए हैं। निरुक्त ने पराशर के मूलपर लिखा है। पाणिनि ने भी भिक्षुसूत्र नामक ग्रंथ को पाराशर्य माना है। पराशरस्मृति में अन्य १९ स्मृतियों के नाम आये हैं। महर्षि पराशर व्यास के पिता और शक्ति के पुत्र हैं।

नारद (१००–४०० ई० उ०)

नारदस्मृति के व्याख्याकार असहाय हैं। याज्ञवल्क्य एवं पराशर ने नारद को धर्मवक्ताओं में नहीं गिना। किन्तु वृद्ध याज्ञवल्क्य के एक उद्धरण के आधारपर विश्वरूप ने दिखलाया है कि नारद दश धर्म-शास्त्रकारों में एक थे। याज्ञवल्क्य में दिव्य के केवल पांच प्रकार पाये जाते हैं, किन्तु नारद में सात हैं। नारद में दीनार शब्द पाया जाता है। जिसका प्रचलन इस समय भी ईराक में है।

बृहस्पति (३००–५०० ई० उ०)

बृहस्पति धर्मसूत्रकार तथा स्मृतिकार भी है। दुर्भाग्यवश अभीतक बृहस्पतिस्मृति संपूर्ण रूपमें नहीं मिल सकी है। इसमें व्यवहार संबन्धी सिद्धान्त एवं परिभाषाएँ सुन्दर ढंग से दी हैं। बृहस्पति ने 'धन' एवं 'हिंसा' (सिविल एवं क्रिमिनल अथवा माल एवं फौजदारी) के व्यवहार संबन्धी अन्तर्भेद को प्रकट किया है। बृहस्पति ने युक्तिहीन न्याय की भर्त्सना की है।

कात्यायन (४००–६०० ई० उ०)

प्राचीन भारतीय व्यवहार एवं व्यवहारविधि के क्षेत्र में नारद, बृहस्पति एवं कात्यायन ये तीन रत्न गिने जाते हैं। कात्यायन ने स्त्रीधन की चर्चा की है। सर्वप्रथम अध्यग्नि, अध्यावहनिक, प्रीतिदत्त शुल्क, अन्वाधेय तथा सौदयिक नामक स्त्रीधन के कतिपय प्रकारों की चर्चा की है। कात्यायन ने व्यवहारसंबन्धी कुछ नई संज्ञाओं का प्रयोग किया है, जैसे—'पश्चात्कार' 'जयपत्र' आदि। पश्चात्कार वह निर्णय है जो वादी एवं प्रतिवादी के बीच गरमागरम विवाद के फलस्वरूप दिया जाता है और 'जयपत्र' वह है जो प्रतिवादी की स्वीकारोक्ति या अन्य कारणों से अभियोग के सिद्ध होने के फलस्वरूप दिया जाता है। इसी प्रकार अन्य कितने ही स्मृतिकार हैं जिनकी स्मृतियाँ दुर्भाग्यवश आज उपलब्ध नहीं हैं, उपलब्ध भी हैं तो खण्डित रूप में उपलब्ध हैं और कितने ही स्मृतिकारों के अन्यान्य स्मृतियों एवं निबंधों में उद्धरण मात्र उपलब्ध होते हैं जिससे उनके अस्तित्व का या स्वरूप का धुंधला-सा दर्शन हो पाता है।

व्याख्याकार तथा निबन्धकार

इसके अनन्तर व्याख्याकार एवं निबन्धकार उपस्थित होते हैं। इनकी उपस्थिति में भी हेतु भावी प्रजा की सर्वविध शक्तिक्षीणता-ही है जो पहिले बता चुके हैं। यह व्याख्याकारों का

और निबन्धकारों का युग प्राय: सातवीं शताब्दी से अठारवीं ई० तक माना जाता है। सत्रहवीं शताब्दी में नन्द पण्डित ने विष्णुधर्मसूत्र पर वैजयन्ती नामक व्याख्या लिखी। किन्तु बारहवीं शताब्दी से सूत्रों या स्मृतियों पर व्याख्यान या स्मृतियों के धर्मसम्बन्धी सिद्धान्तों को लेकर स्वतन्त्र रूप से निबन्ध लिखने की सामान्य प्रवृत्ति विद्वानों में जागरित हुई। धर्मशास्त्र की विविध शाखाओं पर कामधेनु नामक एक प्राचीन निबन्ध था, जिसका उल्लेख लक्ष्मीधर के कल्पतरु में, हारलता में, स्मृत्यर्थसार में, विवादरत्नाकर में, श्राद्धक्रियाकौमुदी में, श्राद्धविवेक में तथा समयप्रदीप में बार-बार किया गया है। चण्डेश्वर के व्यवहाररत्नाकर से कामधेनु के लेखक गोपाल प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मीधर के कल्पतरु, चण्डेश्वर के विवादरत्नाकर, हरिनाथ के स्मृतिसार में हलायुध के मतों की चर्चा की गई है। विवादचिन्तामणि में रघुनन्दन ने दायतत्त्व, व्यवहारतत्त्व एवं दिव्यतत्त्व में, तथा वीरमित्र ने अपने वीरमित्रोदय में भी हलायुध के मतों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि हलायुध के निबन्ध बड़े महत्त्व के एवं प्रामाणिक हैं।

भवदेव भट्ट (११०० ई० उ०)

रघुनन्दन के व्यवहारतत्त्व एवं वीरमित्रोदय से पता चलता है कि भवदेव भट्ट ने व्यवहारविधि पर व्यवहारतिलक नामक निबन्ध लिखा है। मिसरु मिश्र के विवादचन्द्र में भी भवदेव के विचारों की चर्चा की है।

आततताई के मारने के बारे में सुमन्तु के कथन पर भवदेव के मत की चर्चा वीरमित्रोदय ने की है। सरस्वतीविलास एवं नन्दपण्डित के वैजयन्ती व्याख्या में भी भवदेव के मतों की चर्चा की है। इससे स्पष्ट है कि भवदेव भट्ट का व्यवहारतिलक निबन्ध न्यायविधि पर बड़ा मूल्यवान् माना जाता रहा होगा।

'प्रकाश' (११२५ ई०)

प्रकाश नामक एक निबन्ध की चर्चा कतिपय निबन्धकारों ने की है। चण्डेश्वर ने अपने विवादरत्नाकर में प्रकाश के मतों की चर्चा अनेक बार की है।

गोविन्दराज (१०८०–११०० ई० उ०)

गोविन्दराज ने स्मृतिमञ्जरी नामक निबन्ध लिखा है। इसमें आन्ध्र जैसे देशों में यज्ञों का निषेध किया गया है। इन्होंने मेधातिथि के समान मोक्ष के लिये ज्ञान एवं कर्म का सामञ्जस्य बताया है। अनिरुद्ध की हारलता में गोविन्दराज की चर्चा की गई है।

लक्ष्मीधर का कल्पतरु (११००–११३० ई० उ०)

कल्पतरु ने मिथिला, बंगाल एवं सामान्यत: सम्पूर्ण उत्तर भारत को प्रभावित कर रखा है। इस निबन्ध के कई काण्ड हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ को कृत्यकल्पतरु, कल्पतरु, कल्पद्रुम या कल्पवृक्ष कहा जाता है। इस निबन्ध में धर्मशास्त्रसम्बन्धी सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। बंगाल के अनिरुद्ध, वल्लाल सेन, शूलपाणि, रघुनन्दन आदि सभी प्रसिद्ध निबन्धकारों ने कल्पतरु की चर्चा की है। मिथिला में वे बंगाल से कहीं अधिक प्रसिद्ध थे। चण्डेश्वर ने अपने विवादरत्नाकर में सैकड़ों बार उनके विचारों को उद्धृत किया है। हेमाद्रि एवं सरस्वतीविलास ने बड़े आदर के साथ लक्ष्मीधर का उल्लेख किया है। यहां तक कि लक्ष्मीधर को भगवान् की उपाधि दे डाली है। जब अन्य संक्षिप्त निबन्धों का प्रणयन हुआ तब कल्पतरु अन्धकार में छिप गया किन्तु दत्तकमीमांसा, वीरमित्रोदय तथा टोडरानन्द ने कल्पतरु की विशेष चर्चा की है।

जीमूतवाहन (१०९०–११३० ई० उ०)

जीमूतवाहन, शूलपाणि एवं रघुनन्दन बंगाल के धर्मशास्त्रकारों के त्रिदेव हैं। इनमें जीमूतवाहन सर्वश्रेष्ठ हैं। इनका धर्मरत्न नाम का एक निबन्ध ग्रन्थ है, जिसके तीन अंग इस

समय प्राप्त होतेहैं—कालविवेक, व्यवहारमातृका और दायभाग। जीमूतवाहन के कालविवेक की चर्चा वाचस्पति के श्राद्धचिन्तामणि, गोविन्दचन्द्र की श्राद्धकौमुदी एवं वर्षक्रियाकौमुदी में और रघुनन्दन के स्मृतितत्त्व के तत्त्वों में बहुत की गई है। जीमूतवाहन का दायभाग सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है। हिन्दूकानूनों में विशेषतः रिक्थविभाजन, स्त्रीधन, पुनर्मिलन आदि में इसका विशेष उपयोग किया जाता है। बंगाल में मिताक्षरा का इतना प्रभाव नहीं है रघुनन्दन के जितना दायभाग का है। इसके अनक भाष्यकार हो गये हैं। दायभाग और मिताक्षरा के विचारों में भेद है—दायभाग में पुत्रों को जन्म से पैतृक संपत्ति में अधिकार नहीं है बल्कि पिता के स्वत्त्व के विनाश पर ही (पिता की मृत्यु होने पर, पतित होने पर, संन्यासी होने पर ही) पुत्र दायपर अधिकार पा सकते हैं। या पिता की इच्छा पर उसमें और पुत्रों में विभाजन हो सकता है। पति के अधिकार पर विधवा का अधिकार हो जाता है, भले ही पति एवं उसके भाई का संयुक्त धन हो। रिक्थाधिकार मृतव्यक्ति के पिण्डदान करने पर निर्भर है। मिताक्षरा के अनुसार सगोत्रता पर निर्भर नहीं है।

अपरार्क (१११५-११३०ई०उ०)

अपरादित्य ने याज्ञवल्क्यस्मृति पर अत्यन्त विस्तृत व्याख्या के रूप में एक महान् निबन्ध ही लिख डाला, जो अपरार्क नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस निबन्ध के अन्त में लेखक विद्याधरवंश के जीमूतवाहन के कुल में उत्पन्न राजा शिलाहार अपरादित्य कहे गये हैं। इनका निबन्ध मिताक्षरा से कई बातों में भिन्न है। अपरादित्य जीमूतवाहन वंश के शिलाहार राजकुमार थे। शिलाहारों के अभिलेखों से पता चलता है कि उनकी तीन शाखाएँ थीं, जिनमें एक उत्तरी कोंकण के थाणा नामक स्थान में, दूसरी दक्षिणी कोंकण में तथा तीसरी कोल्हापुर में थी।

श्रीधर (११५० ई० उ०)

श्रीधर का स्मृत्यर्थसार नामक निबन्ध प्रसिद्ध है। इसमें पूर्वयुगादेशित एवं कलियुगवर्जित कर्म, संस्कारसंख्या, उपनयन का विस्तृत वर्णन, ब्रह्मचारी के कर्तव्य, अनध्याय, विवाह, विवाहप्रकार, सपिण्डता के कारण निषेध, गोत्रप्रवरविवेचन, आह्निककर्म, श्राद्ध का विस्तृत वर्णन, मलमास आदि अनेक विषय बताये गये हैं। श्रीधर विश्वामित्र गोत्र के विष्णुभट्ट के पुत्र थे।

अनिरुद्ध (११६८ ई० उ०)

ये बंगाल के प्राचीन एवं प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार हैं। इनके दो ग्रन्थ हारलता एवं पितृदायिता अथवा कर्मोपदेशिनी पद्धति अतिप्रसिद्ध हैं। इन दोनों ग्रंथों में आचारसंबन्धी बातों पर प्रकाश डाला गया है। बल्लालसेन के दानसागर से पता चलता है कि अनिरुद्ध बंगाल के राजा बल्लालसेन के गुरु थे।

बल्लालसेन (१०९० १०९१ ई० उ०)

बंगाल के राजा बल्लालसेन ने चार ग्रन्थों का संपादन किया है। वेदाचार्य के स्मृतिरत्नाकर में एवं मदनपारिजात में बल्लालसेन के आचारसागर का वर्णन है। इनकी दूसरी कृति प्रतिष्ठासागर है। तीसरी कृति दानसागर है। चण्डेश्वर के दानरत्नाकर में एवं निर्णयसिन्धु में दानसागर का उल्लेख आया है। बल्लालसेन की चौथी कृति अद्भुतसागर का उल्लेख टोडरानन्द संहिता-सौख्य एवं निर्णयसिन्धु में हुआ है। रघुनन्दन के कथनानुसार दानसागर अनिरुद्ध भट्ट के द्वारा लिखा गया है। किन्तु बात ऐसी नहीं है, क्योंकि दानसागर में स्वयं बल्लालसेन ने लिखा है कि यह ग्रन्थ उन्होंने अपने गुरु (अनिरुद्ध) की देखरेख में लिखा है।

देवण भट्ट (१२००–१२२५ ई० उ०)

देवण भट्ट की स्मृतिचन्द्रिका धर्मशास्त्र का अतिप्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ है। ये केशवादित्य भट्ट के पुत्र एवं सोमयाजी भी कहे गये हैं। स्मृतिचन्द्रिका में अनेक स्मृतिकारों का उल्लेख है। दक्षिण में इनकी स्मृतिचन्द्रिका व्यवहारसंबन्धी एवं न्यायसम्बन्धी बातों में प्रामाणिक मानी जाती है। स्मृतिचन्द्रिका में विज्ञानेश्वर का नाम बड़े आदर से लिया गया है। किन्तु कई स्थानों पर मिताक्षरासे विरोध भी प्रकट किया गया है। वीरमित्रोदय ने हरदत्त एवं देवण भट्ट (स्मृतिचन्द्रिकाकार) को दक्षिणी निबन्धकार कहा है।

हेमाद्रि (१२६०–१२७० ई० उ०)

दाक्षिणात्य धर्मशास्त्रकारों में हेमाद्रि एवं माधव के नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। हेमाद्रि न एक विपुलकाय निबन्ध का प्रणयन किया, जिसको चतुर्वर्गचिन्तामणि कहते हैं। यह धर्मकृत्यों का विश्वकोष ही है। व्रत, दान, श्राद्ध, काल आदि इस महानिबन्ध के प्रकरण हैं। पूर्वमीमांसा के कतिपय न्यायों को बिना जाने इस निबन्ध के श्राद्ध-काल विषयक विवेचनों को समझना कठिन है। हेमाद्रि ने अपरार्क, आपस्तम्बधर्मसूत्र, कर्कोपाध्याय, गोविन्दराज, गोविन्दोपाध्याय, त्रिकाण्डमण्डन, देवस्वामी, निर्णयामृत, न्यायमञ्जरी, पण्डितपरितोष, पृथ्वीचन्द्रोदय, बृहत्कथा, बृहद्वार्तिक, भवदेव, मदननिघन्टु मधुशर्मा, मेधातिथि, वामदेव, विधिरत्न, विश्वप्रकाश, विश्वरूप, विश्वादर्श, शंखधर, शंभु, वृद्धशातातप, भाष्यकार, शिवदत्त, श्रीधर, सोमदत्त, स्मृतिचन्द्रिका आदि कितने ही धर्मशास्त्रों के नाम उद्धृत किए हैं। किन्तु आश्चर्य है कि हेमाद्रि ने विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा का नाम भी कही नहीं लिया है। हेमाद्रि ने अपने को देवगिरि के यादवराज महादेव का मंत्री लिखा है।

कुल्लूक भट्ट (११५० १३०० ई० उ०)

इन्होंने मनुस्मृति की व्याख्या के अतिरिक्त स्मृतिसागर नामक एक निबन्ध भी लिखा है, जिसके केवल अशौचसागर, विवादसागर एवं श्राद्धसागर नामक प्रकरणों के अंश अभी तक प्राप्त हो सके हैं। श्राद्धसागर में पूर्व मीमांसासम्बन्धी विवेचन भी है। कुल्लूक भट्ट ने लिखा है कि उन्होंने अपने पिता के आदेश से ही विवादसागर, अशौचसागर एवं श्राद्धसागर ग्रन्थ लिखे हैं।

श्रीदत्त उपाध्याय (१२७५–१३१० ई० उ०)

याज्ञवल्क्य से लेकर आधुनिक काल तक मिथिला ने महत्त्वपूर्ण लेखकों को पैदा किया है। मध्ययुगीन मैथिल निबन्धकारों में श्रीदत्त उपाध्याय अतिप्राचीन हैं। इन्होंने आचारादर्श नामक निबन्ध के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। आचारादर्श शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी शाखावालों के लिये है। इसमें आह्निक धार्मिक कृत्यों का वर्णन है। इस ग्रन्थ पर दामोदर मैथिल द्वारा लिखित आचारादर्शबोधिनी नामक टीका भी है। सामवेदियों के लिये उन्होंने छान्दोगाह्निक नामक आचार पुस्तक लिखी है। इसका उल्लेख उनकी समयप्रदीप एवं पितृभक्ति नामक ग्रन्थों में हुआ है। यजुर्वेदियों के लिये पितृभक्ति नामक श्राद्धसम्बन्धी पुस्तक है। रुद्रधर के श्राद्धविवेक में इस ग्रन्थ की चर्चा की गई है।

चण्डेश्वर (१३००–१३७० ई० उ०)

मिथिला के धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों में चण्डेश्वर श्रेष्ठ माने जाते हैं। इनका स्मृतिरत्नाकर एक विस्तृत निबन्ध है। इसमें कृत्य, दान, व्यवहार, शुद्धि, पूजा, विवाद, एवं गृहस्थ नामक सात अध्याय हैं। तिरहुत में हिन्दू व्यवहारों (कानूनों) के लिये चण्डेश्वर का विवादरत्नाकर एवं वाचस्पति का विवादचिन्तामणि प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। स्मार्त विषयों के अतिरिक्त चण्डेश्वर ने कृत्यचिन्तामणि, राजनीतिरत्नाकर आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं। चण्डेश्वर राजमन्त्री थे।

मैथिल और बंगाली लेखकों पर चण्डेश्वर का बहुत प्रभाव है। वीरमित्रोदय ने रत्नाकर को पौरस्त्यनिबन्ध (पूर्वी निबन्ध) कहा है।

माधवाचार्य (१३३०–१३८५ ई०)

धर्मशास्त्र के दाक्षिणात्य निबन्धकार माधवाचार्य की सर्वमान्यता आद्य शंकराचार्य के समान ही है। ये प्रकाण्ड विद्वान्, दूरदर्शी, राजनीतिज्ञ और विजयनगर के राजा-बुक्क के प्रधान मंत्री थे। वृद्धावस्था में वास्तविक संन्यासी के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। इनकी अनेक कृतियां हैं उनमें भी पराशरमाधवीय और कालमाधव अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह केवल पराशरस्मृति की व्याख्या ही नहीं प्रत्युत आचार सम्बन्धी एक महान निबन्ध भी है। दक्षिण भारत के व्यवहारों में पराशरमाधवीय का विशेष महत्त्व है। इसकी शैली सरल और मधुर है। इसी प्रकार कालमाधव के पांच प्रकरण हैं–उपोद्घात, वत्सर, प्रतिपत्प्रकरण, द्वितीयादि तिथिप्रकरण, प्रकीर्णक। प्रथम प्रकरण में काल और उसके स्वरूप का विवेचन, दूसरे प्रकरण में वर्ष एवं उसके चान्द्र, सावन या सौर, दो अयनों, ऋतुओं एवं उनकी संख्या, चान्द्र, एवं सौर मासों मलमासों, दोनों पक्षों आदि भागों का विवेचन है। तीसरे प्रकरण में तिथि शब्द के अर्थ, तिथि-अवधि, एक पक्ष की पन्द्रह तिथियों, शुद्धा एवं विद्धा नाम के उसके दो प्रकार, तिथियों पर क्रिया करने के नियमादि, रात और दिन के १५ मुहूर्तों आदि की चर्चा है। चौथे प्रकरण में प्रतिपत् से समस्त तिथियों तक के नियम प्रयोग हैं। पांचवे प्रकरण में विभिन्न प्रकार के कार्यों के नक्षत्रनिर्णय के विषय में नियमों का प्रतिपादन किया गया है। ये यजुर्वेद की बौधायनशाखा एवं भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण थे। वृद्धावस्था में संन्यास लेने पर ये विद्यारण्य नाम से प्रसिद्ध हुए। १३७७ ई० में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। किंवदन्तियों से ज्ञात होता है कि ९० वर्ष की अवस्था में ये समाधिस्थ हुए।

मदनपाल एवं विश्वेश्वर भट्ट १३६०–१३९० (ई० उ०)

मदनपाल के आश्रय में विश्वेश्वर भट्ट ने मदनपारिजात नामक एक निबन्ध लिखा। मदनपाल राजाभोज के समान ही एक विद्याव्यसनी राजा थे। इनके राज्यकाल में मदनपारिजात, स्मृतिमहार्णव (मदनमहार्णव), तिथिनिर्णयसार एवं स्मृतिकौमुदी नामक चार ग्रन्थ लिखे गये। विश्वेश्वर भट्ट ने धर्मशास्त्र सम्बन्धी सुबोधिनी नामक एक अन्य ग्रन्थ भी लिखा है। यह सुबोधिनी, विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा की एक व्याख्या है। विश्वेश्वर भट्ट द्रविड देश के निवासी थे।

मदनरत्न (१३५०–१५०० ई०)

मदनरत्न (मदनरत्नप्रदीप या मदनप्रदीप) एक विशाल निबन्ध है। इसमें सात उद्योत हैं। काल, आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त, दान, शुद्धि एवं शान्ति। राजा मदन सिंह ने रत्नाकर, गोपीनाथ, विश्वनाथ एवं गंगाधर को बुलाकर इस निबन्ध के प्रणयन का भार उन पर सौंप दिया था।

शूलपाणि (१३७५–१४६० ई०)

बंगाल के धर्मशास्त्रकारों में जीमूतवाहन के पश्चात् शूलपाणि का ही नाम आता है। धर्मशास्त्रसम्बन्धित विभिन्न विषयों पर इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सबको मिलाकर स्मृतिविवेक यह एक नामकरण कर दिया होगा। इनके विभिन्न ग्रन्थ—-एकादशीविवेक, दुर्गोत्सवप्रयोगविवेक, दुर्गोत्सवविवेक, दोलायात्राविवेक, प्रतिष्ठाविवेक, प्रायश्चित्तविवेक, व्रतकालविवेक, शुद्धिविवेक, श्राद्धविवेक, संक्रान्तिविवेक तथा सम्बन्धविवेक उपलब्ध होते हैं। शूलपाणि की श्राद्धविवेक नामक कृति अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस पर अनेक भाष्य हैं, जिनमें श्रीनाथ, आचार्यचूडामणि एवं गोविन्दानन्द के भाष्य अति प्रसिद्ध हैं।

रुद्रधरोपाध्याय (१४२५–१४६० ई०)

रुद्रधरोपाध्याय, मैथिल धर्मशास्त्रकार थे। ये अनेक ग्रन्थों के लेखक हैं। इनका शुद्धिविवेक नामक निबन्ध अत्यन्त विख्यात है। इसमें तीन परिच्छेद हैं। इनका एक श्राद्धविवेक भी है जो चार परिच्छेदों में विभक्त है।

मिसरूमिश्र (१४००–१४५० ई० उ०)

इन्होंने विवादचन्द्र नामक निबन्ध लिखा है जिसमें ऋणादान, न्यास, अस्वामिविक्रय, संभूय-समुत्थान (साझा), दायविभाग, स्त्रीधन, अभियोग, उत्तरप्रमाण, साक्षी आदिपरक व्यवहार-पद हैं। विवादचन्द्र, मिथिला में व्यवहारसम्बन्धी प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

वाचस्पति मिश्र (१४२५–१४९० ई० उ०)

मिथिला के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार वाचस्पतिमिश्र ने व्यवहार (कानून) पर विवाद-चिन्तामणि नामक निबन्ध लिखा है, जो संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध है। चिन्तामणि नाम से इनके (११) ग्यारह ग्रन्थों का पता चल सका है। आचारचिन्तामणि में वाजसनेयियों के आन्हिककृत्यों का उल्लेख है। इसी प्रकार शुद्धि चिन्तामणि, कृत्यचिन्तामणि, तीर्थचिन्तामणि, आन्हिकचिन्ता-मणि, द्वैतचिन्तामणि, नीतिचिन्तामणि, व्यवहारचिन्तामणि, शूद्राचारचिन्तामणि आदि। इसके अतिरिक्त कतिपय निर्णयों का भी इन्होंने प्रणयन किया, जैसे—तिथिनिर्णय, द्वैतनिर्णय महादान-निर्णय, शुद्धिनिर्णय, आदि। इसी प्रकार इन्होंने सात महार्णवों का भी निर्माण किया है, जैसे कृत्य, आचार-विवाद, व्यवहार, दान, शुद्धि एवं पितृयज्ञ। वाचस्पतिमिश्र धर्मशास्त्रकार होने के अतिरिक्त दार्शनिक भी थे। ये महाराजाधिराज हरिनारायण के पारिषद (सलाहकार) भी थे।

नृसिंहप्रसाद (१४९०–१५१५ ई० उ०)

इनके रचित निबन्ध को धर्मशास्त्रसम्बन्धी विश्वकोष ही कहना चाहिये। इनके निबन्ध बारह भागों में विभक्त है, जैसे—संस्कार, अह्निक, श्राद्ध, काल, व्यवहार, प्रायश्चित्त, कर्मविपाक, व्रत, दान, शांति, तीर्थ एवं प्रतिष्ठा। प्रत्येक विभाग के अंत में नृसिंह भगवान् की प्रार्थना की गई है। लेखक ने स्वयं अपने को शुक्लयजुर्वेदी, भारद्वाजगोत्रोत्पन्न, वल्लभ का पुत्र दलपति कहा है। शंकरभट्ट के द्वैतनिर्णय में एवं नीलकण्ठ के मयूखों में इसका उल्लेख किया गया है।

प्रतापरुद्र देव (१५००–१५२५ ई० उ०)

उड़ीसा में (कटक) कटक नगरी के गजपतिकुल के राजा प्रतापरुद्रदेव ने सरस्वती-विलास नामक निबंध का प्रणयन किया है। दक्षिण में यद्यपि सरस्वतीविलास का बहुत महत्त्व है। तथापि इनका स्थान मिताक्षरा से नीचे है। प्रतापरुद्र देव ने १४९७ ई० से १५३९ ई० तक राज्य किया। अतः सरस्वती विलास की रचना १६वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुई होगी।

गोविन्दानन्द (१५००–१५४० ई० उ०)

गोविंदानंद के अनेक ग्रंथ हैं जिनमें दानकौमुदी, शुद्धिकौमुदी, श्राद्धकौमुदी, वर्षक्रिया-कौमुदी, अतिप्रसिद्ध हैं। ये गणपतिभट्ट के पुत्र थे, इनकी पदवी कविकङ्कणाचार्य थी। ये बंगाल के मिदनापुर जिले के बाग्री स्थान के निवासी थे। इनके साहित्यिक रचनाकाल १५०० से १५४० माना गया है।

रघुनन्दन १५२०–१५७५ ई. उ.)

ये बङ्गाल के अन्तिम और अत्यन्त प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार थे। इन्होंने स्मृतितत्त्व नामक विशाल निबन्ध का प्रणयन किया है, जिसमें २८ तत्त्व है। इन्होंने अपने विशाल निबन्ध में लगभग ३०० ग्रन्थों का उल्लेख किया है। अपने पाण्डित्य के कारण कालान्तर से स्मार्तभट्टाचार्य नाम से ये विख्यात हुए। वीरमित्रोदय एवं नीलकण्ठ ने इनका स्मार्त नाम से उल्लेख किया

हैं। स्मृतितत्त्व के अतिरिक्त रघुनंदन ने अन्य ग्रंथ भी लिखे हैं। बंगाल में रघुनंदन के ग्रंथों का अधिकतर प्रचार है। रघुनंदन एवं वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु दोनों वासुदेव सार्वभौम के शिष्य थे।

नारायण भट्ट (१५१३ १५८० ई० उ०)

नारायण भट्ट वाराणसी के प्रसिद्ध भट्टकुल के श्रेष्ठतम निबन्धकार माने जाते हैं। नारायण भट्ट ने धर्मशास्त्र पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें अन्त्येष्टिपद्धति, त्रिस्थलीसेतु एवं प्रयोगरत्न बहुत प्रसिद्ध हैं। नारायण भट्ट के पिता रामेश्वर भट्ट पैठण (प्रतिष्ठान) से वाराणसी आये थे। उनके पण्डित्य से आकृष्ट होकर दूर-दूर से छात्रगण आया करते थे। नारायण भट्ट के पुत्र शंकर भट्ट ने अपने पिता का जीवनचरित्र लिखा है। जिसके अनुसार उनका जन्म १५१३ ई०में हुआ था। अपने पिता रामेश्वर भट्ट के समान ही नारायण भट्ट महापण्डित थे। वाराणसी में नारायण भट्ट को जगद्गुरु की पदवी से अलंकृत किया गया था।

टोडरानन्द (१५२०–१५८९ ई० उ०)

अकबर के वित्तमंत्री राजा टोडरमल ने एक बृहद् ग्रंथ लिखा, जिसे विश्वकोष भी कह सकते हैं। इसके कतिपय भाग आचार, व्यवहार, दान, श्राद्ध, विवेक, प्रायश्चित्त, समय आदि सौख्य के नाम से विख्यात हैं। ग्रन्थ के कतिपय प्रकरण हर्ष कहे गये हैं। टोडरानंद निबन्धकार होने के साथ ही कुशल सेनापति, मंत्री एवं राजनीतिज्ञ भी थे। ये जाति के खत्री थे।

नन्दन (नन्द) पंडित (१५९०–१६३० ई० उ०)

ये धर्मशास्त्र पर विस्तार से लिखनेवाले धुरंधर लेखक थे। इन्होंने पराशरस्मृति पर विद्वन्मनोहरा नामक व्याख्या लिखी है। इन्होंने विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा पर संक्षिप्त भाष्य लिखा है, जिसे प्रमिताक्षरा या प्रतीताक्षरा कहा जाता है। स्मृतियों पर इनका एक स्मृति-सिन्धु नामक निबन्ध भी है, जिसपर इन्होंने स्वयं ही तत्त्वमुक्तावलि नामक टीका भी लिखी है।

वैजयन्ती या केशववैजयन्ती नामक ग्रन्थ नन्दपण्डित का बहुत प्रसिद्ध है। यह विष्णु-धर्मसूत्र का भाष्य है। यह भाष्य इन्होंने अपने आश्रयदाता केशव नायक के आग्रह पर लिखा है। इसीलिये इसे केशववैजयन्ती नाम से कहा जाता है। आधुनिक हिंदू कानून की वाराणसी-शाखा में वैजययंती का प्रमुख योग रहा है। वैजयन्ती में लेखक ने अपनी अन्य कृतियों प्रमिताक्षरा, श्राद्धकल्पलता, शुद्धिचन्द्रिका, दत्तकमीमांसा का उल्लेख किया है। नन्दपण्डित ने यद्यपि मिताक्षरा का अनुसरण किया है तथापि स्थान स्थान पर उसके लेखक विज्ञानेश्वर का खण्डन भी किया है। दत्तकमीमांसा नन्दपण्डित की बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है। जिसमें गोद लेने के विषय (एड़ाप्शन) पर पूर्णरूप से विवेचन किया गया है। अंग्रेजी राज्य में प्रिवीकौंसिल तक इसका हवाला दिया जाता रहा है। नन्दपंडित दाक्षिणात्य महाराष्ट्रीय पण्डित थे। इनका उपनाम धर्माधिकारी था। इनके पूर्वज वाराणसी में आये। नन्दपण्डित अनेक आश्रयदाताओं के यहाँ जाते आते थे। इनके वंश के लोग आज भी वाराणसी में है। माण्डलिक के मतानुसार नन्द-पण्डित ने १३ पुस्तकें लिखी हैं। इनकी कृतियों का काल १५९५ ई० से १६३० ई० है।

कमलाकर भट्ट (१६१०–१६४० ई० उ०)

कमलाकर भट्ट वाराणसी के भट्टकुल के प्रसिद्ध भट्टों में गिने जाते हैं। ये नारायण-भट्ट के पौत्र और रामकृष्ण भट्ट के पुत्र थे। कमलाकर भट्ट ने सभी शास्त्रों पर अपनी सिद्ध-लेखनी का उपयोग किया है। ये न्याय-व्याकरण-मीमांसा-वेदान्त-साहित्य-धर्मशास्त्र एवं वैदिक यज्ञों के मर्मज्ञ थे। इन्होंने विवादताण्डव नामक अपने ग्रन्थ में अपनी २१ ग्रन्थों की कृतियों

का भी उल्लेख किया है। मीमांसावार्तिक (तंत्रवार्तिक) एवं शास्त्रदीपिका पर व्याख्या भी लिखी है। इनका शूद्रकमलाकर, विवादताण्डव, निर्णयकमलाकर या निर्णयसिंधु तो बहुत ही प्रसिद्ध है। इनमें भी निर्णयसिन्धु सबसे अधिक प्रसिद्ध है। निर्णयसिन्धु की रचना १६१२ ई० में हुई थी।

नीलकण्ठ भट्ट (१६१०–१६४५ ई० उ०)

नीलकण्ठ भट्ट नारायण भट्ट के पौत्र और शङ्कर भट्ट के कनिष्ठ पुत्र थे। शङ्कर भट्ट एक उद्भट मीमांसक थे। उन्होंने मीमांसा में शास्त्रदीपिका-व्याख्या, विधिरसायनदूषण, मीमांसाबालप्रकाश तथा धर्मशास्त्र में द्वैतनिर्णय, धर्मप्रकाश या सर्वधर्मप्रकाश नामक ग्रन्थ लिखे। नीलकण्ठ ने यमुना और चम्बल के संगम के भरेह नामक स्थान के सेंगर वंशी बुंदेल सरदार भगवन्त देवके सम्मान में भगवन्त भास्कर नाम का धर्मशास्त्रसम्बन्धी निबन्ध भी लिखा, जो १२ मयूखों (संस्कार, आचार काल, श्राद्ध, नीति, व्यवहार, दान, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, प्रायश्चित्त, शुद्धि, शान्ति) प्रकरणों में है। पश्चिमी भारत के कानून में उनका व्यवहारमयूख प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

मित्रमिश्र का वीरमित्रोदय (१६१०–१६४० ई० उ०)

वीरमित्रोदय धर्मशास्त्र के विषयों पर चतुर्वर्गचिन्तामणि के समान एक विशाल निबन्ध है। इसका व्यवहारविवेचन बहुत ही उपयुक्त है। यह कई प्रकाशों में विभाजित है। मित्रमिश्र वादविवाद में नीलकण्ठ से बहुत आगे बढ़े चढ़े हैं। हिन्दू कानून की वाराणसी शाखा में वीरमित्रोदय का बड़ा महत्त्व रहा है। ये हंसपण्डित के पौत्र और परशुराम पण्डित के पुत्र थे। हंसपण्डित गवालियर के निवासी थे।

अनन्तदेव (१६५०–१६८० ई० उ०)

अनन्तदेव ने धर्मशास्त्र पर स्मृतिकौस्तुभ नामक एक निबन्ध लिखा, जिसमें संस्कार, आचार, राजधर्म, दान, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, तिथि और संवत्सर नाम के सात प्रकरण हैं। इसका आधुनिक न्यायालयों में पर्याप्त आदर रहा है। ये महाराष्ट्र सन्त एकनाथ के वंशज थे। बाजबहादुर उनके आश्रयदाता थे।

नागोजि भट्ट १७००–१७५० (ई० उ०)

नागोजि भट्ट एक अद्भुत उत्कृष्ट कोटि के विद्वान थे। यद्यपि उनकी अत्यन्त प्रसिद्धि व्याकरण में है, तथापि उन्होंने साहित्य, धर्मशास्त्र, योग तथा अन्य शास्त्रों पर भी अधिकारपूर्ण लिखा है। उनके आचारेन्दुशेखर. अशौचनिर्णय, तिथीन्दुशेखर, तीर्थेन्दुशेखर, प्रायश्चित्तेन्दुशेखर, श्राद्धेन्दुशेखर, सपिण्डीमञ्जरी, सापिण्ड्यदीपक नाम के धर्मशास्त्रपरक ग्रन्थ हैं। नागोजि भट्ट महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। उनका उपनाम 'काले' था। वे प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित की परम्परा में हुए थे। वे भट्टोजिदीक्षित के पौत्र के शिष्य थे।

बालंभट्ट (१७३०–१८२० ई० उ०)

लक्ष्मी व्याख्या या बालंभट्टी नाम का मिताक्षरा पर भाष्य है। कहा जाता है कि यह लक्ष्मी देवी नामक स्त्री के द्वारा प्रणीत है। बालंभट्टी के प्रारम्भ में विदित होता है कि लक्ष्मी पायगुण्डे की पत्नी थी और मुद्गल गोत्र के खेरडा उपनामक महादेव की पुत्री थी। लक्ष्मी का दूसरा नाम उमा भी था। आचार भाग के अन्त में लिखा है कि इसकी लेखिका लक्ष्मी महादेव और उमा की पुत्री है तथा वैद्यनाथ पायगुण्डे की पत्नी और बालकृष्ण की माता है। लक्ष्मी ने नारियों के स्वत्व की रक्षा करने का खूब प्रयत्न किया है।

काशीनाथोपाध्याय (१७९० ई० उ०)

प्रस्तुत धर्मसिन्धुग्रन्थ काशीनाथोपाध्याय रचित है। इसे धर्मसिन्धुसार या धर्माब्धिसार भी कहते हैं। इसकी रचना १७९० में की गई है। यह निबन्ध दक्षिण भारत में परम प्रामाणिक माना जाता है। काशीनाथोपाध्याय ने मंगलाचरण के बाद स्वयं लिखा है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती निबन्धों को पढ़कर निर्णयसिन्धु में वर्णित विषयों के आधार पर ही इस ग्रन्थ में केवल सारतत्त्व का ही संकलन किया है जिसमें सर्वसाधारण धर्मजिज्ञासु संस्कृतज्ञसमुदाय धर्मनिर्णय कर सकें। सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन परिच्छेदों में विभक्त है जिसमें तीसरा बृहत् है और दो भागों में विभाजित है।

काशीनाथोपाध्याय उद्भट विद्वान थे। वे सोलापुर जिले के पंढरपुर के देवता पाण्डुरङ्ग (विठोबा या विट्ठल) के परम भक्त थे। उन्होंने धर्मसिन्धु के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी लिखे हैं। जैसे—प्रायश्चित्तशेखर, विट्ठल-ऋड्मन्त्रसारभाष्य, वैष्णवतोषणी, वेदस्तुति पर व्याख्या आदि। मराठीकवि मोरोपन्त ने इनका जीवनचरित्र लिखा है। ये महाराष्ट्र ब्राह्मण थे और रत्नागिरि जिले के गोलाकी ग्राम के निवासी थे। ये कवि मोरोपन्त के सम्बन्धी थे। उनकी कन्या आवडी का विवाह कवि मोरोपन्त के द्वितीय पुत्र से हुआ था। अन्त में उन्होंने चतुर्थाश्रम स्वीकार किया और वे सन् १८०५-६ ई० में समाधिस्थ हुए, अस्तु।

इन्हीं का दूसरा नाम बाबा पाध्ये भी था। इनकी विद्वत्ता एवं आचरण की समाज पर बड़ी छाप थी। समाज इन पर पूर्ण विश्वास रखता था और इन्हें अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखता था, जिसके फलस्वरूप 'बाबावाक्यं प्रमाणम्' यह कहावत प्रचलित हो गई, अस्तु।

यहां तक कतिपय स्मृतिकार, उनके व्याख्याकार एवं निबन्धकारों के प्राप्त संक्षिप्त परिचय लिख कर अब धर्मशास्त्र की महत्त्वपूर्ण काल गणना पर भी थोड़ा सा विचार पाठकों के सामने रखता हूं—

काल-गणना में मन्वन्तर, युगादि के पश्चात् संवत्सर (संवत्) का नाम आता है। युग-भेद से सत्ययुग में ब्रह्म-संवत्, त्रेता में वामन संवत्, परशुराम संवत् तथा श्रीरामसंवत्, द्वापर में युधिष्ठिर संवत् और कलि में विक्रम, विजय, नागार्जुन और कल्कि के संवत् प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त अनेक राजाओं तथा सम्प्रदायाचार्यों के नाम पर संवत् चलाये गये हैं। भारतीय-संवतों के अतिरिक्त विश्व में अन्यान्य धर्मों के भी संवत् हैं। फिर भी भारतीय संवत् इन सब से अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय संवत् गणित की दृष्टि से निश्चित किये गये हैं। संवत् चलाने की भारतीय विधि यह रही है कि जिसे अपना संवत् चलवाना हो उसका कर्तव्य होता है कि बहुत पहिले अपने राष्ट्र तथा राष्ट्रवासियों में से प्रत्येक का ऋण अपनी ओर से चुकता करे, जिससे राष्ट्र तथा राष्ट्र का कोई भी नागरिक किसी का ऋणी न रहे। भारत का सर्वमान्य संवत् विक्रम संवत् है। उज्जैन के सम्राट् महाराज विक्रम के इस वैज्ञानिक संवत् के साथ विश्व में प्रचलित ईस्वी-सन पर भी ध्यान देना चाहिये। ईस्वी सन् का मूल रोमन संवत् है। पहिले यूनान में ओलिम्पियद् संवत् था, जिसमें ३६० दिन का वर्ष माना जाता था। रोमनगर की प्रतिष्ठा के दिन से वही रोमन संवत् कहलाने लगा। ईस्वी सन् की गणना ईसामसीह के जन्म के तीन वर्ष बाद से की जाती है। रोमन सम्राट् जूलियस सीजर ने ३६० दिन के बदले ३६५¼ दिन के वर्ष को प्रचलित किया। छठी शताब्दी में डायोनिसीयस ने इस सन् में फिर संशोधन किया, किन्तु फिर भी प्रतिवर्ष २७ पल, ५५ विपल का अन्तर पड़ता ही रहा। सन् १७३९ में यह अन्तर बढ़ते बढ़ते ११ दिन का हो गया। तब पोप ग्रेगरीने आज्ञा निकाली कि 'इस वर्ष २ सितम्बर के पश्चात् ३ सितम्बर को

१४ सितम्बर कहा जाय और जो ईस्वी सन् ४ की संख्या से विभाजित हो सके, उसका फरवरी मास २९ दिन का हो। वर्ष का प्रारम्भ २५ मार्च के स्थान पर १ जनवरी से माना जाय।' इस आज्ञा को इटली, डेनमार्क, हालैण्ड ने उसी वर्ष स्वीकार कर लिया। जर्मनी और स्विजरलैण्ड ने सन् १७५९ में, इंगलैण्ड ने सन् १८०९ में, प्रशिया ने सन् १८३५ में, आयरलैण्ड ने सन् १८३९ में और रूस ने सन् १८५९ में इसे स्वीकार किया।

इतना संशोधन होने पर भी इस ईस्वी सन् में सूर्य की गति के अनुसार प्रतिवर्ष एक पल का अन्तर पड़ता है। सामान्य दृष्टि से यह बहुत थोड़ा अन्तर है, पर गणित के लिये यह एक बड़ी भूल है। ३६०० वर्षों के बाद यही अन्तर एक दिन का हो जायगा और ३६,००० वर्षों के बाद दस दिन का और इस प्रकार यह चालू रहा तो किसी दिन जून का महीना वर्तमान अक्तूबर के शीतल समय में पड़ने लगेगा। ऐसा होने पर गणित की दृष्टि से एक बड़ी भूल होगी। भारत का राष्ट्रीय संवत् तो केवल विक्रम संवत् ही हो सकता है, जिसमें आज तक कोई अन्तर नहीं पड़ा और न आगे पड़ने की संभावना है।

संवत्सर की उत्पत्ति वर्ष गणना के लिये ही होती है। ऋतु, मास, तिथि आदि सब वर्ष के ही अंग हैं, ब्राह्म, पित्र्य, दैव, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र—इन भेदों से नौ प्रकार की वर्ष-गणना होती है। इनमें ब्राह्म, दैव, पित्र्य और प्राजापत्य—ये चार वर्ष कल्प तथा युग संबधी लंबी गणना के काम में प्रयुक्त होते हैं। शेष गौरव (बार्हस्पत्य), सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र वर्ष साधारण व्यवहार के लिये हैं। भारत को छोड़ अन्य देशों में प्रायः मुस्लिम देशों में चान्द्रवर्ष तथा दूसरों में सौर और सावन वर्षों से कालगणना की जाती है। भारत में पांचों प्रकार की लौकिक वर्षगणना का सामञ्जस्य सौर वर्ष में क्षय-वृद्धि करके बनाये रखते हैं। इस प्रकार लौकिक वर्ष गणना सौर वर्ष से होती है। इस सौर के दो भेद हैं सायन और निरयण। इनमें निरयण वर्ष गणना केवल भारत में प्रचलित है। सभी देशों में सायनमत एक-सा माना जाता है। क्योंकि सायनमान दृश्य गणित पर निर्भर है। निरयण गणना केवल यंत्रों के द्वारा ही संभव है; अतः निरयण वर्ष के मान में मतभेद है। विभिन्न ज्योतिषाचार्यों के मतानुसार विभिन्न वर्षों के कालमान की नीचे एक तालिका दी जा रही है। इससे वर्षों का अन्तर समझ में आ सकेगा—

सिद्धान्त	कालमान				
१ सूर्यसिद्धान्त—	वर्ष······३६५ दिन,	१५ घटी,	३१ पल,	३१ विपल,	२४ प्रतिविपल
२ वेदाङ्गज्योतिष	„······ ३६६ „	० „	० „	० „	० „
३ आर्य भट्ट	„······ ३६५ „	१५ „	३१ „	१५ „	० „
४ ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त	„······ ३६५ „	१५ „	३० „	२२ „	३० „
५ पितामह सिद्धान्त	„······ ३६५ „	२१ „	१५ „	० „	० „
६ ग्रहलाघव	„······ ३६५ „	१५ „	३१ „	३० „	० „
७ ज्योतिर्गणित (केतकर)	„······ ३६५ „	१५ „	२२ „	५७ „	० „
८ लॉकियर (नाक्षत्र)	„······ ३६५ „	१५ „	२२ „	५२ „	९ „
९ लॉकियर (मन्द्रकेन्द्र)	„······ ३६५ „	१५ „	३४ „	३४ „	० „
१० लॉकियर (सायन)	„······ ३६५ „	१४ „	३१ „	५६ „	० „
११ टालमी (सायन)	„······ ३६५ „	१४ „	३७ „	० „	० „
१२ कोपरनिकस (सायन)	„······ ३६५ „	१४ „	३९ „	५५ „	० „

सिद्धान्त	कालमान				
१३ मटन (नाक्षत्र)	,,...... ३६५ ,,	१५ ,,	४७ ,,	२ ,,	१० ,,
१४ बेबोलियन (नाक्षत्र)	,,...... ३६५ ,,	१५ ,,	३३ ,,	७ ,,	४० ,,
२५ शियोनिद	,,...... ३६५ ,,	१४ ,,	३३ ,,	३२ ,,	४५ ,,
१६ थेषित	,,...... ३६५ ,,	१५ ,,	२२ ,,	५७ ,,	३० ,,
१७ गोविन्द सदाशिव आपटे	,,...... ३६५ ,,	१५ ,,	२२ ,,	५८ ,,	० ,,
१८ विन्शु गोपाल नवाथे	,,...... ३६५ ,,	१४ ,,	३१ ,,	५३ ,,	२५ ,,
१९ आधुनिक यूरोपियन	,,...... ३६५ ,,	१५ ,,	२२ ,,	५६ ,,	५२ ,,
२० चान्द्र	,,...... ३५४ ,,	२२ ,,	१ ,,	२३ ,,	० ,,
२१ सावन	,,...... ३६० ,,	० ,,	० ,,	० ,,	० ,,
२२ बार्हस्पत्य	,,...... ३६१ ,,	१ ,,	३६ ,,	११ ,,	० ,,
२३ नाक्षत्र	,,...... ३७१ ,,	३ ,,	५२ ,,	३० ,,	० ,,
२४ सौर (जो प्रचलित है)	,,...... ३६५ ,,	१५ ,,	३१ ,,	३० ,,	० ,,

तालिका के वर्षों का यदि कल्पों तक की गणना मे उपयोग किया जाय तो उनमें से सूर्यसिद्धान्त का मान ही भ्रमहीन एवं सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित होता है। सृष्टिसंवत् के प्रारम्भ से यदि आजतक का गणित किया जाय तो सूर्यसिद्धान्त के अनुसार एक दिन का भी अन्तर नहीं पड़ता। चैत्र शुक्ल प्रतिपत् संवत् २००२ (१३ अप्रैल सन् १९४५) को लेकर गणित किया गया तो सूर्यसिद्धान्त के अनुसार उस दिन शुक्रवार आता है, और यही दिन है भी; किन्तु यदि प्रचलित आधुनिक यूरोपिगन गणना से इतना लम्बा गणित हो तो ४,५०,००० दिनों का अन्तर पड़ेगा। क्योंकि सूर्यसिद्धान्त से प्रतिवर्ष इस गणना में साढे आठ पल से भी अधिक का अन्तर है। सूर्यसिद्धान्त के प्राचीन मान से आधुनिक मान का अन्तर ८ पल ३४ विपल का होता है। प्राचीन अयनगति ६० पल और आधुनिक अयनगति ५० पल, २६ विपल होने से गति का अन्तर ९ पल ३४ विपल होता है। इस प्रकार ९ पल ३४ विपल तथा ८ पल, ३४ विपल में केवल १ पल का अन्तर होता है। इस प्रकार सूर्यसिद्धान्त के मान में एक पल कम करके गणित करने से ५००० वर्ष तक के दिनादि सब ठीक मिलते हैं। भारतीय सूर्यसिद्धान्त की पूर्णता सिद्ध करने के लिये इतना ही पर्याप्त है। अतः भारतीय वर्ष गणना के लिये यह अभ्रान्त सिद्धान्त ही प्रयुक्त होना चाहिये।

जब मैं गवालियर दरबार में था तब ई० १९२४ में गणकभास्कर विष्णुगोपाल नवाथे वहाँ पधारे थे और इसी विषय पर उनसे मेरा शास्त्रार्थ तीन दिन तक राज्य के अनेक अधिकारी, मंत्री, अनेक गणितज्ञ, ज्योतिषाचार्यों एवं विभिन्न शास्त्रज्ञों की उपस्थिति में हुआ था, जिसमें सूर्य सिद्धान्त पक्ष की ही विजय सभी ने स्वीकार की थी। आज मेरी अवस्था ९० तक आ पहुंची है, कभी-कभी प्राचीन घटनाओं का स्मरण हो आता है। सभी शारीरिक शक्तियों ने साथ छोड़ दिया है फिर भी प्राचीनता के गुण गौरव के प्रति आकर्षण, शास्त्रप्रामाण्य के प्रति विश्वास और विद्वानों के प्रति श्रद्धा बढ़ती ही जा रही है।

अन्त में हम उन महामहिमशाली धर्मशास्त्र धुरन्धर विद्वान्–भारतरत्न महामहोपाध्याय पी० व्ही० काणे महोदय तथा ज्योतिषशास्त्रधुरन्धर विद्वान् गणितज्ञप्रवर श्री देवकीनन्दन जी खेडवाल महोदय तथा पण्डितप्रवर श्री गोविन्दनारायणजी आसोपा महोदय को भूरि-भूरि हार्दिक धन्यवाद देते हुए सदैव उनकी आयुरारोग्य प्राप्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ, इन विद्वत्प्रवरों ने केवल धार्मिक समाज को ही नहीं, विचारसिक एवं धर्मशास्त्र के अभ्यासी तथा अनुसन्धाताओं के

लिये भी ऐसा प्रशस्त मार्ग बना दिया है जिसे देखकर गुणग्राही किस विद्वान् का हृदय गद्गद न हो उठेगा। इन विद्वानों ने अपने-अपने क्षेत्र में श्लाघनीय घोर परिश्रम किया है। सचमुच धर्मशास्त्र का इतिहास एवं विक्रमसंवत् पर कल्याण में प्रकाशित लेख तथा धर्मलक्षण और रहस्य आदि लेख पठनीय एवं मननीय हैं। बार-बार पढ़ने और सुनने से संस्कार सुदृढ़ होते हैं पश्चात् वे कृति में उतरते हैं इसलिये प्रचार-प्रसार की आवश्यकता होती है। धर्मशास्त्र का इतिहास निर्धनता के कारण जनसाधारण को सुलभ नहीं है, इसी प्रकार मासिक पत्रिका में एक बार प्रकाशित हुए लेख से भी समाज उतना लाभान्वित नहीं हो पाता जितना होना चाहिये। इन सब बातों की ओर ध्यान देकर सर्वसाधारण विद्वानों में उसके प्रचारार्थ प्रस्तुत ग्रन्थोपकारक अंश को यथावस्थित रूप में दे दिया है, जिससे विद्यारसिक समाज लाभान्वित हो सके। 'स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः' भारवि की इस उक्ति के अनुसार भारतरत्न म० म० पाण्डुरंग वामन काणे और ज्योतिर्विद्याधुरंधर पण्डितप्रवर श्री देवकीनन्दन जी खेडवाल एवं पं. प्र. श्री गोविन्दनारायण जी आसोपा को पुनः पुनः धन्यवाद अर्पण कर अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहा हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के व्याख्याकार, 'देवरिया' मण्डलान्तर्गत 'मध्यपल्ली' के राज-गुरु तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व धर्मशास्त्राध्यापक बलियामण्डलान्तर्गत 'मुनि छपरा' ग्रामनिवासी काशी के सुप्रतिष्ठित कर्मठ विद्वान् धर्मशास्त्राचार्य श्री वसिष्ठदत्त जी मिश्र बहुशः धन्यवादार्ह हैं, जिन्होंने इस महान् लोकप्रिय धर्मशास्त्र की सरल सुबोध हिन्दी व्याख्या लिखकर जनसाधारण का बड़ा ही उपकार किया है। तथा पं श्री सुदामा मिश्रजी के द्वारा लिखी गई 'सुधा' नामक टिप्पणी भी प्रशंसनीय है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के अधिकारी वर्ग ने अनेक प्रकार की असुविधाओं के होते हुए भी इस श्रेष्ठ निबन्ध ग्रन्थ की सर्वाङ्गपूर्णता के लिये जो श्रम एवं व्यय किया है, वह स्मरण की वस्तु है और वे बहुशः धन्यवाद के पात्र हैं।

इस प्रस्तावना के लेखन में मेरे चि० पुत्र गजाननशास्त्री, मुसलगांवकर, प्राध्यापक : संस्कृत कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने जो मेरे वचनों को राष्ट्रभाषा हिन्दी में सुलेखबद्ध किया है, उसके लिये वह भी आशीर्वाद का भाजन है, काशीपति भगवान् शंकर उसे सर्व सौख्य प्रदान कर चिरंजीवी रखें, यही हार्दिक अभिलाषा है। इति शम्।

वाराणसी,
श्रीगणेश चतुर्थी
वि० सं० २०२४

शुभेच्छु—
सदाशिवशास्त्री मुसलगाँवकर

परिच्छेद-सूची

विषय-सूची

द्वितीय परिच्छेद

संस्कार प्रकरण

आह्निक प्रकरण

देवप्रतिष्ठा प्रकरण

तृतीय परिच्छेद : उत्तरार्ध

श्राद्ध प्रकरण

आशौच प्रकरण

धर्मसिन्धुः

'धर्मदीपिका' विशदहिन्दीव्याख्योपेतः
'सुधा' टिप्पण्या च विभूषितः

प्रथमः परिच्छेदः

श्रीविट्ठलं सुकरुणार्णवमाशुतोषं दीनेष्टपोषमघसंहतिसिन्धुशोषम्।
श्रीरुक्मिणीमतिमुषं पुरुषं परं तं वन्दे दुरन्तचरितं हृदि संचरन्तम् ॥१॥

मेशमुमेशमहर्पतिमम्बां दुर्गां गुरुं गिरामधिष्ठात्रीम्।
पितरौ मरुत्तनूजं दुरितघ्नं श्रीगजाननं वन्दे ॥
धर्मसिन्धोरियं टीका शुभा राष्ट्रगिरा मया।
वशिष्ठदत्तमिश्रेण सुखबोधाय निर्मिता ॥

धर्मसिन्धु के रचयिता श्री काशीनाथ जी भगवान् कृष्ण के द्वितीय रूप विट्ठल भगवान् को नमस्कारात्मक मंगलाचरण द्वारा प्रणति-निवेदन करते हुए कहते हैं कि श्री विट्ठल भगवान् कृपा के समुद्र शीघ्र प्रसन्न होने, दीन जनों की इच्छा पूर्ण करने, पापसमूह रूप समुद्र को सुखाने श्री रुक्मिणी के बुद्धि को चुराने, परम पुरुष और सबके हृदय में निवास करने वाले हैं। ऐसे अनन्त चरित भगवान् विट्ठल की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

वन्दे प्रतिघ्नन्तमघानि शङ्करं धत्तां स मे मूर्ध्नि दिवानिशं करम्।
शिवां च विघ्नेशमथो पितामहं सरस्वतीमाशु भजेऽपि तामहम् ॥ २ ॥

श्रीलक्ष्मीं गरुडं सहस्रशिरसं प्रद्युम्नमीशं कपिं
श्रीसूर्यं विधुभौमविद्गुरुकविच्छायासुतान् षण्मुखम्।
इन्द्राद्यान् विबुधान् गुरूंश्च जननीं तातं त्वनन्ताभिधं
नत्वार्यान् वितनोमि माधवमुखान् धर्माब्धिसारं मितम् ॥ ३ ॥

श्रीशङ्कर भगवान् को प्रणाम करता हूँ जो पापों को दूर करने वाले हैं। वह मेरे मस्तक पर रात दिन अपना वरद हाथ रखें। पार्वती, गणेश, ब्रह्मा तथा सरस्वती की मैं आराधना करता हूँ। (मैं ग्रन्थकार) श्री लक्ष्मी, गरुड, सहस्र शिर वाले शेष, कामदेव, शंकर हनुमान, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, कार्तिकेय, इन्द्र, आदि देवता, गुरु, माता और अनन्त नाम के पिता तथा माधव आदि आचार्यों को प्रणाम करके इस धर्मसिन्धु-सार नामक ग्रंथ का विस्तार से वर्णन करता हूँ ॥ २-३ ॥

दृष्ट्वा पूर्वनिबन्धान्निर्णयसिन्धुक्रमेण सिद्धार्थान्।
प्रायेण मूलवचनान्युज्झित्य लिखामि बालबोधाय ॥ ४ ॥

अपने से पूर्ववर्ती निबन्धों को पढ़ कर निर्णयसिन्धु में वर्णित विषयों के आधार पर प्रायः मूलवचनों का उल्लेख किये बिना ही इस ग्रन्थ में जिज्ञासुओं के लिए केवल सारतत्त्व ही लिख रहा हूँ ॥४॥

तत्र [1]कालः षड्विधः—वत्सरः अयनम् ऋतुः मासः पक्षो दिवस इति । [2]वत्सरः पञ्चधा—चान्द्रः सौरः सावनो नाक्षत्रो बार्हस्पत्य इति । शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तैः चैत्रादिसंज्ञैर्द्वादशभिर्मासैः चतुःपञ्चाशदधिकशतत्रयदिनैः, सति मलमासे त्रयोदशभिर्मासैश्चान्द्रो वत्सरः । चान्द्रस्यैव प्रभवो विभवः शुक्ल इत्याद्याः [3]षष्टिसंज्ञाः । मेषादिषु द्वादशराशिषु रविभुक्तेषु पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रयदिनैः सौरो वत्सरः संपद्यते । षष्ट्युत्तरशतत्रयदिनैः सावनः । वक्ष्यमाणैर्द्वादशभिर्नाक्षत्रमासैर्नाक्षत्रो वत्सरः । स च चतुर्विंशत्यधिकशतत्रयदिनैः स्यात् । मेषाद्यन्यतमराशौ बृहस्पतिना भुक्ते बार्हस्पत्यः स च एकषष्ट्यधिकशतत्रयसङ्ख्यदिनैर्भवति । कर्मादौ संकल्पे [4]चान्द्रवत्सर एव स्मर्तव्यो नान्यः ।

काल ६ प्रकार का है—वत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष और दिवस ।

---

१. काल दो प्रकार का है—नित्य और जन्य । इनमें नित्य काल परमेश्वर है—

नित्यो जन्यश्च कालो द्वौ तदाद्यः परमेश्वरः ।
सोऽवाङ्मनसगम्योऽपि देही भक्तानुकम्पया ।

इसका विवेचन विष्णुधर्मोत्तर में इस प्रकार किया गया है—

अनादिनिधनः कालो रुद्रः सङ्कर्षणः स्मृतः । कलनात् सर्वभूतानां स कालः परिकीर्तितः ॥
कर्षणात् सर्वभूतानां स तु सङ्कर्षणः स्मृतः । सर्वभूतशमित्वाच्च सः रुद्रः परिकीर्तितः ॥
अनादिनिधनत्वेन स महान् परमेश्वरः । इति ।

श्रौत-स्मार्त-कर्मोपयोगी वर्ष-मासादि रूप कालजन्य काल है । तैत्तिरीयशाखा के स्मृतिप्रामाण्याधिकरण में इस कालोत्पत्ति का वर्णन है—'सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषावधि । कला मुहूर्ताः काष्ठाश्चाहोरात्राश्च सर्वशः ॥ अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश्च कल्पन्ताम्' इति । यह जन्यकाल परमेश्वराख्य नित्य काल से उत्पन्न हुआ है । तथा हि मनुः—'कालं कालविभक्ति च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा । सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥' इति ।

२. जिसमें अयन, ऋतु और मासादि हों वह काल-विशेष वत्सर (वर्ष) है । कालमाधव—'संवत्सरो' नाम अयनाद्यवयवयुतोऽवयवी कालविशेषः स सम्यग् वसन्त्यस्मिन् अयनर्तुमासादय इति व्युत्पत्तेः ।' चान्द्रवत्सर के अवान्तर पांच भेद हैं – संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर । ब्रह्मवैवर्त—'संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः । इदावत्सरस्तृतीयश्चतुर्थश्चानुवत्सरः ॥ इद्वत्सरः पञ्चमस्तु तत्संघो युगसंज्ञकः ।' इनके पूज्य अधिष्ठात्री देवता ये हैं—'संवत्सरः स्मृतो वह्निस्तथाऽर्कः परिवत्सरः । इदापूर्वस्तथा सोमो ह्यनुपूर्वः प्रजापतिः ॥ इत्पूर्वश्च तथा प्रोक्तो देवदेवो महेश्वरः । तेषां मण्डलविन्यासः प्राग्वदेव विधीयते ॥ प्राग्वत्स्यात्पूजनं कार्यं होमः कार्यो यथाविधि ।' इति । चान्द्र प्रभवादि क्षयान्त साठ वर्षों में बारह पंचक होते हैं और पाँच-पाँच का एक युग होता है—'चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चके पञ्चके युगे ।' 'ब्रह्मसिद्धान्त में तीन ही प्रकार का संवत्सर कहा है – चान्द्रसावनसौराणां मासानां तु प्रभेदतः 'चान्द्रसावनसौराः स्युस्त्रयः संवत्सरा अमी ॥' इति ।

३. प्रभव आदि संवत्सरों के साठ नाम द्वितीयपरिच्छेद के अंक में अंकित हैं ।

४. सभी श्रौत-स्मार्त-कर्मों में चान्द्रवर्ष का ही प्रयोग करना चाहिये । आर्ष्टिषेण—'स्मरेत् सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा । नान्यं यस्माद् वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता ॥' इति ।

इनमें वर्ष पाँच प्रकार का है—चान्द्र, सौर, सावन, नाक्षत्र और बार्हस्पत्य। चान्द्रवर्ष—शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या तक, चैत्र आदि नाम वाले बारह महीनों के तीन सौ चौवनदिनों का, मलमास होने पर तेरह महीने का होता है। चान्द्रवर्ष का ही प्रभव विभव शुक्ल इत्यादि साठ नाम हैं। सौरवत्सर—मेष आदि बारह राशियों को सूर्य भोग चुके हों तब तीन सौ पैंसठ दिनों का होता है। सावन वर्ष—तीन सौ साठ दिनों का होता है। नाक्षत्रवर्ष—आगे कहे जाने वाले बारह नाक्षत्र मास का, वह तीन सौ चौबीस दिन का होता है। बार्हस्पत्यवर्ष—मध्यम राशि में बृहस्पति से भोग करने पर, वह तीन सौ एकसठ दिन का होता है। कर्म के आदि में संकल्प में चान्द्रवर्ष का ही स्मरण करना चाहिए अन्य का नहीं।

[1]अयनं द्विविधम्—दक्षिणमुत्तरं च। सूर्यस्य कर्कसंक्रान्तिमारभ्य षड्राशिभोगेन दक्षिणम्। मकरसंक्रान्तिमारभ्य राशिषट्कभोगेनोत्तरायणम्।

अयन दो प्रकार का है—दक्षिण और उत्तर। सूर्य की कर्क संक्रान्ति से छ राशि के भोग से दक्षिणायन और मकर संक्रान्ति से छ राशि के भोग से उत्तरायण होता है।

[2]ऋतुर्द्विविधः—सौरश्चान्द्रश्च। मीनारम्भो मेषारम्भो वा। सूर्यस्य राशिद्वयभोगात्मको वसन्तादिषट्संज्ञकः सौरऋतुः। चैत्रमारभ्य मासद्वयात्मको वसन्तादिषट्संज्ञकश्चान्द्रः। मलमासे तु किंचिदूननवतिसंख्यैर्दिनैश्चान्द्रऋतुः। श्रौतस्मार्तादौ [3]चान्द्रर्तुस्मरणं प्रशस्तम्।

ऋतु दो प्रकार का है—सौर और चान्द्र। मीन तथा मेष से आरम्भ करके सूर्य को दो राशि भोग करने पर वसन्त आदि नामक छ सौरऋतु होता है। चैत से लेकर दो-दो महीने का वसन्त आदि छ चान्द्रऋतु होता है। मलमास में तो कुछ कम नब्बे दिन का चान्द्रऋतु होता है। श्रौत स्मार्त कर्मों में चान्द्रऋतु का कथन उत्तम होता है।

[4]मासश्चतुर्धा—चान्द्रः सौरः सावनो नाक्षत्र इति। शुक्लप्रतिपदादिर-

---

१. सूर्य का तीन तीन ऋतुओं पर दक्षिण और उत्तर दिशाओं की ओर जाना 'अयन' है—अयते यात्यनेन ऋतुत्रयेण सूर्यो दक्षिणाशामुत्तराशाञ्चेति ऋतुत्रयम् अयनम्।' तैत्तिरेयश्रुतिः—'तस्मादादित्यः षण्मासान् दक्षिणेनैति षडुत्तरेण" इति। उत्तरायण और दक्षिणायन में सत्यव्रतने देवताओं की प्रतिष्ठा का विधान और निषेध बतलाया—'देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ। दक्षिणाशामुखे कुर्वन् न तत्फलमवाप्नुयात्॥' वैखानससंहिता में दक्षिणायन में भी उग्रदेवताओं की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में कहा—'मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः। महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने॥' इति।

२. जो 'अशोकपुष्पविकासादि असाधारण चिह्न को प्राप्त करे वह दोमासका कालविशेष वसन्तादि ऋतु है—'इयर्ति गच्छति अशोकपुष्पविकासाद्यसाधारणलिङ्गमिति वसन्तादिकालविशेष-ऋतु।' इति माधवः। वसन्तादि-ऋतु अनुक्रम से चैत्रादि-मास-द्वयात्मक होता है—'द्वन्द्वमुपदधाति तस्माद् द्वन्द्वमृतवः।' 'मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू, नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू, इषश्चोर्जश्च शारदावृतू, सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू, तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू।" इति।

३. श्रौत-स्मार्त-सम्बन्धी कार्यों में चान्द्रऋतु का ग्रहण करना चाहिये। त्रिकाण्डमण्डन—'श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु। तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम्॥' इति।

४. चन्द्रमा के वृद्धि-क्षय से जो परिमित हो उसे मास कहते हैं। 'मस परिमाणे' इति धातु से मासशब्द निष्पन्न हुआ। 'मस्यन्ते परिमीयन्ते स्वकालाः वृद्धिहानितः। मासा एते स्मृता मासा-

-मान्तः कृष्णप्रतिपदादिः पूर्णिमान्तो वा चान्द्रो मासः। तत्रापि शुक्लादिर्मुख्यः कृष्णादिर्विन्ध्योत्तर एव ग्राह्यः। अयमेव चैत्रादिसंज्ञकः कर्मादौ स्मर्तव्यः। केचिन्मीनराशिमारभ्य सौराणां चैत्रादिसंज्ञामाहुः। अर्कसंक्रान्तिमारभ्योत्तर-संक्रान्त्यवधिः सौरो मासः। त्रिंशद्दिनैः सावनः। चन्द्रस्याश्विन्यादिसप्तविंशति-नक्षत्रभोगेन नाक्षत्रो मासः। प्रतिपदादिपौर्णिमान्तः शुक्लपक्षः। प्रतिपदादि-दर्शान्तः कृष्णपक्षः। दिवसः षष्टिघटिकात्मकः। इति कालनिर्णयोद्देशः॥ १॥

मास चार प्रकार का है—चान्द्र सौर सावन और नाक्षत्र। शुक्ल प्रतिपदा से अमावस्या तक या कृष्ण प्रतिपदा से पूर्णिमा तक चान्द्रमास होता है। उसमें भी शुक्लादि मास मुख्य हैं। कृष्णादि मास तो विन्ध्य से उत्तर ही ग्रहण योग्य है। यही चैत्रादि नामक मास कर्मादि में स्मरणीय है। कुछ लोग मीन राशि से प्रारम्भ कर सौरमासों की चैत्रादि संज्ञा कहते हैं। सूर्य की संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक सौरमास होता है। तीस दिन का सावनमास होता है। अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्र चन्द्रमा के भोग से नाक्षत्रमास होता है। प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त कृष्णपक्ष होता है। दिन साठ घड़ी का होता है। कालनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ संक्रान्तिनिर्णयः

मेषे सूर्यसंक्रान्तौ[1] प्रागूर्ध्वं च पञ्चदश पञ्चदश घटिकाः पुण्यकालः। दश

त्रिंशत्तिथिसमन्विताः॥' इसी प्रकार 'सूर्यस्य राशिगतिर्यत्र परिमीयते स सौरः। अहोरात्राणां त्रिंशत्संख्या परिमीयते यत्र स सावनः। सप्तविंशतिसंख्या परिमीयते अनेनेति नाक्षत्रः।'

कर्मविशेष में ज्योतिर्गार्ग्योक्त मास-विशेष—'सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः। आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते॥' यहां 'पितृकार्ये च' में चशब्द से देवकार्य में भी इसकी प्रशस्ति है—'दैवे कर्मणि पित्र्ये च मासश्चान्द्रमसः स्मृतः।' इति।

दर्शान्त और पूर्णिमान्त विकल्प से दो प्रकार का मास है। ब्रह्मसिद्धान्त—'अमावास्यापरिच्छिन्नो मासः स्याद् ब्राह्मणस्य तु। संक्रान्तिपौर्णमासीभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः।' इति।

धर्मसिन्धुकार ने पक्ष का विवेचन नहीं किया फिर भी ग्रन्थान्तर में इसका विवेचन यों है—'देवकार्यार्थं पितृकार्यार्थं वा पद्यते परिगृह्यते यः कालविशेषः स पक्षः। अथवा चन्द्रस्य पञ्चदशानां कलानामापूरणं क्षयो वा यस्मिन् परिगृह्यते स पक्षः।' 'पक्ष परिग्रहे' इस धातुसे पक्षशब्द निष्पन्न हुआ है। वह पक्ष दो प्रकार का है—शुक्ल और कृष्ण। जिसमें चन्द्रमा की कला की वृद्धि हो वह शुक्लपक्ष और जिसमें चन्द्रकलाका क्षय हो वह कृष्णपक्ष। इसका उपयोग तैत्तरीयहोतृब्राह्मण में बतलाया—'शुभाशुभत्वहेतुत्वबोधनादाभ्युदयिकदेवकार्यादौ शुक्लपक्षः प्रशस्तः। आभिचारिके कर्मणि पित्र्ये कर्मणि च कृष्णपक्षः प्रशस्तः।

१. मेषादि बारह राशियों में सूर्य का क्रम से मेषादि-पूर्व राशि से दूसरे राशि में प्रवेश करना ही संक्रान्ति कहलाती है 'मेषादिषु द्वादशराशिषु क्रमेण संचरतः सूर्यस्य पूर्वस्माद्राशेरुत्तरराशौ संक्रमणं प्रवेशः संक्रान्तिः। उन उन राशियों के नाम से संक्रान्ति के नाम हैं। वे बारह राशियां हैं—मेष वृष मिथुन कर्क सिंह कन्या तुला वृश्चिक धन मकर कुम्भ और मीन। एक राशि से दूसरे राशि में सूर्य का प्रवेशकाल अतिसूक्ष्म है। इतने अल्प समय में स्नान-दानादि-विधान का अनुष्ठान असम्भव है अतः कर्तव्य कर्म के अनुष्ठानार्थ तत्सन्निहित पूर्वोत्तरकाल पुण्य-जनक होने के कारण ग्राह्य है। इसका स्पष्टीकरण देवलने किया है—'संक्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयः पिशितेक्षणैः। मुख्यालाभे तु गौणेऽपि कार्या दानादिकाः क्रियाः॥' 'मुख्यालाभे तु गौणेऽपि कार्या दानादिकाः क्रिया' इसका पाठान्तर कालमाधव में यों है—'तद्योगादप्यधश्चोर्ध्वं त्रिंशन्नाड्यः पवित्रिताः।' महर्षि मरीचि ने बतलाया

दशेत्येके। वृषे पूर्वाः षोडश, मिथुने पराः षोडश, कर्के पूर्वास्त्रिंशत्, सिंहे पूर्वाः षोडश, कन्यायां पराः षोडश, तुलायां प्रागूर्ध्वं च पञ्चदश पञ्चदश, दश दशेत्येके; वृश्चिके पूर्वाः षोडश, धनुषि पराः षोडश, मकरे पराश्चत्वारिंशत्, कुम्भे पूर्वाः षोडश, मीने पराः षोडश। घटिकाद्वयाद्यल्पदिनशेषे मिथुनकन्याधनुर्मीनेष्वपि मकरेऽपि पूर्वा एव पुण्याः।

मेष की संक्रान्ति में पहले और पीछे पन्द्रह-पन्द्रह घड़ी का पुण्यकाल होता है। कुछ लोग दश-दश घड़ी का पुण्यकाल कहते हैं। वृष की संक्रान्ति में पहले की सोलह घड़ियाँ, पुण्यकाल होती हैं। मिथुन में बाद की सोलह घड़ियाँ, कर्क में पहले की तीस घड़ियाँ, सिंहमें पहले की सोलह घड़ियाँ, कन्या में बाद की सोलह घड़ियाँ, तुला में पहले और पीछे की पन्द्रह-पन्द्रह घड़ियाँ, पुण्यकाल है। कुछ लोग पहले पीछे दश-दश घड़ी का पुण्यकाल मानते हैं। वृश्चिक में पहले की सोलह घड़ी, धनुष में बाद की सोलह घड़ी, मकर में बाद की चालीस घड़ी, कुम्भ में पहली सोलह घड़ी और मीन में अन्त की सोलह घड़ी पुण्यकाल है। दो घड़ी आदि से कम दिन रहने पर मिथुन, कन्या, मीन और धनुष की संक्रान्ति में तथा मकर में भी पहले ही पुण्यकाल होता है।

प्रभाते घटिकाद्वयाद्यल्पकाले वृषसिंहवृश्चिककुम्भेष्वपि कर्केऽपि परा एव पुण्याः। प्रभाते कर्कसंक्रान्तौ पूर्वदिने पुण्यमित्येके।

प्रातःकाल दो घड़ी आदि से कम समय में वृष सिंह वृश्चिक और कुम्भ में तथा कर्क में भी अन्त की घड़ियाँ ही पुण्यकाल हैं। प्रातःकाल में कर्कसंक्रान्ति होने पर कोई पहले दिन पुण्यकाल कहते हैं।

[१]रात्रौ संक्रमे मध्यरात्रादर्वाक् संक्रान्तौ पूर्वदिनोत्तरार्धं पुण्यम्। मध्यरात्रात्परतः संक्रान्तौ परदिनस्य पूर्वार्धं पुण्यम्। निशीथमध्य एव संक्रान्तौ दिनद्वयेपि पूर्वदिनोत्तरार्धं परदिनपूर्वार्धं च पुण्यम्। इदं मकरकर्कातिरिक्ते सर्वत्र रात्रिसंक्रमे ज्ञेयम्।

रात में संक्रान्ति होने पर मध्यरात्रि से पहले पूर्वदिन के उत्तरार्द्ध में पुण्य होता है। मध्यरात्रि के बाद संक्रान्ति होने पर दूसरे दिन के पूर्वार्द्ध में पुण्य होता है। ठीक आधी रात में संक्रान्ति होने पर पहले दिन का उत्तरार्द्ध और परदिनका पूर्वार्द्ध पुण्य होता है। यह बात मकर और कर्क को छोड़कर सब रात्रि के संक्रान्ति में जानना चाहिए।

अयने तु मकरे रात्रिसंक्रमे सर्वत्र परदिनमेव पुण्यम्। रात्रौ कर्कसंक्रान्तौ पूर्वदिनमेव पुण्यम्। सूर्यास्तोत्तरं घटिकात्रयं सायंसंध्या। तत्र मकरसंक्रमे

कि उस सूक्ष्म संक्रमणकाल के पूर्व और उत्तर सोलह सोलह घड़ी साधारणतः पुण्यकाल होता है—'नाड्यः षोडश पूर्वेण संक्रान्तेरुत्तरेण च। राहोर्दर्शनमात्रेण पुण्यकालः प्रकीर्तितः ॥' इति।

१.वृद्धवसिष्ठः—'अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम्। रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः ॥ अर्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरि क्रिया। ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात् प्रहरद्वयम्। पूर्णे चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥' इति। वृद्धगार्ग्य ने मकर में भिन्न नियम सूचित किया—'यदाऽस्तमनवेलायां मकरं याति भास्करः। प्रदोषे चार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि ॥ अर्धरात्रे तदूर्ध्वे वा संक्रान्तौ दक्षिणायने। पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥' अर्थात् रात्रि के किसी भी अंश में कर्क संक्रान्ति हो तो पूर्वदिन और रात्रि के किसी भी अंश में मकरसंक्रान्ति हो तो परदिन में पुण्य काल होता है।

पूर्वदिनं पुण्यम्। सूर्योदयात् प्राक् घटिकात्रयं प्रातःसंध्या। तत्र कर्कसंक्रान्तौ परदिनं पुण्यमिति संध्याकाले विशेषो ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धः।

अयन में तो मकर की संक्रान्ति रात में हो तो सब जगह दूसरे ही दिन पुण्य होता है। सूर्यास्त के बाद तीन घड़ी की सायंसन्ध्या होती है। मकर की संक्रान्ति होने पर पहले दिन पुण्य होता है। सूर्योदय से पहले तीन घड़ी की प्रातःसन्ध्या होती है। इसमें कर्कसंक्रान्ति होने पर दूसरे दिन पुण्य होता है। संन्ध्याकाल की संक्रान्ति में विशेष बातें ज्यौतिषशास्त्र में प्रसिद्ध है।

अथ दानम्—[1]'मेषे मेषदानम्, वृषे गोदानम्, मिथुने वस्त्रान्नादि देयम्, कर्के घृतधेनुः, छत्रं सुवर्णं च सिंहे, कन्यायां गृहं वस्त्रं च, तुलायां तिला गोरसाश्च देयाः, वृश्चिके दीपः, धनुषि वस्त्रं यानं च, मकरे काष्ठानि अग्निश्च, कुम्भे गौर्जलं तृणं च, मीने भूमिर्मालाश्च देयाः। एवमन्यान्यपि दानानि द्रष्टव्यानि[2]।

मेष की संक्रान्ति में भेड़ों का दान, वृष में गोदान, मिथुन में वस्त्र अन्न आदि का दान, कर्क में घृतधेनु का दान, सिंह में छाता और सुवर्ण का दान, कन्या में घर और वस्त्र का दान, तुला में तिल और गाय के दूध दही घी आदि का दान, वृश्चिक में दीपदान, धनु में वस्त्र और सवारी का दान, मकर में लकड़ी और अग्नि का दान, कुम्भ में गाय के लिए जल और तृण का दान, मीन में भूमिदान और माला का दान करना चाहिए। इसी प्रकार और दान भी होते हैं।

अयनसंक्रान्तौ मेषतुलासंक्रान्तौ च पूर्वं त्रिरात्रमेकरात्रं वोपोष्य स्नानदानादि कार्यम्। चरमोपोषणं संक्रान्तिमत्यहोरात्रे पुण्यकालवत्यहोरात्रे वा यथा पतेत्तथा कार्यम्। अयमुपवासः पुत्रवद्गृहस्थभिन्नेन पापक्षयकामेन कार्यः काम्यो न तु नित्यः।

अयन संक्रान्ति में तथा मेष और तुलासंक्रान्ति में भी संक्रान्ति से पहले तीन रात्रि या एक रात्रि उपवास करके दान आदि करना चाहिए। अन्तिम उपवास संक्रान्ति वाले दिन रात में या पुण्यकाल वाले दिन रात में जैसे पड़े वैसा करना चाहिए। यह उपवास पुत्र वाले गृहस्थ को छोड़कर पाप के नाश की इच्छा से करना चाहिए, यह काम्य है नित्य नहीं है।

सर्वसंक्रान्तिषु पिण्डरहितं [3]श्राद्धं कार्यम्। अयने तु नित्यं यथावत्तत्तत्संक्रान्तिषु दानादिकं कर्तव्यम्। तथैव ताभ्यः पूर्वमयनांशप्रवृत्तौ तत्तत्संक्रान्त्युचितस्नानदानादिकं कर्तव्यम्। अयनांशा ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धाः। ते चेदानीं द्वादशाधिकसप्तदशशतसंख्याके शालिवाहनशके एकविंशतिरयनांशा

---

१. शातातपः—'संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः। तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि॥ रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यदि मानवः। सप्तजन्मसु रोगी स्याद् दुःखभागीह जायते॥' इति।

२. मत्कृत दानदीपिका में अन्यान्य दान तथा मेष-मकर-संक्रान्ति की तरह अवशिष्ट दस संक्रान्तियों में किन-किन अन्नों का दान करना चाहिये इसका विवेचन वहाँ देखें।

३. हेमाद्रौ—'श्राद्धं संक्रमणे भानोः प्रशस्तं पृथिवीपते।' अपरार्के—'आदित्यसंक्रमश्चैव विशेषेणायनद्वयम्। व्यतीपातोऽथ जन्मर्क्षं चन्द्रसूर्यग्रहस्तथा॥ एतांस्तु श्राद्धकालान् वै काम्यानाह प्रजापतिः।' इति।

इत्येकविंशतितमे दिने पूर्वमयनांशपर्वकाल इति पर्यवसन्नोऽर्थः। एवं न्यूनाधिकशके ऊह्यम्।

सब संक्रान्तियों में पिण्ड रहित श्राद्ध करना चाहिए। दोनों अयनों में तो नित्यश्राद्ध कर्तव्य है और सभी दानादि भी कर्तव्य है। उसी प्रकार संक्रान्ति से पहले अयनांश के प्रवृत्त होने पर उन उन संक्रान्तियों के योग्य स्नान दान आदि करना चाहिए। अयनांश ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध है। वे अयनांश इस समय सत्रह सौ बारह शालिवाहन शक में इक्कीस अयनांश हैं। इसलिए इक्कीसवें दिन के पहले अयनांश पर्वकाल है यह स्पष्ट हुआ। इसी प्रकार कम अधिक की कल्पना शक में करनी चाहिए।

वृषसिंहवृश्चिककुम्भेषु संक्रान्तिर्विष्णुपदसंज्ञा[1]। मिथुनकन्याधनुर्मीनेषु संक्रान्तिः षडशीतिसंज्ञा। मेषतुलयोर्विषुवसंज्ञा। कर्कमकरयोरयनसंज्ञा। एतासु चतुर्विधासु उत्तरोत्तरं पुण्याधिक्यम्।

वृष सिंह वृश्चिक और कुम्भ की संक्रान्तियों का विष्णुपद नाम है। मिथुन, कन्या, धनु और मीन की संक्रान्तियों की षडशीति संज्ञा है। मेष और तुला की संक्रान्ति का विषुव नाम है। कर्क और मकर की संक्रान्ति का अयन नाम है। इन चारों प्रकार की संक्रान्तियों में उत्तरोत्तर अधिक पुण्य है।

मङ्गलकृत्येषु सर्वसंक्रान्तिष्वविशेषेण पूर्वतः परतश्च षोडशघटिकास्त्याज्याः। चन्द्रादिसंक्रान्तिषु तु पूर्वत्र परत्र च मिलित्वा क्रमेण द्वे नव द्वे चतुरशीतिः षट्सार्धशतं च घटिकास्त्याज्याः।

मंगलकार्यों में सभी संक्रान्तियों में पहले और बाद की सोलह घड़ियाँ वर्ज्य हैं। चन्द्रादि संक्रान्तियों में तो पहले और दूसरे दिन मिल कर क्रम से दो नव दो चौरासी और छ एक सौ पचास घड़ियां छोड़ने योग्य हैं।

रात्रौ संक्रमणे ग्रहणवद्रात्रावेव स्नानदानादिकं कर्तव्यमिति केचित्। रात्रौ संक्रमणेपि दिवैव स्नानादिकं न तु रात्राविति तु सर्वसंमतम्। बहुदेशाचारश्चैवम्।

---

१. मेषादि बारह राशियों में चार त्रिक हैं। उनमें एक एक में क्रम से चर-स्थिर-द्विस्वभावसंज्ञक तीन राशियां हैं। जैसे चारो त्रिकों में जो मध्यम—वृष-सिंह-वृश्चिक कुम्भ नाम के चार राशि हैं, वे स्थिर संज्ञक हैं और इन चारों की संज्ञा 'विष्णुपद' या 'विष्णुपदी' है। जो अन्तिम—मिथुन, कन्या-धनु मीन नाम के चार राशि हैं, वे द्विस्वभाव संज्ञक हैं और इन चारों की संज्ञा 'षडशीतिमुख' है। और जो प्रथम—मेष-कर्क तुला-मकर नाम के चार राशि हैं, वे चल संज्ञक हैं इनमें मेष-तुला की संज्ञा 'विषुव' तथा कर्क-मकर की संज्ञा 'अयन' है। इसका स्पष्टीकरण वृद्धवसिष्ठ ने किया—'अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षडशीतयः। चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः॥ झषकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने। विषुवे तु तुलामेषौ गोलमध्ये ततोऽपराः॥ कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः। षडशीतिमुखाः प्रोक्ताः षडशीतिगुणाः फलैः॥ वृषवृश्चिकसिंहेषु कुम्भे चैव रवेर्गतिः। एतद्विष्णुपदं नाम विषुवादधिकं फलैः॥' इति। इस उद्धृत वचन में 'गोल' शब्द का अर्थ है विषुव और अयन से युक्त चार राशि। इनमें मेष विषुव और कर्क अयन के मध्य में विष्णुपद-संज्ञक वृष और षडशीतिमुख-संज्ञक मिथुन रहता है। कर्क अयन और तुला विषुव के मध्य में विष्णुपद-संज्ञक सिंह तथा षडशीतिमुख-संज्ञक कन्या रहता है। तुला मकर के मध्य में वृश्चिक धनु। इसी प्रकार अन्य का उदाहरण जान लेना चाहिये।

यस्य जन्मर्क्षे रविसंक्रमस्तस्य धनक्षयादिपीडा। तत्परिहारार्थं पद्मपत्रादियुक्त-जलेन स्नानम्। विषुवायनयोरह्नि संक्रमे पूर्वापररात्रौ तदह्नि चाध्यापनाध्ययने वर्जयेत्। रात्रिसंक्रमे पूर्वापरदिनयोस्तद्रात्रौ च वर्जयेत्। एवं पक्षिणी संक्रान्तिः द्वादशप्रहरपर्यन्तमनध्यायादिकमिति तात्पर्यम्। अन्योपि विशेषोऽयनसंक्रान्तौ वक्ष्यते। इति संक्रान्तिनिर्णयोद्देशः॥ २॥

रात में संक्रान्ति होने पर ग्रहण की तरह रात ही में स्नान दान आदि करना चाहिए ऐसा किसी का मत है। रात में संक्रान्ति होने पर दिन ही में स्नान दान आदि करना चाहिए रात में नहीं यह सर्व सम्मत निर्णय है। इसी प्रकार का आचार अधिक देशों में है। जिसके जन्मनक्षत्र में सूर्य संक्रान्ति हो उसको धन का नाश आदि का फल है। उसके हटाने के लिए कमल के पत्ते आदि से युक्त जल से स्नान करना चाहिए। विषुव और अयन में दिन में संक्रान्ति हो तो पहली और दूसरी रात में और उस दिन में भी पढ़ना पढ़ाना छोड़ दे। इसी तरह पक्षिणी संक्रान्ति में बारह पहर तक पठन-पाठन न करे। और भी विशेष बातें अयनसंक्रान्ति में कहेंगे। संक्रान्तिनिर्णयोद्देश समाप्त।

मलमासः (अधिमासः क्षयमासश्च)

स द्विविधः—[१]अधिमासः क्षयमासश्च। संक्रान्तिरहितो मासोऽधिमासः। संक्रान्तिद्वययुक्तो मासः क्षयमासः। पूर्वाधिमासादुत्तरोऽधिमासस्त्रिंशत्तममास-

---

१. जो चान्द्रमास संक्रान्ति से रहित हो वह 'अधिमास' और जो दो संक्रान्तियों से युक्त हो वह 'क्षयमास'। इस प्रकार मलमास का दो भेद है। काठकगृह्य—'यस्मिन् मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। मलमासः स विज्ञेयो मासे त्रिंशत्तमे भवेत्॥' इति। वृद्धवसिष्ठने अधिमास होने के समय की संभावना बतलायी—'द्वात्रिंशद्भिर्मितैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा। घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमासकः॥' इति। 'यस्मिन् मासे न' और 'द्वात्रिंशद्भिर्दिनैः' इन दोनों वचनों का भिन्न विषय होने के कारण परस्पर में विरोध नहीं है। ज्योतिषशास्त्र-प्रसिद्ध मध्यममान का आश्रयण करके 'द्वात्रिंशद्भिः' और स्फुटमान का आश्रयण करके 'यस्मिन् मासे' ये दोनों वचन मननीय हैं।

दो संक्रान्तियों से युक्त क्षयमास—कार्तिक-मार्गशीर्ष-पौष इन तीनों मासों में से एक किसी का होता है, शेष माघ आदि नव मासों में नहीं होता। ऐसे क्षयमास युक्त वर्ष में क्षयमास के पूर्व महीनों में कोई अधिमास और क्षयमास के बाद तीन महीने के मध्य में दूसरा अधिमास होता है—ज्योतिःसिद्धान्ते-'असंक्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद् द्विसंक्रान्तमासः क्षयाख्यः कदाचित्। क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यदा स्यात् तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं स्यात्॥' इति।

इस प्रकार एक वर्ष में होने वाला तीन मलमास बहुत वर्षों बाद यदा कदा आता है अधिमास की भाँति बार बार नहीं आता है। सिद्धान्तशिरोमणि में तीनों मलमास का आगमन काल कहा—'गतोऽब्ध्यद्रिनन्दैर्मिते शाककाले तिथीशैर्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः। गजाद्र्यग्निभूमिस्तथा प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद् गोकुभिश्च॥' इति। अर्थात् ९७४ शकवर्षमें कोई क्षयमास हो चुका। १११५, १२५६ और १३७८ शकवर्ष में कोई क्षयमास होगा। प्रायः १४१ वर्षों में पहला क्षयमास से दूसरा क्षयमास होता है। पूर्वोक्त प्रतिपादित संख्या व्यवधानकाल की बोधिका है। अर्थात् कहीं १४१ वर्षों से और कहीं १२२ वर्षों से व्यवधान होता है। तब पूर्वोक्त ९७४ संख्या में १४१ संख्या को मिलाने पर १११५ हुआ। इसमें पुनः १४१ को मिलाने पर १२५६ हुआ, फिर इसमें १२२ संख्या को मिलाने पर १३७८ होता है।

क्षयमास होने के वर्ष के मतभेद पर अपना विचार प्रगट करते हुये पुरुषार्थचिन्ता-

मारभ्याष्टसु नवसु वा मासेष्वन्यतमो भवति । क्षयमासस्तु एकचत्वारिंशदधिकशतसंख्यैर्वर्षैरेकोनविंशतिसंख्यैर्वा वर्षैर्भवति, नत्वधिकमासवदल्पकालेन । क्षयमासः कार्तिकमार्गशीर्षपौषेष्वन्यतमो भवति नेतरः । यस्मिन्वर्षे क्षयमासस्तस्मिन्वर्षेऽधिकमासद्वयम् । क्षयमासात्पूर्वमेकोऽधिमासः क्षयमासानन्तरमेकोऽधिमास इति ।

मलमास दो प्रकार का है—अधिकमास और क्षयमास । जिसमें संक्रान्ति न हो उसे अधिकमास और जिस महीने में दो संक्रान्ति हो उसे क्षयमास कहते हैं। पहले अधिकमास से दूसरा अधिकमास तीसवें महीने से लेकर आठवें या नवें महीने में से कोई एक होता है । क्षयमास तो एक सौ एकतालिस वर्षों पर होता है न कि अधिकमास की तरह थोड़े समय पर । क्षयमास—कार्तिक अगहन और पौष में से एक कोई होता है अन्य नहीं। जिस वर्ष क्षयमास होता है उस वर्ष में दो अधिकमास होते हैं । एक क्षयमास से पहले और दूसरा क्षयमास के बाद ।

अधिकमासोदाहरणम्

चैत्रामावास्यायां मेषसंक्रान्तिः । ततः शुक्लप्रतिपदमारभ्यामावास्यापर्यन्तं संक्रान्तिर्नास्ति । ततः शुक्लप्रतिपदि वृषभसंक्रान्तिरिति । पूर्वः संक्रान्तिरहितो मासोऽधिकवैशाखसंज्ञः । वृषभसंक्रान्तियुतस्तु शुद्धवैशाखसंज्ञः ।

चैत की अमावस्या को मेष की संक्रान्ति हो तो उसके बाद शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्यातक संक्रान्ति न हो । तदनन्तर शुक्ल प्रतिपदा में वृष की संक्रान्ति हो तब पहली संक्रान्ति से रहित मास अधिकमास वैशाख नामक है। वृषसंक्रान्ति से युक्त तो शुद्ध वैशाख कहलाता है ।

क्षयमासोदाहरणम्

भाद्रपदकृष्णामावास्यायां कन्यासंक्रान्तिः तत आश्विनोऽधिमासः । शुद्धाश्विनप्रतिपदि तुलासंक्रान्तिः । कार्तिकशुक्लप्रतिपदि वृश्चिकसंक्रान्तिः । ततो मार्गशीर्षशुद्धप्रतिपदि धनुःसंक्रान्तिः । तस्मिन्नेव मासेऽमावास्यायां मकरसंक्रान्तिरिति धनुर्मकरसंक्रान्तिद्वययुक्त एको मासः क्षयमाससंज्ञकः । सच मार्गशीर्षपौषाख्यमासद्वयात्मक एको मासो ज्ञेयः । तस्य प्रतिपदादितिथीनां पूर्वार्धे मार्गशीर्ष उत्तरार्धे पौष इत्येवं सर्वतिथीनां मासद्वयात्मकत्वात् ।

मणिकार ने लिखा—'सिद्धान्तशिरोमणिकृतापि मिताक्षरायां कुवेदेन्दुवर्षैरित्यादि स्ववाक्यं कालावधिद्वयपरतयैव व्याख्यातम् । तद् दृष्ट्वा माधवमदनरत्नादिभिः पूर्वस्मात् क्षयमासात् कुवेदेन्दुपरिमितैर्वर्षैर्द्वितीयः क्षयमासो भवति । क्वचिद् गोकुभिः एकोनविंशतिपरिमितैर्वर्षैर्भवतीत्युक्तम् । तथापि शिरोमण्युदाहृतचतुर्थक्षयमासस्य तृतीयात् क्षयमासाद् द्वाविंशत्यधिकशत वर्षैः (१२२) जातत्वेन नियमद्वयस्यापि व्यभिचारात् । अतएव मणिमरीचाख्यशिरोमणिटीकायां गोकुभिर्न्यूनैः कुवेदेन्दुवर्षैश्चतुर्थः क्षयमास इति तृतीयावधिस्वीकारेण समाहितम् । किंच वर्षत्रयाधिकषोडशशतवर्षपरिमितशककालेऽस्मदादिभिः स्मर्यमाणः क्षयमासः शिरोमण्युदाहृतचतुर्थक्षयमासात् सपादशतद्वयवर्षैः (२२५) जातः । तत्र पूर्वोक्तनियमस्य कथमप्युक्तिसम्भवाभावात् ।

तस्माद् ग्रहगतिविशेषाद् यदा यस्मिन् दर्शान्तचान्द्रमासे संक्रान्तिद्वयं भवति तदा स क्षयमास इत्येव वक्तव्यमिति बोध्यम् । अर्थात् उपर्युक्त अनेक मतभेदों को देखते हुये यही कहना ठीक है कि ग्रहों के गतिविशेष से जब जिस दर्शान्त चान्द्रमास में दो संक्रान्ति हों तब क्षयमास होता है ।

भाद्रपद कृष्ण अमावस्या में कन्या की संक्रान्ति और उसके बाद आश्विन अधिकमास हो। शुद्ध आश्विन प्रतिपदा में तुलासंक्रान्ति हो, कार्तिक में शुक्ल प्रतिपदा में वृश्चिक की संक्रान्ति हो। उसके बाद अगहन की शुक्ल प्रतिपदा में धनु की संक्रान्ति हो। उसी महीने में अमावस्या को मकरसंक्रान्ति हो इस प्रकार धनु मकर दोनों संक्रान्तियों से युक्त एक महीना क्षयमास होता है। उसे अगहन पौष नाम के दो महीने का एक महीना जानना चाहिए। उसकी प्रतिपदा आदि तिथियों के पूर्वार्द्ध में अगहन और उत्तरार्द्ध में पौष, इस प्रकार सब तिथियां दो महीनों की होती हैं।

अत्र तिथिपूर्वार्धे मृतस्य मार्गशीर्षे प्रत्यब्दश्राद्धम्। उत्तरार्धमृतस्य तु पौषे एवं जनने वर्धापनादिविधिरपि। तत ऊर्ध्वं माघामावास्यायां कुम्भसंक्रान्तिः। ततः फाल्गुनोऽधिमासः, शुद्धफाल्गुनशुक्लप्रतिपदि मीनसंक्रान्तिः। एवं पूर्वापराधिमासद्वययुक्तः क्षयमासो यस्मिन्वर्षे तत्र त्रयोदशमासात्मकं किंचिदूननवत्यधिकशतत्रयदिनैर्वर्षम्।

इसमें तिथि के पूर्वार्द्ध में मरे हुए का अगहन में वार्षिक श्राद्ध होगा। उत्तरार्द्ध में मरने वाले का पौष में वार्षिक श्राद्ध होगा। इसी तरह पैदा होने में और वर्षगांठ में भी। इसके बाद माघ की अमावस्या में कुम्भ की संक्रान्ति हो। तदनन्तर फाल्गुन अधिकमास हो और शुद्ध फाल्गुन की शुक्ल प्रतिपदा में मीन की संक्रान्ति हो। इस प्रकार पहले और पीछे दो अधिकमासों से युक्त क्षयमास यह जिस वर्ष में होता है उसमें तेरह महीने से कुछ कम तीन सौ नब्बे दिन का वर्ष होता है।

तत्र क्षयमासात्पूर्वोऽधिमासः [1]संसर्पसंज्ञः सर्वकर्मार्हः शुभकर्मणि न त्याज्यः। अंहस्पतिसंज्ञः क्षयमासस्तदुत्तरभाव्यधिकमासश्च सर्वकर्मसु वर्ज्यः। एवं त्रिवत्सरान्तरस्थः केवलोऽधिकमासोऽपि वर्ज्यः।

इसमें क्षयमास के पहले जो अधिकमास होता है उसका नाम संसर्प है। इसमें सभी काम होते है शुभकर्म में वर्जित नहीं है। क्षयमास के बाद जो अंहस्पति नाम का क्षयमास के बाद होने वाला अधिकमास है वह सभी कर्मों में त्याज्य है। इसी तरह तीन वर्ष के मध्य में जो केवल अधिकमास होता है वह भी त्याज्य है।

अधिमासक्षयमासयोर्वर्ज्यावर्ज्यनिर्णयः

अनन्यगतिकं नित्यं नैमित्तिकं काम्यं च अधिकमासक्षयमासयोः कर्तव्यम्। सगतिकं नित्यं नैमित्तिकं काम्यं च वर्ज्यम्। तथाहि-संध्याग्निहोत्रादि नित्यं ग्रहणस्नानादि नैमित्तिकं कारीर्यादिकं रक्षोगृहीतजीवनार्थं रक्षोघ्नेष्ट्यादिकं च काम्यं मलमासेऽपि कार्यम्।

---

१. 'असंक्रान्तत्वेन अधिमासवत्कर्मानर्हतायां प्राप्तायां तदपवादेन कर्मार्हः सन् सम्यक् सर्पतीति संसर्पः। एकमासप्राप्तित्वाद् अंहसः पापस्य पतिरिति अंहस्पतिः। क्षयमासस्य पूर्वभाविनोऽधिमासस्य संसर्पसंज्ञत्वं तदुत्तरभाविनः अंहस्पतिसंज्ञत्वं चोक्तं बार्हस्पत्यसंहितायाम्—'यस्मिन् मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। संसर्पांहस्पती एतस्वधिमासश्च निन्दितः॥' इति। जाबालिः—'एकस्मिन्नपि वर्षे चेद् द्वौ मासावधिमासकौ, पूर्वो मासः प्रशस्तः स्यादुत्तरस्तु मलिम्लुचः॥' क्षयमास के पूर्व और उत्तर के दोनों अधिमास एवं क्षयमास इन तीनों को ज्योतिषशास्त्र में त्याज्य कहा—'यद्वर्षमध्येऽधिकमासयुग्मं तत्कार्तिकादित्रितये क्षयाख्यम्। मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद् विवाहयज्ञोत्सवमङ्गलेषु॥' इति।

जिसकी कोई गति न हो ऐसा नित्य नैमित्तिक और काम्य कर्म अधिकमास और क्षयमास में करना चाहिए। सगतिक नित्य नैमित्तिक और काम्य कर्म का वर्जन करे। जैसे संध्या अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म, ग्रहण स्नान आदि नैमित्तिक कर्म और कारीरी आदि काम्य कर्म जो भूत बाधा के हटाने के लिए और राक्षसों के हनन के लिए जो इष्टि आदि हैं उन्हें मलमास में भी करना चाहिए।

ज्योतिष्टोमादि नित्यं जातेष्ट्यादि नैमित्तिकं पुत्रकामेष्ट्यादि काम्यं च मलमासोत्तरं शुद्धमास्येव कर्तव्यम्। आरब्धकाम्यस्य मलमासेप्यनुष्ठानम्। नूतनारम्भः समाप्तिश्च न कर्तव्या। तथा पूजालोपादिनिमित्तकपुनर्मूर्तिप्रतिष्ठां गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तसंस्कारान्प्राप्तकालाननन्यगतिकान् ज्वरादिरोगशान्तिमलभ्ययोगे श्राद्धव्रतादिकं नैमित्तिकप्रायश्चित्तं नित्यश्राद्धमूनमासिकादिश्राद्धानि दर्शश्राद्धं च मलेऽपि कुर्यात्। चैत्रादौ मलमासे मृतानां कदाचिद्बहुकालेन तस्मिन्नेव चैत्रादौ मलमासे प्राप्ते मलमास एव प्रतिसांवत्सरिकं श्राद्धं कर्तव्यम्।

ज्योतिष्टोम आदि नित्यकर्म और जातेष्टि आदि नैमित्तिक कर्म और पुत्रोत्पत्ति के लिए पुत्रकामेष्टि आदि काम्यकर्म को मलमास के बाद शुद्ध मास में ही करना चाहिए। पहले से जिस काम्यकर्म का आरम्भ कर चुके हैं उसका मलमास में भी अनुष्ठान होता रहेगा। नवीन कर्म का आरम्भ और समाप्ति मलमास में नहीं करनी चाहिए। इसी तरह जिस मूर्ति की पूजा न होने से दुबारा प्रतिष्ठा करने में, गर्भाधान से लेकर अन्नप्राशन पर्यन्त संस्कारों अनन्यगतिक (जिसकी कोई दूसरी गति नहीं है) ज्वर आदि रोग की शान्ति अलभ्य योग में श्राद्ध व्रत आदि और नैमित्तिक प्रायश्चित नित्यश्राद्ध ऊनमासिकादि श्राद्ध तथा अमावस्या श्राद्ध भी मलमास में करें। चैत आदि के मलमास होने में मरे हुओं का कभी बहुत काल के बाद उसी चैत आदि में मलमास पड़ने पर मलमास में ही प्रतिवर्ष का वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए।

चैत्रादौ शुद्धमासे मृतानां तु प्रत्याब्दिकं श्राद्धं मलमासे न कर्तव्यम्, शुद्धे एव चैत्रादौ कर्तव्यम्। शुद्धमासे मृतानां तु प्रथमाब्दिकं मलमास एव कार्यं न शुद्धे। द्वितीयाब्दिकं तु शुद्धे एव एकादशाहान्तकर्म सपिण्डीकर्म च मलेपि कार्यम्। द्वितीयमासिकादिश्राद्धं तु मले शुद्धे चावृत्त्या द्विवारं कर्तव्यम्। एवं च यत्र द्वादशमासिकमधिकमासे प्राप्तं तस्य मले शुद्धे च द्विरावृत्तिं कृत्वा ऊनाब्दकाले ऊनाब्दिकं च कृत्वा चतुर्दशे मासे प्रथमाब्दिकं कार्यम्।

चैत आदि शुद्धमास में मरे हुओं का तो वार्षिक श्राद्ध शुद्ध मलमास में नहीं करना शुद्ध मास में ही करना चाहिए। शुद्धमास में मरे हुओं का पहला वार्षिक श्राद्ध तो मलमास में ही करना चाहिए न कि शुद्धमास में। दूसरा वार्षिक श्राद्ध तो शुद्ध मास में ही होता है। एकादशाह पर्यन्त कर्म और सपिण्डीकरण मलमास में भी करना चाहिए। दूसरे आदि महीनों के मासिक श्राद्ध तो मलमास और शुद्ध मास दोनों में दो बार करना चाहिए। इसी प्रकार जहाँ अधिकमास में द्वादश मासिक श्राद्ध पड़ता हो उसे मलमास में और शुद्ध मास में भी दो बार करके ऊनाब्द काल में ऊनाब्दिक श्राद्ध करके चौदहवें महीने में पहला वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए।

यस्मिन्वर्षे क्षयमासाव्यवहितोऽधिकमासः। यथा कार्तिकोऽधिमासस्तदुत्तरो मासो वृश्चिकधनुः संक्रान्तियुक्तत्वात्क्षयसंज्ञकस्तत्र कार्तिकमासस्थं प्रत्याब्दिकं पूर्वेऽधिमासे उत्तरे क्षयमासे च कार्यम्।

जिस वर्ष में क्षयमास के बाद अधिकमास है। जैसे कार्तिक अधिकमास है उसके बाद

वाला महीना वृश्चिक और धनु संक्रान्ति से युक्त होने से क्षयमास है उसमें कार्तिक महीने के वार्षिक श्राद्ध को पहले अधिकमास में और दूसरे क्षयमास में भी करना चाहिए।

यत्रापि क्षयाव्यवहितपूर्वोऽधिमासो यथाऽऽश्विनोऽधिमासो मार्गशीर्षः क्षयस्तत्रापि आश्विनमासगतं श्राद्धमधिके शुद्धे च आश्विने कार्यं, द्वयोरपि कर्मार्हत्वादिति भाति। व्यवहितक्षयमासगतं त्वाब्दिकं क्षयमास एव कार्यम्। तथा च पूर्वोक्ते मार्गशीर्षक्षयोदाहरणे मार्गशीर्षगतं पौषगतं चाब्दिकमेकस्मिन्नेव मासे तिथिपूर्वार्धादिविभागं विनैव कार्यमिति फलितम्।

जहां क्षयमास से अव्यवहित पहला महीना जैसे आश्विन अधिकमास है और अगहन क्षयमास है उसमें भी आश्विन महीने वाला श्राद्ध अधिकमास में और शुद्ध आश्विन में भी करना दोनों ही कर्म के योग्य मास हैं। क्षयमास व्यवधान वाले वार्षिक श्राद्ध को क्षयमास में ही करना। उसी तरह पहले के कहे हुए अगहनमास के और पौषमास के वार्षिक श्राद्ध को एक ही महीने में तिथि के पूर्वार्द्ध आदि भाग के विना ही करना चाहिए।

मलमासे वर्ज्यानि

उपाकर्मोत्सर्जने अष्टकाश्राद्धानि अधिके वर्ज्यानि। चूडामौञ्जीबन्धविवाहास्तीर्थादियात्रा वास्तुकर्म गृहप्रवेशदेवप्रतिष्ठाकूपारामाद्युत्सर्गो नूतनवस्त्रालंकारधारणं तुलापुरुषादिमहादानानि यज्ञकर्माधानमपूर्वतीर्थदेवदर्शनं संन्यासः काम्यवृषोत्सर्गो राजाभिषेको व्रतानि सगतिकमन्नप्राशनं समावर्तनमतिक्रान्तनामकर्मादिसंस्काराः पवित्रारोपणदमनार्पणे श्रवणाकर्म सर्पबल्यादिपाकसंस्थाः शयनपरिवर्तनाद्युत्सवः शपथदिव्यादिकर्म एतानि मलमासे वर्ज्यानि।

मलमासमें उपाकर्म, उत्सर्जन अष्टकाश्राद्ध, गृहप्रवेश, चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत, विवाह, तीर्थ आदि की यात्रा और मकान बनाना, गृहप्रवेश, किसी देवता की प्रतिष्ठा, कुआँ और बगीचे का उत्सर्ग, नये वस्त्र और अलंकार का पहनना, तुला-पुरुष आदि महादान, यज्ञ कर्म, आधान अपूर्व देवता और अपूर्व तीर्थ का दर्शन, संन्यास, काम्य, वृषोत्सर्ग, राजाभिषेक व्रत मलमास के अनन्तर हो सकने वाला अन्नप्राशन, समावर्तन छूटे हुए नामकर्म आदि संस्कार, पवित्रारोपण, दमनार्पण, श्रवणाकर्म, सर्पबलि आदि पाक संस्थाएँ, शयन और परिवर्तन आदि का उत्सव, शपथ और दिव्यादि कर्म मलमास में नही करना चाहिए।

नैमित्तिकानि रजोदर्शनशान्तिविच्छिन्नाधानपुनःप्रतिष्ठादीनि यदि निमित्तानन्तरमेव क्रियन्ते तदा न मलमासादिदोषः। कालातिपत्तौ तु शुद्धे एव कर्तव्यानि। आग्रयणं दुर्भिक्षसंकटे मलमासे कार्यम् अन्यथा शुद्धे एव। युगादिमन्वादिश्राद्धानां मासद्वयेप्यावृत्तिः। क्षयात्पूर्वोऽधिमासः संसर्पसंज्ञकः पूर्वमुक्तः। तत्र चूडाकर्मव्रतबंधविवाहाग्न्याधानयज्ञोत्सवमहालयराजाभिषेका एव वर्ज्याः नान्यानि कर्माणि।

नैमित्तिक रजोदर्शन शान्ति अविक्रान्त आधान और पुनः प्रतिष्ठा आदि यदि निमित्त के तुरत बाद ही करते हैं तब मलमास आदि का दोष नही होता। देर हो जाने पर तो शुद्ध में ही करना चाहिए। आग्रयणेष्टि तो दुर्भिक्ष संकट में मलमास में करना चाहिए नहो तो शुद्ध में ही। और मन्वादिश्राद्धों को दोनों में करना चाहिए। क्षयमास से पहले के अधिकमास को संसर्प कहते हैं यह पहले कह चुके हैं। उसमें चूड़ाकर्म यज्ञोपवीत, विवाह, अग्न्याधान, यज्ञ का उत्सव, महालय और राजाभिषेक भी वर्जित है, अन्य कोई कर्म वर्जित नही है।

अपूर्वव्रतारंभो व्रतसमाप्तिश्च मलमासे न भवति । सपूर्वमाघस्नानादेः क्षयमासेप्यारम्भसमाप्ती इति मकरसंक्रान्तियुक्तक्षयमासगतपौर्णमास्यां माघस्नानमारभ्य कुम्भसंक्रान्तियुतमाघपौर्णमास्यां समापनीयम् । एवं कार्तिकेऽप्यूह्यम् । यत्र वैशाखादिरधिकस्तत्र वैशाखस्नानादिमासव्रतानां चैत्रपूर्णिमायामारब्धानां शुद्धवैशाखपौर्णमास्यां समाप्तिरिति तेषां मासद्वयमनुष्ठानम् ।

नये व्रत का प्रारम्भ और व्रत की समाप्ति भी मलमास में नहीं होती । पहले से नहाते आये माघस्नानादि का आरम्भ और समाप्ति क्षयमास में भी होता है । इस प्रकार मकरसंक्रान्ति युक्त क्षयमास की पूर्णिमा में माघस्नान का प्रारंभ करके संक्रान्ति युक्त माघ की पूर्णिमा को समाप्त करना चाहिए । इसी प्रकार कार्तिक में भी समझना चाहिए । जहाँ वैशाख आदि अधिक मास हो वहाँ वैशाखस्नान आदि मासव्रतों को चैत की पूर्णिमा से आरम्भ करके शुद्ध वैशाख पूर्णिमा में समाप्ति करनी चाहिए । इनका दो महीने तक स्नान होना चाहिए ।

शुक्रास्तादिषु वर्ज्यानि

यन्मलमासे वर्ज्यमुक्तं तद् [१]गुरुशुक्रास्तबाल्यवार्धकेष्वपि ज्ञेयम् । तत्रास्तात्प्राक् सप्ताहं वार्धकमुदयानन्तरं सप्ताहं बाल्यमिति मध्यमः पक्षः । पञ्चदशाहपञ्चाहत्र्यहादिपक्षा आपदनापदादिविषयतया देशविशेषपरतया च योज्या ।

जो मलमास में वर्जित है उसे बृहस्पति और शुक्र के अस्त बाल्य वार्धक में भी जानना चाहिए । उसमें अस्त के पहले सात दिन वार्धक और उदय के बाद सात दिन बाल्य होता है । यह मध्यम पक्ष है । पन्द्रह दिन दस दिन पाँच दिन और तीन दिन के पक्ष आपत्ति और सम्पत्ति विषय परक होने से और देश काल की विशेषता से उसकी योजना करनी चाहिए ।

सिंहस्थे गुरौ वर्ज्यानि

अयं वर्ज्यावर्ज्यनिर्णयः [२]सिंहस्थे गुरावपि ज्ञेयः । तत्र विशेष उच्यते कर्णवेधचौलमौञ्जीबन्धविवाहदेवयात्राव्रतवास्तुकर्मदेवप्रतिष्ठासंन्यासा विशेषतो वर्ज्या इति ।

यह वर्ज्य अवर्ज्य बृहस्पति में भी ज्ञातव्य है इसमें जो विशेष है उसको कहते हैं । कर्णवेध, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, देवयात्रा, व्रत, मकान बनाना, देवता की प्रतिष्ठा और संन्यास ये विशेषतः करना चाहिए ।

अथ सिंहस्थापवादः

मघानक्षत्रगते सिंहांशगते च गुरौ सर्वदेशेषु सर्वमाङ्गलिककर्मणां निषेधः ।

---

१. बृहस्पतिः—'बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वाऽस्तंगते गुरौ । मलमास इवैतानि वर्जयेद् देवदर्शनम् ॥' वृत्तशत में गुरु शुक्र के बाल्य और वृद्धत्व का विचार—'बालः शुक्रो दिवसदशकं पंचकं चैव वृद्धः पश्चादह्नां त्रितयमुदितः पक्षमैन्द्र्यां क्रमेण । जीवो वृद्धः शिशुरपि तथा पक्षमन्यैः शिशू तौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम् ॥' गुरु शुक्र के देशभेद से बाल्यत्व वृद्धत्व की व्यवस्था । गार्ग्य—'शुक्रो गुरुः प्राक्च पराक्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम् । वङ्गेषु हूणेषु च षट् च पञ्च शेषे च देशे त्रिदिनं वदन्ति ॥' इति ।

२. लल्लः—'नीचस्थे वक्रसंस्थेऽप्यतिचरणगते बाल वृद्धास्तगे वा संन्यासो देवयात्राव्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा । मौञ्जीबन्धोऽङ्गनानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात् त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च ॥'' इति ।

सिहांशोत्तरं गोदादक्षिणे भागीरथ्युत्तरे सिंहस्थदोषो नास्ति । गङ्गागोदामध्यदेशे तु सर्वसिंहस्थे विवाहव्रतबन्धयोर्दोषः । अन्यकर्माणि सिंहांशोत्तरं सर्वदेशेषु कर्तव्यानि । मेषस्थे सूर्ये सर्वदेशेषु सर्वमाङ्गलिककर्मणां सर्वसिंहस्थे न दोषः । क्वचिद् वृषस्थितेऽर्केऽपि दोषाभाव उक्तः ।

मघा नक्षत्र में सिंहस्थ बृहस्पति के हों तो सब देशों में सम्पूर्ण मांगलिक कार्यों का निषेध है । सिंहस्थ के बाद गोदावरी के दक्षिण भाग में और भागीरथी गंगा के उत्तर देश में सिंहस्थ बृहस्पति का दोष नहीं लगता । गंगा गोदावरी के मध्यदेश में सिंहस्थ बृहस्पति का विवाह और यज्ञोपवीत में दोष होता है । अन्य कर्म सिंहस्थ के बाद सब देशों में किया जाता है । मेष के सूर्य्य में सब देशों में सम्पूर्ण मांगलिक कार्यों का, सम्पूर्ण सिंहस्थ गुरु में दोष नहीं होता है । कहीं वृष के सूर्य में भी दोष न होने की बात कही है ।

अत्र सिंहस्थे गुरौ गोदावरीस्नानं कन्यागते कृष्णास्नानं महापुण्यम् । गोदावर्यां यात्रिकाणां मुण्डनोपवासावावश्यकौ नतु तत्तीरवासिनाम् । गर्भिण्यामपि भार्यायां विवाहादिमङ्गलोत्तरमपि गोदावर्यां मुण्डने दोषो नास्ति । गयागोदावरीयात्रायां मलमासगुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्ति । मलमासे व्रतविशेषोऽन्यत्र ज्ञेयः । इति मलमासगुरुशुक्रास्तसिंहस्थगुरुवर्ज्यावर्ज्यनिर्णयोद्देशः ॥ ३ ॥

इस सिंहस्थ बृहस्पति में गोदावरी में स्नान और कन्या में कृष्णानदी का स्नान अधिक पुण्यदायक है । गोदावरी यात्रा करने वालों को मुण्डन और उपवास आवश्यक है । गोदावरी के तीर पर रहने वालों को आवश्यक नहीं है । स्त्री के गर्भिणी रहने पर और विवाह आदि मंगल के अनन्तर भी गोदावरी में मुण्डन का दोष नहीं है । गंगा गोदावरी की यात्रा में मलमास गुरु शुक्र का अस्त आदि दोष नहीं है । मलमास में विशेष व्रत दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिए । मलमास-गुरु-शुक्रास्त-सिंहस्थ-गुरुवर्ज्यावर्ज्यनिर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ तिथिनिर्णये सामान्यपरिभाषा

[1]तिथिर्द्विविधा-पूर्णा सखण्डा च । सूर्योदयमारभ्य षष्टिनाडिकाव्याप्ता पूर्णा,

---

१. जो काल विशेष वर्धमान या क्षीयमाण एक चन्द्रकाल को बढ़ावे उसे तिथि कहते हैं— तनोति विस्तारयति वर्द्धमानां क्षीयमाणां वा चन्द्रकलामेकां यः कालविशेषः, सा तिथिः ।

अथवा सिद्धान्तशिरोमणिके—'तन्यते कलया यस्मात् तस्मात्तास्तिथयः स्मृताः' इस वचन के अनुसार यथोक्तकलया तन्यये इति तिथिः । यह तिथि सामान्य-विशेष-रूप से दो प्रकार की है । जो क्षयोदयरहित षोडश कलायुक्त काल वाली है वह सामान्य और जो वृद्धिक्षय सहित पंचदश कला विशिष्ट काल विभागवाली है वह विशेष ।

अग्नि आदि देवता प्रतिदिन चन्द्रमा के पन्द्रह कलाओं में से एक एक कला को पीते हैं । अग्नि देव प्रथम कला को पीते हैं उससे युक्त कालविशेष प्राथम्यवाची होने से प्रतिपद् शब्द से अभिहित हुआ । इसी प्रकार द्वितीया से अमापर्यन्त तिथियों के नाम जानना चाहिये । ये तिथियाँ कृष्ण पक्ष की हुईं ।

फिर वे पीत कलायें क्रम से पीने वाले उन उन अग्नि आदि देवताओं से निकल कर चन्द्रमण्डल को पूर्ण करती हैं अतः उन कलाओं से युक्त कालविशेष शुक्ल पक्ष गत प्रतिपदादि तिथियों के शब्द से व्यवहृत होते हैं । सामोत्पत्ति में वह्न्यादि देवताओं के कला पान का वर्णन यों है 'प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः । विश्वेदेवास्तृतीयां तु चतुर्थीं सलिलाधिपः ॥ पंचमी

एतदन्या सखण्डा । सखण्डाऽपि द्विविधा-शुद्धा विद्धा च । सूर्योदयमारभ्य अस्तमयपर्यन्तं विद्यमाना शिवरात्र्यादौ निशीथपर्यन्तं विद्यमाना च शुद्धा, तदन्या विद्धा ।

तिथि दो प्रकार की होती है—पूर्णा और सखण्डा । सूर्योदय से लेकर साठ घड़ी तक रहनेवाली पूर्णा तिथि कहलाती है । इससे भिन्न सखण्डा होती है । सखण्डा भी दो प्रकार की है—शुद्धा और विद्धा । सूर्योदय से लेकर सूर्यास्तपर्यन्त रहने वाली और शिवरात्रि आदि में आधी रात तक रहनेवाली तिथि शुद्धा कहलाती है । इससे भिन्न विद्धा होती है ।

वेधोऽपि द्विविधः—प्रातर्वेधः सायंवेधश्च । सूर्योदयोत्तरं षड्घटिकापरिमिततिथ्यन्तरस्पर्शात्मकः प्रातर्वेधः । सूर्यास्तात्प्राक् षड्घटीमिततिथ्यन्तरस्पर्शः सायंवेधः । एकादशीव्रतविषये तु वेधो वक्ष्यते । क्वचित्तिथिविशेषे वेधाधिक्यम् । पञ्चमी द्वादशनाडीभिः षष्ठीं विद्धां करोति । दशमी पञ्चदशभिरेकादशीवेधकृत् । चतुर्दशी अष्टादशनाडीभिः पञ्चदशीं विध्यति । विद्धाश्च तिथयः क्वचित्कर्मणि ग्राह्याः कुत्रचित्त्याज्याश्च भवन्ति । तत्र संपूर्णा शुद्धा च तिथिः प्रायेण निर्णयं नापेक्षते संदेहाभावात् । निषेधविषये सखण्डापि न निर्णयार्हा । निषेधस्तु 'निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति वचनेन अष्टम्यादिषु नारिकेलादिभक्षणनिषेधादेस्तत्कालमात्रमात्रव्याप्ततिथ्यपेक्षणात् ।

वेध भी दो प्रकार का है—प्रातर्वेध और सायंवेध । सूर्योदय के बाद छ घड़ी तक दूसरी तिथि का स्पर्श होने से प्रातर्वेध होता है । सूर्यास्त से पहले छ घड़ी तक दूसरे तिथि के स्पर्श होने

तु वषट्कारः षष्ठीं पिबति वासवः । सप्तमीमृषयो दिव्या अष्टमीमज एकपात् ॥ नवमीं कृष्णपक्षस्य यमः प्राश्नाति वै कलाम् । दशमीं पिबते वायुः पिबत्येकादशीमुमा ॥ द्वादशीं पितरः सर्वे समं प्राश्नाति भागशः । त्रयोदशीं धनाध्यक्षः कुबेरः पिबते कलाम् ॥ चतुर्दशीं पशुपतिः पञ्चदशीं प्रजापतिः । निष्पीतश्च कलाशेषश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥ कला षोडशिका या तु अपः प्रविशते सदा । अमायां तु सदा सोम ओषधीः प्रतिपद्यते ॥ तमोषधिगतं गावः पिबन्त्यम्बुगतं च यत् । तत्क्षीरममृतं भूत्वा मन्त्रपूतं द्विजातिभिः ॥ हुतमग्निषु यज्ञेषु पुनराप्यायते शशी । दिने दिने कलावृद्धिः पौर्णिमास्यां तु पूर्यते ॥' इति ।

ज्योतिषशास्त्र में प्रतिपदादि तिथियों का वर्णन भिन्न प्रकार से हैं, सिद्धान्तशिरोमणि—'अर्काद्विनिसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी । तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः ॥' अयमर्थः—ऊर्ध्वप्रदेशवर्तिनो मन्दगामिनः सूर्यस्य अधःप्रदेशवर्ती शीघ्रगामी चन्द्रः, तयोर्गतिविशेषवशाद् दर्शे सूर्यमण्डलस्याधोभागे एव चन्द्रस्य अवस्थितिर्भवति तदा सूर्यरश्मिभिः अभिभूतत्वात् चन्द्रमण्डलमीषदपि न प्रकाशते, ततो दर्शान्तकाले शीघ्रगामीत्वात् त्रिंशदंशोपेतराशौ सूर्याधिकरणराश्यंशं त्यक्त्वा अग्रिमांशं गच्छति । एवं क्रमेण त्रयोदशांशप्रवेशक्षणे चन्द्रस्य प्रथमा कला दर्शनयोग्या भवति । सूर्याधिकरणराश्यंशाद् अग्रिमत्रयोदशांशप्रवेशस्तु अतिशीघ्रगतौ चतुःपञ्चाशता घटिकाभिर्भवति । अतिमन्दगतौ पंचषष्ट्या घटिकाभिर्भवति । ततश्च प्रथमकलया स्वदर्शनयोग्यत्वसम्पत्त्यर्थं यावान् कालोऽपेक्ष्यते स कालः प्रतिपच्छब्दाभिधेयः । एवं द्वितीयादिपौर्णमासीपर्यन्तास्तिथयो बोध्याः ।

माधवीय में सामान्यतः पैठीनसीने वेध बतलाया—'पक्षद्वयेऽपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम् । त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥' मदनरत्नादि में द्विमुहूर्त का भी वेध माना है, पर वह प्रातःकाल में ही मान्य है । सायंकाल तो त्रिमुहूर्त का ही वेध है । स्कन्दपुराण—'यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीपतिः । सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत् ॥' इति ।

से सायंवेध होता है। एकादशी व्रत के विषय में तो वेध आगे कहेंगे। कहीं तिथि विशेष में वेध का आधिक्य होता है। पंचमी बारह घड़ी से षष्ठी को विद्धा करती है। दशमी पन्द्रह घड़ी से एकादशी का वेध करती है। चतुर्दशी अट्ठारह घड़ी से पूर्णिमा का वेध करती है। विद्ध तिथियाँ किसी काम में लेने योग्य होती हैं और कहीं पर त्याज्य भी होती हैं। उनमें सम्पूर्ण और शुद्धा तिथि के सन्देह न होने से निर्णय की प्रायः आवश्यकता नहीं होती। निषेध के विषय में सखण्ड भी तिथि निर्णय के योग्य नहीं है। निषेध तो निवारण मात्र होने से केवल काल की अपेक्षा करता है। इस वचन से अष्टमी आदि में नारियल खाने का निषेध है। वह जब तक अष्टमी रहेगी तब तक उसके त्याग की अपेक्षा है।

विहितव्रतादिविषये तु निर्णय उच्यते। तत्र [1]'कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या। यथा विनायकादिव्रते मध्याह्नादौ पूजनादिविधानान्मध्याह्नादिव्यापिनी। दिनद्वये कर्मकाले व्याप्तावव्याप्तौ तदेकदेशव्याप्तौ वा युग्मवाक्यादिना पूर्वविद्धायाः परविद्धाया वा तिथेर्ग्राह्यत्वम्[2]।

विहित व्रतादि के विषय में निर्णय कहते हैं। उसमें जिस कर्म का जो काल विहित है, उसमें तत्कालव्यापिनी तिथि को ही लेनी चाहिए। जैसे विनायक आदि के व्रत में मध्याह्न आदि में पूजा का विधान है। इस लिये वहाँ मध्याह्न व्यापिनी तिथि ग्राह्य है। कर्मकाल दो दिन पड़ता हो या दोनों दिन नहीं पड़ता हो अथवा एक देश में पड़ता हो तो, युग्म वाक्यादि से पूर्वविद्धा या परविद्धा तिथि ग्राह्य है।

युग्मवाक्यं तु—युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः।
रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा॥
प्रतिपद्यप्यमावास्यातिथ्योर्युग्मं महाफलम्। इति।

युग्मं द्वितीया अग्निस्तृतीया द्वितीया तृतीयाविद्धा ग्राह्या। तृतीया द्वितीयाविद्धा ग्राह्येत्येवं द्वितीयातृतीययोर्युग्मम्, चतुर्थीपञ्चम्योर्युग्मम्, षष्ठीसप्तम्योर्युग्मम्, अष्टमीनवम्योर्युग्मम्, एकादशीद्वादश्योर्युग्मम्, चतुर्दशीपौर्णमास्योर्युग्मम्, अमावास्याप्रतिपदोर्युग्ममित्यर्थः। क्वचित् 'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते' इत्यादिविशेषवाक्यैर्ग्राह्यत्वनिर्णयः।

'युग्माग्नियुग' यह युग्मवाक्य है अर्थात् युग्म द्वितीया और अग्नि तृतीया, इस तरह द्वितीया तृतीया का वेध ग्राह्य है। और तृतीया द्वितीया विद्धा ग्राह्य है। इस प्रकार द्वितीया तृतीया का चतुर्थी पंचमी का, षष्ठी सप्तमी का, अष्टमी नवमी का, एकादशी द्वादशी का, चतुर्दशी पूर्णिमा का तथा अमावस्या प्रतिपदा का युग्म होता है। कहीं पर गणेशव्रत में तृतीया विद्धा चतुर्थी विशेष वाक्यों से ग्राह्य है।

वचनवशेन ग्राह्यायास्तिथेः कर्मकाले सत्त्वाभावे साकल्यवचनैः सत्त्वं भावनीयम्। तानि च—

---

१. विष्णुधर्मोत्तरे—'कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः। तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥' इति।

२. तत्तत्तिथिनिमित्तकतत्तत्कर्मविधिबोधिततत्तत्फलदातृमहाफलकरस्तुत्या युग्मगता पूर्वा तिथिरुत्तरविद्धा ग्राह्या, उत्तरा तिथिः पूर्वविद्धा ग्राह्येत्याशयः।

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु ॥

इत्यादीनि । इति सामान्यनिर्णयोद्देशः ॥ ४ ॥

वचन से ग्राह्य तिथि का कर्मकाल में नहीं होने पर भी उसकी सम्पूर्णता वचनों से उसका रहना माना जाता है। वे वचन ये हैं—जिस तिथि में सूर्य का उदय होता है वह तिथि स्नान, दान और जपादि कार्यों में सम्पूर्ण मानी जाती है। जिस तिथि में चन्द्रमा अस्त होते हैं; वह तिथि स्नान दानादि कर्मों में सम्पूर्ण मानी जाती है। उदय के बाद दो मुहूर्त अधिक का और अस्त के पहले तीन मुहूर्त अधिक का होना प्रायः इस तरह दो प्रकार की तिथि की सम्पूर्णता जाननी चाहिये। सामान्य-निर्णयोद्देश समाप्त।

अथ कर्मविशेषे निर्णयः

कर्माणि द्विविधानि—दैवानि पित्र्याणि च। दैवानि षड्विधानि-एकभक्तनक्ता-याचितोपवासव्रतदानाख्यानि। मध्याह्ने एकवारमेकान्नभोजनमेकभक्तम्[1]। रात्रावेव प्रदोषकाले भोजनं नक्तम्[2]। याचनां विना तद्दिने लब्धस्यान्नादेर्भोजनमयाचितम्[3]। दिनान्तरलब्धस्यापि पाचकं स्त्रीपुत्रादिकं प्रति याचनमन्तरेण भोजन-मयाचितमिति केचित्। अहोरात्रभोजनाभाव उपवासः। पूजाद्यात्मकः कर्म-विशेषो व्रतम्।

कर्म दो प्रकार का होता है—दैव और पित्र्य। दैव कर्म छ प्रकार का है—एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास, व्रत और दान। मध्याह्न के समय एकबार एक अन्न का भोजन करना, इसे एकभक्त कहते हैं। रात में प्रदोषकाल में भोजन करने को नक्त कहते हैं। बिना माँगे उस दिन जो अन्न मिल जाय उसीका भोजन करने को अयाचित कहते हैं। दूसरे दिन का मिला हुआ भी पकाने वाले स्त्री पुत्र से बिना माँगे जो भोजन है, उसे भी कुछ लोग अयाचित कहते हैं। दिन-रात में भोजन के अभाव को उपवास कहते हैं। पूजा आदि कर्मविशेष जिसमें किया जाय उसे व्रत कहते हैं।

स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वापादनं दानम्। तानि चैकभक्तादीनि क्वचिद् व्रताद्यङ्गतया विहितानि क्वचिदेकादश्याद्युपवासप्रतिनिधितया विहितानि क्वचित्स्वतन्त्राणीति त्रिविधानि। तत्रान्याङ्गानां प्रतिनिधिभूतानां च तत्त-त्प्रधानवशेन निर्णयः।

---

१. द्वितीय बार भोजन की निवृत्ति 'एकभक्त' शब्द का यौगिक अर्थ है—द्वितीयभोजनाभाव-सहकृतं दिवाभोजनम् एकभक्तम्।

२. दिन में भोजन नहीं करके रात्रि में भोजन करना 'नक्त' है—दिवाभोजनाभावविशिष्ट-रात्रिभोजनरूपं नक्तम्।

३. याचना के बिना प्राप्त अन्न को एक ही बार खाना 'अयाचित' कहलाता है—याच्ञा-राहित्येन लब्धस्य सकृद् भोजनम् अयाचितम्। अयाचितान्नभोजनं तु यदेव लभ्यते तदैव दिवा रात्र वा अनिषिद्धकाले सकृदेव कार्यम्। कोई याच्ञा नहीं करने का संकल्प ही 'अयाचित' है—ऐसा कहते हैं।

अपने स्वामित्व को निवृत्त करके दूसरे का स्वामित्व प्रदान करना दान कहलाता है। ये एकभक्त आदि कहीं पर व्रत के अंग से विहित कहीं एकादशी आदि उपवास के प्रतिनिधिरूप में और कहीं स्वतन्त्र हैं। इस तरह तीन प्रकार के हैं। जो अन्य के अंग प्रतिनिधिस्वरूप हैं; उनका निर्णय प्रधान के अधीन है।

स्वतन्त्राणां निर्णय उच्यते। तत्र दिनं पञ्चधा[१] विभज्य प्रथमभागः प्रातःकालो ज्ञेयः, द्वितीयः सङ्गवः, तृतीयो मध्याह्नः, चतुर्थो भागोऽपराह्णः, पञ्चमः सायाह्नः। सूर्यास्तोत्तरं त्रिमुहूर्तः प्रदोषः।

स्वतन्त्रों के निर्णय में दिन का पाँच विभाग करके प्रथम भाग को प्रातःकाल, द्वितीय को संगव, तृतीय को मध्याह्न, चतुर्थ को अपराह्न और पंचम को सायाह्न कहते हैं। सूर्यास्त के अनन्तर तीन मुहूर्त का प्रदोष होता है।

अथ एकभक्ते तिथिनिर्णयः

तत्रैकभक्ते मध्याह्नव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या। तत्रापि दिनार्धसमयेऽतीते त्रिंशद्घटिकात्मकमध्यमदिनमानेन षोडशादिघटीत्रयं मुख्यो भोजनकालः। तत ऊर्ध्वंमासायं गौणकालः। अत्र पूर्वेद्युरेव मुख्यकाले व्याप्तिः, परेद्युरेव व्याप्तिः, उभयेद्युर्व्याप्तिः, उभयत्रापि व्याप्त्यभावः, उभयत्र साम्येनैकदेशव्याप्तिः, वैषम्येनैकदेशव्याप्तिः, इति षट् पक्षा भवन्ति।

एकभक्त में मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्राह्य है। उसमें भी तीस घड़ी के मध्यम दिनमान से आधा दिन बीत जाने पर सोलह आदि तीन घड़ी भोजन का मुख्य समय है। उसके बाद सायं पर्यन्त गौण काल है। यहाँ पहले ही दिन मुख्य समय में तिथि का होना, दूसरे ही दिन मुख्य काल में तिथि का होना अथवा दोनों दिन तिथि का होना वा दोनों दिन तिथि का मुख्य काल में न रहना या दोनों दिन समानता से एकदेश में तिथि का रहना या विषमता से एकदेश में रहना इस प्रकार छ पक्ष होते हैं।

तत्र पूर्वेद्युरेव मुख्यकाले ग्राह्यतिथिसत्त्वे पूर्वैव, परत्रैव सत्त्वे परैवेत्यसंदेहः। उभयत्रापि पूर्णव्यापित्वे युग्मवाक्यान्निर्णयः। उभयत्र व्याप्त्यभावे पूर्वैव, गौणकालव्याप्तिसत्त्वात्। साम्येनैकदेशव्याप्तौ पूर्वा, वैषम्येणैकदेशव्याप्तौ दिनद्वयेपि कर्मपर्याप्ततिथिलाभे युग्मवाक्यान्निर्णयः। कर्मपर्याप्ततिथ्यलाभे पूर्वैवेति। इति एकभक्तम्।

मुख्यकाल में पहले ही दिन ग्राह्य तिथि के रहने पर पहले ही दिन एकभक्त होगा। दूसरे ही दिन ग्राह्य तिथि के मुख्यकाल में रहने से दूसरे ही दिन होगा इसमें कोई संदेह नहीं है। दोनों दिन तिथि के पूर्णव्याप्ति होने पर युग्मवाक्य से निर्णय करना। दोनों दिन तिथि के न रहने पर पूर्वा ही लेना, गौणकाल व्याप्ति होने के कारण। समता से एकदेश में रहने वाली

---

१. व्यासः—'रेखाप्रभृत्यथादित्या मुहूर्तास्त्रय एव तु। प्रातस्तु सस्मृतः कालो भागश्चाह्नः स पंचमः॥ संगवस्त्रिमुहूर्तोऽथ मध्याह्नस्तु समः स्मृतः। ततस्त्रयो मुहूर्ताश्च अपराह्णो विधीयते॥ पंचमोऽथ दिनांशो यः स सायाह्न इति स्मृतः। यद्दैवेषु विहितं तत्तत्कुर्याद्विचक्षणः॥' इति। दिन का विभाग गोभिलने चार, अन्य ने तीन और स्कान्द ने दो ही बतलाया।

तिथि में पूर्वा ली जाती है। विषमता से दोनों दिन एकदेश में रहने वाली और कर्म के पर्याप्त तिथि मिलने पर युग्मवाक्य से निर्णय होगा। यदि कर्म के लिये पर्याप्त तिथि न मिले तो पहले ही दिन करना यह एकभक्त का निर्णय समाप्त हुआ।

अथ नक्तम्

तत्र सूर्यास्तोत्तरत्रिमुहूर्तात्मकप्रदोषव्यापिनी तिथिर्नक्ते ग्राह्या। अन्यतरदिने तद्व्याप्तौ तदेकदेशस्पर्शे वा सैव ग्राह्या। भोजनं तु अस्तोत्तरं घटिकात्रयसंध्याकालं त्यक्त्वा कार्यम्। संध्याकाले भोजननिद्रामैथुनाध्ययनवर्जनात्। यतिभिरपुत्रविधुरैर्विधवाभिश्च नक्तं सायाह्नव्यापिन्यां दिनाष्टमभागे कार्यम्। रात्रौ तेषां भोजननिषेधात्। एवं सौरनक्तमपि सायाह्नव्यापिन्यां दिवैव कार्यम्। दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परा।

नक्तव्रत में सूर्यास्त के बाद तीन मुहूर्त प्रदोषवाली तिथि को लेना। दूसरे दिन यदि तीन मुहूर्त वाली प्रदोषव्यापिनी तिथि मिलती है वा एकदेश में स्पर्श करती है तो वही ग्राह्य है। घटिकात्रयात्मक संध्याकाल को छोड़ कर सूर्यास्त के बाद भोजन करना, संध्याकाल में भोजन, निद्रा, मैथुन और पढ़ना वर्जित होने से। यति, पुत्ररहित, मृत-पत्नीक और विधवाओं को सायाह्नव्यापिनी तिथि में दिन के आठवें भाग में भोजन करना, क्योंकि इन सबको रात्रि में भोजन करने का निषेध है। इसी प्रकार सूर्य सम्बन्धी नक्त भी सायाह्नव्यापिनी तिथि में दिन में ही भोजन करना। यदि दोनों दिन प्रदोष में तिथि मिलती है तो परतिथि में नक्त करना।

दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे परत्रैव। सायाह्ने दिनाष्टमभागे नक्तं कार्यं न तु रात्रौ। साम्येनैकदेशव्याप्तौ परैव। वैषम्येण प्रदोषैकदेशव्याप्तौ तदाधिक्यवती पूर्वापि ग्राह्या। यदि पूजाभोजनपर्याप्तं तदाधिक्यं लभ्यते। नोचेत्साम्यपक्षवदुत्तरैव, न त्वाधिक्यवशात्पूर्वेति।

दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी तिथि के अभाव में भी पर तिथि में करना। सायंकाल दिन के अष्टम भाग में नक्त करना, रात को नहीं। समता से एकदेश में व्याप्त तिथि में परा लेना। वैषम्य से प्रदोष के एकदेश में व्याप्त होने वाली तिथि में यदि पूर्वा तिथि अधिक हो तो पूर्वा भी ग्राह्य है। यहाँ पूजा और भोजन के लिये पर्याप्त तिथि का रहना ही आधिक्य कहलाता है। नहीं तो समता से पक्ष की तरह परा तिथि लेना, आधिक्यवश पूर्वा न लेना।

अथ नक्तव्रते रविवारादिदोषाभावः

नक्तव्रतभोजनं वैधत्वाद्रविवासरसंक्रान्त्यादावपि रात्रावेव कार्यम्। रविवारादौ रात्रिभोजननिषेधस्य रागप्राप्तभोजनपरत्वात्। एकादश्याद्युपवासप्रत्याम्नायभूतं नक्तं तूपवासनिर्णीतदिने एवेति।

नक्तव्रत का भोजन वैध है अतः सामान्य रविवार संक्रान्ति आदि में भी रात में ही करना। रविवार आदि में रात के भोजन का निषेध तो रागप्राप्त भोजन के लिये है। एकादशी के उपवास के बदले में जो नक्त व्रत है उसे जिस दिन उपवास का निर्णय है उसी दिन करना।

अथ अयाचिते निर्णयः

अयाचितस्य त्वहोरात्रसाध्यत्वादुपवासवन्निर्णयः। पित्र्याणामपराह्णादि-

व्यापित्वेन निर्णयस्तत्तत्प्रकरणे वक्ष्यते । एकभक्तनक्तायाचितोपवासानां पूर्वतिथावनुष्ठितानां परेद्युस्तिथ्यन्ते पारणम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां तिथौ प्रातःपारणमिति सर्वत्र ज्ञेयमिति माधवः । इति एकभक्तादिनिर्णयोद्देशः ॥ ५ ॥

दिन-रात में होने वाले 'अयाचित' का उपवास ही की तरह निर्णय है । पितृसंबन्धी अपराह्णादिव्याप्ति का निर्णय उन-उन प्रकरणों में कहेंगे । एकभक्त, नक्त, अयाचित और उपवास की पारणा पहली तिथि में किये हुओं का पारण दूसरे दिन तिथि के अन्त में पारण करना । तीन प्रहर से आगे जाने वाली तिथि में प्रातःकाल ही पारणा होती है, ऐसा माधव का मत है । एकभक्तादि निर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ व्रतपरिभाषा

तत्र स्त्रीशूद्राणां द्विरात्राधिकोपवासे नाधिकारः । स्त्रीणामपि भर्त्रनुज्ञां विना व्रतोपवासादौ नाधिकारः । उपवासदिने श्राद्धदिने च काष्ठेन दन्तधावनं न कार्यं पर्णादिना द्वादशगण्डूषैर्वा कार्यम् । जलपूर्णं ताम्रपात्रं गृहीत्वोदङ्मुखः प्रातरुपवासादिव्रतं संकल्पयेत् ।

स्त्री और शूद्रों को दो रात्रि से अधिक के उपवास करने का अधिकार नहीं है । पति की आज्ञा विना स्त्रियों को व्रत और उपवास का अधिकार नहीं है । उपवास के दिन काठ से दाँत को न धोना । पत्ते आदि से अथवा बारह कुल्ला जल से दन्तधावन करना । उपवास आदि व्रतों का संकल्प जल से भरे ताम्रपात्र को लेकर उत्तराभिमुख हो प्रातः करे ।

अपूर्वव्रतारम्भो व्रतोद्यापनं च मलमासे गुर्वाद्यस्ते वैधृतिव्यतीपातादिदुर्योगे विष्टौ क्रूरवारे निषिद्धे दर्शादितिथौ न भवति । एवं खण्डतिथावपि न भवति ।

उदयस्था तिथिर्याहि न भवेद्दिनमध्यभाक् ।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम् ॥ इति सत्यव्रतोक्तेः ।

नवीन व्रत का आरम्भ, विहित व्रत का उद्यापन मलमास में, गुरु आदि के अस्त होने पर, वैधृति व्यतिपात आदि दुर्योग में भद्रा में क्रूरवार और अमावास्यादि तिथि में नहीं होता । इसी प्रकार खण्ड तिथि में भी नहीं होता । जो उदया तिथि मध्यदिन में नहीं होती, उसी को खण्डा तिथि कहते हैं । ऐसे में व्रतों का आरम्भ और समाप्ति नहीं होती ऐसा सत्यव्रत का कहना है ।

अथ सामान्यतो व्रतधर्माः

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजा च हवनं संन्तोषः स्तेयवर्जनम् ॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः········· ।

अत्र होमो व्याहृतिभिः काम्यव्रतविशेषे ज्ञेयः । यद्देवताया उपोषणव्रतं तद्देवताजपस्तद्ध्यानं तत्कथाश्रवणं तदर्चनं तन्नामश्रवणकीर्तनादिकं कार्यम् । उपवासेऽन्नावलोकनगन्धादिकमभ्यङ्गं ताम्बूलमनुलेपनं च त्यजेत् ।

क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा हवन, संतोष, और चोरी न करना यही सब व्रतों का सामान्यधर्म है । यहाँ होम व्याहृतियों से किया जाता है विशेषतः काम्यव्रत

में। जिस देवता का उपवास, व्रत करते हैं उस देवता के मंत्र का जप, उस देवता का ध्यान, उसी की कथा सुनना, उसकी पूजा करना, उसके नाम का कीर्तन और उसका श्रवण आदि करना। उपवास में अन्न का देखना, गन्धयुक्त तैल मर्दनादिक, पान खाना, सुगंधित उबटन लगाना मना है।

सभर्तृकस्त्रीणां सौभाग्यव्रतेऽभ्यङ्ग[1]ताम्बूलादि न वर्ज्यम्।
अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।

सौभाग्यवती स्त्रियों को सौभाग्यव्रत में उबटन, तेल, पान आदि वर्जित नहीं है। जल, मूल, फल, दूध, हविष्य, ब्राह्मण की इच्छा, गुरुका वचन और औषध इन आठ से व्रत का भंग नहीं होता।

अथ व्रतनियमादिभङ्गे प्रायश्चित्तम्।

प्रमादादिना व्रतभङ्गे दिनत्रयमुपोष्य क्षौरं कृत्वा पुनर्व्रतं कुर्यात्। अशक्तस्योपवासप्रतिनिधिरेकब्राह्मणभोजनं तावद्धनादिदानं वा सहस्रगायत्रीजपो वा द्वादशप्राणायामा वा प्रायश्चित्तम्।

भूल से व्रतभंग होने पर मुंडन करा के तीन दिन का उपवास करके फिर व्रत करना चाहिये। तीन दिन के उपवास में असमर्थ व्यक्ति को एक ब्राह्मण का भोजन या उसका मूल्य देना अथवा सहस्र गायत्री जप या बारह प्राणायाम प्रायश्चित्त है।

स्वीकृतं व्रतं कर्तुमशक्तः प्रतिनिधिना कारयेत्। पुत्रः पत्नी भर्ता भ्राता पुरोहितः सखा चेति [2]प्रतिनिधयः। पुत्रादिः पित्राद्युद्देशेन व्रतं कुर्वन् स्वयमपि व्रतफलं लभते।

स्वीकार किये हुए व्रत को करने में असमर्थ व्यक्ति को चाहिए कि पुत्र, पत्नी, पति, भाई, पुरोहित और मित्र से उस व्रत को करावे। पुत्र का पिता आदि के उद्देश्य से व्रत करता हुआ स्वयं भी व्रत का फल पाता है।

अथ उपवास-नाशकानि

असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात्।
उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥

इत्यष्टविधं मैथुनम्।

उपवास में बार-बार जल पीना, एक बार ताम्बूल चबाना, दिन में सोना, अष्टविध मैथुन

---

१. गारुडे—'गन्धालङ्कारताम्बूलपुष्पमालाऽनुलेपनम्। उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्॥' इति।

२. निर्णयामृते प्रतिनिधयः—'भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्। असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते॥' स्कान्दे—'पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा। एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेद्॥' मदनरत्ने प्रभासखण्डे—'भर्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखाऽपि च। यात्रायां धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः। एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत्॥' इति।

वर्जित है। अष्टविध मैथुन—स्मरण, कीर्तन, केलिप्रेक्षण, गुप्तकथन, संकल्प, अध्यवसाय (निश्चय) और क्रिया की पूर्ति।

प्राणसंकटेष्वसकृज्जलपाने दोषो नास्ति। चर्मस्थं जलं गोभिन्नक्षीरं मसूरं जम्बीरफलं शुक्तिचूर्णमित्यामिषगणो व्रते वर्ज्यः। अश्रुपातक्रोधादिना सद्यो व्रतनाशः। परान्नभोजने चापि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्।

एक से अधिक बार जल न पीने से प्राण संकट में हो तो दुबारा जल पीने में कोई दोष नहीं है। मशक का जल, गाय से भिन्न पशुओं का दूध, मसूर, जँभीरी नीबू, सितुही का चूना यह मांसगण व्रत में वर्जित है। आँसू गिराने से क्रोधादि से, तुरत व्रत का नाश हो जाता है। जिसका अन्न होता है उसीको फल भी मिलता है।

हविष्याणि—तिलमुद्गभिन्नचणकादिकोशीधान्यंमाषादिकं मूलकं चेत्येवमादि क्षारगणं लवणमधुमांसादिकं च वर्जयेत्। श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाश्च व्रते हिताः। व्रीहिमुद्गयवतिलकङ्गुकलायादिधान्यं रक्तेतरमूलकं सूरणादिकन्दः सैन्धव-सामुद्रलवणे गव्यदधिसर्पिर्दुग्धानि पनसफलमाम्रफलं नारीकेलं हरीतकी पिप्पली जीरकं शुण्ठी तिन्तिणीकदलीलवलीधात्रीफलानि गुडेतरेक्षुविकार इत्येतानि अतैलपक्वानि हविष्याणि। गव्यं तक्रं माहिषं घृतमपि क्वचित्।

तिल मूंग को छोड़कर चना आदि जो छिलका युक्त उड़द इत्यादि और मूली आदि क्षारवस्तु, लवण, मधु, मांस आदि को त्याग दे। साँवाँ, नीवार, गेहूँ व्रत में हितकर है। धान, मूँग, जव, तिल, कंगुनी, कुलथी आदि धान्य, लाल से भिन्न वर्ण वाला मूली, सूरण आदि कन्द, सेंधा सामुद्रनमक, गाय का दही, घी, दूध, कटहल और आम का फल, नारियल, हर्रे, पीपल, जीरा, सोंठ, इमली, केला, बड़हर और आँवला, गुड़ को छोड़कर ईख का विकार यदि तेल में न पके हों तो इसे हविष्य कहते हैं। कहीं पर गाय का मट्ठा और भैंस का घी भी हविष्य है।

अथ अनुक्तव्रत विधौ विधानम्।

अनुक्तव्रतविधिस्थले माषादिपरिमितसुवर्णरजतादिप्रतिमा पूज्या। द्रव्यानुक्तावाज्यहोमः। देवतानुक्तौ प्रजापतिः। मन्त्रानुक्तौ समस्तव्याहृतयः। संख्यानुक्तावष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरष्टौ वा होमसंख्या। उपवासे कृते ब्राह्मणभोजनं तत्साङ्गतार्थम्।

जिस व्रत में कोई विधि नहीं कही गई है, उसमें मासे आदि तौल के सोने अथवा चाँदी की प्रतिमा पूजी जाती है। होम में द्रव्य के नाम न होने पर घृत से हवन होता है। जहाँ देवता का नाम नहीं कहा गया है वहाँ प्रजापतिदेवता होते हैं। मंत्र नहीं कहने पर सम्पूर्ण व्याहृति ही मंत्र है। जहाँ संख्या नहीं बतलायी गयी है, वहाँ १०८,२८ या ८ बार होम करना चाहिए। उपवास करने पर उसकी सफलता के लिये ब्राह्मण भोजन होता है।

उद्यापनानुक्तौ गां सुवर्णं वा दद्यात्। विप्रवचनाद् व्रतसाङ्गता विप्रवचनं च दक्षिणां दत्त्वैव ग्राह्यम् सर्वत्र गृहीतव्रतत्यागे चाण्डालतुल्यत्वम्। विधवाभिर्व्रतादौ चित्ररक्तादिवस्त्रं न धार्यं श्वेतमेव धार्यम्।

जिसका उद्यापन नहीं कहा गया है उस स्थान पर गोदान या सुवर्णदान करना चाहिए। ब्राह्मण के वचन से व्रत सम्पूर्ण होता है। दक्षिणा देकर ही ब्राह्मण से वचन ग्रहण करना चाहिए। स्वीकृत व्रत के त्याग करने पर चाण्डाल तुल्य होता है। व्रत की अवस्था में विधवा को श्वेत वस्त्र पहनना चाहिए, रंगा हुआ वस्त्र नहीं पहने।

[1]सूतकादौ स्त्रीणां रजोदोषादौ ज्वरादौ च गृहीतव्रतादौ शारीरनियमान् स्वयं कुर्यात्। पूजादिकमन्यद्वारा कारयेत्। अपूर्वारम्भस्तु सूतकादौ न भवति।

काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः।
काम्येष्वुपक्रमादूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिं विदुः॥
न स्यात् प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु।
नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित्॥

स्त्रियों का व्रत में सूतक या अशौच प्राप्त होने पर या रजस्वला होने पर तथा ज्वरादि रोग होने पर शरीर के नियमों को स्वयं करे। पूजा आदि दूसरे से करावे। नवीन व्रतारम्भ, सूतक और रजोधर्मादि में नहीं होता। काम्यकर्म में प्रतिनिधि नहीं होता। प्रतिनिधि तो नित्य और नैमित्तिककर्म में होता है। काम्यकर्म में भी आरम्भ के अनन्तर कुछ लोग प्रतिनिधि मानते हैं। मंत्र का, स्वामी का, देवता का और अग्निकर्म का प्रतिनिधि नहीं होता। निसिद्ध वस्तु का भी प्रतिनिधि नहीं होता

अथ व्रतादीनां सन्निपाते

व्रतादिसन्निपाते दानहोमाद्यविरुद्धं क्रमेण कार्यम्। विरुद्धे तु नक्तभोजनोपवासादावेकं स्वयं कृत्वाऽन्यत्पुत्रभार्याऽऽदिना कारयेत्। यत्र चतुर्दश्यष्टम्यादौ दिवाभोजननिषेधो व्रतान्तरपारणा च प्राप्ता तत्र भोजनमेव कार्यम्। पारणाया विधिप्राप्तत्वात्। निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनपरः। एवं रविवारादौ संकष्टचतुर्थ्यादिव्रते रात्रिभोजनमेव कार्यम्।

कई व्रतों के एक साथ पड़ने पर दान होम आदि अविरुद्धकर्म क्रम से करे। जो विरोधी नक्त उपवास आदि हैं एक स्वयं करे, दूसरे व्रतों को पुत्रादि से करावे। जिस स्थल में चतुर्दशी, अष्टमी आदि में दिन में भोजन का निषेध है तथा उसी समय व्रतान्तर की पारणा भी प्रस्तुत है, ऐसे स्थल में भोजन ही करे। पारणाविधि से प्राप्त है क्योंकि निषेध तो रागप्राप्त भोजनपरक है। इसी तरह रविवार आदि संकष्ट चतुर्थी आदि व्रत में रात्रिभोजन करना ही प्रशस्त है।

यत्राष्टम्यादौ दिवाभोजननिषेधो रात्रौ तु रविवारादिप्रयुक्तभोजननिषेधस्तत्रार्थप्राप्त उपवासः। यत्र तु पुत्रवद्गृहस्थस्य संक्रान्त्यादावुपवासोऽपि निषिद्धो भोजनस्याप्यष्टम्यादिप्रयुक्तनिषेधस्तत्र किंचिद्भक्ष्यं प्रकल्प्योपवास एव कार्यः। चान्द्रायणमध्ये एकादश्यादिप्राप्तौ ग्राससंख्यानियमेन भोजनमेव कार्यम्। एवं कृच्छ्रादिव्रतेऽपि।

---

१. हेमाद्रौ पाद्मे—'गर्भिणी सूतिकादिश्च कुमारी वाऽथ रोगिणी। यदाऽशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत् प्रयता स्वयम्॥' इति।

जहाँ अष्टमी आदि में दिवा भोजन वर्जित है और रात में तो रविवार होने के कारण से भोजन वर्जित है वहाँ तो उपवास ही करना चाहिए। तथा जहाँ पुत्रवाले गृहस्थ को सक्रान्ति आदि में उपवास भी निषेध है और अष्टमी आदि प्रयुक्त भोजन का भी निषेध है वहाँ कुछ भक्ष्य की कल्पना करके उपवास ही करना चाहिए। चान्द्रायण आदि व्रतों में तो एकादशी के होने पर ग्रास संख्या के नियम से भोजन ही करना इष्ट है। इसी तरह कृच्छ्रादि व्रतों में भी।

अथ एकादश्यां पारणायाः प्राप्तौ

एवमेकादश्यामेकान्तरोपवासादिप्रयुक्तपारणायां प्राप्तायां जलपारणं कृत्वोपवसेत्। एवं द्वादश्यां मासोपवासश्राद्धप्रदोषादिप्रयुक्तपारणप्रतिबन्धे जलपारणं कार्यम्। एकादश्यादौ संक्रमे पुत्रवद्गृहस्थस्योपवासनिषेध एकादश्युपवासश्च प्राप्तस्तत्रापि किंचिदापो मूलं फलं पयो वा भक्ष्यं कल्प्यम्।

इसी प्रकार एक दिन बीच देकर उपवास करने वालों को उसकी पारणा के दिन एकादशी उपस्थित होने पर जल से पारणा कर उपवास करे। एवं द्वादशी में, महीने भर के उपवास में, श्राद्ध में, प्रदोष आदि की पारणा की रुकावट होने पर जल से ही पारण कर लेना चाहिये। एकादशी आदि व्रत में संक्रान्ति हो तो पुत्रवाले गृहस्थों को उपवास निषेध होने के कारण और एकादशी में उपवास प्राप्त होता हो तो ऐसे अवसर में कुछ जल, फल, मूल और दूध से उपवास का निषेध और एकादशी का उपवास भी सम्पन्न होता है।

द्वयोरुपवासयोर्नक्तयोरेकभक्तयोर्वैकस्मिन्दिने प्राप्तौ अमुकोपवासममुकोपवासं चोभयं तन्त्रेण करिष्य इत्यादि सङ्कल्प्य सहैवोपवासपूजाहोमानामनुष्ठानम्। यत्रोपवासैकभक्तयोरेकदिने प्राप्तिस्तत्र तिथिद्वैधे गौणकालव्याप्तिमाश्रित्य एकं पूर्वतिथौ द्वितीयं शेषतिथौ कार्यम्। अखण्डतिथावेकं पुत्रादिना कारयेदित्युक्तम्।

एक ही दिन दो उपवास, दो नक्त, दो एकभक्त प्राप्त होने पर "अमुक उपवास और अमुक उपवास हम तन्त्र से करेंगे" ऐसा संकल्प कर साथ ही उपवास, पूजा, होमों का अनुष्ठान होता है। जहाँ उपवास और एकभक्त एक दिन पड़ते हों और तिथि भिन्न हो वहाँ गौणकाल मानकर एक की पहली तिथि में, दूसरे की शेष तिथि में करना। यदि तिथि सम्पूर्ण हो तो एक को पुत्रादि से करावे और एक स्वयं करे।

एवं 'काम्यं नित्यस्य बाधकम्' इत्यादिवाक्यैः काम्यनित्यादिबलाबलबाधाबाधसंभवासंभवादि विचार्यानुष्ठानमूह्यम्। इति सामान्यव्रतपरिभाषोद्देशः॥ ६॥

इसी तरह "काम्य नित्य का बाधक होता है" इत्यादि वचनों से काम्य नित्य का बलाबल, बाधाबाध, संभवासंभव आदि का विचार करके इसके अनुष्ठान की कल्पना करे। सामान्य व्रतपरिभाषोद्देश्य समाप्त।

अथ प्रतिपदादिनिर्णयः

तत्र प्रतिपन्निर्णयः—शुक्लप्रतिपत्[1] पूजाव्रतादावपराह्णव्याप्तिसत्त्वे पूर्वविद्धा

---

१. शुक्लपक्ष में चन्द्रकलाओं के क्रमशः प्रथम द्वितीय आदि कलाओं के बढ़ने और कृष्णपक्ष में क्रमशः प्रथम द्वितीय आदि कलाओं के क्षीण होने से तिथियों के प्रतिपदा द्वितीया तृतीया आदि नाम हुये। पंचदशी के पूर्णिमा अमावास्या ये दो नाम भेद की विशेषता पूर्णिमामावस्या निर्णय में देखें।

ग्राह्या । सायाह्नव्यापित्वेपि पूर्वैवेति माधवाचार्याः । अन्यथा द्वितीयायुता ग्राह्या। कृष्णप्रतिपत्सर्वापि द्वितीयायुतैव ग्राह्या । उपवासे तु पक्षद्वयेपि प्रतिपत्पूर्वविद्धेव ग्राह्य । अपराह्णव्यापिन्यां प्रतिपदि करणीयस्योपवासादेःसङ्कल्पं प्रातरेव कुर्यात् ।

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा पूजा व्रत आदि में अपराह्न में व्याप्त हो तो पूर्वविद्धा ग्राह्य है। माधवाचार्य का मत है कि सायाह्न में रहनेवाली शुक्लपक्ष की प्रतिपदा भी पूर्वा ही लेना। इसके विपरीत द्वितीयायुक्त लेना। सभी कृष्णपक्ष की प्रतिपदा द्वितीयायुक्त ही लेना। उपवास में तो प्रतिपदा दोनों पक्षों में पूर्वविद्धा ही ग्रहण करना। अपराह्णव्यापिनी प्रतिपदा में करने वाले उपवास आदि का संकल्प प्रातःकाल ही करे।

सङ्कल्पकाले प्रतिपदादितिथ्यभावेपि सङ्कल्पे प्रतिपदादिरेव वक्तव्यो न त्वमावास्यादिः। एवमुपोष्या द्वादशी शुद्धेत्यादिस्थले एकादशीव्रतप्रयुक्तसङ्कल्प-पूजादावेकादश्येव कीर्तनीया नतु द्वादशी । सन्ध्याग्निहोत्रादिकर्मान्तरेषु तत्तत्का-लव्यापिनी द्वादश्यादिरेवेति मम प्रतिभाति। संकल्पश्च सूर्योदयात्प्रागुषःकाले सूर्योदयोत्तरं प्रातःकालाख्यत्रिमुहूर्तस्याद्यमुहूर्तद्वये प्रशस्तः, तृतीयो मुहूर्तस्तु निषिद्धः। इति प्रतिपन्निर्णयोद्देशः ॥ ७ ॥

सकल्प के समय में प्रतिपदा तिथि न रहने पर भी संकल्प में प्रतिपदा तिथि ही कहना अमावास्या तिथि नहीं कहना। इसी तरह शुद्धा द्वादशी में उपवास आदि करने वाले एकादशी व्रत प्रयुक्त पूजा संकल्पादिक में एकादशी ही कहना द्वादशी नहीं कहना। संध्या, अग्निहोत्र आदि दूसरे कर्मों में उस काल वाली द्वादशी आदि तिथि को ही कहना। संकल्प तो सूर्योदय से पहले उषा काल में और सूर्योदय के बाद त्रिमुहूर्तात्मक प्रातःकाल में पहले दो मुहूर्त में उत्तम है। तीसरा मुहूर्त का निषेध है। प्रतिपन्निर्णयोद्देश समाप्त।

अथ द्वितीयानिर्णयः

द्वितीया शुक्लपक्षे परविद्धा ग्राह्या । कृष्णपक्षे तु द्वेधा विभक्तदिनपूर्वभागा-त्मकपूर्वाह्णप्रविष्टा चेत्पूर्वा ग्राह्या। अन्यथा तु कृष्णपक्षेपि द्वितीया परविद्धैव। इति द्वितीयानिर्णयोद्देशः ॥ ८ ॥

द्वितीया शुक्लपक्ष में तृतीया विद्धा ग्राह्य है। कृष्णपक्ष में दिन का दो भाग करने पर पूर्वाह्ण में यदि द्वितीया प्रवेश करती हो तो पूर्वा लेना। इसके विपरीत कृष्णपक्ष में भी परविद्धा लेना। द्वितीयानिर्णयोद्देशसमाप्त।

अथ तृतीयानिर्णयः

तृतीया रम्भाव्रते पूर्वविद्धा ग्राह्या। रम्भाव्यतिरिक्तव्रतेषु त्रिमुहूर्तद्वितीया-विद्धां पूर्वां त्यक्त्वा परदिने त्रिमुहूर्तव्यापिनी ग्राह्या। पूर्वदिने त्रिमुहूर्तन्यूनद्विती-यावेधे परदिने त्रिमुहूर्तव्याप्त्यभावे पूर्वा ग्राह्या। पूर्वदिने त्रिमुहूर्तद्वितीयावेधे परदिने त्रिमुहूर्तन्यूनापि ग्राह्या। गौरीव्रते तु कलाकाष्ठादिपरिमितस्वल्पद्वितीया-युक्तापि निषिद्धा। परदिने कलाकाष्ठादिपरिमिता स्वल्पापि तृतीया परिग्राह्या।

तृतीया रम्भा व्रत में पूर्वविद्धा ग्राह्य है। रम्भा को छोड़कर अन्य व्रतों में तीन मुहूर्त द्वितीया

विद्धा पूर्वा को छोड़कर दूसरे दिन त्रिमुहूर्तव्यापिनी तृतीया लेना। यदि पहले दिन तीन मुहूर्त से न्यून द्वितीया के वेध हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त न रहने पर पूर्वा लेना। पहले दिन तीन मुहूर्त द्वितीया वेध होने पर दूसरे दिन त्रिमुहूर्त से कम होने पर भी तृतीया ग्राह्य है। गौरीव्रत में कलाकाष्ठा आदि स्वल्प द्वितीया युक्त भी तृतीया निषिद्ध है। दूसरे दिन कला-काष्ठादि स्वल्प भी तृतीया ग्राह्य है।

यदा तु दिनक्षयवशात्परदिने स्वल्पापि चतुर्थीयुता तृतीया न लभ्यते, पूर्वदिने च द्वितीयाविद्धा तदा द्वितीयाविद्धैव ग्राह्या। यदा च दिनवृद्धिवशात्पूर्वदिने षष्टिघटिका तृतीया परदिने च घटिकादिशेषवती, तदा पूर्वां शुद्धां षष्टिघटिकामपि त्यक्त्वा चतुर्थीयुतैव गौरीव्रते ग्राह्या। इति तृतीयानिर्णयोद्देशः ॥ ९ ॥

जब दिन के क्षय होने से दूसरे दिन थोड़ी भी चतुर्थीयुता तृतीया नहीं मिलती और पूर्व दिन में द्वितीयाविद्धा मिलती है तो द्वितीयाविद्धा ही लेना। जब दिन वृद्धि के कारण पहले दिन ६० घड़ी तृतीया हो और दूसरे दिन घड़ी दो घड़ी तृतीया हो तब साठ घड़ी वाली शुद्धा तृतीया को छोड़कर चतुर्थीयुक्त तृतीया गौरी व्रत में लेना। तृतीयानिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ चतुर्थीनिर्णयः

चतुर्थी गणेशव्रतातिरिक्तोपवासकार्ये पञ्चमीयुता ग्राह्या। गौरीविनायकव्रतयोस्तु मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। परदिन एव मध्याह्नव्यापिनी चेत्परैव। दिनद्वये मध्याह्नव्यापित्वे दिनद्वये मध्याह्नव्याप्त्यभावे साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तौ च पूर्वैव, तृतीयायोगप्राशस्त्यात्।

गणेश व्रत के अतिरिक्त उपवास में पचमीयुक्त चतुर्थी लेना। गौरी और विनायक व्रत में तो मध्याह्न में रहनेवाली चतुर्थी लेना। दूसरे दिन यदि मध्याह्न में हो तो दूसरी ही लेना। दो दिन मध्याह्न में चतुर्थी हो या दोनों दिन मध्याह्न में न हो अथवा समता-विषमता से एकदेश में हो तो पूर्वा ही लेना, तृतीया योग के प्रशस्त होने से।

नागव्रते तु पूर्वदिन एव मध्याह्नव्यापिनी चेत्पूर्वैव। उभयदिनमध्याह्नव्याप्त्यादिपक्षचतुष्टये पञ्चमीयुतैव ग्राह्या। संकष्टचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। परदिने चन्द्रोदयव्याप्तौ परैव। उभयदिने चन्द्रोदयव्यापित्वे तृतीयायुतैव ग्राह्या। दिनद्वये चन्द्रोदयव्याप्त्यभावे परैव। इति चतुर्थीनिर्णयोद्देशः ॥ १० ॥

नागव्रत में तो पूर्व दिन में ही मध्याह्न में हो तो पूर्वा ही लेना। दोनों दिन मध्याह्न में हो, दोनों दिन मध्याह्न में न हो, समता से विषमता से एकदेश में हो तो पंचमीयुक्त ही लेना। संकष्टचतुर्थी तो चन्द्रोदयव्यापिनी लेना। दूसरे दिन चन्द्रोदय में हो तो दूसरे ही दिन और दोनों दिन चन्द्रोदय में हो तो तृतीयायुक्त लेना। अगर दोनों दिन चन्द्रोदयकाल में न हो तो परा चतुर्थी ही ग्राह्य है। चतुर्थीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ पञ्चमीनिर्णयः

पञ्चमी शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च कर्ममात्रेपि चतुर्थीविद्धा ग्राह्या। स्कन्दोपवासे तु षष्ठीयुता ग्राह्या। नागव्रते पञ्चमी परविद्धा ग्राह्या। परेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूना

पञ्चमी पूर्वेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूनचतुर्थ्या विद्धा तदा पूर्वैव। त्रिमुहूर्ताधिकचतुर्थीवेधे द्विमुहूर्तापि परैव। इति पञ्चमीनिर्णयोद्देशः ॥ ११ ॥

शुक्ल या कृष्णपक्ष में पंचमी कर्ममात्र में चतुर्थीविद्धा ग्राह्य है। स्कन्दोपवास में तो षष्ठी-युक्त लेना। नागव्रत में परविद्धा पंचमी लेना। दूसरे दिन तीन मुहूर्त से अल्प पंचमी पहले दिन तीन मुहूर्त से कम चतुर्थी से वेध होने पर पूर्वा ही लेना। तीन मुहूर्त से अधिक चतुर्थी वेध होने पर दो मुहूर्तवाली परा ही लेना। पंचमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ षष्ठीनिर्णयः

षष्ठी स्कन्दव्रते पूर्वविद्धा ग्राह्या। अन्यव्रतेषु परविद्धैव। पूर्वेद्युः षण्मुहूर्तन्यून-पञ्चम्या वेधे पूर्वापि। षष्ठीसप्तम्यो रविवासरयोगे पद्मकयोगः। इति षष्ठीनिर्णयोद्देशः ॥ १२ ॥

षष्ठी स्कन्दव्रत में पूर्वविद्धा और अन्य व्रतों में परविद्धा ही ग्राह्य है। पहले दिन ६ मुहूर्त से कम पंचमी वेध होने पर पूर्वा भी लेना। रविवार को षष्ठी-सप्तमी से योग होने पर पद्मकयोग होता है। षष्ठीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ सप्तमीनिर्णयः

सप्तमी कर्ममात्रे षष्ठीयुतैव ग्राह्या। यदा पूर्वेद्युरस्तमयपर्यन्ता षष्ठीति दिवा षष्ठीविद्धा न लभ्यते परेद्युश्चाष्टमीविद्धा तदा चागत्या परैव। एवं तिथ्यन्तरनिर्णये-ष्वप्यूह्यम्। इति सप्तमीनिर्णयोद्देशः ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण कर्म में षष्ठीयुक्त ही सप्तमी ग्राह्य है। जब पहले दिन सूर्यास्त तक षष्ठी हो दिन में षष्ठी वेध न हो और दूसरे दिन अष्टमी विद्धा हो तब अगत्या पर ही लेना। इसी तरह और तिथियों के निर्णय में भी कल्पना करना। सप्तमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथाष्टमीनिर्णयः

व्रतमात्रेऽष्टमी शुक्लपक्षे परा कृष्णपक्षे पूर्वा। मिलितशिवशक्त्योरुत्सवे कृष्णापि परा। बुधाष्टमी शुक्लपक्षे प्रातःकालमारभ्यापराह्णपर्यन्तं यद्दिने मुहूर्त-मात्रोपि बुधवासरयोगः सा ग्राह्या। सायाह्नकाले चैत्रमासे श्रावणादिमास-चतुष्टये कृष्णपक्षे च न ग्राह्या।

व्रतमात्र में शुक्लपक्ष की अष्टमी परा और कृष्णपक्ष की पूर्वा विहित है। सम्मिलित शिव और शक्ति के उत्सव में, कृष्णाष्टमी भी परा होती है। शुक्लपक्ष में प्रातःकाल से लेकर अपराह्ण तक जिस दिन मुहूर्तमात्र भी बुधवार का योग हो तो उसे बुधाष्टमी कहते हैं। सायंकाल में चैत्र मास में श्रावण आदि चार महीनों में और कृष्णपक्ष में भी बुधाष्टमी नहीं मानना।

सर्वकृष्णाष्टमीषु कालभैरवोद्देशेन केचिदुपवसन्ति। तत्र मार्गशीर्षकृष्णाष्टम्यां भैरवजयन्तीत्वात्तद्वन्निर्णयौचित्येन मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वैव। प्रदोषव्यापिनीति कौस्तुभे। अत उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ द्विविधवाक्या-विरोधाय परैव। पूर्वत्र प्रदोषव्याप्तिरेव परत्र मध्याह्ने एव तदा बहुशिष्टाचारा-नुरोधात्प्रदोषगा पूर्वैव।

सब महीनों के कृष्णाष्टमी में कालभैरव के उद्देश्य से कुछ लोग उपवास करते हैं। वहाँ मार्ग-शीर्ष कृष्णाष्टमी में भैरव-जयन्ती होने से वैसा ही निर्णय उचित होगा अतः मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी

ग्राह्य है। दोनों दिन मध्याह्न में होने पर पूर्वा लेना। कौस्तुभ में प्रदोषव्यापिनी अष्टमी माननीय है। इसलिये दोनों दिन प्रदोष में होने पर दोनों प्रकार के वाक्यों के अविरोध से परा ही ग्रहण करना। पहले दिन प्रदोष में अष्टमी हो, दूसरे दिन मध्याह्न में हो, ऐसी स्थिति में अधिक शिष्टाचार के अनुरोध से प्रदोषवाली अष्टमी पूर्वा ही लेना।

यत्तु 'अर्कपर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा' इति वचनाद्दिवाभोजननिषेधमात्र-परिपालनं न तु किंचिद् व्रतम्। तत्र 'निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति वचनाद्भोजनकालव्यापिनीमष्टमीं त्यक्त्वा नवम्यां सप्तम्यां वा भोक्तव्यमिति भाति। युक्तमयुक्तं वा सद्भिर्विचारणीयम्। इत्यष्टमीनिर्णयोद्देशः ॥ १४ ॥

यह जो कहा है द्वादशी, पूर्णिमा, अमावस्या की रात में और चतुर्दशी और अष्टमी में दिन में भोजन नहीं करना यह निषेध का पालनमात्र है कोई व्रत नहीं है। क्योंकि निषेध तो निवृत्तिस्वरूप है। "निवृत्तिस्वरूप होने से काल की अपेक्षा करता है।" इस वचन से भोजनकाल-व्यापिनी अष्टमी को छोड़कर नवमी या सप्तमी में भोजन करना ऐसा मुझे प्रतीत होता है। युक्त-अयुक्त का सज्जन लोग विचार करें। अष्टमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ नवमीनिर्णयः

नवमी सर्वत्राष्टमीविद्धैव ग्राह्या। इति नवमीनिर्णयोद्देशः ॥ १५ ॥

नवमी शुक्ल वा कृष्णपक्ष में अष्टमीविद्धा ही ग्राह्य है। नवमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ दशमीनिर्णयः

दशमी तूपवासादौ नवमीयुतैव ग्राह्या। पूर्वविद्धाया अलाभे उत्तरविद्धाऽपि ग्राह्या। इति दशमीनिर्णयोद्देशः ॥ १६ ॥

दशमी उपवास आदि में नवमीयुक्त लेना। नवमीयुक्त न मिलने पर परविद्धा भी ग्राह्य है। दशमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथैकादशीनिर्णयः

तत्रैकादश्युपवासो द्वेधा-भोजननिषेधपरिपालनात्मको व्रतात्मकश्च। आद्ये पुत्रवद्गृहस्थादीनां कृष्णपक्षेप्यधिकारः। व्रतात्मकोपवासस्तु अपत्ययुक्तैर्गृहस्थैश्च कृष्णपक्षे न कार्यः। किंतु समन्त्रकं व्रतसङ्कल्पमकृत्वा यथाशक्ति नियमयुतं भोजन-वर्जनमेव कार्यम्। एवं तिथिक्षये शुक्लैकादश्यामपि ज्ञेयम्।

एकादशी का उपवास दो प्रकार का होता है—एक भोजन न करना मात्र और दूसरा व्रतस्वरूप। पहले में पुत्रवाले गृहस्थों का कृष्णपक्ष में भी अधिकार है। दूसरा व्रतस्वरूप उपवास तो सन्तानवाले गृहस्थों को कृष्णपक्ष में नहीं करना चाहिए। मंत्र के सहित व्रत का संकल्प न करके शक्त्यनुसार नियमपूर्वक भोजन का वर्जन ही करना। इसी प्रकार शुक्लपक्ष की एकादशी में भी तिथि के क्षय होने पर पूर्ववत् भोजन का वर्जन करना।

शयनीबोधिनीमध्यवर्तिकृष्णैकादशीषु सापत्यगृहस्थादीनां सर्वेषामधिकारः। विष्णुसायुज्यकामैरायुःपुत्रकामैश्च काम्यव्रतं पक्षद्वयेपि कार्यं तत्र न कोपि निषेधः। वैष्णवगृहिणां कृष्णैकादश्यपि नित्योपोष्या। इदमेकादशीव्रतं शैववैष्णवसौरादीनां सर्वेषां नित्यम्। अकरणे प्रत्यवायश्रवणात्। संपत्त्यादिफलश्रवणात्काम्यं च भवति।

पुत्रवाले गृहस्थों को आषाढशुक्ल एकादशी (शयनी), कार्तिक शुक्ल एकादशी (बोधिनी), इनके बीच पड़नेवाली कृष्ण एकादशी में सबका अधिकार है। जो मोक्ष आयु और पुत्र की कामना से एकादशी व्रत करते हैं उनको दोनों पक्षों की एकादशी करनी चाहिए इसका कोई निषेध नहीं है। वैष्णव-गृहस्थों को कृष्णपक्ष की एकादशी भी नित्य उपवास योग्य है। यह एकादशी व्रत शैव, वैष्णव और सूर्योपासकादिकों का नित्य है: नहीं करने से प्रायश्चित्त होता है। एकादशी व्रत करने से सम्पत्ति आदि का जो फल सुना जाता है, अतः काम्य भी है।

केचिन्मुहूर्तादिमितदशमीसत्त्वे दशम्यामेव भोजनं कर्तव्यम्। सूर्योदयात्पूर्वमेव प्रवृत्तायां शुद्धाधिकाधिकद्वादशिकायां तु नैरन्तर्येणोपवासद्वयं कार्यमिति तिथिपालनमपि वदन्ति तन्न युक्तम्।

कुछ लोग मुहूर्त आदि मित दशमी के होने पर दशमी के होने पर दशमी में ही भोजन करना और सूर्योदय से पहले ही शुद्धा अधिका और अधिकद्वादशिका एकादशी में दो उपवास निरन्तर करना। यह तिथि का पालन भी कहते हैं यह ठीक नहीं है।

अथ एकादशीव्रताधिकारी

अष्टमवर्षादूर्ध्वमशीतितमवर्षपर्यन्तमेकादशीव्रताधिकारः। शक्तस्य तु अशीतेरूर्ध्वमप्यधिकारः। सभर्तृकाणां स्त्रीणां भर्त्रनुज्ञां पित्राद्यनुज्ञां वा विनोपवासव्रताद्याचरणे व्रतवैफल्यं भर्त्रायुःक्षयो नरकश्च। अशक्तानां तु—

नक्तं हविष्यान्नमनौदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु चाज्यम्।
यत्पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च॥

इति पक्षेषु शक्तितारतम्येनैकपक्षाश्रयणं न त्वेकादशीत्यागः।

आठ वर्ष से ८० वर्ष पर्यन्त का व्यक्ति एकादशी व्रत का अधिकारी है। जो शक्ति-सम्पन्न हैं उन्हें ८० वर्ष से आगे भी अधिकार है। सौभाग्यवती स्त्रियों के पति और पिता आदि की आज्ञा विना उपवास व्रत आदि करने से व्रत विफल, पति के आयु का नाश और नरक भी होता है। जो लोग एकादशी करने में असमर्थ हैं उनको एकादशी के स्थान पर नक्तव्रत भात को छोड़कर "हविष्य अन्न, फल, तिल, दूध, जल, घी, पंचगव्य और वायु इनमें से उत्तरोत्तर अपनी शक्ति के तारतम्य से एक पक्ष को स्वीकार करना चाहिए। किन्तु एकादशी का त्याग नहीं करना।

प्रमादादिनैकादश्यामुपोषणाद्यकरणे द्वादश्यामपि व्रतं कार्यम्। द्वादश्यामप्यकरणे यवमध्यचान्द्रायणं प्रायश्चित्तम्। नास्तिक्यादकरणे पिपीलिकामध्यचान्द्रायणम्। अशक्तपतिपित्राद्युद्देशेन स्त्रीपुत्रभगिनीभ्रात्रादिभिरेकादशीव्रताचरणे क्रतुशतजं पुण्यम्।

भूल से एकादशी में उपवास आदि न करने पर द्वादशी में भी व्रत किया जा सकता है। द्वादशी में भी व्रत नहीं करने से यवमध्य चान्द्रायण उसके लिये प्रायश्चित्त है। नास्तिक्य के कारण एकादशी व्रत न करने से पिपीलिकामध्य चान्द्रायण व्रत प्रायश्चित्त करना चाहिए। शक्तिहीन पति पुत्रादि के लिये स्त्री, पुत्र, बहन, भाई आदि के द्वारा एकादशी व्रत करने से सौ यज्ञों का पुण्य होता है।

अथ द्वादशीव्रतदिननिर्णयः

तत्र व्रताधिकारिणो द्विविधाः—वैष्णवाः स्मार्ताश्च। तत्र यद्यपि 'यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी' इत्यादिलक्षणयुक्ता वैष्णवास्तद्भिन्नाः स्मार्ता इति महानिबन्धे-

षूक्तम्। तथापि स्वपारंपर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्तत्वं च वृद्धा मन्यन्ते इति सिन्धूक्तमेव सर्वदेशे सर्वशिष्टपरिगृहीतं प्रचरति।

एकादशी व्रत के अधिकारी दो प्रकार के होते हैं—वैष्णव और स्मार्त। जिसको वैष्णवी दीक्षा दी गयी है ऐसे लक्षणों से युक्त वैष्णव कहलाते हैं उससे भिन्न स्मार्त हैं ऐसा बड़े निबन्धों में कहा है। तब भी वैष्णवत्व स्मार्तत्व अपनी परम्परा से प्रसिद्ध ही वृद्ध लोग मानते हैं ऐसा 'निर्णयसिन्धु' में कहा है और सर्वत्र सकलशिष्ट परिगृहीत माना है।

वेधोपि द्विविधः—अरुणोदये दशमीवेधः सूर्योदये तद्वेधश्च। सूर्योदयात्प्राक् चतुर्घटिकात्मकोऽरुणोदयः। सूर्योदयस्तु स्पष्टः। तेन षट्पञ्चाशद्घटिकानन्तरं पलादिमात्रदशमीप्रवेशेऽरुणोदयवेधो वैष्णवविषयः। षष्टिघटिकात्मकसूर्योदयोत्तरं पलादिमात्रदशमीसत्त्वे सूर्योदयवेधः स्मार्तविषयः। ज्योतिर्विदादिविवादेन वेधादिसंदेहे तु—

> बहुवाक्यविरोधेन ब्राह्मणेषु विवादिषु।
> एकादशीं परित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत्॥

वेध दो प्रकार का होता है—अरुणोदय में दशमी वेध और सूर्योदय में दशमी वेध। सूर्योदय से पहले चार घड़ी के समय को अरुणोदय कहते हैं। सूर्योदय तो स्पष्ट ही है। इससे ५६ घड़ी के कलामात्र भी दशमी का प्रवेश हो यह अरुणोदयवेध कहलाता है यह वैष्णवों के लिये है। ६० घड़ी स्वरूप सूर्योदय के बाद पलमात्र भी दशमी हो तो यह स्मार्तों का सूर्योदय वेध है। ज्योतिषियों के विवाद से यदि वेध का संदेह हो तो बहुत वाक्यों के विरोध से ब्राह्मणों में विवाद उत्पन्न हो तो एकादशी का त्याग कर द्वादशी में व्रत करे।

तथाचैकादशी द्विविधा—शुद्धाविद्धा च। अरुणोदयवेधवती विद्धा तां त्यक्त्वा वैष्णवैर्द्वादश्येवोपोष्या। अरुणोदयवेधरहिता शुद्धा। सा च चतुर्विधा—एकादशीमात्राधिक्यवती द्वादशीमात्राधिक्यवती उभयाधिक्यवती अनुभयाधिक्यवती चेति। अत्राधिक्यं सूर्योदयोत्तरं सत्त्वम् [वैष्णवानाम्]

एकादशी दो प्रकार की होती है—एक विद्धा और दूसरी शुद्धा। अरुणोदय वेधवाली विद्धा कहलाती है उसको छोड़कर वैष्णवों को द्वादशी ही उपवास योग्य है। अरुणोदय वेध से भिन्न एकादशी शुद्धा कहलाती है। वह चार प्रकार की है—अधिक एकादशी वाली (१) अधिक द्वादशी वाली (२) दोनों अधिकवाली (३) दोनों नहीं अधिक वाली (४)। यहाँ अधिकता सूर्योदय बाद एकादशी द्वादशी का होना कहा गया है।

तत्रोदाहरणम्—दशमीनाड्यः ५५ एकादशी ६०—१ द्वादश्याः क्षयः ५८ इयमेकादशीमात्राधिक्यवती शुद्धा। वैष्णवैः परोपोष्या स्मार्तगृहस्थैः पूर्वा। अथ दशमी ५५ एकादशी ५८ द्वादशी ६०—१ इयं शुद्धा द्वादशीमात्राधिक्यवती। अत्र वैष्णवानां द्वादश्यामुपोषणं स्मार्तानां पूर्वा। अथ दशमी ५५ एकादशी ६०—१ द्वादशी ५ इयं शुद्धा उभयाधिक्यवती। अत्र सर्ववैष्णवैः स्मार्तैश्च परैवोपोष्या। अथ दशमी ५५ एकादशी ५७ द्वादशी ५८ इयमनुभयाधिक्यवती शुद्धा। वैष्णवैः स्मार्तैश्च पूर्वैवोपोष्या। इति संक्षेपतो वैष्णवनिर्णयः।

इसके ये उदाहरण हैं—दशमी ५५ घड़ी, एकादशी ६० घड़ी १ पल और द्वादशी क्षय होने से ५८है यह उदाहरण अधिक एकादशी वाली का है। ऐसी स्थिति में अरुणोदय में दशमीवेध होने से वैष्णवगण परा द्वादशी और स्मार्त लोग पूर्वा एकादशी में उपवास करेंगे। दशमी ५५ घड़ी एकादशी ५८ घड़ी और द्वादशी ६० घड़ी १पल यह शुद्धा द्वादशी अधिकवाली हुई। इसमें वैष्णवों को द्वादशी और स्मार्तों को पूर्वा एकादशी में व्रत करना चाहिए। दशमी ५५, एकादशी ६० घड़ी १ पल और द्वादशी ५ घड़ी यह शुद्धा एकादशी, दशमी और एकादशी दोनों द्वादशी की अपेक्षा अधिक है। यह वैष्णव स्मार्त दोनों को परा ही उपवास के योग्य है। दशमी ५५ घड़ी, एकादशी ५७, और द्वादशी ५८ यह शुद्धा एकादशी दोनों में से कोई अधिकवाली नहीं है। अतः वैष्णव स्मार्त दोनों पूर्वा ही में उपवास करें। यह संक्षेप से वैष्णवों का निर्णय है।

अथ स्मार्तनिर्णयः

तत्र सूर्योदयवेधवती विद्धा तद्रहिता शुद्धा चेति। द्विविधापि प्रत्येकं चतुर्धा-एकादशीमात्राधिक्यती उभयाधिक्यवती द्वादशीमात्राधिक्यवती अनुभयाधिक्य-वतीत्येवमष्टभेदा भवन्ति।

सूर्योदय में दशमी वेध वाली विद्धा एकादशी, उससे भिन्न शुद्धा होती है। यह दोनों प्रकार की एकादशी प्रत्येक चार प्रकार की होती है। अधिक एकादशीवाली (१) दोनों अधिक-वाली (२) केवल अधिक द्वादशीवाली (३) दोनों नहीं अधिकवाली (४) इस प्रकार से दोनों ८ प्रकार की होती है। इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

अत्रोदाहरणानि—दममी ५८ एकादशी ६०–१ द्वादश्याः क्षयः ५८ इयं शुद्धा एकादशीमात्राधिक्यवती। दशमी ४ एकादशी २ द्वादश्याः क्षयः ५८ इयं विद्धा एकादशीमात्राधिक्यवती।

दशमी ५८ एकादशी ६० घड़ी १ पल, क्षयवश द्वादशी ५८ घड़ी, यह शुद्धा एकादशी मात्र अधिक वाली है। दशमी ४, एकादशी २, द्वादशी का क्षय ५८ घड़ी, इस प्रकार विद्धा एकादशी-मात्र अधिक वाली है।

अत्रोभयत्रापि स्मार्तानां गृहिणां पूर्वोपोष्या। यतिभिर्निष्कामगृहिभिर्वनस्थैर्वि-धवाभिर्वैष्णवैश्च परैवोपोष्या। विष्णुप्रीतिकामैः स्मार्तैरुपवासद्वयं कार्यमिति केचित्।

यहाँ स्मार्त गृहस्थगण को दोनों में पूर्वा ही उपवास योग्य है। और संन्यासी, निष्कामी, गृहस्थ, वनस्थ, विधवा और वैष्णव परा में ही उपवास करें। विष्णु की प्रसन्नता चाहने वाले स्मार्तों को दोनों दिन उपवास करना—ऐसा किसी का कहना है।

उभयाधिक्यवती शुद्धा यथा—दशमी ५८ एकादशी ६०–१ द्वादशी ४ उभयाधिक्यवती विद्धा, यथा—दशमी २ एकादशी ३ द्वादशी ४ अत्रोभयत्रापि सर्वैः स्मार्तैर्वैष्णवैश्चावशिष्टा परवैकादशी उपोष्या।

दशमी एकादशी दोनों अधिकवाली शुद्धा एकादशी जैसे—दशमी ५८,एकादशी ६० घड़ी १ पल, द्वादशी ४ घड़ी, और दोनों अधिकवाली विद्धा, जैसे—दशमी २, एकादशी ३, द्वादशी ४ घड़ी, इन दोनों शुद्धा-विद्धा एकादशी में स्मार्त वैष्णव सबको परा एकादशी में उपवास करना चाहिए।

द्वादशीमात्राधिक्यवतीशुद्धा यथा–दशमी ५८ एकादशी ५९ द्वादशी ६०–१ अत्र शुद्धत्वात्स्मार्तानामेकादश्यामेवोपवासो न द्वादश्यामिति माधवमतम्। हेमाद्रि-मते तु सर्वैः परा द्वादश्येवोवोष्या। केचित्तु मुमुक्षुभिः स्मार्तैः परोपोष्येत्याहुः।

केवल द्वादशी अधिकवाली शुद्धा, जैसे दशमी ५८, एकादशी ५९, और द्वादशी ६० घड़ी १ पल। यहाँ शुद्ध होने से स्मार्तों को एकादशी में ही उपवास करना न कि द्वादशी में, ऐसा आचार्य माधव का मत है। हेमाद्रि के मत में तो सबको परा द्वादशी ही में उपवास करना चाहिए। मोक्ष चाहने वाले स्मार्तों को कुछ लोग परा का उपवास करने को कहते हैं।

द्वादशीमात्राधिका विद्धा, यथा—दशमी १ एकादशी क्षयगामिनी ५८ द्वादश्या वृद्धिः ६०—१ अत्रैकादश्या विद्धत्वाद् द्वादश्यामेव स्मार्तानामप्युपवासः। एवं चोभयाधिक्ये द्वादशीमात्राधिक्ये च स्मार्तानां विद्धायास्त्यागो नान्यत्र। वैष्णवानां तु षड्विधामप्याधिक्यवतीं त्यक्त्वा द्वादश्युपोष्या।

केवल अधिक द्वादशी वाली विद्धा, जैसे—दशमी १, क्षयवश एकादशी ५८, वृद्धिवश द्वादशी ६० घड़ी १ पल। इस परिस्थिति में विद्धा एकादशी होने से द्वादशी में ही स्मार्तों का उपवास होगा। इस प्रकार अधिक दशमी एकादशी वाली और केवल अधिक द्वादशी वाली में स्मार्तों को विद्धा का त्याग करना है अन्यत्र नहीं। वैष्णवों को तो छः प्रकार से अधिक एकादशी वाली का त्याग कर द्वादशी में ही उपवास करना चाहिये।

अनुभयाधिक्यवती शुद्धा, यथा—दशमी ५७ एकादशी ५८ द्वादशी ५९ स्मार्तानामेकादश्यामेवोपवासो न द्वादश्याम्। वैष्णवानां तु विद्धत्वाद् द्वादश्यामुपवासः।

नहीं अधिकवाली दशमी एकादशी शुद्धा, जैसे—दशमी ५७, एकादशी ५८ और द्वादशी ५९ घड़ी, इस परिस्थिति में स्मार्तों को एकादशी ही में उपवास होगा, न कि द्वादशी में। वैष्णवों को वेध होने से द्वादशी ही में उपवास होगा।

अनुभयाधिक्यवती विद्धा, यथा—दशमी २ एकादश्याः क्षयः ५६ द्वादशी ५५ अत्रापि स्मार्तानामेकादश्यामुपवासः। वैष्णवानां द्वादश्यामुपवासः। अस्मिन्नुभयानाधिक्यवती विद्धा चरमभेदे प्रथमभेदद्वये इव यतिभिर्मुमुक्षुभिर्विधवाभिः परोपोष्या। विष्णुप्रीतिकामैरुपवासद्वयं कार्यमिति तुल्ययुक्त्या प्रतिभाति।

दशमी एकादशी दोनों नहीं अधिकवाली विद्धा, जैसे—दशमी २, क्षयवश एकादशी ५६, द्वादशी ५५, यहाँ भी स्मार्तों का एकादशी में और वैष्णवों का द्वादशी में उपवास होगा। इन दोनों अधिकवाली विद्धा एकादशी अन्तिम भेद में प्रथम दो भेद की तरह संन्यासी, मोक्ष चाहनेवाले और विधवाओं को परा द्वादशी में उपवास करना। विष्णु की प्रसन्नता चाहनेवालों को तुल्य युक्ति से दोनों दिन उपवास करना ऐसा प्रतीत होता है।

इदानीं शिष्टास्तु हेमाद्रिमतं निष्कामत्वादिकं चानादृत्य माधवमतेनैव सर्वस्मार्तनिर्णयमविशेषेण वदन्ति न तु क्वचिदुपवासद्वयं, शुद्धाधिकद्वादशिकायां सर्वेषामेकं परोपवासं वा वदन्ति इति सर्वदेशेष्वत्र प्रायो माधवोक्तानुसार एव प्रचार इति बोध्यम्।

इस समय शिष्टगण निष्कामत्वादिक हेमाद्रि के मत का अनादर कर माधव के मत से ही साधारणतया सम्पूर्ण स्मार्तों का निर्णय कहते हैं कहीं दो उपवास नहीं, शुद्धा अधिक द्वादशी में स्मार्त वैष्णव दोनों का केवल द्वादशी में उपवास कहते हैं। अतः सम्पूर्ण देश में माधवाचार्य के कहने के अनुसार ही व्यवहार होता है यह जानना चाहिये।

एतेन वैष्णवाष्टादशभेदानां[1] स्मार्ताष्टादशभेदानां च निर्णयः सर्वोपि गतार्थो

१. हेमाद्रिमते—'शुद्धा विद्धा द्वयी नन्दा त्रेधा न्यूनसमाधिकैः। षट्प्रकाराः पुनस्त्रेधा द्वादश्यूनसमाधिकैः ॥' इत्यष्टादशैकादशीभेदाः। तद्यथा—शुद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका १, शुद्धन्यूना, समद्वादशिका २, शुद्धन्यूना अधिकद्वादशिका ३, शुद्धसमा न्यूनद्वादशिका ४, शुद्धसमा समद्वादशिका ५, शुद्धसमा अधिकद्वादशिका ६, शुद्धाधिका न्यूनद्वादशिका ७, शुद्धाधिका समद्वादशिका ८, शुद्धाधिका अधिकद्वादशिका ९, इति शुद्धाया नव भेदाः। विद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका १, विद्ध न्यूना समद्वादशिका २, विद्धन्यूना अधिकद्वादशिका ३, विद्धसमा न्यूनद्वादशिका ४, विद्धसमा समद्वादशिका ५, विद्धसमा अधिकद्वादशिका ६, विद्धाधिका न्यूनद्वादशिका ७, विद्धाधिका समद्वादशिका ८, विद्धाधिका अधिकद्वादशिका ९, इति विद्धाया नव भेदाः। सर्वं मिलित्वाऽष्टादश भेदाः। अत्र षष्टिघटीभ्यः किञ्चिदूनत्वम् अर्थात् सूर्योदयात् प्राक् समाप्तिमत्वं न्यूनत्वम्। पूर्णषष्टिघटीत्वम् अर्थात् सूर्योदयसमकालिकसमाप्तिमत्वं समत्वम्। षष्टिघटीभ्योऽधिकत्वम् अर्थात् सूर्योदयानन्तरं विद्यमानत्वम् आधिक्यम् इति बोध्यम्।

वैष्णवों के अरुणोदय वेधरहित शुद्ध एकादशी के ९ भेद

यहां साठ घड़ी से कुछ कम होना न्यून, पूर्ण साठ घड़ी का होना सम और साठ घड़ी से अधिक होना अधिक यह न्यून-सम-अधिक पद का अर्थ है।

सं.	शुद्ध भेद	दशमी घटी	दशमी पल	एकाद० घटी	एकाद० पल	द्वादशी घटी	द्वादशी पल	व्रत निर्णय
१	जब एकादशी और द्वादशी दोनों न्यून हों	५५	५५	५९	५९	५९	५९	यहाँ एकादशी एवं द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः वैष्णव और स्मार्त एकादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५७	०	५८	०	
२	जब एकादशी न्यून और द्वादशी सम हो	५५	५९	५९	५९	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५७	०	५८	०	
३	जब एकादशी न्यून और द्वादशी अधिक हो	५५	५९	५९	५९	६०	१	यहाँ द्वादशी अधिक है। इसमें वैष्णव द्वादशी और स्मार्त पूर्व में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५८	०	६०	१	
४	जब एकादशी सम और द्वादशी न्यून हो	५५	५९	६०	०	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः दोनों एकादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५७	०	५८	०	
५	जब एकादशी और द्वादशी दोनों सम हों	५५	५०	६०	०	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५७	०	५८	०	
६	जब एकादशी सम और द्वादशी अधिक हो	५५	५९	६०	०	६०	१	यहाँ द्वादशी ही अधिक है अतः वैष्णव द्वादशी और स्मार्त एकादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५८	०	६०	१	
७	जब एकादशी अधिक और द्वादशी न्यून हों	५५	५९	६०	१	५९	५८	यहाँ एकादशी की ही अधिकता है अतः वैष्णव पर और स्मा[र्त] गृहस्थ पूर्व में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	६०	१	५८	क्षय	
८	जब एकादशी अधिक और द्वादशी सम हों	५५	५९	६०	१	५९	५९	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	६०	१	५८	क्षय	
९	जब एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक हों	५५	५९	६०	१	६०	१	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों की ही अधिकता है अतः दोनों पर ही में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	६०	१	५	१	

भवतीति विभावनीयम् । विस्तरस्तु महाग्रन्थेष्वनुसंधेयः । अत्राष्टादशभेदानां पृथक् पृथगुदाहरणकथने तन्निर्णयकथने च बालानां व्यामोहमात्रं स्यादिति स निर्णयः पृथदेग पट्टे लिखित्वा स्थापितोऽनुसंधेयः ।

इससे वैष्णवों के १८ भेदों और स्मार्तों के १८ भेदों का भी सम्पूर्ण गतार्थ होता है। इसका विस्तृत-निर्णय बड़े ग्रन्थों से ज्ञेय है। इन १८ भेदों को अलग-अलग उदाहरण और उसके निर्णय कहने में बालकों को व्यामोह होने के भय से उस निर्णय को अलग ही पट्ट पर लिखकर उसका अनुसन्धान करना चाहिये।

वैष्णवों के अरुणोदय में दशमी विद्ध एकादशी के ९ भेद

सं	विद्ध भेद	दशमी घटी	दशमी पल	एकाद० घटी	एकाद० पल	द्वादशी घटी	द्वादशी पल	व्रत निर्णय
१	जब एकादशी और द्वादशी दोनों न्यून हों	५६	१	५९	५९	५९	५९	यहाँ एकादशी एवं द्वादशी दोनों अधिक नहीं हैं अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
२	जब एकादशी न्यून और द्वादशी सम हो	५६	१	५९	५९	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय को भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	०	
३	जब एकादशी न्यून और द्वादशी अधिक हों	५६	१	५९	५९	६०	१	यहाँ द्वादशी अधिक है अतः माधवमत से स्मार्त एकादशी और हेमाद्रिमत से दोनों द्वादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	१	
४	जब एकादशी सम और द्वादशी न्यून हो	५६	१	६०	०	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
५	जब एकादशी और द्वादशी दोनों सम हों	५६	१	६०	०	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
६	जब एकादशी सम और द्वादशी अधिक हो	५६	१	६०	०	६०	१	यहाँ द्वादशी ही अधिक है अतः माधवमत से स्मार्त एकादशी और हेमाद्रिमत से दोनों द्वादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	१	
७	जब एकादशी अधिक और द्वादशी न्यून हो	५६	१	६०	१	५९	५८	यहाँ एकादशी मात्र की अधिकता है अतः स्मार्त पूर्व तथा यति-निष्काम गृहस्थ-वनस्थ-विधवा और वैष्णव पर में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	५८	क्षय	
८	जब एकादशी अधिक और द्वादशी सम हो	५६	१	६०	१	५९	५९	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	५८	क्षय	
९	जब एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक हों	५६	१	६०	१	६०	१	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों की ही अधिकता है अतः वैष्णव और स्मार्त पर में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	४	०	

इस प्रकार वैष्णवों के एकादशी व्रत के शुद्ध ९ और विद्ध ९ भेदों को मिलाकर अट्ठारह भेद हुए।

अथ संक्षेपतो वैष्णवानां व्रतदिननिर्णयः

जयंतीव्रतवन्नित्यं काम्यं चैकादशीव्रतम् ।
अरुणोदयवेधोऽत्र वेधः सूर्योदये तथा ॥
उक्तौ द्वौ दशमीवेधौ वैष्णवस्मार्तयोः क्रमात् ।
विद्धा त्याज्या वैष्णवेन शुद्धाप्याधिक्यसंभवे ॥
एकादशी द्वादशी वाऽधिका चेत्त्यज्यतां दिनम् ।
पूर्वं ग्राह्यं तूत्तरं स्यादिति वैष्णवनिर्णयः ॥

जयन्तीव्रत के समान एकादशी व्रत नित्य और काम्य भी है। इसमें अरुणोदय वेध और

स्मार्तों के सूर्योदय में दशमी रहित शुद्ध एकादशी के ६ भेद

सं.	शुद्ध भेद	दशमी घटी	दशमी पल	एकाद० घटी	एकाद० पल	द्वादशी घटी	द्वादशी पल	व्रत निर्णय
१	जब एकादशी और द्वादशी दोनों न्यून हों	५९	५९	५९	५९	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
२	जब एकादशी न्यून और द्वादशी सम हो	५९	५९	५९	५९	६०	१	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
३	जब एकादशी न्यून और द्वादशी अधिक हो	५९	५९	५९	५९	६०	१	यहाँ द्वादशी अधिक है अतः स्मार्त माधवमत से एकादशी और हेमाद्रिमत से द्वादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	१	
४	जब एकादशी सम और द्वादशी न्यून हो	५९	५९	६०	०	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं हैं अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
५	जब एकादशी और द्वादशी दोनों सम हों	५९	५९	६०	०	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
६	जब एकादशी सम और द्वादशी अधिक हो	५९	५९	६०	०	६०	१	यहाँ द्वादशी मात्र की अधिकता है अतः स्मार्त माधवमत से एकादशी और हेमाद्रिमत से दोनों द्वादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	०	
७	जब एकादशी अधिक और द्वादशी न्यून हो	५९	५९	६०	१	५९	५९	यहाँ एकादशी ही की अधिकता है अतः स्मार्त एकादशी और यति वैष्णवादि द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	५८	क्षय	
८	जब एकादशी अधिक और द्वादशी सम हो	५९	५९	६०	१	५९	५९	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	५८	क्षय	
९	जब एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक हों	५९	५९	६०	१	६०	१	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों की अधिकता है अतः स्मार्त और वैष्णव पर में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	४	०	

सूर्योदयवेध दशमी का क्रमसे वैष्णव और स्मार्त के लिये दो वेध कहे हैं। जिसमें वैष्णव विद्धा का त्याग करें और शुद्धा भी अधिक की सम्भावना होने पर एकादशी द्वादशी दोनों को छोड़ दे।

अस्यार्थः—जयन्तीव्रतवद् अकरणे प्रत्यवायश्रवणान्नित्यं संपत्त्यादिफलश्रवणात्काम्यं चैकादशीव्रतम्। तत्रैकादश्यां द्वौ दशमीवेधौ—अरुणोदये दशमीवेधः सूर्योदये दशमीवेधश्च। क्रमाद्वैष्णवस्मार्तयोः वैष्णवानामरुणोदये दशमीवेधः स्मार्तानां सूर्योदये दशमीवेध इत्यर्थः। षट्पञ्चाशद्घटीमिते अरुणोदयः सूर्योदयश्च स्पष्टः। अत्र स्वपारंपर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्तत्वं च वृद्धा मन्यन्ते तदेव ग्राह्यम्।

स्मार्तों के सूर्योदय में दशमी विद्ध एकादशी के ६ भेद

सं.	विद्ध भेद	दशमी		एकाद०		द्वादशी		व्रत निर्णय
		घटी	पल	घटी	पल	घटी	षल	
१	जब एकादशी और द्वादशी दोनों न्यून हों	६०	१	५९	५८	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः स्मार्तों का एकादशी और वैष्णवों का द्वादशी में व्रत हुआ।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	५६	क्षय	५५	०	
२	जब एकादशी न्यून द्वादशी सम हो	६०	१	५९	५८	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	५६	क्षय	५५	०	
३	जब एकादशी न्यून और द्वादशी अधिक हो	६०	१	५९	५८	६०	१	यहाँ द्वादशी अधिक है अतः माधव मत से स्मार्तों का एकादशी और हेमाद्रि मत से वैष्णवों का द्वादशी में ही व्रत हुआ।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	१	०	५८	क्षय	६०	१	
४	जब एकादशी सम और द्वादशी न्यून हो	६०	१	५९	५९	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	५६	क्षय	५५	०	
५	जब एकादशी और द्वादशी दोनों सम हों	६०	१	५९	५९	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	५६	क्षय	५५	०	
६	जब एकादशी सम और द्वादशी अधिक हो	६०	१	५९	५९	६०	१	यहाँ द्वादशी मात्र का आधिक्य है अतः स्मार्त एकादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	१	०	५८	क्षय	६०	१	
७	जब एकादशी अधिक और द्वादशी न्यून हो	६०	१	६०	०	५९	५८	यहाँ एकादशी मात्र की अधिकता है अतः स्मार्त एकादशी और यति-वैष्णवादि द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	४	०	२	०	५८	क्षय	
८	जब एकादशी अधिक और द्वादशी सम हो	६०	१	६०	१	५९	५९	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	४	०	२	०	५८	क्षय	
९	जब एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक हों	६०	१	६०	१	६०	१	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों की अधिकता है अतः स्मार्त और वैष्णव पर में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	३	०	४	०	

इस प्रकार स्मार्त के एकादशी व्रत के शुद्ध ९ और विद्ध ९ भेदों को मिलाकर अट्ठारह भेद हुये

इसका स्पष्ट अर्थ इस प्रकार है—जयन्ती व्रत को तरह नहीं करने पर प्रत्यवाय होने से नित्य और करने पर सम्पत्ति आदि फल मिलता है, इससे काम्य भी है। उसमें एकादशी के दो दशमीवेध हैं—अरुणोदय में दशमीवेध और सूर्योदयमें दशमीवेध। क्रम से वैष्णव और स्मार्त के लिये, अर्थात् वैष्णवों के लिये अरुणोदय में दशमीवेध और स्मार्तों के लिये सूर्योदय में दशमीवेध। ५६ घड़ी पर अरुणोदय होता है और सूर्योदय स्पष्ट ही है। इसमें अपनी परम्परा प्रसिद्ध ही वैष्णवत्व और स्मार्तत्व को वृद्धजन मानते हैं वही ग्रहण के योग्य है।

वैष्णवेन विद्धैकादशी अरुणोदये वेधवती एकादशी त्याज्या द्वादश्युपोष्या। आधिक्यसंभवे एकादशीद्वादश्योरुभयोराधिक्ये सूर्योदयोत्तरसत्त्वे शुद्धापि त्याज्या परैवैकादशी उपोष्या। तथा एकादश्या एवाधिक्ये शुद्धमपि पूर्वं दिनं त्याज्यं परं ग्राह्यम्। तथैव द्वादश्या एवाधिक्येऽपि पूर्वं दिनं त्याज्यं परदिनं ग्राह्यमित्यर्थः। इति **वैष्णवनिर्णयः**।

वैष्णवों को विद्धा एकादशी अरुणोदय में वेधवाली एकादशी त्याज्य है अतः द्वादशी उपवासके योग्य है। आधिक्य की सम्भावना में एकादशी द्वादशी दोनों के आधिक्य सूर्योदय के अनन्तर रहने पर शुद्धा भी वर्जित है परा एकादशी ही उपवास के योग्य है। इसी प्रकार केवल एकादशी ही अधिक हो तो शुद्धा भी पहिला दिन त्याग के योग्य है दूसरा दिन ग्रहण के योग्य है। द्वादशी के ही अधिक होने पर पूर्वदिन छोड़कर परदिन ग्रहण योग्य है। यह वैष्णवों के एकादशीव्रत का संक्षिप्त निर्णय है।

अथ स्मार्तानां निर्णय उच्यते

एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्धते यदा।
तदा पूर्वं दिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनम्॥
एकादशीमात्रवृद्धौ गृहियत्योर्व्यवस्थितिः।
उपोष्या गृहिभिः पूर्वा यतिभिश्चोत्तरा तिथिः॥
द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते।
शुद्धा पूर्वोत्तराविद्धा स्मार्तनिर्णय ईदृशः॥

यदि एकादशी और द्वादशी दोनों बढ़ती हैं, तब पूर्वदिन स्मार्तों को त्याज्य और परदिन ग्राह्य है। केवल एकादशी के बढ़ने पर गृहस्थ और संन्यासियों के लिये यह व्यवस्था है कि गृहस्थ पूर्व-दिन और संन्यासी दूसरे दिन में उपवास करें। केवल द्वादशी की वृद्धि में तो शुद्धा विद्धा की ऐसी व्यवस्था है कि शुद्धा एकादशी पूर्वा और विद्धा होने पर दूसरे दिन उपवास करे। यही स्मार्तों का निर्णय है।

अस्यार्थः—एकादशीद्वादश्योर्यदा वृद्धिः। सूर्योदयोत्तरं विद्यमानत्वं तदा पूर्वैकादशी शुद्धापि स्मार्तैस्त्याज्या परैवोपोष्या। एकादश्या एव वृद्धौ तु गृहिभिः पूर्वोपोष्या यत्यादिभिरुत्तरा। द्वादश्या एव वृद्धौ तु शुद्धाविद्धयो-र्व्यवस्था। एकादशी शुद्धा चेत्सा उपोष्या। एकादशीविद्धा चेद् द्वादश्येवो-

पोष्या । एवं चोभयाधिक्ये द्वादशीमात्राधिक्ये च स्मार्तानां विद्धैकादशीत्यागो[1] नान्यत्रेत्यर्थः । इति स्मार्तनिर्णयः ।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—यदि एकादशी और द्वादशी सूर्योदयानन्तर बढ़ती हैं तब पूर्वा एकादशी शुद्धा भी हो तो स्मार्तों को त्याज्य है परा एकादशी उपवास योग्य है । केवल एकादशी के बढ़नेपर गृहस्थ स्मार्त पूर्वा और संन्यासी आदि को उत्तरा एकादशी उपवास योग्य है । द्वादशी केवल बढ़ने पर एकादशी शुद्धा हो तो इसी में उपवास करे और विद्धा एकादशी हो तो द्वादशी में ही उपवास करे । इसी प्रकार एकादशी द्वादशी दोनों के बढ़ने पर अथवा केवल द्वादशी के बढ़ने पर स्मार्तों को विद्धा एकादशी का त्याग करना योग्य है अन्यत्र नहीं । यह स्मार्तों के एकादशीव्रत का संक्षिप्त निर्णय है ।

अथ वेधभेदाः

अत्रार्धरात्रोत्तरं दशमीसत्त्वे कपालवेधो द्विपञ्चाशद्घटिकादशमीसत्त्वे छायावेधस्त्रिपञ्चाशद्घटीत्वे दशम्या ग्रस्ताख्यो वेधश्चतुःपञ्चाशत्त्वे संपूर्णाख्यः पञ्चपञ्चाशत्त्वेऽतिवेधः षट्पञ्चाशत्त्वे महावेधः सप्तपञ्चाशत्त्वे प्रलयाख्योऽष्टपञ्चाशत्त्वे महाप्रलयः एकोनषष्टित्वे घोराख्यः षष्टिघटित्वे राक्षसाख्य इति वेधभेदा नारदेनोक्ताः ।

आधीरात के बाद दशमीवेध होने पर कपालवेध, ५२ घड़ी दशमी होनेपर छायावेध, ५३ घड़ी दशमी होने पर ग्रस्तवेध, ५४ घड़ी वेध होने पर सम्पूर्णवेध, ५५ घड़ी दशमी होने पर अतिवेध, ५६ घड़ी पर महावेध, ५७ घड़ी पर प्रलय नाम का वेध, ५८ घड़ी पर महाप्रलय, ५९ घड़ी दशमी रहने पर घोर नामक वेध और ६० घड़ी दशमी रहने पर राक्षस नाम का वेध, इस प्रकार वेधों के भेद नारद ने कहा है ।

मध्वादिमतानुसारिभिः कैश्चिदेव केचिदेवानुसृताः । माधवाचार्यादिसर्वसंमतस्तु षट्पञ्चाशद्घटीवेध एवेति ज्ञेयम् । दशमी पञ्चदशघटीभिरेकादशी दूषिकेति तूपवासातिरिक्तव्रते व्रताङ्गे संकल्पार्चनादौ । तत्रापि तद्दोषेण न सर्वथा त्यागः किंतु प्रातः कर्तव्यं संकल्पार्चनादि मध्याह्नोत्तरं कार्यमिति ध्येयम् ।

मध्वादि मत के माननेवालोंने इन में से कुछ ही वेधों का अनुसरण किया है । माधवाचार्यादि सर्वसम्मत तो ५६ घड़ी का वेध ही जानना चाहिये । दशमी १५ घड़ियों से एकादशी को दूषित करती है यह उपवासातिरिक्त व्रतों के लिये है । वहां उस दोष से सर्वथा त्याग नहीं किन्तु प्रातः कर्तव्य संकल्पार्चनादि मध्याह्नोत्तर में करें ।

---

१. एकादशीव्रत के सम्बन्ध में स्मार्तों के लिये विशेष वचन ध्यान देने योग्य हैं । मत्स्यपुराण—'विद्धाऽप्येकादशी कार्या परतो द्वादशी न चेत् ।' अर्थात् पर में द्वादशी न मिले तो दशमी से विद्ध भी एकादशी करनी चाहिये । कूर्मपुराण—'मुहूर्ता द्वादशी न स्यात् त्रयोदश्यां महामुने । उपोष्या दशमीविद्धा सदैवैकादशी तदा ॥' ऋष्यशृङ्ग—'पारणाहे न लभ्येत द्वादशी कलयाऽपि चेत् । तदानीं दशमीविद्धाऽप्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥' यदि एकादशी दशमी ही से युक्त है द्वादशी से युक्त नहीं है तो यति और गृहस्थ दशमी से विद्ध एकादशी करें ।' ऋष्यशृङ्ग—'एकादशी न लभते सकला द्वादशी भवेत् । उपोष्या दशमीविद्धा यतिभिर्गृहिभिस्तदा ॥' यदि दो दिन एकादशी मिल रही है तो दशमीविद्धा एकादशी नहीं करनी चाहिये—'एकादशी दशाविद्धा गान्धार्या समुपोषिता । तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥' इति । विशेष जानकारी के लिये हेमाद्रि वीरमित्रोदय-कृत्यकल्पतरु प्रभृति महानिबन्धों का अवलोकन एवं विवेचन करें ।

अथ व्रतप्रयोगः

उपवासात्पूर्वदिने प्रातः कृतनित्यक्रियः ।

दशमीदिनमारभ्य करिष्येऽहं व्रतं तव ।
त्रिदिनं देवदेवेश निर्विघ्नं कुरु केशव ॥

इति संकल्प्य मध्याह्ने एकभक्तं कुर्यात् ।

उपवास के पहले दिन प्रातः नित्यक्रिया करके "हे देवेश ! दशमी से लेकर तीन दिन का आपका व्रत हम करेंगे । हे केशव ! विघ्नरहित यह व्रत हो ऐसी अनुकम्पा कीजिए ।" ऐसा संकल्प करके दशमी के दिन एकभक्त करे ।

तत्र नियमाः—कांस्यमांसमसूरदिवास्वापातिभोजनात्यम्बुपानपुनर्भोजनमैथुनक्षौद्रानृतभाषणचणककोद्रवशाकपरान्नद्यूततैलतिलपिष्टताम्बूलवर्जनादयः । एकभक्तानन्तरं काष्ठेन दन्तधावनं कुर्यात् । निशि भूतल्पे शयित्वा प्रातरेकादश्यां पर्णादिना [1]दन्तधावनं कार्यं न तु काष्ठेन । स्नानादिनित्यक्रियान्ते पवित्रपाणिरुदङ्मुखो वारिपूर्णं ताम्रपात्रमादाय संकल्पं कुर्यात् ।

एकादश्यां निराहारो भूत्वाहमपरेऽहनि ।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

इत्यनेन मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं वा हरौ दद्यात् ।

उसके नियम ये हैं—कांस, मांस, मसूर, दिन का सोना, अतिभोजन, अत्यम्बुपान (अधिक बार जल पीना) दो बार भोजन करना, मैथुन, मधु खाना, असत्य-भाषण, चना, कोदो, शाक, दूसरे का अन्न, जूआ, तेल, तिल की खलि, पान आदि वर्जित है । एकभक्त के बाद काष्ठ से दन्तधावन करे । रात में जमीन पर सोकर प्रातःकाल एकादशी में पत्ते आदि से दांतों को साफ करे, काष्ठ से नहीं । स्नान संध्यादि नित्यक्रिया के अनन्तर हाँथ धोकर उत्तर की ओर मुख करके जल से भरा ताम्रकलश लेकर संकल्प करे । "हे पुण्डरीकाक्ष ! मैं एकादशी में निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा । हे अच्युत ! आप मेरे रक्षक हो" इस मन्त्र से भगवान् को पुष्पाञ्जलि दे ।

अशक्तस्य तु एकादश्यां जलाहार-एकादश्यां क्षीरभक्ष एकादश्यां फलहार-एकादश्यां नक्तभोजीत्याद्यूहेन शक्त्यनुसारेण संकल्पः । शैवानां रुद्रगायत्र्या संकल्पः । सौराणां नित्यगायत्र्या नाम्ना वा संकल्पः ।

असमर्थ पुरुष एकादशी में जल का आहार, दुग्धपान, फलाहार, नक्त के द्वारा जैसा कर सके, संकल्प में उसकी योजना कर ले । शैवों को रुद्र गायत्री से, सूर्यभक्तों को नित्य गायत्री से या सूर्यनाम से संकल्प करना चाहिये ।

अयं संकल्पः सूर्योदयोत्तरं दशमीसत्त्वे स्मार्तैरेकादश्यां रात्रौ कार्यः । अर्धरात्रादुपरि दशम्यनुवृत्तौ सर्वैरेवैकादश्यां मध्याह्नोत्तरं कार्यः । संकल्पोत्तर-

---

१. 'श्राद्धे जन्मदिने चैव विवाहे जीर्णसम्भवे । व्रते चैवोपवासे च वर्जयेद्दन्तधावनम् ॥' पैठीनसिः—'अलाभे वा निषेधे वा काष्ठानां दन्तधावने । पर्णादिना विशुध्येत जिह्वोल्लेखं सदैव च ॥' काष्ठग्रहणान्मृत्कोष्ठाद्यनिषेध इति हेमाद्रिः । व्यासः—'अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा । अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद् दन्तधावनम् ॥' इति ।

मष्टाक्षरमन्त्रेण त्रिरभिमन्त्रितं तज्जलं पिबेत् । ततः पुष्पमण्डपं कृत्वा तत्र—

पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैः परैः ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः ॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः ।
हरिं संपूज्य विधिवद्रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ॥

यह संकल्प सूर्योदय के बाद दशमी रहने पर स्मार्तगण एकादशी की रात में करें । आधीरात से ऊपर दशमी होने पर सब लोग एकादशी में दोपहर के बाद करें । संकल्प के बाद 'ओम् नमो नारायणाय, इस अष्टाक्षर मंत्र से तीन बार अभिमंत्रित करके जल को पीये । इसके अनन्तर पुष्प-मंडप बनाकर पुष्प गंध धूप दीप नैवेद्य अनेक प्रकार के स्तोत्रों मनोहर गाने-बाजे से दंडवत् प्रणामों और उत्तम जय शब्द से विधि पूर्वक भगवान् की पूजा कर रात में जागरण करे ।

एकादश्यां नियमाः—पाखण्डिसंभाषणस्पर्शदर्शनवर्जनब्रह्मचर्यसत्यभाषण-दिवास्वापवर्जनादयः परिभाषोक्ताश्च ज्ञेयाः ।

पाखण्डिदर्शनादौ तु सूर्यं पश्येत्ततः शुचिः ।
संस्पर्शे तु बुधः स्नायाच्छुचिरादित्यदर्शनात् ॥
संभाष्य तान् शुचिषदं चिन्तयेदच्युतं बुधः । इत्यादिप्रायश्चित्तम् ।

एकादशी दिन के नियम—पाखण्डी से बोलना, स्पर्श करना, दर्शन करना वर्जन करे । ब्रह्मचर्य सत्यभाषण करते हुए दिन में न सोये । यदि पाखण्डी का दर्शनादि हो जाय तो पवित्र होकर सूर्य का दर्शन करे । स्पर्श होने पर स्नान करके सूर्य का दर्शन करे । सम्भाषण करके भगवान् अच्युत का स्मरण करे ।

अथ उपवासदिने श्राद्धप्राप्तौ

श्राद्धशेषसर्वान्नेनैकं पात्रं परिविष्य तत्सर्वान्नावघ्राणं कृत्वा पात्रं गवादिभ्यो देयम् । कन्दमूलफलाहाराद्यनुकल्पेनोपवासकर्त्रा तु स्वभक्ष्यस्यैव फलादेः पितृब्राह्मणपात्रेषु परिवेषणपूर्वकं तच्छेषभक्षणं कार्यम् ।

एकादश्यां यदा भूप मृताहः स्यात्कदाचन ।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यामेव कारयेत् ।

इत्यादिवचनानि यथाचारं वैष्णवपराणि । वैष्णवैः षोडशमहालयकरणपक्षे एकादश्यधिकरणकं द्वादश्यधिकरणकं च महालयं तन्त्रेण करिष्य इति संकल्प्य महालयद्वयं द्वादश्यां कार्यम् ।

उपवास के दिन श्राद्ध पड़ जाय तो श्राद्ध से बचे सम्पूर्ण अन्न को एक पात्रमें परोसकर उन सम्पूर्ण अन्नों को सूंघ कर वह पात्र गाय आदि को दे दे । कन्द मूल और फलाहारादि से उपवास करनेवाला पुरुष अपना भक्ष्य जो फलादिक है उसे पितृस्थानीय ब्राह्मणपात्रों में परोस कर उससे बचे हुए फल आदि का स्वयं भोजन करे । एकादशी में यदि मृताह पड़ जाय तो उस दिन व्रत न कर द्वादशी में करे । यह सब वचन आचार के अनुसार वैष्णवों के लिये हैं । वैष्णवों को सोलह दिन के महालय श्राद्ध करने में 'एकादशी का श्राद्ध और द्वादशी का श्राद्ध तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करके एकादशी द्वादशी दोनों का श्राद्ध द्वादशी में करे ।

अथ काम्योपवासे सूतकम्

शारीरनियमान्स्वयं कृत्वा सूतकान्ते पूजादानब्राह्मणभोजनादिकं कार्यम्। नित्योपवासे सूतकादिप्राप्तौ स्नात्वा हरिं प्रणम्य निराहारादिकं स्वयं कृत्वा पूजादिकं ब्राह्मणद्वारा कार्यम्। दानादेर्लोपो न सूतकान्तेऽनुष्ठानावश्यकत्वम्। एवं रजस्वलादिदोषेऽपि द्वादश्यां प्रातर्नित्यपूजां विधाय भगवते व्रतमर्पयेत्।

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥ इति तत्र मन्त्रः।

काम्य उपवास व्रत में सूतक की प्राप्ति हो जाय तो शरीर के नियमों को स्वयं करके सूतक की समाप्ति पर पूजा दान और ब्राह्मण भोजनादिक कृत्य करे। नित्य उपवास में यदि सूतक आदि पड़े तब स्नान करके भगवान् को प्रणाम कर आरति आदि स्वयं करके पूजा आदि ब्राह्मण से करावे। दान आदि का लोप न हो इसलिये सूतक के अन्त में दान को भी करे। रजस्वला आदि दोष में भी इसी प्रकार का आचरण करे। द्वादशी को प्रातःकाल नित्यपूजा करके भगवान को व्रत का समर्पण करे और यह मन्त्र कहे—"हे केशव! इस व्रत से आप प्रसन्न हों। अज्ञान के अन्धकार से अन्धे मुझको ज्ञानदृष्टि दें।"

अथ व्रतनियमभङ्गे प्रायश्चित्तम्

दशम्यादिषूक्तानां नियमानां भङ्गे दिवास्वापे बहुशो जलपाने मिथ्याभाषणे वा तत्तन्नियमभङ्गानुद्दिश्य नारायणाष्टाक्षरमन्त्रजपमष्टोत्तरशतसंख्यया कुर्यात्। अल्पदोषे नामशतत्रयजपः। रजस्वलाचाण्डालरजकसूतिकादिशब्दस्य व्रतमध्ये श्रवणेऽष्टोत्तरसहस्रगायत्रीजपः। ततो नैवेद्यतुलसीमिश्रितान्नेन पारणं कार्यम्। आमलकीफलस्य पारणायां भक्षणेऽसंभाष्यभाषणादिदोषनाशः।

दशमी आदि में कहे गये नियमों के भंग होने पर दिन के सोने वा अनेक बार जलपीने से,) जिन-जिन नियमों का भंग किया हो उसी उद्देश्य से प्रत्येक के लिये अष्टाक्षर नारायण के मंत्र का जप १०८ बार करे। थोड़े दोष में भगवन्नाम का तीन सौ जप करे। व्रत में रजस्वला चाण्डाल रजक स्त्री और सौरी में प्रसव करने वाली का शब्द सुन ले तो १००८ बार गायत्री जप करे तदनंतर नैवेद्य तुलसी मिले हुए अन्न से पारण करे। आँवले के फल की पारणा असंभाष्य में खाने से भाषणा के दोषों से मुक्ति हो जाती है।

अथ पारणाकालः

पारणं च द्वादश्युल्लङ्घने महादोषाद् द्वादशीमध्ये एव कार्यम्। स्वल्पद्वादशी-सत्त्वे रात्रिशेषे आमध्याह्नान्ताः क्रियाः सर्वा अपकृष्य कार्याः। अग्निहोत्रहोमस्य नापकर्ष इति केचित्। एवं श्राद्धस्यापि नापकर्षो रात्रौ श्राद्धनिषेधात्। अति-संकटे श्राद्धे प्रदोषादिव्रते च तीर्थजलेन पारणं कार्यम्। द्वादशीभूयस्त्वे द्वादशीप्रथमपादं [१]हरिवासरसंज्ञकमुल्लङ्घ्य पारणं कार्यम।

---

१. स्मृत्यन्तर में वार और नक्षत्र के योग से हरिवासर—'आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवण-रेवती। द्वादशी बुधवारेण हरिवासर उच्यते॥' अर्थात् आषाढशुक्ल द्वादशी बुधवार और अनुराधा

द्वादशी में पारणके उल्लंघन होने पर महादोष होता है। अतः द्वादशी के मध्य में ही पारण करे। रात बीतने पर थोड़ी द्वादशी के रहने पर मध्याह्न पर्यन्त के कर्मोंको प्रातः ही करके अग्निहोत्र होम को समय से पहले नहीं करे ऐसा किसी का कहना है। इसी प्रकार श्राद्ध को भी समय से पूर्व नहीं करे, रात्रि में श्राद्ध निषेध होने से। अत्यन्त संकटमें श्राद्धमें और प्रदोषादि व्रत में तीर्थ जल से पारण करे। द्वादशी यदि पर्याप्त हो तो द्वादशी के प्रथम चरण जिसे हरिवासर कहते हैं उसका उल्लंघन कर पारण करना चाहिए।

- कलामात्राया अपि द्वादश्या अभावे त्रयोदश्यां पारणम्। द्वादश्या मध्याह्नोर्ध्वं सत्त्वे प्रातर्मुहूर्तत्रयमध्ये एव पारणं न मध्याह्नादौ इति बहवः। बहूनां कर्मकालानां बाधापत्तेरपराह्ण एवेति केचित्।

कलामात्र भी यदि द्वादशी न हो तब त्रयोदशी में पारण करे। द्वादशी से मध्याह्नोत्तर होने पर प्रात:काल तीन मुहूर्त के भीतर ही पारण करे मध्याह्नादिक में नहीं करना चाहिये ऐसा बहुत से लोग कहते हैं। कुछ तो यह कहते हैं—बहुत से कर्मकालों की बाधा होने के कारण अपराह्न में ही पारण करे।

अथ श्रवणद्वादशी

द्वादश्यां सर्वमासेषु शुक्लायां कृष्णायां वा श्रवणयोगे शक्तेनैकादशीद्वादश्योर्द्वयोरप्युपवासः कार्यः। अशक्तेनैकादश्यां फलाहाराद्यनुकल्पं कृत्वा श्रवणद्वादश्यामुपवासः कार्यः।

सब महीनों के शुक्ल अथवा कृष्णपक्ष की द्वादशी में श्रवण नक्षत्र हो तो सामर्थ्यवान को एकादशी द्वादशी दोनों दिन उपवास करना चाहिए। असमर्थ पुरुष एकादशी में फलाहारादि कर के श्रवण युक्त द्वादशी में उपवास करे।

विष्णुश्रृङ्खलयोगसत्त्वे तु एकादश्यामेव श्रवणद्वादशीप्रयुक्तमप्युपवासं कृत्वा द्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणं कार्यम्। द्वादश्याः श्रवणतो न्यूनत्वे श्रवणयुक्तायामपि द्वादश्यामेव पारणम्। द्वादश्युल्लङ्घने दोषात्। विष्णुश्रृङ्खलयोगादिनिर्णयो भाद्रपदमासगतश्रवणद्वादशीप्रकरणे वक्ष्यते।

यदि विष्णुश्रृङ्खलयोग हो तो एकादशी में ही श्रवण द्वादशी का उपवास करके श्रवणयोग रहित द्वादशी के दिन पारण करे। यदि श्रवण नक्षत्र से कम द्वादशी हो तो श्रवणयुक्त द्वादशी में ही पारण करे। द्वादशी के उल्लंघन में ही दोष कहा है। विष्णुश्रृङ्खलयोग आदि का निर्णय भाद्रपदमासस्थित श्रवणद्वादशी प्रकरण में कहेंगे।

नक्षत्र से, भाद्रशुक्ल द्वादशी बुधवार और श्रवण नक्षत्र से, कार्तिक शुक्ल द्वादशी बुधवार और रेवती नक्षत्र से युक्त हो तो 'हरिवासर' कहलाता है।

द्वादशी पारण में मार्गादिमास के क्रम से भिन्न भिन्न वस्तुओं का निर्देश—'गोमूत्रेण च गोमयेन पयसा दध्ना गवां सर्पिषा सद्भोदककार्तवीर्ययवजैश्चूर्णैस्तथा दूर्वया। कूष्माण्डेन गुडेन बिल्वतुलसीपत्रेण वा पारणं द्वादश्यां गदितं क्रमान्मुनिवरैर्मार्गादितस्तत्फलम् ॥' अर्थात् अगहन में गोमूत्र पूस में गोमय माघ में दूध फाल्गुन में दही चैत्र में गोघृत वैशाख में कुशोदक ज्येष्ठ में तिल आषाढ़ में यवका आंटा श्रावण में दूभी भाद्र में कौंहड़ा आश्विन में गुड़ और कार्तिक में बेल या तुलसीपत्र से द्वादशी का पारण करना मुनिवरों ने कहा है।

अथ द्वादश्यां नियमाः

दिवानिद्रां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ।
क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥

द्यूतक्रोधचणककोद्रवमाषतिलपिष्टमसूरनेत्राञ्जनमिथ्याभाषणलोभायासप्रवासभारवहनाध्ययनताम्बूलादीनि वर्जयेत् । एते च नियमाः काम्यव्रते आवश्यकाः ।

दिन का सोना, दूसरे का अन्न खाना, दोबारा भोजन करना, स्त्री सहवास, शहद, कांस पात्र में भोजन, मांस और तैल इन आठ चीजों का त्याग करे । जूआ, क्रोध, चना, कोदो, उरद, तिल की खली, मसूर, आँखों में आंजन करना, असत्यभाषण, लोभ, परिश्रम, परदेशयात्रा, बोझा ढोना, पढ़ना, ताम्बूल आदि का वर्जन करे । ये सब नियम काम्यव्रत में आवश्यक है ।

नित्यव्रते तु—

शक्तिमांस्तु पुमान्कुर्यान्नियमं सविशेषणम् ।
विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजिवर्जितः ॥
निगृहीतेन्द्रियः श्रद्धासहायो विष्णुतत्परः ।
उपोष्यैकादशीं पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥
अन्यं भुङ्क्ष्वेति यो ब्रूयाद्भुङ्क्ते वा यः स नारकी ।
एकादशीव्रताद्विष्णुसायुज्यं लभते श्रियम् ॥ इत्येकादशीव्रतनिर्णयः ।

कार्यान्तरेष्वेकादशी द्वादशीयुतैव ग्राह्या । इत्येकादशीव्रतनिर्णयोद्देशः॥१७॥

नित्यव्रत में तो समर्थ पुरुष नियमों का आचरण करे । विशेष नियम में असमर्थ पुरुष दिन रात भोजन न करे । इन्द्रियों का निग्रह श्रद्धायुक्त भगवान् में लीन हो एकादशी का उपवास करके पापों से रहित होता है इसमें संदेह नहीं है । जो एकादशी में अन्न खाने को कहे या स्वयं खाये वह नरकगामी होता है । एकादशी व्रत करने से मोक्ष एवं लक्ष्मी की प्राप्त होती है । व्रत के अतिरिक्त एकादशी द्वादशीयुक्त ही ले । एकादशीव्रतनिर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ द्वादशीनिर्णयः

द्वादशी त्वेकादशीविद्धा ग्राह्या । अथ अष्टौ महाद्वादश्यः—शुद्धाधिकैकादशीयुक्ता द्वादशी उन्मीलनीसंज्ञा । द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्धते सा वञ्जुली । सूर्योदये एकादशी ततः क्षयगामिनी द्वादशी द्वितीयसूर्योदये त्रयोदशी एवमेकाहोरात्रे तिथित्रयस्पर्शात् त्रिस्पर्शा संज्ञा द्वादशी । दर्शस्य पौर्णमास्या वा यदा दिनवृद्धिस्तदा पक्षवर्धिनीसंज्ञा। पुष्यर्क्षयुता जया। श्रवणयुता विजया। पुनर्वसुयुता जयन्ती । रोहिणीयुता पापनाशिनी । एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् । श्रवणयुता तु एकादशीवन्नित्या ।

द्वादशी एकादशी से विद्ध होनी चाहिए । आठ महाद्वादशी को कहते हैं—शुद्ध अधिक एकादशीयुक्त द्वादशी को उन्मीलनी कहते हैं । द्वादशी ही शुद्धा और अधिक होते हुए बढती है उसे वंजुली कहते हैं । सूर्योदय में एकादशी हो उसके बाद क्षययुक्त द्वादशी

हो दूसरे सूर्योदय में त्रयोदशी हो इस प्रकार एक दिन में तीन तिथियों के स्पर्श होने से उसे त्रिस्पर्शा द्वादशी कहते हैं। अमावास्या अथवा पूर्णिमा के दिन की वृद्धि होने से पक्षवर्द्धिनी नाम होता है। पुष्यनक्षत्रयुक्ता द्वादशी का जया नाम है। श्रवणनक्षत्रवाली द्वादशी को विजया कहते हैं। पुनर्वसु वाली द्वादशी का नाम जयन्ती है। रोहिणीनक्षत्र से युक्त द्वादशी पापनाशिनी कहलाती है। पाप का नाश और मुक्ति चाहनेवाले इन आठ द्वादशियों में उपवास करें। श्रवणनक्षत्र वाली विजया तो एकादशी की तरह नित्य है।

एतास्वष्टसु एकादशीद्वादश्योरेकत्वे तन्त्रेणोपवासः। पार्थक्ये शक्तस्योपवासद्वयम्। यस्त्वारब्धव्रतद्वय उपवासद्वयाशक्तश्च। तस्य द्वादशीसमुपोषणाद् व्रतद्वयपुण्यलाभः। तत्र श्रवणर्क्षयोगो मुहूर्तमात्रोऽपि ग्राह्यः। पुष्यादियोगः सूर्योदयमारभ्यास्तमयपर्यन्तश्चेदुपवासः। पारणं तु तिथिनक्षत्रसंयोगोपोषणे उभयान्तेऽन्यतरान्ते वेति सर्वसामान्यनिर्णयः। इति द्वादशीनिर्णयोद्देशः॥ १८॥

इन आठों एकादशी और द्वादशी के एक दिन पड़ जाने से तन्त्र से उपवास करे। अलग होने पर शक्तिसम्पन्न पुरुष दो उपवास करे। जिसने दोनों व्रतों का आरम्भ किया है और दो उपवास करने में समर्थ नहीं हैं। उसको केवल द्वादशी के उपवास से दोनों व्रतों के पुण्य की प्राप्ति होती है। श्रवणनक्षत्र का योग मुहूर्तमात्र का भी ग्राह्य है। पुष्यादिनक्षत्रों का योग सूर्योदय से सूर्यास्तपर्यन्त रहने पर ही उपवास के योग्य होता है। पारणा तो तिथि नक्षत्र के संयोग के उपवास में दोनों के अन्त अथवा एक किसी के अन्त में करे यह सर्व-सामान्यनिर्णय है। द्वादशीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ त्रयोदशीनिर्णयः

त्रयोदशी[1] शुक्ला पूर्वा कृष्णोत्तरा। शनिवारादियुक्तां काञ्चिच्छुक्लत्रयोदशी-

---

१. त्रयोदशी में प्रदोषव्रत एवं प्रदोषकाल में शिवपूजा करनी चाहिये। ब्रह्मोत्तरखण्ड—'पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद् दिवा। घटीत्रयादस्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत्॥ शुक्लाम्बरधरो भूत्वा वाग्यतो नियमान्वितः। कृतसन्ध्याजपविधिः शिवपूजां समाचरेत्॥ एवमाराधयेद् देवं प्रदोषे गिरिजापतिम्। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद् दक्षिणाभिश्च तोषयेत्॥ सर्वपापक्षयकरी सर्वदारिद्र्यनाशिनी। शिवपूजेयमाख्याता सर्वाभीष्टफलप्रदा॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन श्लोकार्धेन ब्रवीम्यहम्। ब्रह्महत्याशतं वाऽपि शिवपूजा विनाशयेत्। मया कथितमेतत्ते प्रदोषे शिवपूजनम्। रहस्यं सर्वजन्तूनामत्र नास्त्येव संशयः॥' सुमन्तुः—'त्रयोदशी तु कर्त्तव्या द्वादशीसहिता मुने।' इति। यह कृष्णपक्ष और शनिवार में अत्यन्त प्रशस्त है—'मन्दवारे प्रदोषोऽयं दुर्लभः सर्वदेहिनाम्। तत्रापि दुर्लभस्तस्मिन् कृष्णपक्षे समागते॥' इति।

जिस दिन शनिवार को प्रदोष पड़े उसी दिन इस व्रत का आरम्भ करना चाहिये—'यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता। आरभेत व्रतं तत्र सन्तानफलसिद्धये॥ 'ततस्तु लोहिते भानौ स्नातः सुनियतो व्रती। पूजास्थानं ततो गत्वा प्रदोषे शिवमर्चयेत्॥' इति। प्रदोषकाल का महत्त्व—कैलासशैलभवने त्रिजगज्जनित्रीं गौरीं निवेश्य कनकाचितपीठमध्ये। नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ देवाः प्रदोषसमयेऽनुभजन्ति सर्वे॥ वाग्देवी धृतवल्लकी शतमखो वेणुं क्वणन् पद्मजस्तालोन्निद्रकरी रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता। विष्णुः सान्द्रमृदङ्गलम्बनपटुर्देवाः समन्तात् स्थिताः सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम्॥ गन्धर्वयक्षपतगोरगसिद्धसाध्यविद्याधरामरवराप्सरसां गणाश्च। येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सहभूतवर्गाः प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्थाः॥ अतः प्रदोषे शिव एक एव पूज्योऽथ नान्ये हरिपद्मजाद्याः। तस्मिन् महेशे विधिनेज्यमाने सर्वे प्रसीदन्ति सुराधिनाथाः॥' इति।

मारभ्य संवत्सरपर्यन्तं प्रतिपक्षं त्रयोदशीषु शनिवारयुक्तास्वेव चतुर्विंशतिशुक्ल-त्रयोदशीषु वा कर्तव्यम्। यत्प्रदोषसमये शिवपूजानक्तभोजनात्मकं प्रदोषव्रतं तत्र सूर्यास्तमयोत्तरत्रिमुहूर्तात्मकप्रदोषव्यापिनी त्रयोदशी ग्राह्या। दिनद्वये प्रदोष-व्याप्तौ साम्येन तदेकदेशस्पर्शे वा उत्तरा। वैषम्येणैकदेशस्पर्शे तदाधिक्यवती पूर्वापि ग्राह्या, यदि देवपूजाभोजनपर्याप्तं तदाधिक्यं लभ्येत। नो चेत्साम्यपक्ष-वदुत्तरैव। उभयत्र सर्वथा व्याप्त्यभावेऽपि परैव। इति त्रयोदशीनिर्ण-योद्देशः॥ १९॥

त्रयोदशी शुक्ल पक्ष में पूर्वा और कृष्णपक्ष में परा ग्राह्य है। शनिवार आदि वाली किसी शुक्ला त्रयोदशी से आरम्भ कर साल भर तक प्रत्येक पक्ष की शनिवार वाली त्रयोदशी अथवा चौबीस शुक्लपक्ष की त्रयोदशी में कर्तव्य प्रदोषसमय में शिवपूजन, नक्तभोजन वाला प्रदोषव्रत है उसमें सूर्यास्त के तीन मुहूर्त वाली त्रयोदशी ग्राह्य है। दो दिन में प्रदोषवाली त्रयोदशी समता या एकदेश में स्पर्श होने पर परा त्रयोदशी ग्राह्य है। वैषम्य से एकदेश में स्पर्श होने पर अधिका पूर्वा ही ग्राह्य है, यदि देवपूजा और भोजन के लिये पर्याप्त त्रयोदशी मिले। नहीं तो साम्यपक्ष की तरह परा ही ले। यदि दोनों दिन सर्वथा व्याप्ति का अभाव हो तो परा ही ले। त्रयोदशीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ चतुर्दशीनिर्णयः

चतुर्दशी तु शुक्ला परा कृष्णा पूर्वा। यत्तु प्रतिमासं कृष्णचतुर्दश्यां शिव-रात्रिव्रतं काम्यमनुष्ठीयते। तत्र महाशिवरात्रिवन्निशीथव्यापिन्येव ग्राह्या। उभयत्र निशीथव्याप्तौ परा, प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात्। कैश्चित्प्रदोषमात्रव्यापिनी गृह्यते तत्र मूलं चिन्त्यम्। यत्तु चतुर्दश्यां दिवाभोजननिषेध एव नित्यत्वात्पा-ल्यते तत्र भोजनकालव्यापिनीं चतुर्दशीं त्यक्त्वा त्रयोदश्यां पञ्चदश्यां भोक्तव्यम्। शिवरात्रिव्रतिभिस्तु चतुर्दश्यामेव पारणा कर्तव्या। न तत्र 'चतुर्द-श्यष्टमी दिवा' इति भोजननिषेधप्राप्तिः' विधिप्राप्ते निषेधाप्रवेशात्। इति चतुर्दशी-निर्णयोद्देशः॥ २०॥

चतुर्दशी शुक्लपक्ष की परा और कृष्णपक्ष की पूर्वा ग्राह्य है। जो प्रत्येक मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में काम्य शिवरात्रिव्रत करते हैं। इसमें महाशिवरात्रि व्रत की तरह अर्धरात्रव्यापिनी ही चतुर्दशी युक्त है। दोनों दिन अर्द्धरात्रव्यापिनी चतुर्दशी होने पर दूसरे दिन प्रदोष के मिल जाने से परा ही ग्राह्य है। कुछ लोग केवल प्रदोषयुक्त चतुर्दशी में ही शिवरात्रिव्रत करते हैं। इसमें कोई प्रमाण नहीं है। जो चतुर्दशी में दिन का भोजन निषेध नित्य होने से उसी का पालन करते हैं उन्हें भोजनकाल में रहने वाली चतुर्दशी को छोड़कर त्रयोदशी या पूर्णिमा में भोजन करना चाहिए। शिवरात्रिव्रत करने वाले को तो चतुर्दशी में ही पारणा करनी चाहिए। उसमें चतुर्दशी अष्टमी में दिन के भोजन का निषेध नहीं लगता। विधि में निषेध की प्राप्ति नहीं होती। चतुर्दशी-निर्णयोद्देश समाप्त।

अथ पूर्णिमामावास्ययोर्निर्णयः

पूर्णिमामावास्ये तु सावित्रीव्रतं विना परे ग्राह्ये। यत्तु कैश्चिच्छ्रावणी-

हुताशनीपूर्णिमयोः कुलधर्मादौ पूर्वविद्धयोर्ग्राह्यत्वोक्तेः सर्वा पौर्णमासी कुलधर्मादौ पूर्वा गृह्यते तत्र मूलं मृग्यम्। अष्टादशनाडिकातो न्यूनचतुर्दशीसत्त्वे तादृश-चतुर्दशीवेधस्य 'भूतोष्टादशनाडीभिः' इति वचनाददूषकत्वप्रतीतेः। अस्तु वा तादृशस्थले कुलधर्मे पूर्वत्र ग्राह्यत्वम्। अष्टादशनाडिकाधिकचतुर्दशीवेधे तु पूर्वविद्धा पौर्णमासी न ग्राह्येति मे प्रतिभाति।

सावित्रीव्रत को छोड़कर पूर्णिमा अमावस्या परा ली जाती है। जो कोई श्रवण की पूर्णिमा और फाल्गुन की पूर्णिमा कुलधर्म आदि में पूर्वविद्धा के ग्राह्य होने से सभी पूर्णिमा पूर्वा ही मानते हैं, इसमें प्रमाण नहीं मिलता। १८ घड़ी से कम चतुर्दशी के होने पर वैसे चतुर्दशी वेध को "१८ घड़ी से चतुर्दशी वेध करती है" इस प्रकार वचन से भले ही दोष न हो किन्तु ऐसी स्थिति में कुलधर्म में पूर्वा ग्राह्य है। मुझे तो यह अच्छा लगता है कि १८ घड़ी से अधिक चतुर्दशी के वेध होने पर पूर्वविद्धा पूर्णिमा नहीं ग्राह्य करे।

अमावास्या [1]भौमसोमवारयुता स्नानदानादौ महापुण्या। एवं भानुयुता सप्तमी भौमयुता चतुर्थी। यत्तु सोमयुताऽमावास्यायामश्वत्थपूजाद्यात्मकं [2]सोमवती-व्रतमनुष्ठीयते तत्रापराह्णपर्यन्तं मुहूर्तमात्रयोगेऽपि व्रतं कार्यम्। दिनान्त्यषड्-घटिकात्मकसायाह्ने योगे रात्रियोगे च न कार्यमिति शिष्टाचारः। यतीनां क्षौरादौ उदये त्रिमुहूर्तव्यापिनी पौर्णमासी ग्राह्या। तृतीयमुहूर्तस्पर्शाभावे चतु-र्दशीयुता। इति पञ्चदशीनिर्णयोद्देशः॥ २१॥

भौमवती सोमवती अमावास्या स्नान दानादिक में अधिक पुण्य देनेवाली है। इसी प्रकार रविवार वाली सप्तमी और मंगलवार वाली चतुर्थी भी। जो सोमवती अमावस्या में अश्वत्थपूजन आदि सोमवती का व्रत करते हैं उसमें अपराह्ण तक मुहूर्त मात्र के योग में भी व्रत करना चाहिए। शिष्टाचार तो यह है कि सायंकाल छः घड़ी का जो होता है उसमें या रात्रि में भी सोम के योग से अमावस्या प्रयुक्त सोमवती करे। संन्यासी के क्षौरकर्म में उदयकाल में तीन मुहूर्तवाली पूर्णिमा ले। तीसरे मुहूर्त के स्पर्श न होने पर चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा ग्राह्य है। पंचदशीनिर्णयोद्देश समाप्त।

---

१. महाभारते—'अमा सोमे तथा भौमे गुरुवारे यदा भवेत्। तत्तीर्थं पुष्करं नाम सूर्यपर्वश-ताधिकम्॥ श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तकैः। अमा चेद्रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते॥ तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वं कोटिगुणं भवेत्।' इति। शङ्खः—'अमावास्या तु सोमेन सप्तमी भानुना सह। चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी। चतस्रस्तिथयस्त्वेताः सूर्यग्रहणसन्निभाः। स्नानं दानं तथा श्राद्धं सर्वं तत्राक्षयं भवेत्॥' इति।

२. कृत्यशिरोमणि उद्धृत भारत में सोमवतीव्रत—'अमावास्या यदा पार्थ सोमवारसमन्विता। तस्यामश्वत्थमागत्य पूजयित्वा जनार्दनम्॥ अष्टोत्तरशतं कृत्वा तस्मिन् वृक्षे प्रदक्षिणम्। तावत्संख्यानु-पादाय रत्नधातुफलानि च। व्रतराजमिदं राजन् विष्णोः प्रीतिकरं परम्॥' इति। अपि च—'सोमवत्या अमायास्तु व्रतं कृत्वा सती भवेत्। पतिपुत्रधनैः पूर्णा जन्मजन्मनि निश्चितम्॥ विधवा चेत्करोतीदं न पुनर्विधवा क्वचित्। तस्मात् स्त्रिया सुभगया कर्तव्यं खलु तद्व्रतम्॥' मत्स्यपुराण में प्रदोषव्रत की भाँति सोमवार व्रत का विधान—'सोमवारे विशेषेण प्रदोषादिगुणैर्युते। केवलं वापि ये कुर्युः सोमवारे शिवार्चनम्॥ न तेषां विद्यते किंचिदिहामुत्र च दुर्लभम्। उपोषितः शुचिर्भूत्वा सोमवारे जितेन्द्रियः॥ वैदिकैर्लौकिकैर्वापि विधिवत्पूजयेच्छिवम्। ब्रह्मचारी गृहस्थो वा कन्या वापि सभर्तृका। विभर्तृका वा सम्पूज्य लभते वरमीप्सितम्॥' इति।

अथेष्टिकालः

पक्षान्ता[1] उपवस्तव्याः पक्षाद्या यष्टव्याः । उपवासोऽन्वाधानाख्यं कर्म ।
पर्वणो[2] यश्चतुर्थांश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः ।
यागकालः स विज्ञेयः प्रातरुक्तो मनीषिभिः ॥

प्रतिपत्तुर्यचरणे न यष्टव्यमिति स्थितिः । तत्र पर्वप्रतिपदोः पूर्णत्वे संदेहाभावः । पर्वण्यन्वाधानस्योत्तरदिने यागस्य यथोक्तकाललाभात् ।

पक्षान्त तिथि में उपवास और पक्ष के आदि की तिथि में यज्ञ करे । यहाँ उपवास से 'अन्वाधान' नामक कर्म ग्राह्य है । अमावास्या पूर्णिमा को पर्व कहते हैं । पूर्णिमा अमावास्या का चौथा और प्रतिपदा के आद्य तीन अंश ये तीन तिथियाँ यज्ञकाल कहलाती हैं । यह प्रातः यज्ञकाल है । प्रतिपदा के चतुर्थचरण में यज्ञ न करे । उसमें पूर्णिमा अमावास्या और प्रतिपदा के

---

१. पक्षाणामन्ता अवसानतिथयः उपवस्तव्याः पक्षाणामादयः प्रतिपदश्च अभियष्टव्याः इत्यर्थः । पक्षान्ता तिथिश्च द्वयी पौर्णमासी अमावास्या च । पक्षान्तं कर्म अन्वाधानम् । अन्वाधानं नाम इध्माबर्हिःसम्पादनम् अग्निपरिग्रहः उपस्तरणं चेत्येवमादिः प्रयोगारम्भः । सः पूर्वेद्युः कर्तव्यः । शतपथे—'पूर्वेद्युरग्निं गृह्णात्युत्तरमहर्यजति' इति । अत्र अग्निग्रहणं नाम अध्वर्युणा आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निषु 'ममाग्ने वर्च' इत्यादृग्भिः समिदाधानलक्षणेऽन्वाधाने क्रियमाणे पार्श्ववर्तिना यजमानेन 'अग्निं गृह्णामि' इत्यादिमन्त्रपठनम् । तदिदं पर्वदिने क्रियते । प्रतिपद्दिने तु 'कर्मणे वां देवेभ्यः शकेयम्' इत्यादिभिः अध्वर्युः हस्तप्रक्षालन-तण्डुलनिर्वाप-पुरोडाशप्रदानादिलक्षणं प्रयोगं करोति । तदिदं यजनम् ।

२. पर्व दो प्रकार का है—पौर्णमासी और अमावास्या । गोभिल ने इन दोनों का स्वरूप दिखलाया—'यः परमो विप्रकर्षः सूर्याचन्द्रमसोः सा पौर्णमासी, यः परमः सन्निकर्षः सा अमावास्या' इति । मत्स्यपुराणादि में पूर्णिमा का निर्वचन—'कलाक्षये व्यतिक्रान्ते दिवा पूर्णौ परस्परम् । चन्द्रादित्यौ पराह्ने तु पूर्णत्वात्पूर्णिमा स्मृता ॥' अमावास्या का निर्वचन—'अमा वसेतामृक्षेषु यदा चन्द्रदिवाकरौ । एषा पंचदशी रात्रिरमावास्या ततस्तु सा ॥' इति ।

दोनों पक्षों की अन्तिम तिथि 'पंचदशी' कहलाती है । शुक्लपक्ष की पञ्चदशी में चन्द्रमण्डल अपनी सभी कलाओं से पूर्ण हो जाता है या मास पूर्ण होता है इसलिये इस (पंचदशी) का नाम 'पूर्णिमा' पड़ा । ब्रह्माण्डपुराण में कहा—'कलाक्षये व्यतिक्रान्ते दिवा पूर्णौ परस्परम् । चन्द्रादित्यौ पराह्णे तु पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥' भविष्योत्तरे—'पौर्णमासी महाराज सोमस्य दयिता तिथिः । पूर्णो मासो भवेद्यस्मात् पौर्णमासी ततः स्मृता ॥' इति ।

कृष्णपक्ष की पंचदशी का नाम 'अमावास्या' पड़ा । कालमाधव में अमाशब्द के चार अर्थ दिखलाये हैं—सहभाव, कन्या, सूर्यरश्मि, और चन्द्रकला । अमाशब्द का चन्द्रकला अर्थ मानकर भगवतीपुराण में इसका निर्वचन किया—'कलाऽवशेषो निष्क्रान्तः प्रविष्टः सूर्यमण्डलम् । अमायां विद्यते यस्माद् अमावास्या ततः स्मृता ॥' इति । अमाशब्द के शेष अर्थों का निर्वचन कालमाधव में देखें । विस्तार के भय से नहीं लिखा जा रहा है ।

पूर्णिमा और अमावास्या के दो भेद हैं, उसका स्वरूप ऐतरेय ब्राह्मण में यों है—'या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिर्योत्तरा सा राका या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः ।' इति । उनका लक्षण वृद्धवसिष्ठ ने बतलाया—'राका सम्पूर्णचन्द्रा स्यात्कलोनानुमतिः स्मृता । पौर्णमासी दिवादृष्टे शशिन्यनुमतिः स्मृता । रात्रिदृष्टे पुनस्तस्मिन् सैव राकेति कीर्तिता ॥ दृष्टचन्द्रामावास्यां सिनीवालीं प्रचक्षते । एवामेव कुहूमाहुर्नष्टचन्द्रां महर्षयः ॥' इति ।

पूर्ण होने पर संदेह का अभाव है। क्योंकि पर्व में अन्वाधान के दूसरे दिन यज्ञ का उचित काल मिल जायगा।

पर्वप्रतिपदोः संधिनिर्णयः—पर्वणः खण्डत्वे तु पर्वापेक्षया प्रतिपदो ह्रासवृद्धिघटिका गणयित्वा तदर्धं ह्रासे पर्वणि वियोज्य वृद्धौ संयोज्य [1]संधिकालं ज्ञात्वाऽन्वाधानादिकालो निर्णेतव्य.। यत्र ह्रासवृद्धी न स्तस्तत्र यथास्थितः स्पष्ट एव संधिः।

पर्व के खंड होने पर पर्व की अपेक्षा प्रतिपदा की कमी और वृद्धि की घड़ियाँ गिनकर उसका आधा घटा कर पर्व से निकाल कर वृद्धि होने पर जोड़ कर सन्धिकालका ज्ञानकर अन्वाधानादिकाल का निर्णय करे। जहाँ ह्रास-वृद्धि न हो वहाँ जैसा हो स्पष्ट सन्धिज्ञान करे।

तत्र संधिश्चतुर्विधः—पूर्वाह्णसंधिर्मध्याह्नसंधिरपराह्णसंधिरात्रिसंधिश्चेति। द्वेधा विभक्तदिनस्य पूर्वार्धं पूर्वाह्णः अपरार्धम् अपराह्णः। पूर्वाह्णापराह्णसंधिभूतो घटिकाद्वयात्मको मुहूर्तो मध्याह्नः, आवर्तनापरपर्याय इति कौस्तुभे। उभयसंधिरेकपलात्मक एव मध्याह्नो नतु घटिकाद्वयात्मक इति प्रायेणेदानीं शिष्टाचारः। तत्रोक्तरीत्या ह्रासवृद्ध्यर्धवियोजनसंयोजनेन निर्णीतः पर्वप्रतिपदोः संधिर्यदि पूर्वाह्णे मध्याह्ने वा भवति, तदा संधिदिनात्पूर्वदिनेऽन्वाधानं संधिदिने यागः। यद्यपराह्णे रात्रौ वा संधिस्तदा संधिदिनेऽन्वाधानं तत्परदिने यागः।

सन्धि चार प्रकार की होती है—पूर्वाह्णसन्धि मध्याह्नसन्धि अपराह्णसन्धि और रात्रिसन्धि के भेद से। दिन के दो भाग करने पर पहले आधा पूर्वाह्ण दूसरा आधा अपराह्ण। पूर्वाह्ण अपराह्ण के सन्धि में दो घड़ी का जो मुहूर्त होता है उसे मध्याह्न कहते हैं। जिसका दूसरा नाम आवर्तन है ऐसा कौस्तुभ में लिखा है। आजकल शिष्टों का प्रायः यह आचार है कि दोनों सन्धि एक पल की होती है न कि दो घड़ी की। उक्त रीति से ह्रास वृद्धि के लिये घटाने-जोड़ने का निर्णय किया। पर्व और प्रतिपदा की सन्धि यदि पूर्वाह्ण या मध्याह्न में होती है, तब सन्धिदिन से पहले अन्वाधान होता है और सन्धिदिन में यज्ञ होता है। अगर अपराह्ण और रात्रि में प्रतिपदा की सन्धि होती है तो सन्धिदिन में अन्वाधान और दूसरे दिन यज्ञ होता है।

---

१. कुहूभिन्नानां तिसृणां लघ्वक्षरोच्चारणपरिमितः कालः सन्धिरित्युच्यते। कुह्वास्तु अक्षरद्वयपरिमितः कालः। तदुक्तं हेमाद्रौ भगवतीपुराणे—'अनुमत्याश्च राकायाः सिनीवाल्याः कुहूं विना। एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूः स्मृता॥' इति। लवस्वरूपं स्मृत्यन्तरे—'लघ्वक्षरचतुर्भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते। त्रुटिद्वयं लवः प्रोक्तो निमेषस्तु लवद्वयम्॥' तथा च लवद्वयं लघ्वक्षरं भवतीति लघ्वक्षरपरिमिते काले एकः पर्वणो भागो द्वितीयः प्रतिपदः, तदुभयं मिलितं सन्धिर्भवति। कुहूप्रतिपदोः सन्धिस्तु द्विगुणः। कुहूस्वरूपं मत्स्यपुराणादौ—'कुह्विति कोकिलेनोक्ते यावान् कालः समाप्यते। तत्कालसंज्ञिता चैषा अमावास्या कुहूः स्मृता॥' इति। सन्धिस्वरूपे ज्ञाते 'सन्धौ यजेत' इति श्रुतेः सन्धौ यागः कर्तव्यः। सन्धेश्चातिसूक्ष्मत्वेन कर्मानुष्ठानायोग्यत्वात् सन्धिशब्दः सन्धिपार्श्वद्वयं लक्षयति। तथा च सन्धिपार्श्वद्वये 'सन्धौ यजेत' इति श्रुतिः यागं विधत्ते। हेमाद्रौ बौधायनः—'सूक्ष्मत्वात्संधिकालस्य सन्धेर्विषय उच्यते। सामीप्यं विषयं प्राहुः पूर्वेणाथ परेण वा॥' इति। अत्र पूर्वापरशब्दाभ्यां सन्धेः प्राचीनं पूर्वदिनमुत्तरं प्रतिपद्दिनं चाभिधीयते। तत्र व्यवस्था—'पूर्वेद्युरिध्माबर्हिः करोति यज्ञमेवारभ्य गृहीत्वोपवसति' इति श्रुतौ।

अथोदाहरणम्

पर्व सप्तदशघटीमितं प्रतिपदेकादशघटीमिता तत्र षड्घटीमितः प्रतिपत्क्षयस्तदर्धं घटीत्रयं पर्वणि वियोजितं जातः संधिश्चतुर्दशघटीमितः। अयं त्रिंशद्घटीमिते दिनमाने पूर्वाह्णसंधिः। अष्टाविंशतिघटीमिते तु दिनमानेऽयमेव मध्याह्नसंधिः। अत्र संधिदिने यागः पूर्वदिनेऽन्वाधानम्। पर्व १४ प्रतिपत् १९ अत्र पञ्चघटिकावृद्धिः। तदर्धं सार्धघटीद्वयं पर्वणि संयोजितं जातः संधिः सार्धषोडशघटीमितः। अयम् अपराह्णसंधिः। अत्र संधिदिनेऽन्वाधानं परेद्युर्यागः।

इसका उदाहरण यह है कि—पर्व १७ घड़ी और प्रतिपदा ११ घड़ी है तो पर्व से ६ घड़ी प्रतिपद् कम है। उसका तीन घड़ी पर्व में निकाल देने से १४ घड़ी पर सन्धि हुई। यह तीस घड़ी के दिनमान होने से पूर्वाह्न सन्धि हुई। २८ घड़ी के दिनमान होने से यही मध्याह्न सन्धि हुई। इसी सन्धि में यज्ञ और पहले अन्वाधान होगा। अब दूसरा उदाहरण—पर्व १४ घ० और प्रतिपद् १९ घ० तो ५ घ० पर्व से प्रतिपत् में वृद्धि हुई। उसका २॥ घ० पर्व में जोड़ने से १६॥ घ० पर सन्धि हुई। यह अपराह्न सन्धि हुई। इसीमें अन्वाधान कर्म और दूसरे दिन यज्ञ होगा।

अथात्र बालबोधनार्थं प्रकारान्तरम्

सूर्योदयोत्तरं विद्यमानाः पर्वनाडिकाः प्रतिपन्नाडिकाश्चैकीकृताः सत्यो यदि दिनमानतो न्यूनास्तदा पूर्वाह्णसंधिः। यदि दिनमानसमास्तदा मध्याह्नसंधिः। यदि दिनमानादधिकास्तदाऽपराह्णसंधिरिति। इत्थं सूर्योदयोत्तरमनुवर्तमानपर्वप्रतिपदोः क्षयवृद्धिभ्यामेव संध्यवलोकनमिदानीं सर्वत्र शिष्टाचारेषु प्रसिद्धम्।

बालबोधार्थ दूसरे प्रकार का उदाहरण है कि—सूर्योदय के बाद की पर्व की घड़ियों और प्रतिपदा की घड़ियों को इकट्ठा करने पर यदि दिनमानसे कम होता है तो पूर्वाह्न सन्धि होगी। यदि दिनमान के बराबर होता है तो मध्याह्न सन्धि और यदि दिनमान से अधिक होता है तो अपराह्नसन्धि होती है। इस प्रकार सूर्योदय के बाद अनुवृत्तपर्वप्रतिपत्ति की क्षय और वृद्धि से ही संधि का अवलोकन इस समय सर्वत्र शिष्टाचार में प्रसिद्ध है।

कौस्तुभादौ तु चतुर्दशीदिनस्था उदयात्पूर्वं पर्वणो गतघटिका उदयादेष्यघटिकाश्चैकीकृत्यैवं प्रतिपदः पूर्वदिनस्था उत्तरदिनस्थाश्च घटिका एकीकृत्य पर्वापेक्षया प्रतिपदो वृद्धिक्षयौ ज्ञेयौ। तद्यथा—चतुर्दशी २२ पर्व १७ चतुर्दशीदिनस्थाः पर्वनाडिकाः ३८ उत्तरदिनस्थाः १७ एकीकृत्य जाताः ५५। पर्वदिनस्थाः प्रतिपन्नाड्यः ४३ उत्तरदिनस्थाः ११ एकीकृत्य जाताः ५४। अत्रैका घटी प्रतिपत्क्षयस्तदर्धमर्धघटीपर्वणि वियोजिता जातः संधिः सार्धषोडशनाड्यः। अयमपराह्णसंधिः।

कौस्तुभ आदि में तो दिन की चतुर्दशी उदय से पहले पर्व की गत घटिका उदय के बाद की आने वाली घड़ियों को एक में करके इसी तरह प्रतिपदा और पर्व दिन के उत्तर दिन की घड़ियों को एक कर पर्व की अपेक्षा प्रतिपदा की वृद्धि और क्षय का ज्ञान करे। जैसे—चतुर्दशी २२, पर्व १७, चतुर्दशी के दिन की पर्व की घड़ियां ३८, दूसरे दिन की १७, जोड़ने पर ५५ हुआ। पर्व के दिन

की प्रतिपदा की घड़ियाँ ४३ दूसरे दिन की ११ जोडने पर ५४ हुआ। इसमें १ घड़ी प्रतिपदा का क्षय हुआ उसका आधा आधी घड़ी, पर्व की घड़ियों में से निकालने पर १६॥ घ० पर संधि हुई। यह अपराह्ण संधि है।

प्रथममते त्वत्र पूर्वाह्णसंधिः स्थितः। तथा चतुर्दशी २४ पर्व १७ पूर्वं गतनाड्यः ३६ एष्ययोगे जाताः ५३। प्रतिपत् ११ गतैष्ययोगे जाताः ५४। अत्र पूर्वोक्तरीत्या क्षयोदाहरणे एवैका घटी वृद्धिस्तदर्धसंयोजने सार्धसप्तदशनाडीमितोऽपराह्णसंधिः।

पहले मत में तो यहाँ पूर्वाह्णसंधि है। उसी तरह चतुर्दशी २४, पर्व १७, पहले की बीती घड़ियाँ ३६, और आने वाली घड़ियों के योग से ५३ घ० हुई और प्रतिपदा ११, तो बीती हुई और आनेवाली घड़ियों के जोड़ने से ५४ हुआ। यहाँ पूर्वोक्त रीति से क्षय के उदाहरण में ही एक घड़ी की वृद्धि हुई और उसका आधा जोड़ने पर १७॥ घ० होने से अपराह्ण सन्धि हुई।

एवं च पूर्वमतैतन्मतयोरत्यन्तं विरोधः, वृद्धिक्षयादिसर्ववैपरीत्यात्। अत्र मते घटीद्वयाधिका वृद्धिः क्षयो वा न संभवतीति 'परेह्नि घटिकान्यूनास्तथैवाभ्यधिकाश्च या' इति बहुवचनमसंगतमिति दूषणं पुरुषार्थचिंतामणौ द्रष्टव्यम्।

इस प्रकार पहले मत से इस मत में अत्यन्त विरोध है। वृद्धि और क्षय आदि सब उलटे हैं। इस मत में दो घड़ी से अधिक की वृद्धि वा क्षय नहीं संभव है। इसलिये दूसरे दिन "परेह्नि घटिका न्यूना तथैवाभ्यधिकाश्च याः" यह जो बहुवचन है वह संगत नहीं होता यही दोष है, इसे पुरुषार्थचिन्तामणि में देखना चाहिये।

अथ पौर्णमास्यां विशेषः

सङ्गवकालादूर्ध्वं त्रयोदशादिघटीमारभ्यार्धाह्नात्पूर्वं संधौ सद्यस्काला पौर्णमासी तस्यां संधिदिने एवान्वाधानं यागश्च सद्योऽनुष्ठेयः। इदं पौर्णमास्यां सद्यस्कालत्वं वैकल्पिकमिति केचित्। अमावास्यायां सर्वत्र द्व्यहकालतैव न कदाचिदपि सद्यस्कालता। पौर्णमास्याममायां चापराह्णसंधौ प्रतिपच्चतुर्थपादे यागो न दोषाय।

संगवकाल के बाद १३ आदि घटी से लेकर आधे दिन के पूर्व संधि होने पर सद्यःकाला पूर्णिमा होती है। उसके सन्धि के दिन में ही अन्वाधान और यज्ञ तुरत करना चाहिए। इस पूर्णिमा में सद्यः अन्वाधान और याग वैकल्पिक है, यह किसी का मत है। अमावास्या में सदा दो दिन का समय लगता है, कभी भी सद्यः नहीं होता। पूर्णिमा अथवा अमावास्या में अपराह्ण संधि होने पर प्रतिपदा के चौथे चरण में यज्ञ करने से दोष नहीं है।

अमावास्यायामपराह्णसंधावपि प्रतिपदि त्रिमुहूर्ताधिकद्वितीयाप्रवेशे चन्द्रदर्शनसंभवेन चन्द्रदर्शने यागनिषेधादमावास्यायामेवेष्टिश्चतुर्दश्यामन्वाधानं बौधायनादीनाम्। अमावास्यायां सप्तघटीमितप्रतिपदभावे चन्द्रदर्शनेऽपि प्रतिपद्येव बौधायनैरिष्टिः कार्या। आश्वलायनापस्तम्बादीनां तु चन्द्रदर्शननिषेधो नास्तीति प्रतिपद्येवेष्टिः।

अमावास्या में अपराह्ण संधि में भी प्रतिपदा में तीन मुहूर्त से अधिक द्वितीया का प्रवेश होने पर चंद्रदर्शन की संभावना के कारण चन्द्रदर्शन में यज्ञ का निषेध है अतः अमावास्या में याग

चतुर्दशी में अन्वाधान, बौधायन आदि के लिये है। अमावास्या में सात घड़ी तक प्रतिपदा न हो तो चन्द्रदर्शन होने पर भी प्रतिपदा में ही बौधायन यज्ञ करें। आश्वलायन आपस्तम्ब आदि का तो चन्द्रदर्शन निषेध नहीं है, इससे वे प्रतिपदा में ही इष्टि (याग) करें।

यत्र संधिदिने इष्टिस्तत्र सा प्रतिपद्येव समापनीया न तु पर्वणि पर्वणि यागसमाप्तौ पुनर्यागः कर्तव्यः। एवमेव स्मार्ते पार्वणस्थालीपाकनिर्णयः। केचित्तु स्मार्ते स्थालीपाकः प्रतिपद्येव समापनीय इति नियमो नास्ति। पूर्वाह्ले एव स्थालीपाकं समाप्य संधेरूर्ध्वं प्रतिपदि ब्राह्मणभोजनमात्रं कार्यम्। जयन्तोऽपि संधिसन्निकृष्टे प्रात.काले एव स्थालीपाकमाहेति विशेषमाहुः।

जहाँ संधि के दिन में यज्ञ हो वहाँ यज्ञ को प्रतिपदा में ही समाप्त करे न कि पर्व में। पर्व में यज्ञ समाप्त होने पर दुबारा यज्ञ करना चाहिए। इसी तरह स्मार्तकर्म में भी पार्वण और स्थालीपाक का निर्णय होता है। कुछ लोग स्मार्तकर्म में स्थालीपाक प्रतिपदा में ही समाप्त करे, यह नियम नहीं मानते। पूर्वाह्ण में स्थालीपाक को समाप्त कर संधि के अनन्तर प्रतिपदा में केवल ब्राह्मणभोजन कराना उचित है। जयन्त भी संधि के निकट प्रातःकाल में ही स्थालीपाक कहते हैं, यह उनकी विशेषता है।

श्रौतेऽपि ब्राह्मणभोजनमात्रं प्रतिपदि कार्यमन्यत्तन्त्रं पूर्वाह्ण एव समापनीयं न प्रतिपदपेक्षेति पुरुषार्थचिन्तामणावुक्तम्। कात्यायनानां पौर्णमासेष्टिनिर्णयः पूर्वोक्तः सर्वसाधारण एव न तत्र कश्चिद्विशेषः, इति सिन्ध्वादिबहुग्रन्थसंमतम्। अन्ये तु पूर्वाह्णसंधौ संधिदिनेऽन्वाधानं परेह्नि याग इति पौर्णमासीविषये कातीयानां विशेषमाहुः।

वैदिककर्म में भी केवल ब्राह्मणभोजन प्रतिपदा में कराना चाहिए। अन्य कर्म पूर्वाह्ण में ही समाप्त करे। उसमें प्रतिपदा की अपेक्षा नहीं है ऐसा पुरुषार्थचिन्तामणि में कहा है। कात्यायनवालों के लिये पूर्णिमा के याग का निर्णय पहले ही केसदृश सर्वसाधारण है उसमें कोई विशेष नहीं, ऐसा सिन्धु आदि बहुत से ग्रन्थों ने माना है। अन्य लोग तो पूर्वाह्णसंधि होने पर संधि-दिन में अन्वाधान और दूसरे दिन यज्ञ ऐसा पूर्णिमा के विषय में कात्यायनवालों का विशेष कहते हैं।

अथामावास्यायां कातीयानां विशेषः

अमाविषये त्रेधा विभक्तदिनस्य प्रथमो भागः पूर्वाह्णः, द्वितीयो भागो मध्याह्नः, तृतीयभागोऽपराह्णः। तत्र रात्रिसंधौ प्रतिपद्दिने चन्द्रदर्शने सत्यपि परेषामिव कातीयानामपि संधिदिने पिण्डपितृयज्ञोऽन्वाधानं च परदिने चेष्टिरिति निर्विवादम्।

अमावास्या में कात्यायनवालों की विशेषता है कि अमावस्या के सम्बन्ध में दिन को तीन भाग में विभाग करने पर पहला भाग पूर्वाह्ण, दूसरा भाग मध्याह्न और तीसरा भाग अपराह्ण होता है। उसमें रात्रि की संधि में प्रतिपदा के दिन चन्द्रदर्शन होने पर भी दूसरों की तरह कात्यायन वालों का भी संधि के दिन पिण्ड-पितृयज्ञ तथा अन्वाधान और दूसरे इष्टि होगी, यह विवाद शून्य है।

पूर्वाह्ले दिनद्वितीयभागाख्यमध्याह्ने च संधौ संधिपूर्वदिनेऽन्वाधानपिण्डपितृयज्ञौ संधिदिने चेष्टिः। तदा चतुर्दशीदिनेऽमावास्याया दिनतृतीयभागाख्यापराह्णे यदि पूर्णव्याप्तिस्तर्हि अमायुक्तेऽपराह्णे पिण्डपितृयज्ञ इति न संदेहः।

पूर्वाह्न में दिन के दूसरे भाग नामक मध्याह्न में भी संधि होने पर, संधि के पहले दिन अन्वाधान और पिण्ड-पितृयज्ञ इष्टि संधिदिन में करते हैं। तब चतुर्दशी में अमावास्या के दिन के तीसरे भाग अपराह्न में यदि पूर्ण रहे तो अमावास्या युक्त अपराह्न में पिण्डपितृयज्ञ होता है, यह संशयरहित है।

यदि तृतीयभागाख्यापराह्णान्त्यभागेऽपराह्णैकदेशेऽमावास्याव्याप्तिस्तर्ह्यमावास्यायां प्राप्तायां पिण्डपितृयज्ञो न चतुर्दश्यामित्येकः पक्षः। चतुर्दश्यन्त्ये भागे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रस्य परमक्षीणत्वादित्यपरः पक्षः।

यदि तीसरे भाग अपराह्न के अंत्य भाग में अपराह्न के एकदेश में अमावास्या हो तब अमावास्या में पिण्ड-पितृयज्ञ करे चतुर्दशी में नहीं, यह एक पक्ष है। चतुर्दशी के अन्त्यभाग में चन्द्रमा के अतिशय क्षीण होने से पिण्ड-पितृयज्ञ करे, ऐसा दूसरा पक्ष है।

अथापराह्णसंधौ चत्वारः पक्षाः

संधिदिने एव दिनतृतीयभागाख्यापराह्णेऽमायाः पूर्णव्याप्तिरिति प्रथमः पक्षः। यथा—चतुर्दशी २९ अमा ३० प्रतिपत् २९ दिनमानं च त्रिंशत् ३०। अत्र संधिदिनेऽन्वाधानपितृयज्ञौ परदिने यागः।

अपराह्न सन्धि के चार पक्षों में पहला पक्ष यह है कि संधि के दिन ही दिन के तीसरे भाग अपराह्न में अमावास्या की पूर्ण व्याप्ति हो। जैसे—चतुर्दशी २९, अमावास्या ३०, प्रतिपद् २९ और दिनमान ३०। ऐसी स्थिति में संधिदिन में अन्वाधान और पिण्ड-पितृयज्ञ, दूसरे दिन याग करे।

संधिपूर्वदिने एवोक्तापराह्णेऽमायाः पूर्णव्याप्तिरिति द्वितीयः पक्षः। यथा—चतुर्दशी २० अमा २२ प्रतिपत् २४ दिनं ३०। अत्र संधिदिनात्परदिने मुहूर्तत्रयात्मकप्रातःकाले प्रतिपत्पादत्रयावच्छिन्नयागकाललाभात्संधिदिनेऽन्वाधानपितृयागौ प्रतिपदि चेष्टिरिति कौस्तुभमतम्।

दूसरा पक्ष यह है कि—संधि के प्रथम दिन में ही पूर्वोक्त अपराह्न में अमावास्या पूर्ण हो। जैसे—चतुर्दशी २०, अमावास्या २२, प्रतिपदा २४, दिनमान ३०। यहाँ संधिदिन से दूसरे दिन में त्रिमुहूर्त रूप प्रातःकाल में प्रतिपदा के तीनों चरण में यागकाल के मिलने से संधिदिन में अन्वाधान पितृयज्ञ तथा प्रतिपदा में इष्टि, ऐसा कौस्तुभ का मत है।

त्रिमुहूर्ता द्वितीया चेत्प्रतिपच्चापराह्णिकी।
अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात्॥

इति वचनाच्चतुर्दश्यां पिण्डपितृयज्ञोपवासौ संधिदिने चेष्टिरिति परमतम्।

दूसरों का मत यह है कि—यदि तीन मुहूर्त द्वितीया और अपराह्न व्यापिनी प्रतिपदा हो तो चतुर्दशी में अन्वाधान करे क्योंकि उसके बाद चन्द्रदर्शन होता है। इस वचन से चतुर्दशी में पिण्डपितृयज्ञ तथा उपवास और संधिदिन में इष्टि होगी।

अथापरं द्वितीयपक्षोदाहरणम्

चतुर्दशी १८ अमा १८ प्रतिपत् १९ दिनम् २७। अत्र प्रतिपद्दिने प्रातः पादत्रयावच्छिन्नयागकालाभावात्संधिदिने एव सर्वमते कात्यायनानामिष्टिः, पूर्वदिने पिण्डपितृयज्ञोपवासौ।

जैसे—चतुर्दशी १८, अमावास्या १८, प्रतिपदा १९, दिनमान २७, यहाँ पर प्रतिपदा के दिन प्रातःकालीन तीन चरणात्मक यागकाल के अभाव होने से संधि ही के दिन सबके मत में कात्यायन वालों की इष्टि और पहले पिण्ड-पितृयज्ञ और उपवास होगा।

अथ दिनद्वये साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तिरिति तृतीयः पक्षः। यथा—चतुर्दशी २५ अमा २५ प्रतिपत् २४ दिनमानं ३०। इयं साम्येनापराह्णव्याप्तिः। अत्र कौस्तुभमतपरमतोक्तरीत्या द्वेधा निर्णयः। यथा वा—चतुर्दशी २५ अमा २० प्रतिपत् १७ दिनं २७। इयमपि साम्येनैकदेशव्याप्तिः।

तीसरा पक्ष यह है कि—दोनों दिन समता से वा वैषम्य से एकदेश में व्याप्ति हो। जैसे—चतुर्दशी २५, अमावास्या २५, प्रतिपदा २४, दिनमान ३०। यह समत्व अपराह्ण व्याप्ति है। यहाँ कौस्तुभमत और परमत से दो प्रकार का निर्णय है। जैसे—चतुर्दशी २५, अमावास्या २०, प्रतिपदा १७, दिनमान २७। यह भी समता से एकदेश व्याप्ति है।

अत्र सर्वमते संधिदिने एव कातीयेष्टिः पूर्वदिने च पिण्डपितृयज्ञोपवासौ। अथ वैषम्येणैकदेशव्याप्तिः। चतुर्दशी २५ अमा २३ प्रतिपत् २३ दिनं ३०। अत्रापि पूर्वोक्तमतद्वयेन द्वेधा निर्णयो ज्ञेयः। यथा वा—चतुर्दशी २५ अमा २२ प्रतिपत् १८ दिनं ३०। इयमपि वैषम्येणैकदेशव्याप्तिः।

यहाँ सब के मत में कातीयों की इष्टि संधि के दिन में ही पहले दिन में पिण्ड-पितृयज्ञ और उपवास होता है। अब विषमता एकदेश व्याप्ति का उदाहरण, जैसे—चतुर्दशी २५, अमावास्या २३, प्रतिपद २३, दिनमान ३०। यहाँ भी पहले कहे हुए दोनों मत से दो प्रकार का निर्णय जानें। अथवा जैसे—चतुर्दशी २५, अमावास्या २२ और प्रतिपदा १८, दिनमान ३०। यह भी वैषम्य से एकदेश व्याप्ति है।

अत्रापि सर्वमते संधिदिने कातीयेष्टिश्चतुर्दश्यामुपवासपिण्डपितृयज्ञौ। यथा वा—चतुर्दशी २५ अमा २७ प्रतिपत् २९ दिनं ३०। अत्र संधिदिनेऽन्वाधानयागौ प्रतिपदीष्टिः।

यहाँ पर भी सबके मत में सन्धिदिन में कात्यायन वालों की इष्टि चतुर्दशी में उपवास और पिंड-पितृयज्ञ। दूसरा उदाहरण—चतुर्दशी २५, अमावास्या २७, प्रतिपद २९ और दिनमान ३०। ऐसी जगह सन्धि के दिन में अन्वाधान और याग तथा प्रतिपदा में इष्टि होगी।

संधिदिने एवैकदेशव्याप्तिरिति चतुर्थः पक्षः। यथा—चतुर्दशी ३१ अमा २६ प्रतिपत् २३ दिनं ३०। यथा वा—चतुर्दशी २८ अमा २२ प्रतिपत् १७ दिनं २७। अत्रोभयत्रापि संधिदिने एव पिण्डपितृयज्ञान्वाधाने यागस्तु परेह्नि प्रतिपदि।

अब चौथा पक्ष यह है कि—संधिदिन में ही एकदेश में व्याप्ति, जैसे—चतुर्दशी ३१, अमावस्या २६, प्रतिपदा २३, दिनमान ३०; अथवा चतुर्दशी २८, अमावस्या २२, प्रतिपदा १७, दिनमान २७। इन दोनों उदाहरण में भी संधि के दिन ही पिण्ड-पितृयज्ञ और अन्वाधान। याग तो दूसरे दिन प्रतिपदा में होता है।

एवं च कात्यायनमतेऽपि सर्वत्रोदाहरणे चन्द्रदर्शननिषेधप्रतिपालनं न संभवति। किंतु कुत्रचिन्निषेधादरात्पूर्वत्र यागादिकम्। क्वचित्तु चन्द्रदर्शनवत्येव दिने।

एवं पिण्डपितृयज्ञोऽपीति ध्येयम् । दर्शश्राद्धार्थममावास्यादिनिर्णयः सर्वसाधारणोऽग्रे पृथगेव वक्ष्यते ।

इस प्रकार कात्यायन के मत में भी सब जगह उदाहरण में चन्द्रदर्शन निषेध का पालन संभव नहीं है । किन्तु कहीं निषेध को मान कर याग आदि पहले और कहीं चन्द्रदर्शन वाले दिन में ही होगा इस प्रकार पिण्ड-पितृयज्ञ भी जाने । अमावास्या के श्राद्ध के लिये सर्वसाधारण अमावास्या का निर्णय अलग ही कहेंगे ।

अथ सामगानामिष्टेर्निर्णयः

तत्र पौर्णमासी सर्वसाधारणा पूर्वोक्तैव । अमावास्यायां तु रात्रिसंधौ प्रतिपद्येव चन्द्रदर्शनेऽपि यागः । अपराह्णसंधौ तु प्रातः षड्घटिकात्मकप्रतिपदाद्यपादत्रयरूपयागकाललाभे प्रतिपदि चन्द्रदर्शनेऽपीष्टिः संधिदिने चोपवासपितृयज्ञौ । उक्तयागकालालाभे संधिदिने यागः । पूर्वदिने चतुर्दश्यां पितृयज्ञोपवासौ । एवं च सामगैरपि चन्द्रदर्शननिषेधः कात्यायनवदेव यथासंभवं पालनीयः । इति सामगनिर्णयः । इति यागकालनिर्णयोद्देशः ॥ २२ ॥

सामवेदियों की इष्टि के निर्णय में सर्वसाधारण पूर्णिमा पहले कही हुई ही है उसीका ग्रहण करना चाहिए । अमावास्या में तो रात में संधि होने पर प्रतिपदा में ही चन्द्र-दर्शन होने पर भी याग होता है । अपराह्ण संधि में तो प्रातःकाल छ घड़ी की प्रतिपदा के पहले तीन चरण रूप यागकाल के न मिलने पर प्रतिपदा में चन्द्रदर्शन में भी इष्टि होती है और संधिदिन में उपवास तथा पितृयज्ञ होता है । पूर्वोक्त यागकाल के न मिलने पर संधि के ही दिन याग होता है । पहले दिन चतुर्दशी में पितृयज्ञ और उपवास होता है । इस प्रकार सामवेदी लोग भी चन्द्र-दर्शन का निषेध कात्यायन वालों की तरह यथासंभव पालन करें । यागकाल निर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ पिण्डपितृयज्ञकालः

तत्राश्वलायनानां यस्मिन्नहोरात्रे अमावास्याप्रतिपदोः संधिस्तद्दिनापराह्णे पञ्चधाविभक्तदिनचतुर्थभागरूपे पिण्डपितृयज्ञः । स चापराह्णसंधावन्वाधानदिने भवति । मध्याह्ने पूर्वाह्णे वा संधौ यागदिने यागोत्तरमपराह्णे भवति । यदाहोरात्रसंधौ तिथिसंधिस्तदाऽन्वाधानदिने एव पिण्डपितृयज्ञः ।

यहाँ आश्वलायनों की जिस दिन-रात में अमावास्या प्रतिपदा की संधि होती है उस दिन अपराह्ण में (दिन को पांचभाग विभक्त करने पर चतुर्थभाग रूप में) पिण्ड पितृयज्ञ होता है । वह अपराह्ण संधि होने पर अन्वाधान के दिन, मध्याह्न तथा पूर्वाह्ण संधि होने पर याग के दिन याग के बाद अपराह्ण में होता है । जब अहोरात्र संधि में तिथि संधि पड़े तब अन्वाधान के दिन पिण्ड-पितृयज्ञ होता है ।

---

१. मनुः—'पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥' अत्र कुल्लूकभट्टः—'साग्निरमावास्यायां पिण्डपितृयज्ञाख्यं कर्म कृत्वा श्राद्धं कुर्यात् । पितृयज्ञपिण्डानामनु पश्चादाह्रियत पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धम् । मासानुमासिकं मासश्चानुमासश्च तयोर्भवं, प्रतिमासं कर्तव्यमित्यर्थः । अनेनास्य नित्यत्वमुक्तम् । विप्रग्रहणं द्विजातिपरम्, त्रयाणां प्रकृतत्वात् ।' इति व्याख्यातवान् ।

एवमापस्तम्बहिरण्यकेशिमतानुसारिणामपि संधिदिने एव पितृयज्ञः। स चापराह्णेऽधिवृक्षसूर्ये वा कार्यः। अपराह्णश्च पञ्चधाविभक्तदिनचतुर्थभागो नवधा-विभक्तदिनसप्तमभागो वा। सांख्यायनकात्यायनसामगानामन्वाधानदिने एव पिण्डपितृयज्ञः पूर्वमेवोक्तः। स च त्रेधाविभक्तदिनतृतीयभागरूपेऽपराह्णे कार्यः।

इसी प्रकार आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी मतावलम्बियों का भी संधिदिन में पितृयज्ञ होता है। वह अपराह्ण में या जब पेड़ के ठीक ऊपर सूर्य रहें तब करें। अपराह्ण दिन को पाँच भाग में बाँटने पर चतुर्थभाग अथवा नवभाग करने पर सातवाँ भाग होता है। सांख्यायन, कात्यायन और सामवेदियों का पिण्ड-पितृयज्ञ अन्वाधान के ही दिन पहले ही कहा है। उसे तो दिन के तीन भाग करने पर तृतीयभाग रूप अपराह्ण में करे।

गृह्याग्निमतां बह्वृचानां दर्शश्राद्धपिण्डपितृयज्ञयोरेकस्मिन्दिने प्राप्तौ व्यतिष-ङ्गेणानुष्ठानम्। व्यतिषङ्गो नामोभयोः सहप्रयोगः। खण्डपर्वणि तु पूर्वेद्युः केवल-दर्शश्राद्धमुत्तरेऽह्नि केवलः पिण्डपितृयज्ञः।

जो बह्वृच गृह्य अग्नि वाले हैं उनका दर्शश्राद्ध और पिण्ड-पितृयज्ञ एक ही दिन पड़ने पर दोनों को व्यतिषंग से करे। दोनों का एक साथ प्रयोग करना ही व्यतिषंग कहलाता है। खण्ड अमावास्या में तो पहले दिन केवल दर्शश्राद्ध होता है दूसरे दिन पिण्ड-पितृयज्ञ मात्र।

श्रौताग्निमतां तु केवलः पिण्डपितृयज्ञ एव दक्षिणाग्नौ कार्यो न व्यतिषङ्गेण। श्रौताग्निमतां सम्पूर्णे दर्शे इत्थं क्रमः। आदावन्वाधानं ततो वैश्वदेवस्ततः पिण्ड-पितृयज्ञस्ततो दर्शश्राद्धमिति। अस्मिन्नेव काले जीवत्पितृकेण साग्निकेन होमान्ते वा पितुः पित्रादित्रयोद्देशेन पिण्डसहितो वा पिण्डपितृयज्ञः कार्यः। यद्वा पिण्ड-पितृयज्ञो नैवारब्धव्यः।

श्रौताग्नि वालों को तो केवल पिण्डपितृयज्ञ ही दक्षिणाग्नि में करना चाहिए। दोनों को एक साथ प्रयोग नहीं करे। श्रौताग्निवालों का पूर्ण अमावास्या होने पर यह क्रम है। प्रारम्भ में अन्वाधान तदनन्तर वैश्वदेव उसके बाद पिण्ड-पितृयज्ञ होने पर दर्श-श्राद्ध करे। अथवा इसी समय में जिसके पिता जीते हैं ऐसे साग्निक पुरुष को होम के अन्त में पित्रादि तीन के उद्देश्य से पिण्डसहित या पिण्डरहित पितृयज्ञ करना चाहिये। अथवा पिण्ड-पितृयज्ञ का आरम्भ ही नहीं करे।

इष्टिलोपे पादकृच्छ्रं प्रायश्चित्तम्, इष्टिद्वयलोपेऽर्धकृच्छ्रम्, इष्टित्रयलोपेऽ-ग्निनाशात्पुनराधानम्, पिण्डपितृयज्ञलोपे वैश्वानरेष्टिः प्रायश्चित्तम्, इष्टिस्थाने सप्त होतारं होष्यामीति संकल्प्य तन्मन्त्रेण चतुर्गृहीताज्येन पूर्णाहुतिर्वा कार्या। इति पिण्डपितृयज्ञोद्देशः॥ २३॥

इष्टि न करने पर पादकृच्छ्र और दो इष्टि के न होने पर अर्द्धकृच्छ्र प्रायश्चित्त है। तीन इष्टि के न होने में अग्नि के नाश होने से पुनः आधान करना चाहिए। पिण्ड-पितृयज्ञ न होने पर वैश्वानरेष्टि प्रायश्चित्त है। अथवा "इष्टि के स्थान में अग्नि में होम करेंगे" ऐसा संकल्प करके उसी के मंत्र से चार बार ग्रहण किये हुए घी से पूर्णाहुति करनी चाहिए। पिण्ड-पितृ-यज्ञोद्देश समाप्त।

अथ श्राद्धेऽमावास्या निर्णीयते

पञ्चधाविभक्तदिनचतुर्थभागाख्यापराह्णव्यापिन्यमावास्या [1]दर्शश्राद्धे ग्राह्या। पूर्वेद्युरेव परेद्युरेव वाऽपराह्णे कात्स्र्न्येनैकदेशेन वा व्यापित्वे सैव ग्राह्या। उभयदिनेऽप्यपराह्णे वैषम्येणैकदेशव्यापित्वे याऽधिकव्यापिनी सा ग्राह्या। दिनद्वये साम्येनैकदेशव्याप्तौ तिथिक्षये पूर्वा, तिथिवृद्धौ तिथिसाम्ये च परा।

श्राद्ध में दिन का पाँच भाग करके चौथे भाग अपराह्ण व्यापिनी अमावास्या ग्राह्य है। पहले दिन या दूसरे ही दिन अपराह्ण में सम्पूर्णतया या एकदेश व्यापिनी होने पर जो अमावास्या अधिक व्यापिनी हो तो श्राद्ध में वही ग्राह्य है। यदि दोनों दिन समता से एकदेश में हो तो तिथिक्षय होने से पूर्वा ग्राह्य है। तिथि वृद्धि होने पर और सम तिथि होने पर परा लेना चाहिये।

तत्र समव्याप्तौ तिथिवृद्धिक्षयसाम्योदाहरणानि—चतुर्दशी १९ अमा २३ दिनम् ३०। अत्र दिनद्वयेऽपि समापञ्चघटिकैकदेशव्याप्तिश्चतुर्दश्यपेक्षया चतुर्घटिकाभिरमाया वृद्धिसत्त्वादुत्तरा ग्राह्या। तथा—चतुर्दशी २३ अमा १९। अत्रैका घटिका समा व्याप्तिर्घटिकाचतुष्टयेन तिथिक्षयात्पूर्वा ग्राह्या। अथ चतुर्दशी २१ अमा २१। अत्र घटीत्रयेण दिनद्वयेंऽशतः समा व्याप्तिस्तिथेस्तु वृद्धिक्षयाभावेन समत्वात्परा ग्राह्या।

तिथि वृद्धि में या समता में अथवा क्षय होने पर उदाहरण कहते हैं:—जैसे चतुर्दशी १९, अमावास्या २३ दिनमान ३०। ऐसे स्थल में दोनों दिन में समता से पाँच घड़ी से अमावास्या की वृद्धि होने से परा ग्राह्य है, यह तिथि वृद्धि का उदाहरण है। तिथिक्षय में—जैसे चतुर्दशी २३, अमावास्या १९। यहां एक घड़ी से समता और चार घड़ियों से तिथिक्षय है, अतः पूर्वा ग्राह्य है। चतुर्दशी २१, अमावास्या २१। यहां तीन घड़ी से अंशतः दोनों दिन सम व्याप्ति है। तिथिवृद्धि या क्षय न होने से सम है, अतः परा ग्राह्य है।

दिनद्वये पूर्णापराह्णव्याप्तौ तिथिवृद्धित्वात्परा ग्राह्या। यदा दिनद्वयेऽप्यपराह्णस्पर्शाभावस्तदा गृह्याग्निमद्भिः श्रौताग्निमद्भिश्च सिनीवालीसंज्ञिका चतुर्दशीमिश्रा पूर्वा ग्राह्या। निरग्निकैः [2]स्त्रीशूद्रादिभिश्च कुहूसंज्ञिका प्रतिपन्मिश्रा परा ग्राह्येति माधवाचार्यसंमतो दर्शनिर्णयः प्रायः सर्वत्र शिष्टैराद्रियते।

दोनों दिन में पूर्ण अपराह्ण में रहने के कारण तिथि वृद्धि होने से परा ग्राह्य है। जब दोनों दिन अपराह्ण में स्पर्श का अभाव है तब गृह्य अग्नि वाले और श्रौत अग्नि वाले को सिनीवाली (जिसमें चन्द्रमा दिखाई दें) नामकी अमावास्या चतुर्दशी से मिली हुई पूर्वा को ले। निरग्निकों और स्त्री शूद्रादिकों को कुहू (जिसमें चन्द्रमा न दिखाई पड़े) नाम की प्रतिपद से मिली

---

१. शातातपः—'दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं पार्वणं तत्प्रकीर्तितम्। अपराह्णे पितॄणां तु तत्प्रदानं प्रशस्यते ॥' इति। व्याघ्रः—'न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः। इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥' इदं च आहिताग्निभिरिष्टिदिनात् पूर्वदिने कार्यम्, 'तस्मात् पूर्वेद्युः पितृभ्यः क्रियत उत्तरमहर्देवान् यजन्ते' इति श्रुतेः।

२. मात्स्ये—'एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेषु पर्वसु। श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकर्मफलप्रदम् ॥ भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रवासस्थोऽपि नित्यशः। शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥' इति।

परा ग्राह्य है। यह श्राद्धीय अमावास्या का निर्णय माधवाचार्य से सम्मत प्रायः सर्वत्र शिष्टों द्वारा आदृत है।

पुरुषार्थचिन्तामणौ तु—बह्वृचैस्तैत्तिरीयैश्च साग्निकैरपराह्णव्याप्त्यसत्त्वेऽपि इष्टिदिनात्पूर्वदिने एव दर्शश्राद्धं कार्यम्। तथाच दिनद्वये कार्त्स्न्येनापराह्ण-व्याप्तौ परत्रैव दर्शः। एकदेशेनापराह्णव्याप्तौ प्रतिपद्वृद्धया प्रतिपदीष्टावुत्तरत्रैव दर्शः। द्वितीयदिने एवापराह्णव्याप्तौ तु यदि प्रतिपत्क्षयवशाद्दर्शदिन एव इष्टि-प्राप्तिस्तदा बह्वृचानां सिनीवाली तैत्तिरीयाणां कुहूर्ग्राह्या।

पुरुषार्थचिन्तामणि में तो बह्वृच और तैत्तिरीय साग्निकों से अपराह्ण व्याप्ति के न होने पर भी पहले ही दिन दर्शश्राद्ध किया जाता है। उसी तरह दोनों दिन में सम्पूर्णतया अपराह्णव्यापिनी अमावास्या में दर्शश्राद्ध होता है। यदि अपराह्ण के एकदेश में अमावास्या हो तो प्रतिपदा की वृद्धि से प्रतिपदा में ही इष्टि हो तो उसके बाद ही दर्श-श्राद्ध होगा। दूसरे दिन में ही अपराह्णव्यापिनी अमावस्या में यदि प्रतिपदा का क्षय होने से दर्श ही के दिन इष्टि की प्राप्ति हो तब बह्वृचों को सिनीवाली और तैत्तिरीय वालों को कुहू ग्रहण करना चाहिए।

सामगानां विकल्पेन द्वयम्। यदा पूर्वदिनेऽपराह्णेऽधिका व्याप्तिः परदिनेऽल्पा तदा सामगानां पूर्वा तैत्तिरीयाणां उत्तरा। उभयत्रापराह्णस्पर्शाभावेऽपि साम-गानां पूर्वा तैत्तिरीयाणां परेत्याद्युक्तम्। दर्शे दर्शश्राद्धवर्षश्राद्धयोर्दर्शमासिक-योर्दर्शश्राद्धोदकुम्भश्राद्धयोश्च संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धद्वयं कार्यम्। तत्रादौ मासिकाब्दिकादिश्राद्धं कृत्वा पाकान्तरेण दर्शश्राद्धं कार्यम्। वैश्वदेव आब्दि-कादिश्राद्धशेषेण पृथक्पाकेन वा दर्शश्राद्धात्प्राग्भवति।

सामवेदियों को विकल्प से दोनों ग्राह्य है। यदि पहले दिन अपराह्ण में अधिक अमावास्या हो और पर दिन में थोड़ी हो तब सामवेदियों के लिये पूर्वा और तैत्तिरीयों के लिये परा ग्राह्य है। दोनों दिन अपराह्ण में स्पर्श न होने पर भी सामवेदियों को पूर्वा और तैत्तिरीयों को परा करने को कहते हैं। अमावास्या में अमावास्याश्राद्ध और वर्षश्राद्ध तथा दर्शश्राद्ध और मासिकश्राद्ध एवं दर्शश्राद्ध और उदकुम्भश्राद्ध एक ही दिन आ पड़े तो देवता के भेद से दो श्राद्ध करना चाहिए। उसमें पहले मासिक और आब्दिक श्राद्ध करके दूसरे पाक से अमावास्या का श्राद्ध करे। वैश्वदेव, आब्दिकादि श्राद्ध के शेष से अथवा पृथक्-पाक के द्वारा दर्शश्राद्ध से पहले होता है।

आहिताग्निस्तु वैश्वदेवं पिण्डपितृयज्ञं च कृत्वाऽऽब्दिकं कुर्यात्। दर्शश्राद्धमनु-पनीतविधुरप्रवासस्थैरपि कार्यम्। अमाश्राद्धातिक्रमे 'न्यूषुवाचम्'[1] इति ऋचं शतवारं जपेत्। इति दर्शनिर्णयोद्देशः ॥ २४ ॥

अग्निहोत्री को वैश्वदेव और पिण्ड-पितृ-यज्ञ करके वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए। अमावास्या

१. ऋग्विधाने—'न्यूषुवाचं जपेन्मन्त्रं शतवारं दिने दिने। अमाश्राद्धं यदा नास्ति तदा सम्पूर्णमेति तत् ॥' इति। अयं मन्त्रः ऋग्वेदसंहितायां प्रथमेऽष्टके चतुर्थाध्याये—'न्यू षुवाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥' इति।

श्राद्ध, असंस्कृत विधुर और प्रवास में रहने वालों को भी करना चाहिए। अमाश्राद्ध न होने पर "न्यूषुवाचं" इस ऋचा को सौ बार जपे। दर्शनिर्णयोद्देश समाप्त।

इष्ट्यादिप्रारम्भनिर्णयः

इष्टिस्थालीपाकौ पौर्णमास्यामारब्धव्यौ नतु दर्शे। आधानगृहप्रवेशनीयहोमानन्तरमेव पौर्णमास्यां यदि दर्शपौर्णमासारम्भः क्रियते तदा मलमासपौषमासशुक्रास्तादिदोषो नास्ति। तत्रातिक्रमे तु शुद्धमासादिप्रतीक्षेत्येके। सर्वथा शुद्धकाले एवारम्भ इत्यपरे। इतीष्ट्यादिप्रारम्भनिर्णयोद्देशः ॥ २५ ॥

इष्टि और स्थालीपाक का प्रारम्भ पौर्णमासी में करे, न कि अमावास्या में। आधान और गृहप्रवेश होम के बाद ही पौर्णमासी में यदि दर्श और पौर्णमास का आरम्भ करते हैं तब मलमास पौषमास और शुक्रास्तादि का दोष नहीं होता। कोई कहते हैं कि दर्शपौर्णमासारम्भ आधान गृहप्रवेश-होम के बाद ही पूर्णिमा में यदि नहीं करे तो शुद्धमास की प्रतीक्षा करनी चाहिए। दूसरे कहते हैं कि सब प्रकार से शुद्धकाल में पर्वारम्भ करे। इष्टयादिप्रारम्भनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ विकृतिकालः

तास्त्रिविधाः—नित्या आग्रयणचातुर्मास्याद्याः, नैमित्तिक्यो जातेष्ट्यादयः, काम्याः सौर्यादयः, एताः पुरुषार्थाः। एवं क्रत्वङ्गभूता अपि द्विविधाः—नित्या नैमित्तिकाश्च। तत्र विकृतिषु सद्यस्कालत्वद्व्यहकालत्वयोर्विकल्पः। एवं पर्वणि शुक्लपक्षगतदेवनक्षत्रेषु वा कर्तव्या इति विकल्पः।

विकृति तीन प्रकार की होती है—नित्य, आग्रयण, चातुर्मास्य आदि। नैमित्तिकी विकृति जातेष्टि आदि, काम्य सौर्य आदि, ये सब पुरुषार्थ हैं। इसी प्रकार यज्ञांग विकृति दो प्रकार की है—नित्य और नैमित्तिक। उसमें विकृतियों में तत्काल और द्विदिन साध्यकाल में विकल्प है। इसी तरह शुक्लपक्ष के नक्षत्रों में भी कर्तव्य है।

तत्र पर्वणि करणपक्षे अपराह्णादिसंधौ संधिदिने सद्यस्कालां द्व्यहकालां वा विकृतिं कृत्वा प्रकृतेरन्वाधानम्। मध्याह्ने पूर्वाह्णे वा संधौ संधिदिने प्रकृतिं समाप्य सद्यस्कालैव विकृतिः कार्या। कृत्तिकादीनि विशाखान्तानि चतुर्दशनक्षत्राणि देवनक्षत्राणीत्युच्यन्ते। आग्रयणे विशेषो द्वितीयपरिच्छेदे वक्ष्यते। अन्वारम्भणीयेष्टिश्चतुर्दश्यां कार्या। इति विकृतिसामान्यनिर्णयोद्देशः ॥ २६ ॥

अमावस्या में करने के पक्ष में अपराह्ण आदि सन्धि में सन्धि के दिन तात्कालिक या दिनद्वय कालसाध्य विकृति करके प्रकृति का अन्वाधान करे। मध्याह्न या पूर्वाह्ण में सन्धि हो तो सन्धिदिन में प्रकृति को समाप्त कर तुरत ही विकृति करे। कृत्तिकानक्षत्र से लेकर विशाखा पर्यन्त १४ नक्षत्र देवनक्षत्र कहलाते हैं। आग्रयण में विशेष दूसरे परिच्छेद में कहेंगे। अन्वारम्भणीय इष्टि चतुर्दशी में करनी चाहिए। विकृतिसामान्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ पशुयागकालः

पशुयागस्तु वर्षतौ श्रावण्यादिचतुर्णां पर्वणामन्यतमे पर्वणि दक्षिणायनदिने उत्तरायणदिने वा कार्यः। तत्र खण्डपर्वणि विकृतिसामान्योक्तपर्वनिर्णयः। इति पशुयागोद्देशः ॥ २७ ॥

पशुयाग तो वर्षाकाल में श्रावणी आदि चारों पर्वों में से किसी एक पर्व में दक्षिणायन या उत्तरायण में करना चाहिए। उसमें खण्ड पर्व में विकृति के सामान्य उक्त पर्व का निर्णय करे। पशुयागोद्देश समाप्त।

अथ चातुर्मास्यकालः

तत्प्रयोगे चत्वारः पक्षाः—फाल्गुन्यां चैत्र्यां वा पौर्णमास्यां वैश्वदेवपर्व कृत्वा चतुर्षु चतुर्षु मासेष्वाषाढ्यादिष्वेकैकं पर्वेत्येवं यावज्जीवमनुष्ठानमिति यावज्जीव-पक्षः। उक्तरीत्या संवत्सरपर्यन्तमनुष्ठाय सवनेष्ट्या पशुयागेन वा सोमयागेन वा समापनं सांवत्सरपक्षः। प्रथमेऽहनि वैश्वदेवपर्व, चतुर्थे वरुणप्रघासपर्व, अष्ट-मनवमयोः साकमेधपर्व, द्वादशे शुनासीरीयपर्वेति द्वादशाहपक्षः। पञ्चभिर्दिनैः समाप्तौ यथाप्रयोगपक्षः।

चातुर्मास्य के प्रयोग में चार पक्ष हैं—फाल्गुन की पूर्णिमा में अथवा चैत्र की पूर्णिमा में वैश्वदेव पर्व करके आषाढ़ आदि चार-चार महीनों में एक-एक पर्व करते हुये जीवन भर अनुष्ठान करे, यह जीवन पर्यन्त करने का पक्ष है। कथित रीति से एक वर्ष तक सवनइष्टि करके अथवा पशुयाग करके या सोमयाग से समाप्त करे, यह सांवत्सरपक्ष है। पहले दिन वैश्वदेव पर्व चौथे दिन वरुणप्रघास-पर्व आठवें और नौवें में साकमेध-पर्व बारहवें दिन शुनासीरीय पर्व करे, इस तरह का द्वादशदिनसाध्य पक्ष है। पाँच दिन में समाप्त करने पर यथाप्रयोग पक्ष होता है।

द्वादशाहयथाप्रयोगपक्षयोरुदगयने शुक्लपक्षे देवनक्षत्रेष्वारभ्य शुक्लपक्ष एव समाप्तिरिति बहवः। कृष्णपक्षे वा समाप्तिरिति केचित्। द्वादशाहपञ्चाह-पक्षयोरपि सवनेष्ट्यादिना समापने कृते सकृत्करणम्। तदभावे प्रतिवत्सर-मनुष्ठानम्। क्वचिदैकाहिकप्रयोगपक्षोऽप्युक्तः। स च चैत्र्यादिषु चतसृषु पौर्ण-मासीष्वेकस्यां कस्याञ्चिद्भवति।

बहुतों का कहना तो यह है कि द्वादशाह पक्ष और यथाप्रयोग पक्ष में उत्तरायण शुक्लपक्ष देवनक्षत्रों में आरम्भ करके शुक्लपक्ष ही में समाप्त करे। कुछ लोग तो कृष्णपक्ष ही में समाप्त करने को कहते हैं। द्वादशाह और पञ्चाह पक्ष में भी सवनेष्टि आदि से समाप्त करने पर एकबार करना चाहिये। इसके न होने पर प्रतिवर्ष अनुष्ठान करे। कहीं तो एकदिन के प्रयोग का भी पक्ष कहा है, वह चैत्री आदि चारों पूर्णिमाओं में किसी एक में होता है।

क्वचित्तु सप्ताहपक्षः। स यथा—द्व्यहे वैश्वदेवपर्व, तृतीयदिने वरुणप्रघासः, चतुर्थे ग्रहमेधीया, पञ्चमे महाहवींषि, षष्ठे पितृयज्ञादिसाकमेधपर्वशेषः, सप्तमे शुनासीरीयपर्वेति। अत्र शुक्लपक्षादिः पञ्चाहपक्षोक्तः कालः। इति चातुर्मास्य-कालनिर्णयोद्देशः॥ २८॥

कहीं तो सप्तदिनसाध्य पक्ष भी है। वह इस प्रकार—दो दिन में वैश्वदेव पर्व, तृतीय दिन वरुणप्रघास, चौथे दिन गृहमेधीय, पञ्चम दिन महाहविष, छठें दिन पितृयज्ञ आदि साकमेध पर्व का अवशिष्ट करके सप्तम दिन शुनासीरीय पर्व का अनुष्ठान करे। इसमें शुक्लपक्ष आदि का समय पूर्वोक्त पञ्चाहपक्ष की तरह है। चातुर्मास्यकालनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ काम्यनैमित्तिकादीष्टिनिर्णयः

काम्येष्टीनां विकृतिसामान्यनिर्णयानुसारेण पर्वण्यनुष्ठानं शुक्लपक्षस्थदेवनक्षत्रे वा। जातेष्टिस्तु पत्न्यां विंशतिरात्र्यात्मककर्मानधिकाराख्यजननाशौचनिवृत्तौ सत्यां पर्वणि कार्या। गृहदाहेष्ट्यादिनैमित्तिकेष्टीनां निमित्तानन्तरमनुष्ठाने पर्वाद्यपेक्षा नास्ति। तदसंभवे पर्वापेक्षा।

काम्य इष्टियों को सामान्यविकृति के निर्णय के अनुसार पर्व में करे, अथवा शुक्लपक्ष के देवनक्षत्र में। जातेष्टि तो स्त्री के बीस दिन के जननाशौच निवृत्त होने पर ही पूर्व में करना चाहिये। गृहदाहेष्टि-आदि नैमित्तिक इष्टियों को निमित्त के ठीक बाद ही करने पर पर्व आदि की अपेक्षा करे। उसके अभाव में पर्व की अपेक्षा करनी चाहिये।

क्रत्वर्थानां नित्यानां क्रतुना सहैवानुष्ठानं न तत्र पृथक्कालापेक्षा। हविर्दोषोद्देशादिनिमित्तकक्रत्वर्थेष्टयस्तु स्विष्टकृदुत्तरं समिष्टयजुषः प्राक्निमित्तस्मरणे तदानीमेव तदीयतन्त्रोपजीवनेन निर्वापप्रभृति कार्याः। तदनन्तरं स्मरणे तत्प्रयोगं समाप्य पुनरन्वाधानादिविधिना कार्याः। इति काम्यनैमित्तिकादीष्टीनां निर्णयोद्देशः॥ २९॥

यज्ञार्थ नित्यकर्मों का यज्ञ के साथ ही अनुष्ठान होगा, उसमें पृथक् समय की अपेक्षा नहीं है। हविष्य के दोष के उद्देश्य से जो नैमित्तिक क्रत्वर्थ इष्टियाँ की जाती हैं, वे स्विष्टकृत् के अनन्तर तथा समिष्टयजु के पहले निमित्त के स्मरण होने पर, उसी समय करे। उसी के तन्त्रोपजीवन से निर्वापादि-कृत्य करे और उसके स्मरण होने पर उस प्रयोग को समाप्त कर पुनः उसे अन्वाधान आदि विधि से करना चाहिये। काम्यनैमित्तिकादि इष्टिनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथाधानकालः

आधानं तु पर्वणि नक्षत्रे चोक्तम्। तत्र संकल्पप्रभृतिपूर्णाहुतिपर्यन्तप्रयोगपर्याप्तं पर्व ग्राह्यम्। तदसंभवे गार्हपत्याधानाद्याहवनीयाधानपर्यन्तं विद्यमानं ग्राह्यम्। एवं नक्षत्रस्यापि निर्णयः। दिनद्वये कर्मकालव्याप्तपर्वसत्त्वे यत्रोक्तनक्षत्रयोगस्तद्ग्राह्यम्। वसन्तऋतुपर्वोक्तनक्षत्रेत्येतत्त्रितयसन्निपाते प्रशस्ततमम्। ऋत्वभावे मध्यमम्। केवले पर्वणि नक्षत्रे वाऽधमम्।

आधान तो पर्व और नक्षत्र में कह चुके हैं। उसमें सङ्कल्प से लेकर पूर्णाहुति तक प्रयोग-पर्याप्त पर्व ग्राह्य है। ऐसा न होने पर गार्हपत्याधान आदि आहवनीयाधान पर्यन्त विद्यमान पर्व ले। ऐसा ही निर्णय नक्षत्र का भी है। कर्मकाल में पर्व दो दिन हो और दोनों दिन कथित नक्षत्र का योग हो तो उसे ही ग्रहण करे। वसन्तऋतु पर्व और नक्षत्र इन तीनों के रहने पर अत्यन्त प्रशस्त है। ऋतु के न रहने पर मध्यम है। पर्व में केवल पर्व या नक्षत्र होने पर अधम है।

नक्षत्राणि तु—कृत्तिकारोहिणीविशाखापूर्वाफल्गुन्युत्तराफल्गुनीमृगोत्तराभाद्रपदेतिसप्ताश्वलायनसूत्रोक्तानि। कृत्तिकारोहिणीत्र्युत्तरामृगपुनर्वसुपुष्यपूर्वाफल्गुनीपूर्वाषाढाहस्तचित्राविशाखानुराधाश्रवणज्येष्ठारेवतीतिसूत्रान्तरोक्तानि। सोम-

पूर्वाधाने तु नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रमिति वचनात्सोमकालानुरोधेनैवाधानं न तत्र पृथक्कालविचारः । इत्याधानकालोद्देशः ॥ ३० ॥

आश्वलायनसूत्रोक्त नक्षत्र तो—कृत्तिका, रोहिणी, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिर, और उत्तराभाद्रपदा ये सात हैं । दूसरे सूत्रों के कहे हुए कृत्तिका, रोहिणी तीनों उत्तरा, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, हस्त, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, श्रवण, ज्येष्ठा और रेवती हैं । सोमपूर्वाधान में तो "न ऋतु और न नक्षत्र को पूछे" इस वचन से सोम के समय में ही आधान करे उसमें अलग से विचार नहीं करे । आधानकालोद्देश समाप्त ।

अथ ग्रहणनिर्णयः

चन्द्रसूर्यग्रहणं[1] यावच्चाक्षुषदर्शनयोग्यं तावान् पुण्यकालः । अतो ग्रस्तास्त-स्थलेऽस्तोत्तरं द्वीपान्तरे ग्रहणसत्त्वेऽपि दर्शनयोग्यत्वाभावान्न पुण्यकालः । एवं ग्रस्तोदये उदयात्पूर्वं न पुण्यकालः । मेघादिप्रतिबन्धेन चाक्षुषदर्शनासंभवे शास्त्रा-दिना स्पर्शमोक्षकालौ ज्ञात्वा स्नानदानाद्याचरेत् ।

चन्द्र और सूर्य का ग्रहण जब तक आँखों से देखने योग्य हो, उतने काल तक पुण्यकाल होता है । इस लिये अस्तोत्तर ग्रस्तास्त स्थल में द्वीपान्तर में ग्रहण होते हुये भी दर्शनाभाव से पुण्यकाल नहीं होता । इसी प्रकार ग्रस्तोदय में उदय से पहले पुण्यकाल नहीं होता । बादल आदि के आँखों से न देखे जाने पर ज्यौतिषशास्त्र आदि से ग्रहणस्पर्श और ग्रहणमोक्ष जान कर स्नानादि करे ।

रविवारे सूर्यग्रहश्चन्द्रवारे चन्द्रग्रहश्चूडामणिसंज्ञः[2], तत्र दानादिकमनन्तफलम् ।

---

१. वृद्धगार्ग्यः—'पूर्णिमाप्रतिपत्सन्धौ राहुः सम्पूर्णमण्डलम् । ग्रसते चन्द्रमर्कञ्च दर्शप्रति-पदन्तरे ॥' ग्रहण में पर्व (अमावास्या-पूर्णिमा) का अन्तभाग स्पर्शकाल और प्रतिपदा का प्रथमभाग मोक्षकाल होता है, ब्रह्मसिद्धान्त—'यावान् कालः पर्वणोऽन्ते तावान् प्रतिपदादिभिः । रवीन्दुग्रहणानेहा स पुण्यो मिश्रणाद् भवेत् ॥' स्पर्शकाल से मोक्षकाल तक ग्रहणकाल है । ग्रहण का पुण्यकाल—'संक्रान्तौ पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः । चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरे ॥' इति जाबालिः । 'यावद्दर्शनगोचरे' का अर्थ हुआ—'यावति काले चाक्षुषज्ञानयोग्य उपरागः तावान् कालः पुण्यकालः ।'

२. व्यास—'रविग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा । चूडामणिरिति ख्यातस्तत्रदानन्तफलं भवेत् ॥ वारेष्वन्येषु यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । तत्पुण्यं कोटिगुणितं ग्रासे चूडामणौ स्मृतम् ॥' इति । महाभारते—'गङ्गास्नानं प्रकुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । महानदीषु वाऽन्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥' ब्रह्मपुराण में महानदियां—'गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका । तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः । भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती । विशोका च वितस्ता च विन्ध्यस्यो-त्तरतस्तथा ॥' इसके असंभव में, शंख—'वापीकूपतडागेषु गिरिप्रस्रवणेऽपि च । नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धृताम्बुनि । उष्णोदकेन वा स्नायाद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥' इति । ग्रहण के आदि अन्त में स्नान का विधान—'ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते । मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते ॥' दोनों स्नान के मध्य में होम दान की भांति देवपूजन भी करना चाहिये, ब्रह्मवैवर्त—'स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम् ।' लिङ्गपुराण में ग्रहण में श्राद्ध का विधान—'व्यतीपातक्षणो यावान् चन्द्रसूर्यग्रहक्षणः । गजच्छाया तु सा प्रोक्ता पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥' ऋष्यश्रृङ्गः—'चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत् । तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥' इति ।

ग्रहस्पर्शकाले स्नानं मध्ये होमः सुरार्चनं श्राद्धं च मुच्यमाने दानं मुक्ते स्नानमिति क्रमः । तत्र स्नानजलेषु तारतम्यम्—

शीतमुष्णोदकात्[१] पुण्यमपारक्यं परोदकात् ।
भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ॥
ततोऽपि सारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् ।
ततस्तीर्थनदी गङ्गा पुण्या पुण्यस्ततोऽम्बुधिः ॥ इति ।

रविवार को सूर्यग्रहण और सोमवार को चन्द्रग्रहण होने से चूड़ामणि नामक योग होता है। इसमें दानादिक करना अनन्त फलदायक है। ग्रहणस्पर्श समय में स्नान, मध्यकाल में होम, देवपूजन और श्राद्ध, मुक्त होते समय दान, मुक्त हो जाने पर पुनः स्नान, यही क्रम है। उसमें स्नान के जलों का तारतम्य कहते हैः—गरम जल से ठंडा जल पुण्यदायक है। दूसरे के जल से अपना जल पुण्यप्रद है। कूपादिक से खींचे हुये जल से भूमि-स्थित जल श्रेष्ठ है। उससे उत्तम झरने का जल है और झरने के जल से भी तालाब का जल पुण्यप्रद है। तालाब के जल से भी नदी का जल श्रेष्ठ है। नदी जल से भी तीर्थ नदीजल प्रशस्त है। तीर्थ नदीजल से भी प्रशस्ततर गङ्गाजल है। इससे भी प्रशस्ततम समुद्रजल है ।

ग्रहणे स्नानं च सचैलं कार्यम्। सचैलत्वं मुक्तिस्नानपरमिति केचित्। मुक्तिस्नानाभावे सूतकित्वानपगमः। ग्रहणे स्नानममन्त्रकम्। सुवासिनीभिः स्त्रीभिरशिरःस्नानं कार्यम्। शिष्टस्त्रियस्तु ग्रहणेषु शिरःस्नानं कुर्वन्ति ।

ग्रहण में सवस्त्र-स्नान करे। सचैलस्नान मुक्तिस्नान के लिये है, यह किसी का मत है। मुक्तिस्नान करने पर ग्रहणाशौच से मुक्ति नहीं होती है। ग्रहण में स्नान मन्त्र-रहित होता है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ शिर को छोड़कर स्नान करें। शिष्टों की स्त्रियाँ तो ग्रहण में शिर-सहित स्नान करती हैं।

जाताशौचे[२] मृताशौचे च ग्रहणनिमित्तं स्नानदानश्राद्धादिकं कार्यमेव ।

स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला ।
पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥
न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् ।

ग्रहण निमित्तक स्नान, दान और श्राद्धादि जननाशौच तथा मरणाशौच में भी करना ही चाहिये। रजस्वला स्त्री को ग्रहणादि नैमित्तिक-स्नान में साक्षान्नदी जल में न नहा कर, उसी जल को दूसरे पात्र में रखकर उससे स्नान कर व्रतादि का अनुष्ठान करना चाहिये। पहने हुये वस्त्र को निचोड़े नहीं और न दूसरा वस्त्र पहने ।

त्रिरात्रमेकरात्रं वा समुपोष्य ग्रहणे स्नानदानाद्यनुष्ठाने महाफलम्। एकरात्रपक्षे ग्रहणदिनात्पूर्वदिने उपवास इति केचित्। ग्रहणसंबद्धाहोरात्र उपवास

---

१. उष्ण-जल से रोगी को ग्रहण में स्नान करना चाहिये—'आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतं च वह्निना। अतो व्याध्यातुरः स्नायाद् ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा ॥' इति व्याघ्रः ।

२. जननाशौच मरणाशौच के रहने पर भी ग्रहण में स्नानादि निषिद्ध नहीं है। वृद्ध वसिष्ठः—'सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने। तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते ॥' अङ्गिराः—'सर्वे वर्णाः सूतकेऽपि मृतके राहुदर्शने। स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीरन् दानं शाठ्यविवर्जितम् ॥' इति ।

इत्यपरे। पुत्रवद्गृहिणो ग्रहणसंक्रान्त्यादौ नोपवासः। पुत्रवत्पदेन कन्यावानपि ग्राह्य इति केचित्। ग्रहणे देवपितृतर्पणं कार्यमिति केचित्। सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। तेन ग्रहणकाले स्पृष्टवस्त्रादेः क्षालनादिना शुद्धिः कार्या।

ग्रहण में तीन दिन या एक दिन का उपवास करके स्नान दानादि करने में बड़ा फल है। एक दिन के उपवास पक्ष में ग्रहण के दिन से पहले दिन उपवास करना कोई कहते हैं। दूसरे—ग्रहण वाले ही अहोरात्र में उपवास कहते हैं। पुत्र वाले गृहस्थ को ग्रहण और संक्रान्ति आदि में उपवास नहीं करना चाहिये। कोई तो कन्या वाले गृहस्थ को भी उपवास का निषेध कहते हैं। ग्रहण में देव-तर्पण पितृ-तर्पण करना चाहिये, यह भी किसी का मत है। ग्रहणकाल में सभी वर्णों को सूतक होता है। इस से ग्रहणसमय में स्पर्श किये हुये वस्त्र आदि की शुद्धि जल में प्रक्षालन कर करना चाहिये।

अथ दानपात्रादिविचारः

अत्र गोभूहिरण्यधान्यादिदानं महाफलम्। तपोविद्योभययुक्तं मुख्यं दानपात्रम्[1]। सत्पात्रे दानात्पुण्यातिशयः।

सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे व्याससमा द्विजाः।
सर्वं भूमिसमं दानं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥

इत्युक्तिः पुण्यसामान्याभिप्राया। अत एव—

समम‌ब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे।
श्रोत्रिये शतसाहस्रं पात्रे त्वानन्त्यमश्नुते॥ इति तारतम्यमुक्तम्।

ग्रहण में गोदान, भूमिदान, सुवर्णदान और धान्यादिदान महाफल देने वाला है। तपस्या और विद्या दोनों से युक्त पात्र मुख्य दानपात्र होता है। सत्पात्र में दान करने से अधिक पुण्य होता है। चन्द्रमा सूर्य के ग्रहण में सभी जल गङ्गाजल के समान होता है। सभी ब्राह्मण व्यास के समान और सभी दान भूमिदान के समान होते हैं। यह कहना सामान्य पुण्य के अभिप्राय से है। इसलिये ब्राह्मण से भिन्न को दान देने में तुल्य फल होता है। ब्राह्मण नामधारी मूर्ख को दान देने से द्विगुण फल होता है। वेदपाठी ब्राह्मण को देने से लक्षगुण फल होता है। और विद्या तपोयुक्त पात्र में तो अनन्त-फल होता है, ऐसा तारतम्य कहा है।

अब्राह्मणे संस्कारादिरहिते जातिमात्रे ब्राह्मणे दानं यथोक्तफलम्। गर्भाधानादिसंस्कारयुतो वेदाध्ययनाध्यापनरहितो [2]ब्राह्मणब्रुवस्तत्र दानमुक्तं द्विगुणफलम्।

---

१. महाभारते—'अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। पात्रभूताय विप्राय भूमिं दद्यात्सदक्षिणाम्॥' सुपात्रके अभाव में अनुकल्प—'श्रोत्रियोऽश्रोत्रियो वाऽपि पात्रं वाऽपात्रमेव वा। विप्रब्रुवोऽपि वा विप्रो ग्रहणे दानमर्हति॥' इति बौधायनः।

२. षट्त्रिंशन्मत में ब्राह्मणब्रुव का लक्षण—'गर्भाधानादिसंस्कारवेदोपनयनैर्युतः। नाध्यापयति नाधीते स भवेद् ब्राह्मणब्रुवः॥' अपि च—'धर्मकर्मविहीनश्च ब्राह्मैर्लिङ्गैर्विवर्जितः। ब्रवीति ब्राह्मणश्चाहं स ज्ञेयो ब्राह्मणब्रुवः॥' इति। वह्निपुराण में ब्राह्मण का लक्षण—'सत्यं दमस्तपोदानमहिंसेन्द्रियनिग्रहः। दृश्यन्ते यत्र राजेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥' श्रोत्रिय का लक्षण—'ओंकारपूर्विकास्तिस्रः सावित्रीर्यश्च विन्दति। चरितब्रह्मचर्यश्च स श्रोत्रिय उच्यते॥' इति यमः। पात्र का लक्षण—'न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता। यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम्॥' इति याज्ञवल्क्यः। प्रतिग्रहीता के भेद से फल का तारतम्य—'समम‌ब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे। श्रोत्रिये शतसाहस्रं पात्रे त्वानन्त्यमश्नुते॥' इति यमः।

वेदाध्ययनादियुते श्रोत्रिये सहस्रफलम्। विद्यासदाचरणादियुते पात्रेऽनन्तफलमित्ये-तद्वाक्यार्थः।

अब्राह्मण शब्द से संस्कारादिरहित जाति मात्र का ग्रहण है। ब्राह्मणब्रुव गर्भाधानादि संस्कार सम्पन्न होता हुआ भी वेद के पढ़ने-पढ़ाने से रहित को कहते हैं, इसको दान देने से दूना फल मिलता है। वेद-पठन आदि से युक्त श्रोत्रिय को देने से हजार गुना फल मिलता है। विद्या उत्तम आचरण आदि से युक्त पात्र में दान करने से अनन्त-फल मिलता है।

अथ ग्रहणकाले श्राद्धविचारः

ग्रहणे श्राद्धमामेन[१] हेम्ना वा कार्यम्। संपन्नश्चेत्पक्वान्नेन कुर्यात्। सूर्य-ग्रहणे तीर्थयात्राङ्गश्राद्धवद् घृतप्रधानान्नेन श्राद्धं कार्यम्। ग्रहणे [२]श्राद्धभोक्तुर्महा-दोषः। ग्रहणे तुलादानादिकं संपन्नेन कार्यम्।

ग्रहण में श्राद्ध कच्चे अन्न से या सुवर्ण से करे यदि सम्पन्न हो तो पक्वान्न से भी करे। तीर्थयात्रा के अङ्गश्राद्ध की तरह घृतप्रधान अन्न से श्राद्ध करे। ग्रहण में श्राद्धभोजी को महादोष होता है। ग्रहण में तुलादानादि धनी लोगों को करना चाहिये।

अथ मन्त्रोपदेशादिविचारः

चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे महापर्वादिके तथा।
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत्॥

मन्त्रदीक्षाप्रकारस्तन्त्रे द्रष्टव्यः। दीक्षाग्रहणमुपदेशस्याप्युपलक्षणम्।

युगे युगे तु दीक्षासीदुपदेशः कलौ युगे।
चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये॥

मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते। मन्त्रग्रहणे सूर्यग्रहणमेव मुख्यम्, चन्द्रग्रहणे दारिद्र्यादिदोषोक्तेरिति केचित्।

ग्रहण, तीर्थ और महापर्वादि में मन्त्र की दीक्षा देने वाला महीना, नक्षत्र आदि का विचार न करे। मन्त्र की दीक्षा का प्रकार तन्त्रग्रन्थों में देखना चाहिये। दीक्षा से उपदेश का भी ग्रहण है। प्रत्येक युग में दीक्षा होती थी। उपदेश तो केवल कलि में ही होता है। ग्रहण, तीर्थ, सिद्धक्षेत्र और शिवमन्दिर में केवल मन्त्र के कहने को उपदेश कहते हैं। मन्त्रग्रहण करने में सूर्यग्रहण ही मुख्य समय है, चन्द्रग्रहण में दारिद्र्य आदि दोषों के कहने से, ऐसा कोई कहते हैं।

चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा पूर्वमुपोषितः।
स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः॥
जपाद्दशांशतो होमस्तथा होमाच्च तर्पणम्।
होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्॥

---

१. गोभिलः—'दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम्। अन्नेनासम्भवे हेम्ना कुर्या-दामेन वा सुतः॥' शातातपः—'आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे तथा। आमश्राद्धं द्विजो दद्याच्छूद्रो दद्यात्सदैव हि॥' इति।

२. 'ग्रहणे श्राद्धे भोक्तुर्दोषः, दातुस्त्वभ्युदयः' इति विज्ञानेश्वरः। आपस्तम्बः—'सूतके मृतके भुङ्क्ते गृहीते शशिभास्करे। छायायां हस्तिनश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत्॥' इति।

चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में पहले दिन उपवास करके स्नान के अनन्तर ग्रहण के स्पर्श मध्य और मोक्ष तक सावधान चित्त होकर मन्त्र का जप करे। जप का दशांश होम, उसी तरह होम का दशांश तर्पण करे। होम न करने पर होम की संख्या से चौगुना जप करे।

अथ ग्रहणे पुरश्चरणविधिः

मूलमन्त्रमुच्चार्य तदन्ते द्वितीयान्तं मन्त्रदेवतानामोच्चार्य 'अमुकां देवतामहं तर्पयामि नम' इति यवादियुक्तजलाञ्जलिभिस्तर्पणं होमदशांशेन कार्यम्। एवं नमोन्तं मूलमन्त्रमुक्त्वा 'अमुकां देवतामहमभिषिञ्चाम्यनेन' इत्युच्चार्य जलेन स्वमूर्ध्नि अभिषिञ्चेदिति मार्जनं तर्पणदशांशेन कार्यम्। मार्जनदशांशेन ब्राह्मणभोजनम्। एवं जपहोमतर्पणमार्जनविप्रभोजनात्मकपञ्चप्रकारं पुरश्चरणम्।

तदनन्तर मूलमन्त्र द्वितीयान्त मन्त्रदेवता का नाम तथा अमुक देवता को तृप्त करता हूँ ऐसा कहकर यव आदि से युक्त जल की अञ्जलियों से होम का दशांश तर्पण करना चाहिये। मूल मन्त्र के अन्त में 'नमः' ऐसा कहकर 'अमुक देवता का मैं अभिषेचन करता हूँ' ऐसा उच्चारण करके जल से अपने शिर पर अभिषेचन करे। इसी प्रकार तर्पण का दशांश मार्जन करना चाहिये। मार्जन के दशांश संख्या से ब्राह्मणभोजन करावे। इसी तरह जप, होम, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण भोजनात्मक पाँच प्रकार का पुरश्चरण होता है।

तर्पणाद्यसंभवे तत्तत्संख्याचतुर्गुणो जप एव कार्यः। अयं च ग्रहणे पुरश्चरणप्रकारो ग्रस्तोदये ग्रस्तास्ते च न संभवति। पुरश्चरणाङ्गोपवासः पुत्रवद्गृहिणापि कार्यः। पुरश्चरणकर्तुः स्नानदानादिनैमित्तिककर्मलोपे प्रत्यवायप्रसङ्गान्नैमित्तिकं स्नानदानादिकं भार्यापुत्रादिप्रतिनिधिद्वारा कार्यम्।

तर्पण आदि के न करने पर उसकी संख्या का चौगुना जप ही कर्तव्य है। यह पुरश्चरण का प्रकार ग्रस्तोदय तथा ग्रस्तास्त में संभव नहीं है। पुरश्चरण का अंग उपवास पुत्रवाले गृहस्थ का भी कर्तव्य है। पुरश्चरण करनेवाले का स्नान-दान आदि नैमित्तिक कर्म न होने पर प्रत्यवाय होने से नैमित्तिक स्नान-दान आदि स्त्री-पुत्र आदि प्रतिनिधियों के द्वारा कराना चाहिये।

अथ ग्रहणे कर्तव्यविधानम्

अत्रेत्थमितिकर्तव्यता—स्पर्शकालात्पूर्वं स्नात्वा 'अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहं राहुग्रस्ते दिवाकरे निशाकरे वा अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धिकामो ग्रासादिमुक्तिपर्यन्तममुकमन्त्रस्य जपरूपं पुरश्चरणं करिष्ये' इति संकल्पं च कृत्वाऽऽसनबन्धन्यासादिकं च स्पर्शात्पूर्वमेव विधाय स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं [1]मूलमन्त्रजपं कुर्यात्।

ग्रहण के स्पर्शकाल से पहले स्नान करके 'अमुकगोत्र अमुकशर्मा मैं राहु से ग्रस्त सूर्य वा चन्द्रमा के समय में अमुकदेवता के अमुकमन्त्र की सिद्धि के लिये ग्रास आदि से मुक्ति तक अमुकमन्त्र का जपस्वरूप पुरश्चरण करूँगा' ऐसा संकल्प करके आसनबन्ध न्यास आदि ग्रहणस्पर्श से पूर्व ही करके स्पर्शादि मोक्षपर्यन्त मूलमन्त्र का जप करे।

ततः परदिने स्नानादिनित्यकृत्यं विधाय 'अमुकमन्त्रस्य कृतैतद्ग्रहण-

१. पद्मपुराण में मूलमंत्र का स्वरूप—'प्रणवादि नमोऽन्तं तच्चतुर्थ्यन्तं च सत्तम। देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः॥' इति। जैसे—'ॐ रामाय नमः' 'ॐ कृष्णाय नमः' इत्यादि।

कालिकामुकसंख्याकपुरश्चरणजपसाङ्गतार्थं तद्दशांशहोमतद्दशांशतर्पणतद्दशांश-मार्जनतद्दशांशब्राह्मणभोजनानि करिष्ये' इति संकल्प्य होमादिकं तत्तच्चतुर्गुण-द्विगुणान्यतरजपं वा कुर्यात्।

इसके बाद दूसरे दिन स्नान आदि नित्यकृत्य करके 'अमुक मन्त्र का ग्रहणकाल में किया हुआ अमुक संख्याक पुरश्चरण-जप की सफलता के लिये किये हुए जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन करूँगा' ऐसा संकल्प करके अथवा होम आदि के चतुर्गुणित या द्विगुणित जप करे।

ग्रहणकाले च तत्प्रेरितः पुत्रादिः 'अमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्यामुकग्रहणस्पर्शस्नानजनितश्रेयःप्राप्त्यर्थं स्पर्शस्नानं करिष्ये' इत्यादिसंकल्पपूर्वकं तदीयस्नानदानादिकं कुर्यात्। पुरश्चरणमकुर्वद्भिरपि गुरूपदिष्टः स्वस्वेष्टदेवतामन्त्रजपो गायत्रीजपश्चावश्यं ग्रहणे कार्योऽन्यथा मन्त्रमालिन्यम्।

ग्रहणसमय में स्वय नहीं किये नैमित्तिक कर्मों के लिये पुरश्चरण-कर्ता की प्रेरणा से पुत्र आदि प्रतिनिधि 'अमुकशर्मा अमुकगोत्र का अमुक ग्रहण के स्पर्श में स्नानजन्य कल्याणप्राप्ति के लिए ग्रहण स्पर्श का स्नान करूँगा' ऐसा पहले ही संकल्प करके पुरश्चरणकर्ता के स्नान-दान आदि को करे। पुरश्चरण नही करने वाले भी गुरु से उपदिष्ट अपने अपने इष्टदेवता के मन्त्र का जप, या गायत्री का जप अवश्य करे। ऐसा न करने से मन्त्र में मालिन्य आता है।

अथ ग्रहणे शयनादिकृते दोषः

ग्रहणकाले [1]शयने कृते रोगो मूत्रे दारिद्र्यं पुरीषे कृमिर्मैथुने गामसूकरोऽभ्यङ्गे कुष्ठी भोजने नरक इति।

ग्रहणसमय में सोने से रोग लघुशंका करने से दरिद्रता, पाखाना करने से कीडा, स्त्रीप्रसंग करने से ग्राम्य सूकर, उबटन लगाने से कोढ़ी और भोजन करने से नरक होता है।

अथ ग्रहणे त्याज्यानि

पूर्वपक्वमन्नं गृहणोत्तरं [2]त्याज्यम्। एवं ग्रहणकालस्थितजलपाने पादकृच्छ्राभिधानाज्जलमपि त्याज्यम्। काञ्जिकं तक्रं घृततैलपाचितमन्नं क्षीरं च पूर्वसिद्धं ग्रहणोत्तरं ग्राह्यम्। घृते संधिते गोरसेषु ग्रहणकाले कुशान्तरायं कुर्यात्।

ग्रहण से पहले का बनाया हुआ अन्न ग्रहण के बाद ग्राह्य नहीं है। इसी तरह ग्रहणकाल का जल भी नहीं पीना चाहिये। क्योंकि ग्रहण जल पीने वाले को पादकृच्छ्र व्रत रूप प्रायश्चित करने को कहा है। काँजी मट्ठा घी अथवा तैल से पकाया हुआ अन्न और दुग्ध, ग्रहण के पहले बनाये हुये ये सब ग्रहण के बाद भी भक्ष्य हैं। घी या गोरस में सिद्ध किये हुये वस्तुओं में ग्रहण के समय कुश डाल दे।

---

१. शिवरहस्ये—'सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्। न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः॥' इति।

२ मिताक्षरायाम्—'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं ग्रहपर्युषितं च यत्।' षट्त्रिंशन्मते—'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्॥' मेधातिथिः—'आरनालं पयस्तक्रं कीलाटं घृतसक्तवः। स्नेहपक्वं च तैलं च न कदाचित् प्रदुष्यति॥' अपि च—'आरनालं च तक्रं च ह्यादेयं घृतपाचितम्। उदकं च कुशच्छन्नं न दुष्येद् राहुदर्शने॥' इति।

अथ वेधविचारः

[1]सूर्यग्रहे ग्रहणप्रहरादर्वाक् यामचतुष्टयं वेधः । चन्द्रग्रहे तु प्रहरत्रयम् । तथा च दिनप्रथमप्रहरे सूर्यग्रहे पूर्वरात्रिप्रहरचतुष्टये न भोक्तव्यम् । द्वितीये यामे ग्रहणे रात्रिद्वितीययामादौ न भोक्तव्यम् । एवं रात्रिप्रथमप्रहरे चन्द्रग्रहे दिनद्वितीययामादौ न भुञ्जीत । रात्रिद्वितीययामादौ ग्रहणे दिनतृतीययामादौ न भुञ्जीत । बालवृद्धातुरविषये तु सार्धप्रहरात्मको मुहूर्तत्रयात्मको वा वेधः ।

सूर्यग्रहण में जिस प्रहर में ग्रहण लगे उस से पहले चार प्रहर तक वेध होता है । चन्द्रग्रहण में तो तीन ही प्रहर तक होता है । इस प्रकार यदि दिन के पहले प्रहर में सूर्यग्रहण हो तो पहली रात्रि के चार प्रहर के भीतर भोजन नही करना चाहिये । दूसरे प्रहर में ग्रहण होने पर रात के दूसरे प्रहर आदि में भोजन नहीं करे । इसी प्रकार चन्द्रग्रहण यदि रात के पहले प्रहर में हो तो दिन के द्वितीय प्रहर आदि में भोजन न करे । रात के दूसरे आदि प्रहरों में ग्रहणके होने पर दिन के तीसरे प्रहरादि में भोजन न करे । बालक, वृद्ध और बीमार के विषय में तो डेढ़ प्रहर का या तीन मुहूर्त का वेध होता है ।

[2]शक्तस्य वेधकाले भोजने त्रिदिनमुपोषणं प्रायश्चित्तम् । ग्रहणकाले भोजने प्राजापत्यं प्रायश्चित्तम् । चन्द्रस्य ग्रस्तोदये तु यामचतुष्टयवेधात्तत्पूर्वं दिवा न भुञ्जीत । केचित्तु चन्द्रपूर्णमण्डलग्रासे यामचतुष्टयं वेध एकदेशग्रासे यामत्रयमित्याहुः ।

समर्थ को वेधकाल में भोजन करने पर तीन दिन का उपवास रूप प्रायश्चित है । ग्रहण के समय में भोजन करने पर प्राजापत्यव्रत प्रायश्चित कर्तव्य है । चन्द्रमा के ग्रस्तोदय ग्रहण में तो चार प्रहर वेध होने से उसके पहले दिन में भोजन न करे । कोई तो चन्द्रमा के सम्पूर्णमण्डल में ग्रहण लगने पर चार प्रहर का वेध और खण्डग्रहण में तीन प्रहर का ही वेध कहते हैं ।

ग्रस्तास्ते तु—

> ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि ।
> परेद्युरुदये स्नात्वा शुद्धोऽभ्यवहरेन्नरः ॥

अत्र स्नात्वा शुद्ध इत्युक्त्या शुद्धमण्डलदर्शनकालिकस्नानात्पूर्वमशुद्धिप्रतिपादनाज्जलाहरणपाकादिकं शुद्धबिम्बोदयकालिकस्नानात्पूर्वं न कार्यमिति भाति ।

ग्रस्तास्त में तो चन्द्र सूर्य के ग्रहणकाल में ही अस्त हो जाने पर दूसरे दिन उदयकाल में

---

१. वृद्धगौतमः—'सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम् । चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना ॥' बालक, वृद्ध और रोगियों के लिये तो ग्रहण के याम से पूर्व एक याम (तीन घंटा) ही भोजन का निषेध है । मार्कण्डेयः—'सायाह्ने ग्रहणं चेत् स्यादपराह्ने न भोजनम् । अपराह्ने न मध्याह्ने, मध्याह्ने न तु सङ्गवे ॥ भुञ्जीत सङ्गवे चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया ।' इति ।

२. पुत्रवान् समर्थ गृहस्थ उपवास करें । यथा लिङ्गपुराणे—'एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा दत्त्वा च शक्तितः । कञ्चुकादिव सर्पस्य निर्वृत्तिः पापकोशतः ॥ त्रिरात्रं समुपोष्यैवं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणा सह ॥' इति । कात्यायनः—'चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुद्ध्यति । तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥' इति ।

स्नान करके शुद्ध हो भोजन करे। इस वचन में 'स्नान से शुद्ध हुआ' इस कथन से शुद्धमण्डल दर्शन समय के स्नान से पहले अशुद्धि रहती है इस कथन से शुद्ध बिम्बोदयकालिक स्नान से पहले जल का लाना रसोइ आदि का बनाना ठीक नहीं है, ऐसी मेरी धारणा है।

सूर्यग्रस्तास्तादौ पुत्रवद्गृहिण उपवासनिषेधात्तेन षण्मुहूर्तात्मकं वेधं त्यक्त्वा ग्रहणात्पूर्वं भोक्तव्यमिति केचित्। पुत्रवद्गृहिणामपि तत्रोपवास एव कार्य इति [1]माधवमतमेव तु शिष्टाचारानुसृतं युक्तम्। सूर्यग्रस्तास्ते चन्द्रग्रस्तोदये चाहिताग्निनाऽन्वाधानं विधाय जलेन व्रतं कार्यं नतु भोजनम्।

सूर्य ग्रस्तास्त आदि में पुत्र वाले गृहस्थ को उपवास के निषेध से छ मुहूर्त के वेध को छोड़ कर ग्रहण से पहले भोजन कर लेना चाहिये, यह किसी का मत है। किन्तु माधव के मत से पुत्र वाले गृहस्थ को भी ग्रहण में उपवास करना शिष्टाचार के अनुसार ठीक है। अग्निहोत्री को सूर्य के ग्रस्तास्त ग्रहण में और चन्द्रमा के ग्रस्तोदय में अन्वाधान करके जल से व्रत करना न कि भोजन करना चाहिए।

चन्द्रग्रस्तास्ते उत्तरदिने संध्याहोमादौ न दोषः। तत्राल्पकालेन शास्त्रतो मुक्तिनिश्चये मुक्त्यनन्तरं स्नात्वा होमादिकं कर्तव्यम्। चिरकालेन मुक्तौ होमकालातिक्रमप्रसङ्गाद् ग्रस्तोदय इव ग्रहणमध्ये एव संध्यां होमं च कृत्वा शास्त्रतो मुक्तिकाले स्नात्वा ब्रह्मयज्ञादिनित्यकर्म कर्तव्यमिति भाति।

चन्द्रमा के ग्रस्तास्त ग्रहण में दूसरे दिन संध्या होम आदि करने में कोई दोष नहीं है। शास्त्र से थोड़े समय में मुक्ति का निश्चय करके मुक्ति के बाद स्नान करके होमादिक कर्त्तव्य है। देर से मुक्ति होने पर होमकाल का अतिक्रमण होगा तो ग्रस्तोदय की तरह ग्रहण के मध्य में संध्या और होम करके शास्त्रानुसार मुक्तिसमय में स्नान करके ब्रह्मयज्ञ आदि नित्यकर्म करे ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

दर्शे ग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैव दर्शश्राद्धसंक्रान्तिश्राद्धानां प्रसङ्गसिद्धिर्भवति। ग्रहणदिने पित्रादेर्वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ सति संभवेऽन्नेन कार्यम्। [2]ब्राह्मणाद्यलाभेनासंभवे तु आमेन हेम्ना वा कार्यम्।

अमावस्या में ग्रहणनिमित्तक श्राद्ध से ही अमावास्याश्राद्ध और संक्रान्तिश्राद्धों की सिद्धि होती है। ग्रहण के दिन पिता आदि के वार्षिकश्राद्ध आ पड़ने पर यदि संभव हो तो आमान्न (कच्चा अन्न) या सुवर्ण से करे।

---

१. माधवः—'ग्रस्तास्तमये तु पुत्रिणोऽप्युपवास एव। अहोरात्रं न भोक्तव्यं चन्द्रसूर्यग्रहो यदा। मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्॥' इति भोजनप्रतिषेधात्।' जैमिनि के वचनानुसार पुत्रवान् गृहस्थ के लिये उपवास का निषेध है—'आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। पारणं चोपवासं च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही॥' इति।

२. बौधायन:—'अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि। हेमश्राद्धं सग्रहे च कुर्याच्छूद्रः सदैव हि॥' तथा—'दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम्। अन्नेनासम्भवे कुर्याद्धेम्ना वाऽऽमेन वा पुनः॥' शातातपः—'आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे तथा। आमश्राद्धं द्विजो दद्याच्छूद्रो दद्यात्सदैव हि॥' इति।

अथ जन्मराशेर्ग्रहणशुभाशुभविचारः

स्वजन्मराशेस्तृतीयषष्ठैकादशदशमराशिस्थितं ग्रहणं [1]शुभप्रदम्। द्वितीय-सप्तमनवमपञ्चमस्थानेषु मध्यमम्। जन्मचतुर्थाष्टमद्वादशराशिस्थितमनिष्टप्रदम्।

अपनी जन्मराशि से तीसरे, छठें, ग्यारहवें और दशम राशि में ग्रहण हो तो शुभ होता है। दूसरे, सातवें, नवें और पाचवें स्थानों में हो तो मध्यम होता है। जन्म से चौथे, आठवें और बारहवीं राशि पर ग्रहण हो तो अनिष्ट फल देने वाला होता है।

अथ जन्मराशौ ग्रहणे दानविधिः

यस्य जन्मराशौ जन्मनक्षत्रे वा ग्रहणं तस्य विशेषतोऽनिष्टप्रदं तेन गर्गाद्युक्ता [2]शान्तिः कार्या। अथवा बिम्बदानं कार्यम्। तद्यथा—

जिसकी जन्मराशि या जन्मनक्षत्र में ग्रहण हो उसको अधिक अनिष्ट होता है। उस पुरुष को गर्गाचार्यादि की कही शान्ति करनी चाहिए या बिम्बदान करना चाहिये। वह इस तरह है :—

चन्द्रग्रहे रजतमयं चन्द्रबिम्बं सुवर्णमयं नागबिम्बं च कृत्वा सूर्यग्रहे सौवर्णं सूर्यबिम्बं नागबिम्बं च कृत्वा घृतपूर्णताम्रपात्रे वा निधाय तिलवस्त्र-दक्षिणासाहित्यं संपाद्य 'मम जन्मराशिजन्मनक्षत्रस्थितामुकग्रहणसूचितसर्वानिष्ट-प्रशान्तिपूर्वकम् एकादशस्थानस्थितग्रहणसूचितशुभफलावाप्तये बिम्बदानं करिष्ये' इति संकल्प्य सूर्यं चन्द्रं राहुं च ध्यात्वा नमस्कृत्य—

तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन।
हेमताराप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव॥
विधुंतुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत।
दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात्॥

चन्द्रग्रहण में चान्दी का चन्द्रबिम्ब, सोने का सूर्यबिम्ब और नागबिम्ब बनाकर घी से भरे हुये ताँबे के या कांस्य के पात्र में रख कर तिल-वस्त्र-दक्षिणा से युक्त 'मेरे जन्मराशि जन्मनक्षत्र स्थित अमुकग्रह से सूचित समग्र अनिष्टों की विशेष शान्तिपूर्वक एकादश स्थानस्थित ग्रहण सूचित शुभफल प्राप्ति के लिये बिम्बदान करूँगा' ऐसा संकल्प करके सूर्य,चन्द्र और राहु का ध्यान कर नमस्कार करके हे अन्धकारमय। महाभयङ्कर! चन्द्र सूर्य के मर्दन करने वाले! सोने चाँदी के देने से मेरे लिये आप शान्तिप्रद हों। हे चन्द्रमा को व्यथित करने वाले! सिंहिका को आनन्ददेने वाले पुत्र! अच्युत! इस नागबिम्ब के दान से ग्रहणवेध के भय से मेरी रक्षा करो आपको नमस्कार है।

---

१. ज्योतिषे—'त्रिषडदशायोपगतं नराणां शुभप्रदं स्याद् ग्रहणं रवीन्द्वोः। द्विसप्तनन्देषुषु मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं कथितं मुनीन्द्रैः॥' इति।

२. विष्णुधर्मे—'यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ। तज्जातानां भवेत् पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः॥' तत्रैव—'सूर्यस्य संक्रमो वाऽपि ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः। यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे तस्य रोगोऽथवा मृतिः॥ तस्य दानं च होमं च देवार्चनजपौ तथा। उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छान्तिर्भ-विष्यति॥ स्वर्णेन वाऽथ पिष्टेन कृत्वा सर्पस्य चाकृतिम्। ब्राह्मणाय ददेत्तस्य न रोगादिश्च तत्कृतः॥' अत्र सर्पस्य तदाकारस्य राहोरित्यर्थः। 'शान्तिसार' आदि ग्रन्थों में शान्तिविधि देखें।

इति मन्त्रमुच्चार्य 'इदं सौवर्णं राहुबिम्बं नागं सौवर्णं रविबिम्बं राजतं चन्द्रबिम्बं वा घृतपूर्णकांस्यपात्रनिहितं यथाशक्ति तिलवस्त्रदक्षिणासहितं ग्रहण-सूचितारिष्टविनाशार्थं शुभफलप्राप्त्यर्थं च तुभ्यमहं संप्रददे' इति दानवाक्येन पूजित-ब्राह्मणाय दद्यात्। एवं चतुर्थाद्यनिष्टस्थानेष्वपि दानं कार्यमिति भाति।

इस मन्त्र को कहकर इस सोने के बने राहुबिम्ब तथा नागबिम्ब और सुवर्णनिर्मित सूर्यबिम्ब अथवा घी भरे कांस्यपात्र में स्थित चाँदी का चन्द्रबिम्ब शक्ति के अनुसार तिल वस्त्र दक्षिणा से युक्त ग्रहणसूचित अनिष्ट के विनाश के लिए आपको मैं दे रहा हूँ ऐसे दान वाक्य से पूजित ब्राह्मण को देवे। इसी प्रकार चतुर्थ आदि अनिष्ट स्थानों के लिये भी दान करना चाहिये ऐसा मुझे भाता है।

यस्य जन्मराश्यादिग्रहणं तेन राहुग्रस्तरवीन्दुबिम्बं नावलोकनीयम्। इतर-जनैरपि [1]पटजलादिव्यवधानेनैव ग्रस्तबिम्बं द्रष्टव्यं न साक्षात्।

जिसकी जन्मराशि पर ग्रहण हो उसे राहु से ग्रस्त सूर्यचन्द्रमण्डल को देखना नहीं चाहिये। अन्य लोगों को भी वस्त्र या जल के सहारे ही ग्रस्तबिम्ब को देखना चाहिये, न कि साक्षात्।

मङ्गलकार्येषु पूर्णग्रासे चन्द्रग्रहे[2] द्वादश्यादितृतीयान्तं दिनसप्तकं वर्ज्यम्। सूर्यपूर्णग्रासे एकादश्यादिचतुर्थ्यन्तदिनानि वर्ज्यानि। खण्डग्रहणे तु चतुर्दश्यादि-दिनत्रयं वर्ज्यम्। ज्योतिर्निबन्धेषु ग्रासपादतारतम्येन दिनाधिक्योनत्वं तारतम्येन योजितम्। ग्रस्तास्ते पूर्वं दिनत्रयं वर्ज्यम्। ग्रस्तोदये परं दिनत्रयं वर्ज्यम्। ग्रहण-नक्षत्रं षण्मासं पूर्णग्रासे वर्ज्यम्। पादादिग्रासे सार्धमासादितारतम्येन योज्यम्। पूर्वसंकल्पितस्य द्रव्यस्य ग्रहणोत्तरं दाने तद्द्विगुणं देयं भवति। इति ग्रहणनिर्ण-योद्देशः ॥ ३१ ॥

चन्द्रमा के सर्वग्रास में द्वादशी से तृतीयापर्यन्त ७ दिन मङ्गल कार्यों में वर्जित हैं। और सूर्य के पूर्णग्रास में एकादशी से लेकर चतुर्थीपर्यन्त मङ्गलकार्य में वर्जित है। खण्डग्रहण में चतुर्दशी से तीन दिन वर्जित है। ज्योतिर्निबन्धों में ग्रास और पाद के तारतम्य से अधिक दिन या कम तारतम्य से योजना की है। ग्रस्तास्त में पहले के तीन दिन और ग्रस्तोदय में बाद के तीन दिन वर्जित है। पूर्णग्रास में ग्रहणनक्षत्र छ महीने तक वर्जित है। खण्डग्रास में डेढ़ महीने वर्ज्य है। पहले के सङ्कल्प किये हुये द्रव्य को ग्रहण के बाद देने पर दूना करके देना चाहिये। ग्रहणनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ समुद्रस्नाननिर्णयः

समुद्रे पौर्णमास्यमावास्यादिपर्वसु स्नायात्। भृगुभौमदिने स्नानं वर्जयेत्।

अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पर्शस्तु कदाचन।
अश्वत्थं मन्दवारे च सागरं पर्वणि स्पृशेत् ॥

---

१. ब्रह्मसिद्धान्ते—'सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्यं स्वस्थं तैलाम्बुदर्पणैः। ग्रहणं गुर्विणी जातु न पश्येत पटं विना ॥' इति।

२. पूर्णग्रासे हेमाद्रिः—'द्वादश्यादितृतीयान्तो वेध इन्दुग्रहे स्मृतः। एकादश्यादिकः सौरे चतुर्थ्यन्तः प्रकीर्तितः ॥ खण्डग्रासे तु—'त्र्यहं खण्डग्रहे तयोः' इति तत्रैव।

न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्मणि ।
समुद्रस्नानप्रयोगोऽन्यत्र[१] ज्ञेयः । इति समुद्रस्नानोद्देशः ॥ ३२ ॥

समुद्र में पूर्णिमा अमावास्या आदि पर्वों में स्नान करना चाहिये । शुक्र और मङ्गलवार को समुद्रस्नान वर्जित है । पीपल और समुद्र की स्पर्शरहित सेवा करे, यदि स्पर्श करे तो शनिवार को पीपल का और पर्वों में समुद्र का । रामेश्वर और तीर्थस्नान कर्म में काल का कोई नियम नहीं है । समुद्रस्नान की विधि दूसरे ग्रन्थों से जानें । समुद्रस्नानोद्देश समाप्त ।

अथ तिथिविशेषे नक्षत्रविशेषे वारादौ च विधिनिषेधाः

सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नीलवस्त्रं न धारयेत् ।
नचाप्यामलकैः स्नानं न कुर्यात्कलहं नरः ॥
सप्तम्यां नैव कुर्वीत ताम्रपात्रेण भोजनम् ।

नन्दातिथिष्वभ्यंगो वर्ज्यः । रिक्तासु क्षौरं वर्ज्यम् । जयासु मांसंशूद्राद्यैर्वर्ज्यम् । पूर्णासु स्त्री वर्ज्या । रविवारेऽभ्यङ्गो भौमवारे क्षौरं बुधे योषिच्च वर्ज्या । चित्राहस्तश्रवणेषु तैलं वर्ज्यम् । विशाखाप्रतिपत्सु क्षौरं वर्ज्यम् । मघाकृत्तिकात्र्युत्तरासु स्त्री न सेव्या । तिलभक्षणं तिलतर्पणं च सप्तम्यां न । नारीकेलमष्टम्यामलाबु नवम्यां पटोलं दशम्यां निष्पावमेकादश्यां मसूरं द्वादश्यां वार्ताकं त्रयोदश्यां वर्ज्यम् ।

सप्तमी को तेल का स्पर्श न करे, नीले वस्त्र को न पहने और न आंवलों से स्नान करे, किसी से झगड़ा न करे और तांबे के पात्र में भोजन न करे । प्रतिपत्, षष्ठी, एकादशी को उबटन लगाना वर्जित है । चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी को हजामत न बनावे । तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथि में शूद्र आदि को मांसाहार वर्ज्य है । पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा में स्त्रीसंगम निषिद्ध है । रविवार को उबटन, मंगल को क्षौर और बुध को स्त्रीप्रसंग वर्जित है । चित्रा, हस्त और श्रवण में तैल लगाना वर्जित है । विशाखायुक्त प्रतिपदा में क्षौर वर्जित है । मघा, कृत्तिका और तीनों उत्तरा में स्त्रीसेवन नहीं करे । सप्तमी को तिल से तर्पण और तिलका खाना वर्जित है । अष्टमी में नारियल, नवमी में तुम्बीलौकी, दशमी में परोरा, एकादशी में निष्पाव, द्वादशी में मसूर, त्रयोदशी में बैंगन वर्जित है ।

पूर्णिमादर्शसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च ।
नरश्चण्डालयोनौ स्यात्तैलस्त्रीमांससेवनात् ॥

पूर्णिमादर्शसंक्रान्तिद्वादशीषु श्राद्धदिने च वस्त्रं न पीडयेत् । रात्रौ मृदं गोमयमुदकं च नाहरेत् । गोमूत्रं प्रदोषकाले न गृह्णीयात् । अमादिपर्वस्ववश्यं शान्त्यर्थं तिलहोमी स्यात् । आत्मरक्षणाय दानादिकं च कुर्यात् ।

पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी में तैल तथा मांस के सेवन से मनुष्य चाण्डालयोनि में जन्म लेता है । पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रान्ति, द्वादशी और श्राद्ध के दिन वस्त्र को न निचोड़े । रात में मिट्टी, गोबर और जल को न लावे । प्रदोषकाल में गोमूत्र ग्रहण

---

१. समुद्रस्नानार्थी समुद्रस्नान का सविधि-वर्णन निर्णयसिन्धु एवं महाभारत में देखें ।

इति सुधा-विवृतौ प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ।

नहीं करना चाहिये। अमावास्या आदि पर्वों में शान्ति के लिये तिल का होम अवश्य करे तथा आत्मरक्षा के लिये दान आदि भी करे।

पर्वसु नाधीयीत। शौचाचमनब्रह्मचर्यादिसेवी स्यात्। प्रतिपद्दर्शषष्ठीनवमीतिथिषु श्राद्धदिने जन्मदिने व्रते चोपवासे च रविवारे मध्याह्नस्नानसमये च काष्ठेन दन्तधावनं वर्ज्यम्।

पर्व की तिथियों में अध्ययन न करे। शौच, आचमन और ब्रह्मचर्य आदि का सेवन करे। प्रतिपदा अमावास्या षष्ठी और नवमी तिथियों में, श्राद्धदिन जन्मदिन व्रत उपवास रविवार और मध्याह्नस्नान के समय में काष्ठ से दन्तधावन न करे।

अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धेपि दिने तथा।
अपां द्वादशगण्डूषैः पत्रैर्वा शोधयेन्मुखम्॥

अत्र सर्वत्र निषेधेषु तिथ्यादिकं तत्कालव्यापि ग्राह्यम्। इति तिथ्यादौ विधिनिषेधसंग्रहोद्देशः॥ ३३॥

दतुअन के न मिलने पर तथा निषिद्धदिन में १२ कुल्ला जल या पत्तों से मुखशुद्धि करे। इस निषेधप्रकरण में सर्वत्र तिथि आदि तत्कालव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये। विधिनिषेधसंग्रहोद्देश समाप्त।

मीमांसाधर्मशास्त्रज्ञाः सुधियोऽनलसा बुधाः।
कृतकार्याः प्राङ्निबन्धैस्तदर्थं नायमुद्यमः॥
ये पुनर्मन्दमतयोऽलसा अज्ञाश्च निर्णयम्।
धर्मे वेदितुमिच्छन्ति रचितस्तदपेक्षया॥
निबन्धोऽयं धर्मसिन्धुसारनामा सुबोधनः।
अमुना प्रीयतां श्रीमद्विठ्ठलो भक्तवत्सलः॥
सर्वत्र मूलवचनानीह ज्ञेयानि तद्विचारश्च।
कौस्तुभनिर्णयसिन्धुश्रीमाधवकृतनिबन्धेभ्यः॥
प्रेम्णा सद्भिर्ग्रन्थः सेव्यः शब्दार्थतः सदोषोऽपि।
संशोध्य वापि हरिणा सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव॥

इति श्रीमदनन्तोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिन्धुसारे प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः।

मीमांसा धर्मशास्त्र के जानने वाले आलस्यरहित सुबुद्धि विद्वान् लोग पहले के निबन्धों से कृतकृत्य हैं, अतः उनके लिये यह मेरा परिश्रम नहीं है। आलसी, मतिमन्द, मूर्ख जो धर्म का निर्णय जानना चाहते हैं, उनके सुखपूर्वक ज्ञान के लिये धर्मसिन्धुसारनाम का निबन्ध मैंने बनाया। इस कृति से भक्तप्रिय विट्ठल भगवान् प्रसन्न हों। स्मृतिकौस्तुभ, निर्णयसिन्धु और माधव के बनाये निबन्धों से मूलवचन और उनके विचार भी शब्द और अर्थ से दोषयुक्त भी यह ग्रन्थ प्रेम से सज्जनों का सेव्य है। जैसे श्रीसुदामा के छिलके के सहित एक मुट्ठी चिउड़े को स्वच्छ करके भगवान् कृष्ण ने ग्रहण किया॥ १-५॥

प्रथम परिच्छेद समाप्त।

द्वितीयः परिच्छेदः

श्रीपाण्डुरङ्गं[1] विबुधान्तरङ्गं नौमीन्दिरां माधवमन्दिरां च ।
सतामनन्तं हितमामनन्तं गुरुं गरिष्ठं जननीं वरिष्ठाम् ॥ १ ॥
काशीनाथाभिधेयेनात्रानन्तोपाध्यायसूनुना ।
सामान्यं निर्णयं प्रोच्य विशेषेण विनिर्णयः ॥ २ ॥
संगृह्यते धर्मसिन्धुसाराख्ये कालगोचरे ।
ग्रन्थे प्रस्फुटबोधाय पुनरुक्तिर्न दूषणम ॥ ३ ॥

देवताओं के अन्तरङ्ग श्री पाण्डुरङ्ग भगवान् और माधव के सहित लक्ष्मी तथा सज्जनों के हितचिन्तक गुरु अनन्त जी एवं माता को मैं प्रणाम करता हूँ। अनन्तोपाध्याय के पुत्र काशीनाथ नामक मैंने सामान्यनिर्णय कहकर विशेषतः निर्णय इस कालबोधक धर्मसिन्धुसार नामक ग्रन्थ में संग्रह किया । स्पष्टज्ञान के लिये ग्रन्थ में पुनरुक्ति दूषण नहीं होती ॥ १-३ ॥

प्रथमपरिच्छेदे मासविशेषानपेक्षं सामान्यतस्तिथ्यादिनिर्णयमभिधायास्मिन्द्वितीयपरिच्छेदे चैत्रादिमासविशेषोपादानेन प्रतिपदादितिथिषु विहितसंवत्सरकृत्यनिर्णयसारं संगृह्णीमः । अत्र शुक्लप्रतिपदादिरमान्त एव मासः प्रायेण दाक्षिणात्यैराद्रियते इति तमेवाश्रित्य निर्णय उच्यते । अत्र किंचित्पूर्वपरिच्छेदोक्तमपि पुनर्विशेषोक्तिभिर्दृढीक्रियत इति पुनरुक्तिर्न दोषाय ।

प्रथमपरिच्छेद में मास विशेष की अपेक्षा न कर सामान्यतया तिथि आदि का निर्णय कहकर इस दूसरे परिच्छेद में चैत्र आदि मासविशेष का ग्रहण कर प्रतिपदा आदि तिथियों में विहित वार्षिक कृत्य के निर्णय के सार को संग्रह करते हैं। इसमें शुक्ल प्रतिपदा से अमावास्यान्त ही मास को प्रायः दक्षिण देश वाले आदर करते हैं। अतः उसी का आश्रयण कर निर्णय हम कहते हैं। दूसरे परिच्छेद में कुछ पूर्व परिच्छेद का कहा हुआ भी पुनः विशेषोक्तियों से दृढ़ किया गया है, इसलिये पुनरुक्ति दोष के लिये नहीं है।

अथ चैत्रकृत्ये मेषसंक्रान्तिः

तत्र मेषसंक्रान्तौ पूर्वाः पराश्च दश दश नाड्यः पुण्यकालः । रात्रौ त्वर्धरात्रात्प्राक् संक्रमे पूर्वदिनोत्तरार्धं पुण्यम् । अर्धरात्रात्परतः संक्रमे उत्तरदिनस्य पूर्वार्धं पुण्यम् । अर्धरात्रे संक्रमे दिनद्वये पुण्यम् ।

मेष संक्रान्ति में पहली और पिछली दस दस घड़ियां पुण्यकाल है। रात में आधी रात से पहले संक्रमण हो तो पहले दिन का उत्तरार्ध पुण्यकाल होता है। आधीरात के बाद संक्रान्ति होने पर दूसरे दिन का पूर्वार्ध पुण्यप्रद है। आधीरात में संक्रान्ति होने पर दोनों दिन पुण्यकाल होता है।

---

१. विबुधा देवाः 'अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः' इत्यमरः । तेषु अन्तरंगं श्रेष्ठं विबुधान्तरङ्गं, श्रीपाण्डुरङ्गं स्वेष्टदेवमित्यर्थः ।

अथ वत्सरारम्भतिथिनिर्णयश्च

तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि [1]वत्सरारम्भः—तत्रौदयिकी प्रतिपत् ग्राह्या। दिनद्वये उदयव्याप्तौ अव्याप्तौ वा पूर्वा। चैत्रस्य मलमासत्वे वत्सरारम्भनिमित्तकं तैलाभ्यङ्गं संकल्पादौ नूतनवत्सरनामकीर्तनाद्यारम्भं च मलमासप्रतिपद्येव कुर्यात्। प्रतिगृहं ध्वजारोपणं निम्बपत्राशनं वत्सरादिफलश्रवणं नवरात्रारम्भो नवरात्रोत्सवादिनिमित्ताभ्यङ्गादिश्च शुद्धमासप्रतिपदि कार्यः। वत्सरारम्भनिमित्तकोऽपि तैलाभ्यङ्गः शुद्धप्रतिपद्येवेति मयूखे उक्तम्। अस्यां तैलाभ्यङ्गो नित्यः अकरणे [2]प्रत्यवायोक्तेः।

वर्ष का आरम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा में होता है। उसमें उदयव्यापिनी प्रतिपदा ग्राह्य है। दोनों दिन उदयव्यापिनी होने पर, या दोनों दिन उदयव्यापिनी न होने पर पूर्वा ग्राह्य है। यदि चैत्र मलमास हो तो वर्षारम्भ के निमित्त तैलाभ्यङ्ग का सङ्कल्प आदि में नये वर्ष का नामकीर्तनादि प्रारम्भ मलमास की प्रतिपदा में ही करे। प्रत्येक घर में ध्वजारोपण नीम के पत्तों को खाना, वर्ष आदि का फल सुनना, नवरात्र का प्रारम्भ, नवरात्र के उत्सव आदि के निमित्त से उबटन आदि का लगाना, शुद्धमास के प्रतिपदा में करे। वत्सरारंभ निमित्तक तैलाभ्यंग भी शुद्ध प्रतिपदा में ही करे, ऐसा मयूख में कहा है। इसमें तैलाभ्यङ्ग नित्यकर्म है। इसके नहीं करने से प्रायश्चित्ती होता है, ऐसा कहा है।

अथ चैत्रनवरात्रारम्भः

अस्यामेव प्रतिपदि देवीनवरात्रारम्भः। अत्र [3]परयुता मुहूर्तमात्रापि प्रतिपत् ग्राह्या। अत्र मुहूर्तपरिमाणम्–'मुहूर्तमह्नो रात्रेश्च प्रोचुः पञ्चदशं लवम्' इत्युक्तं सर्वत्र ज्ञेयम्। पारणादिविशेषनिर्णयः [4]शारदनवरात्रवद् बोध्यः।

इसी प्रतिपदा में देवी का नवरात्र प्रारम्भ होता है। इसमें मुहूर्तमात्र भी द्वितीयायुक्त प्रति-

---

१. चैत्रशुक्लप्रतिपदा से चान्द्रवर्ष का आरम्भ होता है। यथा ब्रह्मपुराणे—'चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि। शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति॥ प्रवर्तयामास तदा कालस्य गणनामपि। ग्रहान्नागानृतून् मासान् वत्सरान् वत्सराधिपान्॥' इति।

वृद्धवसिष्ठ ने इसमें प्रतिपदा को पूर्वविद्धा ग्राह्य बतलाया—'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत् सर्वदा बुधैः॥' इसमें वत्सराधिप की पूजा करनी चाहिये। ज्योतिर्निबन्धे—'यश्चैत्रशुक्लप्रतिपद्दिनवारो नृपो हि सः। तस्य पूजा विधातव्या पताकातोरणादिभिः। प्रतिगृहं ध्वजाः कार्याः शक्त्या ब्राह्मणतर्पणम्। निरीक्षणं च कर्तव्यं शकुनानां फलेप्सुभिः॥' इति।

२. वृद्धवसिष्ठः–'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च। तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥'

३. देवीपुराणे—'अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने। मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता॥' ब्रह्मपुराणे—'तिस्रो ह्येताः परा प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन। कार्तिकाश्वयुजोर्मासोश्चैत्रे मासि च भारत॥' इति।

४. चैत्र नवरात्र में—'आश्विने वाऽथवा माघे चैत्रे वा श्रावणेऽपि वा।' इस देवीपुराण के वचनानुसार आश्विन नवरात्र की भांति इस तिथि में कलशस्थापन तथा पराम्बा के प्रीणनार्थ सप्तशती पाठारम्भ आदि सभी नवरात्रकृत्य सम्पन्न करना चाहिये। इस नवरात्र में कलश के नीचे यवारोपण की जगह धान्यारोपण की विशेषता है। विशेष विवेचन आश्विन नवरात्र में देखें।

पदा ग्राह्य है। दिन रात का १५ पल मुहूर्त कहलाता है, यही सर्वत्र जानना चाहिये। पारणा आदि का निर्णय शारद नवरात्र की तरह जानें।

अत्रैव प्रपादानम्। तत्र मन्त्रः—

प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता।
अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः॥
अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम्।

प्रपां दातुमशक्तेन प्रत्यहमुदकुम्भो द्विजगृहे देयः। तत्र मन्त्रः—

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः॥

यहीं पर प्रपा (पौसला) का दान होता है। उसके मन्त्र का अर्थ यह है :—सर्वसाधारण जीवों के पीने के लिये यह पौसले का दान किया जाता है। इसके दान से पितृ-पितामह आदि तृप्त हों। अतः चार महीने अनिवारित जल देना चाहिये। प्रपादान में असमर्थ व्यक्ति को प्रतिदिन जल से भरा घड़ा ब्राह्मण को देना चाहिये। उसका मन्त्रार्थ यह है—यह ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक धर्मघट को देने से मेरे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हों।

इयमेव प्रतिपत्कल्पादिरपि। एवं वैशाखशुक्लतृतीया फाल्गुनकृष्णतृतीया शुक्ला चैत्रपंचमी माघे त्रयोदशी कार्तिके सप्तमी मार्गशीर्षे नवमी इत्यपि [1]कल्पादयो बोध्याः। आसु श्राद्धात्पितृतृप्तिः।

यही प्रतिपदा कल्प की आदि तिथि भी है। इसी प्रकार वैशाखशुक्ल तृतीया, फाल्गुनकृष्ण तृतीया, चैत्रशुक्ल पञ्चमी, माघ की त्रयोदशी, कार्तिक की सप्तमी, अगहन की नवमी ये भी कल्पादि तिथियाँ हैं। इनमें श्राद्ध करने से पितृगण तृप्त होते हैं।

अथ मत्स्यजयन्ती

चैत्रशुक्लप्रतिपन्मत्स्यजयन्तीत्येके।

कोई चैत्रशुक्ल प्रतिपदा में मत्स्यजयन्ती कहते हैं।

अथ गौरीव्रतम्

चैत्रे दधिक्षीरघृतमधुवर्जनदंपतीपूजनात्मकं गौरीव्रतं कार्यम्।

चैत्र में दही, दूध, घी और शहद को त्याग दे तथा दम्पति (स्त्री पुरुष) का पूजन स्वरूप गौरीव्रत करना चाहिये।

अथ चन्द्रव्रतम्

चैत्रशुक्लद्वितीयायां निशामुखे बालेन्दुपूजनात्मकं चन्द्रव्रतम्।

चैत्र शुक्ल द्वितीया सायंकाल में बालेन्दुपूजनात्मक चन्द्रव्रत करना चाहिये।

---

१. मत्स्यपुराण में—'ब्रह्मणो या दिनस्यादिः कल्पादिः सा प्रकीर्तिता। वैशाखस्य तृतीया या कृष्णा या फाल्गुनस्य च॥ पञ्चमी चैत्रमासस्य तथैवान्त्या तथा परा। शुक्ला त्रयोदशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी॥ नवमी मार्गशीर्षस्य सप्तैताः संस्मराम्यहम्। कल्पानामादयो ह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः॥' इसके सभी निर्णय मन्वादि में कहे जाने वाले निर्णय के अनुसार हैं।

अथ आन्दोलनगौरीव्रतम्

अस्यामेव दमनकेन गौरीशिवपूजनम्। चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीं शिवयुतां संपूज्यान्दोलनव्रतं मासपर्यन्तं कार्यम्। अत्र तृतीया मुहूर्तमात्रापि परा ग्राह्या, द्वितीयायुक्ता न कार्या। चतुर्थीयुतायां वैधृत्यादियोगेऽपि सैव कार्या, द्वितीयायोग-निषेधस्य बलवत्त्वात्।

इसी में दवने से गौरी-शिव का पूजन होता है। चैत्रशुक्ल तृतीया में शिवसहित गौरी का पूजन कर एक महीने तक आन्दोलन (झूला) व्रत करना चाहिये। आन्दोलनव्रत में मुहूर्त मात्रा भी तृतीया परा ग्राह्य है, द्वितीया से युक्त ग्रहण न करे। चतुर्थीयुक्त तृतीया और वैधृति आदि योग में भी वही करे, द्वितीयायुक्त निषेध के बलवान् होने से।

अथ रामान्दोलनव्रतम्

अस्यामेव तृतीयायां श्रीरामचन्द्रस्य दोलोत्सवमारभ्य मासपर्यन्तं पूजापूर्व-कमान्दोलनं कार्यम्। एवं देवतान्तराणामपि।

इसी तृतीया में श्रीरामचन्द्र का झूला उत्सव प्रारम्भ करके महीने भर पूजनपूर्वक झुलावे। इसी प्रकार और देवताओं का भी।

इयमेव तृतीया मन्वादिरपि। अत्रैव सर्वमन्वादिनिर्णय उच्यते—तत्र मन्वा-दयश्चैत्रे शुक्लतृतीया पौर्णमासी च श्रावणस्य कृष्णाष्टमी भाद्रपदस्य शुक्लतृतीया आश्विनस्य शुक्लनवमी कार्तिकस्य शुक्लद्वादशी पौर्णमासी च पौषे शुक्लैकादशी माघे शुक्लसप्तमी फाल्गुनस्य पौर्णमास्यमावास्या चेति चतुर्दश ज्ञेयाः। एतास्तु मन्वादयः शुक्लपक्षस्था दैवे पित्र्ये कर्मणि [1]पूर्वाह्णव्यापिन्यो ग्राह्याः। पूर्वाह्णोत्र द्वेधाविभक्तदिनपूर्वोभागस्तत्रैव श्राद्धादिविधानात्।

यही तृतीया मन्वादि तिथि भी है। यहीं पर सम्पूर्ण मन्वादि तिथियों का निर्णय कहते हैं—चैत्र में शुक्लपक्ष की तृतीया और पूर्णिमा मन्वादि-तिथि हैं। ज्येष्ठ में पूर्णिमा, आषाढ़ शुक्लपक्ष की दशमी और पौर्णमासी, श्रावणकृष्ण की अष्टमी, भाद्रपद शुक्लपक्ष की तृतीया, आश्विन शुक्ल की नवमी, कार्तिक की शुक्ल द्वादशी और पूर्णिमा, पौष में शुक्ल एकादशी, माघ में शुक्ला सप्तमी, फाल्गुन की पूर्णिमा और अमावास्या, ये १४ मन्वादि तिथियां हैं। ये मन्वादि तिथियां शुक्लपक्ष की दैव और पित्र्य कर्म में पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्य हैं। यहाँ पूर्वाह्ण दिन का दो भाग करने पर पहला भाग पूर्वाह्ण, इसी में श्राद्ध आदि कर्म होते हैं।

दैवान्मानुषाद्वापराधात्पूर्वाह्णे श्राद्धाद्यनुष्ठानासंभवेऽपराह्णव्यापिन्यो ग्राह्याः। दिनपूर्वार्धेऽपराह्णे वा श्राद्धाद्यनुष्ठेयम्। नतु दिनोत्तरार्धगतमध्याह्नभागे इति तात्पर्यम्। कृष्णपक्षस्थास्तु दैवे पित्र्ये च कर्मणि पञ्चधा विभक्तदिनचतुर्थभागा-

---

१. गरुडपुराण में शुक्लपक्ष की मन्वादितिथियां पूर्वाह्णव्यापिनी और कृष्णपक्ष की अपराह्ण-व्यापिनी ग्राह्य बतलाया—'पूर्वाह्णे तु सदा ग्राह्याः शुक्ला मनुयुगादयः। दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिकाः॥' इति।

ख्यापराह्णव्यापिन्यो ग्राह्याः । मन्वादिषु पिण्डरहितं [1]श्राद्धं कार्यम् । अत्र श्राद्धे-द्विसहस्रवर्षं पितॄणां तृप्तिः । मन्वादिश्राद्धं च नित्यम् । एतदकरणे [2]'त्वंभुवः प्रतिमानम्' इति ऋङ्मन्त्रस्य शतवारं जले जपः प्रायश्चित्तं कार्यम् ।

मनुष्य के अपराध से या दैवात् पूर्वाह्ण में श्राद्ध आदि न हो सके तो अपराह्णव्यापिनी तिथियाँ लेनी चाहिये । दिन के पूर्वाह्ण या अपराह्ण में श्राद्धादि करे न कि दिन के उत्तरार्धगत मध्याह्न भाग में, यह तात्पर्य है । कृष्णपक्ष की मन्वादि तिथियां तो दैव और पित्र्य कर्म में दिन का पाँच भाग करने पर चौथे भाग रूपी अपराह्णव्यापिनी ग्राह्य है । मन्वादि तिथियों में बिना पिण्ड का श्राद्ध करना चाहिये । मन्वादि तिथियों में श्राद्ध करने से दो हजार वर्षों तक पितरों की तृप्ति होती है । मन्वादिश्राद्ध नित्य है इसीलिये उसके न करने से 'त्वं भुवः प्रतिमानम्'' इस ऋग्वेद के मन्त्र का १०० बार जल में खड़ा होकर जपरूप प्रायश्चित्त करना चाहिये ।

अथ षण्णवतिश्राद्धसंख्या

एवं षण्णवतिश्राद्धान्यपि नित्यानि । तानि च—

अमा१२युग४मनु१४क्रान्ति१२धृति१२पात१२महालयाः१५ ।
अष्टका५ऽन्वष्टका५पूर्वेद्युः५श्राद्धैर्नवतिश्च षट् ॥ इति ज्ञेयानि ।

मन्वादि श्राद्ध की तरह छयानबे श्राद्ध भी नित्य हैं । वे बारह अमावस्यायें, चार युगादि तिथि, चौदह मन्वादि तिथि, बारह संक्रान्ति, बारह वैधृति, बारह व्यतिपात, पन्द्रह महालय, पाँच अष्टका, पाँच अन्वष्टका और पाँच पूर्वेद्युः श्राद्धों से छयानबे श्राद्धों को जानना चाहिये ।

अथ दशावतारजयन्त्यः

चैत्रशुक्लतृतीयायामपराह्णे [3]मत्स्योत्पत्तिः । वैशाखपूर्णिमायां सायं कूर्मोत्पत्तिः । भाद्रपदशुक्लतृतीयायामपराह्णे वराहोत्पत्तिः । वैशाखशुक्लचतुर्दश्यां सायं नारसिंहावतारः । भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां मध्याह्ने वामनप्रादुर्भावः । वैशाखशुक्लतृतीयायां मध्याह्ने परशुरामोद्भवः । प्रदोषे इति बहवः । चैत्रशुक्लनवम्यां मध्याह्ने दाशरथिरामव्यक्तिः । श्रावणकृष्णाष्टम्यां निशीथे श्रीकृष्णाविर्भावः । आश्विनशुक्लदशम्यां सायं बुद्धोऽभूत् । श्रावणशुक्लषष्ठ्यां सायं कल्किजर्त इति तत्तत्कालव्यापिन्यो ग्राह्याः ।

---

१. स्मृतिचन्द्रिका में मलमास होने पर दोनों मास में मन्वादिश्राद्ध करने के लिये कहा—'मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च ।' इति ।

२. ऋग्वेदसंहिता के प्रथमाष्टक चतुर्थाध्याय में संपूर्ण मंत्र यों है—'त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः । विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा न किरन्यस्त्वावान् ॥' इति ।

३. पुराणसमुच्चय में दशावतार के जयन्तीनिर्णय के मूलवचन यों हैं—'मत्स्योऽभूद् हुतभुग्दिने मधुसिते कूर्मो विधौ माधवे वाराहो गिरिजासुते नभसि यद् भूते सिते माधवे । सिंहो भाद्रपदे सिते हरितिथौ श्रीवामनो माधवे रामो गौरितिथावतः परमभूद् रामो नवम्यां मधोः ॥ कृष्णोऽष्टम्यां नभसि सितपरे चाश्विने यद्दशम्यां बुद्धः कल्की नभसि समभूच्छुक्लषष्ठ्यां क्रमेण । अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे । कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे ॥' इति ।

चैत्रशुक्ल तृतीया अपराह्ण में मत्स्य भगवान् अवतीर्ण हुये। वैशाख पूर्णिमा में सायंकाल भगवान् कूर्म उत्पन्न हुये। भाद्रपदशुक्ल तृतीया अपराह्ण में वराह भगवान् का उद्भव हुआ। वैशाख शुक्लपक्ष चतुर्दशी सायंकाल में नरसिंह भगवान का अवतार हुआ। भाद्रपद शुक्ल द्वादशी मध्याह्न में वामन भगवान् की उत्पत्ति हुई। वैशाखशुक्ल तृतीया मध्याह्न में परशुराम भगवान् का अवतार हुआ। बहुत लोग प्रदोष में इनका जन्म कहते हैं। चैत्रशुक्ल नवमी मध्याह्न में दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र प्रकट हुये। श्रावण कृष्णाष्टमी आधी रात में भगवान् कृष्णचन्द्र का आविर्भाव हुआ। आश्विनशुक्ल दशमी में बुद्ध पैदा हुये। श्रावण शुक्ल षष्ठी सायंकाल कल्कि भगवान् का जन्म हुआ। इस प्रकार जिस काल में जिनका जन्म हुआ तत्कालव्यापिनी तिथियाँ उन उनके जयन्ती में ले।

अत्र मत्स्यकूर्मवराहबुद्धकल्कीनामाषाढादिमासान्तराणि एकादश्यादितिथ्यन्तराणि प्रातरादिकालान्तराणि च वचनान्तरानुसारेणोक्तानि कल्पभेदेन व्यवस्थापनीयानि स्वस्वपरिगृहीतपक्षानुसारेण तत्तदुपासकैरुपोष्याणि। श्रीरामकृष्णनृसिंहजयन्त्य एव नित्याः सर्वैरुपोष्याः।

यहाँ मत्स्य, कूर्म, वराह, बुद्ध और कल्कि भगवान् का जन्म-दिन आषाढ़ आदि दूसरे महीने, एकादशी आदि दूसरी तिथियाँ, प्रातः आदि काल दूसरे वचनों के अनुसार कहे हैं। इनकी व्यवस्था कल्पभेद से करें। अपने ग्रहण किये पक्ष के अनुसार उन-उन देवताओं के उपासक लोग उपवास करें। श्रीराम कृष्ण और नरसिंह की जयन्तियाँ ही नित्य हैं। अतः उस दिन सबको उपवास करना चाहिये।

अथ गणेशदमनकचतुर्थी

चैत्रशुक्लचतुर्थ्यां मध्याह्नव्यापिन्यां लड्डुकादिभिः श्रीगणेशमर्चयित्वा दमनकारोपणं कुर्यात्। विघ्ननाशं सर्वान्कामान्प्राप्नुयात्।

मध्याह्नव्यापिनी चैत्रशुक्ल चतुर्थी में लड्डुओं से श्री गणेश का पूजन कर दमनक चढ़ावे। ऐसा करने से सम्पूर्ण मनोरथ की सिद्धि और विघ्ननाश होता है।

अथ पञ्चम्यां व्रतानि

चैत्रशुक्लपञ्चम्यामनन्तादिनागान्पूजयित्वा क्षीरसर्पिर्नैवेद्यं दद्यात्। अस्यामेव पञ्चम्यां लक्ष्मीपूजनम्। अत्रैव चोच्चैःश्रवादिपूजनात्मकं हयव्रतमुक्तम्। अत्र सर्वत्र पञ्चमी सामान्यनिर्णयानुसारेण ग्राह्या। एवमग्रेऽपि यत्र विशेषनिर्णयो नोच्यते तत्र प्रथमपरिच्छेदोक्त एव निर्णयोऽनुसंधेयः। षष्ठ्यां स्कन्दस्य दमनकारोपणम्। सप्तम्यां भास्करस्य दमनकपूजा नवम्यां देव्याः सर्वदेवानां पौर्णमास्यामित्यन्यत्र विस्तरः।

चैत्रशुक्ल पञ्चमी में अनन्त प्रभृति नागों की पूजा करके नैवेद्य में दूध, घी देवे। इसी पञ्चमी में लक्ष्मी पूजन होता है। इसी दिन उच्चैःश्रवादि का पूजनात्मक हयव्रत कहा है। इन सब जगहों में सामान्य निर्णय के अनुसार पञ्चमी ग्राह्य है। इसी प्रकार आगे भी जहां विशेष निर्णय नहीं कहा गया है वहाँ प्रथमपरिच्छेद का कहा हुआ निर्णय ही समझना चाहिये। स्कन्द भगवान् को दमनक (दवना) चढ़ाना षष्ठी में, सूर्यनारायण का दवने से पूजन सप्तमी में और देवी का नवमी में करे। सब देवताओं का पूर्णिमा में दमनक से पूजन करना चाहिये। यह बात दूसरे ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक कहा है।

चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या[1] उत्पत्तिः । तत्र नवमीयुता ग्राह्या । अत्र पुनर्वसु-युताष्टम्याम् अष्टाशोककलिकाप्राशनम् । तत्र मन्त्रः—

त्वामशोकनराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।
पिबामि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥ इति ।

श्रीभवानी की उत्पत्ति चैत्रशुक्ल अष्टमी में है । उसमें नवमीयुक्त अष्टमी ग्राह्य है । इसमें पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त अष्टमी में आठ अशोक की कलियों का भक्षण करना चाहिये । उसके मन्त्र का अर्थ यह है—हे अशोक ! चैत्रमास में उत्पन्न होने वाले ! आपको शोक से सन्तप्त होकर, हे मनुष्यों के अभीष्ट सिद्धि देने वाले मुझे सर्वदा शोक रहित करें ।

अथ वाजपेयफलस्नानयोगः

अत्रैव योगविशेषे कृत्यम्—

पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी ।
प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥ इति ।

यहाँ पर योग विशेष होने से कृत्य कहते हैं—चैत्रमास के शुक्ल अष्टमी में पुनर्वसु नक्षत्र और बुधवार हो तो प्रातःकाल सविधि स्नान करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।

अथ रामनवमीनिर्णयः

चैत्रशुक्लनवमी [2]रामनवमी, चैत्रशुक्लनवम्यां पुनर्वसुयुतायां मध्याह्ने

---

१. चैत्रशुक्ल अष्टमी में दुर्गा की १०८ बार प्रदक्षिणा करने की विधि स्कन्दपुराण में है—'चैत्राष्टम्यां महायात्रां भवान्याः कारयेत् सुधीः । अष्टाधिकाः प्रकर्तव्याः शतकृत्वः प्रदक्षिणाः ॥ प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपवती मही । सशैला ससमुद्रा च साश्रमा च सकानना ॥ कुर्याज्जागरणं रात्रौ महाष्टम्यां व्रती नरः । प्रातर्भवानीमभ्यर्च्य प्राप्नुयाद् वाञ्छितं फलम् ॥' इति ।

काशीखण्ड में भवानी अन्नपूर्णा का दर्शन एवं यात्रा का वर्णन है—'भवानीं यश्च पश्येत्तु शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः । न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत् ॥' ब्रह्मवैवर्तके—'अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता ।' इस वचन से अष्टमी नवमीयुता होनी चाहिये । लिङ्गपुराण का वचन है कि अष्टमी में अशोककलिका का प्राशन करे—'अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ । चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः ॥' इति ।

कालिकापुराण में ब्रह्मपुत्रनद में स्नान का विधान कहा—'चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः । स्नायाल्लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ चैत्रं तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः । लौहित्यतोये यः स्नायात् स कैवल्यमवाप्नुयात् ॥' स्नानमन्त्रः—'ब्रह्मपुत्र महाभाग शन्तनोः कुलसम्भव । अमोघागर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर ॥' लौहित्य ब्रह्मपुत्र का नाम है । कालिकापुराण में—'लोहितात्सरसो जातो लौहित्याख्यस्ततोऽर्थवत् ।' इति ।

२. अगस्त्यसंहिता में भगवान् श्रीराम के जन्म का वर्णन—'चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ । उदये गुरुगौरांश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥ मेषं पूषणि सम्प्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये । आविरासीत् स कलया कौसल्यायां परः पुमान् ॥ तस्मिन् दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा । तत्र जागरणं कुर्याद् रघुनाथपरो भुवि ॥ प्रातर्दशम्यां कृत्वा तु सन्ध्याद्याः कालिकाः क्रियाः । सम्पूज्य विधिवद्रामं भक्त्या वित्तानुसारतः ॥ ब्राह्मणान् भोजयेद् हुत्वा दक्षिणाभिश्च तोषयेत् । रामभक्तान् प्रयत्नेन प्रीणयेत् परया मुदा ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम् । अनेकजन्मसिद्धानि पातकानि बृहन्त्यपि ॥ भस्मीकृत्य व्रजन्त्येव तद्विष्णोः परमं पदम् । सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनम् । यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते स च नराधमः ॥ कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ।" इति । विशिष्टपूजा अन्यत्र देखें ।

कर्कलग्ने मेषस्थे सूर्य उच्चस्थे ग्रहपञ्चके श्रीरामजन्मश्रवणात्। अस्यां मध्याह्नव्यापिन्यामुपोषणं कार्यम्। पूर्वेद्युरेव मध्याह्ने सत्त्वे सैव ग्राह्या। दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ वा परा, [1]अष्टमीविद्धाया निषेधात्। अतः पूर्वेद्युः सकलमध्याह्नव्यापिनीमपि त्यक्त्वा मध्याह्नैकदेशव्यापिन्यपि परैव ग्राह्या।

चैत्रशुक्ल नवमी में रामनवमी होती है, पुनर्वसुनक्षत्र युक्त चैत्रशुक्ल नवमी के मध्याह्न कर्कलग्न और मेष के सूर्य में उच्च के पांच ग्रह के होने पर श्रीरामचन्द्र के जन्म श्रवण से। इसी मध्याह्नव्यापिनी नवमी में उपवास करना चाहिये। पहले ही दिन मध्याह्न में यदि नवमी हो तो उसी का ग्रहण करे। दो दिन में मध्याह्नव्यापिनी नवमी हो अथवा दोनों दिन मध्याह्न में नवमी न हो तो अष्टमी विद्धा के निषेध के कारण परा नवमी लेनी चाहिये। इसलिये पहले दिन सम्पूर्ण मध्याह्नव्यापिनी नवमी को छोड़कर मध्याह्न के एकदेश में रहने वाली परा नवमी ग्राह्य है।

केचित्त्वष्टमीविद्धां मध्याह्नव्यापिनीं पुनर्वसुयुतामपि त्यक्त्वा परेद्युस्त्रिमुहूर्तापि नवमी सर्वैरप्युपोष्या। यदि तु दशम्या ह्रासवशेन पारणादिने स्मार्तानामेकादशीव्रतप्राप्तिस्तदा स्मार्तैरष्टमीविद्धोपोष्या, वैष्णवैर्मुहूर्तत्रययुता परैवोपोष्या। शुद्धाया नवम्या अलाभे मुहूर्तत्रयन्यूनत्वे वा सर्वैरपि अष्टमीविद्धैवोपोष्येत्याहुः। इदं व्रतं नित्यं काम्यं च।

कोई तो अष्टमीविद्धा मध्याह्नव्यापिनी पुनर्वसुनक्षत्रयुक्ता को भी छोड़कर दूसरे दिन त्रिमुहूर्ता भी नवमी सब लोगों के उपवासयोग्या है। यदि दशमी के क्षीण होने से पारणा के दिन स्मार्तों की एकादशी पड़ती हो तो स्मार्तों को अष्टमीविद्धा में ही उपवास करना चाहिये। वैष्णवों को तीन मुहूर्त युक्त परा नवमी में उपवास करना चाहिये। शुद्धा नवमी के न मिलने पर या तीन मुहूर्त से कम होने पर सबको अष्टमीविद्धा में ही उपवास करना चाहिये, ऐसा कहते हैं। यह व्रत नित्य और काम्य भी है।

अथ व्रतप्रयोगः

अष्टम्यामाचार्यं संपूज्य—

श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम।
तत्राचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोसि त्वमेव मे॥ इति प्रार्थ्य,
नवम्या अङ्गभूतेन एकभक्तेन राघव।
इक्ष्वाकुवंशतिलक प्रीतो भव भवप्रिय॥

इत्येकभक्तं संकल्प्य साचार्यो हविष्यं भुञ्जीत। पूजामण्डपं तत्र वेदिं च कृत्वा नवम्यां प्रातः—

उपोष्य नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव।
तेन प्रीतो भव त्वं मे संसारात् त्राहि मां हरे॥ इत्युपोषणं संकल्प्य,

---

१. अगस्त्यसंहितायाम्—'नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः। उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम्॥' इति।

अष्टमी के दिन आचार्य की पूजा करके आचार्य से प्रार्थना करे-'हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! मैं श्रीरामचन्द्र की प्रतिमा का दान करूँगा, उसमें आप प्रसन्नतापूर्वक आचार्य हों। मेरे आप ही श्रीराम हैं।' ऐसी प्रार्थना कर, नवमी के अङ्ग एकभक्त से 'हे इक्ष्वाकुवंशतिलक ! हे संसार के प्रिय रामचन्द्र ! आप प्रसन्न हों' इस प्रकार एकभक्त का सङ्कल्प करके, आचार्य के सहित अष्टमी हविष्य का भोजन करे। पूजा के मण्डप में वेदी बनाकर नवमी के प्रातःकाल—'हे राघवेन्द्र ! आज किये हुये आठों प्रहर के उपवासव्रत से मेरे ऊपर प्रसन्न हों तथा संसार से मेरी रक्षा करें' इस प्रकार उपवास का संकल्प करके।

इमां स्वर्णमयीं राम प्रतिमां स्वां प्रयत्नतः ।
श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते ॥

इति प्रतिमादानं संकल्पयेत्। 'श्रीरामनवमीव्रताङ्गभूतां षोडशोपचारैः श्रीरामपूजां करिष्ये, इति संकल्प्य वेदिकायां सर्वतोभद्रे कलशं संस्थाप्य तत्र पूर्णपात्रे सवस्त्रेऽग्न्युत्तारणादिविधिना प्रतिमायां श्रीरामं प्रतिष्ठाप्य पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य पूजान्ते—

रामस्य जननी चासि रामात्मकमिदं जगत्।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोस्तु ते ॥

इति कौसल्यां संपूज्य 'ॐ नमो दशरथाय' इति दशरथं संपूज्य सर्वपूजां समाप्य मध्याह्ने फलपुष्पजलादिपूर्णेन शङ्खेनार्घ्यं दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।
दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥ इति ।

'इस सोने की राम प्रतिमा को राम की प्रसन्नता के लिये बुद्धिमान् राम भक्त को दूँगा' ऐसा कहकर, राम की मूर्तिके दान का संकल्प करे—'श्रीरामनवमी व्रतकी अङ्गस्वरूप श्रीरामकी पूजा सोलहों उपचारों से करूँगा' ऐसा संकल्पकर सर्वतोभद्रवेदी पर कलश की स्थापना करे। उसमें वस्त्रसहित पूर्ण पात्रमें अग्न्युत्तारण विधि से प्रतिमा में श्रीराम की प्रतिष्ठा करके पुरुषसूक्त की मंत्रों से षोडशोपचारों से अच्छी तरह पूजा करके पुष्पपूजा के अन्त में यह कहे कि-'यह संसार राममय है और आप रामकी माता हैं इसीलिये मैं आप की पूजा करूँगा। हे संसार की माँ कौसल्या जी आपको नमस्कार है' इस मन्त्र से कौसल्या की अच्छी तरह पूजा कर 'ओं नमो दशरथाय' यह कहकर दशरथ की पूजा कर, सब पूजा समाप्त करके मध्याह्न में फल पुष्प जलादि से पूर्ण शंख से अर्घ्य देवे। अर्घ्य देने में यह मन्त्र कहे—'रावण को मारने के लिये, धर्म की स्थापना के लिये, दानवों के विनाश के लिये तथा दैत्यों को मारने के लिये और साधुओं के रक्षार्थ स्वयं विष्णु राम रूप से उत्पन्न हुये। ऐसे आप भाइयों के सहित मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण करें।'

रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्नित्यपूजां विधाय मूलमन्त्रेण पायसाष्टोत्तरशताहुतीर्हुत्वा पूजां विसृज्याचार्याय प्रतिमां दद्यात्—

इमां स्वर्णमयीं राम प्रतिमां समलंकृताम् ।
शुचिवस्त्रयुगच्छन्नां रामोऽहं राघवाय ते ॥

श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः । इति मन्त्रः ।
तव प्रसादं स्वीकृत्य क्रियते पारणा मया ।
व्रतेनानेन संतुष्टः स्वामिन् भक्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति प्रार्थ्य नवम्यन्ते पारणां कुर्यात् । इदं व्रतं मलमासे न कार्यम् । एवं जन्माष्टम्यादिव्रतमपि न कार्यम् । अस्यामेव [1]नवम्यां देवीनवरात्रसमाप्तिः कार्या । एतन्निर्णय [2]आश्विनवरात्रनवमीवत् ।

रात्रि-जागरण करके प्रातःकाल मूलमन्त्र से नित्य पूजा करके खीर की १०८ आहुति का हवन कर पूजा का विसर्जन करके आचार्य को श्रीराम-प्रतिमा इस मंत्र से दे देवे—'इस सोने की पूर्ण अलंकृत राम-प्रतिमा शुद्ध दो वस्त्रों से ढकी हुई को श्रीराम की प्रसन्नता के लिये स्वयं रामरूप मैं राघवस्वरूप आप (आचार्य) को दूंगा, इससे रामचन्द्र प्रसन्न हों आपके प्रसाद को स्वीकार कर मैं पारणा करता हूँ । हे नाथ ! इस व्रत से प्रसन्न होकर अपनी भक्ति मुझे दो' ऐसी प्रार्थना करके नवमी के अन्त में पारण करे । इस व्रत को मलमास में नहीं करना चाहिये । इसी तरह से जन्माष्टमी आदि व्रत भी मलमास में नहीं करे । इस नवमी में देवी नवरात्र की समाप्ति करनी चाहिये । इसका निर्णय आश्विन के नवरात्र की नवमी की तरह है ।

अथ श्रीकृष्णान्दोलनोत्सवः

चैत्रशुक्लैकादश्यां श्रीकृष्णस्यान्दोलनोत्सवः[3]—

दोलारूढं प्रपश्यन्ति कृष्णं कलिमलापहम् ।
अपराधसहस्रैस्तु मुक्तास्ते धूनने कृते ॥
तावत्तिष्ठन्ति पापानि जन्मकोटिकृतान्यपि ।
क्रीडन्ते विष्णुना सार्धं वैकुण्ठे देवपूजिताः ॥

इत्यादिकस्तन्महिमा चैत्रशुक्लद्वादश्यां विष्णोर्दमनोत्सवः[4] । स च पारणाहे ।

पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकापि चेत् ।
तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे ॥ इत्युक्तेः ।

शिवस्य[5] तु चतुर्दश्यां कार्यः ।

---

१. देवीपुराण के—'आश्विने वाऽथवा माघे चैत्रे वा श्रावणेऽपि वा' इस वचन से इन चार मास में नवरात्रव्रत कर्तव्य है इसलिये चैत्र नवरात्र नवमी में भी भगवती की पूजा आदि सभी कार्य आश्विन नवरात्र की तरह करें । ब्रह्मपुराणे—'चैत्रशुक्लनवम्यां च भद्रकाली महाबला । योगिनीनां तु सर्वासामाधिपत्ये विनिश्चिता ॥ तस्मात्तां पूजयेत्तत्र सोपवासो जितेन्द्रियः । विचित्रैर्बलिभिर्भक्त्या सर्वासु नवमीषु च ॥' इति ।

२. मार्कण्डेयपुराणे—'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी । वसन्तकाले सा प्रोक्ता कार्या सर्वैः शुभार्थिभिः ॥' इति ।

३. ब्राह्म में दोलोत्सव—'चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः । आन्दोलनीयो देवेश सलक्ष्मीको महोत्सवैः ॥' इति ।

४. 'दवना' इस नाम की प्रसिद्ध वनौषधि । ५. श्रीशिवस्य दमनोत्सवश्चतुर्दश्यां विधेय इत्यर्थः ।

चैत्रशुक्ल एकादशी में श्रीकृष्ण भगवान् के झूले का उत्सव होता है। झूले पर चढ़े हुए कलिमलापहारी श्रीकृष्ण भगवान् को जो देखते हैं तथा झूलाते है वे हजारों अपराधों से छूट जाते हैं। करोड़ों जन्म के किये पाप तभी तक रहते हैं जब तक झूले पर चढ़े हुए भगवान् को नहीं देखते और वैकुण्ठ में देवताओं से पूजित होते हुए भगवान् विष्णु के साथ क्रीड़ा करते हैं। इत्यादि उसका माहात्म्य कहा गया है। चैत्रशुक्ल द्वादशी में विष्णु भगवान् का दमनोत्सव होता है, वह भी पारणा के दिन। पारणा के दिन यदि द्वादशी घड़ी भर भी न मिले तभी पवित्रार्पण तथा दमनार्पण के लिये त्रयोदशी ग्राह्य है। शिव जी का दमनोत्सव तो चतुर्दशी में करना चाहिये।

अथ दमनारोपणप्रयोगः

उपवासदिने नित्यपूजां कृत्वा दमनकस्थानं गत्वा क्रयेण तमादाय चन्दनादिना संपूज्य 'श्रीकृष्णपूजार्थं त्वां नेष्ये' इति प्रार्थ्य प्रणमेत्। अन्यदेवतासु यथादैवतमूहः। ततो दमनकं गृहमानीय पञ्चगव्येन शुद्धोदकेन च प्रक्षाल्य देवाग्रे स्थापयित्वा तस्मिन् दमनके अशोककालवसन्तकामान् काममात्रं वा गन्धादिभिः पूजयेत्। तत्र—

नमोस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते ॥ इति कामावाहनमन्त्रः।
कामभस्मसमुद्भूत रतिबाष्पपरिप्लुत।
ऋषिगन्धर्वदेवादिविमोहक नमोस्तुते ॥

इति दमनकमुपस्थाय 'ॐ कामाय नम' इति मन्त्रेण सपरिवाराय कामरूपिणे दमनकाय गन्धाद्युपचारान् दद्यात्।

उपवास के दिन नित्य पूजा करके दवने की जगह जाकर या खरीद कर उसे लाकर चन्दन आदि से पूजा करके 'श्रीकृष्ण की पूजा के लिये तुमको ले चलते हैं' ऐसी प्रार्थना कर दवने को प्रणाम करे। अन्य देवताओं को चढ़ाना हो तो उनके नाम की कल्पना करे। इसके बाद दवने को घर लाकर पञ्चगव्य और शुद्धजल से धोकर, देवता के आगे रखकर, उसी दवने में अशोक, काल, वसन्त, कामदेव या केवल कामदेव का गन्ध आदि से पूजन करे। काम के आवाहन का—'नमोऽस्तु पुष्पबाणाय' इत्यादि मन्त्र है। 'कामभस्म समुद्भूत' इस मन्त्र से दमनकका उपस्थान करके 'ओं कामाय नमः' इस मन्त्र से सपरिवार कामरूपी दवने को गन्धादि उपचार देवे।

ततो रात्रौ देवं संपूज्याधिवासनं कुर्यात्। तदित्थम्—देवाग्रे सर्वतोभद्रं संपाद्य तत्र कलशं संस्थाप्य तत्र धौतवस्त्राच्छन्नं दमनकं वैणवपटले स्थापितं निधाय—

पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः।
दमन त्वमिहागच्छ सांनिध्यं कुरु ते नमः ॥

इति दमनकदेवतामावाह्य प्रागाद्यष्टदिक्षु क्लीं कामदेवाय नमो ह्रीं रत्यै नमः १ क्लीं भस्मशरीराय नमो ह्रीं रत्यैनमः २ क्लीं अनङ्गाय नमो ह्रीं रत्यै० ३ क्लीं मन्मथाय नमो ह्रीं रत्यै० ४ क्लीं वसन्तसखाय नमो ह्रीं रत्यै० ५ क्लीं स्म-

राय नमो ह्रीं रत्यै० ६ क्लीं इक्षुचापाय नमो ह्रीं रत्यै० ७ क्लीं पुष्पबाणास्त्राय नमो ह्रीं रत्यै० ८ इति पूजयेत्। तत्पुरुषाय विद्महे कामदेवाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्। इति गायत्र्या दमनकमष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य गन्धादिभिः संपूज्य ह्रीं नम इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा 'नमोस्तु पुष्पबाणाय' इति पूर्वोक्तावाहन-मन्त्रेण नमेत्।

उसके बाद रात में देवता की पूजा करके अधिवासन करे। वह इस तरह करे–देवताके आगे सर्वतोभद्र बनाकर, उस पर कलशस्थापित करके उसपर धुले हुए वस्त्र से ढके और बाँस के पत्ते पर रखे हुये दवने को रख कर 'देवदेव लक्ष्मीपति प्रभु विष्णु के सन्निधि में हे दमनक! तुम यहाँ आओ तुमको नमस्कार है।' इससे दमनक देवता का आवाहन करके पूर्व आदि आठ दिशाओं में 'क्लीं कामदेवाय नमो ह्रीं रत्यै नमः' इत्यादि मूल में उल्लिखित इन आठ मन्त्रों से पूजा करे। 'तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि गायत्री से दमनक को १०८ बार अभिमन्त्रित करके और गन्धादि से पूजन कर 'ह्रीं नमः' इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर 'नमोऽस्तु पुष्पबाणाय' पूर्वोक्त इस आवाहन मन्त्र से प्रणाम करे।

क्षीरोदधिमहानाग शय्याऽवस्थितविग्रह।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः॥

इति देवं प्रार्थ्य पुष्पाञ्जलिं दत्वा तस्यामेकादश्यां रात्रौ जागरणं कुर्यात्। प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा पुनर्देवं संपूज्य दूर्वागन्धाक्षतयुतां दमनकमञ्जरीमादाय मूलमन्त्रं पठित्वा।

देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक।
हृत्स्थान्पूरय मे विष्णो कामान् कामेश्वरीप्रिय॥
इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात्।
इमां सांवत्सरीपूजां भगवन्परिपूरय॥

'क्षीरोदधि' इत्यादि मन्त्र से देवता की प्रार्थना करके पुष्पाञ्जलि देकर, उस एकादशी की रात में जागरण करे। प्रातःकाल नित्यपूजा करके फिर देवता की पूजा कर दूब, गन्ध और अक्षत से युक्त दमनक की मञ्जरी को लेकर मूलमन्त्र पढ़ कर 'देव देव जगन्नाथ' इत्यादि श्लोकों को पढ़े।

पुनर्मूलं जप्त्वा देवे दमनमर्पयेत्। ततो यथाशोभं दत्त्वाऽङ्गदेवताभ्यो देवं प्रार्थयेत्—

मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः।
इयं सांवत्सरीपूजा तवास्तु गरुडध्वज॥
वनमालां यथादेव कौस्तुभं सततं हृदि।
तद्वद्दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह॥
जानताऽजानता वापि न कृतं यत्तवार्चनम्।
तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते॥

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनमित्यादि च संप्रार्थ्य पञ्चोपचारैर्देवं संपूज्य नीराज्य ब्राह्मणेभ्यो दमनं दत्त्वा स्वयं शेषं संधार्य सुहृद्युतः पारणां कुर्यात् ।

पुनः मूलमन्त्र का जप करके देवता पर दमनक का अर्पण करे । तदनन्तर शोभानुसार अङ्ग-देवताओं को देकर प्रार्थना करे—'मणि मूंगा की मालाओं और मन्दार के पुष्पों से हे गरुडध्वज ! यह वार्षिकी पूजा आप की हो । हे देव ! जैसे आप वनमाला और कौस्तुभमणि को निरन्तर हृदय में धारण करते हैं उसी प्रकार दवने की माला और पूजा को हृदय में रखें । हे रमापते ! मैंने जानकर या बिना जाने आप का पूजन नहीं किया हो वह सब आप की प्रसन्नता से पूर्ण हो । हे पुण्डरीकाक्ष ! आप की जय हो । हे विश्वभावन ! आप को नमस्कार है । हे महापुरुष ! हे पूर्वज ! हे हृषीकेश ! आप को नमस्कार है ।' इससे तथा 'मंत्रहीनं क्रियाहीनम्' इत्यादि मन्त्र से प्रार्थना कर पञ्चोपचार से देवता की पूजा कर आरती उतार ब्राह्मणों को दमनक देकर बचे हुये दमनक को मित्रों से युक्त स्वयं धारण कर पारण करे ।

मन्त्रदीक्षारहितैर्नाम्नाऽर्पणीयम् । अस्य गौणकालः श्रावणमासावधिः । नेदं मलमासे भवति । [1]शुक्रास्तादौ तु कर्तव्यम् । इति दमनारोपणविधिः ।

अस्यामेव भारते—

अहोरात्रेण द्वादश्यां चैत्रे विष्णुरिति स्मरन् ।
पौण्डरीकमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति ॥ इति ।

मन्त्रदीक्षा से रहित लोगों को नाम से अर्पण करना चाहिये । इसका गौण-समय श्रावण-मास तक है । यह मलमास में नहीं होता । शुक्रास्त आदि में तो करना चाहिये । इसी में भारत में—'चैत्र द्वादशी में दिनरात विष्णु का स्मरण करते हुये विष्णु को पाता है और देव लोक को जाता है ।'

अथ अनङ्गपूजनव्रतम्

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां अनङ्गपूजनव्रतम् । तत्र त्रयोदशी पूर्वविद्धा ग्राह्या ।

इसी प्रकार चैत्रशुक्ल त्रयोदशी में अनङ्गपूजनव्रत होता है । उसमें पूर्वविद्धा त्रयोदशी ग्राह्य है ।

अथ नृसिंहदोलोत्सवः

अथ चतुर्दश्यां नृसिंहस्य दोलोत्सवः । अत्रैव श्रीशिवस्यैकवीराया भैरवस्य च दमनकैः पूजनम् । अत्र च चतुर्दशी पूर्वविद्धाऽपराह्णव्यापिनी ग्राह्या । अपराह्णव्याप्त्यभावेऽपराह्णस्पर्शिन्यपि पूर्वा ग्राह्या । तदभावे परा ग्राह्या । चैत्रपौर्णमासी सामान्यनिर्णयात्परा ग्राह्या । पूर्वोक्ततत्तत्तिथौ दमनकपूजनाकरणेऽस्यामेव सर्वदेवानां दमनपूजनम् । चैत्र्यां चित्रायुतायां चित्रवस्त्रदानं सौभाग्यदम् । रविगुरुमन्दवारयुतचैत्र्यां स्नानश्राद्धादिभिरश्वमेधपुण्यम् ।

---

१. ज्योतिर्निबन्ध में वृद्धगार्ग्य—'उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् । ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्तनम् । कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येऽपीति विनिश्चयः ॥' इति ।

चतुर्दशी में नृसिंह का झूलोत्सव होता है। इसीमें श्रीशिव की एकवीरा और भैरव की दमनक से पूजा होती है। इसमें चतुर्दशी अपराह्णव्यापिनी पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। अपराह्ण में न मिलने पर अपराह्ण को स्पर्श करने वाली भी पूर्वा ग्राह्य है। अन्यथा परा लेनी चाहिये। चैत्र की पूर्णिमा सामान्यनिर्णय से परा ग्राह्य है। पहले कही हुई उन-उन तिथियों में दमनक की पूजा न करने पर इसी चैत्रपूर्णिमा में सभी देवताओं की पूजा दमनक से होती है। चित्रानक्षत्र युक्त चैत्र की पूर्णिमा में चितकबरे वस्त्र का दान सौभाग्यदायक होता है। रवि, गुरु और शनिवार युक्त चैत्रपूर्णिमा में स्नान श्राद्धादि करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल होता है।

अथ वैशाखस्नानविधिः

चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वा [१]मेषसंक्रान्तिमारभ्य वा वैशाखस्नानारम्भः। तत्र मन्त्रः—

वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः।
प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः॥
मधुहन्तुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात्।
निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम्॥
माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन।
प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन्॥ इति।

अत्र हविष्याशनब्रह्मचर्यादयो नियमाः। एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्रयोदश्यादिदिनत्रयमन्ते स्नायात्। इयं पौर्णमासी मन्वादिः पूर्वमुक्ता।

वैशाख स्नान का प्रारम्भ चैत्रशुक्ल एकादशी, पूर्णिमा अथवा मेष-संक्रान्ति से होता है। स्नान का मन्त्रार्थ यह है—'सम्पूर्ण वैशाखमास जिसमें मेष की संक्रान्ति हो, नियम के सहित प्रातः स्नान करूँगा इससे मधुसूदन भगवान् प्रसन्न हों। मधुसूदन भगवान के प्रसाद से ब्राह्मणों की दया से मेरा प्रतिदिन वैशाखस्नान का पुण्य निर्विघ्न हो। हे पापहन्ता! हे मुरारे! मेषगत सूर्य में प्रातःस्नान से हे नाथ! आप फल देने वाले हों। इसमें हविष्य-भोजन और ब्रह्मचर्य आदि नियम हैं। इसीप्रकार सम्पूर्ण वैशाख-स्नान में असमर्थ पुरुष वैशाखशुक्ल त्रयोदशी से पूर्णिमापर्यन्त स्नान करे। यह पूर्णिमा मन्वादि है, यह पहले कह चुके हैं।

अथ वारुणीयोगः

चैत्रकृष्णत्रयोदशी शततारकानक्षत्रयुता [२]वारुणीसंज्ञका स्नानादिना ग्रहणादि-

---

१. इस विकल्प के वचन पद्मपुराण में—'मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः। पञ्चदश्यां च भो वीर मेषसंक्रमणे तु वा। वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया। मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात् संकल्पपूर्वकम्॥' इति।

२. स्कान्द में वारुणी-महावारुणी-महामहावारुणी का योग—'वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी। गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा॥ शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता। गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा॥ शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि। महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत्॥' इति।

पर्वतुल्यफलदा। शनिवारयुक्ता महावारुणी। शुभयोगशनिवारशततारकायुक्ता महामहावारुणी। वारुणीयोगे कृष्णादिः पौर्णमास्यन्तो मासस्तेनामान्तमासे फाल्गुनकृष्णत्रयोदशी ग्राह्येति बोध्यम्। चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां [1]शिवसन्निधौ स्नानेन भौमवारयुतायां गङ्गायां स्नानेन पिशाचत्वाभावः फलम्। इति चैत्रमासकृत्य-निर्णयोद्देशः।

चैत्रकृष्ण त्रयोदशी में शतभिषानक्षत्र के योग से वारुणी नाम है। इसमें स्नान करने से ग्रहणादि पर्व के समान फल होता है। इसमें शनिवार के योग होने से महावारुणी, शुभयोग शनिवार और शतभिषा के साथ हो तो महामहावारुणी कहलाती है। इस योग में कृष्णपक्ष से पौर्ण-मासी पर्यन्त मास है। इससे अमावास्यान्त मास में फाल्गुनकृष्ण त्रयोदशी ग्राह्य है, ऐसा जानना चाहिये। चैत्रकृष्णपक्ष की चतुर्दशी भौमवार से युक्त हो तो शङ्कर की सन्निधि में गङ्गास्नान से पिशाचत्व से निवृत्ति होना फल है। चैत्रमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ वैशाखकृत्ये वृषसंक्रान्तिः

अत्र वृषसंक्रमे पूर्वाः षोडशनाडिकाः पुण्यकालः। रात्रौ च प्रागुक्तम्। अत्र प्रातःस्नानं[2] तिलैः पितृतर्पणं धर्मघटदानं च कार्यम्।

वैशाख में वृष संक्रान्ति के होने पर पहली सोलह घड़ियाँ पुण्यकाल है। रात्रि में संक्रान्ति का पुण्यकाल पहले कह चुके हैं। इसमें प्रातःस्नान, तिलों से पितरों का तर्पण और धर्मघट का दान करना चाहिये।

अथ वसन्तपूजनम्

अत्र ब्राह्मणानां गन्धमाल्यपानककदलीफलादिभिर्वसन्तपूजा कार्या।

इसमें ब्राह्मणों की गन्ध, पेय और केले के फलों से वसन्तपूजा करनी चाहिये।

अथ विष्णुजलाधिवासविधिः

वैशाखे ज्येष्ठे वा यत्र मासे ऊष्मबाहुल्यं तत्र प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा गन्धोद-कपूर्णे पात्रे विष्णुं संस्थाप्य पञ्चोपचारैः संपूज्य तत्रैव जले सूर्यास्तपर्यन्तमधि-वास्य रात्रौ स्वस्थाने स्थापयित्वा पञ्चोपचारैः पूजयेत्तेन तीर्थोदकेन गृहदारा-दियुतमात्मानं पावयेत्। एतच्च द्वादश्यां दिवा न कार्यम्। रात्रौ किंचित्कालं जलस्थं पूजयित्वा स्वस्थाने स्थापयेत्।

वैशाख या ज्येष्ठ में जब गर्मी अधिक पड़े तो उसमें प्रातः नित्यपूजा करके गन्धजल से पूर्ण-

---

महाभारत में वारुणीयोग को दिन में ही प्रशस्त बतलाया इसलिये उसका स्नान रात्रि में न करे—'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन।' इति।

१. पुलस्त्यः—'चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ। न प्रेतत्वमवाप्नोति गङ्गायां तु विशेषतः॥' इति।

२. पद्मपुराण में वैशाखस्नान के लिये विशेष तीर्थ—'मेषसंक्रमणे भानोर्माधवे मासि यत्नतः। महानद्यां नदीतीर्थे नदे सरसि निर्झरे॥ देवखातेऽथवा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये। दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन्॥' इति।

पात्र में विष्णु को रख कर पञ्चोपचार से पूजन कर उसी जल में सूर्यास्त तक अधिवासन करे। उसके बाद रात में विष्णुदेव को अपने स्थान पर रख कर पञ्चोपचार से पूजा करे। उस तीर्थजल से घर, पत्नी आदि से युक्त अपने को पवित्र करे। यह अधिवासन द्वादशी के दिन में न करे। रात में कुछ समय जल में स्थित भगवान् का पूजन कर अपने स्थान में स्थापित करे।

अथ तुलसीभिः पूजने मुक्तिः

अत्र मासे [1]कृष्णगौराख्यतुलसीभिर्विष्णुं त्रिकालमर्चयेन्मुक्तिः फलम्।

इस वैशाख मास में काली और गौर तुलसी से तीनों काल विष्णु की पूजा करे। उस का फल मुक्ति है।

अथ अश्वत्थमूलसिञ्चनम्

प्रातः स्नात्वा बहुतोयेनाश्वत्थमूलं सिञ्चेत् प्रदक्षिणाश्च कुर्यात्। अनेककुलतारणं फलम्। एवं गवां कण्डूयनेऽपि।

प्रातःस्नान करके अधिक जल से पीपल की जड़ों को सींचे और प्रदक्षिणायें करे। इसका फल अनेक कुल का तर जाना है। उसी तरह गाय के खुजलाने में भी जानना चाहिये।

अथ मासव्रतम्

अत्र मासे एकभक्तं नक्तमयाचितं वा सर्वेप्सितफलप्रदम्।

इस मास में एकभक्त नक्तव्रत या अयाचित भोजन से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्धिरूप-फल की प्राप्ति होती है।

अथ प्रपादानादि

अत्र मासे [2]प्रपादानं देवे गलन्तिकाबन्धनं व्यजनच्छत्रोपानच्चन्दनादिदानं महाफलम्।

इस महीने में प्रपादान और देवता को गलन्तिका, जलधारा तथा पंखा, छाता, जूता और चन्दन आदि के दान देने से बड़ा फल होता है।

---

१. वैशाखमास में तुलसी का पूजन, अश्वत्थमूल का सिञ्चन और गोकण्डूयन का महत्त्व पद्मपुराण में यों है—'तुलसी कृष्णगौराख्या तयाऽभ्यर्च्य मधुद्विषम्। विशेषेण तु वैशाखे नरो नारायणो भवेत्॥ माधवं सकलं मासं तुलस्या योऽर्चयेन्नरः। त्रिसन्ध्यं मधुहन्तारं नास्ति तस्य पुनर्भवः॥ प्रातः स्नात्वा विधानेन माधवं माधवप्रियम्। योऽश्वत्थमूलमासिञ्चेत्तोयेन बहुना सदा॥ कुर्यात् प्रदक्षिणं तं तु सर्वदेवमयं ततः। पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत् स चराचरम्॥ योऽश्वत्थमर्चयेद्देवमुदकेन समन्ततः। कुलानामयुतं तेन तारितं स्यान्न संशयः॥ कण्डूय पृष्ठतो गां तु स्नात्वा पिप्पलतर्पणम्। कृत्वा गोविन्दमभ्यर्च्य न दुर्गतिमवाप्नुयात्॥' इति।

२. इन देय द्रव्यों के सम्बन्ध में स्कन्दपुराण के मूलवचन—'प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलन्तिका। उपानद्व्यजनच्छत्रसूक्ष्मवासांसि चन्दनम्॥ जलपात्राणि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च। पानकानि च चित्राणि द्राक्षारम्भाफलान्यपि॥' इति। तिथितत्त्वे—'ददाति यो हि मेषादौ सक्तूनम्बुघटान्वितान्। पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥' इति। प्रपा—पौसला। गलन्तिका–गलति जलं यस्याः सा, निरन्तर जल गिरने के लिये छिद्रयुक्त ताम्र मृन्मयादि का घड़ा, जो शिवलिंग के ऊपर त्रिपदिका आदि आधार पर स्थापित किये जाते हैं। तथा—'वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विजन्मने। ददाति सुरराजेन्द्र स याति परमां गतिम्। मेषादौ सक्तवो देया वारिपूर्णा च गर्गरी॥' उपर्युक्त देय द्रव्यों के दानमन्त्र दानसंग्रह आदि ग्रन्थों में देखें।

अथ वैशाखस्य मलमासे मासद्वयं स्नानादि

यदा वैशाखो [1]मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मास-द्वयं वैशाखस्नानहविष्याशनादिनियमा अनुष्ठेयाः । चान्द्रायणादिकं तु मलेऽपि समापनीयम् ।

जब वैशाख मलमास हो तो उसमें काम्य कर्मों की समाप्ति के निषेध से दोनों महीनों में प्रातःस्नान हविष्य-भोजन आदि नियम का पालन करे । चान्द्रायण आदि व्रतों का तो समापन मलमास में भी करना चाहिये ।

अथ तृतीयायां यवहोमादि चन्दनपूजा च

वैशाखशुक्लतृतीयायां गङ्गास्नानं यवहोमो यवदानं यवाशनं च सर्वपापहम् ।

यः करोति तृतीयायां कृष्णं चन्दनभूषितम् ।
वैशाखस्य सिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम् ॥

वैशाखशुक्ल तृतीया में गङ्गास्नान, यव से होम, यव का दान, स्वयं यव का खाना, सम्पूर्ण पापों का नाश करता है । 'जो वैशाख शुक्लपक्ष की तृतीया में भगवान् कृष्ण को चन्दन से अलंकृत करता है, वह वैकुण्ठ जाता है ।'

अथ अक्षय्यतृतीया

इयं [2]अक्षय्यतृतीयासंज्ञिका । अस्यां यत्किञ्चिज्जपहोमपितृतर्पणदानादि क्रियते

कृत्यचिन्तामणि में मसूर निम्बपत्र-भक्षण की महत्ता—'मसूरं निम्बपत्रं च योऽत्ति मेषगते रवौ । अपि रोषान्वितस्तस्य तक्षकः किं करिष्यति ॥' इति ।

१. वैशाख में मलमास हो तो 'वृषादित्ये न कारयेत्' इस निषेधक वचन के अनुसार वृष के सूर्य में रविव्रत के निषेध होने से मलमास में ही रवि का व्रत करना चाहिये । क्योंकि शुद्ध वैशाख शुक्लपक्ष में वृष के सूर्य होना संभव है ।

२. नारदीय में अक्षयतृतीया के योग का वर्णन—'वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणी युता । दुर्लभा बुधवारेण सोमेनापि युता तथा ॥ रोहिणी बुधयुक्ताऽपि पूर्वविद्धा विवर्जिता । भक्त्या कृताऽपि मान्धातः पुण्यं हन्ति पुराकृतम् ॥ गौरी विनायकोपेता रोहिणीबुधसंयुता । विनाऽपि रोहिणी योगात् पुण्यकोटिप्रदा सदा ॥' इति ।

गोभिल ने पूर्वविद्धा का दोष बतलाया—'वैशाखस्य तृतीयां तु पूर्वविद्धां करोति यः । हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥' ब्रह्मवैवर्त में चतुर्थीविद्धा को प्रशस्त बतलाया—'रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम । अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ॥' इति ।

चतुर्थीयुता तृतीया के न मिलने पर पूर्वविद्धा (द्वितीया से युत) ही ग्राह्य है । ब्रह्मवैवर्त—'एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी । पूर्वविद्धाऽपि कर्तव्या यदि न स्यात् परेऽहनि ॥' इति । इसकी अन्य तिथियों की युगादिसंज्ञा रत्नमाला में—'माघे पंचदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी । तृतीया माधवे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः ॥' इति ।

ऋष्यश्रृंग ने वैशाख के मलमास होने पर मलमास में ही युगादि करने के लिये कहा—'दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः ॥' इति ।

तत्सर्वमक्षयम् । इयं रोहिणीबुधयोगे महापुण्या । अस्यां जपहोमादिकृत्येऽपि वक्ष्यमाणयुगादिवन्निर्णयः । इयं कृतयुगस्यादिः ।

यह तृतीया अक्षयतृतीया है । इसमें जो कुछ जप, होम, पितृतर्पण, दान आदि करता है, वह सब नष्ट नहीं होता । यह रोहिणीनक्षत्र और बुधवार के योग होने से महापुण्यप्रदा है । इसमें जप होम आदि कृत्य में भी आगे कहे जाने वाले युगादि-तिथि के समान निर्णय है । यह सत्ययुग की आदि तिथि है ।

अत्र युगादिश्राद्धमपिण्डकमनुष्ठेयम् । श्राद्धासंभवे तिलतर्पणमप्यत्र कार्यम् । अत्र शुक्लयुगादिकृत्यं पूर्वाह्णे कार्यम् । तत्रासंभवेऽपराह्णेऽपि । कृष्णयुगादिकार्यं त्वपराह्णे इत्यादिमन्वादिप्रकरणोक्तो निर्णयः । द्वेधाविभक्तदिनपूर्वार्धैकदेशव्यापिनी दिनद्वये चेत् त्रिमुहूर्ताधिकव्याप्तिसत्त्वे परा, त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा ।

मन्वादौ च युगादौ च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
व्यतीपाते वैधृतौ च तत्कालव्यापिनी क्रिया ॥

इति वचनेन साकल्यव्याप्तिवाक्यानामपवादात् श्राद्धादिकं तृतीयामध्ये एव कर्तव्यम् ।

इसमें पिण्डरहित युगादिश्राद्ध करे । श्राद्ध न करने पर तिल से तर्पण करना चाहिये । इसमें शुक्ल युगादिकार्य पूर्वाह्ण में करना चाहिये । पूर्वाह्ण में न हो सके तो अपराह्ण में भी करे । कृष्ण युगादिकार्य तो अपराह्ण में करे । ये सब बातें मन्वादि प्रकरण में निर्णीत हैं । दिन के दो भाग करने पर पूर्वार्ध के एकदेश में दो दिन में रहने वाली हो तो तीन मुहूर्त से अधिक व्यापिनी होने पर परा और तीन मुहूर्त से कम होने पर पूर्वा ग्राह्य है । 'मन्वादि, युगादि, सूर्य चन्द्रमा के ग्रहण और व्यतिपात एवं वैधृति में उसी समय में रहने वाली तिथि में करे, इस वचन से सम्पूर्णता वाक्यों के अपवाद होने से श्राद्ध आदि तृतीया के मध्य में ही करे ।

पुरुषार्थचिन्तामणौ तु सप्तमाष्टमनवममुहूर्तानां गान्धर्वकुतुपरौहिणसंज्ञकानां युगादिश्राद्धकालत्वाच्छुक्ले मध्यमदिनमाने त्रयोदश्यादिपञ्चदश्यन्तघटीत्रयव्यापिन्यां श्राद्धम् । कृष्णे तु षोडशीमारभ्य घटीत्रये । उभयत्र तादृशघटीत्रयव्याप्तौ सत्यामसत्यां वा शुक्ला परा । यदा तु परेद्युस्त्रयोदशघटीतः पूर्वं समाप्ता पूर्वेद्युस्त्रयोदश्यादिघटीत्रये तदेकदेशे वा विद्यते तदा कर्मकालशास्त्रबाहुल्यात्पूर्वैव ग्राह्येत्युक्तम् । इदमेव युक्तमिति भाति ।

पुरुषार्थचिन्तामणि में तो गान्धर्व, कुतुप, रौहिण नाम वाले मुहूर्तों में युगादिश्राद्ध काल होने से शुक्लपक्ष में मध्यम दिनमान में त्रयोदशी से पूर्णिमा तक तीन घड़ी रहने वाली में श्राद्ध हो । कृष्णपक्ष में तो सोलहवीं से तीन घड़ी के मध्य में । दोनों दिन वैसे ही तीन घड़ी रहने पर, अथवा न रहने पर शुक्ला परा ग्राह्य है । जब दूसरे दिन तेरह घड़ी से पहले ही समाप्त होती हो और पहले दिन त्रयोदश्यादि तीन घड़ी में या उसके एकदेश में रहे तब कर्मकाल शास्त्र बाहुल्य से पूर्वा ही ग्रहण करे ऐसा कहा है । वस्तुतः यही ठीक भी है ऐसी मेरी धारणा है ।

अथ जलकुम्भदानविधिः

अत्र देवतोद्देशेन पित्रुद्देशेन [1]चोदकुम्भदानमुक्तम्। तत्र 'श्रीपरमेश्वरप्रीतिद्वारा उदकुम्भदानकल्पोक्तफलावाप्त्यर्थं ब्राह्मणायोदकुम्भदानं करिष्ये' इति संकल्प्य सूत्रवेष्टितं गन्धफलयवाद्युपेतं कलशं पञ्चोपचारैर्ब्राह्मणं च सम्पूज्य—

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः॥ इति मन्त्रेण दद्यात्।

इसमें देवता के उद्देश्य से अथवा पितरों के उद्देश्य से जल-कुम्भ-दान कहा है। उसमें 'परमेश्वर की प्रसन्नता द्वारा जलकुम्भ-दान-कल्प में कहे हुये फल की प्राप्ति के लिये ब्राह्मण को जलकुम्भदान करूँगा' ऐसा सङ्कल्प करके सूत्रसे वेष्टित गन्धफल यव आदि से युक्त कलश और ब्राह्मण को पूजित कर 'यह ब्रह्मविष्णुशिवात्मक धर्मघट जो दिया है, इसके देने से मेरे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो' इस आशय के मन्त्र से दे।

पित्रुद्देशे तु 'पितॄणामक्षय्यतृप्त्यर्थम् उदकुम्भदानं करिष्ये' इति संकल्प्य पूर्ववत्कुम्भब्राह्मणौ संपूज्योदकुम्भे गन्धतिलफलादि निक्षिप्य—

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात्तृप्यन्तु पितरोपि पितामहाः॥
गन्धोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुम्भं फलान्वितम्।
पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु॥ इति मन्त्रेण दद्यात्।

पितरों के उद्देश्य से धर्मघटदान करे तो 'पितरों की अक्षय तृप्ति के लिये जलकुम्भ दान करूँगा' ऐसा सङ्कल्प करके पहले की तरह कुम्भ और ब्राह्मण की पूजा कर जलकुम्भ में गन्ध, फल, तिल, आदि छोड़कर, 'यह ब्रह्मविष्णुशिवात्मक धर्मघट दिया है, इससे पितृपितामहगण तृप्त हों, गन्ध तिल जल से मिले हुये अन्न के सहित तथा फल से युक्त कुम्भ को पितरों के लिये देता हूँ यह अक्षय उपस्थित हो' इस आशय के मन्त्र से दे।

युगादौ समुद्रस्नानं महाफलम्। वैशाखस्याधिमासत्वे युगादिश्राद्धं मासद्वयेपि कार्यम्। युगादिषूपवासो महाफलः। युगादिमन्वादौ रात्रिभोजने 'अभिस्ववृष्टिम्' इति मन्त्रजपः। युगादिश्राद्धलोपे 'युगादिश्राद्धलोपजन्यप्रत्यवायपरिहारार्थमृग्विधानोक्तं प्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्य [2]'न यस्यद्यावा' इति ऋचं शतवारं जपेत्। अयं निर्णयः सर्वयुगादौ ज्ञेयः। इति अक्षय्यतृतीयानिर्णयः।

युगादि में समुद्र-स्नान से महाफल होता है। वैशाख यदि अधिमास होता है तो उसमें दोनों महीनों में युगादि श्राद्ध करना चाहिये। युगादि तिथियों में उपवास करने से अधिक फल मिलता है। युगादि मन्वादि तिथियों में रात में भोजन करने पर 'अभिस्ववृष्टिम्' इस मन्त्र का जप करे।

---

१. भविष्ये—'उदकुम्भान् सकनकान् सान्नान् सर्वरसैः सह। यवगोधूमचणकान् सक्तुदध्योदनं तथा। ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते॥' इति।

२. ऋग्वेद प्रथमाष्टक चतुर्थाध्याय में मन्त्र—'न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः। नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्॥'

युगादिश्राद्ध न करने पर 'युगादि-श्राद्ध-लोपजन्य-पाप के परिहार के लिये ऋग्विधान का कहा हुआ प्रायश्चित्त करूँगा' ऐसा संकल्प करके 'न यस्यद्यावा' ऋचा को १०० बार जपे। यह निर्णय सम्पूर्ण युगादि तिथियों का जानना चाहिये।

अथ परशुरामजयन्ती

इयमेव तृतीया [1]परशुरामजयन्ती। इयं रात्रिप्रथमयामव्यापिनी ग्राह्या। पूर्वेद्युरेव प्रथमयामव्याप्तौ पूर्वा। दिनद्वये रात्रिप्रथमयामे साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तौ परा। अत्र प्रदोषे परशुरामं संपूज्यार्घ्यं दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

जमदग्निसुतो वीर क्षत्रियान्तकर प्रभो।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर॥ इति।

यही तृतीया परशुराम की जयन्ती (जन्मदिन) है। यह रात के प्रथम प्रहर में रहने वाली ग्राह्य है। पहले ही दिन पहले प्रहर में हो तो पूर्वा ग्राह्य है। दोनों दिन रात के पहले प्रहर में साम्य या वैषम्य से एकदेश में हो तो परा ग्राह्य है। उसमें प्रदोषकाल में परशुराम भगवान् को पूजनकर अर्घ्य देवे। उसमें मन्त्र है—'हे जमदग्नि के पुत्र! वीर! क्षत्रियों के नाशक! हे प्रभो! हे परमेश्वर! मेरा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

अथ गङ्गापूजनम्

वैशाखशुक्लसप्तम्यां [2]गङ्गोत्पत्तिस्तस्यां मध्याह्नव्यापिन्यां गङ्गापूजनं कार्यम्। दिनद्वये तद्व्याप्तौ [3]पूर्वा।

वैशाखशुक्ल सप्तमी में गङ्गा की उत्पत्ति है उस दिन मध्याह्नव्यापिनी सप्तमी में गङ्गा का पूजन करना चाहिये। दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो तो पूर्वा ग्राह्य है।

अथाग्निष्टोमफलकपूजनम्

वैशाखमासे [4]द्वादश्यां पूजयेन्मधुसूदनम्।
अग्निष्टोममवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति॥

वैशाख की द्वादशी में भगवान् की पूजा करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है और वह सोमलोक में भी जाता है।

---

१. भविष्यपुराण में परशुराम के जन्मदिन का वर्णन—'वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ। निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः॥ स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते। रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम्॥' इति।

२. ब्राह्मे—'वैशाखे शुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा। क्रोधात् पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात्॥ तां तत्र पूजयेद्देवीं गङ्गां गगनमेखलाम्॥' इति।

३. निर्णयसिन्धौ—'अत्र शिष्टाचारान्मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वैकदेशव्याप्तौ वा पूर्वा, युग्मवाक्यात्' इति।

४. वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ—'पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे। पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः॥ अस्मिंस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं परिहाय पापम्। सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः॥' अत्र पंचाननः = सिंहः, पाशाभिधाना तिथिः = द्वादशी, करभः = हस्तः इति।

अथ नृसिंहजयन्ती

वैशाखशुक्लचतुर्दशी [1]नृसिंहजयन्ती । सा सूर्यास्तसमयकालव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदव्याप्तौ वा परैव । स्वातीनक्षत्रशनिवारादियोगे साऽति प्रशस्ता ।

वैशाखशुक्ल चतुर्दशी नृसिंह जयन्ती कहलाती है । चतुर्दशी सूर्यास्तकालपर्यन्त रहने वाली इसमें ग्राह्य है । दो दिन में रहने वाली या न रहनेवाली चतुर्दशी परा ग्राह्य है । स्वातीनक्षत्र शनिवार आदि के योग से यह अत्युत्तम मानी जाती है ।

अथ व्रतप्रयोगः

त्रयोदश्यां कृतैकभक्तश्चतुर्दश्यां मध्याह्ने तिलामलकैः स्नात्वा—

उपोष्येहं नारसिंह भुक्तिमुक्तिफलप्रद ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि भक्तिं मे नृहरे दिश ॥

इति मन्त्रेण व्रतं संकल्प्याचार्यं वृत्वा सायंकाले धान्यस्थोदकुम्भे पूर्णपात्रे सौवर्णप्रतिमायां षोडशोपचारैर्देवं संपूज्यार्घ्यं दद्यात् । तत्र मन्त्रः—

त्रयोदशी में एकभक्त करके चतुर्दशी के मध्याह्न में तिल और आँवले से नहा कर 'भुक्ति मुक्ति को देने वाले नृसिंह देव! मैं आप की शरण में प्राप्त हूँ, मुझे अपनी भक्ति दीजिये' इस मन्त्र से व्रत का सङ्कल्प तथा आचार्य का वरण कर, सायंकाल में धान पर रक्खे हुये जलकुम्भ पर पूर्णपात्र में सोने की प्रतिमा में षोडशोपचार से भगवान की पूजा कर अर्घ्य दे । अर्घ्य का मन्त्रार्थ—

परित्राणाय साधूनां जातो विष्णो नृकेसरी ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सलक्ष्मीर्नृहरिः स्वयम् ॥

रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्देवं संपूज्य विसृज्याचार्याय धेनुयुतां प्रतिमां दद्यात् । तत्र मन्त्रः—

नृसिंहाच्युत गोविन्द लक्ष्मीकान्त जगत्पते ।
अनेनार्चाप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः ॥ अथ प्रार्थना—

'साधुओं की रक्षा के लिये उत्पन्न मनुष्य और सिंह के रूप वाले विष्णुलक्ष्मी के सहित मेरे दिये हुये अर्घ्य को स्वयं ग्रहण करें ।' रात में जागरण करके प्रातःकाल देवता का पूजन और विसर्जन कर आचार्य को धेनु से युक्त प्रतिमा देवे । 'हे नृसिंह ! अच्युत ! गोविन्द ! लक्ष्मीकान्त ! हे जगत्पते ! मेरी इस पूजा के करने से मेरे मनोरथ सफल हों ?' प्रार्थना—

मद्वंशे ये नरा जाता ये जनिष्यन्ति चापरे ।
तांस्त्वमुद्धर देवेश दुःसहाद्भवसागरात् ॥
पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखाम्बुवारिधेः ।
नीचैश्च परिभूतस्य महादुःखागतस्य मे ॥

---

१. नृसिंहपुराण में इस योग का महत्त्व—'स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे च मद्व्रतम् । सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः । एभिर्योगैर्विनाऽपि स्यान्मद्दिनं पापनाशनम् ॥ सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते । मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः ॥' इति ।

करावलम्बनं देहि शेषशायिन् जगत्पते ।
श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भयनाशन ॥
क्षीराम्बुधिनिवासस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन ।
व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव ॥ इति ।

ततो ब्राह्मणैः सह तिथ्यन्ते पारणं कार्यम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां चतुर्दश्यां तु पूर्वाह्णे एव पारणम् ।

'मेरे वंश में जो जो लोग जन्म लिये हैं और जो भविष्य में जन्म लेगें हे देवदेवेश ! उनका असह्य संसार-समुद्र से आप उद्धार करें । पातकरूपी समुद्र में डुबे हुये मुझको व्याधि-दुःख-समुद्र से, नीचों से तिरस्कृत महादुःख में पड़े हुये मुझको हे शेषशायी ! हे जगत्पति ! अपने हाथ का अवलम्ब दीजिये । हे नृसिंह ! भक्तों के भय के नाश करने वाले हे रमाकान्त ! हे जनार्दन ! क्षीर समुद्र के निवासी आप हे देवेश ! इस व्रत के करने से आप भुक्ति मुक्ति के देनेवाले हों ।' उसके बाद ब्राह्मणों के साथ तिथि के अन्त में पारण करे । तीन प्रहर से अधिकव्यापिनी (ऊपर जाने वाली) चतुर्दशी में तो पूर्वाह्ण ही में पारण करना चाहिये ।

अथ पौर्णमास्यां दानानि

पौर्णमास्यां शृतान्नसहितोदकुम्भदाने गोदानफलम् । स्वर्णतिलयुक्तद्वादशोदकुम्भदाने ब्रह्महत्यापापान्मुक्तिः । अत्र यथाविधि कृष्णाजिनदाने पृथ्वीदानफलम् । स्वर्णमधुतिलसर्पिर्युतकृष्णाजिनदाने सर्वपापनाशः । अत्र तिलस्नानं तिलहोमस्तिलपात्रदानं तिलतैलेन दीपदानं तिलैः पितृतर्पणं मधुयुक्ततिलदानं च महाफलम् । तत्र तिलदानमन्त्रः—

तिला वै सोमदैवत्याः सुरैः सृष्टास्तु गोसवे ।
स्वर्गप्रदाः स्वतन्त्राश्च ते मां रक्षन्तु नित्यशः ॥

पूर्णिमा में पक्वान्न के साथ जल-कुम्भ-दान करने से गोदान का फल होता है । सोना तिल से युक्त १२ जल-कुम्भ दान से ब्रह्महत्या के पास से छूट जाता है । इसमें सविधि काले मृगचर्म के दान से पृथिवीदान का फल होता है । सोना, शहद और घी से युक्त काले मृगचर्म के दान से सम्पूर्ण पापों का नाश होता है । इसमें तिल से नहाना, तिल से होम, तिल पात्र का दान, तिल तेल से दीपदान, तिलों से पितरों का तर्पण, शहद मिले तिल का दान, महाफलप्रद है । तिल पात्र दान का मन्त्र—'देवताओं ने सोमदेवतावाले तिलों को यज्ञ के लिये बनाये हैं, वे स्वर्ग देने वाले मेरी सदा रक्षा करें ।'

अथ वैशाखस्नानोद्यापनादि

वैशाखशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यां वा वैशाखस्नानोद्यापनम् । एकादश्यां पौर्णमास्यां वोपोष्य कलशे सुवर्णप्रतिमायां सलक्ष्मीकं विष्णुं संपूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्ग्रहपूजनपूर्वकं पायसेन तिलाज्यैर्वा यवैर्वा अष्टोत्तरशतं होमः प्रतद्विष्णुरिति वा इदंविष्णुरिति वा मन्त्रेण कार्यः । सांगतार्थं गोदानं पादुकोपानच्छत्रव्यजनोदकुम्भदानं शय्यादिदानं च कार्यम् । अशक्तेन कृसराद्यन्नैर्दश-

ब्राह्मणभोजनं कार्यम्। एतत्पौर्णमासीमारभ्य ज्येष्ठशुक्लैकादशीपर्यन्तं जलस्थ-विष्णुपूजोत्सवः कार्यः।

वैशाख शुक्ल द्वादशी या पूर्णिमा में वैशाखस्नान का उद्यापन होता है। इसमें एकादशी या पूर्णिमा में उपवास करके कलश पर सोने की लक्ष्मीसहित विष्णु की प्रतिमा का पूजन कर, रात में जागरण करके प्रातःकाल ग्रहों का पूजनपूर्वक खीर से या तिलघृत से अथवा यवों से १०८ बार होम करे। अथवा 'प्रतद्विष्णुः, अथवा 'इदं विष्णुः' इत्यादि मन्त्रों से होम करे। व्रतसाफल्य के लिये गोदान खड़ाऊँ, जूता, छाता, पंखा और जलकुम्भ तथा शय्या आदि का दान करे। इन दानों में असमर्थ को चाहिये कि खिचड़ी आदि अन्नों से १० ब्राह्मणों को भोजन करावे। पौर्णमासी से ज्येष्ठ-शुक्ल एकादशीपर्यन्त जल-स्थित विष्णु की पूजा का उत्सव करे।

अथ वैशाखामावास्या भावुककरिसंज्ञिका

वैशाखामावास्या भावुकाख्यदिनं तत्परं करिसंज्ञकदिनं च शुभेषु वर्ज्यम्। इति वैशाखमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

वैशाख की अमावास्या भावुक नामका दिन है उसके बाद करिसंज्ञक दिन है, ये दोनों दिन शुभकृत्य में त्याज्य हैं। वैशाखकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ ज्येष्ठकृत्ये मिथुनसंक्रान्तिः

मिथुनसंक्रान्तौ पराः षोडश नाड्यः पुण्यकालः। रात्रौ तु प्रागुक्तम्।

मिथुन की संक्रान्ति में पर १६ घड़ियाँ पुण्यकाल है। रात में संक्रान्ति होने पर पुण्यकाल पहले कह चुके हैं।

अथ ब्रह्ममूर्तिपूजनम्

ज्येष्ठमासे पिष्टेन ब्रह्ममूर्तिं कृत्वा वस्त्राद्यैः पूजयेत्सूर्यलोकप्राप्तिः। अत्र मासे जलधेनुदानमुक्तम्।

ज्येष्ठमास में आटा से ब्रह्मा की प्रतिमा बनाकर, वस्त्र आदि से पूजा करे इससे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। इस महीने में जलधेनु का दान पहले कहे हैं।

अथ करवीरव्रतम्

ज्येष्ठशुक्लप्रतिपदि करवीरव्रतमुक्तम्।

ज्येष्ठशुक्ल प्रतिपदा में करवीरव्रत होता है।

अथ रम्भाव्रतम्

ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतम्। सा [1]पूर्वविद्धा ग्राह्या। यत्र पूर्वविद्धा ग्राह्य-तयोच्यते तत्रास्तात्पूर्वं द्विमुहूर्ताधिकाया ग्राह्यत्वं ज्ञेयं न न्यूनायाः। तत्रापि यदि परेद्युः सूर्यास्तमपर्यन्तं पूर्वविद्धायास्तिथेः सत्त्वं तदा सत्यपि पूर्वविद्धाग्राह्यत्व-वचने पूर्वविद्धां त्यक्त्वा अखण्डत्वाच्छुद्धत्वात्परैव ग्राह्या।

---

१ स्कान्दे तु—'बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी। कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या सम्मुखी तिथिः॥' संमुखी = सायाह्नव्यापिनी। बृहत्तपा=श्रावणकृष्णद्वितीया। सावित्री—इस व्रत को की जाने वाली पूर्णिमा। वटपैतृकी—इस व्रत को की जानेवाली अमावास्या।

ज्येष्ठ सुदी तृतीया में रम्भाव्रत होता है। वह पूर्वविद्धा ग्राह्य है। जहाँ पूर्वविद्धा की ग्राह्यता कही गयी है, वहाँ अस्त से पहले दो मुहूर्त से अधिक की ग्राह्यता है, काम की नहीं। उसमें भी यदि दूसरे दिन सूर्यास्त तक पूर्व विद्धा तिथि रहे तब पूर्वविद्धा की ग्राह्यता होने पर भी पूर्वविद्धा को छोड़ कर, अखण्ड और शुद्ध होने के कारण परा का ही ग्रहण करे।

यदा तु ग्राह्यायाः पूर्वविद्धायाः पूर्वेद्युर्मुहूर्तद्वयान्न्यूनत्वं परेद्युश्चास्तमयात्प्राक् समाप्तत्वं तदापि परैव ग्राह्या। एवं सर्वत्रोह्यम्। रम्भाव्रते पञ्चाग्नितपनपरा स्त्री पुमान्वा भवानीं स्वर्णप्रतिमायां संपूज्य यथोक्तविधि होमादि कृत्वा सपत्नीकाय गृहं सोपस्करं दद्यात्। दांपत्यानि भोजयेत्। विशेषविधिर्व्रतग्रन्थे ज्ञेयः।

जब ग्राह्य-पूर्वविद्धा तिथि पहले दिन दो मुहूर्त से कम है और दूसरे दिन सूर्यास्त से पहले समाप्त होती है, तब भी परा का ही ग्रहण उचित है। इसी प्रकार सर्वत्र कल्पना करनी चाहिये। रम्भाव्रत में पञ्चाग्निताप करने वाले स्त्री अथवा पुरुष सोने की प्रतिमा में भवानी की पूजा कर उक्त विधि से होम आदि करके पत्नीसहित ब्राह्मण को घर की सामग्रियों के सहित गृह का दान करे। पुरुषस्त्री सहित ब्राह्मणों को भोजन करावे। विशेष-विधि व्रत ग्रन्थों से जानना चाहिये।

अथ उमापूजनव्रतम्

चतुर्थ्यामुमावतारस्तत्रोमापूजनव्रतम्। अष्टम्यां शुक्लादेवी पूज्या। नवम्यामुपोष्य देवीं पूजयेत्।

चतुर्थी में उमा का अवतार हुआ। उसमें उमा का पूजनात्मक व्रत होता है। अष्टमी में शुक्ल देवी की पूजा होती है। नवमी में उपवास कर देवी का पूजन करे।

अथ गङ्गावतारः (दशहरा)

ज्येष्ठशुक्लदशम्यां गङ्गावतारः। इयं [१]दशहरासंज्ञिका। अत्र दश योगा उक्ताः—

> ज्येष्ठमासि सितपक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः।
> व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचन्द्रे वृषे रवौ॥ इति।

गराख्यं करणम्। बुधवारहस्तयोगे आनन्दाख्यो योगः। अत्र दशमीव्यतीपातयोर्मुख्यत्वम्। तेन यस्मिन्दिने कतिपययोगवती दशमी पूर्वाह्णे लभ्यते तत्र दशहराव्रतं कार्यम्। दिनद्वये पूर्वाह्णे तत्सत्त्वे यत्र बहूनां योगः सा ग्राह्या।

---

१. दशविध पापों को हरण करने से इसका नाम 'दशहरा' पड़ा। ब्राह्मे-'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता। हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता॥' राजमार्तण्ड में दशविध पापों का निर्देश यों है—'पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वतः। असम्बद्धप्रलापं च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥ अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं मतम्॥ परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्॥' इति। यहाँ ज्येष्ठमास चान्द्रमान से ग्राह्य है, सौरमान से नहीं।

ज्येष्ठे मलमासे सति तत्रैव दशहरा कार्या न तु [1]शुद्धे। 'दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु' इति हेमाद्रौ ऋष्यशृङ्गोक्तेः। अत्र काशीवासिभिर्दशाश्वमेधतीर्थे स्नात्वा गङ्गापूजनं कार्यम्। इतरदेशस्थैः स्वसंनिहितनद्यां स्नात्वा गङ्गापूजनादिकं कार्यम्।

ज्येष्ठशुक्ल दशमी में गङ्गा का अवतार हुआ। यह दशहरा नाम की है। इसमें १० योग कहे हैं—ज्येष्ठ महीना, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र, व्यतिपात, गरकरण, आनन्दयोग, कन्या के चन्द्रमा और वृष के सूर्य, इस प्रकार दस योग होते हैं। हस्तनक्षत्र में बुधवार होने से आनन्द नाम का योग होता है। इन योगों में दशमी और व्यतिपात का होना मुख्य है। इससे जिस दिन कई योग वाली दशमी पूर्वाह्ण में मिले तो उसमें दशहराव्रत करना चाहिये। पूर्वाह्ण में दो दिन दशमी होने पर, जहाँ अधिक योग मिले उसी का ग्रहण करे। ज्येष्ठ में मलमास होने पर उसी में दशहरा करे, शुद्ध में नहीं। दशहरा में चारों युगादितिथियों में कोई उत्कर्ष नहीं होता, यह हेमाद्रि में ऋष्यशृङ्ग का वचन है। इस दिन काशी के रहनेवाले दशाश्वमेघ तीर्थ में नहा कर, गङ्गा का पूजन आदि करें। दूसरे देश के लोग अपने समीप की नदी में स्नान कर गङ्गा-पूजनादि करें।

अथ दशहराव्रतविधिः

देशकालौ संकीर्त्य 'ममैतज्जन्मजन्मान्तरसमुद्भूतत्रिविधकायिकचतुर्विधवाचिकत्रिविधमानसेति स्कान्दोक्तदशविधपापनिरासत्रयस्त्रिंशच्छतपित्रुद्धारब्रह्मलोकावाप्त्यादिफलप्राप्त्यर्थं ज्येष्ठमाससितपक्षदशमीबुधवारहस्ततारकागरकरणव्यतीपातानन्दयोगकन्यास्थचन्द्रवृषस्थसूर्येति दशयोगपर्वण्यस्यां महानद्यां स्नानं तीर्थपूजनं प्रतिमायां जाह्नवीपूजां तिलादिदानं मूलमन्त्रजपमाज्यहोमं च यथाशक्ति करिष्ये' यथाविधि स्नानं दशवारं कृत्वा जले स्थितो दशवारं सकृद्वा वक्ष्यमाणं स्तोत्रं पठित्वा वासःपरिधानादिपितृतर्पणान्तं नित्यं विधाय तीर्थे पूजां विधाय सर्पिर्मिश्रान् दशप्रसृतिकृष्णतिलान् तीर्थेऽञ्जलिना प्रक्षिप्य गुडमिश्रान्सक्तुपिण्डान् दश प्रक्षिपेत्।

देशकाल का कीर्तन करके, 'मेरे इस जन्म अथवा दूसरे जन्म में उत्पन्न तीन प्रकार के शारीरिक, चार प्रकार के वाचिक और तीन प्रकार के मानसिक, स्कन्दपुराण के कहे हुये दस प्रकार के पापों को हटाने के लिये ३३०० सौ पितरों के उद्धार तथा ब्रह्मलोक आदि फल की प्राप्ति के लिये ज्येष्ठ महीना, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र, गरकरण, व्यतिपात और आनन्द-योग, कन्या में स्थित चन्द्रमा तथा वृष के सूर्य इस प्रकार दस योग के पर्व में इस महानदी में स्नान, तीर्थपूजन, मूर्ति में गङ्गा की पूजा, तिल आदि का दान, मूलमन्त्र का जप और घी से होम शक्ति के अनुसार करूँगा' ऐसा सङ्कल्प कर सविधि दस बार स्नान करके, जल में रहते हुये दस बार या एकबार आगे कहे जानेवाले स्तोत्र को पढ़कर, वस्त्र पहनने से लेकर पितृतर्पणान्त नित्यकर्म और तीर्थपूजा करके घी मिले हुये दस पसर काले तिलों को तीर्थ में अंजुरी से अर्पित कर गुड मिले हुये सतुआ के पिण्डों को अर्पित करे।

[1]. कृत्यरत्नावली में—'शुद्धेऽपि कार्या' अर्थात् शुद्ध ज्येष्ठमास में भी दशहरा का कृत्य सम्पन्न करना चाहिये, ऐसा लिखा।

ततो गङ्गातटे ताम्रे मृन्मये वा स्थापिते कलशे सौवर्णादिप्रतिमायां गङ्गामावाहयेत्। तत्र मन्त्रः—

'नमो भगवत्यै दशपापहरायै गङ्गायै नारायण्यै रेवत्यै शिवायै दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै नन्दिन्यै ते नमोनमः।' अयं स्त्र्यादिसाधारणः। द्विजमात्रविषयोक विंशत्यक्षरो यथा—

ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहा' इति।

एवं गङ्गामावाह्य नारायणं रुद्रं ब्रह्माणं सूर्यं भगीरथं हिमाचलं च नाममन्त्रेण तत्रैवावाह्य उक्तमूलमन्त्रमुच्चार्य श्रीगङ्गायै नारायणरुद्रब्रह्मसूर्यभगीरथहिमवत्सहितायै आसनं समर्पयामीत्येवमासनाद्युपचारैः पूजयेत्।

तदनन्तर गङ्गातीर पर स्थापित ताँबे या मिट्टी के कलश में सोने आदि की प्रतिमा में गङ्गा का आवाहन करे। 'नमो भगवत्यै दशपापहरायै' इत्यादि मन्त्र, स्त्री आदि सर्वसाधारण के लिये है। द्विजमात्र के लिये 'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै' इत्यादि २० अक्षर का मन्त्र है। इसी प्रकार गङ्गा का आवाहन कर नारायण, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य, भगीरथ और हिमाचल को भी नाममन्त्र से वहीं आवाहन करके मूलमन्त्र का उच्चारण कर श्रीगङ्गा को, नारायण-रुद्र-ब्रह्मा-सूर्य-भगीरथ और हिमवान पर्वत के सहित आप को आसन समर्पण करता हूँ, इस प्रकार आसन आदि उपचारों से पूजा करे।

दशविधैः पुष्पैः संपूज्य दशाङ्गधूपं दत्त्वा दशविधनैवेद्यान्ते ताम्बूलं दक्षिणां दत्त्वा दश फलान्यर्पयेत्। दश दीपान्दत्त्वा पूजां समापयेत्। दश विप्रेभ्यः प्रत्येकं षोडश षोडश मुष्टितिलान् सदक्षिणान्दद्यात्। एवं यवानपि। ततो दश गा एकां वा गां दद्यात्। मत्स्यकच्छपमण्डूकान्सौवर्णान् राजतान् पिष्टमयान् वा संपूज्य तीर्थे क्षिपेत्। एवं दीपान्प्रवाहयेत्।

दस प्रकार के फूलों से पूजा करके दशांग धूप देकर दस प्रकार के नैवेद्य के अंत में पान और दक्षिणा देकर, दस प्रकार के फलों का समर्पण करे तथा दस दीपों को देकर, पूजा समाप्त करे। दस ब्राह्मणों को प्रत्येक को सोलह-सोलह मुट्ठी तिल दक्षिणा के सहित दे। इसी प्रकार यव भी देवे। तदनन्तर दस या एक गोदान करे। मछली कछुआ और मेढ़क सोने या चाँदी के अथवा आटा के बनाकर पूजे और तीर्थ में प्रक्षेप करे। इसी तरह दीपों को प्रवाह में बहावे।

अथ दशहराङ्गहोमप्रयोगः

जपहोमचिकीर्षायां पूर्वोक्तमूलमन्त्रस्य[1] पञ्चसहस्रसंख्यो जपो दशांशेन होमः, यथाशक्ति वा जपहोमौ। तत्र 'दशहराव्रताङ्गत्वेन होमं करिष्ये' इति संकल्प्य स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधाने चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते श्रीगङ्गाममुकसंख्ययाज्येन नारायणादिषड्देवता एकैकयाज्याहुत्या। शेषेण स्विष्टकृतमित्यादिप्रोक्षण्यादिपट्पात्राण्यासाद्याज्यं संस्कृत्य यथान्वाधानं जुहुयात्। दश ब्राह्मणान् सुवासिनीश्च भोजयेत्। प्रतिपद्दिनमारभ्य स्नानादिपूजान्तो विधिः कार्य इति केचित्।

---

१. पाद्मे—'प्रणवादिनमोऽन्तं तच्चतुर्थ्यन्तं च सत्तम। देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्र उदाहृतः॥' इति। जैसे—'ॐ कृष्णाय नमः' 'ॐ शिवाय नमः' इत्यादि।

होम करने की इच्छा होने पर पहले के कहे हुये मूलमन्त्र का पाँच हजार जप और उसके दशांश से होम करे, अथवा अपने सामर्थ्य के अनुसार जप और होम करे। उसमें 'दशहरा व्रत के अङ्ग होने से होम करूँगा' ऐसा संकल्प करके वदी पर अग्नि को 'अन्वाधाने चक्षुषि आज्येन' इस मंत्र से स्थापित कर अन्त में गङ्गा को अमुक संख्याकघृत की आहुति से, और नारायण आदि छः देवताओं को एक-एक घृत की आहुति से और बचे हुये घृत से स्विष्टकृत् होम करे। प्रोक्षणी आदि छः पात्रों को रख घी का संस्कार कर, अन्वाधान के अनुसार होम करे। दस ब्राह्मणों और सौभाग्यवती स्त्रियों को भोजन करावे। कोई यह कहते हैं कि—प्रतिपदा से आरम्भ कर स्नान आदि पूजा तक जो विधि है उसे करना चाहिये।

अथ स्कन्दपुराणोक्त-गङ्गास्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच—

नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमोनमः।
नमस्ते रुद्ररूपिण्य शाङ्कर्यै ते नमोनमः॥ १ ॥
नमस्ते विश्वरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोनमः।
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥ २ ॥
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठयै नमोस्तु ते।
स्थाणुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यै नमोनमः॥ ३ ॥
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोनमः।
मन्दाकिन्यै नमस्तेस्तु स्वर्गदायै नमः सदा॥ ४ ॥
नमस्त्रैलोक्यभूषायै जगद्धात्र्यै नमोनमः।
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै तेजोवत्यै नमोनमः॥ ५ ॥
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै नारायण्यै नमोनमः।
नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमोनमः॥ ६ ॥
वृहत्यै ते नमस्तेस्तु लोकधात्र्यै नमोनमः।
नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमोनमः॥ ७ ॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमोनमः।
शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमोनमः॥ ८ ॥
उस्रायै सुखदोग्ध्र्यै च संजीविन्यै नमोनमः।
ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमोनमः॥ ९ ॥

ब्रह्मा जी कहते हैं—'कल्याणस्वरूपिणी कल्याण देनेवाली गङ्गा को नमस्कार है। रुद्ररूपिणी तुझे नमस्कार है। शाङ्करी आपको नमस्कार है। विष्णुरूपिणी आपको नमस्कार है। ब्रह्ममूर्ति आपको नमस्कार है। सर्वदेवस्वरूपिणी और औषधमूर्ति आपको नमस्कार है। सब के सम्पूर्ण रोगों की श्रेष्ठ औषधवाली आपको नमस्कार है। स्थावर जङ्गम से उत्पन्न विष को मारनेवाली आपको नमस्कार है। भोग-उपभोग को देनेवाली और भोगवाली आपको नमस्कार है। मन्दाकिनी आपको नमस्कार है। स्वर्ग देनेवाली आपको प्रणाम है। तीनों लोक के भूषणवाली आपको नमस्कार है। संसार को धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। त्रिशुक्लसंस्था आपको नमस्कार है।

तेजवाली आपको नमस्कार है। लिङ्गधारिणी नन्दा आपको नमस्कार है। नारायणी आपको नमस्कार है। विश्व में मुख्या आपको नमस्कार है। रेवतीरूपिणी आपको नमस्कार है। वृत्तिरूपिणी आपको नमस्कार है। भुवनधारिणी आपको नमस्कार है। विश्वमित्रा आपको नमस्कार है। नन्दिनी आपको नमस्कार है। पृथ्वीरूपिणी आपको नमस्कार है। कल्याण अमृतरूपिणी आपको नमस्कार है। सुन्दरवृषवाली आपको नमस्कार है। शान्ता अतिश्रेष्ठा वर देनेवाली आपको नमस्कार है। सुख को दुहनेवाली सञ्जीविनी (सबको जिलानेवाली) आपको नमस्कार है। ब्रह्म में निष्ठावाली वेद देनेवाली और पाप का नाश करनेवाली आपको नमस्कार है।

प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोस्तु ते।
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमोनमः॥ १०॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोस्तु ते॥ ११॥
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमोनमः।
परात्परतरे तुभ्यं नमस्ते मोक्षदे सदा॥ १२॥
गङ्गे ममाग्रतो भूया गङ्गे मे देवि पृष्ठतः।
गङ्गे मे पार्श्वयोरेहि त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः॥ १३॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गां गते शिवे।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः परः॥ १४॥
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे॥ १५॥
य इदं पठति स्तोत्रं भक्त्या नित्यं नरोऽपि यः।
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तः कायवाक्चित्तसंभवैः॥ १६॥
दशधा संस्थितैर्दोषैः सर्वैरेव प्रमुच्यते।
सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते॥ १७॥

प्रणतजनों के कष्ट को हटानेवाली संसार की माता आपको नमस्कार है। सबकी आपत्ति को नाश करनेवाली मङ्गलस्वरूपिणी आपको नमस्कार है। शरण में आये हुये दुःखीजनों के रक्षा में श्रेष्ठ सबके कष्ट को हरण करनेवाली हे नारायणी देवी! आपको नमस्कार है। पापपुण्यरहित रूपवाली दुर्गति को हनन करनेवाली कुशलरूपिणी आपको नमस्कार है। सदा मोक्ष देनेवाली पर से भी परतरा आपको नमस्कार है। हे गङ्गे! आप मेरे आगे रहें मेरे पीछे रहें मेरे दाहिने एवं बायें रहें तथा आप ही में मैं रहूँ। आदि मध्य और अन्त में पृथ्वी पर आने वाली आप ही हैं। आप ही मूलप्रकृति हैं। आप ही श्रेष्ठ नारायण हैं। हे गङ्गे! आप ही परमात्मा और शंकर हैं आपको नमस्कार है। जो पुरुष इस स्तोत्र को प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पढ़ता है श्रद्धायुक्त शरीर वाणी और मन से सुनता है, वह दस प्रकार के दोषों से छूट जाता है। सभी इच्छायें पूर्ण होती हैं। मरने पर ब्रह्म में लीन होता है।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता।
तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः॥ १८॥
यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः।

सोपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्य यत्नतः ॥ १९ ॥
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥ २० ॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ २१ ॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥ २२ ॥
एतानि दश पापानि हर त्वं मम जाह्नवि ।
दशपापहरा यस्मात्तस्माद्दशहरा स्मृता ॥ २३ ॥
त्रयस्त्रिंशच्छतं पूर्वान्पितॄनथ पितामहान् ।
उद्धरत्येव संसारान्मन्त्रेणानेन पूजिता ॥ २४ ॥

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष हस्तनक्षत्रयुक्त दशमी में गङ्गाजल में खड़े होकर इस स्तोत्र को जो दसबार पढ़ता है वह दरिद्र हो या असमर्थ हो, वह भी यत्नपूर्वक गङ्गा का पूजन कर उसका फल पाता है। नहीं दी हुई वस्तु का ग्रहण, शास्त्रीय विधानरहित हिंसा और परस्त्रीगमन, ये तीन प्रकार के शारीरिक पाप हैं। परुषवचन बोलना, झूठ बोलना, सब प्रकार की चुगली, बकवाद करना, ये चार प्रकार के वाणी के पाप है। दूसरे के द्रव्य को लेने की इच्छा से ध्यान करना, किसी की बुराई सोचना, झूठा आग्रह, यह तीन प्रकार का मानस पाप है। हे जह्नुसुते गङ्गे ! इन मेरे दस पापों को आप हरण करें। ३३०० पहले के पितृ पितामह गणों की इस मन्त्र से पूजा करने पर आप संसार से उद्धार करती हैं।

नमो भगवत्यै दशपापहरायै गङ्गायै नारायण्यै रेवत्यै शिवायै दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै नन्दिन्यै ते नमोनमः ।

सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां करधृतकलशोद्यत्सोत्पलामत्यभीष्टाम् ।
विधिहरिहररूपां सेन्दुकोटीरजुष्टां कलितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ॥२५॥

आदावादिपितामहस्य निगमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् ।
भूयः शंभुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
देवीकल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥ २६ ॥

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २७ ॥

इति स्तोत्रेण स्तुत्वा होमान्ते प्रतिमोत्तरपूजां कृत्वा विसृज्याचार्याय मूलमन्त्रेण दद्यात् । इति दशहराविधिः ।

दसपाप के हरण करनेवाली भगवती, नारायणी, रेवती, शिव, दक्षा, अमृता, विश्वरूपिणी नन्दिनी, गङ्गाजी को नमस्कार है। सफेद घड़ियाल पर बैठी हुई शुभ्रवर्ण तीन नेत्रोंवाली कमल के सहित कलश को हाथ में धारण करनेवाली ब्रह्मा-विष्णु-शिव-स्वरूपिणी करोड़ों चन्द्रमाओं से युक्त

श्वेतवस्त्र धारण करनेवाली जह्नुसुता गङ्गा को प्रणाम करता हूं। सृष्टि के आदि में आदि पितामह के वेदव्यापार पात्र में जलस्वरूपिणी पश्चात् शेषशायी भगवान के पवित्र पादोदक रूप, फिर शङ्कर की जटा को भूषित करनेवाली मणिरूप और महर्षिजह्नु की पापनाशिनी यह भगवती भागीरथी दीखती हैं। जो मनुष्य सौ योजना के दूर से भी गङ्गा-गङ्गा ऐसा कहता है, वह सभी पापों में छूट जाता है तथा विष्णुलोक जाता है। इस स्तोत्र से स्तुति कर होम के अन्त में प्रतिमा की उत्तरपूजा करके विसर्जन कर, मूलमन्त्र से आचार्य को दे। दशहराविधि समाप्त।

अथ निर्जलैकादशी

ज्येष्ठशुक्लैकादशी निर्जला। अस्यां नित्याचमनादिव्यतिरिक्तजलपानवर्जनेनोपवासे कृते द्वादशैकादश्युपवासफलम्। 'द्वादश्यां च निर्जलोपोषितैकादशीव्रताङ्गत्वेन सहिरण्यसशर्करोदकुम्भदानं करिष्ये' इति संकल्प्य,

देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक।
उदकुम्भप्रदानेन यास्यामि परमां गतिम्॥

इति मन्त्रेण शर्करायुतं सहिरण्यमुदकुम्भं[१] दद्यात्।

ज्येष्ठशुक्ल एकादशी निर्जला एकादशी है। इसमें नित्य आचमन को छोड़ कर जलपानवर्जनपूर्वक उपवास करने से बारह एकादशी के उपवास का फल होता है। 'द्वादशी के दिन निर्जल उपवास की हुई एकादशी व्रत के अङ्गरूप सोना और चीनी के साथ जलकुम्भदान करूँगा' ऐसा सङ्कल्प कर, हे हृषीकेश! संसाररूपी समुद्र से पार करनेवाले जलकुम्भदान से परमगति को प्राप्त करूँ, इस मन्त्र से चीनी से युक्त सोने के साथ जलकुम्भ का दान करे।

अथ त्रिविक्रमपूजनम्

ज्येष्ठमाससितद्वादश्यामहोरात्रं त्रिविक्रमपूजनाद् गवामयनाख्यक्रतुफलसिद्धिः।

ज्येष्ठमास के शुक्लद्वादशी में त्रिविक्रमदेव की दिनरात पूजा करने से गायों के अयन नामक यज्ञ की फलसिद्धि होती है।

अथ ज्येष्ठपूर्णिमायां दानानि बिल्वत्रिरात्रव्रतं च

ज्येष्ठपौर्णमास्यां तिलदानादश्वमेधफलम्। ज्येष्ठानक्षत्रयुतायां ज्यैष्ठ्यां छत्रोपानहदानान्नराधिपत्यप्राप्तिः। ज्येष्ठपूर्णिमायां बिल्वत्रिरात्रव्रतमुक्तम्। अत्र सा परविद्धा ग्राह्या।

ज्येष्ठ की पूर्णिमा में तिलदान से अश्वमेधयज्ञ का फल मिलता है। ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त ज्येष्ठपूर्णिमा में छाता और जूता के दान से नृपत्व की प्राप्ति होती है। ज्येष्ठपूर्णिमा में बिल्वत्रिरात्रव्रत होता है। इसमें पूर्णिमा परविद्धा ग्राह्य है।

अथ वटसावित्रीव्रतम्

अस्यामेव [२]वटसावित्रीव्रतम्। अत्र व्रते त्रयोदश्यादिदिनत्रयमुपवासः। अशक्तौ

---

१. स्कान्दे—'ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा। निर्जलं समुपोष्यात्र जलकुम्भान् सशर्करान्। प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ॥' इति।

२. स्कन्दपुराण के—'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम्। चीर्णं पुरा महाभक्त्या कथितं ते मया नृप॥' इस वचन के अनुसार—

तु त्रयोदश्यां नक्तं चतुर्दश्यामयाचितं पौर्णमास्यामुपोषणम्। अत्र पौर्णमासीनिर्णयानुसारेण यथा त्रिरात्रं भवेत्तथा त्रयोदश्यादिदिनत्रयं ग्राह्यम्। तत्र पौर्णिमा सूर्यास्तमयात्पूर्वं त्रिमुहूर्ताधिकव्यापिनी चतुर्दशीविद्धा ग्राह्या, त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे परैव। 'भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम्' इति वचनं सावित्रीव्रतातिरिक्ते ज्ञेयम्। सावित्रीव्रतोपवासेऽष्टादशनाडीविद्धाया अपि ग्राह्यत्वात्।

ज्येष्ठपूर्णिमा में वटसावित्रीव्रत होता है। इस व्रत में त्रयोदशी से तीन दिन का उपवास होता है। असमर्थ को तो त्रयोदशी में नक्तव्रत, चतुर्दशी में अयाचितव्रत और पूर्णिमा में उपवासव्रत होता है। यहाँ पूर्णिमा निर्णय के अनुसार जैसे तीन रात हो उसी प्रकार त्रयोदशी आदि तीन दिन ग्रहण करना चाहिये। उसमें पूर्णिमा, सूर्यास्त के पहले तीन मुहूर्त से अधिक होनेवाली चतुर्दशीविद्धा और तीन मुहूर्त से कम होने पर परा ग्राह्य है। 'चतुर्दशी १८ घड़ियों से परतिथि को दूषित करती है' यह वचन सावित्रीव्रत को छोड़ कर, अन्य व्रतों के लिये जानना चाहिये। सावित्रीव्रत के उपवास में १८ घड़ी से विद्धा का भी ग्राह्य है।

यत्तु केवलपूजनात्मकमुपवासरहितं सावित्रीव्रतं सर्वत्र स्त्रियोऽनुतिष्ठन्ति तत्र भूतोष्टादशेति वेधो व्रतदानादिपरो न तूपवासपर इति निर्णयसिन्धुलिखितमाधवाशयानुसारेणाष्टादशनाडी चतुर्दशीसत्त्वे परैव पूजाव्रते ग्राह्या। उपवासव्रते तु पूर्वेति मम प्रतिभाति। अत्र पारणं पूर्णिमान्ते कर्तव्यम्।

जो कि उपवास के विना केवल पूजनमात्र सावित्री व्रत स्त्रियां करती हैं, उसमें चतुर्दशी १८ दण्ड से पूर्णिमा को विद्ध करती है। यह वेध व्रत और दानपरक है उपवासपरक नहीं, ऐसे निर्णयसिन्धु में लिखे हुये माधव के आशय के अनुसार १८ घड़ी चतुर्दशी रहने से परा ही पूजाव्रत में ग्राह्य है। उपवासव्रत में तो पूर्वा मुझे अच्छी लगती है। इसमें पारण पूर्णिमा के अन्त में करना चाहिये।

अत्र रजस्वलादिदोषे पूजादि ब्राह्मणद्वारा कार्यम्। स्वयमुपवासादिकं कार्यमित्यादयः स्त्रीव्रते विशेषाः प्रथमपरिच्छेदे ज्ञेयाः। अत्र पूजोद्यापनादिविधिर्व्रतग्रन्थे प्रसिद्धः।

यह वटसावित्री व्रत कहीं ज्येष्ठपूर्णिमा में और भविष्यपुराण के—'अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले तथा सती। त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनाऽनेन पूजयेत्॥' इस वचन के अनुसार कहीं ज्येष्ठ की अमावास्या में प्रचलित है। हेमाद्रिने भाद्रपद की पूर्णिमा और कुछ निबन्धकार ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दशी में इस व्रत को करने के लिये लिखा, किन्तु ज्येष्ठ-अमा और ज्येष्ठ की पूर्णिमा ये दोनों तिथियां मुख्य हैं। इन्हीं दोनों तिथियों के उद्देश्य से वीरमित्रोदयकार ने लिखा-—'ज्येष्ठपञ्चदश्योर्वटसावित्रीव्रतम्'। पूर्वविद्धा ग्रहण करने का मूलवचन निगम में—'कृष्णाष्टमी बृहत्तपा सावित्री वटपैतृकी। अनङ्गत्रयोदशी रम्भा उपोष्याः पूर्वसंयुताः॥' इति।

भविष्यपुराण में व्रत की विशेषता—'गृहीत्वा वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रां युधिष्ठिर। ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते॥ सावित्रीप्रतिमां कुर्यात् सौवर्णीं वाऽपि मृन्मयीम्। सार्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यदीपकैः॥ रजन्या कण्ठसूत्रैश्च शुभैः कुङ्कुमकेसरैः।' 'पूजयेत्' यह शब्द यहां शेष है। रजनी=हरिद्रा। कण्ठसूत्रं = सौभाग्यसूत्र। 'सावित्र्याख्यानकं वाऽपि वाचयीत द्विजोत्तमैः। रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते विमले ततः। तामपि ब्रह्मणे दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत्।' दानमन्त्रः—'सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती। ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण! प्रतिगृह्यताम्।' इति।

इसमें रजस्वला आदि दोष के होने पर पूजा आदि ब्राह्मण के द्वारा कराना चाहिये। उपवास आदि स्वयं करे। इत्यादि स्त्रीव्रत में यही विशेष बातें प्रथमपरिच्छेद से जानना चाहिये। इसमें पूजा, उद्यापन आदि की विधि व्रतग्रन्थों में प्रसिद्ध है।

अथ महाज्यैष्ठीयोगः

अत्र ज्येष्ठपौर्णिमायां ज्येष्ठानक्षत्रे बृहस्पतिश्चन्द्रश्च रोहिणीनक्षत्रे तु सूर्यस्तदा महाज्यैष्ठीति योगस्तत्र स्नानदानादिकं कार्यम्। अस्याः पौर्णमास्या मन्वादित्वादत्र पिण्डरहितं श्राद्धमुक्तम्। एतन्निर्णयश्चैत्रे उक्तः। अत्र मासे विप्रेभ्यश्चन्दनव्यजनोदकुम्भादिकं[1] त्रिविक्रमप्रीतये देयम्। इति ज्येष्ठमासनिर्णयोद्देशः।

ज्येष्ठ की पूर्णिमा को ज्येष्ठानक्षत्र में बृहस्पति और चन्द्रमा हों और रोहिणीनक्षत्र में सूर्य हों तो महाज्येष्ठीयोग होता है। इसमें स्नान-दान आदि करना चाहिये। इस पूर्णिमा के मन्वादि तिथि होने से इसमें पिण्डरहित श्राद्ध कहा है। उसका निर्णय चैत्र में कह चुके हैं। इस महीने में त्रिविक्रम भगवान् की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मणों को चन्दन, पंखा, जलकुम्भ आदि का दान करना चाहिये। ज्येष्ठमासनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ आषाढकृत्ये कर्कसंक्रान्तिः

अथाषाढे दक्षिणायनसंज्ञा कर्कसंक्रान्तिः। कर्कसंक्रान्तौ पूर्वं त्रिंशन्नाड्यः पुण्यकालः। तत्रापि संक्रान्तिसन्निहिता नाड्यः पुण्यतमाः। रात्रावर्धरात्रात्प्राक् परतश्च संक्रमेपि पूर्वदिने पुण्यकालः। तत्रापि मध्याह्नात्परतः पुण्यतमत्वम्। सूर्योदयोत्तरं घटीद्वयात्प्राक् संक्रमे परत एव पुण्यम्। ज्योतिर्ग्रन्थे तु सूर्योदयात् प्राक् घटीत्रयात्मकसंध्यासमयेऽपि कर्कसंक्रमे परदिने एव पुण्यमित्युक्तम्। अत्र दानोपवासादि प्रथमपरिच्छेदे उक्तम्। कर्ककन्याधनुःकुम्भस्थे रवौ केशकर्तनादिकं निषिद्धम्।

आषाढ़ में दक्षिणायन संज्ञा की कर्कसंक्रान्ति होती है। कर्कसंक्रान्ति में पहली ३० घड़ियाँ पुण्यकाल हैं। उसमें भी संक्रान्ति की समीपवाली घड़ियां अतिशय पुण्यजनक हैं। रात में आधीरात के पहले अथवा बाद में संक्रमण होने पर पूर्वदिन में पुण्यकाल होता है। इसमें भी मध्याह्न के अनन्तर अतिशय पुण्य होता है। सूर्योदय के बाद दो घड़ी से पहले संक्रान्ति होने पर परकाल ही में पुण्यकाल होता है। ज्यौतिष के ग्रन्थों में तो सूर्योदय से पहले तीन घड़ीस्वरूप सध्यासमय में भी कर्क की संक्रान्ति होने पर, परदिन में ही पुण्य है—ऐसा कहा है। इसमें दान उपवास आदि प्रथमपरिच्छेद में कह चुके हैं। कर्क, कन्या, धनु और कुम्भ के सूर्य में बाल कटाना आदि वर्जित है।

अथ मासव्रतदानादिकम्

आषाढे मासमेकभक्तव्रते कृते बहुधनधान्यपुत्रप्राप्तिः। अत्र मासे उपानच्छत्रलवणामलकानि वामनप्रीत्यै देयानि।

आषाढ़मास में एकभक्त व्रत करने से अधिक धन-धान्य और पुत्र की प्राप्ति होती है। इस महीने में भगवान् वामन की प्रसन्नता के लिये जूता, छाता, नमक और आँवले का दान करे।

---

१. वामनपुराण में इन दानवस्तुओं का मूलवचन—'उदकुम्भाम्बुदानं च तालवृन्तं सचन्दनम्। त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासि तु॥' इति।

अथ रामरथोत्सवः

आषाढशुक्लद्वितीयायां पुष्यनक्षत्रयुतायां केवलायां वा श्रीरामस्य [1]रथोत्सवः। आषाढशुक्लपक्षे दशमी पौर्णमासी च मन्वादिः। तन्निर्णयस्तूक्तः।

आषाढ़शुक्ल द्वितीया में पुष्यनक्षत्र से योग होने पर अथवा पुष्यनक्षत्ररहित द्वितीया में श्रीरामचन्द्रजी का रथोत्सव होता है। आषाढ़ शुक्लपक्ष में दशमी और पूर्णिमा, ये दो मन्वादितिथि हैं। इनका निर्णय कह चुके हैं।

अथ विष्णुशयनोत्सवः

अथैकादश्यां [2]विष्णुशयनोत्सवः। तत्र सोपस्करे मञ्चके सुप्तां श्रीविष्णुप्रतिमां शङ्खादिचतुरायुधां लक्ष्मीसंवाहितचरणां नानाविधोपचारैः संपूजयेत्।

सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुध्येत तत्सर्वं सचराचरम्॥

इति प्रार्थ्य उपोष्य जागरं कृत्वा द्वादश्यां पुनः संपूज्य त्रयोदश्यां गीत-नृत्यवाद्यादिकं निवेदयेत्। एवमिदं त्रिदिनसाध्यं व्रतम। तत्र स्मार्तैर्वैष्णवैश्च स्वस्वैकादशीव्रतदिने शयनीव्रतमारब्धव्यम्। रात्रौ शयनोत्सवः। दिवाप्रबोधोत्सवः। द्वादश्यां पारणाहे शयनप्रबोधोत्सवाविति केचित्। अत्र देशाचाराद् व्यवस्था। नेदं मलमासे कार्यम्।

एकादशी में विष्णुशयनोत्सव होता है। तोसक, तकिया, बिछे हुये मंच पर शंख, चक्र, गदा, पद्म, इन चार शस्त्रवाली लक्ष्मी द्वारा चरणसेवा की जाती हुई श्री विष्णु की प्रतिमा की अनेक प्रकार के उपचारों से सम्यक् पूजा करे। 'आप जगन्नाथ के सोने पर यह जगत् सो जाता है और आपके जग जाने पर यह चराचर जगत् जगता है'—ऐसी प्रार्थना कर, उपवास और रात्रि जागरण करके पुनः सम्यक् पूजा कर त्रयोदशी में गाना बजाना नाचना आदि उनके सामने करे। इस प्रकार यह व्रत तीन दिन में होता है। उसमें स्मार्त और वैष्णव अपनी एकादशीव्रत के दिन शयनव्रतका आरम्भ करे। रात में शयन और दिन में जागरण का उत्सव होता है। कोई कहते हैं द्वादशी में पारणा के दिन शयन और जागरण का उत्सव करे। देशाचार से इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। इस व्रत को मलमास में नहीं करे।

---

१. स्कन्दपुराण में रथयात्रा—'आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता। तस्यां रथे समारोप्य रामं वै भद्रया सह॥ यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत द्विजान् बहून्।' पुष्यनक्षत्र उस तिथि में न हो तो तिथि में ही रथयात्रोत्सव करे—'ऋक्षाभावे तिथौ कार्या यात्राऽसौ प्रीतये मम।' इति।

२. एकादशी में विष्णुशयनोत्सव करने का मूलवचन ब्रह्मपुराण में—'एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः। भुजङ्गशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा॥' इति। द्वादशी में करने का मूलवचन भविष्यपुराण में—'आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती। आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्तनोत्सवाः॥ निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्तनम्। अन्यत्र पादयोगेऽपि द्वादश्यामेव कारयेत्॥ अभाकाद्येषु मासेषु मिथुने माधवस्य च। द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्वापावर्तनोत्सवाः॥' इति। इसकी व्यवस्था देश भेद से अथवा वैष्णव और स्मार्त अपने एकादशीव्रत दिन के अनुसार करें।

अथाषाढद्वादशीपारणानिर्णयः

आषाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कार्यम्। तत्रापि अनुराधायोग एव वर्ज्यः। यदा तु द्वादशी स्वल्पा वर्ज्यनक्षत्रभागो द्वादशीमतिक्रम्य विद्यते, तदा निषेधमनादृत्य द्वादश्यामेव पारणं कार्यमिति कौस्तुभे उक्तम्। सङ्गवकालभागं त्यक्त्वा प्रातर्मध्याह्नभागे वा भोक्तव्यमिति पुरुषार्थचिन्तामणौ।

आषाढ़शुक्ल द्वादशी में अनुराधानक्षत्र के न रहने पर पारणा करनी चाहिये। इसमें भी अनुराधा के प्रथम चरण का योग ही वर्जित है। जब द्वादशी बहुत थोड़ी हो, वर्जित नक्षत्र का योग द्वादशी के आगे हो तो निषेध का अनादर कर द्वादशी में ही पारणा करे—ऐसा कौस्तुभ में कहा है। पुरुषार्थचिन्तामणि में संगवकाल छोड़कर प्रातःकाल अथवा मध्याह्नकाल में पारणा करे, ऐसा लिखा है।

अथ चातुर्मास्यव्रतम्

द्वादश्यां पारणोत्तरं सायं पूजां कृत्वा चातुर्मास्यव्रतसंकल्पं कुर्यादिति कौस्तुभे। एकादश्यामेवेति निर्णयसिन्धुः।

[1]चातुर्मास्यव्रतप्रथमारम्भो गुरुशुक्रास्तादावाशौचादौ च न भवति। द्वितीयाद्यारम्भस्तु अस्तादौ आशौचादौ च भवत्येव। चातुर्मास्यव्रतं च शैवादिभिरपि कार्यम्। व्रतग्रहणप्रकारस्तु भगवतो जातीपुष्पादिभिर्महापूजां कृत्वा—

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत॥

इति प्रार्थ्य अग्रे कृताञ्जलिः—

कौस्तुभकार के मत में द्वादशी में पारणा के बाद सायंकाल की पूजा करके चातुर्मास्य व्रत का संकल्प करे। निर्णयसिन्धुकार तो एकादशी में ही संकल्प करने को कहते हैं। पहले पहल चातुर्मास्यव्रत आरम्भ करने पर वह गुरु शुक्र के अस्त आदि और अशौच आदि में नहीं होता है। द्वितीय आरम्भ में तो गुरुशुक्रास्तादि और अशौच आदि में होता ही है। चातुर्मास्यव्रत शैव आदि को भी करना चाहिये। व्रत के ग्रहण का विधान तो यह है—भगवान की जूही आदि के फूलों से महती पूजा करके 'भगवान् जगन्नाथ के सो जाने पर यह संसार सो जाता है, उनके जगने पर जगता है, हे अच्युत भगवान्! मुझ पर प्रसन्न हों' इस प्रकार आगे अञ्जलि बनाकर प्रार्थना करे।

चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि।
श्रावणे वर्जये शाकं दधि भाद्रपदे तथा॥
दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं तथा।
इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽच्युत॥

---

१. महाभारते—'आषाढे तु सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः। चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद्यत्किंचिन्नियतो नरः॥' वार्षिकांश्चतुरो मासान् वाहयेत् केनचिन्नरः। व्रतेन नोचेदाप्नोति किल्बिषं वत्सरोद्भवम्॥' इति। वृद्धगार्ग्य ने शुक्रास्तादि में भी इसका आरम्भ करना बतलाया—'न शैशवं न मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न वा तिथेः। खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः॥' इति।

इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्ते रमापते ॥
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव पंचत्वं यदि मे भवेत् ।
तदा भवतु संपूर्णं प्रसादात्ते जनार्दन ॥

इति प्रार्थ्य देवाय शङ्खेनार्घ्यं निवेदयेत् । एतानि व्रतानि नित्यानि ।

वर्ष के चारों महीने भगवान् के जगने से लेकर श्रावण में शाक त्याग दे । भादों में दही न खाय । आश्विन में दूध सेवन न करे और कार्तिक में दाल न खाय । इस नियम को श्रावण से कार्तिक तक मैं करूँगा । हे अच्युत भगवान् ! इस मेरे नियम को विघ्नरहित कीजिये । हे देव-देव ! इस व्रत को आपके सामने मैंने ग्रहण किया है । हे लक्ष्मीपते ! आपके प्रसाद से मुझे इससे विघ्नरहित सिद्धि प्राप्त हो । हे देव ! इस व्रत के ग्रहण करने पर यदि मेरा मरण हो जाय तो आप के प्रसाद से हे जनार्दन ! यह व्रत पूरा हो, ऐसी प्रार्थना करके भगवान् को शंख से अर्घ्य निवेदन करे । ये व्रत नित्य हैं ।

हविष्यभक्षणादिव्रतान्तरचिकीर्षायां 'श्रावणे वर्जये शाकम्' इति श्लोकस्थाने 'हविष्यान्नं भक्षयिष्ये देवाहं प्रीतये तव' इत्यूहः कार्यः। शाकव्रते व्रतान्तरे च समुच्चयेन कर्तव्ये तं श्लोकं पठित्वा व्रतान्तरमन्त्रं वदेत् । एवं गुडवर्जनादिधारणापारणादिव्रतेषु—

वर्जयिष्ये गुडं देव मधुरस्वरसिद्धये ।
वर्जयिष्ये तैलमहं सुन्दराङ्गत्वसिद्धये ॥
योगाभ्यासी भविष्यामि प्राप्तुं ब्रह्मपदं परम् ।
मौनव्रती भविष्यामि स्वाज्ञापालनसिद्धये ॥
एकान्तरोपवासी च प्राप्तुं ब्रह्मपुरं परम् ।

इत्यादिरीत्योहः कार्यः । निषिद्धमात्रवर्जनेच्छायां 'वृन्ताकादिनिषिद्धानि हरे सर्वाणि वर्जये' इति संकल्पः ।

हविष्यभक्षण आदि दूसरे व्रतों के करने की इच्छा में 'श्रावण में शाक वर्जन करूँगा' इसकी जगह 'हे देव ! आप की प्रीति के लिये मैं हविष्यान्नभक्षण करूँगा' ऐसी कल्पना करनी चाहिये । शाकव्रत और दूसरे व्रतों में भी दोनों का फल प्राप्त करना हो तो शाकव्रत की बात को कह कर दूसरे व्रत का मन्त्र कहे । इसी प्रकार गुडवर्जन आदि की धारणा और पारणा आदि व्रतों में । 'अपनी आवाज को मधुर बनाने के लिये हे देव ! मैं गुड का वर्जन करूँगा' 'सुन्दर अंग होने के लिये मैं तैल का त्याग करूँगा' 'ब्रह्मपद प्राप्त करने के लिये योगाभ्यासी होऊँगा' 'अपनी आज्ञापालन-सिद्धि के लिये मौनव्रती होऊँगा । और 'एक दिन छोड़कर दूसरे दिन उपवास करके श्रेष्ठ ब्रह्मपद प्राप्त करूँगा' इत्यादि रीति से जैसा करना हो वैसी कल्पना करे । यदि ऐसी इच्छा हो कि शास्त्र से निषिद्धमात्र का वर्जन करूँ तो 'हे हरे ! बैगन आदि निषिद्ध सभी चीजों का मैं त्याग करूँगा' ऐसा संकल्प करे ।

अथ चातुर्मास्ये निषिद्धानि

प्राण्यङ्गचूर्णं चर्मस्थोदकं जम्बीरं यज्ञशेषभिन्नं विष्ण्वनिवेदितान्नं दग्धान्नं

मसूरं मांसं चेत्यष्टविधमामिषं वर्जयेत् । निष्पावराजमाषधान्ये लवणशाकं वृन्ताकं कलिङ्गफलम् अनेकबीजफलं निर्बीजं मूलकं कूष्माण्डम् इक्षुदण्डं नूतनबदरीधात्रीफलानि चिञ्चां मञ्चकादिशयनमनृतुकाले भार्यां परान्नं मधुपटोलं माषकुलित्थसितसर्षपांश्च वर्जयेत् । वृन्ताकबिल्वोदुम्बरकलिङ्गभिस्सटास्तु वैष्णवैः सर्वमासेषु वर्ज्याः । अन्यत्र तु गोछागीमहिष्यन्यदुग्धं पर्युषितान्नं द्विजेभ्यः क्रीतारसाभूमिजलवणं ताम्रपात्रस्थं गव्यं पल्वलजलं स्वार्थपक्वमन्नमित्यामिषगण उक्तः । चतुर्ष्वपि हि मासेषु हविष्याशी न पापभाक् ।

किसी जीव के अग का चूर्ण, चमड़े के पात्र का जल, जम्बीरी नीबू, बीजपूर, यज्ञ के बचे हुये अन्न, भगवान् को निवेदन न किया हुआ अन्न, मसूर और मांस, ये आठ प्रकार के मांसगण है । ये आठों चातुर्मास्यव्रत में त्याज्य हैं । निष्पाव, बोड़ा, नमक, शाक, बैगन, कलिंगफल, बहुत बीजवाला फल, निर्बीजफल, मूली, कुम्हड़ा, ऊँख का डंडा, नया बेर, आँवले का फल, इमली, पलंग पर सोना, ऋतुभिन्न काल में स्त्रीगमन, दूसरे का अन्न, शहद, परोरा, ऊर्द कुर्थी, और सफेद सरसो का वर्जन करे । बैगन, बेल, गूलर, कलिङ्ग और भिस्सटा तो वैष्णवों को सभी महीनों में त्याज्य हैं । अन्य ग्रन्थों में तो गाय, बकरी, भैंस से भिन्न का दूध, बासी अन्न, ब्राह्मणों से खरीदे हुये रस, बनाया हुआ मिट्टी का लवण, ताँबे के पात्र में स्थित गाय का दूध, दही एवं घी, गड्ढे का जल और अपने लिये पकाया हुआ अन्न, इन्हें मांसगण कहा है । चारों ही महीनों में हविष्यभोजन करने वाला पापभागी नहीं होता ।

अथ हविष्याणि

व्रीहिमुद्गयवतिलकङ्गुकलायश्यामाकगोधूमधान्यानि रक्तभिन्नमूलकं सूरणादिकन्दः सैन्धवसामुद्रलवणं गव्यानि दधिसर्पिर्दुग्धानि पनसाम्रनारीकेलफलानि हरीतकीपिप्पलीजीरकशुण्ठीचिञ्चाकदलीलवलीधात्रीफलानि गुडेतरेक्षुविकार इत्येतानि [१]अतैलपक्वानि गव्यं तक्रं माहिषं घृतं क्वचित् ।

धान, यव, मूँग, तिल, कँगुनी, कलाय, साँवाँ, गेहूँ, लाल रंग को छोड़ कर मूली, सूरण आदि कन्द, सेंधा और समुद्र का नमक, गाय का दही, दूध और घी, कटहल, आम, नारियल के फल, हर्रे, पीपल, जीरा, सोंठ, इमली, केला, बड़हर और आँवले का फल, गुड़ को छोड़ कर ऊँख से बने चीनी आदि ये सब चीजें तेल में पकी न हों, गाय का मट्ठा और भैंस के घी को भी कहीं पर हविष्य कहा है ।

अथ काम्यव्रतानि

गुडवर्जनान्मधुरस्वरता । तैलवर्जनात्सुन्दराङ्गता । योगाभ्यासी ब्रह्मपदमाप्नोति । ताम्बूलत्यागाद्भोगी मधुरकण्ठश्च । घृतत्यागी स्निग्धतनुः । शाकत्यागी पक्वान्न-

१. भविष्यपुराणमें हविष्यद्रव्यों का निर्देश—'हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः । कलायकङ्गुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ॥ षष्टिकाः कालशाकं च मूलकं केमुकेतरत् । कन्दः सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥ पयोऽनुद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकी । तिन्तिडी जीरकं चैव नागरं नागपिप्पली ॥ कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् । अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते ॥' इति ।

भुक्। पादाभ्यङ्गत्यागाद्वपुःसौगन्धम्। दधिदुग्धतक्रत्यागाद्विष्णुलोकः। स्थालीपाचितान्नत्यागाद्दीर्घसन्ततिः। भूमौ दर्भशायी विष्णुदासः। भूमिभोजनान्नृपत्वम्। मधुमांसत्यागान्मुनिः। एकान्तरोपवासाद् ब्रह्मलोकः। नखकेशधारणाद्दिने दिने गङ्गास्नानम्। मौनादस्खलिताज्ञा। विष्णुवन्दनाद् गोदानफलम्।

गुड़ के न खाने से मीठा स्वर होता है। तेल छोड देने से सुन्दर अंग होते हैं। योग के अभ्यास से ब्रह्मपद पाता है। पान छोड़ देने से भोगवाला और मीठा गला होता है। घृत के छोड़ने से चिकना शरीर होता है। शाक छोड़ने से पक्वान्न खाने वाला होता है। पैर में उबटन न लगाने से शरीर में सुगन्ध होती है। दही, दूध और मट्ठे को छोड़ देने से विष्णुलोक पाता है। बटुली में पकाये अन्न के त्याग से सन्तानवृद्धि होती है। जमीन में कुश पर सोनेवाला भगवान् का दास होता है। भूमि पर भोजन करने से राजत्वकी प्राप्ति होती है। मधु मांस छोड़ देने से मुनि होता है। एक दिन बीच देकर उपवास करने से ब्रह्मलोक पाता है। नख केश के रखने से प्रतिदिन गङ्गास्नान का फल होता है। मौन रहने से कोई आज्ञा स्खलित नहीं होती। भगवान् को प्रणाम करने से गोदान का फल होता है।

विष्णुपादस्पर्शात्कृतकृत्यता। हरेरालये संमार्जनादिना नृपत्वम्। शतप्रदक्षिणाकरणाद्विष्णुलोकः। एकभक्ताशनादग्निहोत्रफलम्। अयाचितेन वापीकूपोत्सर्गादिपूर्तफलम्। षष्ठाहःकालभोजनाच्चिरस्वर्गः। पर्णेषु भोजनात्कुरुक्षेत्रवासफलम्। शिलाभोजनात्प्रयागस्नानफलम्। एवं मासचतुष्टयसाध्यानां व्रतानां संकल्पमेकादश्यां द्वादश्यां वा कृत्वा श्रावणमासव्रतविशेषसंकल्प इहैव कार्यः।

भगवान् के पैर छूने से कृतार्थ हो जाता है। भगवान् के मन्दिर में झाडू बहारू आदि सफाई करने पर राजत्व की प्राप्ति होती है। एक सौ प्रदक्षिणा करने से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। एकभक्त भोजन से अग्निहोत्र का फल होता है। अयाचितव्रत से बावली, कुआँ आदि के बनाने का फल होता है। दिन में छठें काल के भोजन से बहुत दिन तक स्वर्ग होता है। पत्ते पर भोजन करने से कुरुक्षेत्रवास का फल होता है। पत्थर पर भोजन से प्रयागस्नान का फल होता है। इसी तरह चार महीने में होने योग्य व्रतों का एकादशी या द्वादशी में सङ्कल्प करके सावन महीने में विशेष व्रतों का सङ्कल्प यहीं कर लेना चाहिये।

अथ शाकव्रतनिर्णयः

'अहं शाकं वर्जयिष्ये श्रावणे मासि माधव' इत्यत्र शाकशब्देन लोके प्रसिद्धाः फलमूलपुष्पपत्राङ्कुरकाण्डत्वगादिरूपा वर्ज्या, न तु व्यञ्जनमात्रम्। शुण्ठीहरिद्राजीरकादिकमपि वर्ज्यम्। तत्र तत्कालोद्भवानामातपादिशोषितकालान्तरोद्भवानां च सर्वशाकानां वर्जनं कार्यम्। अथैषां चातुर्मास्यव्रतानां समाप्तौ कार्तिक्यां दानानि तत्रैव वक्ष्यन्ते।

'मैं सावन के महीने में शाक का त्याग करूँगा' इस वचन में शाकशब्द से संसार में प्रसिद्ध फल, मूल, फूल, अङ्कुर, डण्ठल, छाल आदि का त्याग करे, न कि व्यञ्जनमात्र का। सोंठ, जीरा, हल्दी आदि भी छोड़ दे। इसमें सामयिक शाकों को घाम में सुखा कर दूसरे समय में भी होने वाले शाकों को छोड़ देना चाहिये। चातुर्मास्यव्रतों के समाप्त होने पर कार्तिक पूर्णिमा के दानों को वहीं कहेंगे।

अथ तप्तमुद्राधारणनिर्णयः

शयनोबोधिन्योस्तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायाम्। अत्र तप्तमुद्राधारणे विधायकानि प्रशंसावचनानि[1] निषेधकानि निन्दावचनानि च बहुतराण्युपलभ्यन्ते, तेषां शिष्टाचाराद् व्यवस्था। येषां कुले पितृपितामहादिभिस्तप्तमुद्राधारणादिधर्मोऽनुष्ठितस्तैस्तथैवानुष्ठेयः। येषां तु कुलेषु न केनाप्यनुष्ठितस्तैर्न स्वमतिविलसितश्रद्धया तद्धर्मोऽनुष्ठेयो दोषश्रवणादिति तात्पर्यम्।

हरिशयनी और हरिप्रबोधिनी एकादशी में रामार्चनचन्द्रिका में तप्तमुद्राधारण करना कहा है। इसमें तप्तमुद्राधारण के विषय में प्रशंसा, और निषेधक निन्दा के वचन बहुत से मिलते हैं। उन वचनों की व्यवस्था शिष्टाचार से करनी चाहिये। जिसके कुल में बाप दादों से तप्तमुद्राधारण आदि का अनुष्ठान होता आया है, वे लोग वैसा ही करें। और जिनके कुलों में किसी ने ऐसा नहीं किया, वे अपनी बुद्धि विलसित श्रद्धा से दोषश्रवण के कारण उस धर्म को न करें, यही तात्पर्य है।

अथ द्वादश्यां वामनपूजनम्

आषाढशुक्लद्वादश्यां वामनपूजनेन नरमेधफलम्।

आषाढ़शुक्ल द्वादशी में वामन भगवान् की पूजा करने से नरमेध का फल होता है।

अथ पूर्णिमायामन्नादिदानम्

पूर्वाषाढायुतायां पौर्णमास्यामन्नपानादिदानादक्षय्यान्नादिप्राप्तिः।

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा में अन्नपान आदि के दान करने से अक्षय अन्न की प्राप्ति होती है।

अथ शिवशयनोत्सवः कोकिलाव्रतं च

अस्यामेव पौर्णमास्यां प्रदोषव्यापिन्यां श्रीशिवस्य [2]शयनोत्सवः। अस्यामेव कोकिलाव्रतम्। तत्र—

---

१. पद्मपुराण में प्रशंसा का वचन—'अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा। ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तमुद्रादिधारणम्॥' काशीखण्ड में भी—'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः। शङ्खचक्राङ्कितननुस्तुलसीमञ्जरीधरः॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः।' इति।

बृहन्नारदीय में तप्तमुद्रानिषेध का वचन—'यस्तु संतप्तशङ्खादिलिङ्गचिह्नतनुर्नरः। स सर्वयातनाभोगी चण्डालो जन्मकोटिषु॥ द्विजं तु तप्तशङ्खादिलिङ्गाङ्किततनुर्नरः। संभाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥' और भी—'शङ्खचक्राद्यङ्कनं च गीतनृत्यादिकं तथा। एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद् द्विजन्मनः॥ शङ्खचक्रे मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ यथा श्मशानजं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु। तथा चक्राङ्कितो विप्रः सर्वकर्मसु गर्हितः॥' इति।

२. वामनपुराण में शिवशयनोत्सव—'पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे। वैयाघ्रे च जटाभारं समुद्ग्रथ्याहिवर्ष्मणा॥' इति।

यही आषाढ़पूर्णिमा 'गुरुपूर्णिमा' है। इसमें गुरु और व्यास की पूजा की जाती है।

अपरार्क में गुरु का माहात्म्य—'विना तु गुरुणा सम्यग्बोधकेन विपश्चिता। नैव विद्याफलप्राप्तिर्गुरुं तस्मात्तु पूजयेत्॥ अज्ञानदुःखशमनं नरकोद्धारणं तथा। कुतो माता पिता वाऽपि बान्धवोऽपि महागुणः॥ तादृगभ्युदयं कुर्याद्यादृक् कुर्याद् गुरुर्महत्। कोऽन्यो ज्ञानेन दुःखौघादुद्धरेद् भवबन्धनात्॥ सम्यक् शास्त्रार्थबोद्धारं महादेववदर्चयेत्।'

स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्ये स्थिता सती ।
भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम् ॥ १ ॥

इति मासव्रतं संकल्प्य कोकिलारूपिणीं शिवां प्रत्यहं संपूज्य नक्तभोजनम् । यस्मिन्वर्षेऽधिकाषाढस्तस्मिन्नेव वर्षे [1]शुद्धाषाढे व्रतं कार्यमित्याचारः स निर्मूलः । आषाढस्य श्रावणस्य वा पौर्णमास्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां वा शिवपवित्रारोपणमुक्तम् ।

इसी प्रदोषव्यापिनी पूर्णिमा में श्रीशंकर जी का शयनोत्सव और इसी में कोकिलाव्रत होता है इसमें 'ब्रह्मचर्य में नियत रहती हुई स्नान करूँगी रात में भोजन करूँगी, पृथ्वी पर सोऊँगी, और जीवों पर दया करूँगी' ऐसा महीने भर के व्रत का संकल्प कर कोकिलारूप वाली शिवशक्ति का प्रतिदिन पूजन करके रात्रिभोजन करे। जिस साल में अधिक आषाढ़ हो, उसी साल में शुद्ध आषाढ़ में व्रत करना चाहिये, इस आचार में कोई प्रमाण नहीं है। आषाढ़ अथवा श्रावण की पूर्णिमा, चतुर्दशी अथवा अष्टमी में भगवान् शंकर पर पवित्रारोपण कह चुके हैं।

अथ संन्यासिनां व्यासपूजादि

अस्यां पौर्णमास्यां संन्यासिनां चातुर्मास्यावाससंकल्पाङ्गत्वेन क्षौरव्यासपूजादिकं विहितम् । अत्र कर्मणि औदयिकी त्रिमुहूर्ता पौर्णमासी ग्राह्या ।

चातुर्मास्स्य मध्ये तु वपनं वर्जयेद्यतिः ।
चातुर्मास्यं द्विमासं वा सदैकत्रैव संवसेत् ॥ १ ॥

तत्रादौ क्षौरं विधाय द्वादशमृत्तिकास्नानानि प्राणायामादिविधिंच कृत्वा व्यासपूजां कुर्यात् ।

इस पूर्णिमा में संन्यासियों के चातुर्मास्यवाससंकल्प के अङ्ग से क्षौर और व्यासपूजन आदिका विधान है। इस कर्म में सूर्योदयव्यापिनी और तीन मुहूर्तवाली पूर्णिमा का ग्रहण करना चाहिये। चातुर्मास्य के बीच में संन्यासी क्षौर न करावे। चार महीने या दो महीने तक एक स्थानपर वास करे। उसमें प्रथमतः क्षौर करा कर बारह बार मृत्तिकास्नान और प्राणायाम आदि विधि को करके व्यासपूजा करे।

अथ संक्षेपेण तद्विधिः—देशकालौ संकीर्त्य 'चातुर्मास्यावासं कर्तुं श्रीकृष्ण-

---

चिदम्बररहस्यमें—'गुरुभक्तिविहीनाय तपोविद्याव्रतं कुलम् । निष्फलं हि महेशानि केवलं लोकरञ्जनम् ॥ नारायणे महादेवे मातापित्रोश्च राजनि । यथा भक्तिर्भवेद् देवि तथा कार्या निजे गुरौ ॥ लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ । श्रीगुरुंगुरु पत्नीं च पितराविति चिन्तयेत् ॥ गुरौ मनुष्यबुद्धिं तु मन्त्रे चाक्षरबुद्धिताम् । यन्त्रे मूर्त्यां शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥ गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः । शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥' इत्यादि गुरु का महात्म्य देखें।

१. आषाढ में मलमास पड़ने पर शुद्ध आषाढ़पूर्णिमा में ही कोकिलाव्रत कर्तव्य है। वाराहपुराणे—'आषाढौ द्वौ यदा स्यातां कोकिलायास्तदार्चनम् । तथा या कुरुते नारी न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मन्त्रैः पौराणिकैर्युतम् । मलमासे त्वतिक्रान्ते शुद्धाषाढे समागते ॥' इति ।

व्यासभाष्यकाराणां सपरिवाराणां पूजनं करिष्ये' इति संकल्प्य मध्ये श्रीकृष्णं तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धानावाह्य श्रीकृष्णपञ्चकदक्षिण-भागे व्यासं तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन सुमन्तुजैमिनिवैशंपायनपैलानिति व्यासपञ्चक-मावाह्य श्रीकृष्णादिवामे भाष्यकारं श्रीशंकरं तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन पद्मपाद-विश्वरूपत्रोटकहस्तामलकाचार्यानावाह्य श्रीकृष्णपञ्चके श्रीकृष्णपार्श्वयोर्ब्रह्मरुद्रौ पूर्वादिचतुर्दिक्षु सनकादीन् श्रीकृष्णपञ्चकात्पुरतः गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरुपरात्परगुरून् ब्रह्मवसिष्ठशक्तिपराशरव्यासशुकगौडपादगोविन्दपादशंकराचार्यान् ब्रह्मनिष्ठांश्चावाह्य पञ्चकत्रयस्याग्नेये गणेशम् ईशान्ये क्षेत्रपालं वायव्ये दुर्गां नैर्ऋत्ये सरस्वतीं प्रागाद्यष्टदिक्षु इन्द्रादिलोकपालांश्चावाह्य पूजयेत् ।

उसकी संक्षिप्त विधि है—देशकाल को कहकर 'चातुर्मास्यवास करने लिये सपरिवार श्रीकृष्ण, व्यास और भाष्यकारका पूजन करूँगा' ऐसा संकल्प कर बीच में श्रीकृष्ण, उनके पूर्व की ओर प्रदक्षिणक्रम से वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का आवाहन कर इस कृष्णपञ्चक के दाहिने भागमें व्यास जी और उनके पूर्व की ओर प्रदक्षिणक्रम से सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल, इस व्यासपञ्चक का आवाहन करके श्रीकृष्णपञ्चक के बायीं ओर भाष्यकार, श्रीशङ्कराचार्य, इनके पूर्व की ओर प्रदक्षिण-क्रम से पद्मपाद, विश्वरूप, त्रोटक और हस्तामलक, इन आचार्यों का आवाहन करके, श्रीकृष्णपञ्चक में श्रीकृष्ण के दाहिने एवं बायें ब्रह्मा और शंकर जी, पूर्व आदि चारों दिशाओं में सनकादिकों को, कृष्णपञ्चक के आगे गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु एवं परात्परतर गुरुओं को तथा ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौडपाद, गोविन्दपाद और ब्रह्मनिष्ठ शंकराचार्य का आवाहन कर इन पञ्चकत्रय के आग्नेयकोण में गणेश, ईशान में क्षेत्रपाल, वायव्य में दुर्गा और नैर्ऋत्य में सरस्वती तथा पूरब आदि आठ दिशाओं में इन्द्र आदि लोकपालों का भी आवाहन कर पूजा करे ।

तत्र नारायणाष्टाक्षरेण श्रीकृष्णपूजा । अन्येषां प्रणवादिनमोन्तैस्तन्नाममन्त्रैः पूजा कार्या । पूजान्ते असतिप्रतिबन्धे 'चतुरो वार्षिकान्मासानिह वसामि' इति मनसा संकल्प्य—

अहं तावन्निवत्स्यामि सर्वभूतहिताय वै ।
प्रायेण प्रावृषि प्राणिसंकुलं वर्त्म दृश्यते ॥
अतस्तेषामहिंसार्थं पक्षान्वै श्रुतिसंश्रयान् ।
स्थास्यामश्चतुरो मासानत्रैवासति बाधके ॥

इति वाचिकसंकल्पं कुर्यात् । ततो गृहस्थाः प्रतिब्रूयुः—

निवसन्तु सुखेनात्र गमिष्यामः कृतार्थताम् ।
यथाशक्ति च शुश्रूषां करिष्यामो वयं मुदा ॥

ततो वृद्धानुक्रमेण यतीन् गृहस्थाः यतयश्चान्योन्यं नमस्कुर्युः । एतद्विधिः पौर्णमास्यामसम्भवे द्वादश्यां वा कार्यः ।

उसमें नारायण के अष्टाक्षरमंत्र से श्रीकृष्ण की पूजा करे । अन्य लोगों का आदि में प्रणव और अन्त में नमः लगाकर, उन-उनके नाममन्त्रों से पूजा करनी चाहिये । पूजा के अन्त में

'कोई प्रतिबन्ध न होने पर वर्ष के चारो महीने यहाँ पर मैं वास करूँगा' ऐसा मनमें संकल्प कर, 'मैं सब जीवों के हित के लिये प्रायः वर्षाकाल में जीवों से व्याप्त मार्ग दिखाई पड़ते हैं, अतः उनकी हिंसा न होने पावे इसलिये चार पक्ष अथवा बाधक न 'होने पर चार महीने यहीं ठहरूँगा' ऐसा वाचिक संकल्प करे। इसके बाद गृहस्थलोग संन्यासियों से कहें—'आप लोग सुखपूर्वक यहाँ निवास करें, हम लोग कृतकृत्य हो जायेंगे। अपनी शक्ति के अनुसार हम लोग प्रसन्नता से सेवा करेंगे।' इसके बाद वृद्धों के क्रम से गृहस्थ लोग संन्यासियों को प्रणाम करें और संन्यासीगण भी परस्पर नमस्कार करें। यह विधि पौर्णमासी में न हो सके तो द्वादशी में करे।

अथ अशून्यशयनव्रतम्

आषाढकृष्णद्वितीयायामशून्यशयनं[1] व्रतम्। अत्र लक्ष्मीयुतं विष्णुं पर्यङ्के संपूज्य,

> पत्नी भर्तुर्वियोगं च भर्ता भार्यासमुद्भवम्।
> नाप्नुवन्ति यथा दुःखं दंपत्यानि तथा कुरु॥

इत्यादिभिर्दांपत्याभङ्गप्रार्थनार्थैर्मन्त्रैः प्रार्थयेत्। ततश्चन्द्रायार्घ्यं दत्त्वा नक्तभोजनं कार्यम्। एवं मासचतुष्टये कृष्णद्वितीयासु संपूज्य सपत्नीकाय शय्यादानं कृत्वा तां प्रतिमां च सोपस्करां दद्यात्। अस्मिन् व्रते अक्षय्यं दांपत्यसुखं पुत्रधनाद्यवियोगो गार्हस्थ्यावियोगः सप्तजन्मनि भवति। अत्र व्रते चन्द्रोदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या, चन्द्रोदये पूजाद्युक्तेः। दिनद्वये सत्त्वेऽसत्त्वे वा परैव। इति आषाढमासनिर्णयोद्देशः।

आषाढकृष्ण द्वितीया में अशून्यशयन व्रत होता है। इस दिन लक्ष्मीसहित विष्णु भगवान् को पलंग पर सम्यक् पूजन कर कहे कि—'पत्नी पति का और पति पत्नी का वियोग से जिस प्रकार दुःख न पावे ऐसे अवियुक्त पतिपत्नी हमको करें' इत्यादि पतिपत्नी सदा साथ रहने वाले प्रार्थना-मन्त्रों से प्रार्थना करें। उसके बाद चन्द्रमा को अर्घ्य देकर रात में भोजन करें। इसी प्रकार चारो महीने की कृष्णद्वितीया को पूजा करके पत्नीसहित पति को शय्यादान करके सामग्रीयुक्त लक्ष्मीसहित विष्णु की प्रतिमा देवे। इस व्रत के करने से अक्षय पतिपत्नी को सुख एवं पुत्रधन की प्राप्ति और गृहस्थाश्रम से संयोग सात जन्मों तक होता है। इस व्रत में चन्द्रोदय में ही पूजा के विधान होने से चन्द्रोदयव्यापिनी द्वितीया ग्राह्य है। दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो अथवा दोनों दिन न हो तो परा द्वितीया ग्राह्य है। आषाढमासनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ श्रावणकृत्ये सिंहसंक्रान्तिः

[2]सिंहे पराः षोडश नाड्यः पुण्यकालः। रात्रौ तूक्तमेव। अत्र मासे एकभक्तव्रतं नक्तव्रतं विष्णुशिवाद्यभिषेकश्चोक्तः।

---

१. यस्य व्रतस्य आचरणेन शून्यं शयनं पर्यङ्को न भवतीति तद् अशून्यशयनव्रतमित्यर्थः।

२. सिंह और कर्क के सूर्य में सभी नदियां रजोदोष से दूषित रहती हैं इसीलिए अत्रि ने उनमें स्नान का निषेध किया—'सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। न स्नानादीनि कर्माणि ता कुर्वीत मानवः॥' 'स्नानादीनि' में आदि शब्द से तर्पण-सन्ध्यावन्दनादि का भी निषेध है—'रजोदुष्टेऽम्भसि स्नानं वर्ज्यं नद्यादिषु द्विजैः। कदर्थितं रजस्तेषां सन्ध्योपास्तिश्च तर्पणम्॥' इति।

सिंह की संक्रान्ति में बाद की १६ घड़ियाँ पुण्यकाल है। रात्रि में संक्रमण होने पर कह चुके हैं। इस श्रावणमास में एकभक्तव्रत, नक्तव्रत और विष्णु शिव आदि देवताओं का अभिषेक ही कहा है।

अथ सिंहे गोः प्रसवे क्रन्दने च

सिंहराशिगते सूर्ये यस्य गौः ¹प्रसूयते, तेन व्याहृतिभिर्घृताक्तायुतसंख्यसर्षपहोमं कृत्वा सा गौर्ब्राह्मणाय देया। एवं निशीथे गोः क्रन्दनेऽपि मृत्युंजयमन्त्रेण होमादिरूपा शान्तिः कार्या।

सिंहराशि के सूर्य में जिसकी गाय प्रसव करे वह घी मिले सरसों का व्याहृतियों से दस हजार होम करके वह गाय ब्राह्मण को दे देवे। इसी प्रकार आधी रात में गौ के क्रन्दन करने पर भी मृत्युञ्जय-मन्त्र से होम आदि रूप शान्ति करनी चाहिये।

अथ वडवामहिष्योः प्रसवे

एवं श्रावणमासे दिवाऽश्विनीप्रसवोऽपि निषिद्धः।

व्याघ्र के वचनानुसार गंगानदी तो रजोदोष से दूषित नहीं होती—'सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः॥' इति। समुद्रगाः = गङ्गादिनद्यः।

गंगाजल के योग से अन्य नदियों का रजोदोष-दुष्ट-जल भी पवित्र हो जाता है, ऐसा मत्स्यपुराण में कहा—'गङ्गाम्भसा समायोगाद् दुष्टमप्यम्बु पावनम्।' इति।

स्मृतिसंग्रह में नदी का लक्षण—'धनुःसहस्राण्यष्टौ च गतिर्यासां न विद्यते। न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः॥' विष्णुधर्मोत्तर में धनु का प्रमाण—'द्वादशाङ्गुलिकः शंकुस्तद् द्वयं तु क्षयः स्मृतः। तच्चतुष्कं धनुः प्रोक्तं क्रोशो धनुःसहस्रिकः॥' इति।

शिष्टों ने समुद्रगामिनी ग्यारह नदियों का नाम निर्दिष्ट किया—'गंगा-महानदी-तापी-कृष्णावेणी-गोदावरी-तुङ्गभद्रा-ताम्रपर्णी-कावेरी-रेवा-गोमती। देवल ने बतलाया—'गङ्गा च यमुना चैव प्लक्षजाता सरस्वती। रजसा नाभिभूयन्ते ये चान्ये नदसंज्ञिताः॥ शोणसिन्धुहिरण्याख्याः कोकलोहितघर्घराः। शतद्रुश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः॥' इति।

वसिष्ठ ने कालविशेष में रजोदोषाभाव बतलाया—'उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते॥' इसी प्रकार निगमने नदीतीरवासियों के लिये दोषाभाव कहा—'न तु तत्तीरवासिनाम्'। व्याघ्रपादः—'अभावे कूपवापीनामनपायिपयोभृताम्। रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति॥' इति।

१. नारदः—'भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रसूयते। मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः॥ तत्र शांतिं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत्॥ ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः। आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः॥ सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद् विप्राय दक्षिणाम्। वस्त्रयुग्मं यवं चैव समवर्णं प्रदापयेत्॥ इष्टदैवतमन्त्रेण ततः शान्तिर्भवेद् द्विजः। यहां अयुत (१००००) होम व्याहृति से करना चाहिये।

तथा—'सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत्। पौषे च महिषी सूते दिवैवाश्वतरी तथा॥ तदाऽनिष्टं भवेत् किंचित्तच्छान्तौ शान्तिकं चरेत्। अस्य वामेति सूक्तेन तद्विष्णोरिति मन्त्रतः॥ जुहुयाच्च तिलाज्येन शतमष्टोत्तराधिकम्। मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथाऽयुतम्॥ श्रीसूक्तेन तथा स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः। मध्यरात्रे निशीथे वा यदा गौः क्रन्दते सदा॥ ग्रामे वा स्वगृहे वाऽपि शान्तिकं पूर्ववद्दिशेत्।' इति।

माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा ।
सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः ॥

इत्युक्तेरत्रापि शान्तिः शान्तिग्रन्थतो ज्ञेया ।

इसी प्रकार श्रावण के महीने में दिन में घोड़ी का प्रसव भी निषिद्ध है। कहा है कि—'बुध के दिन माघ में भैंस, सावन में दिन में घोड़ी और सिंह की संक्रान्ति में गाय के प्रसव होने पर उसके स्वामी की मृत्यु होती है। अतः शान्तिग्रन्थों से इसमें भी शान्ति करनी चाहिये।

अथ सोमभौमवारव्रतम्

[1]सोमवारव्रतं कार्यं श्रावणे वै यथाविधि।
शक्तेनोपोषणं कार्यमथवा निशि भोजनम् ॥

एवं श्रावणे भौमवारे गौरीपूजाप्युक्ता । [2]श्रावणशुक्लचतुर्थी मध्याह्न-व्यापिनी पूर्वयुता ग्राह्या ।

श्रावण में सविधि सोमवार का व्रत करे। अशक्त समर्थ को उपवास करना चाहिये। अन्यथा रात्रि भोजन करे। इसी प्रकार सावन में मंगलवार को गौरीपूजा भी कही है। श्रावणशुक्ल चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी तृतीयाविद्धा ग्राह्य है।

अथ नागपञ्चमी

श्रावणशुक्लपञ्चमी [3]नागपंचमी । इयमुदये त्रिमुहूर्तव्यापिनी परविद्धा

१. सोमवारव्रत की विधि प्रदोषव्रत की तरह है। प्रदोषव्रत में 'निराहारी भवेद्दिवा' इस वचन के अनुसार दिवाभोजनाभाव-विशिष्ट-रात्रिभोजनरूप नक्तव्रत किया जाता है। इसमें सायंकाल शिवपूजा का महत्त्व स्कन्दपुराण में निर्दिष्ट है—'सोमवारे विशेषेण प्रदोषादिगुणैर्युते। केवलं वाऽपि ये कुर्युः सोमवारे शिवार्चनम् ॥ न तेषां विद्यते किञ्चिदिहामुत्र च दुर्लभम्। उपोषितः शुचिर्भूत्वा सोमवारे जितेन्द्रियः ॥ वैदिकैर्लौकिकैर्वापि विधिवत् पूजयेच्छिवम्। ब्रह्मचारी गृहस्थो वा कन्या वापि सभर्तृका ॥ विभर्तृका वा सम्पूज्य लभते वरमीप्सितम् ॥ इति ।

२. श्रावणशुक्ल चतुर्थी गणेशचतुर्थी है, यह पूर्वविद्धा ही ग्राह्य है-'तृतीया संयुता या तु सा चतुर्थी फलप्रदा। कर्तव्या व्रतिभिस्तात गणनाथसुतोषिणी ॥' श्रावणशुक्लतृतीया में गुर्जरदेश में प्रसिद्ध मधुस्रवा या मधुस्रावणीव्रत होता है—'तृतीया नभसः शुक्ला मधुश्रावणिका स्मृता।' यह चतुर्थी-विद्धा ग्राह्य है—'आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका। चतुर्थीमिश्रिता स्त्रीभिर्दिवानक्ते विधीयते ॥' इति।

३. देवीपुराण में नागपूजा का विधान—'पञ्चम्यां पूजयेन्नागाननन्ताद्यान् महोरगान्। क्षीरं सर्पिस्तु नैवेद्यं देयं सर्वसुखावहम् ॥' भविष्यपुराणे-'श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप। द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः ॥ पूजयेद् विधिवद् वीर दधिदूर्वाऽङ्कुरैः कुशैः। गन्धपुष्पो-पहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥ ये तस्यां पूजयन्तीह नागान् भक्तिपुरस्सराः। न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कुत्रचित्। तथा भाद्रपदे मासि पंचम्यां श्रद्धयाऽन्वितः ॥ समालेख्य नरो नागान् शुक्ल-कृष्णादिवर्णकैः। पूजयेद् गन्धपुष्पैश्च सर्पिर्गुग्गुलुपायसैः ॥ तस्य तुष्टिं प्रयान्त्याशु पन्नगास्तक्षकादयः आसप्तमात्कुलात्तस्य न भयं सर्पतो भवेत् ॥' इति।

चमत्कारचिन्तामणिः—'पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता। तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका ॥' मदनरत्ने—'श्रावणे पंचमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी। तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थी-सहिता हिताः ॥' इति।

ग्राह्या । परेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूना पञ्चमी पूर्वेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूनचतुर्थ्या विद्धा तदा पूर्वैव । त्रिमुहूर्ताधिकचतुर्थीवेधे द्विमुहूर्तापि परैव । मुहूर्तमात्रा तु न ग्राह्येति मम प्रतिभाति । अस्यां भित्त्यादिलिखिता मृन्मया वा यथाचारं नागाः पूज्याः ।

श्रावणशुक्ल पंचमी नागपंचमी है । यह पंचमी सूर्योदय में तीन मुहूर्त रहने वाली षष्ठीविद्धा लेनी चाहिये । यदि दूसरे दिन तीन मुहूर्त से कम पंचमी हो और पहले दिन तीन मुहूर्त से कम चतुर्थी से वेध हो, तो पूर्वा लेनी चाहिये । तीन मुहूर्त से अधिक चतुर्थी के वेध होने पर, दो मुहूर्त वाली ही परा ग्राह्य है । एक मुहूर्त वाली को तो नहीं ग्रहण करनी चाहिये, ऐसा हमारी बुद्धि में आता है । इसमें दीवार आदि पर लिखित सर्प की आकृति अथवा मिट्टी के बने सर्प की, जैसा आचार हो पूजा करे ।

अथ शाकदानम्

'श्रावणशुक्लद्वादश्यां मासं कृतस्य शाकवर्जनव्रतस्य साङ्गतार्थं ब्राह्मणाय शाकदानं करिष्ये' इति संकल्प्य ब्राह्मणं संपूज्य,

उपायनमिदं देव व्रतसंपूर्णहेतवे ।
शाकं तु द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ॥

इत्यादिमन्त्रेण पक्वमामं वा शाकं दद्यात् । ततो 'दधि भाद्रपदे मासे वर्जयिष्ये सदा हरे' इति दधिव्रतं संकल्पयेत् । अत्र दधिमात्रं वर्ज्यं तक्रादीनामनिषेधः ।

श्रावण शुक्ल द्वादशी में 'महीने भर किये हुये शाकत्याग व्रत की सिद्धि के लिये ब्राह्मण को शाकदान करूँगा'— ऐसा संकल्प कर ब्राह्मण की पूजा करके 'हे देव ! व्रत की सम्पूर्णता के लिये यह शाक की भेंट सोने के सहित हे द्विजश्रेष्ठ ! आप को देता हूँ' इस आशय के मंत्र से पकाया हुआ या कच्चा शाक देवे । इसके बाद 'हे हरे ! भाद्रपदमास में मैं दही का त्याग करूँगा' इस प्रकार दधिव्रत का संकल्प करे । इसमें केवल दधि ही त्याज्य है मटठे आदि का निषेध नहीं है ।

अथ विष्णोः पवित्रारोपणम्

अथ पारणाहे द्वादश्यां विष्णोः [1]पवित्रारोपणम् । पारणाहे द्वादश्यसत्त्वे त्रयोदश्यां पारणाहे तत्रासंभवे श्रवणर्क्षपूर्णिमायां वा कार्यम् । शिवपवित्रं चतुर्दश्यामष्टम्यां वा पौर्णमास्यां वा कार्यम् । एवं देवीगणेशदुर्गादीनां चतुर्दशीचतुर्थीतृतीयानवम्यादयो यथाकुलाचारं तिथयः । तत्तत्तिथिष्वसंभवे सर्वदेवानां

---

१. विष्णुरहस्य में पवित्रनिर्माण के द्रव्य और निर्माणप्रकार—'हैमरौप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः । कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः ॥ कृत्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् । तत्रोत्तमपवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः ॥ सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम् । साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ॥ साधारणपवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत् । उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम् ॥ कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात् षट्त्रिंशद्ग्रन्थि शोभनम् । षट्त्रिंशच्च चतुर्विंशद् द्वादशेति च केचन । चतुर्विंशद्द्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदुः ॥' इति ।

श्रावणपौर्णमास्यां कार्यम् । तत्राप्यसंभवे कार्तिक्यवधिर्गौणकालः । इदं नित्यम्, 'अकुर्वाणो व्रजत्यधः, तस्य सांवत्सरो पूजा 'निष्फला' इत्याद्युक्तेः ।

द्वादशी में पारणा के दिन भगवान् विष्णु पर पवित्रारोपण किया जाता है । पारणा के दिन द्वादशी न रहने पर संभव हो तो त्रयोदशी में पारणा के दिन अथवा पूर्णिमा में श्रावणनक्षत्र में करे । श्रीशंकर पर पवित्रारोपण चतुर्दशी अष्टमी या पूर्णिमा में करे । इसी प्रकार देवी गणेश और दुर्गा आदि का पवित्रारोपण चतुर्दशी चतुर्थी तृतीया और नवमी आदि में जैसा अपना कुलाचार हो करे । उन-उन तिथियों में संभव न होने पर सभी देवताओं का पवित्रारोपण श्रावणपूर्णिमा में करना चाहिये । श्रावणपूर्णिमा में संभव न होने पर कार्तिकपूर्णिमापर्यन्त गौण समय है । यह पवित्रारोपण नित्यकृत्य है । क्योंकि पवित्रारोपण नहीं करनेवाला नरकगामी होता है । उसकी वार्षिकी पूजा निष्फल होती है इत्यादि कहा है ।

गौणकालेऽप्यकरणे 'तदायुतं जपेन्मन्त्रस्तोत्रं वापि समाहितः' इत्युक्तेरयुतसंख्याकतद्देवतामूलमन्त्रजपः प्रायश्चित्तम् । तत्र पूर्वेद्युरधिवासनं परेह्नि पवित्रारोपणम् । द्व्यहकालासंभवे सद्योऽधिवासनपूर्वकं तत्कार्यम् ।

गौणकाल में भी न करने वाले दत्तचित्त होकर उस देवता का मूलमन्त्र दस हजार जपे, अथवा उसके स्तोत्र का पाठ करे, इस आशय की उक्ति से उस देवता का जप और स्तोत्रपाठ ही प्रायश्चित्त है । इसमें पहले दिन अधिवासन होता है और दूसरे दिन पवित्रारोपण । दो दिन का समय न मिलने पर तुरत अधिवासन कर पवित्रारोपण करे ।

अथ संक्षेपतः पवित्रकरणप्रयोगः

कार्पाससूत्रस्य नवसूत्रीं विधाय अष्टोत्तरशतनवसूत्र्या देवजानुपर्यन्तं चतुर्विंशतिग्रन्थिकमुत्तमपवित्रम्, चतुःपञ्चाशन्नवसूत्र्या ऊरुलम्बिद्वादशग्रंथिकं मध्यमम्, सप्तविंशतिनवसूत्र्या अष्टग्रन्थिकं नाभिपर्यन्तकं कनिष्ठं पवित्रं च कृत्वा विंशत्युत्तरशतेन सप्तत्या वा नवसूत्र्या पादलम्बिनीं वनमालामष्टोत्तरशतचतुर्विंशत्यन्यतरग्रन्थिकां कृत्वा द्वादशनवसूत्र्या द्वादशग्रन्थिकं गन्धपवित्रं सप्तविंशतिनवसूत्र्या गुरुपवित्रं त्रिसूत्र्याङ्गदेवतापवित्राणि कुर्यात् ।

कपास के सूत को नव-गुण करके १०८ नवगुने सूत से देवता के घुटने तक चौबीस गाँठ वाला उत्तम, ५४ नवगुने सूत से जंघे तक १२ गाँठवाला मध्यम और २७ नवगुने सूत्र से आठ गाँठवाला नाभि तक कनिष्ठ, पवित्र बनाकर १२० या सत्तर नवगुने सूत से चरण तक लटकने वाली वनमाला को १०८ या २४ गाँठ डाल कर १२ नवगुने सूत से १२ गाँठ वाला गन्धपवित्र और २७ नवगुने सूत से गुरुपवित्र तथा तिगुने सूत से अङ्गदेवताओं का पवित्र बनावे ।

शिवपवित्राणि लिङ्गविस्तारानुसारेण कुर्यात् । सर्वाणि पवित्राणि पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य प्रणवेन प्रक्षाल्य मूलेनाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य ग्रन्थीन्कुङ्कुमेन रञ्जयित्वा सर्वपवित्राणि वंशपात्रे संस्थाप्य वस्त्रेण पिधाय देवपुरतो न्यस्य,

---

१ विष्णुरहस्य में नित्यत्वबोधकपूर्ण श्लोक ऐसा है—'न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः । तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ॥ तस्माद् भक्तिसमायुक्तैर्नरो विष्णुपरायणैः । वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः ॥' इति ।

क्रियालोपविधानार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो ।
मयैतत्क्रियते देव तव तुष्ट्यै पवित्रकम् ॥
न मे विघ्नो भवेद्देव कुरु नाथ दयां मयि ।
सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः ॥

इति प्रार्थ्याधिवासनं कुर्यात् ।

शंकर के पवित्रों को लिङ्ग के विस्तार के अनुसार बनावे । सभी पवित्रों को पञ्चगव्य से प्रोक्षण, प्रणव से प्रक्षालन और १०८ मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित कर रोली से गाँठों को रंग करके सभी पवित्रोंको बाँस के पात्र में रख वस्त्र से ढँक कर देवता के सामने रख करके हे प्रभो ! क्रियालोप विधानार्थ आप की प्रसन्नता के लिये यह पवित्रक बनाता हूँ, आप मेरे ऊपर ऐसी दया करें कि पवित्रक बनाने में विघ्न न हो । हे विष्णु आप सब तरह से सब काल मेरे परम गति हों, ऐसी प्रार्थना कर के अधिवासन करे ।

तत्र देशकालौ संकीर्त्य 'संवत्सरकृतपूजाफलावाप्त्यर्थम् अमुकदेवताप्रीत्यर्थम् अधिवासनविधिपूर्वकं पवित्रारोपणं करिष्ये' इति संकल्प्य देवपुरतः सर्वतोभद्रे जलपूर्णं कुम्भं संस्थाप्य कुम्भे वंशपात्रं तत्र तानि पवित्राणि विधाय तेषु,

संवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः ।
विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोऽस्तुते ॥

इति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण चावाह्य त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रान्नवसूत्र्यां ॐकारसोमवह्निब्रह्मनागेशसूर्यशिवविश्वेदेवानुत्तममध्यमकनिष्ठपवित्रेषु ब्रह्मविष्णुरुद्रान्सत्त्वरजस्तमांस्यावाह्य वनमालायां प्रकृतिं चावाह्य मूलमन्त्रेण 'श्रीपवित्राद्यावाहितदेवताभ्यो नम' इत्यनेन गन्धाद्युपचारैः पूजयेत् ।

इस में देश काल को कह कर 'मेरी वर्ष पर्यन्त की हुई पूजा के फलप्राप्ति के लिये अधिवासन विधि पहले करके पवित्रारोपण करूँगा' ऐसा संकल्प करके देवता के आगे सर्वतोभद्र पर जल से भरा हुआ घड़ा रखकर, घड़े में बाँस के पात्र में उन पवित्रों को रखकर साल भर के यज्ञ को पवित्र करने के लिये हे पवित्र ! आज विष्णुलोक से आइये आप को नमस्कार है, इस आशय के मन्त्र या मूलमन्त्र से आवाहन कर त्रिसूत्री में ब्रह्म विष्णु रुद्रों को नवसूत्रों में ओंकार सोम अग्नि नागेश सूर्य शिव और विश्वेदेवों को उत्तम मध्यम कनिष्ठ पवित्रों में विष्णु ब्रह्मा और रुद्रों तथा सत्त्व रज तम का और वनमाला में प्रकृति का आवाहन कर मूलमन्त्र से 'श्रीपवित्र आदि देवताओं को नमस्कार है' इससे सब की गन्धादि उपचारों से पूजा करे ।

ततः पूर्वसंपादितं वितस्तिमात्रं द्वादशग्रन्थिकं गन्धपवित्रमादाय,

विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् ।
सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् ॥

इति मन्त्रेण मूलसंपुटितेन देवपादयोः समर्पयेत् । देवस्य करे बध्नीयादित्यन्ये । ततो देवं पञ्चोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत्—

आमन्त्रितोसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव ॥
क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥

ततः साष्टाङ्गं प्रणम्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । इत्यधिवासनम् ।

पहले के बनाये हुये बित्ते भर के बारह गाँठवाले गन्धपवित्र को लेकर, हे भगवन् ! विष्णु तेज से उत्पन्न सुन्दर सभी मनोरथों को देने और सभी पातकों के नाश करने वाले पवित्र आप के अंगों में धारण कराता हूँ, मूलमन्त्र से सम्पुटित इस मन्त्र से देवता के चरणों में समर्पण करे। देवता के हाथ में पवित्र बाँधे--ऐसा अन्य लोग कहते हैं। इसके बाद पञ्चोपचार से देवता की पूजा कर प्रार्थना करे—हे पुराणपुरुषोत्तम ! हे देवेश ! आप मुझसे आमन्त्रित किये गये हैं, हे केशव ! आप हमारे निकट आवें, प्रातः आप की पूजा करूँगा। दूध के समुद्र में शेषनाग की शय्या पर सोने वाले मेरे निकट हों प्रातः आप की पूजा करूँगा, आप को नमस्कार है। इसके बाद साष्टाङ्ग प्रणाम करके पुष्पाञ्जलि अर्पण करे। अधिवासन समाप्त।

अथ पवित्रारोपणमन्त्रादिः

अत्र सर्वत्र मूलमन्त्रो गुरूपदिष्टस्तान्त्रिको वैदिको वा देवगायत्रीरूपो वा ग्राह्यः । ततो रात्रिं सत्कथाजागरेणातिवाह्य प्रातःकाले सद्योधिवासने गोदोहान्तरिते वा काले 'पवित्रारोपणाङ्गभूतं देवपूजनं च करिष्ये' इति संकल्प्य देवं पवित्राणि च फलाद्युपनैवेद्यान्तगन्धाद्युपचारैः संपूज्य गन्धदूर्वाक्षतयुतं कनिष्ठं पवित्रमादाय,

देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥
पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।
शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥

इति मन्त्रेण मूलसंपुटितेन दत्त्वा मध्यमोत्तमपवित्रे वनमालां चैवमेवैतन्मंत्रावृत्त्या दद्यात् । अंगदेवताभ्यो नाम्ना समर्प्य महानैवेद्यं दत्त्वा नीराज्य प्रार्थयेत्—

यहाँ सर्वत्र मूलमन्त्र तान्त्रिक या वैदिक गुरु द्वारा उपदिष्ट, अथवा देवगायत्रीरूप का ग्रहण करे। इसके बाद सुन्दर कथाओं और जागरण से रात बिता कर प्रातःकाल में सद्यः अधिवासन में या गो दोहन समय के अन्त में 'पवित्रारोपण का अंगभूत देवपूजन और पवित्रपूजन करूँगा' यह संकल्प कर देवता और पवित्रों को फल आदि नैवेद्यान्त गन्ध आदि उपचारों से पूजन कर गन्ध-दूब-अक्षत-सहित कनिष्ठ पवित्र को लेकर हे देवदेव ! वार्षिकी पूजा के फल देने और पवित्र करने के लिये इस पवित्रक को आप ग्रहण करें आप को नमस्कार है। हे सुरेश्वर ! जो कुछ मैंने पाप किये हैं, आप की प्रसन्नता से मैं शुद्ध हो जाऊँ, ऐसे पवित्रक को करें। इस मूल संपुटित मन्त्र से पवित्रक देकर मध्यम और उत्तम पवित्रक तथा वनमाला को मूलमन्त्र की आवृत्ति कर देवता को पवित्रक को देवे। अङ्ग देवताओं को नाम से समर्पण कर महानैवेद्य देकर आरती उतार प्रार्थना करे:—

मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥
[1]वनमालां यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ।
तद्वत्पवित्रतंतूंस्त्वं पूजां च हृदये वह ॥
जानताऽजानता वापि यत्कृतं न तवार्चनम् ।
केनचिद्विघ्नदोषेण परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर ॥ इति ।

अत्र शिवादौ गरुडध्वजेत्यादौ वृषवाहनेत्यूहः । वनमालामिति श्लोकस्य तु लोपः । देव्यां तु देवदेव सुरेश्वरेत्यादौ देविदेवि सुरेश्वरीत्यादिस्त्रीप्रत्ययांतपदोहः कार्यः । शेषं समानम् ।

मणि और मूँगे की मालाओं से मन्दार आदि के पुष्पों से हे गरुडध्वज ! यह आप की वार्षिकी पूजा हो। हे देव ! वनमाला और कौस्तुभमणि को जैसे सदा हृदय में स्थान देते हैं उसी प्रकार पवित्र के तन्तुओं और पूजा को हृदय में स्थान दें। जाने या अनजाने किसी विघ्न के दोष से मैंने आप का पूजन नहीं किया हो तो हे देव ! वह परिपूर्ण हो। मन्त्र से हीन क्रिया से हीन और भक्ति से हीन जो मैंने पूजन किया हो वह पूरा हो। दिन रात हजारों अपराध मुझ से हो जाते हैं हे परमेश्वर अपना दास जानकर क्षमा करें। इस आशय के मन्त्र में शिव आदि की पूजा करने के समय गरुडध्वज के स्थान पर वृषवाहन शब्द की कल्पना करे। वनमाला वाले श्लोक को न कहे। देवीके पूजन में तो 'देवदेव सुरेश्वर' के स्थान पर 'देविदेवि सुरेश्वरि' इत्यादि स्त्रीप्रत्ययान्तपद की कल्पना करे। शेष सभी कर्म समान हैं।

ततो गुरुं संपूज्य पवित्रं दत्त्वान्यब्राह्मणेभ्यः सुवासिनीभ्यश्चान्यानि दत्त्वा स्वयमपि सकुटुम्बो धारयेत् । ततो ब्राह्मणैः सह भुक्त्वा त्रिरात्रं ब्रह्मचर्यादिनियमवान् देवे पवित्राणि धारयेत् । देवस्य स्नानादिकोपचारान् पवित्राणि उत्तार्य कारयेत् । त्रिरात्रान्ते देवं सम्पूज्य पवित्राणि विसर्जयेत् । अत्र शिवादिपवित्रारोपणे चतुर्दशी पूर्वविद्धा ग्राह्या । एवं पूर्णिमापि त्रिमुहूर्तसायाह्नव्याप्ता पूर्वविद्धैव ग्राह्या । अष्टम्यादितिथ्यन्तराण्यपि पवित्रारोपणे प्रथमपरिच्छेदोक्तसामान्यतिथिनिर्णयानुसारेण ग्राह्याणि । इति पवित्रारोपणविधिः ।

तदनन्तर गुरु की पूजा करके गुरु को, ब्राह्मणों को और सौभाग्यवती स्त्रियों को पवित्रक देकर सकुटुम्ब स्वयं भी धारण करे। अनन्तर ब्राह्मणों के साथ भोजन करके तीन रात ब्रह्मचर्य आदि

---

1. वनमाला का लक्षण—'आरम्य मुकुटं यावत् सूत्रैर्विरचिता शुभा। आपादलम्बिनी माला वनमाला प्रकीर्तिता ॥' दूसरा लक्षण—'तुलसीकुन्दमन्दारपारिजाताम्बुजैस्तु या। पञ्चभिर्ग्रथिता माला वनमाला प्रकीर्तिता ॥' इति ।

नियमयुक्त होकर शरीर में पवित्रों को धारण करे। देवता के स्नानादिक उपचारों और पवित्रों को उतार कर करावे। त्रिरात्र के अन्त में देवता की पूजा करके पवित्रों का विसर्जन करे। इस पवित्रारोपणमें पूर्वविद्धा पूर्णिमा ग्राह्य है। शिव आदि देवताओं के पवित्रारोपण में पूर्वविद्धा चतुर्दशी ग्राह्य है। इसी प्रकार पूर्णिमा भी तीन मुहूर्त सायाह्न में रहे तब पूर्वविद्धा ही लेनी चाहिये। पवित्रारोपण में अष्टमी आदि दूसरी तिथियाँ भी प्रथमपरिच्छेद में कहे हुए सामान्य तिथिनिर्णय के अनुसार लेनी चाहिये। पवित्रारोपण समाप्त।

अथ बह्वृचानामुपाकर्मनिर्णयः

तत्र बह्वृचानां श्रावणशुक्लपक्षे श्रवणनक्षत्रं पञ्चमी हस्त इति कालत्रयम्। तत्र श्रवणं मुख्यकालस्तदलाभे पञ्चम्यादिः। तथा च कालतत्त्वविवेचने संग्रहकारिकायाम्—

पर्वणि श्रवणे कार्यं ग्रहसंक्रान्त्यदूषिते।
अध्वर्युभिर्बह्वृचैश्च कथंचित्तदसंभवे॥

तत्रैव हस्तपञ्चम्यां तयोः केवलयोरपि। तत्र दिनद्वये श्रवणसत्त्वे यदि पूर्वसूर्योदयमारभ्य प्रवृत्तं श्रवणं द्वितीयदिने सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्तं वर्तते तदा परदिन एवोपाकर्म[1], धनिष्ठायोगप्राशस्त्यात्। यदि त्रिमुहूर्तन्यूनं तदा पूर्वदिने एव संपूर्णव्याप्तेः। यदि पूर्वदिने सूर्योदये नास्ति परदिने सूर्योदयोत्तरं मुहूर्तद्वयं वर्तते तदोत्तरदिने एव, उत्तराषाढावेधनिषेधात्। यदि परदिने मुहूर्तद्वयन्यूनं पूर्वदिने चोत्तराषाढाविद्धं तदा पञ्चम्यादिकालो ग्राह्यः। पञ्चमी हस्त इति कालद्वयं तु औदयिकं मुहूर्तत्रयव्यापि मुख्यम्। तदलाभे पूर्वविद्धमपि। एवं भाद्रपदशुक्लपक्षेपि श्रवणपञ्चमीहस्तकालत्रयनिर्णयो ज्ञेयः। एतद्बह्वृचैः पूर्वाह्णे कार्यम्।

इस में बह्वृचों का श्रावण शुक्लपक्ष में श्रवणनक्षत्र, पञ्चमी और हस्त, ये तीन काल हैं। इनमें श्रवण मुख्यकाल है। श्रवण के न मिलने पर पञ्चमी आदि है। यह कालतत्त्वविवेचन में संग्रहकारिका से स्पष्ट है। ग्रहण और संक्रान्ति से दूषित न होने पर पूर्णिमा में श्रवणनक्षत्र में अध्वर्यु और बह्वृचों के द्वारा उपाकर्म कर्तव्य है। किसी प्रकार से ऐसा न होने पर पूर्णिमा में ही हस्त पंचमी अथवा केवल हस्त और पंचमी में करना चाहिये। दोनों दिन में यदि श्रवण हो तो पहले दिन सूर्योदय से लगकर श्रवण दूसरे दिन सूर्योदय के बाद तीन मुहूर्त हो तब दूसरे ही दिन धनिष्ठायोग के उत्तम होने से उपाकर्म कर्त्तव्य है। यदि तीन मुहूर्त से कम हो तब सम्पूर्ण व्याप्ति के होने से पहले ही दिन करे। यदि पहले दिन सूर्योदय में न हो दूसरे दिन सूर्योदय के अनन्तर दो मुहूर्त हो, तब दूसरे दिन ही करना चाहिये, उत्तराषाढ़ावेध के निषेध से। यदि दूसरे दिन दो मुहूर्त कम हो, उत्तराषढ़ा से वेध हो तो पञ्चमी आदि काल ग्रहण करे। पञ्चमी और हस्त यह दो काल तो उदयकालीन तीन

---

१. विधिपूर्वक वेदादि के प्रारम्भ कर्म का नाम 'उपाकर्म' है। उपाकर्म = उपाकरणमुपक्रमः। मनुः—'श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाऽप्युपाकृत्य यथाविधि। युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्॥' भविष्यपुराणे—'संप्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये। स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः॥ उपाकर्मादिकं प्रोक्तमृषीणां चैव तर्पणम्। शूद्राणां मन्त्ररहितं स्नानं दानं च शस्यते॥ उपाकर्मणि कर्तव्यमृषीणां चैव पूजनम्।' इति।

मुहूर्तव्यापिनी मुख्य है। ऐसा न होने पर पूर्वविद्धा भी ग्राह्य है। इसी प्रकार भाद्रपद शुक्लपक्ष में भी श्रवण, पञ्चमी, हस्त, इन तीनों कालों का निर्णय जानना चाहिये। यह उपाकर्म बह्वृचों के द्वारा पूर्वाह्ण में कर्त्तव्य है।

अथ यजुर्वेद्युपाकर्मनिर्णयः

तत्र बह्वृचानां श्रवणवत्सर्वयजुर्वेदिनां श्रावणपौर्णमासी मुख्यः कालः। पौर्णमास्याः खण्डत्वे यदा पूर्णिमा पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने षण्मुहूर्तव्यापिनी तदा सर्वयाजुषाणामुत्तरैव। यदा शुद्धाधिकतया दिनद्वयेपि सूर्योदयव्यापिनी तदा सर्वयाजुषाणां पूर्वैव। पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयत्रयादिव्यापिनी षण्मुहूर्तन्यूना तदा तैत्तिरीयैरुत्तरा ग्राह्या, तैत्तिरीयभिन्नयाजुषैः पूर्वा ग्राह्या। यदा पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयन्यूना भवति क्षयवशान्नास्त्येव वा तदा सर्वयाजुषाणां पूर्वैव।

बह्वृचों के श्रवण की तरह यजुर्वेदियों का श्रावणपूर्णिमा मुख्यकाल है। खण्डपूर्णिमा के रहने पर जब पहले दिन मुहूर्त आदि के अनन्तर प्रवृत्त होकर दूसरे दिन छ मुहूर्त तक रहती हो तब सभी यजुर्वेदियों की परा ग्राह्य है। जब शुद्ध और अधिकता से दोनों दिन में भी सूर्योदयव्यापिनी हो तब सब यजुर्वेदियों को पूर्वा ही लेनी चाहिये। पहले दिन मुहूर्त आदि के बाद लगी पूर्णिमा दूसरे दिन दो मुहूर्त या तीन मुहूर्त तक रहती है और छः मुहूर्त से कम है तब तैत्तिरीयों के द्वारा उत्तरा पूर्णिमा उपाकर्म के योग्य है। तैत्तिरीय से भिन्न यजुर्वेदियों की पूर्वा ग्राह्य है। जब पहले दिन मुहूर्त आदि के बाद लगकर दूसरे दिन क्षय के कारण दो मुहूर्त से न्यून होती है या नहीं मिलती है तो सभी यजुर्वेदियों को पूर्वा ही ग्राह्य है।

अथ हिरण्यकेशीयोपाकर्मनिर्णयः

हिरण्यकेशीतैत्तिरीयाणां श्रावणीपौर्णमासी मुख्यः कालः, तदभावे श्रावणे हस्तः। श्रावणशुक्लपञ्चमी तु तत्तत्सूत्रेऽनुक्तेर्न ग्राह्या। एतदेव भाद्रपदेपि कालद्वयमिति विशेषः। खण्डतिथित्वे निर्णयः पूर्वोक्त एव। हस्तनक्षत्रमपि औदयिकं [१]सङ्गवस्पर्शि ग्राह्यमन्यथा पूर्वविद्धमेव।

हिरण्यकेशीय तैत्तिरीयों का श्रावणीपूर्णिमा मुख्यकाल है। इसके अभाव में श्रावण में हस्तनक्षत्र है। श्रावणशुक्ल पञ्चमी तो उनके सूत्र में नहीं कहने से ग्राह्य नहीं है। यही दो काल भाद्रपद में भी है, यह विशेषता है। खण्डतिथि होने पर निर्णय पहले ही कह चुके हैं। हस्तनक्षत्र भी उदय से संगव काल स्पर्श करने वाला ही ग्राह्य है। नहीं तो पूर्वविद्ध ही लेना चाहिये।

अथापस्तम्बोपाकर्मनिर्णयः

आपस्तम्बानां श्रावणी पौर्णमासी मुख्या, तदभावे भाद्रपदीति विशेषः।

आपस्तम्बों के उपाकर्म में श्रावणीपूर्णिमा मुख्य है। ऐसा न होने पर भाद्रपद की पूर्णिमा ग्राह्य है, यह विशेष है।

अथ बौधायनोपाकर्मनिर्णयः

बौधायनानां श्रावणी पौर्णमासी मुख्या, दोषसंभावनया तदभावे आषाढीति विशेषः। एतेषामपि खण्डतिथित्वे पूर्वोक्त एव निर्णयः।

---

[१] सङ्गता गावो दोहनाय यत्र सः। सङ्गवः = प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय।

बौधायनों की श्रावणपूर्णिमा मुख्य है। दोष की सम्भावना से उसके न होने पर आषाढ़ी पूर्णिमा ले, यह विशेष है। ये सब भी खण्ड तिथि हो तो पहले का ही निर्णय स्वीकार्य है।

अथ काण्वमाध्यन्दिनोपाकर्मनिर्णयः

अथ काण्वमाध्यन्दिनादिकात्यायनानां श्रवणयुता श्रावणपूर्णिमा केवला वा हस्तयुक्ता पञ्चमी केवला वा मुख्यः कालः। अतः केवलश्रवणे केवलहस्ते च तैर्न कार्यम्। श्रावणमासे विघ्नदोषे भाद्रपदगतपूर्णिमापञ्चम्योः कार्यम्। तिथेः खण्डत्वे षण्मुहूर्ताधिक्ये उत्तरा। षण्मुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा ग्राह्येत्यादिः पूर्वोक्त एव निर्णयः।

काण्वमाध्यन्दिन आदि कात्यायनों की श्रवणयोगसहित पूर्णिमा अथवा केवल पूर्णिमा, हस्तयुक्ता पञ्चमी या पञ्चमीमात्र मुख्य काल है। इस लिये केवल श्रवण तथा केवल हस्त में इन लोगों को उपाकर्म नहीं कर्त्तव्य है। श्रावण के महीने में विघ्न हो जाने पर भाद्रपद की पूर्णिमा या पञ्चमी में करना चाहिये। खण्डतिथि के होने पर छ मुहूर्त से अधिक में परा। और छ मुहूर्तसे कम में पूर्वा ग्राह्य है, यह पहले का कहा हुआ निर्णय है।

अथ सामवेद्युपाकर्मनिर्णयः

अथ सामवेदिनां भाद्रपदशुक्ले हस्तनक्षत्रं मुख्यः कालः। संक्रान्त्यादिदोषेण तत्रासंभवे श्रावणमासे हस्तो ग्राह्य इति निर्णयसिन्धुः। अन्ये तु भाद्रपदहस्ते दोषसम्भवे श्रावणपौर्णमास्यामुपाकर्म कृत्वा भाद्रपदस्य हस्तपर्यन्तं न पठनीयं ततः परं पठनीयमित्याहुः। हस्तस्य खण्डत्वे दिनद्वयेऽपराह्णपूर्णव्याप्तौ अपराह्णैकदेशस्पर्शे वा परदिने एवोपाकर्म। पूर्वदिन एवापराह्णपूर्णव्याप्तौ पूर्वत्रैव, सर्वत्र सामगानामपराह्णस्यैवोपाकर्मकालत्वेनोक्तेः। पूर्वदिन एवापराह्णैकदेशस्पर्शे दिनद्वयेप्यपराह्णस्पर्शाभावे वा परत्रैव।

सामवेदियों को उपाकर्म में भाद्रपद शुक्लपक्ष में हस्तनक्षत्र मुख्य काल है। संक्रान्ति आदि के दोष से उसमें न होने पर श्रावणमास में हस्तनक्षत्र ग्राह्य है, ऐसा निर्णयसिन्धुकार कहते हैं। अन्य लोग तो भाद्रपद हस्त में दोष की सम्भावना होने पर श्रावण की पूर्णिमा में उपाकर्म करके भाद्रपदीय हस्तनक्षत्र पर्यन्त नहीं पढ़े। इसके बाद पढ़ना चाहिये, ऐसा कहते हैं। खण्ड हस्त के होने पर दो दिन अपराह्ण में पूर्ण व्याप्ति होने से अथवा अपराह्ण के एकदेश में स्पर्श होने से पर दिन ही उपाकर्म होगा। पहले ही दिन अपराह्ण में पूर्णव्याप्ति होने से पहले ही दिन होगा। सामवेदियों का सर्वत्र अपराह्ण ही में उपाकर्मकाल कहा गया है। पहले ही दिन अपराह्ण के एकदेश में स्पर्श होने अथवा दोनों दिन अपराह्ण में स्पर्श न होने पर परदिन में उपाकर्म होगा।

येषां सामवेदिनां प्रातःसङ्गवौ कर्मकालत्वेनोक्तौ तेषां पूर्वत्रापराह्णव्याप्तिं त्यक्त्वा परदिने सङ्गवोर्ध्वं वर्तमानहस्तग्रहणम्। सिंहस्थे सूर्ये उपाकर्मविधानं तु यदि श्रावणे हस्तः पूर्णिमा वा सिंहस्थे सूर्ये भवति तदा तत्रोपाकर्म न कर्कस्थे इति सामगानां श्रावणमासगतहस्तपर्वणोर्व्यवस्थापरम्। अन्यशाखिनां सिंहस्थरवेर्विधिर्निषेधो वा नास्ति।

जिन सामवेदियों का प्रातःकाल और संगवकाल कर्मकाल कहा गया है, उनका पहले दिन अपराह्णव्याप्ति को छोड़कर दूसरे दिन संगवकाल के अनन्तर वर्तमान हस्तनक्षत्र का ग्रहण करना चाहिये।

सिंह के सूर्य में उपाकर्म का विधान तो यदि श्रावण में हस्त अथवा पूर्णिमा, सिंह के सूर्य में हो तब उसमें उपाकर्म कर्तव्य है कर्क के सूर्य में नहीं, ऐसी सामवेदियों की श्रावणमास के हस्त और पूर्णिमा की व्यवस्था है। अन्य शाखा वालों के लिये सिंह के सूर्य का न तो विधि है और न निषेध।

अथ अथर्ववेद्युपाकर्मनिर्णयः

अथर्ववेदिनां तु श्रावण्यां भाद्रपदगतायां वा पौर्णमास्यामुपाकर्म। तिथिखण्डे औदयिकसङ्गवकालव्यापिनी तिथिर्ग्राह्येति।

अथर्ववेदियों का तो श्रावण की पूर्णिमा में वा भाद्रपद की पूर्णिमा में उपाकर्म होता है। खण्ड तिथि में उदयकाल अथवा संगवकालव्यापिनी तिथि ग्राह्य है।

अथ सर्वशाखिनां साधारणोपाकर्मनिर्णयः

सर्वशाखिनां श्रावणभाद्रपदमासगतस्वस्वगृह्योक्तकालेषु ग्रहणसंक्रान्त्याशौचादिदोषसंभावनायां सर्वथा कर्मलोपप्राप्तौ शाखान्तरोक्तकालानां ग्राह्यत्वमावश्यकम्। तत्रापस्तम्बबौधायनसामगादीनां श्रावणभाद्रपदगतपञ्चमीपूर्णिमादेरप्यविशेषेण ग्राह्यत्वप्राप्तौ नर्मदोत्तरदेशे सिंहगते सूर्ये पञ्चम्यादेर्ग्रहणम्। नर्मदादक्षिणभागे कर्कटस्थे सूर्ये श्रावणपञ्चम्यादेर्ग्रहणमिति व्यवस्थेति कौस्तुभे उक्तम्।

सभी शाखावालों को श्रावण या भाद्रपद में, अपने-अपने गृह्यसूत्रों के कहे हुये काल में उपाकर्म करना चाहिये। ग्रहण संक्रान्ति और आशौच आदि दोष की संभावना में सब तरह से कर्मलोप की प्राप्ति होने पर दूसरे शाखावालों के कहे हुये समय में उपाकर्म करना आवश्यक है, उसमें आपस्तम्ब, बौधायन, सामवेदियों का श्रावण भाद्रपद की पञ्चमी और पूर्णिमा आदि की सामान्यतः ग्राह्यता प्राप्त होने पर नर्मदा से उत्तर में रहने वालों को सिंह के सूर्य में पंचमी आदि के लेने एवं नर्मदा के दक्षिण भागवालों को कर्क के सूर्य में श्रावण पंचमी आदि के लेने की व्यवस्था कौस्तुभ में कही है।

तेन ऋग्वेदिनामपि सर्वथा कर्मलोपप्रसक्तौ पूर्णिमापि सिंहस्थकर्कटस्थादिव्यवस्थया ग्राह्येति मम भाति। सर्वशाखिभिः श्रावणमासे मुख्यकाले पर्जन्याभावेन व्रीह्याद्यौषधिप्रादुर्भावाभावे आशौचादौ वा भाद्रपदश्रवणादौ कार्यम्।

इससे ऋग्वेदियों को भी सब प्रकार से कर्मलोप की स्थिति में पूर्णिमा भी सिंहस्थ कर्कटस्थ आदि की व्यवस्था से ग्राह्य है, ऐसा हमको भासता है। सभी शाखा वाले श्रावणमास के मुख्य समय में मेघों के अभाव से धान आदि औषध के पैदा न होने पर अथवा आशौच आदि के होने पर भाद्रपद श्रवण आदि में उपाकर्म करना चाहिये।

औषधिप्रादुर्भावाभावेपि श्रावणमासे कार्यमिति कर्कादिमतम्। सर्वशाखिनां गृह्योक्तमुख्यकालत्वेन निर्णीते दिने [1]ग्रहणस्य संक्रान्तेर्वा सत्त्वे संक्रान्तिरहिताः पञ्चम्यादयो ग्राह्याः।

---

१. पूर्णिमा में संक्रान्ति या ग्रहण पड़ने पर स्मृतिमहार्णव—'संक्रान्तिर्ग्रहणं वाऽपि यदि पर्वणि जायते। तन्मासे हस्तयुक्तायां पंचम्यां वा तदिष्यते॥' वृद्धमनु और कात्यायन ने विशेष कहा—'अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिर्ग्रहणं यदा। उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषकृत्॥' गार्ग्यने भी इसी विषय को कहा—'यद्यर्धरात्रादर्वाक्तु ग्रहः संक्रम एव वा। नोपाकर्म तदा कुर्याच्छ्रावण्यां श्रवणेऽपि वा॥' इति।

कर्काचार्य आदि का मत तो यह है कि औषधियों के नहीं पैदा होने पर भी श्रावणमास में उपाकर्म करे। सब शाखावालों को अपने गृह्य में कहे मुख्यकाल रूप से निर्णीत दिन में ग्रहण या संक्रान्ति के होने पर संक्रान्ति से रहित पंचमी आदि का ग्रहण करना चाहिये।

अथ ग्रहणसंक्रान्तावुपाकर्मनिर्णयः

ग्रहणसंक्रान्तियोगश्चोपाकर्मसंबन्धिन्यहोरात्रे भविष्यन्मध्यरात्रात्पूर्वमतीत-मध्यरात्रादूर्ध्वं चेति यामाष्टके विद्यमानश्रवणनक्षत्रपूर्णिमादितिथ्यस्पृष्टोप्युपाक-र्मदूषकः। केचित्तूक्तयामाष्टकादन्यत्रापि विद्यमानो ग्राह्यश्रवणादिनक्षत्रपर्वादि-तिथिस्पर्शी चेत्सोपि दूषक इत्याहुः।

ग्रहण और संक्रान्ति का योग उपाकर्म सम्बन्धी दिन रात में तथा आगे आने वाले दिन रात से पीछे तक हो चाहे श्रवणनक्षत्र पूर्णिमा आदि में न भी हो तब भी उपाकर्म को दूषित करता है। कोई तो— उक्त आठ पहर से अन्यत्र रहने वाला ग्रहण संक्रान्ति के योग का ग्रहण करने वाला श्रवण आदि नक्षत्र पूर्णिमा आदि तिथि में स्पर्श हो वह भी उपाकर्म का दूषक है— ऐसा कहते हैं।

अथ नूतनोपनीतानामुपाकर्मनिर्णयः

नूतनोपनीतानां प्रथमोपाकर्म [1]गुरुशुक्रास्तादौ मलमासादौ सिंहस्थे गुरौ च न कार्यम्। द्वितीयाद्युपाकर्म तु अस्तादावपि कार्यम्। मलमासे तु द्वितीयाद्यपि न कार्यम्। प्रथमोपाकर्म स्वस्तिवाचननान्दीश्राद्धादि कृत्वा कार्यम्। नूतनोपनी-तानां श्रावणमासगतपञ्चमीहस्तश्रवणादिकालेषु गुरुशुक्रास्तादिप्रतिबन्धेनोपाकर्मा-रम्भाभावे भाद्रमासगतपञ्चमीश्रवणादयो ग्राह्याः।

मौञ्जीं यज्ञोपवीतं च नवं दण्डं च धारयेत्।
अजिनं कटिसूत्रं च नवं वस्त्रं तथैव च॥

इति ब्रह्मचारिणो विशेषः प्रतिवर्षं ज्ञेयः।

नये यज्ञोपवीत वाले को पहिला उपाकर्म गुरु शुक्र के अस्त आदि मलमास आदि और सिंह में गुरु के रहने पर नहीं करना चाहिए। दूसरा उपाकर्म अस्त आदि में भी करना चाहिये। मलमास में नहीं करना चाहिए। पहला उपाकर्म स्वस्तिवाचन नान्दीश्राद्धादि करके करे। जिनका नया उपवीत हुआ है वे श्रावणमास की पञ्चमी हस्तनक्षत्र श्रवण आदि समयों में गुरु शुक्र आदि के अस्त होने से उपाकर्म का आरम्भ न हो तो भाद्रमास की पंचमी श्रवणनक्षत्र आदि में करें। मूँज की मेखला, यज्ञोपवीत, नया दण्ड, मृगचर्म, कटिसूत्र और नये वस्त्र को धारण करें। यह ब्रह्मचारी के लिए वार्षिक विशेषता है।

उपाकर्मोत्सर्जने ब्रह्मचारिसमावृतगृहस्थवानप्रस्थैः सर्वैः कर्तव्ये। उत्सर्जनका-लस्तु नेह प्रपञ्च्यते। उपाकर्मदिनेऽथवेति वचनानुसारेण सर्वशिष्टानामिदानीमु-पाकर्मदिने एवोत्सर्जनकर्मानुष्ठानाचारेणैतन्निर्णयस्यानुपयोगात्। एते उपाकर्मो-त्सर्जने यदि अन्यैर्द्विजैः सह करोति तदा लौकिकाग्नौ कुर्यात्। यदैकः करोति

---

१. कश्यपोक्त मूलवचन—'गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये बाल्ये वा वार्धकेऽपि वा। अथाधिमासे संक्रान्तौ मलमासादिषु द्विजः॥ प्रथमोपाकृतिर्न स्यात् कृतं कर्म विनाशकृत्।' इति।

तदा स्वगृह्याग्नौ कुर्यात् । कात्यायनैस्तु औपवसथ्य अग्नावेव होतव्यं न लौकिकाग्नौ ।

उपाकर्म और उत्सर्जन ब्रह्मचारी समावृत-गृहस्थ और वानप्रस्थ सबको करना चाहिए। उत्सर्जन के काल का यहाँ प्रपञ्च नहीं कर रहे हैं। 'उपाकर्मदिनेऽथवा' इस वचन के अनुसार इस समय उपाकर्म के दिन ही उत्सर्जन कर्म का अनुष्ठान सब शिष्टजनों का आचार है इससे उसके निर्णय की कोई उपयोगिता नहीं है। उपाकर्म और उत्सर्जन यदि दूसरे द्विजों के साथ करता है तब लौकिक अग्नि में करे। यदि अकेले करता है तो अपनी गृह्य अग्नि में करे। कात्यायन शाखा वाले को तो औपवसथ्य अग्नि में ही होम करना चाहिए, लौकिकाग्नि में नहीं।

अथ पञ्चावत्तिवादिविचारः

बह्वृचादिः स्वयं चतुरवत्ती[1] बहुभिश्चतुरवत्तिभिरुपाकर्मादिकं कुर्वन्नेकस्यापि जामदग्न्यादेः पञ्चावत्तिनः सत्त्वे तदनुरोधेन पञ्चावत्तमेव कुर्यात् । चतुरवत्तिनामपि पञ्चावत्तित्वस्य वैकल्पिकत्वोक्त्या तेषामपि कर्मवैगुण्याभावात् ।

बह्वृच आदि चतुरवत्ती स्वयं बहुत से चतुरवत्तियों के साथ उपाकर्म आदि करते हुए एक भी जामदग्न्य आदि पंचावत्ती के रहने पर उसके अनुरोध से पंचावत्ती उपाकर्म करे। चतुरवत्तियों को पंचावत्तित्व भी वैकल्पिक है, अतः पंचावत्ती करने से कर्म का वैगुण्य नहीं है।

अथ अकरणे प्रायश्चित्तम्

अकरणे दोषश्रवणेन प्रत्यब्दमेते कर्तव्ये । क्वचित्पुस्तके निर्णयसिन्धावेतदकरणे प्राजापत्यकृच्छ्रमुपवासो वा प्रायश्चित्तं दृश्यते न सर्वत्र । उपाकर्मोत्सर्जनयोरुभयोरपि ऋषिपूजनमुक्तम् । ऋष्यादितर्पणं तूत्सर्जन एव । अत्र विवाहोत्तरं तिलतर्पणे न दोषः ।

उपाकर्म और उत्सर्जन नहीं करने से दोषश्रुति के कारण इन दोनों को प्रतिवर्ष करना चाहिये। किसी निर्णयसिन्धु की पुस्तक में उपाकर्म उत्सर्जन के न करने पर प्राजापत्य कृच्छ्र अथवा उपवास प्रायश्चित्त दिखाई देता है, सब पुस्तकों में ऐसा नहीं है। उपाकर्म और उत्सर्जन दोनों में ऋषि-पूजन कहा है। ऋषि आदि का तर्पण तो उत्सर्जन में ही होता है। इसमें विवाह के बाद तिल से तर्पण करने में कोई दोष नहीं है।

अत्र संकल्पे 'अधीतानां छन्दसामाप्यायनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमुपाकर्मदिने अद्योत्सर्जनाख्यं कर्म करिष्ये' इति । उपाकर्मणि तु 'अधीतानामध्येष्यमाणानां च छन्दसां यातयामतानिरासेनाप्यायनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम्' इति विशेषः । अवशिष्टः सर्वोपि प्रयोगविशेषः स्वस्वगृह्यानुसारेण ज्ञेयः । अत्र नदीनां [2]रजोदोषो न । ब्रह्मादिदेवऋष्यादीनां जले सान्निध्यं तेन स्नानात्सर्वदोषक्षयः । ऋषिपूजनस्थानस्थितजलस्पर्शनपानाभ्यां सर्वकामावाप्तिः । इति सर्वशाखिसाधारणनिर्णयः ।

---

१. अवत्ती—अव + दो + इन, विभाजन करनेवाला। चतुरवत्ती = ४ भागों में बाँटने वाला।
२. वसिष्ठः—'उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥'

यहाँ उत्सर्जन के संकल्प में 'पढ़े हुए वेदों के तृप्ति के द्वारा परमेश्वर की प्रीति के लिए उपाकर्म के दिन आज उत्सर्जन नाम का कर्म करूँगा' यह और उपाकर्म के संकल्प में तो 'पढ़े हुए और आगे पढ़े जानेवाले वेदों की यातयामता को दूर करते हुए और उसके शक्ति-वर्धन के द्वारा परमेश्वर कीप्रसन्नता के लिए' इतना विशेष वाक्य होगा। बाकी सब प्रयोग अपने अपने गृह्यसूत्र के अनुसार हीजानना चाहिये। इस कर्म में नदियों का रजोदोष नहीं होता। ब्रह्मा आदि देवता और ऋषि आदि की जल में सन्निधि रहती है, इसलिये स्नान से सब दोषों का विनाश होता है। ऋषिपूजन के स्थान में रखे हुए जल के स्पर्श करने और पीने से सम्पूर्ण मनोरथ की सिद्धि होती है। यह सभी शाखा वालों के लिये साधारण निर्णय है।

अथ रक्षाबन्धनम्

अथ [1]रक्षाबन्धनमस्यामेव पूर्णिमायां भद्रारहितायां त्रिमुहूर्ताधिकोदयव्यापिन्यामपराह्णे प्रदोषे वा कार्यम्। उदये त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वेद्युर्भद्रारहिते प्रदोषादिकाले कार्यम्। इदं ग्रहणसंक्रान्तिदिनेपि कर्तव्यम्। मन्त्रस्तु—

येन बद्धो बली राजा दानवेंद्रो महाबलः।
तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥ इति।

इसी पूर्णिमा में उदयकाल में तीन मुहूर्त से अधिक रहने वाली भद्रा जब न रहे तब अपराह्ण में अथवा प्रदोष में रक्षाबन्धन करना चाहिए। उदयकाल में तीन मुहूर्त से कम पूर्णिमा के रहते पहले दिन भद्रा के न रहने पर प्रदोष आदि काल में करे। इसे ग्रहण और संक्रान्ति के दिन में भी करना चाहिए। मन्त्र का आशय है—'जिससे दानवश्रेष्ठ महाबलवान राजा बली बाँधा गया इससे तुमको बाँधता हूँ, हे रक्षे! तुम चलायमान न हो'।

अथ हयग्रीवोत्पत्तिः

अत्रैव पूर्णिमायां [2]हयग्रीवोत्पत्तिः। श्रावणपूर्णिमा कुलधर्मादौ त्रिमुहूर्तसायाह्नव्याप्ता पूर्वविद्धैव ग्राह्या। त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे परा।

इसी पूर्णिमा में हयग्रीव भगवान् का जन्म भी हुआ है। कुल धर्म आदि कर्मों में सायाह्न में तीन मुहूर्त रहने वाली यह पूर्वविद्धा और यदि सायाह्न में तीन मुहूर्त से कम हो तो परा पूर्णिमा ग्राह्य है।

अथ श्रवणाकर्मादि

अस्यामेव पौर्णमास्यामाश्वलायनानां श्रवणाकर्म सर्पबलिश्च रात्रावुक्तः। तैत्तिरीयाणां तु सर्पबलिरेवोक्तः। कात्यायनानां सामगानां च श्रवणाकर्मसर्पबली द्वाव-

---

१. भविष्यपुराणे—'ततोऽपराह्णसमये रक्षापोटलिकां शुभाम्। कारयेदक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हेमभूषितैः॥' यहाँ 'ततः' शब्द से उपाकर्मानन्तरम् अर्थात् उपाकर्म के बाद अर्थ है। रक्षाबन्धन भद्रा में न करे। संग्रहे—'भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा। श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी॥' इति।

इस दिन ग्रहण हो तो भद्रारहित समय में प्रदोष या रात्रि में भी रक्षा बाँधे। निर्णयसिन्धौ—'नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च। उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहदोषो न विद्यते॥' यहाँ 'ग्रह' का अर्थ है 'ग्रहण'।

२. कल्पतरुः—'श्रावण्यां श्रवणे जातः पूर्वं हयशिरा हरिः। जगाद सामवेदं तु सर्वकल्मषनाशनम्॥ स्नात्वा सम्पूजयेत्तं तु शंखचक्रगदाधरम्।' इति।

प्युक्तौ। श्रवणाकर्मसर्पबल्याश्वयुजीप्रत्यवरोहणादिपाकसंस्थानां स्वस्वकालेष्वकरणे प्राजापत्यं प्रायश्चित्तं कार्यं न तु कालान्तरे तदनुष्ठानम्। श्रवणाकर्मादिसंस्थाः पत्न्यामृतुमत्यामपि कार्याः। प्रथमारम्भस्तु न भवति। अत्र पौर्णमासी अस्तमयप्रभृतिप्रवृत्तकर्मपर्याप्तकालव्यापिनी चेत् पूर्वैव ग्राह्या। दिनद्वये तत्सम्बन्धस्य सत्त्वे असत्त्वे वा परैव। प्रयोगस्तु स्वस्वसूत्रेषु ज्ञेयः।

इसी पूर्णिमा में आश्वलायनों का श्रवणाकर्म और सर्पबलि भी रात्रि में कही है। तैत्तिरीयों की तो सर्पबलि ही कही है। कात्यायनों और सामवेदियों के श्रवणाकर्म और सर्पबलि दोनों कहे गये हैं। श्रवणाकर्म, सर्पबलि, आश्वयुजी और प्रत्यवरोहण पाकसंस्थाओं के अपने अपने समय में नहीं करने पर उसे प्राजापत्य प्रायश्चित्त करना चाहिए, न कि दूसरे समय में उसका प्रयोग करे। श्रवणाकर्मादि संस्थायें स्त्री के रजस्वला रहने पर भी करे। पहले पहले इसका आरम्भ तो स्त्री के रजस्वला होने पर नहीं करना चाहिए। इस पूर्णिमा में अस्त के समय से रहकर कर्म के लिए पर्याप्त काल तक रहने वाली हो तो पूर्वा ग्राह्य है। दो दिन में पूर्णिमा का सम्बन्ध होने या न होने पर परा ही लेनी चाहिए। इसका प्रयोग तो अपने अपने सूत्र ग्रन्थों से जानना चाहिए।

अथ संकष्टचतुर्थीनिर्णयः

श्रावणकृष्णचतुर्थ्यां प्रारम्य कृष्णचतुर्थीषु यावज्जीवमेकविंशतिवर्षाणि वा एकवर्षं वा संकष्टचतुर्थीव्रतं कार्यम्। अशक्तौ प्रतिवर्षं श्रावणचतुर्थ्यामेव कार्यम्। अत्र चन्द्रोदयव्याप्त्यातिथिनिर्णयः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः। सोद्यापनव्रतप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

श्रावणकृष्ण चतुर्थी से आरम्भ कर जीवन पर्यन्त या इक्कीस वर्ष तक अथवा एक वर्ष तक प्रत्येक मास को कृष्ण चतुर्थी में संकटचतुर्थी का व्रत करना चाहिए। असमर्थावस्था में प्रतिवर्ष श्रावणकृष्ण चतुर्थी में ही करे। यहाँ चन्द्रोदयकाल में रहने वाली तिथि का निर्णय प्रथमपरिच्छेद में कह चुके हैं। उद्यापनसहित व्रत की समाप्ति का विधान कौस्तुभ आदि से जानना चाहिए।

अथ जन्माष्टमीव्रतनिर्णयः

तत्राष्टमी [1]द्विविधा—शुद्धा विद्धा च। दिवा रात्रौ वा सप्तमीयोगरहिता यत्र दिने यावती तत्र तावती शुद्धा। दिवा रात्रौ वा सप्तमीयोगवती यस्मिन्न-

---

१. जन्माष्टमीव्रत के निर्णायकवचनों में कहीं भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी और कहीं श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी का उल्लेख मिलता है। जैसे ब्रह्मपुराण में—'तथा भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे। अष्टविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः॥' तथा भविष्योत्तर में—'मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां निशीथे कृष्णपक्षगे। शशाङ्के वृषराशिस्थे ऋक्षे रोहिणीसंज्ञके योगेऽस्मिन् वसुदेवाद्धि देवकी मामजीजनत्। तस्मान्मां पूजयेत्तत्र शुचिः सम्यगुपोषितः॥' इत्यादि वचनों में भाद्रपद मास का निर्देश है।

भविष्यपुराण में ही—'श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः॥' पद्मपुराण में—'प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं तु तैः। यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता॥ किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः। किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा॥' वसिष्ठसंहिता में दोनों मास का नाम निर्देश है—'श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताऽष्टमी।

होरात्रे यावती तत्र तावती विद्धा। सा पुनर्द्विविधा—रोहिणीयुता रोहिणीयोग-रहिता चेति। तत्र रोहिणीयोगरहितकेवलाष्टमीभेदाः—सप्तमीनाड्यः ५९ पलानि ५९ अष्टमी ५८।५ अस्यां शुद्धायां संदेहो नास्ति, द्वितीयकोट्यभावात्। सप्तमी २ अष्टमी ५५ अस्यां विद्धायाप्यसंदेहः, दिनान्तरे अभावेन द्वितीयकोट्य-भावात्।

अष्टमी दो प्रकार की होती है—शुद्धा और विद्धा। दिन रात में या सप्तमीयोग से शून्य जिस दिन जितनी हो उतनी ही शुद्ध है। दिन रात में सप्तमी से युक्त जिस अहोरात्र में जितनी अष्टमी हो उसमें उतनी विद्धा जाननी चाहिए। फिर वह दो प्रकार की है—रोहिणीनक्षत्र से युक्त और रोहिणीयोग से रहित। उसमें रोहिणीयोग से रहित केवल अष्टमी के भेद हैं, जैसे—सप्तमी ५९ घड़ी ५९ पल और अष्टमी ५८ घड़ी ५ पल इसमें दूसरी कोटि के अभाव से शुद्धा में संदेह नहीं है। सप्तमी २ घड़ी, अष्टमी ५५ घड़ी, यहाँ दूसरे दिन न होने से द्वितीय कोटि के अभाव के कारण इस विद्धा में भी संदेह नहीं है।

यदा दिनद्वये केवलाष्टमी वर्तते तदा चत्वारः पक्षाः—पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी, परेद्युरेव निशीथव्यापिनी, दिनद्वयेऽपि निशीथव्यापिनी, दिनद्वयेऽपि निशीथव्याप्त्यभाव इति। रात्र्यर्धं निशीथपदार्थः। स्थूलसूक्ष्मदृष्ट्या त्वष्टमो मुहूर्तो निशीथः। तत्र पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी यथा—सप्तमी ४० अष्टमी ४२। अत्र सप्तमीयुता पूर्वविद्धैवाष्टम्युपोष्या। यथा वा—अष्टमी ६०।४ इयं शुद्धाधिकापि पूर्वैव। परेद्युरेव निशीथे यथा—सप्तमी ४७ अष्टमी ४६ अत्र परैवाष्टम्युपोष्या। उभयत्र निशीथे यथा—सप्तमी ४२ अष्टमी ४६ अत्रापि परैवाष्टमी ग्राह्या। दिनद्वये निशीथव्याप्त्यभावो यथा—सप्तमी ४७ अष्टमी ४२ अत्रापि परैवाष्टमी ग्राह्या।

यदा कृष्णा नरैर्लब्धा सा जयन्तीति कीर्तिता॥' इन वचनों में श्रावण कृष्णाष्टमी शुक्लादि अमान्त-मास के अभिप्राय से और भाद्रपद कृष्णाष्टमी कृष्णादि पूर्णिमान्तमास के अभिप्राय से है। ऐसा जानकर जन्माष्टमीव्रत का निर्णय समझना चाहिये।

जन्माष्टमीव्रत में अष्टमी चन्द्रोदयव्यापिनी होनी चाहिये। दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो दूसरे दिन व्रत करे। सप्तमीविद्धा अष्टमी ग्राह्य नहीं है। यथा अग्निपुराणे—'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तम्या संयुताऽष्टमी। सऋक्षाऽपि न कर्तव्या सप्तम्या संयुता यदि॥' पद्मपुराणे—'पञ्चगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मद्यदूषितम्। रविविद्धा तथा त्याज्या रोहिण्याऽपि युताष्टमी॥' रविविद्धा अर्थात् सप्तमीविद्धा।

यदि दूसरे दिन अष्टमी चन्द्रोदयव्यापिनी न हो तो सप्तमी से युत अष्टमी ग्राह्य है। विष्णु-पुराणे—'कार्या विद्धाऽपि सप्तम्या रोहिणीसंयुताष्टमी। जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते॥'

ब्रह्मवैवर्ते—'सप्तमी नाष्टमीयुक्ता न सप्तम्या युताष्टमी। सर्वेषु व्रतकल्पेषु अष्टमी परतः शुभा॥' इन वचनों में सप्तमीविद्धा अष्टमी का निषेध निगमवाक्य की एकवाक्यता से शुक्लपक्ष की अष्टमी के लिये है। निगमवाक्य यह है—'शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता॥ उपवासादिकार्येषु एष धर्मः सनातनः॥' स्मार्तगृहस्थ अर्धरात्रि में जिस दिन अष्टमी हो और वह सप्तमीविद्धा भी हो तो उसी दिन जन्माष्टमीव्रत करते हैं।

श्रीरामानुजसम्प्रदाय के जन्माष्टमीव्रत का विशिष्ट निर्णय इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में देखें।

जब दो दिन केवल अष्टमी है तब चार पक्ष उपस्थित होते हैं—पहले ही दिन अर्धरात्रिव्यापिनी, दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी, दोनों दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी, दोनों दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी का अभाव। निशीथ पदार्थ रात का आधा होता है। स्थूल और सूक्ष्म दृष्टि से आठवाँ मुहूर्त निशीथ (अर्द्धरात्रि) कहलाता है। उसमें पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी, जैसे—सप्तमी ४० अष्टमी ४२, इस स्थिति में सप्तमी से युक्त पूर्वविद्धा ही अष्टमी में उपवास करे, जैसे—अष्टमी ६० घड़ी ४ पल, यह शुद्धा और अधिका भी है तो पूर्वा ही ग्राह्य है। दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि में, जैसे—सप्तमी ४७ अष्टमी ४६, यहाँ भी परा ही अष्टमी उपवास योग्य है। दोनों दिन अर्द्धरात्रि में, जैसे—सप्तमी ४२ अष्टमी ४६, यहाँ भी परा ही अष्टमी ग्रहण के योग्य है। दोनों ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी न होने से, जैसे—सप्तमी ४७ अष्टमी ४२, यहाँ भी परा अष्टमी ग्राह्य है।

अत्र सर्वत्र सप्तमीयुक्तायां रात्रिपूर्वार्धविसाने कलयाप्यष्टम्याः सत्त्वे एव निशीथव्यापित्वं नवमीयुक्तायां रात्र्युत्तरार्धादिभागे सत्त्व एवोत्तरत्र निशीथव्यापित्वं सप्तमीदिने उत्तरभागे एव सत्त्वे नवमीयुतदिने पूर्वभाग एव सत्त्वे निशीथाव्यापित्वपक्ष एव मन्तव्यः। एवं वक्ष्यमाणरोहिणीयुक्तभेदेष्वपि ज्ञेयम्।

यहाँ सब जगह सप्तमीयुक्त रात्रि के पूर्वार्द्ध बीतने पर एक कला भी यदि अष्टमी है तो अर्द्धरात्रिव्यापिनी है। रात के उत्तरार्द्ध आदि भाग में नवमीयुता होने से ही दूसरे दिन अर्धरात्रिव्यापिनी होती है। सप्तमी के दिन उत्तर भाग में ही होने से और नवमीयुक्त दिन के पूर्वभाग में ही रहने पर दोनों दिन अर्धरात्रि में व्याप्ति नहीं माननी चाहिए। इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले रोहिणी के भेदों में भी ज्ञातव्य है।

रोहिणीयुक्ताष्टमीभेदाः—रोहिणीयुताष्टम्यामपि पूर्वदिन एव निशीथेऽष्टमीरोहिण्योर्योगः, परदिनं एव निशीथे योगः, दिनद्वये निशीथे योग इति पक्षत्रयम्। पूर्वेद्युरेव निशीथे योगो यथा—सप्तमी ४० तद्दिने कृत्तिका ३५ अष्टमी ४६ तद्दिने रोहिणी ३६ अत्र पूर्वविद्धैवाष्टम्युपोष्या। परदिने एव निशीथयोगो यथा—सप्तमी ४२ तद्दिने कृत्तिका ५० अष्टमी ४७ रोहिणी ४६ अत्र परैवाष्टमी ग्राह्या। दिनद्वये निशीथेऽष्टमीरोहिण्योर्योगो यथा—सप्तमी ४२ कृत्तिका ४३ अष्टमी ४७ रोहिणी ४८ अत्र परैवाष्टमी ग्राह्या।

रोहिणीयुक्त अष्टमी के भेद—रोहिणीयुक्त अष्टमी में भी पहले ही दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी और रोहिणी का योग, दूसरे ही दिन अर्धरात्रि में अष्टमी रोहिणी का रहना और दोनों दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी रोहिणी का योग, इस प्रकार तीन पक्ष होते हैं। पहले ही दिन आधी रात में योग, जैसे—सप्तमी ४० और उसदिन कृत्तिका ३५ अष्टमी ४६, और उस दिन रोहिणी ३६ इसमें पूर्वविद्धा ही अष्टमी उपवास योग्य है। दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि का योग जैसे—सप्तमी ४२ उस दिन कृत्तिका ५० अष्टमी ४७ रोहिणी ४६ इस स्थिति में परा ही अष्टमी ग्रहण योग्य है। दोनों दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी और रोहिणी का मिलन, जैसे—सप्तमी ४२ कृत्तिका ४३ अष्टमी ४७ रोहिणी ४८ ऐसे स्थल में परा अष्टमी ही ग्राह्य हैं।

अथ रोहिणीयुताष्टम्यामेव दिनद्वयेपि निशीथे रोहिणीयोगाभावो बहुधा संभवति। परेद्युरेव निशीथव्यापिनी अष्टमी परेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुक्ता चेत्येकः पक्षः। यथा—सप्तमी ४७ अष्टमी ५० अष्टमीदिने कृत्तिका ४६ अत्र पक्षे

परैवाष्टमी ग्राह्या। एतत्तुल्ययुक्त्या पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी पूर्वेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति पक्षेपि पूर्वैव ग्राह्या। दिनद्वयेपि निशीथादन्यत्र रोहिणीयुता परेद्युरेव निशीथव्यापिनीति द्वितीयः पक्षः। सप्तमी ४८ तद्दिने कृत्तिका ३० अष्टमी ४८ रोहिणी २५ अत्रापि परैव ग्राह्या।

रोहिणीयुक्त अष्टमी में ही दो दिन आधीरात में रोहिणीयोगका न होना बहुत संभव होता है। दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी अष्टमी और दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि से अन्यत्र रोहिणी का योग यह एक पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४७ अष्टमी ५० अष्टमी के दिन कृत्तिका ४६ इस पक्ष में परा ही अष्टमी ग्राह्य है। इस समान युक्ति से पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी पहले ही दिन आधीरात से अन्यत्र रोहिणी का योग, इस पक्ष में भी पूर्वा ही ग्राह्य है। दो दिन में भी अर्द्धरात्रि से अन्यत्र रोहिणी के योग होने पर दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी यह दूसरा पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४८ उस दिन कृत्तिका ३० अष्टमी ४८ रोहिणी २५ यहाँ भी परा ही ग्राह्य है।

दिनद्वये निशीथादन्यत्र रोहिणीयुक्ता पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनीति तृतीयो यथा—सप्तमी २५ कृत्तिका ४८ अष्टमी २० रोहिणी ४३ अत्रापि परैव। रोहणीयोगसाम्येपि पूर्वत्र सप्तमीविद्धत्वात्, यथा वा—अष्टमी ६०।४ कृत्तिका ५० अत्र पूर्वैव ग्राह्या। अहोरात्रद्वये रोहिणीयोगसाम्येपि पूर्वस्याः शुद्धत्वात् पूर्णव्याप्तेश्च।

दो दिन में भी अर्द्धरात्रि से अन्यत्र रोहिणीयुक्त और पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी का होना यह तीसरा पक्ष है, जैसे—सप्तमी २५ कृत्तिका ४८ अष्टमी २० रोहिणी ४३ यहाँ भी परा ही लेना चाहिए। रोहिणी का योग तुल्य होने पर भी पहले दिन सप्तमी के वेध होने से, जैसे—अष्टमी ६० घड़ी ४ पल, कृत्तिका ५०, यहाँ पूर्वा ही लेना चाहिए, क्योंकि दो अहोरात्र में समता से रोहिणीयोग में भी पहली की शुद्धता और पूर्ण व्याप्ति है।

दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी परेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति चतुर्थः। यथा—सप्तमी ४३ अष्टमी ४९ कृत्तिका ४६ अत्र परैवाष्टमी। एवं दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी पूर्वत्रैव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति पंचमो यथा—सप्तमी ४१ तद्दिने रोहिणी ४३ अष्टमी ४७ अत्र पूर्वैवाष्टम्युपोष्या। दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनीदिनद्वये निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति षष्ठो यथा—सप्तमी ४२ कृत्तिका ४८ अष्टमी ४८ रोहिणी ४२ अत्र परैव।

दोनों दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो और दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि के अन्यत्र रोहिणीयोग का होना यह चौथा पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४३ अष्टमी ४९ कृत्तिका ४६ यहाँ परा ही अष्टमी ग्राह्य है। इसी तरह दो दिन में अर्द्धरात्रि में अष्टमी हो तो पहले ही दिन निशीथ के बाद अर्द्धरात्रि के अनन्तर रोहिणी का योग होना यह पाचवाँ पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४१ उस दिन रोहिणी ४३ और अष्टमी ४७ यहाँ पूर्वा अष्टमी ही उपवास योग्य है। दोनों दिन में अर्द्धरात्रिव्यापिनी और दोनों दिन में ही अर्द्धरात्रि से भिन्न काल में रोहिणीसहित अष्टमी का होना यह छठाँ पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४२ कृत्तिका ४८ अष्टमी ४८ रोहिणी ४२ इसमें परा ग्राह्य है।

दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी पूर्वेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति सप्तमो

यथा—सप्तमी ४८ तद्दिने रोहिणी ५८ अष्टमी ४२ अत्र परैवाष्टमी ग्राह्या। अत्रैव पक्षे परेद्युरेव उभयत्र वा निशीथादन्यत्र रोहिणीयोगेपि परैवेति कैमुत्येन सिद्धम्।

दोनों दिन में ही अर्द्धरात्रिव्यापिनी और दोनों ही दिन अर्द्धरात्रि से भिन्न समय में रोहिणी-योग का होना यह सातवाँ पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४८ उस दिन रोहिणी ५८ अष्टमी ४२ यहाँ परा अष्टमी ही ग्राह्य है। इसी पक्ष में दूसरे ही दिन अथवा दोनों दिन आधीरात से अन्यत्र रोहिणी के योग में भी अष्टमी परा ही ग्राह्य है, यह कैमुतिक न्याय से सिद्ध है।

पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी परेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणी युतेति चरमः पक्षः। यथा—सप्तमी ३० अष्टमी २५ तद्दिने कृत्तिका ५ यथा वाष्टमी ६०।४ अष्टमीशेषदिने कृत्तिका १ अत्रोदाहरणद्वयेपि परैवाष्टमी ग्राह्या। स्वल्पस्यापि रोहिणीयोगस्य प्राशस्त्येन मुहूर्तमात्राया अपि परस्याग्राह्यतया पूर्वत्र विद्यमानाया निशीथव्याप्तेरनादरात्।

पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो और दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि से अन्यत्र रोहिणी का योग हो यह अन्तिम पक्ष है, जैसे—सप्तमी ३० अष्टमी २५ उस दिन कृत्तिका ५ अथवा अष्टमी ६० घड़ी ४ पल, अष्टमी के शेष दिन में कृत्तिका १ इन दोनों उदाहरणों में भी परा अष्टमी ग्राह्य है। स्वल्प भी रोहिणीयोग के प्रशस्त होने, मुहूर्तमात्र भी परा की अग्राह्यता होने और पहले दिन अर्द्धरात्रि में विद्यमान अष्टमी के अनादर होने से।

सर्वपक्षेषु यदि परदिने मुहूर्तन्यूना वर्तते तदा सा न ग्राह्या। किंतु पूर्वैवेति तु पुरुषार्थचिन्तामणावुक्तम्। परेद्युरेव निशीथव्यापिनी पूर्वेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुता यथा—सप्तमी ४८ रोहिणी ५५ अष्टमी ४८ अत्र परैव। विद्धायां निशीथोत्तरं रोहिणीयोगस्याप्रयोजकत्वात्।

सभी पक्षों में यदि दूसरे दिन मुहूर्त से कम अष्टमी हो तब उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए। किन्तु पुरुषार्थचिन्तामणि में पूर्वा ही लेना कहा है। दूसरे दिन ही अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो तथा पहले ही दिन अर्द्धरात्रि से भिन्न समय में रोहिणी का योग हो, जैसे—सप्तमी ४८ रोहिणी ५५ अष्टमी ४८ इस स्थिति में परा ही ग्राह्य है। विद्धा तिथि में अर्द्धरात्रि के बाद रोहिणी का योग निरर्थक है।

अथ जन्माष्टमीनिर्णयसंग्रहः

अत्र विस्तरेणोक्तानां बहुपक्षाणां संक्षेपेण निर्णयसंग्रहः पुरुषार्थचिन्तामणौ। शुद्धसमायां शुद्धन्यूनायां वा विद्धसमायां विद्धन्यूनायां वा केवलाष्टम्यां संदेह एव नास्ति। शुद्धाधिकाऽपि केवलाष्टमी पूर्वैव। विद्धाधिका तु पूर्वदिन एव निशीथ-व्याप्तौ पूर्वा। दिनद्वये निशीथव्याप्तावव्याप्तौ वा परैवेति। अथ रोहिणीयोगे यदि शुद्धसमायां शुद्धन्यूनायां वा ईषदपि रोहिणीयोगस्तदा न संदेहः। शुद्धाधिकायां पूर्वदिने दिनद्वयेपि वा रोहिणीयोगे पूर्वैव। शुद्धाधिकायामुत्तरदिने एव रोहिणी-योगे मुहूर्तमात्राप्युत्तरैव। विद्धाधिकायां पूर्वदिन एव निशीथात्पूर्वं निशीथे वा

रोहिणीयोगे पूर्वा । दिनद्वयेपि परत्रैव वा निशीथे निशीथं विहाय वा रोहिणी-योगे परैवेति संक्षेपेण निर्णयसंग्रहः ।

यहां विस्तार से कहे हुए बहुत से पक्षों के संक्षिप्त निर्णय का संग्रह पुरुषार्थचिन्तामणि में है । शुद्ध तुल्या में अथवा शुद्ध न्यूना में और विद्ध तुल्या में विद्ध न्यूना केवल अष्टमी में तो संदेह ही कहीं है । शुद्धा और अधिका भी केवल अष्टमी पूर्वा ही है । विद्धा अधिका अष्टमी तो यदि पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो तो पहले को करे । दो दिनों में अर्द्धरात्रिव्यापिनी होने पर या न होने पर परा ही ग्राह्य है । रोहिणी के योग में यदि शुद्ध समा में अथवा शुद्ध न्यूना में किञ्चित् मात्र भी रोहिणी का योग हो तब तो संदेह का अवसर ही नहीं है । शुद्ध अधिका अष्टमी में पहले दिन अथवा दोनों दिन में रोहिणी के योग में पूर्वा ग्राह्य है । शुद्धा अधिका अष्टमी में दूसरे ही दिन रोहिणी के योग होने पर मुहूर्तमात्रा परा अष्टमी ग्रहण योग्य है । पहले दिन ही विद्धा अधिका अष्टमी में अर्द्धरात्रि के पहले या अर्द्धरात्रि ही में रोहिणी मिले तो पूर्वा ग्राह्य है । दोनों में ही दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि में या अर्द्धरात्रि को छोड़कर रोहिणी प्राप्त हो तो परा ही अष्टमी ग्राह्य है । यह संक्षेप से निर्णय का संग्रह है ।

एवं कौस्तुभादिनवीनग्रन्थानुसृतमाधवमतानुसारेण जन्माष्टमी निर्णीता मत-भेदाः—अत्र केचित्केवलाष्टमी जन्माष्टमी सैव रोहिणीयुता [1]जयन्तीसंज्ञकेति जयन्त्यष्टम्योर्व्रतैक्यमाहुः । अन्ये तु जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च भिन्नं रोहिणी-योगाभावे जयन्तीव्रतलोपाज्जन्माष्टमीव्रतमेव कार्यम् । यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्ययोगो जन्माष्टमी तदा अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादिति जयन्तीदिने निशीथाख्यकर्मकालेऽष्ट-म्याद्यभावेपि साकल्यवचनापादितकर्मकालव्याप्तिमादाय व्रतद्वयमपि जयन्तीदिन एव तन्त्रेणानुष्ठेयम् । व्रतद्वयस्याप्यकरणे महादोषश्रवणेन फलश्रवणेन च नित्यका-म्योभयरूपत्वात् । न तु निशीथव्याप्तायां पूर्वाष्टम्यां जन्माष्टमीव्रतं कृत्वा जयन्ती-दिने पारणमनुष्ठेयम् । नित्यव्रतलोपे प्रत्यवायापातादित्याहुः ।

---

१. विष्णुरहस्य में जयन्ती योग—'अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्षसंयुता । भवेत् प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता ॥' सनत्कुमारसंहितायाम्—'श्रावणस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां नराधिप । रोहिणी यदि लभ्येत जयन्ती नाम सा तिथिः ॥' वह्निपुराणे—कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी यदि । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता उपोष्या सा प्रयत्नतः ॥' जयन्तीयोग के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत हैं । जैसे वसिष्ठसंहिता में—'अहोरात्रं तयोर्योगो ह्यसम्पूर्णो भवेद्यदि । मुहूर्तमप्यहोरात्रे योगश्चे-त्समुपोषयेत् ॥' विष्णुधर्मः-'अर्धरात्रे तु योगोऽयं ताराणमुदये सति । नियतात्मा शुचिः स्नातः पूजां तत्र प्रवर्तयेत् ॥' पुराणान्तरे—'वासरे वा निशायां वा यत्र स्वल्पाऽपि रोहिणी । विशेषेण नभोमासे सैवोपोष्या मनीषिभिः ॥' इति ।

इन वचनों की व्यवस्था मुख्यमध्यमाधमरूप से करनी चाहिये अर्थात् अहोरात्र रोहिणी का योग 'मुख्य' अर्धरात्रिमात्र में रोहिणी का योग 'मध्यम' और दिनादि में रोहिणी का योग 'अधम' है ।

यदि पूर्व दिन अर्धरात्रि में केवल अष्टमी हो और दूसरे दिन रोहिणीयुत अष्टमी अर्धरात्रि को स्पर्श न करती हो तो पूर्व दिन में ही व्रत करना चाहिये । क्योंकि नवमी बुधादि योग की तरह रोहिणी का योग फलातिशय बोध के लिये है ।

इसी प्रकार कौस्तुभ आदि नवीन ग्रन्थानुसृत माधवमत के अनुसार जन्माष्टमीनिर्णय में मतभेद हैं। इसमें कोई लोग कहते हैं कि जो केवलाष्टमी है वही जन्माष्टमी है और वही रोहिणीयुक्त जयन्ती नाम की है। इस प्रकार जयन्ती और अष्टमी दोनों एक ही व्रत है। दूसरे कहते हैं—जन्माष्टमीव्रत से जयन्तीव्रत भिन्न है। रोहिणी का योग न होने पर जयन्तीव्रत के लोप होने से जन्माष्टमीव्रत ही करना चाहिए। जिस वर्ष में जयन्ती नामक योग हो उस वर्ष में जन्माष्टमी जयन्ती में ही हो जाती है। इस प्रकार जयन्ती के दिन अर्द्धरात्रि नामक कर्मकाल में अष्टमी आदि के न होने पर भी सम्पूर्णता-बोधक-वचनों से कर्मकाल-व्याप्ति लेकर दोनों व्रतों को जयन्ती के ही दिन तन्त्र से करना चाहिए। दोनों व्रत के नहीं करने से बहुत दोष श्रवण और करने से फलश्रुति के कारण दोनों नित्य और काम्य भी हैं। न कि अर्द्धरात्रिव्यापिनी पहली अष्टमी में जन्माष्टमी व्रत करके जयन्ती के दिन पारण करे। नित्य व्रत के लोप होने से प्रत्यवाय होता है।

निर्णयसिन्धौ तु उक्तरीत्या [1]माधवमतमुपपाद्य हेमाद्रिमते जन्माष्टमीव्रतमेव नित्यम्। जयन्तीव्रतं तु नित्यमपि कलियुगे लुप्तमिति केचिन्नानुतिष्ठन्ति इत्युक्त्वा स्वमतेन यस्मिन्वर्षे पूर्वदिने एव निशीथेऽष्टमी परदिने एव निशीथादन्यत्र जयन्त्याख्ययोगस्तत्रोपोषणद्वयं कार्यम्। व्रतद्वयस्यापि नित्यत्वेनाकरणे दोषात्। जयन्त्यामष्टम्यन्तर्भावोक्तिस्तु मूर्खप्रतारणामात्रमिति प्रतिपादितम्।

निर्णयसिंधु में तो कथित रीति से माधवमत का उपपादन कर हेमाद्रिमत से जन्माष्टमीव्रत ही नित्य है। जयन्तीव्रत तो नित्य होते हुए भी कलियुग में लुप्त है इसी से इसे कोई नहीं करते। ऐसा कह कर अपने मत से जिस वर्ष में पहले ही दिन अर्द्ध रात्रि में अष्टमी हो और दूसरे दिन ही अर्द्धरात्रि से भिन्न समय में जयन्ती नामक योग हो वहाँ दो उपवास करना चाहिए, क्योंकि दोनों व्रतों के नित्य होने से न करने पर दोष है। जयन्ती में अष्टमी के अन्तर्भाव वाली बात तो मूर्खों की प्रतारणामात्र है, ऐसा प्रतिपादन किया है।

मम तु कौस्तुभादिनवीनपरिगृहीतमाधवमतरीत्या जयन्त्यन्तर्भावेनाष्टमीव्रतानुष्ठानमेव युक्तं प्रतिभाति। अत्र व्रते बुधसोमवारयोगः प्राशस्त्यविधायको न तु रोहिणीवन्निर्णायकः।

मेरे मत में तो कौस्तुभ आदि नवीन ग्रन्थ सम्मत, माधव के मत से अष्टमी में जयन्ती का अन्तर्भाव करके अष्टमीव्रत का करना ही ठीक प्रतीत होता है। इस व्रत में बुध और सोमवार का योग प्राशस्त्यबोधक है, न कि रोहिणी की तरह निर्णायक है।

अथात्र पारणानिर्णयः

अथ द्वितीयदिने भोजनरूपं पारणं व्रताङ्गं विहितं तत्कालो निर्णीयते। केवलतिथ्युपवासे तिथ्यन्ते नक्षत्रयुक्ततिथ्युपवासे उभयान्ते पारणं कार्यम्। यदि तिथिनक्षत्रयोरेकतरान्तो दिने लभ्यते उभयान्तस्तु रात्रौ तदा दिवैवान्यतरान्ते पारणम्। यदा दिवा नैकस्याप्यन्तस्तदा निशीथादर्वागन्यतरान्ते उभयान्ते वा पारणम्। यदा तु निशीथाव्यवहितपूर्वक्षणे एकतरान्त उभयान्तो वा तदा निशीथेपि पारणं कार्यम्।

---

१. कालमाधव में माधव ने नामभेद, निमित्तभेद, रूपभेद, शुद्ध-मिश्र-भेद और निर्देशभेद से जन्माष्टमी तथा जयन्ती को दो व्रत सिद्ध किया।

जन्माष्टमीव्रत के दूसरे दिन भोजन-रूप-पारण व्रत का अङ्ग है। अतः उसके काल का निर्णय कहते हैं। केवल तिथि के उपवास करने पर तिथि के अन्त में और नक्षत्रसहित तिथि के उपवास करने पर नक्षत्र और तिथि दोनों के अन्त में पारण करना चाहिए। यदि दिन में तिथि और नक्षत्र में से एक का अन्त होता है और रात में नक्षत्र तिथि दोनों का अन्त मिलता है तो दिन में ही तिथि नक्षत्र में से किसी एक के अन्त में पारण करना चाहिए। यदि दिन में दो में से किसी एक का अन्त नहीं होता हो तो अर्द्धरात्रि से पहले तिथि नक्षत्र दोनों में से किसी एक के अन्त होने पर अथवा दोनों के अन्त में पारण करे। जब की अर्द्धरात्रि से अव्यवहित पूर्व क्षण में किसी एक का अथवा दोनों का अन्त होता हो तब अर्द्धरात्रि में भी पारण करना चाहिए।

भोजनासंभवे पारणासंपत्त्यर्थं फलाद्याहारो विधेयः। केचित्तूक्तविषये निशीथे पारणं न कार्यं किंतूपवासात्तृतीयेह्नि दिवा कार्यमित्याहुः, तन्न युक्तम्; [१]अशक्तस्तु एकतरान्ताभावेपि उत्सवान्ते प्रातरेव देवपूजाविसर्जनादि कृत्वा पारणं कुर्यात्।

भोजन की संभावना न होने पर पारण की पूर्ति के लिए फल आदि खाना चाहिए। कुछ लोग तो इस विषय में अर्द्धरात्रि में पारण नहीं करे किन्तु उपवास के तीसरे दिन दिन में करे, ऐसा कहते हैं यह ठीक नहीं है। असमर्थ को तो तिथि नक्षत्र में से किसी एक के अन्त न होने पर उत्सव के अन्त में देवता का पूजन विसर्जन करके प्रातःकाल ही पारण करना चाहिये।

अथ संक्षेपेण व्रतविधिः

प्रातः [२]कृतनित्यक्रियः प्राङ्मुखो देशादि संकीर्त्य तत्तत्काले सप्तम्यादिसत्त्वेपि प्रधानभूतामष्टमीमेव संकीर्त्य 'श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं जन्माष्टमीव्रतं करिष्ये' जयन्तीयोगसत्त्वे 'जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्पयेत्। ताम्रपात्रे जलं गृहीत्वा,

वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये।
उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम्॥

अशक्तौ 'फलानि भक्षयिष्यामि' इत्याद्यूहः।

आजन्ममरणं यावद्यन्मया दुष्कृतं कृतम्।
तत्प्रणाशय गोविन्द प्रसीद पुरुषोत्तम॥

इति पात्रस्थं जलं क्षिपेत्।

प्रातःकाल नित्य क्रिया कर पूर्वमुख होकर देश आदि का नाम लेकर उस समय में सप्तमी आदि के रहने पर भी प्रधान अष्टमी को ही कह कर 'श्री कृष्ण की प्रीति के लिए जन्माष्टमीव्रत

---

१. अशक्तता में पारणा काल—'तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम्। यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा॥' गरुडपुराणे—'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्। तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्॥' इति।

२. वाराहे—'सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसन्ध्यादिकक्रियः। कामक्रोधविहीनश्च पाखण्डस्पर्शवर्जितः॥ जितेन्द्रियः सत्यवादी सर्वकर्मसु शस्यते॥' इति।

करूँगा' ऐसे संकल्प करे। जयन्तीयोग के रहने पर 'जन्माष्टमीव्रत और जयन्तीव्रत तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करे। ताम्र के पात्र में जल लेकर संपूर्ण पाप के नाश के लिए श्री भगवान् के उद्देश्य से 'जन्माष्टमी श्रावणमास में उपवास करूँगा' असमर्थ होने पर 'फलाहार करूँगा' आदि कहना चाहिए। जन्म से लेकर मरणपर्यन्त जो दुष्कर्म मैंने किया है उसके नाश के लिए हे पुरुषोत्तम हे गोविन्द ! आप प्रसन्न हों, ऐसा कहकर पात्र स्थित जल को गिरा देवे।

ततः सुवर्णरजतादिमय्यो मृन्मय्यो वा भित्तिलिखिता वा [१]प्रतिमा यथाकुलाचारं कार्याः। ता यथा पर्यङ्के प्रसुप्तदेवक्याः स्तनं पिबन्तीं श्रीकृष्णप्रतिमां निधाय जयन्तीसत्त्वे त्वन्यदेवक्या उत्सङ्गे द्वितीयां श्रीकृष्णमूर्तिं निधाय पर्यङ्कस्थदेवकीचरणसंवाहनपरां लक्ष्मीं निधाय भित्त्यादौ खड्गधरं वसुदेवं नन्दगोपीगोपांल्लिखित्वा प्रदेशान्तरे मञ्चके प्रसूतकन्यया सह यशोदाप्रतिमां पीठान्तरे वसुदेवदेवकीनन्दयशोदाश्रीकृष्णरामचण्डिका इति सप्त प्रतिमाः स्थापयेत्। एतावत्प्रतिमाकरणाशक्तौ वसुदेवादिचण्डिकान्ताः सप्त वा यथाचारं यथाशक्ति वा कृत्वा अन्याः सर्वा यथायथं ध्यायेदिति भाति।

तदनन्त सोने और चाँदी आदि की या मिट्टी या भीत पर लिखी हुई प्रतिमा अपने कुलाचार के अनुसार बनावे। वह इस प्रकार बनावे—पलंग पर सोई हुई देवकी के स्तनों को पीती हुई श्रीकृष्ण की प्रतिमा को रख कर जयन्ती होने पर तो दूसरी देवकी के गोद में दूसरी श्रीकृष्ण-मूर्ति को रख कर पलंग पर बैठी देवकी के चरण को दबाती हुई लक्ष्मी को रख कर दिवाल आदि में तलवार लिए वसुदेव, नन्द, गोपी और गोपों को बनाकर दूसरी जगह पलंग पर उत्पन्न कन्या के साथ यशोदा की प्रतिमा और दूसरे आसन पर वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, श्रीकृष्ण, बलराम और चण्डिका की सात प्रतिमा का स्थापन करे। इतनी प्रतिमा बनाने में असमर्थ व्यक्ति को वसुदेव आदि चण्डिका पर्यन्त सात प्रतिमा अथवा आचार के अनुसार यथाशक्ति प्रतिमा बनाकर सबका ध्यान करे। यह प्रतीत होता है।

निशीथासन्नप्राक्काले स्नात्वा 'श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं सपरिवारश्रीकृष्णपूजां करिष्ये' इति संकल्प्य न्यासान् शङ्खादिपूजान्तं नित्यवत्कृत्वा,

पर्यङ्कस्थां किन्नराद्यैर्युतां ध्यायेत्तु देवकीम्।
श्रीकृष्णं बालकं ध्यायेत्पर्यङ्के स्तनपायिनम्॥
श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलदलच्छविम्।
संवाहयन्तीं देवक्याः पादौ ध्यायेच्च तां श्रियम्॥

एवं ध्यात्वा देवक्यै नमः इति देवकीमावाह्य मूलमन्त्रेण पुरुषसूक्तऋचा वा श्रीकृष्णाय नमः श्रीकृष्णमावाहयामीति आवाह्य लक्ष्मीं चावाह्य देवक्यै वसुदेवाय यशोदायै नन्दाय कृष्णाय रामाय चण्डिकायै इति नाम्नावाहय

---

१. भविष्यपुराण में प्रतिमानिर्माण के द्रव्य—'अनुक्तद्रव्यतत्संख्यादेवताप्रतिमा नृप। सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्तिका तथा॥ चित्रजा पिष्टलेपोत्था निजवित्तानुरूपतः। आमापात् पलपर्यन्ता कर्तव्या शाठ्यवर्जितैः॥' अपि च—'प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा पटादिषु। अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथक्पृथक्॥' इति।

लिखितादिदेवताः सकलपरिवारदेवताभ्यो नम इत्यावाहृय मूलमन्त्रेण सूक्तऋचा वा अत्रावाहितदेवक्यादिपरिवारदेवतासहितश्रीकृष्णाय नम इत्यासनपाद्यार्घ्याचमनीयाभ्यङ्गस्नानानि दत्त्वा पञ्चामृतस्नानान्ते चन्दनेनानुलेपयेत् ।

अर्द्धरात्रि के निकट समय में स्नान करके 'श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए परिवार के सहित श्रीकृष्णकी पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करके न्यास शंख आदि की पूजा रोज की तरह करके किन्नर आदि से युक्त पलंग पर बैठी हुई देवकी का ध्यान करे। पलंग पर माता का स्तन पीते हुए छाती पर श्रीवत्स धारण किये नीले कमल के पत्ते के समान कान्ति वाले बालक श्रीकृष्ण का देवकी के पैर दबाती हुई उस लक्ष्मी का भी ध्यान करे। इस प्रकार ध्यान करके देवकी को नमस्कार है ऐसा कह कर देवकी का आवाहन कर मूलमंत्र से या पुरुषसूक्त की ऋचा से या 'श्रीकृष्णाय नमः श्रीकृष्णमावा०' इससे आवाहन करके और लक्ष्मी का भी आवाहन कर देवकी वसुदेव, यशोदा, नन्द, श्रीकृष्ण, बलराम और चण्डिका के नाम से आवाहन कर दीवार पर लिखी हुई सकल परिवार देवताओं को नमस्कार है ऐसा कह कर मूलमन्त्र से अथवा सूक्त की ऋचा से आवाहित देवकी आदि परिवारसहित श्रीकृष्ण को नमस्कार है ऐसा कह के आसन पाद्य अर्घ्य आचमनीय उबटन स्नान आदि समर्पण कर पंचामृतस्नान के अन्त में चन्दन का लेपन करे।

शुद्धोदकाभिषेकान्ते वस्त्रयज्ञोपवीतगन्धपुष्पाणि धूपदीपौ च ।

विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च ।
विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमोनमः ॥
यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च ।
यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमोनमः ॥

इति मन्त्राभ्यां मूलमन्त्रादिसमुच्चिताभ्यां दद्यात् ।

जगन्नाथ नमस्तुभ्यं संसारभयनाशन ।
जगदीश्वराय देवाय भूतानां पतये नमः ॥

इति नैवेद्यम् । मूलमन्त्रादिकं सर्वत्र योज्यम् । ताम्बूलादिनमस्कारप्रदक्षिणापुष्पाञ्जल्यन्तं कार्यम् ।

तदनन्तर शुद्ध जल से स्नान कराकर वस्त्र यज्ञोपवीत गन्ध पुष्प और धूप दीप को समर्पित करे। विश्व के प्रभु विश्व के उत्पादक संसार के पति आप गोविन्द को नमस्कार है। यज्ञ के प्रभुदेव यज्ञ के जन्म देने वाले यज्ञ के पति हे नाथ! गोविन्द! आप को नमस्कार है। इस मूलमन्त्र सहित दोनों मन्त्रों से वस्त्रादि चढ़ावे। हे जगन्नाथ! संसार के भय नष्ट करनेवाले जगत के प्रभु जीवों के पति आप को नमस्कार है, ऐसा कह कर नैवेद्य का निवेदन करे। सब जगह मूलमन्त्र आदि की योजना करे। ताम्बूल आदि नमस्कार प्रदक्षिणा पुष्पाञ्जलि पर्यन्त सब पूजन करे।

अथवोद्यापनप्रकरणोक्तविधिना पूजा । सा यथा—उक्तप्रकारेण ध्यानावाहने[1] कृत्वा,

---

१. पुरश्चर्यार्णवे—'हस्ताभ्यामञ्जलिं बध्वाऽनामिकामूलपर्वणि। अङ्गुष्ठौ निक्षिपेत् सेयं मुद्रा त्वावाहनी मता। अधोमुखी त्वियं चैव स्थापनीति निगद्यते। आकर्मकाण्डपर्यन्तं सान्निध्यं हि विभावयेत् ॥ ततः संस्थापनं कुर्यादिह तिष्ठेह तिष्ठ च। वाचस्पतौ—'कुर्यादावाहनं मूर्तौ मृन्मय्यां सर्वदैव हि। प्रतिमायां जले वह्नौ नावाहनविसर्जने ॥' इति।

अथवा उद्यापन प्रकरण में कही हुई विधि से पूजा करे। वह इस प्रकार है-कही हुई विधि से ध्यान और आवाहन करके,

देवा ब्रह्मादयो येन स्वरूपं न विदुस्तव ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि मातुरुत्सङ्गवासिनम् ॥

पुरुष एवेदमासनम्[1] ।

ब्रह्मादिक देवता जो आप के स्वरूप को नहीं जानते हैं इस लिए माँ के गोद में रहने वाले आप की पूजा करूँगा। 'पुरुष एवेदं' इस पुरुषसूक्त मन्त्र से आसन दे।

अवतारसहस्राणि करोषि मधुसूदन ।
न ते संख्यावताराणां कश्चिज्जानाति तत्त्वतः ॥

एतावानस्येति पाद्यम्[2] ।

हे मधुसूदन ! आप हजारों अवतार धारण करते हैं आप के अवतारों की गणना वस्तुतः कोई नहीं जानता। 'एतावानस्य' इस मन्त्र से पाद्य दे।

जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च ।
देवानां च हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥
कौरवाणां विनाशाय पाण्डवानां हिताय च ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे ॥

त्रिपादू० अर्घ्यम्[3] ।

पृथ्वी के भार को उतारने और धर्म की स्थापना, पाण्डवों के हित, कौरवों के नाश, कंस को मारने और देवताओं के हित के लिए आप पैदा हुए हैं। देवकी के सहित हे भगवान् ! मेरे दिये हुए अर्घ्य को स्वीकार करें। 'त्रिपादूर्ध्व' इत्यादि वैदिक मन्त्र से अर्घ्य दे।

सुरासुरनरेशाय क्षीराब्धिशयनाय च ।
कृष्णाय वासुदेवाय ददाम्याचमनं शुभम् ॥

तस्मा० [4]आच० ।

देवता दैत्य और मनुष्यों के ईश क्षीरसमुद्र में सोने वाले वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण जी को शुभ आचमन देता हूं। 'तस्माद् विराट्' इत्यादि मन्त्र से आचमनीय देवे।

---

१. पुरश्चर्यार्णवे—'देवस्य वामभागे तु दद्यान्मूलेन चासनम् । पौष्णं दारुमयं वास्त्रमाक्षतं कौश्यतैजसम् ॥ षड्विधं चासनं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ।' इति ।

२. पाद्य में प्रक्षेप की औषधियाँ—'पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरुच्यते ।' इति ।

३. अर्घ्यं में प्रक्षेप की वस्तु—'आप क्षीरं कुशाग्राणि दधि दूर्वाऽक्षतास्तथा । फलं सिद्धार्थकश्चैव अर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः ॥' 'अर्घो मूर्ध्नि प्रदातव्यः' इस वचन से अर्घ्य शिर पर चढ़ाना चाहिये और अर्घ्य के पश्चात् आचमन के लिये जल दे—'अर्घे स्नाने तथा वस्त्रे उपवीतोपहारयोः । ततो विराडित्यनया दद्यादाचमनीयकम् ॥' इति ।

४. आचमनीय में प्रक्षेप के द्रव्य—'कर्पूरमगुरुं पुष्पं दद्याज्जातीफलं मुने । लवङ्गमपि कङ्कोलं शस्तमाचमनीयके । मूलमन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् ।' इति ।

नारायण नमस्तेस्तु नरकार्णवतारक ।
गङ्गोदकं समानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

यत्पुरुषे० [1]स्नानम् ।

नरक-समुद्र से पार करने वाले हे नारायण ! आप को नमस्कार है। आप के स्नान के लिए गंगाजल लाया हूँ इसे ग्रहण करें। 'यत्पुरुषेण' इत्यादि मन्त्र से स्नान करावे।

पयोदधिघृतक्षौद्रशर्करास्नानमुत्तमम् ।
तृप्त्यर्थं देवदेवेश गृह्यतां देवकीसुत ॥

इति [2]पञ्चामृतम् । शुद्धोदकस्नानमाचमनम् ।

दूध, दही, घी, मधु, चीनी से बने पंचामृत से उत्तम स्नान आप की तृप्ति के लिए है। हे देवकीपुत्र ! आप इसे स्वीकार करें। फिर शुद्ध जल से स्नान और आचमन करावे।

क्षौमं च पट्टसूत्राढ्यं मया नीतांशुकं शुभम् ।
गृह्यतां देवदेवेश मया दत्तं सुरोत्तम ॥

तं यज्ञं० [3]वस्त्रम् ।

हे देवश्रेष्ठ ! मैंने रेशमी और ऊनीवस्त्र आपके धारण के लिए अर्पित किया है उसे स्वीकार करें। 'तं यज्ञं' इत्यादि मन्त्र से वस्त्र चढावे।

नमः कृष्णाय देवाय शङ्खचक्रधराय च ।
ब्रह्मसूत्रं जगन्नाथ गृहाण परमेश्वर ॥

तस्माद्यज्ञा० [4]यज्ञोप० ।

शंख चक्र धारण करने वाले देवाधिदेव श्रीकृष्ण को नमस्कार है। हे जगन्नाथ ! हे परमेश्वर ! इस यज्ञोपवीत को ग्रहण करें। 'तस्माद्यज्ञात्' इत्यादि मन्त्र से यज्ञोपवीत समर्पण करे।

नानागन्धसमायुक्तं चन्दनं चारुचर्चितम् ।
कुङ्कुमाक्ताक्षतैर्युक्तं गृह्यतां परमेश्वर ॥

तस्माद्यज्ञा० [5]गन्धम् ।

---

१. 'अन्यानिवेदितं तोयं प्रकृतिस्थं सुशीतलम् । हेमादिकुम्भपात्रस्थं स्नानीयं जलमुच्यते ॥' स्नान कराते समय घण्टावादन करना चाहिये—'स्नाने धूपे तथा दीपे नैवेद्ये भूषणे तथा । घण्टानादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च ॥' इति ।

२. दुग्धादिमिलित पञ्चामृत से स्नान कराने के धन्वन्तरिका वचन—'गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्कराऽन्वितम् । एकत्र मिलितं ज्ञेयं दिव्यं पञ्चामृतं परम् ॥' पृथक् पृथक् दुग्धादि से स्नान कराने का वचन—'दुग्धं दधि क्षीरमाज्यं शर्करा च तथैव हि । तस्य तस्य च मन्त्रेण तत्तद् द्रव्यं समर्पयेत् ॥' इति ।

३. आह्निककारिका में वस्त्र का विचार—'नानारङ्गविराजितं गलदशं कोशोद्भवं वासितं नीलीरङ्गसमन्वितं च समलं नैवायतं चास्ति यत् । दग्धं चैव च खण्डितं च बहुधा युद्धादिकैश्छिन्नितं तद्वर्ज्यं खलु देवपूजनविधौ वस्त्रं कुसुम्भारुणम् ॥' इति ।

४. 'स्नानान्ते चार्पयेद्वस्त्रं देवानां प्रीतये सदा । ब्रह्मसूत्रं च दातव्यं पूजाफलमभीप्सुना ॥' यज्ञोपवीत का विचार तृतीयपरिच्छेद के पूर्वार्द्ध में यज्ञोपवीतनिर्णय में देखें।

५. 'कालिकापुराणे—'सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दद्यान्म-

अनेक गन्धों से युक्त सुन्दर चन्दन कुँकुम अक्षत से युक्त चन्दन स्वीकार करें। 'तस्माद्य-ज्ञात् सर्व हुतऋच' इस मन्त्र से गन्ध चढ़ावे।

पुष्पाणि यानि दिव्यानि पारिजातोद्भवानि च।
मालतीकेसरादीनि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

तस्माद० [१]पुष्पाणि।

जो पुष्प दिव्य कल्पवृक्ष से उत्पन्न हुए हैं तथा मालती-केसर आदि के फूल पूजा के लिए हैं, इन्हें स्वीकार करें। 'तस्मादश्वा' इस मन्त्र से फूल चढ़ावे।

अथाङ्गपूजा[२]—श्रीकृष्णाय नमः पादौ पूजयामि। संकर्षणाय नमः गुल्फौ० कालात्मने न० जानुनी पू०। विश्वकर्मणे न० जङ्घे पू०। विश्वनेत्राय० कटी पू०। विश्वकर्त्रे न० मेढ्रं पू०। पद्मनाभाय न० नाभिं पू०। परमात्मने न० हृदयं पू०। श्रीकण्ठाय न० कण्ठं पू०। सर्वास्त्रधारिणे न० बाहू पू०। वाचस्पतये न० मुखं पू०। केशवाय न० ललाटं पू०। सर्वात्मने न० शिरः पू०। विश्वरूपिणे नारायणाय नमः सर्वाङ्गं पूजयामि।

तदनन्तर 'श्रीकृष्णाय नमः' इत्यादि मन्त्रों को कहकर अंगों की पूजा करे। श्री कृष्णाय नमः से दोनों पैरों की संकर्षणाय नमः से घुट्टों (गुल्फ) की कलात्मने नमः से जानु (ठेहुनी) की विश्वकर्मणे नमः से दोनों जंघा की विश्वनेत्राय नमः से कटि की विश्वकर्त्रे नमः से लिंग की श्री पद्मनाभाय नमः से नाभि की परमात्मने नमः से हृदय की श्रीकंठाय नमः से कंठ की सर्वास्त्रधारिणे नमः से दोनों बाहु की वाचस्पतये नमः से भगवान् के मुख की केशवाय नमः से ललाट की सर्वात्मने नमः से शिर की और विश्वरूपिणे नारायणाय नमः से सम्पूर्ण अंग की पूजा करे।

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

यत्पुरुषं० [३]धूपम्०।

लयजं सदा॥ कृष्णागुरुः सकर्पूरः सहितो मलयोद्भवैः। वैष्णवप्रीतिदो गन्धः कामाख्यायाश्च भैरवौ॥ कुङ्कुमागरुकस्तूरीचन्द्रभागैः समीकृतैः। त्रिदशप्रीतिदो गन्धस्तथा चण्ड्याश्च शम्भुना॥ गन्धेन लभते कामं गन्धो धर्मप्रदः सदा। अर्थानां साधको गन्धो गन्धे मोक्षः प्रतिष्ठितः॥' इति।

१. कालिकापुराण में पुष्पार्पण का प्रकार—'पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं वाऽपि तथैव च। केशवार्थे शिवार्थे च यथोत्पन्नं तथाऽर्पयेत्॥ मध्यमाऽनामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत्। अङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्यां तु निर्माल्यमपनोदयेत्॥' संग्रहे—'पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम्। यथोत्पन्नं तथा देयं बिल्वपत्रमधोमुखम्। पुष्पं चाधोमुखं नेष्टं तुलसीबिल्ववर्जितम्। तस्माच्चाधोमुखं देयं बिल्वपत्रं च शङ्करे॥ पुष्पमूर्ध्वमुखं योज्यं पत्रं योज्यं त्वधोमुखम्। फलं तु सम्मुखं योज्यं यथोत्पन्नं तथाऽर्पयेत्॥' भविष्य में पुष्पाभाव में—'अलाभे तु सुपुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत्। पत्राणामप्यलाभे तु तृण-गुल्मौषधीरपि॥ औषधीनामलाभे तु भक्त्या भवति पूजनम्। यत्पुण्यं प्रतिपुष्पे तद्दशा स्वर्ण-विनिर्मिते।' इति।

२. अङ्गपूजा = आवरणपूजा। पुरश्चर्यार्णव में पुष्पार्पण के अनन्तर आवरणपूजा करके धूप दीप निवेदन का विधान है—'कृत्वाऽऽवरणपूजां तु धूपदीपौ निवेदयेत्।' इति।

३. तन्त्रसारे—'मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्यपर्वणि दैशिकः। अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूपं

वनस्पतियों के रस से उत्पन्न गन्धों में श्रेष्ठ सभी देवताओं के आघ्राण के योग्य इस धूप को ग्रहण करें। 'यत्पुरुषं' इत्यादि वैदिक मंत्र से धूप देवे।

त्वं ज्योतिः सर्वदेवानां तेजस्त्वं तेजसां परम्।
आत्मज्योतिर्नमस्तुभ्यं दीपोयं प्रतिगृह्यताम्॥

ब्राह्मणो० [1]दीपम्०।

आप सब देवताओं की ज्योति हैं और तेजों के परमतेज है। आत्मज्योति! आपको नमस्कार है इस दीप को आप ग्रहण करें। 'ब्राह्मणोस्य' इत्यादि मंत्र से दीप दिखावे।

नानागन्धसमायुक्तं भक्ष्यं भोज्यं चतुर्विधम्।
नैवेद्यार्थं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर॥

चन्द्रमा मनसो० [2]नैवेद्यम्। आचमनं [3]करोद्वर्तनम्०।

अनेक नैवेद्य के लिए मुझसे अर्पित गन्धयुक्त चार प्रकार के भक्ष्य भोज्य हे परमेश्वर! आप स्वीकार करें। 'चन्द्रमा मनसो' इस वैदिक मंत्र से नैवेद्य दे। भगवान को आचमन तथा करोद्वर्त्तन करावे।

निवेदयेत्॥ ततः समर्पयेद् धूपं घण्टावाद्यजयस्वनैः। न धूपं वितरेद् भूमौ नासने न घटे तथा॥ यथा तथाऽऽधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत्। वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे॥ धूपदीपौ सुभोज्यं च देवताग्रे निवेदयेत्।' 'धूताशेषमहादोषपूतिगन्धप्रहारितः। परमामोदजननाद् धूप इत्यभिधीयते॥'

आयुर्वेद में दशाङ्गधूप—'घृतगुग्गुलुपाटीरहेगरूशीरचन्दनम। धनं लाक्षाकुष्ठनखं दशाङ्गः प्रोच्यते बुधैः॥' शारदातिलक में षोडशाङ्गधूप—'गुग्गुलुं सरलं दारु पत्रं मलयसम्भवम्। ह्रीवेरमगरुं कुष्ठं गुडं सर्जरसं घनम्॥ हरीतकीं नखीं लाक्षां जटामासीं च शैलजाम्। षोडशाङ्गं विदुर्धूपं दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥ यथा गन्धं तथा देवि धूपं दद्याद् विचक्षणः।' इति।

१. पुरश्चर्यार्णवे—'दीर्घाज्ञानमहाध्वान्ताहङ्कारपरिवर्जनात्। परतत्त्वप्रकाशाच्च दीप इत्यभिधीयते॥ तैजसं राजसं लौहं मार्तिकयं नारिकेलजम्। तृणराजोद्भवं वापि दीपपात्रं प्रशस्यते॥ वर्तिः श्वेताथवा रक्ता न पीता नासिताऽपि च। पटो वा नूतनः शुक्लो वर्तिकायां प्रशस्यते॥ वर्त्या कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा। आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः सौरभशालिनः॥ दीपं दक्षिणतो दद्यात्पुरतो वा न वामतः। सर्वंसहा वसुमती सहते न द्वयं त्विदम्॥ अकार्ये पादघातं च दीपतापं तथैव च। कृत्वा तु पृथिवीतापं दीपमुत्सृजते नरः॥ स तापपापं नरकं प्राप्नोत्येव शतं समाः। लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरङ्गुलात्॥ न स दीप इति ख्यातो ह्यधो वह्निस्तु स स्मृतः। नैव निर्वापयेद्दीपं देवार्थमुपकल्पितम्॥ दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्। दीपनिर्वापणात्पुंसः कूष्माण्डच्छेदनात् स्त्रियः। अचिरेणैव कालेन वियडनाशो भवेद् ध्रुवम्। नैव निर्वापयेद्दीपं लक्ष्मीनाशकरो यतः॥' कालिकापुराणे—'न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपं स्नेहे घृतादिकम्। घृतेन दीपकं नित्यं तिलतैलेन वा पुनः॥ ज्वालयेन्मुनिशार्दूल सन्निधौ जगदीशितुः। कार्पासवर्तिका ग्राह्या न दीर्घा न च सूक्ष्मका॥' इति।

२. पद्मपुराणे—'हैरण्यं राजतं कांस्यं ताम्रं मृन्मयमेव च। पालाशं पद्मपत्रं वा पात्रं विष्णोरतिप्रियम्॥ 'हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं च शर्कराम्। नैवेद्यं देवदेवाय यावकं पायसं तथा॥ नैवेद्यवस्त्वलाभे तु फलानि च निवेदयेत्। फलानामप्यलाभे तु तोयान्यपि निवेदयेत्॥' अपि च—'नैवेद्यं दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठतः। भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चोष्यं च पञ्चमम्॥ सर्वत्र चैव नैवेद्यमाराध्यास्मै निवेदयेत्।' इति।

३. नारदीये—'पुनराचमनं दद्यात् करोद्वर्तनमेव च।' इनमें नैवेद्य के अनन्तर आचमनी-

[1]ताम्बूलं च सकर्पूरं पूगीफलसमन्वितम् ।
मुखवासकरं रम्यं प्रीतिदं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति ताम्बूलम्० ।

सौवर्णं राजतं ताम्रं नानारत्नसमन्वितम् ।
कर्मसाद्गुण्यसिद्ध्यर्थं दक्षिणा प्रतिगृह्यताम् ॥

इति दक्षिणाम्० ।

रम्भाफलं नारिकेलं तथैवाम्रफलानि च ।
पूजितोसि सुरश्रेष्ठ गृह्यतां कंससूदन ॥

इति फलम्० । नाभ्या आ० [2]नीराजनम्० ।

कपूर और सुपारी से युक्त मुख को सुगन्धित करने वाले ताम्बूल को स्वीकार करें । यह कह, लगाया हुआ पान अर्पण करे । अनेक रत्नों से युक्त सोने चांदी की दक्षिणा कर्म की सफलता के लिए स्वीकार कीजिये । इससे दक्षिणा देवे । केला, नारियल तथा आम के फलों को हे कँस के मारनेवाले देववर ! मेरी पूजा आप स्वीकार करें । इससे फल देवे । 'नाभ्या आसीद०' इस मन्त्र से आरती उतारे ।

यानि कानि० सप्तास्या० [3]प्रदक्षिणाम् । यज्ञेनेत्यादिवेदमन्त्रैः पुष्पाञ्जलिं[4] नमस्कारान्[5] । अपराधस० पूजां निवेदयेत् ।

यादि—'भोजनानन्तरं देयमद्भिः कर्पूरवासितैः । मध्यमाचमनं मध्ये पानीयं करमार्जनम् ॥ गाण्डूषिकं जलं दत्त्वा दद्यादाचमनं ततः । हस्तवासं सकर्पूरं मुकुटं भूषणानि च ॥' चन्दनानुलेपन का समर्पण करोद्वर्तन है ।

१. पाद्मे—'सुपूगं च सुपत्रं च चूर्णेन च समन्वितम् । दद्यात्तु द्विजदेवेभ्यस्ताम्बूलं प्रीतिपूर्वकम् ॥' अन्यत्र—'लवङ्गजातिकक्कोलचूर्णकमुकखादिरम् । कर्पूरसहितं पत्रं ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥' अपि च—'फलं ताम्बूलसहितं दक्षिणां कनकान्विताम् । पुष्पाञ्जलिं ततः कुर्याद् भक्त्याऽऽदर्शं प्रकल्पयेत् ॥ नीराजनं ततः कुर्यात् कर्पूरं विभवे सति । समर्प्य मुकुटादीनि भूषणं छत्रचामरे ॥ प्रसादसुमुखं ध्यात्वा कुर्याच्चैव प्रदक्षिणाम् । नमस्कारं ततः कुर्यात् साष्टाङ्गं भक्तिपूर्वकम् ॥' इति ।

२. हरिभक्तिविलास में पांच नीराजन—'पञ्च नीराजनान् कुर्यात् प्रथमं दीपमालया । द्वितीयं सोदकाब्जेन तृतीयं धौतवाससा ॥ चूताश्वत्थादिपत्रैश्च चतुर्थं परिकीर्तितम् । पञ्चमं प्रणिपातेन साष्टाङ्गेन यथाविधि ॥ आदौ चतुष्पादतले च विष्णोर्द्वौ नाभिदेशे च मुखे तथैकम् । सर्वेषु चाङ्गेष्वपि सप्तवारानारार्तिकं भक्तजनस्तु कुर्यात् ॥' इति ।

३. बह्वृचपरिशिष्टे—'एकां विनायके कुर्याद् द्वे सूर्ये तिस्र ईश्वरे । चतस्रः केशवे कुर्यात् सप्ताश्वत्थे प्रदक्षिणाः ॥' अन्यत्र—'एका चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके । हरेश्चतस्रः कर्तव्याः शिवस्यार्धं प्रदक्षिणाः ॥' इति ।

४. देवपूजाविधौ—'नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च । पुष्पाञ्जलिः शुभा देया देवताप्रीतये सदा ॥' रामार्चनचन्द्रिकायाम्—'वैदिकं मन्त्रमुच्चार्य दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।' इति ।

५. अष्टाङ्गप्रणाम—'उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा । पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते ॥' पञ्चाङ्गप्रणाम—'बाहुभ्यां चैव जानुभ्यां वचसा शिरसा दृशा । पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमौ ॥' इति ।

दूसरे जन्मों के जो मेरे पाप हैं वह प्रदक्षिणा करने से नष्ट हो जाय। 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त' इस वेदमंत्र से पुष्पाञ्जलि-समर्पण करे। नमस्कार के बाद 'अपराधसहस्राणि क्रियन्ते' इत्यादि मंत्र से पूजन को निवेदन करे।

सर्वोपचारपूजनसमाप्तौ द्वादशाङ्गुलविस्तारं रौप्यमयं स्थण्डिलादिलिखितं वा रोहिणीयुतं चन्द्रम्,

सोमेश्वराय सोमाय तथा सोमोद्भवाय च।
सोमस्य पतये नित्यं तुभ्यं सोमाय वै नमः॥

इति संपूज्य सपुष्पकुशचन्दनं तोयं शङ्खेनादाय,

क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केश रोहिणीसहितो मम॥
ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः।
नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम्॥

इति मन्त्राभ्यां चन्द्रायार्घ्यं दद्यात्। ततः श्रीकृष्णायार्घ्यं दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च।
पाण्डवानां हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च॥
कौरवाणां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे॥ इति।

सम्पूर्ण उपचार से पूजन करने के अन्त में १२ अंगुल का चौड़ा चाँदी का अथवा स्थण्डिल आदि में रोहिणीसहित चन्द्रमा बनावे। सोम के ईश्वर सोम से उत्पन्न सोम के पति हे चन्द्रदेव! आपको नमस्कार है। इस तरह पूजा करके पुष्प कुश चन्दन और जल शंख में लेकर हे क्षीरसमुद्र से उत्पन्न अत्रिगोत्र वाले चन्द्रदेव! रोहिणीसहित हे चन्द्रदेव मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार करें। हे ज्योत्स्नापते! हे ज्योतिपति! हे रोहिणीकान्त! आपको नमस्कार है। हमारे अर्घ्य को स्वीकार करें इन दो मंत्रों से चन्द्रमा को अर्घ्य देवे। तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र को अर्घ्य दे। उसके मंत्र का अर्थ – कंस के मारने, भूमि के भार हटाने, पाण्डवों के हित, धर्म के स्थापना, कौरवों के नाश और दैत्यों के मारने के लिए हे देवकीसहित भगवन्! मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार करें।

ततः प्रार्थयेत्—

त्राहि मां सर्वलोकेश हरे संसारसागरात्।
त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो॥
सर्वलोकेश्वर त्राहि पतितं मां भवार्णवे।
त्राहि मां सर्वदुःखघ्न रोगशोकार्णवाद्धरे॥
दुर्गतांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत्।
त्राहि मां देवदेवेश त्वत्तो नान्योस्ति रक्षिता॥

यद्वा क्वचन कौमारे यौवने यच्च वार्धके ।
तत्पुण्यं वृद्धिमायातु पापं दह हलायुध ॥ इति ।

इसके बाद प्रार्थना करे—सम्पूर्ण पापों को हनन करने वाले हे सर्वलोक के प्रभु ! दुःख और शोक के समुद्र से मेरी रक्षा कोजिये । संसार-समुद्र में पड़े हुए मुझको हे हरि ! रोग, शोक के समुद्र से मेरी रक्षा कीजिये । मेरी दुर्गति से मुझे बचाइये । बार बार आपके स्मरण करने से दुर्गति दूर होती है । हे देवदेवेश ! आपको छोड़ दूसरा मेरा रक्षक नहीं है । मैं बचपन जवानी अथवा वृद्धावस्था में जो पुण्य किया है वह बढ़े, हे हलायुध ! मेरे पापों को जला दीजिये ।

अथ पूजानन्तरं कृत्यं अग्निपुराणे—

इत्येवं पूजयित्वा तु पुरुषसूक्तैः सवैष्णवैः ।
स्तुत्वा वादित्रनिर्घोषैर्गीतवादित्रमङ्गलैः ॥
सुकथाभिर्विचित्राभिस्तथा प्रेक्षणकैरपि ।
पूर्वेतिहासैः पौराणैः क्षिपेत्तां शर्वरीं नृप ॥ इति ।

अत्र कथासु वैचित्र्यं देशभाषाकाव्यकृतं सूक्तानां प्रागुक्तेः पुराणकथानामन्तेभिधानात् । प्रेक्षणकानि नृत्यादीनि । तथा च वैदिकसूत्रकरणकस्तुतिविशिष्टः पौराणेतिहासमिश्रितो गीतनृत्ययुतदेशभाषाकाव्यप्रमुखकथाकरणकोजागरो विप्रादिवर्णत्रयस्य विधीयते । शूद्रादीन्प्रति एतादृशजागरस्य विधातुमयोग्यत्वात् । वचनान्तरेण तु सूक्तादिरहितगीतादिविशिष्टो वर्णचतुष्टयसाधारणो विधीयते । गोकुलस्थजन्मलीलादिश्रवणोत्तरं वैष्णवैः परस्परं दध्यादिभिः सेचनं कार्यं दधिक्षीरघृताम्बुभिः । 'आसिञ्चन्तो विलिम्पन्त' इत्यादिभागवतवचनेन तथा विधिकल्पनात् ।

अग्निपुराण में पूजा के बाद का कर्त्तव्य—इस प्रकार पूजा करने के बाद वैष्णवों के साथ पुरुषसूक्त से स्तुति करके बाजा गाना आदि मंगल के द्वारा भगवान् की विचित्र कथाओं झांकी पुराणों एवं इतिहासों से उस रात को बितावे । इस कथा में विचित्रता देश की भाषा में काव्य करना कहा है सूक्त पहले ही कह चुके हैं । अन्त में पुराण की कथा कहे । झांकी से नृत्य आदि भी जानना चाहिये । पुराण-इतिहास-मिश्रित-वैदिकसूत्र द्वारा स्तुतिसहित गाना नाचना देशभाषाके काव्यों की कथा के द्वारा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य का जागरण कहा है । शूद्रों के लिए इस प्रकार जागरण योग्य नहीं होने से दूसरे वचन से सूक्त आदि से रहित गीत आदि के द्वारा भगवान् का कीर्तन चारो वर्णों के लिए साधारण कहा है । गोकुल की भगवत् जन्मलीला आदि सुनने के बाद आपस में दही आदि से वैष्णवगण सिंचन करें । 'भागवत के आसिंचन्तो विलिंपन्त' इस वचन से दही दूध और जल से परस्पर लेपन करें ।

अयमुत्सवोऽधुना महाराष्ट्रदेशे गोपालकालेति व्यवह्रियत इति मे भाति । एतत्सर्वं कौस्तुभे श्रीमदनन्तदेवैः स्पष्टीकृतमस्तीति न मह्यमसूया कार्या । एतादृशकथायुतो जागरोन्यत्र रामनवम्येकादश्याद्युत्सवेष्वप्यूह्यः । पूजाजागरादिविशिष्टव्रतोत्सवसाम्यात्, महाराष्ट्रीयेषु तथाचाराच्च । भगवत्प्रेमादिभाग्यशालिनस्तु

'पर्वणि स्युरुतान्वहम्' इति न्यायेन प्रत्यहमेवोक्तविधकथोत्सवं कुर्वन्तीति भाति। ततो नवम्यां ब्राह्मणान् भोजनदक्षिणादिभिः सन्तोष्योक्तपारणानिर्णीते काले भोजनं कुर्यात्।

यह उत्सव आज कल महाराष्ट्र देश में कृष्ण के समय से व्यवहार में है यह मुझे प्रतीत होता है। इसे कौस्तुभ में श्रीमान् अनन्तदेव ने स्पष्ट किया है। इस लिये हमारी निन्दा कोई न करे। इस प्रकार की कथा के साथ जागरण रामनवमी एकादशी आदि दूसरे उत्सवों में भी कल्प्य है। पूजा जागरण आदि विशिष्ट व्रत और उत्सव में होते हैं। महाराष्ट्र देश वालों में ऐसा आचार भी है। भगवान् में प्रेम करने वाले भाग्यशाली लोग तो रोज-रोज या पर्व में इस प्रकार के कथा का उत्सव करते हैं। इसके अनन्तर नवमी में ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट कर कहे हुए पारणाकाल में भोजन करे।

अस्यैव जयन्तीव्रतस्य संवत्सरसाध्यः प्रयोगः श्रावणकृष्णाष्टमीमारभ्य प्रतिमासं कृष्णाष्टम्यामुक्तविधिना पूजादिरूपः पुराणान्तरे उक्तः। अत्रोद्यापनविधिर्ग्रन्थान्तरे ज्ञेयः। इति जन्माष्टमीनिर्णयः।

इसी जयन्तीव्रत में साल भर में होने वाला प्रयोग श्रावणकृष्णाष्टमी से प्रारम्भ कर प्रतिमास में कृष्णाष्टमी में कही हुई विधि से पूजा आदिका रूप दूसरे पुराणों में कहा है। इसके उद्यापन की विधि दूसरे ग्रन्थों से जाननी चाहिए। जन्माष्टमीनिर्णय समाप्त।

अथ दर्भाहरणम्

[१]नभोमासस्य दर्शे तु शुचिर्दर्भान्समाहरेत्।
अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः॥

केचिद्भाद्रामायां दर्भग्रहणमाहुः।

कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुन्दकाः।
गोधूमा व्रीहयो मौञ्जा दश दर्भाः सबल्वजाः॥
विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज।
नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥
एवं मन्त्रं समुच्चार्य ततः पूर्वोत्तरामुखः।
हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्त्वा समुद्धरेत्॥

---

१. नभोमासस्य दर्शे = श्रावणमास की अमावस्या में। यहाँ भी शुक्लादि अमान्त मास से श्रावण की अमावस्या जन्माष्टमी के बाद भाद्रपदमास की अमावस्या ही हुई। इस तिथि में उखाड़े गये कुश वर्षपर्यन्त दैव-पितृ-कर्म के योग्य रहते हैं—'मासे नभस्यामावास्यां तस्यां दर्भोच्चयो मतः। अयातयामास्ते दर्भाः सन्नियोज्याः पुनः पुनः॥' कुशोत्पाटन का अन्य मन्त्र—'कुशाग्रे वसते रुद्रः कुशमध्ये तु केशवः। कुशमूले वसेद् ब्रह्मा कुशान्मे देहि मेदिनि॥' इति।

लघुहारीतने निषिद्ध कुश का निर्देश किया—'चितिदर्भाः पथि दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु। स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्जयेत्॥ पिण्डार्थं ये स्तृता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम्। मूत्रोच्छिष्टे धृता ये च तेषां त्यागो विधीयते॥ कातीयसूत्रभाष्ये—'कुशाभावे तु काशाः स्युः काशाः कुशसमाः स्मृताः। काशाभावे गृहीतव्या अन्ये दर्भा यथोचिताः॥ कुशाः काशाः शरा दूर्वा यवगोधूमबल्वजाः। सुवर्णं राजतं ताम्रं दश दर्भाः प्रकीर्तिताः॥' इति। बल्वजः = साबय, एक प्रकार का मोटा घास।

चतुर्भिर्दर्भैर्विप्रस्य पवित्रं क्षत्रियादेरेकैकन्यूनम्। सर्वेषां वा भवेद् द्वाभ्यां पवित्रं ग्रंथितं न वा। इति श्रावणमासनिर्णयोद्देशः।

श्रावण महीने की अमावस्या में पवित्र होकर कुश ग्रहण करे। वे कुश अयातयाम कहलाते हैं। उनका बार-बार कर्म में विनियोग किया जा सकता है। कोई भाद्र के अमावस्या में कुश ग्रहण करना कहते हैं। कुश काश जौ दूब खश कुन्द गेहूँ धान मूँज और बल्वज, ये दश प्रकार के कुश हैं। ब्रह्मा के साथ उत्पन्न हुए हे कुश! हमारे सभी पापों को दूर तथा हमारा कल्याण कीजिये। इस आशय के मन्त्र का उच्चारण करके पूर्व अथवा उत्तर मुख होकर 'हुम् फट् स्वाहा' ऐसा एक बार मन्त्र कहकर कुश काटकर उखाड़ ले। ब्राह्मण का पवित्रक चार कुश का होता है। क्षत्रिय के तीन और वैश्य के दो कुश का पवित्रक होता है। अथवा सब का दो कुश का ही पवित्रक (पैंती) होता है। चाहे गाँठ दिया हो अथवा न दिया हो। श्रावणमासनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ भाद्रपदकृत्ये कन्यासंक्रान्तिः

तत्र कन्यासंक्रान्तौ पराः षोडश नाड्यः पुण्यकालः। भाद्रपदमासे एकान्नाहारव्रताद्धनारोग्यादिफलम्। अत्र मासे हृषीकेशप्रीत्यर्थं पायसगुडौदनलवणादेर्दानम्।

कन्यासंक्रान्ति में परकी षोडश घड़ियाँ पुण्यकाल है। भाद्रपद महीने में एक अन्न भोजनरूपी व्रत से धन और आरोग्य आदि का फल होता है। इस महीने में भगवान् की प्रसन्नता के लिये पायस, गुड़, भात और लवण आदि का दान करना चाहिए।

अथ हरितालिकानिर्णयः

भाद्रपदशुक्लतृतीयायां [1]हरितालिकाव्रतम्। तत्र मुहूर्तमात्रा ततो न्यूनापि परा ग्राह्या। यदा क्षयवशात्परदिने नास्ति तदा द्वितीयायुतापि ग्राह्या। यदा शुद्धाधिका तदा पूर्वदिने षष्टिघटीमितामपि त्यक्त्वा परदिने स्वल्पापि चतुर्थीयुतैव ग्राह्या, [2]गणयोगप्राशस्त्यात्। अत्र व्रते भवानीशिवयोः पूजनमुपवासश्च स्त्रीणां नित्यः। तत्र—

मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

इत्यादयः पूजामन्त्रा ज्ञेयाः।

---

१. दिवोदासोदाहृतवचन से भाद्रशुक्ल तृतीया हरितालिका व्रत है—'भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका।' इसका अन्वर्थनाम—'आलिभिर्हरिता हरितालिकाव्रत कथा के यस्मात्तस्मात् सा हरितालिका।' इस वचन से ज्ञातव्य है।

२. माधवः—'मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं प्रिये। शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात्॥' स्कान्दे—कला काष्ठा मुहूर्ताऽपि द्वितीया यदि दृश्यते। सा तृतीया न कर्तव्या कर्तव्या गणसंयुता॥' माधव ने चतुर्थीयुक्त तृतीया में फलाधिक्य कहा, आपस्तम्बः—'चतुर्थीसहिता या तु सा तृतीया फलप्रदा। अवैधव्यकरा स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी॥' द्वितीयायुक्त तृतीया में दोष का निर्देश—'द्वितीयाशेषसंयुक्ता या करोति विमोहिता। सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः॥' इति।

भाद्रपदशुक्ल तृतीया में हरितालिकाव्रत होता है। यह तृतीया मुहूर्तमात्र या उससे कम भी हो तो परा लेनी चाहिए। जब तिथिक्षय के कारण पर दिन में तृतीया नहीं हो तब द्वितीयासहित का भी ग्रहण करे। जब शुद्धा तृतीया बढ़े तब पहले दिन साठ घड़ी वाली को भी छोड़कर दूसरे दिन थोड़ी भी चतुर्थीयुक्त हो तो उसे ही लेनी चाहिए। गण-योग के प्राशस्त्य से इस व्रत में पार्वती शंकर का का पूजन और उपवास भी स्त्रियों के लिये नित्य है। इसमें जिसके बालों में मन्दार की पुष्पमाला है और जो दिव्य वस्त्र धारण किये हुई हैं ऐसी पार्वती को और खोपड़ियों की माला से जिनका शिर चिह्नित है, ऐसे नंगे शङ्कर जी को प्रणाम है। इत्यादि पूजा के मंत्र हैं।

अथ गणेशचतुर्थीनिर्णयः

शुक्लचतुर्थ्यां सिद्धिविनायकव्रतम्। सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये साकल्येन मध्याह्ने व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा। दिनद्वये साम्येन वैषम्येण वैकदेश-व्याप्तावपि पूर्वैव। वैषम्येण व्याप्तावधिकव्यापिनी चेत्परेति केचित्। पूर्वदिने सर्वथा मध्याह्नस्पर्शो नास्त्येव परदिने एव मध्याह्नस्पर्शिनी तदैव परा। पूर्व-दिने एकदेशेन मध्याह्नव्यापिनी परदिने संपूर्णमध्याह्नव्यापिनी तदापि परैव। एवं मासान्तरेपि निर्णयः। इयं [१]रविभौमवारयोगे प्रशस्ता।

भाद्रपदशुक्ल चतुर्थी में सिद्धविनायकका व्रत होता है। यह चतुर्थी मध्याह्न में रहने वाली ग्राह्य है। दो दिन में सम्पूर्णता से मध्याह्न में रहने वाली या नहीं रहने वाली हो तो पूर्वा का ग्रहण करना चाहिए। दो दिन में समता से या वैषम्य से एकदेशव्यापिनी हो तब भी पूर्वा का ही ग्रहण करना चाहिए। कोई तो कहते हैं—वैषम्य से रहने पर अधिक समयव्यापिनी हो तो परा ही ले। पहले दिन मध्याह्न का स्पर्श नहीं हो दूसरे दिन ही मध्याह्नस्पर्शिनी हो तब परा चतुर्थी ग्राह्य है। पहले दिन एकदेश में मध्याह्नव्यापिनी हो, दूसरे दिन सम्पूर्ण मध्याह्न तक हो तब भी परा ही ले। इसी तरह से दूसरे महीने में भी निर्णय करना चाहिए। यह चतुर्थी रविवार और भौमवार से युक्त हो तो उत्तम होती है।

अथात्र चन्द्रदर्शननिषेधः

अत्र चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शने [२]मिथ्याभिदूषणदोषस्तेन चतुर्थ्यामुदितस्य पञ्चम्यां दर्शनं विनायकव्रतदिनेपि न दोषाय। पूर्वदिने सायाह्नमारभ्य प्रवृत्तायां चतुर्थ्यां विनायकव्रताभावेपि पूर्वेद्युरेव चन्द्रदर्शने दोष इति सिध्यति। चतुर्थ्यामुदितस्य न दर्शनमिति पक्षे तु अवशिष्टपञ्चषण्मुहूर्तमात्रचतुर्थीदिनेपि निषेधापत्तिः। इदानीं लोकास्तु एकतरपक्षाश्रयेण विनायकव्रतदिने एव चन्द्रं न पश्यन्ति न

---

१. गणेशचतुर्थी रवि और भौमवार में पड़ जाय तो अत्यन्त प्रशस्त है। वाराहः—'भाद्र-शुक्लचतुर्थी या भौमेनार्केण वा युता। महती साऽत्र विघ्नेशमर्चित्वेष्टं लभेन्नरः॥' इति।

२. मार्कण्डेयः—'सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम्। मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात् पश्येन्न तं सदा॥' जब भाद्रपद में मलमास होगा तब सिंह के सूर्य मलमास में गत हो जायेंगे, ऐसी स्थिति में पराशर ने शुद्धभाद्रपदशुक्ल चतुर्थी में चन्द्रदर्शन निषिद्ध बतलाया—'कन्यादित्ये चतुर्थ्यां तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम्। मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात् पश्येन्न तं तदा॥' चन्द्रदर्शन हो जाने पर उस दोष की शान्ति के लिये मूलोक्त 'सिंहः प्रसेनमवधीत्' इत्यादि मन्त्र को पढ़े अथवा भागवत के स्यमन्तक-मणि का कथा श्रवण करे।

तूदयकाले दर्शनकाले वा चतुर्थीसत्त्वासत्त्वे नियमेनाश्रयन्ति । दर्शने जाते तद्दोष-शान्तये—

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारकमारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥ इति श्लोकजपः कार्यः ।

इस चतुर्थी में चन्द्रदर्शन होने पर झूठा कलंक लगने का दोष होता है। इससे चतुर्थी में चन्द्रोदय होने पर पञ्चमी में दर्शन करने से विनायकव्रत के दिन भी दोष नहीं होता। पहले दिन सायंकाल से चतुर्थी लगी हो तो विनायकव्रत के न होने पर भी पहले दिन ही चन्द्रदर्शन से दोष होता है, यह सिद्ध होताहै। चतुर्थी में उदय लेने वाले चन्द्रमा का दर्शन न करे इस पक्ष में बचे हुए पाँच छ मुहूर्त वाली चतुर्थी के दिन भी निषेध की आपत्ति है। आज-कल लोग तो किसी एक पक्ष को लेकर विनायकव्रत के दिन ही चन्द्रमा को नहीं देखते, न कि उदयकाल या देखने के समय में चतुर्थी है या नहीं है इसका विचार नहीं करते। चन्द्रदर्शन हो जाने पर उस दोष की शान्ति के लिए 'सिंह ने प्रसेन को और सिंह को जाम्बवान ने मारा। हे कुमार! तुम मत रोओ यह स्यमन्तकमणि तुम्हारी है।' इस आशय के श्लोक का जप करे।

तत्र मृन्मयादिमूर्तौ प्राणप्रतिष्ठापूर्वकं विनायकं षोडशोपचारैः सपूज्यैकमोद-केन नैवेद्यं दत्त्वा सगन्धा एकविंशतिदूर्वा गृहीत्वा 'गणाधिपायोमापुत्रायाघनाश-नाय विनायकायेशपुत्राय सर्वसिद्धिप्रदायैकदन्तायेभवक्त्राय मूषकवाहनाय कुमार-गुरवे' इति दशनामभिर्दूर्वयोर्द्वयं द्वयं समर्प्याविशिष्टामेकां दूर्वाम् उक्तदशनामभिः समर्पयेत् । दश मोदकान् विप्राय दत्त्वा दश स्वयं भुञ्जीतेति संक्षेपः ।

मिट्टी आदि के गणेश की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करके सोलहो उपचार से पूजा कर एक लड्डू नैवेद्य देकर गन्धसहित इक्कीस दूब लेकर गणाधिप, उमापुत्र, अघनाशक, विनायक, ईशपुत्र, सर्व-सिद्धि-प्रदायक, एकदंत, हस्तिमुख, मूषकवाहन, कुमारगुरु, इन दश नामों से दो-दो दूब लेकर चढ़ावे। बचे हुए एक दूब को कहे हुये दश नामों से समर्पण करे। दस लड्डू ब्राह्मण को देकर दस लड्डू स्वयं भक्षण करे।

अथ ऋषिपंचमीनिर्णयः

भाद्रशुक्लपञ्चमी ऋषिपञ्चमी । सा [१]मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदव्याप्तौ च पूर्वैव । अत्र ऋषीन्पूजयित्वा कर्षणरहितभूमिजन्य-शाकाहारं कुर्यात् ।

शुक्ले भाद्रपदे षष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनम् ।
प्राशनं पञ्चगव्यस्य अश्वमेधफलाधिकम् ॥

इयं सूर्यषष्ठी सप्तमीयुता ग्राह्या । अस्यामेव [२]स्वामिकार्तिकेयदर्शनाद् ब्रह्म-हत्यादिपापनाशः ।

---

१. कालमाधवे हारीतः—'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः ।' अतः मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्य है ।

२. भविष्ये—'देयं भाद्रपदे मासि षष्ठी स्याद्भरतर्षभ । योऽस्यां पश्यति गाङ्गेयं दक्षिणापथ-वासिनम् । ब्रह्महत्यादिपापैस्तु मुच्यते नात्र संशयः ॥' गाङ्गेयः—स्वामी कार्तिकेय । इससे इस षष्ठी को कोई स्कन्दषष्ठी भी कहते हैं ।

भाद्रपदशुक्ल पंचमी में ऋषिपंचमी होती है। वह मध्याह्नव्यापिनी पंचमी ग्राह्य है। दो दिन मध्याह्न में रहने वाली पंचमी हो तो पूर्वा ग्राह्य है। इसमें ऋषियों का पूजन करके बिना जोती हुई भूमि में उत्पन्न होने वाले करेमू साग का भोजन करे। भाद्रपदशुक्ल में षष्ठी के दिन स्नान करके सूर्य का पूजन कर और पञ्चगव्य का प्राशन करे तो अश्वमेध से भी बढ़कर फल मिलता है। यह सूर्यषष्ठी सप्तमीयुक्त लेनी चाहिए। इसी षष्ठी में स्वामी कार्तिकेय के दर्शन से ब्रह्महत्या आदि के पाप नष्ट होते हैं।

अथ दूर्वाष्टमीव्रतम्

भाद्रपदशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी। सा [1]पूर्वा ग्राह्या। इयं ज्येष्ठामूलर्क्षयुता त्याज्या। अलाभे तद्युक्तापि ग्राह्या। इदं [2]दूर्वापूजनव्रतं कन्यार्केऽगस्त्योदये च वर्ज्यम्। इदं स्त्रीणां नित्यम्। अत्र ज्येष्ठादेवीपूजनव्रतं केवलाष्टमीप्राधान्येन केवलज्येष्ठानक्षत्रप्राधान्येन चोक्तम्। तत्र दाक्षिणात्याः केवलज्येष्ठानक्षत्र एव कुर्वन्ति। तच्चानुराधायामावाहनं ज्येष्ठायां पूजनं मूले विसर्जनमिति त्रिदिनं ज्ञेयम्।

भाद्रपदशुक्ल अष्टमी में दूर्वाष्टमीव्रत होता है। वह पूर्वविद्धा ग्राह्य है। यह ज्येष्ठा-मूल-नक्षत्र-सहित हो तो इसका त्याग करना चाहिए। यदि मूलनक्षत्र से रहित न मिले तो मूलनक्षत्र युक्ता भी लेनी चाहिए। यह दूर्वापूजनव्रत कन्या के सूर्य में और अगस्त्य के उदय होने पर वर्जनीय है। यह व्रत स्त्रियों के लिए नित्य है। इसमें ज्येष्ठादेवी की पूजा का व्रत केवल अष्टमी और केवल ज्येष्ठा-नक्षत्र को प्रधान मानकर कहा है। इसमें दक्षिणदेश के लोग केवल ज्येष्ठानक्षत्र में ही व्रत करते हैं। वे अनुराधा में आवाहन, ज्येष्ठा में पूजन और मूलनक्षत्र में विसर्जन करते हैं। इस प्रकार इस व्रत को तीन दिन का जानना चाहिए।

आवाहनविसर्जनदिनयोः पूजनादिनानुरोधेन निर्णयः। तत्र यदा पूर्वमध्याह्नमारभ्य प्रवृत्ता ज्येष्ठा द्वितीयदिने मध्याह्ने मध्याह्नात्पूर्वं वा समाप्यते तदा पूर्वदिने एव पूजनम्। यदा पूर्वदिने मध्याह्नोत्तरं प्रवृत्ता परदिने मध्याह्ने समाप्ता तदाष्टमीयोगवशेन पूर्वा परा वा ग्राह्या। उभयत्राष्टमीयोगे पूर्वैव। यदा पूर्वत्र मध्याह्नमारभ्य मध्याह्नोत्तरं वा प्रवृत्ता परदिने मध्याह्नोत्तरमपराह्णं स्पृशति तदाष्टमीयोगाभावेपि परैव।

---

१. बृहद्यमः—'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्॥' पुराणसमुच्चये-'शुक्लाष्टमी तिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत्। दूर्वाष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते॥' इति।

२. भविष्य में दूर्वाव्रत की विधि—'शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम। स्थाप्य लिङ्गं ततो गन्धैः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत्॥ दध्यक्षतैर्द्विजश्रेष्ठ अर्घ्यं दद्यात् त्रिलोचने। दूर्वाशमीभ्यां विधिवत् पूजयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः॥ मन्त्रः—'त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः। सौभाग्यं सन्ततिं देहि सर्वकार्यकरी भव॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले। तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरम्॥' इस व्रत में अनग्निपक्व अन्नादि का भोजन करे। भविष्ये—'अनग्निपक्वमश्नीयादन्नं दधि फलं तथा। अक्षारलवणं ब्रह्मन्नश्नीयान्मधुनान्वितम्॥' इति।

आवाहन और विसर्जन के दिन का निर्णय पूजनदिन के अनुरोध से करे। उसमें जब पहले दिन मध्याह्न से आरंभ होकर ज्येष्ठा दूसरे दिन मध्याह्न में या मध्याह्न से पहले समाप्त होती हो तब अष्टमीयोग के कारण पूर्वा या परा का ग्रहण करना चाहिए। दोनों दिन अष्टमी के योग होने पर पहले ही दिन ग्रहण करे। जब पहले दिन मध्याह्न से आरम्भ होकर अथवा मध्याह्न के बाद से अष्टमीतिथि लगे और दूसरे दिन मध्याह्न के बाद अपराह्न को स्पर्श करती हो तब अष्टमी के न रहने पर भी परा का ही ग्रहण करे।

अथ विष्णुपरिवर्तनोत्सवः

भाद्रपदशुक्लैकादश्यां द्वादश्यां वा पारणोत्तरं विष्णुपरिवर्तनोत्सवः। तत्र 'श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति' इति वचनात् त्रेधाविभक्तश्रवणमध्यभागयोगस्यैकादश्यां सत्त्वे तत्रैव द्वादश्यां सत्त्वे द्वादश्यामेवोभयत्र नक्षत्रयोगाभावे द्वादश्यामेवेत्यादि व्यवस्था ज्ञेया। तत्र संध्यायां विष्णुं संपूज्य—

वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव।
पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव॥

इति मन्त्रेण प्रार्थयेत्।

भाद्रपदशुक्ल एकादशी या द्वादशी को पारण के बाद विष्णुपरिवर्तनोत्सव (करवट लेने का उत्सव) होता है। इसमें श्रवण के मध्य में भगवान् करवट लेते हैं। इस आशय के वचन से श्रवण का तीन भाग कर उसका मध्यभाग एकादशी में पड़े तो उसीमें या द्वादशी में श्रवण मध्यभाग में पड़े तो द्वादशी में ही, दोनों दिन नक्षत्र का योग न हो तो द्वादशी में ही परिवर्तनोत्सव करे, इत्यादि व्यवस्था जाननी चाहिये। उस दिन संध्या में विष्णु की पूजा करके हे वासुदेव! हे जगन्नाथ! आपकी द्वादशी प्राप्त है। आप करवट लेकर सुख पूर्वक सोवें। इस आशय के मंत्र से प्रार्थना करे।

अथ श्रवणद्वादशीव्रतनिर्णयः

तत्र यत्र दिने मुहूर्तमात्रादिः स्वल्पोपि द्वादश्याः श्रवणयोगस्तत्रोपोषणम्। उत्तराषाढाविद्धश्रवणनिषेधवाक्यानि तु निर्मूलानि। यदा पूर्वदिने एकादशीविद्धा द्वादशी परदिनेऽनुवर्तते दिनद्वयेपि च श्रवणयोगस्तदा पूर्वदिने एकादशी-द्वादशी-श्रवणेतित्रितययोगरूपविष्णुशृङ्खलयोगात्पूर्वैवोपोष्या। तत्रोदाहरणम्—एकादशी १८ उत्तराषाढा ६ द्वादशी २० श्रवणं १२, यथा वा—एकादशी १८ उत्तराषाढा २५ द्वादशी २० श्रवणं १८ अत्र द्वितीयोदाहरणे एकादश्याः श्रवणयोगाभावेऽपि श्रवणयुक्तद्वादशीस्पर्शमात्रेण विष्णुशृंखलयोगः।

श्रवणद्वादशीव्रत जिस दिन मुहूर्तमात्र आदि थोड़ी भी द्वादशी का श्रवणनक्षत्र से योग हो तो उसी दिन उपवास करना चाहिए। उत्तराषाढ़ा से विद्ध श्रवण के निषेध वचन तो प्रमाणशून्य हैं। जब पहले दिन एकादशीविद्धा द्वादशी हो और दूसरे दिन भी द्वादशी बढ़ती हो और दोनों दिन श्रवण का योग हो तब पहले दिन एकादशी, द्वादशी और श्रवण. इन तीन के योग से विष्णु-शृंखलयोग होने से पहले ही दिन उपवास करना चाहिए। इसका उदाहरण, जैसे—एकादशी १८ घड़ी, उत्तराषाढ़ा ६ घड़ी, द्वादशी २० घड़ी, श्रवण १२ घड़ी अथवा एकादशी १८, उत्तराषाढ़ा २५

द्वादशी २० श्रवण १८ इस दूसरे उदाहरण में एकादशी में श्रवणयोग के न होने पर भी श्रवण-युक्तद्वादशी के स्पर्शमात्र से विष्णुश्रृंखलयोग होता है।

द्विविधोप्ययं योगो दिवैव ग्राह्यो न रात्रौ इति पुरुषार्थचिन्तामणौ। रात्रावपि निशीथोत्तरमपि योगो ग्राह्य इति निर्णयसिन्धुः। रात्रेः प्रथमप्रहरपर्यन्तं तिथ्योः श्रवणयोगो ग्राह्यो न द्वितीयप्रहरादावित्यपरे। अत्र चरमपक्ष एव युक्तो भाति। अत्र विष्णुश्रृङ्खलयोगे व्रतद्वयोपोषणं तन्त्रेणैकादश्यामेव कृत्वा द्वादश्यां वक्ष्यमाणपारणानिर्णयानुसारेण पारणं कार्यम्। यदोक्तविष्णुश्रृङ्खलयोगो नास्ति तदा यदि शुद्धाधिका द्वादशी दिनद्वयेपि श्रवणयोगः पूर्वदिने चोदये श्रवणाभावस्तदोत्तरैव ग्राह्या।

दोनों प्रकार का यह योग दिन में ही ग्राह्य है रात में नहीं, ऐसा पुरुषार्थचिन्तामणि में कहा है। रात में भी आधी रात के बाद भी श्रवणयोग हो तो ग्राह्य है, ऐसा निर्णयसिन्धु का कहना है। दूसरे लोग कहते हैं—रात के पहले पहर तक एकादशी द्वादशी में श्रवण का योग हो तो इसे ग्रहण करना चाहिए, दूसरे पहर आदि में नहीं। इसमें अन्तिम पक्ष ही ठीक प्रतीत होता है। इस विष्णुश्रृङ्खलयोग में दोनों व्रतों का उपवास तंत्र से एकादशी में करके द्वादशी में आगे कहे जाने वाले पारणा के निर्णय के अनुसार पारणा करनी चाहिए। जब कहा हुआ विष्णुश्रृङ्खलयोग नहीं हो तब यदि शुद्ध अधिका द्वादशी दोनों दिन में श्रवण से युक्त हो और पहले दिन उदयकाल में श्रवण न हो तो दूसरी ही ग्रहण करने योग्य है।

यदोभयदिने सूर्योदये द्वादश्यां श्रवणयोगस्तदा पूर्वैव। विद्धाधिकायामपि परत्रैवोदये उदयोत्तरं वा श्रवणयोगे परैवेति निर्विवादम्। उभयत्र श्रवणयोगे उक्तविधविष्णुश्रृङ्खलयोगे पूर्वा, अन्यथा परैवेति विज्ञेयम्। एवं यत्रैकादशीश्रवणद्वादश्योर्नैरन्तर्येणोपवासप्राप्तिस्तत्र शक्तेनोपवासद्वयं कार्यम्। व्रतद्वयस्यापि नित्यत्वात्, व्रतद्वयस्यैकदैवतत्वान्न पारणलोपदोषः।

जब दोनों दिन सूर्योदयकाल में द्वादशी में श्रवणयोग हो तब पहली का ही ग्रहण करे। विद्धा अधिका में भी दूसरे ही दिन उदयकाल में या उदय के बाद श्रवण का योग हो तो परा ही लेनी चाहिए यह विवादरहित है। दोनों दिन श्रवण के योग होने पर पूर्वोक्त विष्णुश्रृंखलयोग में पूर्वा, नहीं तो परा ही जानना चाहिए। इसी प्रकार एकादशी और श्रवणद्वादशी का इन दोनों में निरन्तर उपवास प्राप्त हो तो शक्तिशाली पुरुष दो दिन उपवास करे। दोनों व्रत के नित्य और एक देवता होने से पारणा नहीं करने का दोष नहीं होता।

यस्तूपवासद्वयासमर्थ एकादशीव्रतसंकल्पात्पूर्वं च निजासामर्थ्यं निश्चिनोति तेनैकादश्यां फलाद्याहारं कृत्वा द्वादश्यां निरशनं कार्यम्, नचैकादशीव्रतलोपः।

उपोष्य द्वादशीं पुण्यां विष्णुऋक्षेण संयुताम्।
एकादश्युद्भवं पुण्यं नरः प्राप्नोत्यसंशयम्॥

इति नारदोक्तेः।

श्रवणेन युता चेत्स्याद् द्वादशी सा हि वैष्णवैः।
स्मार्तैश्चोपोषणीया स्यात्त्यजेदेकादशी तदा॥

इति माधवोक्तेश्च।

अत्रैकादशीत्यागपदेन फलाहारो बोध्यते न तु भोजनम्। यस्तूपवासद्वय-शक्तिभ्रमेण कृतैकादशीव्रतसंकल्पः। संकल्पोत्तरं च द्वितीयोपवासासामर्थ्यमनुभवति तदा तेनैकादश्यामुपोष्य द्वादश्यां विष्णुपूजनं कृत्वा पारणं कार्यम्।

जो पुरुष दो दिन के उपवास में समर्थ नहीं हैं, एकादशीव्रत के संकल्प से पहले ही अपने सामर्थ्य का निश्चय कर ले। वे एकादशी में फलाहार करके द्वादशी में उपवास करें। इससे एकादशीव्रत का लोप नहीं होता। यही बात नारदस्मृति में कही है। विष्णुनक्षत्र (श्रवण) से युक्त द्वादशी में उपवास करके एकादशी से उत्पन्न होने वाले पुण्य को मनुष्य पाता है, इसमें सन्देह नहीं है। माधव ने भी कहा है कि यदि श्रवण वाली द्वादशी हो, वही वैष्णव स्मार्तों के उपवास योग्य है। ऐसी स्थिति में एकादशी का त्याग कर दे। यहाँ एकादशी त्याग का अर्थ फलाहार करने से है, न कि एकादशी में भोजन करने से। जो कि दोनों उपवास करने के शक्तिभ्रम से अपने में समझ कर एकादशीव्रत का संकल्प करता है और संकल्प के बाद दूसरे उपवास करने का अपने में समर्थ नही पाता, तब वह एकादशी में उपवास करके द्वादशी में विष्णु की पूजा कर पारण करे।

अत्र व्रताङ्गपूजनं कृत्वोपवासासमर्थं 'उपवासप्रतिनिधिरूपं विष्णुपूजनं करिष्ये' इति संकल्प्य पुनः पूजनं कुर्यात्। अत्र द्वादश्यां श्रवणयोगाभावे एकादश्यां श्रवणयोगे तत्रैव श्रवणद्वादशीव्रतं कार्यम्। विद्धैकादश्यां श्रवणयोगे तु येषां तत्रैकादशीव्रतप्राप्तिस्तेषां तन्त्रेणोपवासद्वयसिद्धिः। अन्येषां गृहीतश्रवणद्वादशीव्रतानामुपवासद्वयम्। तत्राशक्तानां तु पूर्वेह्नि फलाहारः परेह्नि निरशनमिति भाति।

इसमें दो उपवास करने में असमर्थ पुरुष 'उपवास के प्रतिनिधिस्वरूप विष्णुपूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करके पुनः विष्णुपूजन करे। यहाँ द्वादशी में श्रवणयोग न होने पर एकादशी में श्रवण के योग होने पर उसी में श्रवणद्वादशीव्रत करे। विद्धा एकादशी में श्रवणयोग होने पर तो जिनको जिस एकादशीव्रत की प्राप्ति हो उनको तंत्र से दो उपवास की सिद्धि होती है। अन्य का जिन्होंने श्रवणद्वादशीव्रत को स्वीकार किया है उन्हें दो उपवास करना चाहिए। इसमें अशक्त जन पहले दिन फलाहार और दूसरे दिन उपवास करें यह ठीक मालूम होता है।

अथ पारणानिर्णयः

उभयान्ते पारणं मुख्यः पक्षः। अन्यतरान्ते गौणःपक्षः। तत्र विष्णुश्रृङ्खलाभावे त्रयोदश्यामुभयान्ते पारणम्। विष्णुश्रृङ्खलयोगे तु पूर्वदिने तन्त्रेण कृतोपवासद्वयस्य परदिने श्रवणर्क्षाद् द्वादश्याधिक्ये श्रवणमतिक्रम्य द्वादश्यां पारणम्। यदि च द्वादश्यपेक्षया श्रवणाधिक्यं पारणादिने भवति तदा एकादशीव्रतपारणायां द्वादश्युल्लङ्घने दोषोक्तेर्द्वादश्यामेव पारणं न त्वन्यतरान्तापेक्षा। तत्र सति संभवे श्रवणमध्यभागं विंशत्यादिघटिकात्मकं त्यक्त्वा पारणम्। यथैकादशी ३० उत्तराषाढा २९ द्वादशी २५ श्रवणं २९, अत्र पूर्वेद्युस्तन्त्रेणोपवासद्वयं कृत्वा परेह्नि श्रवणमध्यभागमवशिष्टं नवघटिकात्मकं त्यक्त्वा द्वादश्यां चरमे विंशतिघटिकारूपे श्रवणभागे पारणम्।

तिथि नक्षत्र दोनों के अन्त में पारण करना मुख्य पक्ष है। दोनों में किसी एक के अंत में पारण करना यह गौण पक्ष है। विष्णुशृङ्खलयोग के न रहने पर तिथि नक्षत्र दोनों के अन्त में त्रयोदशी में पारण करे। विष्णुशृङ्खलयोग होने पर तो पहले दिन तन्त्र से दो उपवास कर दूसरे दिन श्रवणनक्षत्र से द्वादशी के अधिक होने पर श्रवण को बिता कर द्वादशी में पारण करे। यदि द्वादशी की अपेक्षा श्रवण ही अधिक पारणा के दिन होता है तो एकादशीव्रत की पारणा में द्वादशी के उल्लंघन में दोष होने से द्वादशी में ही पारण करे। इसमें किसी एक की अपेक्षा नहीं है। सम्भव हो तो २० घड़ी श्रवण के मध्यभाग को छोड़कर पारण करे। जैसे–एकादशी ३० और उत्तराषाढ़ा२९ द्वादशी २५ श्रवण २९ इसमें पहले दिन तन्त्र से दो उपवास करके दूसरे दिन श्रवण का बचा हुआ मध्यभाग नव घड़ी छोड़कर द्वादशी में अन्तिम २० घड़ी श्रवण में पारण करे।

एवमुक्तोदाहरणे एव एकादश्याः दशनाडिकात्वे द्वादश्या अष्टनाडिकात्वे द्वादशीश्रवणयोः पञ्चदशचत्वारिंशन्नाडीत्वे वा श्रवणमध्यभागत्यागे द्वादश्युल्लंघनापत्तौ [1]सङ्गवकालं त्यक्त्वा मुहूर्तत्रयपर्यन्तं सप्तमुहूर्तादौ वा ऋक्षमध्यभागे एव भोक्तव्यम्। अयं मध्यभागत्यागो भाद्रगतश्रवणद्वादशीव्रत एव, न तु माघफाल्गुनमासकृष्णपक्षगतश्रवणद्वादशीव्रतपारणायाम्। मासान्तरगतश्रवणभागे विष्णुपरिवर्तनाभावात्।

इस कहे हुए उदाहरण में ही एकादशी के १० घड़ी, द्वादशी के ८ घड़ी, द्वादशी और श्रवण के १५ या ४० घड़ी होने पर श्रवण के मध्यभाग के त्याग से द्वादशी के उल्लंघन की आपत्ति में संगवकाल को छोड़कर तीन मुहूर्त तक या सातवें मुहूर्त के आदि में नक्षत्र के मध्यभाग में ही भोजन करना चाहिए। यहाँ मध्यम भागका त्याग भाद्रपद की श्रवणद्वादशी के व्रत में ही है, न कि माघ फागुन मास के कृष्णपक्ष वाली श्रवणद्वादशीव्रत की पारणा में। दूसरे मासों के श्रवण भाग में विष्णुपरिवर्तन होता ही नहीं। माघ फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की श्रवणद्वादशी व्रत की पारणा में नहीं है, क्योंकि दूसरे महीनों के श्रवण भाग में विष्णुपरिवर्तन नहीं होता है।

ये तु भाद्रे श्रवणमध्यवर्जनमात्रेण निषेधचारितार्थ्यं मन्यमाना विष्णुशृङ्खलयोगाभावेपि श्रवणमध्यमात्रं त्यक्त्वा भुञ्जन्ते ते नित्यश्रवणद्वादशीव्रतमाहात्म्यानभिज्ञा भ्रान्ता एव। अयं सर्वोपि निर्णयो मासान्तरगतश्रवणद्वादशीव्रतेप्यूह्यः।

जो लोग भाद्रपद में श्रवण मध्य के त्याग मात्र से निषेध को चरितार्थ मानने वाले विष्णुशृङ्खलयोग के न होने पर भी श्रवण के मध्यभाग का त्याग करके भोजन करते हैं, वे नित्य श्रवणद्वादशीव्रत के माहात्म्य के जानकार नहीं है इसी लिए भ्रम में हैं। यह सब निर्णय दूसरे महीनों के श्रवणद्वादशीव्रत में भी कल्पना करनी चाहिए।

श्रवणद्वादशीव्रते नदीसंगमे स्नात्वा कलशे स्वर्णमयं जनार्दननामानं विष्णुं संपूज्य वस्त्रयज्ञोपवीतोपानच्छत्रादिसमर्प्योपोष्य पारणदिने दध्योदनयुतं वस्त्रवेष्टितं जलपूर्णघटं छत्रादियुतां पूजितां सपरिवारां तां प्रतिमां च दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

१. सङ्गता गावो दोहनाय यत्र सः। सङ्गवः=प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय जो दिन के पांच भागों में से दूसरा है।

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥ इति ।

श्रवणद्वादशीव्रत में नदी के संगम में नहाकर कलश में सोने के जनार्दन नाम वाले विष्णु की पूजा कर वस्त्र, यज्ञोपवीत, जूता और छाता आदि अर्पण कर उपवास करके पारणा के दिन दही भात सहित वस्त्र में वेष्टित जल से भरे घड़े को छाता आदि से युक्त सपरिवार पूजित उस प्रतिमा को दान करें। उसका मंत्रार्थ यह है—हे गोविन्द ! बुध श्रवण नामक आप को बार-बार नमस्कार है। पाप समूह का नाश करके सम्पूर्ण सुख देने वाले आप हों।

अथ वामनजयन्ती

भाद्रशुक्लद्वादश्यां श्रवणयुतायां मध्याह्ने [1]वामनोत्पत्तिः । अतो मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी मध्याह्ने ततोन्यत्र काले वा श्रवणयुता ग्राह्या । उभयदिने श्रवणयोगे पूर्वैव । सर्वथा द्वादश्याः श्रवणयोगाभावे एकादश्यामेव श्रवणसत्त्वे मध्याह्नव्यापिनीमपि द्वादशीं विहायैकादश्यामेव व्रतं कार्यम् । शुद्धैकादश्यां श्रवणाभावे दशमीविद्धैकादश्यामपि श्रवणयुतायां व्रतम् । पूर्वदिन एव मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी परदिने मध्याह्नादन्यत्र काले श्रवणयुता तदा पूर्वैव । तिथिद्वयेपि श्रवणयोगाभावे द्वादश्यामेव मध्याह्नव्यापिन्यां व्रतम् ।

श्रवणयुक्त भाद्रपदशुक्ल द्वादशी के मध्याह्न में वामन भगवान् की उत्पत्ति है। इस लिए मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी मध्याह्न में अथवा इससे भिन्न काल में जब श्रवणनक्षत्र का योग हो तो ग्रहण करना चाहिए। दोनों दिन श्रवणयोग होने पर पूर्वा ही ग्राह्य है। सब प्रकार से द्वादशी में श्रवणयोग न होने पर एकादशी में ही श्रवणयोग होने पर मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी को छोड़कर एकादशी में ही व्रत करे। शुद्ध एकादशी में श्रवणयोग न होने पर दशमीविद्धा एकादशी में भी श्रवणयोग होने से व्रत करना चाहिए। पहले ही दिन मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी हो और दूसरे दिन मध्याह्न से भिन्न काल में श्रवणयोग हो तब पूर्वा ही में व्रत करे। दोनों तिथियों में श्रवणयोग न होने पर मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी में ही व्रत करे।

दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदव्याप्तौ चैकादशीयुक्तैव ग्राह्या । पारणा तु पूर्वोक्तरीत्योभयान्तेऽन्यतरान्ते वा कार्या । अत्र मध्याह्ने नदीसंगमे स्नात्वा सौवर्णं वामनं संपूज्यार्घ्यं सौवर्णपात्रेण दद्यात् । तत्र पूजामन्त्रः—

देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे ।
प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमो नमः ॥

अथार्घ्यमन्त्रः—

नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे ॥

---

१. भागवत अष्टमस्कन्ध में वामन की उत्पत्ति का वर्णन—'श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः । ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यन्दिनगतो नृप । विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥' श्रोणा—चन्द्र अर्थात् श्रवणस्थ-चन्द्र में ।

नमः शार्ङ्गधनुर्बाणपाणये वामनाय च ।
यज्ञभुक्फलदात्रे च वामनाय नमो नमः ॥

ततः परदिने सपरिवारं वामनं द्विजाय दद्यात्—

वामनः प्रतिगृह्णाति वामनोहं ददामि ते ।
वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादये ॥ इति दानमन्त्रः ।

दोनों दिन मध्याह्न में द्वादशी हो या दोनों दिन मध्याह्न में न हो तो एकादशीयुक्त का ग्रहण करे । पारणा तो पहले कहे हुए प्रकार से तिथि नक्षत्र के अन्त में अथवा किसी एक के अन्त में करना चाहिए । इस दिन मध्याह्न में नदीसंगम में स्नान कर सोने के पात्र से अर्घ्य देवे । वामन की पूजा के मंत्रार्थ यह है—देवताओं को उत्पन्न करने वाले, देवताओं के स्वामी, सब देवों के ईश्वर भगवान् वामन को प्रणाम है । अर्घ्य का मन्त्रार्थ—जल में सोने वाले पद्मनाभ भगवान् को नमस्कार है । बाल वामन रूपी आप को मैं अर्घ्य देता हूँ । शृङ्ग के धनुष और बाण को हाथ में धारण करने, यज्ञ में खाने और फल देने वाले वामन भगवान् को नमस्कार है । इसके बाद दूसरे दिन सपरिवार वामन भगवान् की प्रतिमा ब्राह्मण को दे दे । दान का मन्त्रार्थ—वामन ही लेने वाले और वामन ही देने वाले हैं ऐसे वामन भगवान् सब तरह से कल्याण करें । मैं ब्राह्मण को वामन की प्रतिमा देता हूँ ।

अथ दधिव्रतत्यागपूर्वकं पयोव्रतम्

अस्यामेव द्वादश्यां रात्रौ देवपूजां कृत्वा तत्रासंभवे दिवैव वा दधिव्रतं निवेद्य दधिदानं कृत्वा दुग्धव्रतसंकल्पं कुर्यात् । अत्र पयोव्रते पयोविकारस्य पायसादेः दुग्धपाचितान्नस्य च वर्जनम् । दध्यादेः पयोविकारस्यापि न वर्जनम् । एवं दधिव्रते तक्रादेर्न वर्जनम् । यत्र प्रसूताया गोर्दशदिनेषु संधिन्यादेश्च क्षीरनिषेधस्तत्र क्षीरविकारस्य दधितक्रादेः सर्वस्यैव वर्जनम् ।

इसी द्वादशी की रात में देवपूजा करके यदि रात में सम्भव नहीं हो तो दिन में ही दधिव्रत को निवेदन कर दही दान करके दुग्धव्रत का संकल्प करे । इस पयोव्रत में दूध के विकार पायस आदि, दूध में पकाये हुए अन्न का भी त्याग करना चाहिए । दधि आदि दूध के विकार का त्याग नहीं है । इसी तरह दधिव्रत में मट्ठे का त्याग नहीं है । जहाँ व्यायी हुई गाय के दश दिनों में और गर्भिणी होने पर उसके दूध का निषेध है वहाँ इसके दूध के विकार दही मट्ठा आदि सबका त्याग है ।

अथ अनन्तव्रतनिर्णयः

अथ भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतम्[1] । तत्रोदये त्रिमुहूर्तव्यापिनी चतुर्दशी ग्राह्येति मुख्यः पक्षः । तदभावे द्विमुहूर्ता ग्राह्येत्यनुकल्पः । द्विमुहूर्तन्यूना तु पूर्वैव ग्राह्या । दिनद्वये सूर्योदयव्यापित्वे संपूर्णत्वात्पूर्वैव । अत्र पूर्वाह्णो मुख्यः

१. माधवः—'उदये त्रिमुहूर्ताऽपि ग्राह्याऽनन्तव्रते तिथिः । स्कान्दे—'मुहूर्तमपि चेद् भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी । सम्पूर्णां तां विजानीयात् पूजयेद् विष्णुमव्ययम् ॥' तत्रैव—'अनन्तस्य व्रते राजन् घटिकैका चतुर्दशी । उदये घटिकाऽर्धं वा सैव ग्राह्या महाफला ॥' दिवोदासः—'चतुर्दश्युदये किञ्चित् पूर्णिमा सकला यदि । तत्र कुर्यादनन्तस्य महाविष्णोः प्रपूजनम् ॥' इति ।

कर्मकालः तदभावे[1] मध्याह्नोपि। अत्र व्रते सुवर्णप्रतिमायां चतुर्दशग्रन्थियुतदोरके चानन्तपूजनादिविधिस्तदुद्यापनविधिश्च कौस्तुभादौ ज्ञेयः। पूजितदोरकनाशे तु गुरुं वृत्वा तदनुज्ञया यथाशक्ति कृच्छ्रादिप्रायश्चित्तं विधायाष्टोत्तरशतमाज्येन द्वादशाक्षरवासुदेवमन्त्रेण हुत्वा केशवादिचतुर्विंशतिनामभिः सकृत्सकृद्धुत्वा होमशेषं समाप्य नूतनदोरके पूर्ववत्पूजनादि चरेत्।

भाद्रशुक्ल चतुर्दशी में अनन्तव्रत होता है। उदय में तीन मुहूर्त रहने वाली चतुर्दशी ग्राह्य है, यह मुख्य पक्ष है। ऐसा न होने पर दो मुहूर्त रहने वाली चतुर्दशी भी ग्राह्य है, यह अनुकल्प है। दो मुहूर्त से कम होने पर तो पूर्वा ही लेनी चाहिए। दो दिन में सूर्योदयव्यापिनी चतुर्दशी के होनेपर सम्पूर्ण होने से पूर्वा ही लेनी चाहिए। इसका मुख्य कर्मकाल पूर्वाह्ण है, इसके न रहनेपर मध्याह्न भी है। इस व्रत में चौदह गाँठ की डोरे में अनन्त भगवान् के और उसके उद्यापन की विधि भी कौस्तुभ आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए। अनन्त भगवान् का पूजन किया हुआ चौदह गाँठ के डोरे के नष्ट होने पर गुरु को वरण करके उनकी आज्ञा से यथाशक्ति कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त करके एक सौ आठ बार द्वादशाक्षर वासुदेव के मंत्र से केशव आदि चौबीस नामों से एक-एक बार होम करके और होम को समाप्त कर नये डोरे में पहले की तरह पूजन आदि करे।

अथ अगस्त्योदयः

सूर्यस्य वृषसंक्रमोत्तरं सप्तमदिनेऽगस्त्योऽस्तं प्रयाति। सिंहसंक्रान्त्युत्तरमेकविंशतितमे दिने उदयमेति। तत्र कन्यासंक्रान्तेः पूर्वं [2]सप्तदिनमध्येऽगस्त्यपूजनं तदर्घ्यादिकं कार्यम्।

सूर्य के वृषसंक्रान्ति के बाद सातवें दिन अगस्त्य जी का अस्त होता है। सिंहसंक्रान्ति के बाद इक्कीसवें दिन अगस्त का उदय होता है। कन्यासंक्रान्ति के पहले सात दिन के बीच में अगस्त्य का पूजन और उन्हें अर्घ्य आदि देना चाहिए।

अथ प्रोष्ठपदीश्राद्धम्

भाद्रपदपौर्णमास्यां प्रपितामहात् परान् [3]पित्रादींस्त्रीन्सपत्नीकान् वसुरुद्रादित्यस्वरूपान् मातामहादित्रयं च सपत्नीकमुद्दिश्य श्राद्धं कार्यम्। इदं पार्वणत्वादपराह्णे पुरूरवार्द्रवदेवयुक्तं सपिण्डकं कार्यम्।

---

१. माधवीय में—'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः।' इस सामान्यवचन से मध्याह्न भी कर्मकाल है।

२. अगस्त्य की पूजाविधि निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें देखें। ऋग्वेद के द्वितीयाष्टकचतुर्थाध्याय में अर्घ्य का मन्त्र—'अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः। उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥' इति।

३ हेमाद्रि में मार्कण्डेय—'नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ। पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा।' ब्राह्म में इन्हें नान्दीमुखत्व प्रतिपादित किया—'पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः। ते तु नान्दीमुखाः, नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते॥' धौम्य के—'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि।' इस उक्ति से मातामहादिका भी श्राद्ध कर्तव्य है।

भाद्रपद की पूर्णिमा में सपत्नीक प्रपितामह के बाद के पिता-पितामह-प्रपितामहों को जो वसु-रुद्र-आदित्य स्वरूप हैं और सपत्नीक मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह, इन तीनों के उद्देश्य से श्राद्ध करना चाहिए। यह पुरूरव पार्वण श्राद्ध होने से अपराह्णकाल मेंऔर आर्द्रव देवताओं के साथ पिण्डसहित करना चाहिए।

केचित्तु प्रपितामहस्य पित्रादित्रयमात्रमुद्दिश्य नान्दीश्राद्धधर्मेण सत्यवसुदेवयुक्तं श्राद्धं कार्यं नात्र मातामहाद्युद्देश इत्याहुः। इदं प्रोष्ठपदीश्राद्धं सकृन्महालयपक्षे सकलकृष्णपक्षव्यापिमहालयपक्षे चावश्यकम्। पञ्चम्यादिमहालयपक्षेषु कृताकृतम्।

कोई तो कहते हैं प्रपितामह के पिता आदि तीन के उद्देश्य से नान्दीश्राद्ध के द्वारा सत्य-वसु-विश्वे-देवसहित श्राद्ध करना चाहिए। इसमें मातामह के उद्देश्य से श्राद्ध न करे। यह भाद्रपद पूर्णिमाका श्राद्ध एक बार महालय के पक्ष में या और सम्पूर्ण-कृष्णपक्षव्यापी-महालयपक्ष में भी आवश्यक है। पंचमी आदि महालय पक्षों में कृताकृत है।

अथ महालयः

तत्र शक्तेन भाद्रपदापरपक्षे प्रतिपदमारभ्य दर्शान्तं तिथिवृद्धौ [1]षोडश महालयाः कर्तव्याः। वृद्धिक्षयाभावे पञ्चदशैव महालयाः। तिथिक्षये चतुर्दशैव। अशक्तेन तु पञ्चम्यादिषु षष्ठ्यादिष्वष्टम्यादिषु दशम्यादिष्वेकादश्यादिषु दर्शान्ततिथिषु कार्याः। अत्राप्यशक्तेनानिषिद्धे कस्मिंश्चिदेकस्मिन्दिने सकृन्महालयः

१. शाट्यायनिः—'नभस्यस्यापरे पक्षे तिथिषोडशकस्तु यः। कन्यागतान्वितश्चेत्स्यात् स कालः श्राद्धकर्मणि॥' षोडशत्व की पूर्ति—कोई तिथि की वृद्धि से, कोई भाद्रपद की पूर्णिमा को साथ करके और कोई आश्विनशुक्ल प्रतिपदा को लेकर—करते हैं। यथा हलायुधः—'नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ। पौर्णमास्यां तु कुर्वीत वराहवचनं यथा॥' देवलः—'अहःषोडशिकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह।' ब्राह्मे—'आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिने दिने। त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा॥' इति।

यहाँ चार पक्ष हैं—दिने दिने अर्थात् प्रतिपदा से अमावास्यापर्यन्त १, पञ्चमी से अमावास्या पर्यन्त २, अष्टमी से अमावास्यापर्यन्त ३, एवं दशमी से अमावास्यापर्यन्त ४, इन चारों पक्षों में किसी एक का आश्रयण सामर्थ्यानुसार करे। इसका स्पष्टीकरण कालादर्श में—'पक्षाद्यदि च दर्शान्तं पञ्चम्यादि दिगादि च। अष्टम्यादि यथाशक्ति कुर्यादापरपक्षिकम्॥' इति।

इन चारों पक्षों में से किसी एक का भी आश्रयण अशक्ततावश नहीं कर सके तो एक ही दिन करे। यथा नागरखण्डे—'आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे। यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे। तस्य संवत्सरं यावत् संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्॥'

पितृपक्ष में एक ही दिन श्राद्ध करना हो तो मृताह तिथि में ही करे। यथा कात्यायनः—'या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते। सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः॥ तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विनाऽशौचं यदृच्छया। पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तिं नैव कारयेत्॥ अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकदिने यदा। निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात् पिण्डदानं यथाविधि॥'

इसमें प्रतिपदा से अमावास्यापर्यन्त पार्वणश्राद्ध की ही मुख्यता है। यथा मार्कण्डेयः—'कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च। पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते॥' इति।

कर्तव्यः । प्रतिपदादिदर्शान्तपक्षे चतुर्दशी न वर्ज्या । पञ्चम्यादिदर्शान्तादिपञ्च-पक्षेषु चतुर्दशीं वर्जयित्वाऽन्यतिथिषु महालयाः । सकृन्महालयेपि चतुर्दशी वर्जनीया ।

इसमें समर्थ-पुरुष को भाद्रपद के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ करके अमावास्या तक तिथि-वृद्धि होने पर सोलह महालय करना चाहिए। तिथि-वृद्धि या तिथि-क्षय न होने पर पन्द्रह ही महालय होते हैं। तिथि-क्षय में तो चौदह ही होते हैं। असमर्थ तो पंचमी आदि, षष्ठी आदि, अष्टमी आदि, दशमी आदि और एकादशी आदि में अमावास्या तक करे। इसमें भी जो असमर्थ हों उनको अनिषिद्ध किसी एक दिन में एक बार महालय करना चाहिये। प्रतिपदा से अमावास्या तक के पक्ष में चतुर्दशी में नहीं छोड़ना चाहिए। पचमी आदि से अमावास्या तक के पाँच पक्षों में चतुर्दशी को छोड़कर अन्य तिथियों में महालय श्राद्ध करे। एक वार के महालय में भी चतुर्दशी छोड़ देनी चाहिए।

सकृन्महालये प्रतिपदा षष्ठी एकादशी चतुर्दशी शुक्रवारो जन्मनक्षत्रं जन्म-नक्षत्राद्दशममेकोनविंशं नक्षत्रं च रोहिणी मघा रेवती चेति [1]वर्ज्यानि । क्वचित् त्रयोदशी सप्तमी रविवारोपि वर्ज्य उक्तः । पितृमृततिथौ सकृन्महालयकरणे नन्दादिनिषेधो नास्ति ।

अशक्तः पितृपक्षे तु करोत्येकदिने यतः ।
निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि ॥ इत्यादिवचनात् ।

मृततिथौ श्राद्धासंभवे निषिद्धतिथ्यादिदिनं वर्जयित्वा महालयः । तत्रापि द्वादश्यमावास्याष्टमीभरणीव्यतीपातेषु मृततिथ्यभावेपि सकृन्महालये कोपि तिथ्यादिनिषेधो नास्ति ।

एक बार के महालयश्राद्ध में प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, चतुर्दशी, और शुक्रवार जन्मनक्षत्र से दसवां और उन्नीसवाँ नक्षत्र तथा रोहिणी, मघा और रेवती त्याज्य है। कहीं पर त्रयोदशी, सप्तमी, रविवार और मंगलवार को भी छोड़ना कहा गया है। पिता के मृत तिथि में एक बार महालय करने में नन्दा आदि का निषेध नहीं होता। असमर्थ-पुरुष पितृपक्ष में एक दिन महालय करता है तो निषिद्ध दिन में भी सविधि पिण्डदान करे, इस आशय के वचनानुसार करना चाहिए। मृत तिथि में श्राद्ध न होने पर निषिद्ध तिथि आदि को छोड़कर महालय श्राद्ध करे। उसमें भी द्वादशी, अमावास्या, भरणी और व्यतिपात में मृत तिथि के न होने पर भी एक बार महालय करने में कोई तिथि आदि का कोई निषेध नहीं लगता।

संन्यासिनां महालयस्तु अपराह्णव्यापिन्यां द्वादश्यामेव सपिण्डकः कार्यो

---

१. वसिष्ठः—'नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु। एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधन-क्षयात् ॥' वृद्धगार्ग्यः—'प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्र्यर्क्षे भार्गवे तथा। यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति ॥' इति। इसका अपवाद हेमाद्रि में यों है—'अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके। तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विचारयेत् ॥' कार्ष्णाजिनिः—'नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कार्यं दिने दिने। नैव नन्दादि वर्ज्यं स्यान्नैव निन्द्या चतुर्दशी ॥" इति।

नान्यतिथौ। चतुर्दश्यां मृतस्यापि महालयश्चतुर्दश्यां न भवति। 'श्राद्धं [१]शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां प्रकीर्तितम्' इति नियमेन सर्वतो बलिष्ठेन प्रतिवार्षिकश्राद्धातिरिक्तश्राद्धस्य चतुर्दश्यां निषेधात्। एवं पौर्णमासीमृतस्यापि महालयः पौर्णमास्यां न कार्यः। अपरपक्षत्वाभावेन तस्यां महालयाप्राप्तेः। तेन चतुर्दशीमृतस्य पौर्णमासीमृतस्य वा महालयो द्वादश्यमावास्यादितिथिषु कार्यः।

संन्यासियों का महालय तो अपराह्णव्यापिनी द्वादशी में ही पिण्डसहित करना चाहिए अन्य तिथियों में नहीं। चतुर्दशी में मरे हुए का महालय चतुर्दशी में नहीं होता। 'चतुर्दशी में श्राद्ध उन्हीं का होता है जो शस्त्र से मारे गये हों' सबसे बलिष्ठ इस नियम से वार्षिक श्राद्ध के अतिरिक्त श्राद्ध का चतुर्दशी के निषेध होने से पूर्णिमा में मरे हुए का महालय पूर्णिमा में करना चाहिए। कृष्णपक्ष के होने से पूर्णिमा में महालय न होने के कारण चतुर्दशी या पूर्णिमा में मरे हुए का महालय श्राद्ध द्वादशी अमावास्या आदि तिथियों में करना चाहिए।

अत्र कन्यार्कः प्राशस्त्यसंपादको न तु निमित्तम्।

आदौ मध्येऽवसाने वा यत्र कन्यां व्रजेद्रविः।
स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति॥

इत्यादिस्मृतेः। अमावास्यापर्यन्ततिथावसंभवे आश्विनशुक्लपञ्चमीपर्यन्तं यस्मिन्कस्मिंश्चित्तिथौ महालयः। तत्रासंभवे यावद्वृश्चिकदर्शनं व्यतीपातद्वादश्यादिपर्वणि कार्यः। मृताहे महालये च श्राद्धं पक्वान्नेनैव कार्यं न त्वामान्नादिना।

महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोर्मृतेऽहनि।
कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डदानं यथाविधि॥

यहाँ कन्या की संक्रान्ति में महालय करना प्रशस्त बोधक है, निमित्त नहीं। कन्यासंक्रान्ति के आदि मध्य अथवा अन्त में जब कन्या के सूर्य हों वह सम्पूर्ण कृष्णपक्ष महालयश्राद्ध के लिए उत्तम है, ऐसा श्रुतियों में कहा है। अमावास्या तक तिथियों में महालयश्राद्ध न करने पर आश्विन-शुक्ल पंचमी तक जिस किसी तिथि में महालय करना चाहिए। इसमें भी न हो सके तो जब तक वृश्चिक के सूर्य हों तो व्यतिपात और द्वादशी आदि पर्व में महालय करे। मृत तिथि और महालय में भी पक्वान्न से ही श्राद्ध करना चाहिए, कच्चे अन्न से नहीं। इसमें पिण्डदान करना चाहिए। महालय में, गयाश्राद्ध में, मातापिता के मृत तिथि और विवाह करने परभी यथा विधि पिण्डदान करना चाहिए।

अथ महालये देवताः

पक्षश्राद्धे पित्रादिपार्वणत्रयपत्न्याद्येकोद्दिष्टपितृगणसहितसर्वपित्रुद्देशेन सपत्नीकपित्रादित्रयसपत्नीकमातामहादित्रयेति षड्दैवतमात्रोद्देशेन वा षड्दैवतैकोद्दिष्टगणोद्देशेन वा प्रत्यहं महालय इति पक्षत्रयम्। एवं पञ्चम्यादिपक्षेष्वपि। सकृन्महा-

---

१. नागरखण्डे—'अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा। उपसर्गमृतानां च विषमृत्युमुपेयुषाम्। वह्निना च प्रदग्धानां जलमृत्युमुपेयुषाम्। श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप॥' इति।

लये तु सर्वपित्रुद्देशेनैव। तत्र [1]'देवतासंकल्पः—'पितृपितामहप्रपितामहानां मातृतत्सपत्नीपितामहीतत्सपत्नीप्रपितामहीतत्सपत्नीनां, यद्वाऽस्मत्सापत्नमातुरिति पृथगुद्देशः। मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां सपत्नीकानां यथानामगोत्राणां वस्वादिरूपाणां पार्वणविधिना पत्न्याः पुत्रस्य कन्यकायाः पितृव्यस्य मातुलस्य भ्रातुः पितृष्वसुर्मातृष्वसुरात्मभगिन्याः पितृव्यपुत्रस्य जामातुर्भागिनेयस्य श्वशुरस्य श्वश्र्वा आचार्यस्योपाध्यायस्य गुरोः सख्युः शिष्यस्य एतेषां यथानामगोत्ररूपाणां पुरुषविषये सपत्नीकानां स्त्रीविषये सभर्तृकसापत्यानामेकोद्दिष्टविधिना महालयापरपक्षश्राद्धमथवा सकृन्महालयापरपक्षश्राद्धं सदैवं सद्यः करिष्ये' इति।

पन्द्रह दिन के महालय पक्ष में पिता आदि तीन का पार्वण, पत्नी आदि का एकोद्दिष्ट, पितृगण-सहित सम्पूर्ण पितरों के उद्देश्य से अथवा पत्नीसहित पिता आदि तीन तथा पत्नीसहित मातामह आदि तीन का छ देवता मात्र के उद्देश्य से छ देवता वाले एकोद्दिष्ट गण के उद्देश्य से प्रतिदिन महालय होता है, यह तीन पक्ष है। इसी तरह पंचमी आदि पक्ष में भी। एक बार महालय करने में तो सम्पूर्ण पितरों के उद्देश्य से ही होता है। देवताका संकल्प यह है—'पिता पितामह और प्रपितामहका, माता माता की सौत माता की सास और उनकी सौत का, परदादी और उनकी सौतका, अथवा हमारी सौतेली माँ का यह अलग करे। सपत्नीक मातामह और माता के पितामह. माता के प्रपितामहों का नामगोत्रसहित वसु आदि रूप वालों का पार्वणविधि से पत्नी-पुत्र-कन्या-चाचा-मामा-भाई-फुआ मौसी-बहन-चचेरे-भाई-दामाद-भांजे-स्वसुर-सास-आचार्य-उपाध्याय-गुरु-मित्र और शिष्य यथानाम गोत्र-रूप वालों का, पुरुष के विषय में सपत्नीक और स्त्री के विषय में पति सन्तान के सहित का, एकोद्दिष्टविधि से महालयश्राद्ध अथवा एक बार महालयश्राद्ध देवसहित तुरन्त करूँगा' ऐसा संकल्प करे।

एतेषां मध्ये ये केचिज्जीवन्ति तान्विहाय इतरेषामुद्देशः। मातामहादिषु पत्न्या जीवने सपत्नीकेत्यस्य स्त्रीषु च भर्त्रादेरनुच्चारः।

महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च।
नवदैवतमत्रेष्टं शेषं षाट्पौरुषं विदुः॥
अन्वष्टकासु वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरे तथा।
महालये गयायां च सपिण्डीकरणात्पुरा॥
मातुः श्राद्धं पृथक्कार्यमन्यत्र पतिना सह।

इत्यादिस्मृत्यनुसारात्पार्वणत्रयमेवोक्तम्।

---

१. संग्रहे—'ताताम्बात्रितयं, सपत्नजननी, मातामहादित्रयं, सस्त्रि, स्त्रीतनयादि, तातजननीस्वभ्रातरः सस्त्रियः। ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुक्, जाया पिता, सद्गुरुः, शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ, तीर्थे तथा तर्पणे॥' इति।

पुराणान्तर में पार्वण एकोद्दिष्ट की व्यवस्था—'उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः। श्वशुरभ्रातृतत्पुत्रपुत्रर्त्विक्शिष्यपोषकाः॥ भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः। पितरौ पितृपत्नीनां पितुर्मातुश्च या स्वसा॥ सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये। एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः॥' इति।

इनमें से जो कोई जीते हों उनको छोड़ करके अन्य के उद्देश्य से महालय करना चाहिए। मातामह आदि में स्त्री के जीते रहने पर सपत्नीक शब्द का उच्चारण न करे। और स्त्रियों के श्राद्ध में पति के जीते रहने पर पति-पुत्रादि का उच्चारण न करे। महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध तथा अन्वष्टकाश्राद्ध में नव देवता होते हैं। बाकी में छ होते हैं। अन्वष्टका, वृद्धिश्राद्ध, वार्षिक-श्राद्ध, महालय तथा गया में सपिण्डीकरण के पहले माता का श्राद्ध अलग और इसके अतिरिक्त श्राद्ध में पति के साथ करना चाहिए। इस आशय के श्रुतियों के अनुसार पार्वणत्रय ही कहा है।

केचित्तु मातामह्यादित्रयं पृथगुच्चार्य द्वादशदेवताकं पार्वणचतुष्टयमाहुः। एता एव देवता गयायां तीर्थश्राद्धे नित्यतर्पणे च ज्ञेयाः। महालये धूरिलोचन-संज्ञका विश्वेदेवाः।

कोई तो मातामही आदि तीन का अलग उच्चारण करके बारह देवता वाले चार पार्वण करने को कहते हैं। इतने ही देवता गया, तीर्थश्राद्ध और नित्य तर्पण में जानना चाहिए। महालय में धूरिलोचन नामक विश्वेदेव होते हैं।

अथ ब्राह्मणविभागः

अत्र सति संभवे देवार्थं द्वौ विप्रौ पार्वणत्रयार्थं प्रतिपार्वणं त्रीनित्येवं [1]नव। पत्न्याद्येकोद्दिष्टगणे प्रतिदैवतमेकैकमेवं विप्रान्निमन्त्रयेत्।

श्राद्ध में यदि बन हो तो देवता के लिए दो और तीन पार्वण के लिए प्रतिपार्वण तीन, इस प्रकार नव ब्राह्मण हुए। पत्नी आदि एकोद्दिष्टगण में प्रतिदैवत एक-एक ब्राह्मण को निमंत्रण देवे।

अशक्तौ देवार्थमेकं प्रतिपार्वणमेकमिति पार्वणत्रये त्रीन् सर्वैकोद्दिष्टगणार्थमेक-मिति निमन्त्रयेत्। देवार्थं विप्रद्वयपक्षे प्रतिपार्वणे त्रय एव कार्याः। न तु देवार्थं द्वौ प्रतिपार्वणमेक इति वा प्रतिपार्वणं त्रीन् देवार्थमेक इति वा वैषम्यं कार्यम्। एवं सर्वत्र अमावास्यादिश्राद्धेष्वपि ज्ञेयम्।

शक्ति न रहने पर देवता के लिए प्रतिपार्वण एक और तीन पार्वण में तीन और एकोद्दिष्ट गण के लिए एक का निमंत्रण करे। जब देवता के लिए दो ब्राह्मणों का निमन्त्रण हो तो पक्ष में प्रति-पार्वण में तीन ही का निमन्त्रण करे, न कि देवता के लिए दो और पार्वण के एक अथवा प्रति-पार्वण तीन और देवता के लिए एक ब्राह्मण का निमन्त्रण, इस प्रकार वैषम्य नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार अमावस्या आदि सभी श्राद्धों में जानना चाहिए।

अत्यशक्तौ पार्वणद्वयार्थमेकोपि कार्यः। महालये अन्ते महाविष्ण्वर्थं विप्रोऽ-वश्यं निमन्त्रयितव्य इति विशेषः कौस्तुभे।

अत्यन्त अशक्त तो दो पार्वण के लिए एक ब्राह्मण का भी निमन्त्रण कर सकता है। महालय के अन्त में महाविष्णु के लिए ब्राह्मण का निमन्त्रण अवश्य करना चाहिए, ऐसा कौस्तुभ में विशेष लिखा है।

---

१. हेमाद्रि में विष्णुधर्म—'महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च। नवदैवत्यमत्रेष्टं शेषं षाट्पौरुषं विदुः॥' निगम के मत में तो—'महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च। ज्ञेयं द्वादश-दैवत्यं तीर्थे प्रौष्ठे मघासु च॥' इति।

अथ सापत्नमातृनिर्णयः

जीवन्मातृकः सापत्नमातुरेकोद्दिष्टं[1] कुर्यान्न पार्वणम्। अनेकाः सापत्नमातरो यस्य तेन सर्वमात्रुद्देशेनैक एव विप्रः पिण्डश्च कार्योऽर्घ्यपात्रं पृथक्। स्वजनन्या सहानेकमातृत्वे स्वजनन्या सह सर्वमात्रर्थमेको विप्रः पिण्डोऽर्घ्यश्चेति पार्वणमेव न पृथक् सापत्नमात्रैकोद्दिष्टमिति वा सर्वसापत्नमातॄणां पृथगेवैकोद्दिष्टमिति वा पक्षः।

जिसकी माँ जीती हो वह सौतेली माँ का एकोद्दिष्ट करे, पार्वण न करे। जिसकी बहुत सी सौतेली माँ हो वह सब माताओं के उद्देश्य से एक ही ब्राह्मण और एक पिण्ड करे तथा अर्घ्यपात्र अलग करे। अपनी माँ के साथ अनेक माताओं के होने पर अपनी माता के साथ सब माताओं के लिए एक ब्राह्मण एक पिण्ड और एक ही अर्घ्यपात्र करे इस प्रकार पार्वण ही करे, न कि सौतेली माँ का पृथक् एकोद्दिष्ट करे, अथवा सब सौतेली माँ के लिए अलग ही एकोद्दिष्ट करे, यह भी पक्ष है।

अथाग्नौकरणबर्हिर्निर्णयः

महालये पार्वणार्थे अग्नौकरणमेकोद्दिष्टगणार्थं त्वग्नौकरणं कृताकृतम्। करणपक्षे एकोद्दिष्टगणार्थमग्नौकरणान्नं पृथक् पात्रे ग्राह्यम्। महालये सर्वपार्वणार्थमेकोद्दिष्टार्थं च सकृदाच्छिन्नं बर्हिरेकमेव। दर्शादौ तु प्रतिपार्वणं बर्हिर्भिन्नमेव। अवशिष्टः श्राद्धप्रयोगोऽनेकमातृत्वेऽभ्यञ्जनादिमन्त्रोहश्च श्राद्धसागरे स्वस्वशाखोक्तप्रयोगग्रन्थेषु च ज्ञेयः।

महालय में पार्वण के लिए अग्नीकरण करे। एकोद्दिष्टगण के लिए तो अग्नीकरण करना न करना बराबर है। करने के पक्ष में एकोद्दिष्ट गण के लिये अग्नीकरण का अन्न दूसरे पात्र में ग्रहण करे। महालय में सब पार्वणों और एकोद्दिष्ट के लिए एक बार काटा हुआ कुश एक ही रहता है। अमावास्या आदि के श्राद्ध में तो प्रत्येक पार्वण के लिए कुश दूसरा ही रहता है। अवशिष्ट श्राद्ध-प्रयोग अनेक माताओं के रहते अभ्यञ्जन आदि मन्त्र की कल्पना श्राद्धसागर और अपनी-अपनी शाखा के कहे हुए प्रयोग ग्रन्थों से जाननी चाहिए।

अथ सकृन्महालये परदिने तर्पणादि

सकृन्महालये श्राद्धाङ्गतिलतर्पणं परेह्न्येव। सर्वपित्रुद्देशेन प्रातःसंध्यायाः पूर्वमेव प्रातःसंध्योत्तरं वा ब्रह्मयज्ञाङ्गतर्पणाद्भिन्नमेव कार्यम्। प्रतिपदादिपञ्चम्यादिपक्षेषु विप्रविसर्जनान्ते एव श्राद्धपूजितपित्रुद्देशेन तर्पणं कार्यम्।

सकृन्महालय के पक्ष में श्राद्ध का अंग तिलतर्पण सब पितरों के उद्देश्य से दूसरे ही दिन करे। सभी पितरों के उद्देश्य में प्रातः सन्ध्या के पूर्व ही या प्रातः सन्ध्या के बाद उस ब्रह्मयज्ञांग तर्पण से अलग ही करना चाहिए। प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी आदि पक्षों में ब्राह्मणविसर्जन के बाद ही श्राद्ध-पूजित-पितरों के उद्देश्य से तर्पण करे।

---

१. याज्ञवल्क्योक्त एकोद्दिष्ट का स्वरूप—'एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्। आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत्॥' बृहन्मनु के वचन से श्राद्धदीपकलिका में पार्वण का ही निर्देश है—'आन्वष्टक्यं च यन्मातुर्गयाश्राद्धं महालयम्। पितृपत्नीषु च श्राद्धं कार्यं पार्वणवद् भवेत्॥' इति।

अथ महालये पत्न्यां रजसि निर्णयः

पत्न्यां रजस्वलायां सकृन्महालयो न कार्यः, कालान्तराणां सत्त्वात्। अमायां रजोदोषे आश्विनशुक्लपञ्चमीपर्यन्तं गौणकाले महालयः। प्रतिपदादिष्वन्येषु पक्षेषु प्रारंभदिने पाकात्पूर्वं पत्नी रजस्वला चेदुत्तरोत्तरपक्षस्वीकारः पाकारम्भोत्तरं चेत्तां गृहान्तरेऽवरुध्य महालयः कर्तव्यः। एवं विधवाकर्तृकश्राद्धेऽपि ज्ञेयम्। भ्रात्रादिमहालयश्च तत्रैवोत्तरार्धे ज्ञेयः।

पत्नी के रजस्वला होने पर सकृन्महालय नहीं करे क्योंकि उसका दूसरा काल भी है। अमावास्या में पत्नी के रजस्वला होने पर आश्विनशुक्ल पञ्चमी तक गौणकाल में महालय करना चाहिए। प्रतिपदा आदि दूसरे पक्षों में आरम्भ के दिन पाक से पहले यदि स्त्री रजस्वला हो तो उसके बाद वाले पक्ष को स्वीकार कर महालय करे। पाकारम्भ के बाद यदि रजस्वला हो तो उसे दूसरे घर में बन्द करके महालय करे। इसी प्रकार विधवा द्वारा किये गये श्राद्ध में जानना चाहिए। और भाई आदि का महालय भी वहीं उत्तरार्द्ध में जानना चाहिए।

अथ स्त्रीकर्तृके निर्णयः

अत्रापुत्रा विधवा[१] 'मम भर्तृतत्पितृपितामहानां भर्तुर्मातृपितामहीप्रपितामहीनां मम पितृपितामहप्रपितामहानां मम मातृपितामहीप्रपितामहीनां मम मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां मम मातामहीमातृपितामहीमातृप्रपितामहीनां तृप्त्यर्थं सकृन्महालयापरपक्षश्राद्धं करिष्ये' इति स्वयं संकल्प्य ब्राह्मणद्वारा अग्नौकरणादिसहितं सर्वमविकृतं प्रयोगं कारयेत्। ब्राह्मणस्त्वमुकनाम्न्या यजमानाया भर्तृतत्पितृपितामहेत्याद्युच्चार्य प्रयोगं कुर्यात्।

विना पुत्र वाली विधवा 'मेरे पति उनके पिता पितामह की, पति के माता पितामही प्रपितामही की, मेरे पिता पितामह प्रपितामह की, मेरी माता पितामही प्रपितामही की, मेरी मातामह माता के पितामह और माता के प्रपितामह की, मेरी मातामही माता की पितामही और माता की प्रपितामही की तृप्ति के लिए सकृन्महालय सम्बन्धी कृष्णपक्ष का श्राद्ध करूँगी' ऐसा स्वयं संकल्प करके ब्राह्मण के द्वारा अग्नौकरण आदि सहित जैसा का तैसा सब प्रयोग करावे। ब्राह्मण तो अमुक नाम की यजमानी के पति उनके पिता और पितामह आदि का उच्चारण करके प्रयोग करे।

[२]अशक्तौ भर्त्रादित्रयं स्वपित्रादित्रयं स्वमात्रादित्रयं स्वमातामहादित्रयं सपत्नीकमिति पार्वणचतुष्टयोद्देशेन महालयः। अत्यशक्तौ स्वभर्त्रादित्रयं स्वपित्रादित्रयं चेति पार्वणद्वयमेव कार्यम्।

शक्ति न रहने पर पति आदि तीन अपने पिता आदि तीन अपने माता आदि तीन और

---

१. स्मृतिसंग्रह में विधवा के लिये विशेषोक्ति—'चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि। स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च॥ ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत्।' तथा—श्वश्रूणां तु विशेषेण मातामह्यास्तथैव च।' इति।

२. अशक्तों के लिये स्मृतिरत्नावलि में निर्देश—'स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च। विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता॥' प्रयोगपारिजात में—'ब्राह्मणद्वारा कारयेत्' ऐसा कहा।

मातामह आदि सपत्नीक तीन के चार पार्वण के उद्देश्य से महालय करे। अत्यन्त अशक्तावस्था में अपने पति आदि तीन और अपने पिता आदि तीन का, इस प्रकार दो ही पार्वण करे।

अथ पितरि संन्यस्ते जीवति सांकल्पविधिः

महालयः पितरि संन्यस्ते पातित्यादियुते वा जीवत्पितृकेणापि पुत्रेण पितुः पित्रादिसर्वपित्रुद्देशेन पिण्डदानरहितः सांकल्पविधिना कार्यः।

वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति।
येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः॥
मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः।
न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च॥ इत्यादिवचनात्।

पिण्डदानादिविस्तरं कर्तुमशक्तेनापि सांकल्पविधिः कार्यः। सांकल्पिकविधावर्घ्यदानं समंत्रकावाहनमग्नौकरणं पिण्डदानं विकिरदानं स्वधां वाचयिष्ये। ॐ स्वधोच्यतामित्यादिस्वधावाचनप्रयोगं च वर्जयेत्।

महालयश्राद्ध पिता के संन्यासी होने पर या पातित्य आदि से युक्त होने पर जिसके पिता जीते हों ऐसे पुत्र को भी पिता के पिता आदि सब पितरों के उद्देश्य से पिण्ड के बिना सांकल्प-विधि से करना चाहिए। वृद्धि में तीर्थ में पिता के संन्यासी या पतित होने पर जिन पितरों को पिता पिण्ड देता है उनको स्वयं पुत्र देवे। मुण्डन पिण्डदान सब प्रकार का प्रेतकर्म जिसका पिता जीवित हों अथवा जिसकी स्त्री गर्भिणी हो इसमें 'वृद्धौ तीर्थे च' इत्यादि वचनों के प्रमाण से पिण्डदान आदि का विस्तार करने में असमर्थ भी सांकल्प-विधि से महालयश्राद्ध करे। सांकल्प-विधि में अर्घ्यदान मंत्र के सहित आवाहन, अग्नौकरण, पिण्डदान, विकिरदान और स्वधावाचन आदि का प्रयोग वर्जित करे।

अथ ब्राह्मणालाभे निर्णयः

अनेकब्राह्मणालाभे देवस्थाने शालग्रामादिदेवमूर्तिं संस्थाप्य श्राद्धं कार्यम्। सर्वथा विप्रालाभे [1]दर्भवटुविधिना श्राद्धम्।

अनेक ब्राह्मणों के न मिलने पर देवता के स्थान में शालग्राम आदि देव-मूर्ति को स्थापित कर श्राद्ध करे। सर्वथा ब्राह्मण के न मिलने पर तो कुश का बटु बनाकर उस विधि से श्राद्ध करना चाहिए।

अथ प्रतिवार्षिकादिप्राप्तौ महालयनिर्णयः

पित्रोर्मरणे प्रथमाब्दे महालयः कृताकृतः। महालयो [2]मलमासे न कार्यः।

---

१. भविष्ये—'ब्राह्मणानामसम्पत्तौ कृत्वा दर्भमयान् वटून्।' देवलः—'निधाय वा दर्भवटूनासनेषु समाहितः। प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्॥' कुशसमूह को बटु कहते हैं। यद्यपि कुशबटु में हस्त-पादादि अवयव नहीं होता तथापि कर्मकाल में स्मृति के लिये उल्लेख है। रुद्रकल्पद्रुम के—'प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपहितानि च' इस वचन से कुश के अग्रभाग से मुख की कल्पना करके दैव में पूर्वमुख और पितृकर्म में उत्तरमुख स्थापित करे। प्रैषानुप्रैषादिकाण्ड की पूर्ति स्वयं करे।

२. भृगु ने मलमास में महालयश्राद्धादिका निषेध किया—'वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम्। राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्यात् भानुलङ्घिते॥' इति।

अपरपक्षे प्रतिवार्षिकप्राप्तौ मृततिथौ वार्षिकं कृत्वा तिथ्यन्तरे सकृन्महालयः कार्यः। प्रतिपदादिदर्शान्तादिपक्षेषु मृततिथौ वार्षिकं कृत्वा पाकान्तरेण महालयः। अमायां प्रतिवार्षिकसकृन्महालयप्राप्तौ पूर्वं वार्षिकं ततो महालयस्ततो दर्शश्राद्धमिति त्रयं पाकभेदेन महालयमात्रप्राप्तावपि पूर्वं महालयस्ततो दर्शः। मृततिथौ सकृन्महालयपक्षे तत्तत्तिथेर्ग्राह्यत्वनिर्णयोऽपराह्णव्याप्त्या दर्शवदिति भाति।

पिता माता के मरने पर पहले वर्ष में महालय श्राद्ध करना या न करना बराबर है। मलमास में महालय नहीं करना चाहिए। महालय में वार्षिक श्राद्ध आ पड़े तो मृत-तिथि में वार्षिकश्राद्ध करके दूसरी तिथि में सकृन्महालय करना चाहिए। प्रतिपदा आदि अमावास्यान्त आदि पक्षों में मृत तिथि में वार्षिक श्राद्ध करके दूसरे पाक से महालय श्राद्ध करे। अमावास्या के श्राद्ध के दिन महालय और वार्षिक श्राद्ध पड़ने पर अमावास्या में वार्षिक श्राद्ध या एक बार का महालय श्राद्ध आ पड़े तो पहले वार्षिक श्राद्ध करके उसके बाद महालय करे। तदनन्तर अमावास्या का श्राद्ध करे तीनों के पाक-भेद से महालय केवल पड़ने पर पहले महालय करे उसके बाद अमावास्या का श्राद्ध करे। सकृन्महालय के पक्ष में मृत-तिथि के ग्राह्यत्व का निर्णय अपराह्णव्यापिनी तिथि से अमावास्या की तरह करे, ऐसा प्रतीत होता है।

अथ भरणीश्राद्धनिर्णयः

अत्रापरपक्षे [१]भरणीश्राद्धाद्गयाश्राद्धफलप्राप्तिः। भरणीश्राद्धमपिण्डकं षड्दैवतं सांकल्पविधिना कार्यम्। देवा धूरिलोचनौ पुरूरवार्द्रवौ वा। भरणीश्राद्धं काम्यम्। गयाश्राद्धफलकामेन प्रतिवर्षं कार्यम्। केचित्पित्रादिमरणोत्तरं प्रथमवर्ष एव कुर्वन्ति द्वितीयादिवर्षे न कुर्वन्ति तत्र मूलं चिन्त्यम्। मम तु 'न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः' इत्यादिवचनेन सर्वस्यापि दर्शादिश्राद्धस्य प्रथमाब्दे निषेधाद्वर्षान्ते एव पितृत्वप्राप्तेश्च द्वितीयादिवर्षे एव कर्तुं युक्तमिति भाति।

महालय में भरणी श्राद्ध करने से गयाश्राद्ध के फल की प्राप्ति होती है। भरणी का श्राद्ध बिना पिण्ड के छ देवताओं के उद्देश्य से सांकल्पिकविधि से करना चाहिए। इसके देवता धूरिलोचन या पुरुरवा और आर्द्रव हैं। भरणी श्राद्ध काम्य है। गयाश्राद्ध फल की इच्छा से प्रतिवर्ष करना चाहिए। कुछ लोग पिता आदि के मरने के बाद पहले वर्ष में ही गयाश्राद्ध करते हैं, दूसरे आदि वर्षों में नहीं करते, इसमें प्रमाण चिन्त्य है। मुझे तो —जब तक पूरा साल बीत नहीं जाता तब तक दैव या पितृ का श्राद्ध नहीं करना चाहिए। 'न दैवं नापि' इत्यादि वचन के अनुसार सभी अमावास्या आदि श्राद्ध का प्रथम वर्ष में निषेध है, क्योंकि वर्ष के अन्त में ही पितृत्व की प्राप्ति होती है इसलिये— द्वितीय आदि वर्ष में करना ठीक मालूम होता है।

यत्तु पितृभिन्नोपि यो यो म्रियते तस्य तस्य प्रथमाब्दे भरणीश्राद्धं क्रियते तत्रापि मूलं न पश्यामः। गयाश्राद्धफलार्थमाचारमनुसृत्य क्रियते चेन्मृताद्येकमेव पार्वणमुद्दिश्य सदैवं कार्यम्। अत्र सपिण्डत्वाचारोपि चिन्त्यः।

कोई कहते हैं पिता से भिन्न भी जो-जो मरते हैं उन-उन का प्रथम वर्ष में भरणीश्राद्ध

---

१. मत्स्यपुराणमें भरणीश्राद्ध की प्रशंसा—'भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता। अस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद् भवेत्॥' इति।

करे उसमें भी हम प्रमाण नहीं देखते। गयाश्राद्ध फल के लिए सदाचार का अनुसरण करके यदि करते हैं तो मृत आदि के एक ही पार्वण के उद्देश्य से दैवसहित श्राद्ध करना चाहिए। इसमें सपिण्डत्व का आचार भी शोचनीय है।

अथ माध्यवर्षश्राद्धनिर्णयः

अत्रापरपक्षे सप्तम्यादिदिनत्रये [1]'माध्यावर्षश्राद्धं कर्तुं 'पूर्वेद्युः श्राद्धं करिष्ये माध्यावर्षश्राद्धं करिष्येऽन्वष्टक्यश्राद्धं करिष्ये' इति क्रमेण संकल्पं कृत्वा सर्वोप्यष्टकाविधिराश्वलायनैः कार्यः। इदमाश्वलायनानामष्टकाविकृतिरूपमेकाष्टकाकरणपक्षेपि कार्यम्। इतरशाखिनां त्वष्टकारूपमेवेति पञ्चाष्टकाकरणपक्षेऽष्टकाश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य कार्यम्, एकाष्टकापक्षे तु न कार्यम्।

इस महालय पक्ष में सप्तमी आदि तीन दिनों में, माघी का वर्ष श्राद्ध करने के लिए 'पहले दिन श्राद्ध करूँगा, माघी का वर्षश्राद्ध करूँगा, अन्वष्टका श्राद्ध करूँगा' इस क्रम से संकल्प करके सम्पूर्ण अष्टकाविधि आश्वलायनों को करना चाहिए। यह आश्वलायनों की अष्टका के विकृति रूप

---

१. आश्विनकृष्णाष्टमी में आश्वलायनोक्त-मघावर्षसंज्ञकश्राद्ध—'एतेन माघ्यावर्षं प्रौष्ठपद्या अपरपक्षे।' इसकी नारायणवृत्ति है—'इदं सप्तम्यादिषु त्रिष्वहःसु कार्यम्' इति।

आश्विन कृष्णाष्टमी में महालक्ष्मी का पूजन और व्रत। इसे भाद्रशुक्लाष्टमी से आश्विन कृष्णाष्टमीपर्यन्त करना चाहिये। पुराणसमुच्चये—'श्रियोऽर्चनं भाद्रपदे सिताऽष्टमीं प्रारभ्य कन्यागते च सूर्ये। समापयेत्तत्र तिथौ च यावत् सूर्यस्तु पूर्वार्धगतो युवत्याः॥' यह अष्टमी चन्द्रोदयव्यापिनीग्राह्य है।

दूसरे दिन चन्द्रोदय के बाद तीन मुहूर्त तक यदि अष्टमी हो तो दूसरे ही दिन ग्राह्य है, अन्यथा पूर्व ही दिन। मदनरत्नमें संग्रह—'पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा। त्रिमुहूर्ताऽपि सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी॥' तथा—'अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः। तदा तस्यां तिथौ कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा॥' इति।

भविष्यपुराणे में आश्विनकृष्ण अष्टमी जीवत्पुत्रिका—'इषे मास्यसिते पक्षे चाष्टमी या तिथिर्भवेत्। पुत्रसौभाग्यदा स्त्रीणां ख्याता सा जीवपुत्रिका। शालिवाहनराजस्य पुत्रो जीमूतवाहनः। तस्यां पूज्यः स नारीभिः पुत्रसौभाग्यलिप्सया॥' यह अष्टमी प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य है। भविष्यपुराणे—'प्रदोषसमये स्त्रीभिः पूज्यो जीमूतवाहनः। पुष्करिणीं विधायाथ प्राङ्गणे चतुरस्रिकाम्॥' यदि अष्टमी प्रदोष में दो दिन हो तो काल की प्रधानता और नवमी में पारणा के अनुरोध से दूसरे ही दिन व्रत करे।

पूर्व दिन व्रत करने पर अष्टमी में पारणा करनी पड़ेगी, जो दूषित है। अष्टमी के समाप्त होने पर रात्रि में पारणा करनी होगी, रात्रि में पारणा निषिद्ध है इस लिये दो उपवास करना पड़ेगा। यदि अष्टमी पूर्व दिन प्रदोष में रहे, दूसरे दिन न रहे तो विष्णुधर्मोत्तर के वचनानुसार पूर्व दिन ही व्रत करे—'पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा प्रदोषे यत्र चाष्टमी। तत्र पूज्यः सदा स्त्रीभी राजा जीमूतवाहनः॥' अष्टमी के समाप्त होने पर पारणा नवमी में करे। भविष्यपुराण में अष्टमी में पारणा का निषेध किया—'आश्विनस्यासिताष्टम्यां याः स्त्रियोऽन्नं च भुञ्जते। मृतवत्सा भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम्॥' विष्णुधर्मोत्तर में नवमी में ही पारणा विहित बतलाया।

दोनों दिन प्रदोष में अष्टमी न हो तो जिस दिन अष्टमी में सूर्य उदित हुये हों उस दिन व्रत करना चाहिये—'लक्ष्मीव्रतं चाभ्युदिते शशाङ्के यत्राष्टमी चाश्विनकृष्णपक्षे। यत्रोदयं वै कुरुते दिनेशस्तदा भवेज्जीवितपुत्रिका सा॥' विहार में इस व्रतको 'जिउतिया' कहते हैं।

एक अष्टका करने के पक्ष में भी करना चाहिए। दूसरी शाखा वालों को तो अष्टकारूप ही है। इस प्रकार पंचाष्टका करने के पक्ष में अष्टका श्राद्ध करूँगा, ऐसा संकल्प करके करना चाहिए। जब एकाष्टका पक्ष हो तो नहीं करना चाहिए।

अथ अन्वष्टक्याद्विश्राद्धम्

नवम्यामन्वष्टक्यश्राद्धं[1] नवदैवतं सर्वशाखिभिरष्टम्यामष्टकाश्राद्धाकरणेपि गृह्याग्नौ यथोक्तविधिना कार्यम्। अस्यामन्वष्टक्यस्य मुख्यत्वात्। गृह्याग्निरहितैस्तु येषां पूर्वं माता मृता पश्चात्पिता मृतस्तैर्मृतमातापितृकैः पाणिहोमादिविधिना नवदैवत्यं कार्यम्।

नवमी के दिन नव देवता वाला अन्वष्टका श्राद्ध सब शाखा वाले अष्टमी में अष्टका श्राद्ध करने में भी गृह्य अग्नि में जैसी विधि कही गयी है करना चाहिए, क्योंकि इस दिन अन्वष्टका श्राद्ध मुख्य है। गृह्य अग्नि से रहित व्यक्ति तो पहले जिसकी माता मर गई हो और पिता बाद में मरे हों, ऐसे मृत माता पिता वाले पाणिहोम आदि विधि से नव देवताओं के उद्देश्य से श्राद्ध करें।

जीवत्पितृकेण मृतमातृकेणानुपनीतेनापि मात्रादित्रितयमात्रोद्देशेनैकपार्वणकं पुरूरवार्द्रवदेवसहितं सपिण्डकं श्राद्धं कार्यम्। स्वमातरि जीवन्त्यां मृतसापत्नमात्रादित्रयोद्देशेन कार्यम्। स्वमातृसापत्नमात्रोर्मृतौ द्विवचनप्रयोगेण सापत्नमात्रनेकत्वे च मात्रा सह बहुवचनप्रयोगेण एकस्मिन् विप्रे एक एव क्षणोऽर्घ्यः पिण्डश्चैक एव देयः। पितामहीप्रपितामह्योर्द्वौ विप्रौ पिण्डौ चेत्येवं पार्वणमावश्यकम्।

जिसके पिता जीते हों और माता मर गई हों, ऐसे यज्ञोपवीत रहित को भी माता आदि तीन के उद्देश्य से एक पार्वण पुरूरवा आर्द्रव देवसहित पिण्डश्राद्ध करना चाहिए। अपनी माता जीती हो तो मरी हुई सौतेली माता आदि तीन के उद्देश्य से करना चाहिए। अपनी माता और सौतेली माँ के मरने पर द्विवचन के प्रयोग से अनेक सौतेली माँ के मरने पर माता के साथ बहुवचन के प्रयोग से एक ब्राह्मण में एक ही क्षण अर्घ्य और एक ही पिण्ड देना चाहिए। पितामही प्रपितामही के लिए दो ब्राह्मण, दो पिण्ड, इस प्रकार पार्वण श्राद्ध आवश्यक है।

केचिन्मातृबहुत्वे विप्रपिण्डादिभेदमाहुः। स्वमातृसापत्नमातृजीवने तु गृह्याग्निरहितेन मृतपितृकेणापि न कार्यम्। अन्वष्टक्ये मातृयजनस्य मुख्यत्वादत एवात्र कैश्चिन्मातृपार्वणस्यैव प्राथम्यमुक्तमिति भाति। पूर्वं पितृमृतौ पश्चान्मातृमृतावपि गृह्याग्निमतामस्यां नवम्यामन्वष्टक्यमावश्यकं नित्यत्वात्। अन्येषां पश्चान्मातृमृतौ नावश्यकम्। केचिन्नवम्यां पूर्वमृतमातृश्राद्धं 'मृते भर्तरि लुप्यते' इति वचनप्रामाण्यमाश्रित्य पितृमरणोत्तरं न कुर्वन्ति।

कोई तो बहुत माताओं के होने पर ब्राह्मण और पिण्ड आदि का भेद कहते हैं। अपनी

---

१. कात्यायन—'अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम्। पित्रादिमातृमध्यं च ततो मातामहान्तकम्॥' ब्रह्माण्डपुराणे—'पितॄणां प्रथमं दद्यान्मातॄणां तदनन्तरम्। ततो मातामहानां च अन्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः॥' ब्राह्म में तो माता का श्राद्ध आदि में कहा—'अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते।' पृथ्वीचन्द्रोदय में इन वचनों के मतभेद की व्यवस्था शाखाभेद और निर्णयदीप में जीवत्पितृविषयक मान कर की है।

माता और सौतेली माता के जीते रहने पर तो गृह्य अग्नि रहित को पिता जिसके मर गये हों उसे नहीं करना चाहिए, क्योंकि अन्वष्टका में मातृपूजन मुख्य है। इसी लिए इस सम्बन्ध में किसी ने मातृपार्वण को भी प्राथम्य कहा है, यही ठीक है। पहले पिता के मरने और पीछे माता के मरने पर भी गृह्य अग्नि वालों को इस नवमी में अन्वष्टका श्राद्ध नित्य होने से आवश्यक है अन्य (गृह्याग्नि-रहित) माता के पीछे मरने पर अन्वष्टका आवश्यक नहीं है। कुछ लोग नवमी में पहले मरी माता का श्राद्ध 'पति के मरने पर नहीं होता' इस आशय के वचन को प्रमाण मानकर पिता के मरने के बाद माता का श्राद्ध नहीं करते हैं।

अथ अविधवानवमीश्राद्धम्

भर्तुरग्रे सह दाहेन वा मृतानां मातामहीभगिनीदुहितृमातृष्वसृपितृष्वस्रादीनामपुत्राणां पितृमात्रादिकुलोत्पन्नानां सर्वासामेव सौभाग्यवतीनामस्यां नवम्यां श्राद्धं कार्यम्। भर्तुरग्रे मृतानां तत्तद्भर्तृमरणोत्तरं च न कार्यम्। अत एवास्या अविधवानवमीत्वप्रसिद्धिः। अतः पत्न्या अपि नवमीश्राद्धं कार्यम्। अस्याविधवानवमीश्राद्धस्य महालयवद्यावद्वृश्चिकदर्शनं गौणकालः। एवं दौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धस्यापीति कालतत्त्वविवेचने।

पति के आगे या पति के साथ ही दाह होने पर मरी हुई नानी, बहन, लड़की, मौसी, फुआ आदि के जो पुत्ररहित हैं और जो पिता माता आदि के कुल में उत्पन्न हैं उन सब सुहागिनों का इसी नवमी में श्राद्ध करना चाहिए। पति के सामने मृत-स्त्रियों का उनके पति के मरने के बाद भी नवमी में श्राद्ध नहीं करना चाहिए। इसी लिए इसका नाम अविधवा नवमी प्रसिद्ध है इसलिये पत्नी का भी नवमी श्राद्ध करना चाहिए। इस अविधवा नवमी श्राद्ध का महालय की तरह वृश्चिक की संक्रान्ति तक गौणकाल कहा है। इसी प्रकार दौहित्र के प्रतिपदा श्राद्ध का भी समय जानना चाहिए, ऐसा कालतत्त्वविवेचन ग्रन्थ में लिखा है।

अथाविधवानवमीश्राद्धे सुवासिनीनां प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धादौ च सुवासिनीभोजनमपि कार्यम्।

> भर्तुरग्रे मृता नारी सह दाहेन वा मृता।
> तस्याः स्थाने नियुञ्जीत विप्रैः सह [1]सुवासिनीम्॥

इत्यादिमार्कण्डेयवचनात्।

अस्यां नवम्यां पिण्डदानं जीवत्पितृकेणापि गर्भिणीपतिना चापि कार्यम्। नवमीश्राद्धासंभवे 'ममान्वष्टक्याकरणजनितप्रत्यवायपरिहारार्थं शतवारमेभिर्द्युभिः सुमना इति मन्त्रजपं करिष्ये' इति संकल्प्य तज्जपं कुर्यात्। अन्वष्टक्ये सामवेदिभिः पितृपार्वणमेव कार्यं मातृमातामहपार्वणे न कार्ये इति सिन्धुः।

इस अविधवा नवमी श्राद्ध में प्रतिवर्ष श्राद्ध आदि में सौभाग्यवती को भोजन भी कराना चाहिए। पति के रहते जो स्त्री मर गई है या पति के दाह के साथ मर गई है उसके श्राद्ध में ब्राह्मणों के साथ सोहागिन को भी भोजन कराना चाहिए, यह मार्कण्डेय का वचन है। इस नवमी

१. मार्कण्डेयपुराण में इसके पहले का श्लोक है—'मातुः श्राद्धे तु सम्प्राप्ते ब्राह्मणैः सह भोजनम्। सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत्॥' इति।

में जिसके पिता जीते हैं या जिसकी स्त्री गर्भवती है उनको भी पिण्डदान करना चाहिए। नवमी श्राद्ध के न होने पर 'मेरे अन्वष्टका श्राद्ध न करने से जो पाप हुआ है उसके परिहार के लिए 'एभिद्युभिः सुमना' इस मन्त्र का जप सौ बार करूँगा' ऐसा संकल्प करके इसका जप करे। अन्वष्टका श्राद्ध में सामवेदी लोग पितृपार्वण ही करें माता और नाना का पार्वण न करें, ऐसा निर्णयसिन्धुकार कहते हैं।

अथात्र द्वादश्यां संन्यासिनां महालयः

स चापराह्णव्यापिन्यामित्युक्तम्। तत्र वैष्णवा अपराह्णव्यापिन्या द्वादश्या एकादशीव्रतदिने सत्त्वे स्वल्पायामपि 'द्वादश्यां शुद्धत्रयोदश्यां वैकादशीपारणादिने एव संन्यासिदैवत्यं श्राद्धं कुर्वन्ति। मम त्वीदृशे विषये वैष्णवैः संन्यासिमहालयो दर्शे कार्य इति भाति।

अपराह्णव्यापिनी द्वादशी में संन्यासियों का महालय कह चुके हैं। उसमें वैष्णव-जन अपराह्णव्यापिनी द्वादशी में यदि उस दिन एकादशीव्रत हो तो थोड़ी भी द्वादशी में या शुद्ध त्रयोदशी में एकादशी पारणा के दिन में ही सन्यासी सम्बन्धी श्राद्ध करे। मुझे तो इस विषय में वैष्णवों को संन्यासी का महालय अमावास्या में करना चाहिये, ऐसा ठीक मालूम होता है।

अथ मघात्रयोदशीश्राद्धम्

अत्र त्रयोदश्यां मघायुतायां केवलायां वा श्राद्धं नित्यम्। केवलमघायामपि श्राद्धं कार्यम्। अत्र श्राद्धविधौ बहुग्रन्थेषु बहवः पक्षाः। अपुत्रेण पुत्रिणा वा गृहिणा सपत्नीकपितृपार्वणमातामहपार्वणाभ्यां पितृव्यभ्रातृमातुलपितृष्वसृमातृष्वसृभगिनीश्वशुरादिपार्वणैश्च सहितमपिण्डकं सांकल्पविधिना श्राद्धं कार्यम्। अथवा पित्रादिपार्वणद्वयं महालयवत् पितृव्याद्येकोद्दिष्टगणांश्चोद्दिश्य सांकल्पविधिना श्राद्धं कार्यम्। यद्वा दर्शवत् षड्दैवतं श्राद्धमपिण्डकं कार्यम्।

मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशी अथवा केवल त्रयोदशी या केवल मघा में भी श्राद्ध करना चाहिए। यह श्राद्ध नित्य है। इस श्राद्ध की विधि में बहुत ग्रन्थों में बहुत पक्ष हैं, यह कहते हैं। जिसको पुत्र नहीं है अथवा पुत्रवान् गृहस्थ को सपत्नीक पितृपार्वण और मातामह पार्वण के साथ चाचा, भाई, मामा, बुआ, मौसी, बहिन, श्वशुर आदि का पार्वण विना पिण्ड के सांकल्प-विधि से करना चाहिए। अथवा पिता आदि के दो पार्वण महालय की तरह पितृव्य आदि एकोद्दिष्ट गणों के उद्देश्य से सांकल्प विधि से श्राद्ध करना चाहिए या अमावास्या की तरह छ देवता वाला बिना पिण्ड का श्राद्ध करना चाहिए।

अथवा निष्कामेन पुत्रिणा श्राद्धविधिना श्राद्धं नानुष्ठेयं किंतु पित्रादिपार्वणद्वयं केवलं पितृव्यादिसहितं वोद्दिश्य 'एतेषां तृप्त्यर्थं ब्राह्मणभोजनं करिष्ये' इति संकल्प पितृरूपिणे ब्राह्मणाय गन्धं समर्पयामीत्येवं पञ्चोपचारान्समर्प्य ब्रह्मार्पणमित्यादि पठित्वानेन ब्राह्मणभोजनेन पित्रादिरूपीश्वरः प्रीयतामित्यन्नमुत्सृज्य पायसादिमधुरान्नेन विप्रान् भोजयित्वा दक्षिणाभिः संतोष्य स्वयं भुञ्जीतेत्येतावदेव कर्तव्यम्।

---

१. पृथ्वीचन्द्रोदये—'यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः। द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः॥' इति।

अथवा निष्काम पुत्र वाले को श्राद्ध की विधि से श्राद्ध नहीं करना चाहिए किन्तु पिता आदि के दो पार्वण या केवल पितृव्य आदि के सहित 'इन लोगों की तृप्ति के लिए ब्राह्मणभोजन कराऊँगा' ऐसा संकल्प करके पितृरूपी ब्राह्मण को गन्धसमर्पण करता हूँ इस प्रकार पंचोपचारों का समर्पण कर 'ब्रह्मार्पणम्' इत्यादि पढ़ कर इस ब्राह्मणभोजन से पित्रादि रूपी भगवान् प्रसन्न हों यह कह कर अन्न का त्याग करके खीर आदि मीठे अन्नों से ब्राह्मणों को तृप्त और दक्षिणा से संतुष्ट कर स्वयं भोजन करे। इतना ही कर्तव्य है।

[1]अपुत्रिणः सकामस्य च पिण्डदानरहितश्राद्धविधिना श्राद्धं न दोषाय। क्वचिदपुत्रिणः पिण्डदानमप्युक्तम्। एवमुक्तपक्षेष्वन्यतमपक्षेण मघात्रयोदशीश्राद्धमवश्यानुष्ठेयम्, अकरणे दोषोक्तेर्नित्यत्वात्।

सकाम और पुत्ररहित को भी पिण्डरहित श्राद्ध-विधि से श्राद्ध करने में दोष नहीं है। कहीं पर पुत्ररहित को भी पिण्डदान करना कहा है। इस प्रकार कहे हुए पक्षों में किसी एक पक्ष को लेकर मघा त्रयोदशी का श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। इस श्राद्ध के नित्य होने से नहीं करने में दोष कहा है।

अथ गजच्छाया

हस्तनक्षत्रस्थे सूर्ये मघायुता त्रयोदशी [2]गजच्छाया संज्ञिता। अस्यां श्राद्धेन फलभूयस्त्वम्।

हस्तनक्षत्र के सूर्य में मघायुक्त त्रयोदशी का गजच्छाया नाम है। इसमें श्राद्ध करने से विशेष फल होता है।

अथ युगादिप्राप्तौ निर्णयः

अत्र महालयस्य युगादेश्च प्राप्तौ 'मघात्रयोदशीमहालययुगादिश्राद्धानि तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य तन्त्रेण कुर्यात्। न तु दर्शेन नित्यश्राद्धस्येव कस्यचित्प्रसङ्गसिद्धिः। अत्रैवं भाति—अङ्गानामैक्यं प्रधानमात्रभेदस्तन्त्रम्। तेन विश्वेदेवपाकाद्यङ्गानामैक्यं विप्रार्घ्यपिण्डादेर्भेद एव। प्रसङ्गसिद्धिस्थले तु प्रधानमपि न

---

१. हेमाद्रौ—'असन्तानस्तु यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता त्रयोदशी। सन्तानयुक्तो यः कुर्यात्तस्य वंशक्षयो भवेत्॥' बृहत्पराशरः—'मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः। ससन्तानो नैव कुर्यान्नित्यं ते कवयो विदुः॥' अङ्गिराः—'त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः श्राद्धं कुरुते नरः। पञ्चत्वं तस्य जानीयाज्ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम्॥' इति।

२. कृष्णपक्षकी त्रयोदशी यदि मघानक्षत्र से युक्त हो और हस्तनक्षत्रगत सूर्य हों तो गजच्छाया होती है। वायुपुराणे—'हस्ते सूर्यस्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी। तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु॥' अन्यवचन—'कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुः करे रविः। यदा तदा गजच्छाया श्राद्धं पुण्यमवाप्यते॥' दिन में ही ऐसे योग के पड़ने पर गजच्छाया होती है, रात्रि में पड़ने पर नहीं। महाभारते—'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन।' इति। इसमें श्राद्ध करने का महत्त्व है। यथा वायुपुराणे—'अपि नः स कुले भूयाद्यो नो दद्यात् त्रयोदशीम्। पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च॥' शंखः—'प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम्। प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन च॥ प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा। नृणां श्राद्धे सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः॥' इति।

भिद्यत इति त्रयोदशीश्राद्धेऽपरपक्षत्वाद्धूरिलोचना विश्वेदेवाः श्राद्धसागरे उक्ताः। अविभक्तैरपि भ्रातृभिर्मघात्रयोदशीश्राद्धं पृथक्कार्यमिति सिन्धुकौस्तुभादौ। विभक्तैरपि सहैवेति श्राद्धसागरे।

महालय में युगादि-तिथियों के पड़ने पर 'मघा त्रयोदशी में महालय युगादि श्राद्धों को तंत्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करके तंत्र से करे, न कि अमावस्या से नित्य श्राद्ध की तरह किसी के प्रसंग की सिद्धि होती है। यहाँ पर ऐसा ठीक मालूम होता है कि केवल प्रधान भिन्न हो और अंग एक ही हो उसको तंत्र कहते हैं। इससे विश्वेदेव और पाक आदि अंगों का ऐक्य है। किन्तु ब्राह्मण अर्घ्य और पिण्ड आदि का भेद ही है। प्रसंग-सिद्धि के स्थल में तो प्रधान का भी भेद नहीं होता। त्रयोदशी श्राद्ध में महालय होने से धूरिलोचन विश्वेदेव श्राद्धसागर में कहा है। इकट्ठे भाई लोग भी मघा त्रयोदशी का श्राद्ध अलग-अलग करें, ऐसा निर्णयसिन्धु और कौस्तुभ आदि ग्रन्थों में कहा है। श्राद्धसागर में अलग हुए भाई भी साथ ही करे, ऐसा कहा।

अथ चतुर्दश्यां शस्त्रादिहतश्राद्धम्

अथात्र चतुर्दश्यां पित्रादित्रयमध्ये एकस्यापि [1]शस्त्रविषाग्निजलादिशृङ्गिव्याघ्रसर्पादिनिमित्तेन दुर्मरणेन मृतस्य [2]एकोद्दिष्टविधिना श्राद्धं कार्यम्। पित्रादिद्वयोः शस्त्रादिहतत्वे द्वे एकोद्दिष्टे कार्ये। पित्रादीनां त्रयाणां शस्त्रादिहतत्वे पार्वणमेव कार्यम्। केचिदेकोद्दिष्टत्रयं कार्यमित्याहुः। सहगमने प्रयागादौ च विधिप्राप्तेऽग्निजलादिमरणे चतुर्दशीश्राद्धं न कार्यम्। युद्धप्रायोपवेशनयोर्वैधत्वेपीदं कार्यम्। अत्र शस्त्रादिहतपितृव्यभ्रात्रादेरप्यपुत्रस्यैकोद्दिष्टं कार्यम्। इदं धूरिलोचनसंज्ञकदेवसहितं कार्यम्। अत्र संबंधगोत्रनामाद्युच्चार्य 'अमुकनिमित्तेन मृतस्य चतुर्दशीनिमित्तमेकोद्दिष्टं श्राद्धं सदैवं सपिण्डं करिष्ये' इति संकल्प्य प्रत्येकोद्दिष्टमेकार्घ्यैकपवित्रमेकपिण्डयुतं श्राद्धं कार्यम्।

इस चतुर्दशी में पिता आदि तीन में से एक का भी शस्त्र, विष, अग्नि, जल, सींग वाले पशु, बाघ, सर्प आदि के द्वारा दुर्मरण हुआ हो तो एकोद्दिष्ट-विधि से श्राद्ध करना चाहिए। पिता आदि दो के शस्त्रादि से मरने पर दोनों का दो एकोद्दिष्ट करना चाहिए। पिता आदि तीन के शस्त्र आदि से मरने पर पार्वण ही करना चाहिए। कुछ लोग तो तीन एकोद्दिष्ट करने को कहते हैं। पति पत्नी के एक चिता पर मरने पर प्रयाग आदि में वैध अग्नि जल आदि से मरने पर चतुर्दशी

---

१. प्रचेताः—'वृक्षारोहणलोहाद्यैर्विद्युज्जलविषाग्निभिः। नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये तेषां शस्ता चतुर्दशी॥' ब्राह्मे—'युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः। तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता॥' नागरखण्डे—'अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा। श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप॥' इति।

२. भविष्यपुराणे—'समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य च। चतुर्दश्यां तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं महालये॥ चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते। एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः॥ प्रयोगपारिजात में इस एकोद्दिष्ट को विश्वेदेवयुक्त करने का निर्देश किया—'प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं विधानतः। दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितॄणामक्षयं भवेत्॥ तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत्पुत्रदारधनक्षयः। एकोद्दिष्टं दैवयुक्तमित्येवं मनुरब्रवीत्॥' संवत्सरप्रदीप में हारीत—'विश्वेदेवांश्च तत्रापि पूजयित्वादितोऽमरान्। ये वै शस्त्रहतास्तेषां श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः॥' इति।'

श्राद्ध नहीं करना चाहिए। युद्ध में और उपवास के द्वारा मरने पर वैध होने पर भी चतुर्दशी श्राद्ध करे। अपुत्र चचेरे भाई आदि का शस्त्र आदि से मरने पर एकोद्दिष्ट करे। यह श्राद्ध धूरिलोचन नामक देवता के सहित करे। इसमें सम्बन्ध गोत्र और नामादि का उच्चारण करके 'अमुक 'निमित्त से मरे का चतुर्दशीनिमित्तक एकोद्दिष्ट श्राद्ध देवता के सहित और पिण्ड के सहित करूँगा' ऐसा संकल्प करके प्रत्येक एकोद्दिष्ट एक अर्घ्य एक पवित्र और एक पिण्ड से युक्त श्राद्ध करना चाहिए।

पित्रादेर्भ्रात्रादेश्च शस्त्रहतत्वे पृथक्पाकादिना महालयवत् सह तन्त्रेण वैकोद्दिष्ट-द्वयादि। एवं चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं कृत्वा पित्रादिसर्वपितृगणोद्देशेन सकृन्महालय-स्तिथ्यन्तरेऽवश्यं कार्यः। अस्यां चतुर्दश्यां यदि शस्त्रादिमृतयोर्मातापित्रोर्मृताह-स्तदा चतुर्दशीनिमित्तमेकोद्दिष्टं कृत्वा पुनस्तदैव मृतादित्रयोद्देशेन सांवत्सरिकं पार्वणविधिना कार्यमिति श्राद्धसागरे।

पिता आदि और भाई आदि भी शस्त्र से मरे हों तो अलग पाक आदि के द्वारा महालय की तरह तंत्र से या दो एकोद्दिष्ट करे। इसी प्रकार चतुर्दशी में एकोद्दिष्ट करके पिता आदि सब पितरों के उद्देश्य से एक बार महालय के पक्ष को दूसरी तिथि में अवश्य करना चाहिए। श्राद्धसागर में लिखा है कि इस चतुर्दशी में जब शस्त्रादि से मरे हुए माता पिता की मृत तिथि पड़े तो चतुर्दशी के निमित्त एकोद्दिष्ट करके फिर उसी समय मृत आदि तीन के उद्देश्य से वार्षिक श्राद्ध पार्वण विधि से करे।

कौस्तुभादौ तु सांवत्सरिकपार्वणेनैव चतुर्दशीश्राद्धसिद्धिर्न पृथक्कार्यमित्युक्तम्। दिनान्तरे च सकृन्महालयः कार्यः। अत्र चतुर्दशीश्राद्धस्य कथंचिद्विघ्ने तु अत्रैव पक्षेऽग्रिमपक्षे वा दिनान्तरे तत्पार्वणविधिनैव कार्यं न त्वेकोद्दिष्टम्। अत्रैकोद्दिष्टेऽ-पराह्णव्यापिन्येव चतुर्दशी ग्राह्या न त्वितरैकोद्दिष्टतिथिवन्मध्याह्नव्यापिनीति कौस्तुभे।

कौस्तुभ आदि में तो वार्षिक पार्वण से ही चतुर्दशी श्राद्ध हो जाता है। इस लिए पृथक् नहीं करे। और दूसरे दिन एक बार का महालय करना चाहिए। इसमें चतुर्दशी में किसी तरह विघ्न हो जाने पर इसी पक्ष में श्राद्ध या दूसरे दिन उसको पार्वण की श्राद्ध-विधि से ही करे, न कि एकोद्दिष्ट से। इसमें इस एकोद्दिष्ट में अपराह्न में रहने वाली चतुर्दशी का ग्रहण करना चाहिए, न कि एकोद्दिष्ट तिथि की तरह मध्याह्नव्यापिनी, ऐसा कौस्तुभ में लिखा है।

अथ अमायां गजच्छाया

हस्तनक्षत्रे सूर्ये सति चान्द्रहस्तनक्षत्रयुतामावास्या [1]गजच्छाया। तस्यां श्राद्धदानादि कार्यम्। इत्यमायां गजच्छाया।

हस्तनक्षत्र के सूर्य के रहते चान्द्र-हस्त-नक्षत्र से युक्त अमावास्या का नाम गजच्छाया है। उस दिन श्राद्ध और दान आदि करना चाहिए। यह अमावास्या की गजच्छाया है।

---

१. यमः—'हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता। सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत्॥ वनस्पतिगते सोमे छाया या प्राङ्मुखी भवेत्। गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥' इति। इसके पूर्व मघात्रयोदशी श्राद्ध में लिखित गजच्छाया योग को देखें।

अथ दौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धम्

आश्विनशुक्लप्रतिपदि[1] दौहित्रेणानुपनीतेनापि सपत्नीकमातामहस्य पार्वणं मातुले सत्यपि अवश्यं कार्यम्। मातामहीसत्त्वे केवलमातामहपार्वणम्। इदं जीवत्पितृकेणापि कार्यम्। इदं सपिण्डकमपिण्डकं[2] वा। अत्र पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवाः धूरिलोचना इति केचित्। इयं प्रतिपदपराह्णव्यापिनी ग्राह्येति बहवः। संगवव्यापिनीति केचित्। अस्य श्राद्धस्य यावद्वृश्चिकदर्शनं गौणकाल इति कालतत्त्वविवेचने। इति महालयादिनिर्णयोद्देशः।

आश्विनशुक्ल प्रतिपदा में विना यज्ञोपवीत के, लड़की के लड़के द्वारा नानी-नाना-सहित का पार्वण, मामा के रहते हुए भी अवश्य करना चाहिए। नानी के रहने पर केवल नाना का पार्वण श्राद्ध करे। यह श्राद्ध जिसके पिता जीते हों उसको भी करना चाहिए। यह पिण्ड के साथ या पिण्ड के विना भी होता है। इसमें पुरूरवा और आर्द्रव नामक विश्वेदेवा होते हैं। कोई धूरिलोचन देवता भी कहते हैं। यह प्रतिपदा अपराह्णव्यापिनी ग्राह्य है, ऐसा बहुत से लोग कहते है। कोई संगवव्यापिनी कहते हैं। इस श्राद्ध का वृश्चिक के संक्रान्तिपर्यन्त गौणकाल है, ऐसा कालतत्त्वविवेचन में लिखा है। महालयादिनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ कपिलाषष्ठीनिर्णयः

भाद्रपदकृष्णपक्षे भौमवारव्यतीपातरोहिणीयुता षष्ठी [3]कपिलाषष्ठी। अत्र हस्तस्थे सूर्ये फलातिशयः। अयं योगो दिवैव ग्राह्यो न रात्रौ सूर्यपर्वत्वादिति भाति। 'अस्यां हुतं च दत्तं च सर्वं कोटिगुणं भवेत्।' अत्र श्राद्धं कार्यमिति विशेषवचनं नोपलभ्यते तथापि अलभ्ययोगे श्राद्धविधानाद्दर्शवत् षड्दैवतं कार्यम्।

भाद्रपद कृष्णपक्ष में मंगलवार व्यतिपात और रोहिणीनक्षत्र से युक्त षष्ठी को कपिला षष्ठी कहते हैं। इसमें हस्त के सूर्य होने पर अधिक फल होता है। यह पूर्वोक्त योग दिन ही में

---

१. निर्णयदीपे—'प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम्। श्राद्धं मातामहं कुर्यात् सपिता संगवे सदा ॥ जातमात्रोऽपि दौहित्रो जीवत्यपि च मातुले। प्रातःसंगवयोर्मध्ये आर्यस्य प्रतिपद् भवेत् ॥' हेमाद्रौ—'जातमात्रोऽपि दौहित्रो विद्यमानेऽपि मातुले। कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते ॥' प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय जो दिन के पाँच भागों में से दूसरा है उसे संगव कहते हैं।

२. जीवत्पितृक को पिण्डरहित श्राद्ध करना ही उचित है, क्योंकि दक्ष ने उसे पिण्डदान करना निषिद्ध कहा—'मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः। न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च ॥'

३. योगविशेष से यह षष्ठी कपिलाषष्ठी है। पुराणसमुच्चये—'भाद्रमास्यसिते पक्षे भानौ चैव करे स्थिते। पाते कुजे च रोहिण्यां सा षष्ठी कपिला भवेत् ॥' यहाँ भाद्रपद कृष्णपक्ष का उल्लेख शुक्लप्रतिपदा से अमान्तमास मानकर यह आश्विनकृष्ण षष्ठी ही हुई। वाराहपुराणे—'नभस्यकृष्णपक्षे तु रोहिणीपातभूसुतैः। युक्ता षष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता ॥ व्रतोपवासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत्। कपिलां च द्विजाग्र्याय दत्वा क्रतुफलं लभेत् ॥' इति।

अत्र निर्णयसिन्धौ—'इयमेव चन्द्रषष्ठी। सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। उभयत्र तथात्वे पूर्वा। तदुक्तं भविष्ये—'तद्वद् भाद्रपदे मासि षष्ठ्यां पक्षे सितेतरे। चन्द्रषष्ठीव्रतं कुर्यात् पूर्वविद्धा प्रशस्यते ॥ चन्द्रोदये यदा षष्ठी पूर्वाह्णे चापरेऽहनि। चन्द्रषष्ठ्यसिते पक्षे सैवोपोष्या प्रयत्नतः ॥' इति विशेष उक्तः।

ग्रहण करने योग्य है न कि रात्रि में, क्योंकि यह सूर्यपर्व है यह युक्त प्रतीत होता है। कपिला षष्ठी में होम और दान करने से कोटि-गुण-फल होता है। इसमें श्राद्ध करना चाहिए ऐसा विशेष वचन नहीं मिलता तथापि अलभ्य योग में श्राद्ध के विधान होने से अमावास्या की तरह षड्दैवत श्राद्ध करना चाहिए।

अथात्र संक्षेपतो व्रतविधिः

सूर्योद्देशेनोपवासं संकल्प्य देवदारूशीरकुंकुमैलामनःशिलापद्मकाष्ठतण्डुलान् मधुगव्याभ्यां पेषयित्वा क्षीरालोडितेन कल्केनाङ्गं विलिप्य स्नायात्। तत्र मन्त्रः—

आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च।
पापं नाशय मे देव वाङ्मनःकायकर्मजम्॥

सूर्य के उद्देश्य से उपवास का संकल्प करके देवदारु, खश, रोरी, इलायची, मैनसिल, पद्मकाष्ठ और चावलको मधु तथा गाय के घी से पीस करके दूध से आलोडित-कल्क से शरीर में लेप करके स्नान करे। इसका मंत्रार्थ यह है—हे देवेश! हे ज्योतियों के पति! आप जल-रूप हैं। मेरे वाणी मन और शरीर से जो पाप हुये हों उनका नाश करें।

ततः पञ्चगव्येन स्नात्वा पञ्चपल्लवैर्मार्जयित्वा मृत्तिकास्नानं कुर्यात्। तर्पणादि नित्यविधिं कृत्वा वरुणं पूजयित्वा सर्वतोभद्रमध्ये कलशोपरि तण्डुलादौ पद्मं लिखित्वा तस्याष्टसु पत्रेषु पूर्वादौ सूर्यं तपनं स्वर्णरेतसं रविमादित्यं दिवाकरं प्रभाकरं सूर्यमित्यावाह्य मध्ये सौवर्णरथे सूर्यमग्रेऽरुणं चावाह्य करवीरार्कादि-पुष्पैर्धूपादिभिः संपूजयेत्। दिक्पालादिदेवताः संपूज्य द्वादशार्घ्यान्सूर्याय दद्यात्। सविस्तरः पूजाविधिर्द्वादशार्घ्यमन्त्राश्च कौस्तुभे ज्ञेयाः। सूर्याग्रे—

प्रभाकर नमस्तुभ्यं संसारान्मां समुद्धर।
भुक्तिमुक्तिप्रदो यस्मात्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥
नमो नमस्ते वरद ऋक्सामयजुषां पते।
नमोस्तु विश्वरूपाय विश्वधात्रे नमोस्तु ते॥

इसके बाद पंचगव्य से नहाकर पंचपल्लवों से मार्जन करके मिट्टी से स्नान करे। तर्पण आदि नित्य विधि करके वरुण का पूजन कर सर्वतोभद्र के बीच में कलश के ऊपर चावल आदि से कमल बनाकर उसके आठों पत्तों में पूर्व में आदित्य दिवाकर प्रभाकर और सूर्य को आवाहन करके बीच में सोने के रथ पर सूर्य के आगे अरुण को भी आवाहन कर करवीर आक आदि के फूलों और धूप आदि से पूजन करे। दिक्पाल आदि देवताओं की पूजा कर बारह अर्घ्य सूर्य को देवे। विस्तार पूर्वक पूजा आदि की विधि और बारह सूर्यार्घ्य के मंत्र भी कौस्तुभ-ग्रन्थ से जानना चाहिए। सूर्य के आगे हे प्रभाकर! आपको नमस्कार है। संसार से मेरा उद्धार कीजिये, जिस लिए कि आप भुक्ति और मुक्ति देने वाले हैं इस लिए हमें शान्ति प्रदान करें। हे वर देने वाले! ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद के पति! आप को बार बार नमस्कार है। विश्व के धारण करने वाले! आपको नमस्कार है।

इति प्रार्थ्य उदुत्यमित्यादिसौरसूक्तानि जपित्वा रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातराकृष्णेनेति मन्त्रेणार्कसमिच्चर्वाज्यतिलैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतं हुत्वा घण्टादि-

सर्वालंकारयुतां कपिलां गां मन्त्रैः संपूज्य विप्राय दद्यात्। गोपूजामन्त्राः कौस्तुभे। दानमन्त्रस्तु—

नमस्ते कपिले देवि सर्वंपापप्रणाशिनि।
संसारार्णवमग्नं मां गोमातस्त्रातुमर्हसि॥

वस्त्रयुगच्छन्नां सघण्टामित्यादिविशेषणान्युक्त्वा 'इमां गां तुभ्यमहं संप्रददे' इति दत्त्वा सुवर्णदक्षिणां दद्यात्। ततस्तस्मै विप्राय रथं सूर्यप्रतिमां च दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा दिवाकरः।
कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु॥
यथा त्वं कपिले पुण्या सर्वलोकस्य पावनी।
प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव॥ इत्यादि।

ऐसी प्रार्थनाकर 'उदुत्यम्' इत्यादि सूर्य के सूक्तों को जप कर रात्रि में जागरण करके प्रातःकाल 'आकृष्णेन' इत्यादि मंत्र से आक की समिधा और घी तेल से प्रत्येक द्रव्य का एक सौ आठ होम करके घंटा आदि संपूर्ण अलंकारोंसे युक्त कपिला गौ का मंत्रोंसे पूजन कर उसे ब्राह्मण को दे दे। गो-पूजा के मंत्र कौस्तुभमें लिखे हैं। दान के मंत्र का भाव तो यह है—हे कपिले देवि! पापों को नाश करने वाली आप को नमस्कार है। संसार-समुद्र में डूबे हुए मुझको हे गो-माता! आप रक्षा करने के योग्य हैं। दो वस्त्रों से ढकी हुई घंटा आदि विशेषणों को कहकर 'इस गौ को आप को मैं देता हूँ' ऐसा संकल्प कहकर गौ देकर सोने की दक्षिणा देवे। इसके बाद उस ब्राह्मण को रथ और सूर्य की प्रतिमा भी देवे। उसमें मंत्र यह है—हे दिव्य-मूर्ति! हे जगत् के नेत्र! हे द्वादशात्मा दिवाकर! कपिला के सहित मुझे मुक्ति दें हे कपिले! जैसे तुम पुण्यप्रदा और सब लोगों को पवित्र करने वाली हो सूर्य के सहित तुम्हारे दान से मुझे मुक्ति देने वाली हो, इत्यादि।

ततः कपिलाप्रार्थनादिविस्तारः कौस्तुभे। अथवोपोषणजागरहोमादिविधिमकृत्वा षष्ठ्यामेव स्नानरथादिपूजनकपिलादानादि कार्यम्। इति संक्षेपतः कपिलाषष्ठीव्रतविधिः। इति भाद्रपदमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

तदनन्तर कपिलाके प्रार्थनादिका विस्तार कौस्तुभ ग्रन्थ से जानना चाहिए। अथवा उपवास जागरण और होम आदि विधि न करके भी षष्ठी में ही स्तन रथ आदि का पूजन और कपिला का दान आदि करना चाहिए। यह संक्षेप से कपिलाषष्ठीव्रत की विधि है। भाद्रपदमासकृत्य-निर्णयोद्देश समाप्त।

अथाश्विनकृत्ये तुलासंक्रान्तिः

तुलामेषसंक्रान्तिर्विषुवसंज्ञा। तस्याः पूर्वाः पराश्च पञ्चदशपञ्चदश नाड्यः पुण्यकालः। विशेषः प्रागुक्त एव।

तुला और मेष की संक्रान्ति का नाम विषुव है। उसकी पहली और बाद की पन्द्रह-पन्द्रह घड़ियाँ पुण्यकाल है। विशेष पहले कहा ही है।

अथ देवीनवरात्रारम्भः

आश्विनशुक्लप्रतिपदि देवीनवरात्रारम्भः[1]। नवरात्रशब्दः आश्विनशुक्लप्रतिपदमारभ्य महानवमीपर्यन्तं क्रियमाणकर्मनामधेयम्। तत्र कर्मणि पूजैव प्रधानम् उपवासादिकं स्तोत्रजपादिकं चांगम्। तथा च यथाकुलाचारमुपवासैकभक्तनक्तायाचितान्यतमव्रतयुक्तं यथाकुलाचारं [2]सप्तशतीलक्ष्मीहृदयादिस्तोत्रजपसहितं प्रतिपदादिनवम्यन्तनवतिथ्यधिकरणकपूजाख्यं कर्म नवरात्रशब्दवाच्यम्। पूजाप्राधान्योक्तेरेव क्वचित्कुले जपोपवासादिनियमस्य व्यतिरेक उपलभ्यते। पूजायास्तु न क्वापि कुले नवरात्रकर्मण्यभावो दृश्यते। यत्कुले नवरात्रमेव नानुष्ठीयते तत्र नवरात्रपूजादेरप्यभाव आस्तां नाम।

आश्विनशुक्ल प्रतिपदा में देवी का नवरात्र आरम्भ होता है। नवरात्रशब्द आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ कर महानवमी तक किये जाने वाले कर्म का नाम है। उस कर्म में पूजा ही प्रधान है। उपवास आदि स्तोत्र जप आदि उसके अंग हैं। अपने कुलाचार के अनुसार उपवास, एकभक्त, नक्त और अयाचित में से किसी एक का व्रत से युक्त कुलाचार के अनुसार सप्तशती, लक्ष्मीहृदय आदि स्तोत्र के जपके साथ प्रतिपदा से आरम्भ करके नवमी के अन्त तक नव तिथियों में पूजनरूप कर्म को नवरात्र कहते हैं। इसमें पूजा ही को प्रधान कहा है। किसी कुल में जप और उपवास

---

१. मार्कण्डेयपुराण में नवरात्र—'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी। वसन्तकाले सा प्रोक्ता कार्या सर्वैः शुभार्थिभिः ॥'

ज्योतिष में देवी के आगमन के यान का विचार—'शशिसूर्ये गजारूढा शनिभौमे तुरङ्गमा। गुरौ शुक्रे च दोलायां बुधे नौका प्रकीर्तिता।' इसका फल—'गजे च जलदा देवी छत्रभङ्गस्तुरङ्गमे। नौकायां सर्वसिद्धिः स्याद् दोलायां मरणं ध्रुवम् ॥ इस उत्तरार्ध का कहीं 'दोलायां बहुसस्यानि नौकायां मरणं ध्रुवम्' ऐसा पाठान्तर है।

विजयादशमी में देवी के यान का फल—'शशिसूर्यदिने यदि सा विजया महिषागमने रुजदेविकरी। शनिभौमदिने यदि सा विजया चरणायुधयानकरी विकला। बुधशुक्रदिने यदि सा विजया गजवाहनदेविसुवृष्टिकरी। सुरराजगुरौ यदि सा विजया नरवाहनदेविकरी शुभदा ॥' इति।

२. आदिपद से श्रीदेवीभागवतादिका पाठ भी ग्राह्य है। देवीभागवत पारायण पाठ की नवाहविधि यों है—प्रथम दिन-३५ अध्याय आरम्भ से तृतीयस्कन्ध के तृतीयाध्यायपर्यन्त, द्वि० दिन-३५अ०, चतुर्थाध्याय के अष्टमाध्यायपर्यन्त, तृ दि०—३५ अ० पंचमस्कन्धके १८ अध्यायपर्यन्त, च० दि०—३५अ०, षष्ठमस्कन्ध के १८ अध्यायपर्यन्त, पं० दि०—३१ अ०, सप्तमस्कन्ध के १८ अध्यायपर्यन्त, ष० दि०—३९ अ०, अष्टमस्कन्ध के १७ अध्यायपर्यन्त, स० दि०—३५ अ०, नवमस्कन्ध के २८ अध्यायपर्यन्त, अ० दि०-३५अ०, दशमस्कन्धके १३ अध्यायपर्यन्त, न० दि०-३८ अ०, दशमस्कन्धके १४ अध्याय से द्वादशस्कन्धके समाप्तिपर्यन्त।

देवीपुराणे—'कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम्। अयाची ह्यथवैकाशी नक्ताशी वाथवाऽब्दद:। भूमौ शयीत चामन्त्र्य कुमारीर्भोजयेन्मुदा। वस्त्रालङ्कारदानैश्च सन्तोष्याः प्रतिवासरम् ॥ बलिं च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांसमाषवत्। त्रिकालं पूजयेद्देवीं जपस्तोत्रपरायणः ॥' रुद्रयामले—'स्नानं माङ्गलिकं कृत्वा ततो देवीं प्रपूजयेत्। शुभाभिर्मृत्तिकाभिश्च पूर्वं कृत्वा तु वेदिकाम् ॥ यवान् वै वापयेत्तत्र विधिना मन्त्रपूर्वकम्। सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं मृन्मयजं तु वा ॥' मत्स्यपुराण में रात्रि में कलशस्थापन का निषेध—' न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्।' इति।

आदि नियम का आधिक्य उपलब्ध होता है। पूजा का तो किसी भी कुल में नवरात्रकर्म में अभाव नहीं दिखाई देता। जिस कुल में नवरात्र का अनुष्ठान नहीं होता उसमें नवरात्र आदि के पूजा का अभाव भी हो सकता है।

अथ नवरात्रारम्भनिर्णयः

स च नवरात्रारम्भः सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्तव्यापिन्यां प्रतिपदि कार्यः। तदभावे द्विमुहूर्तव्यापिन्यामपि। क्वचिन्मुहूर्तमात्रव्यापिन्यामप्युक्तः। सर्वथा दर्शयुक्तप्रतिपदि न कार्य इति [1]बहुग्रन्थसंमतम्। मुहूर्तन्यूनव्याप्तौ सूर्योदयास्पर्शे वा दर्शयुतापि ग्राह्या। प्रथमदिने षष्टिघटिका प्रतिपद् द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयादिपरिमिता वर्धते तदा पूर्णत्वात्पूर्वैव ग्राह्या। द्वितीयावेधनिषेधोपि एतत्पक्षद्वये एव योज्यः।

नवरात्र का आरम्भ सूर्योदय के बाद तीन मुहूर्त रहने वाली प्रतिपदा में करना चाहिए। ऐसा न मिलने पर दो मुहूर्त रहने वाली प्रतिपदा में भी होता है। कहीं पर तो मुहूर्तमात्रव्यापिनी में भी कहा है। सब प्रकार से अमावास्यायुक्त प्रतिपदा में नवरात्रारम्भ नहीं करे। यह बहुत ग्रन्थों से सम्मत है। मुहूर्त से कम रहने वाली प्रतिपदा में अथवा सूर्योदय के स्पर्श न होने पर अमावास्यायुक्त प्रतिपदा भी ग्रहण योग्य होती है। पहले दिन साठ घड़ी प्रतिपदा हो और दूसरे दिन दो मुहूर्त आदि हो तब पूर्ण होने से पहले ही दिन ग्राह्य है। इन दोनों पक्षों में द्वितीयावेध का निषेध भी जोड़ना चाहिए।

पुरुषार्थचिन्तामणौ तु पूर्वदिने मुहूर्तचतुष्टयोत्तरं मुहूर्तपञ्चकोत्तरं वा प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयादिपरिमिता प्रतिपत् तदा परस्याः क्षयगामितया निषिद्धत्वादमायुक्तापि पूर्वैव ग्राह्येत्युक्तम्। तत्र सूर्योदयोत्तरं दशघटीमध्ये तत्रासंभवे मध्याह्नेऽभिजिन्मुहूर्ते प्रारम्भः कार्यो न त्वपराह्णे। एवं च प्रतिपद आद्यषोडशनाडीनिषेधश्चित्रावैधृतियोगनिषेधश्चोक्तकालानुरोधेन सति संभवे पालनीयो न तु निषेधानुरोधेन पूर्वाह्णः प्रारम्भकालः प्रतिपत्तिथिर्वाऽतिक्रमणीयः।

पुरुषार्थचिन्तामणि में तो पहले दिन चार मुहूर्त के बाद या पांच मुहूर्त के बाद और दूसरे दिन दो मुहूर्त आदि रहने वाली प्रतिपदा हो तब दूसरी के क्षयके कारण निषेध होने से अमावास्यायुक्ता भी पहली ही प्रतिपदा ग्राह्य है, ऐसा कहा है। उसमें सूर्योदय के बाद

---

१. देवीपुराण में देवी का वचन—'अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपत्पूजने मम। मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता॥ आद्याः षोडश नाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः। कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवम्॥' देवीपुराणे—'अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकाऽर्चने। धनार्थिभिर्विशेषेण वंशहानिश्च जायते॥ न दर्शकलया युक्ता प्रतिपच्चण्डिकाऽर्चने। उदये त्रिमुहूर्ताऽपि ग्राह्या सोदयदायिनी॥' रुद्रयामले—'अमायुक्ता सदा चैत्र प्रतिपन्निन्दिता मता। तत्र चेत्स्थापयेत्कुम्भं दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम्। प्रतिपत् सद्वितीया तु कुम्भारोपणकर्मणि॥' कात्यायनः—'प्रतिपद्याश्विने मासि भवेद् वैधृतिचित्रयोः। आद्यपादौ परित्यज्य प्रारभेन्नवरात्रकम्॥' भविष्ये—'चित्रावैधृतिसम्पूर्णा प्रतिपच्चेद् भवेन्नृप। त्याज्या ह्यंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनम्॥' रुद्रयामले—वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनम्। तस्मान्न स्थापयेत् कुम्भं चित्रायां वैधृतौ तथा॥ सम्पूर्णा प्रतिपदेव चित्रायुक्ता यदा भवेत्। वैधृत्या वापि युक्ता स्यात्तदा मध्यं दिने रवौ॥ अभिजित्तु मुहूर्तं यत्तत्र स्थापनमिष्यते।' इति।

दस घड़ी के मध्य में उसमें न होने पर मध्याह्न में अभिजित् मुहूर्त में नवरात्र का प्रारम्भ करना चाहिए, अपराह्न में नहीं। इस प्रकार प्रतिपदा के आरम्भ की सोलह घड़ी और चित्रा-वैधृति-योग का निषेध पूर्वोक्त काल के अनुरोध से सम्भव हो तो उसका पालन करे, निषेध के अनुरोध से नहीं। प्रारम्भ का समय पूर्वाह्न है भले ही प्रतिपदा तिथि का अतिक्रमण हो जाय।

अथ पूजाद्यधिकारनिर्णयः

अत्र कर्मणि ब्राह्मणादिचतुर्वर्णस्य [१]म्लेच्छादेश्चाधिकारः। तत्र विप्रेण जपहोमान्नबलिनैवेद्यैः सात्त्विकी पूजा कार्या। 'नैवेद्यैश्च निरामिषैः। मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते। मद्यमपेयमदेयम्' इत्यादिनिषेधान्मांसमद्यादियुतराजसपूजायां ब्राह्मणस्य नाधिकारः। मद्यपाने मरणान्तप्रायश्चित्तोक्तेः। स्पर्शे तदङ्गच्छेदोक्तेश्चाल्पप्रायश्चित्तेन दोषानपगमेन पातित्यापातात्। इत्थमेव सर्वे प्राचीना नवीनाश्च निबन्धकारा निर्बन्धेन लिखन्ति।

इस कर्म में ब्राह्मण आदि चारो वर्णों और म्लेच्छ आदि का भी अधिकार है। उसमें ब्राह्मणों को जप, होम, अन्न, बलि, नैवेद्य से पूजा और निरामिष नैवेद्य से सात्विकी पूजा करनी चाहिए। मांस मद्य आदि से युक्त राजसी पूजा करे तो ब्राह्मणत्व से हीन हो जाता है। 'ब्राह्मणों के लिए मद्य अपेय और अदेय है' इत्यादि निषेध से मांस मद्य आदि से युक्त राजसी पूजा में ब्राह्मण का अधिकार नहीं है। मद्य पीने पर ब्राह्मण का मरणान्त प्रायश्चित्त कहा है। मद्य का जिस अंग से स्पर्श हो उस अंग को काट देना कहा है। इस प्रकार थोड़े प्रायश्चित्त से दोष के नहीं हटने पर पातित्य आता है। ऐसा ही सभी प्राचीन और नवीन निबन्धकारों ने लिखा है।

नवीनतरा भास्कररायप्रभृतयोपि सप्तशतीटीकादौ प्राचीनग्रन्थानुसृत्यैवमेव परिष्कुर्वन्ति सभायां चैतन्मतमेव श्लाघन्ते च आचरणं त्वन्यथा कुर्वन्ति। तत्किं स्वयं दुर्दैववशेन ब्राह्मण्यभ्रष्टोभूवमन्येप्येवं माभूवन्निति भूतदयया वा स्वपातित्यगोपनाय वान्येषां कलियुगस्थविप्राणामधिकाराभावालोचनया वेति न वयं तत्त्वं जानीमः।

सबसे नवीन भास्करराय आदि ने भी सप्तशती की टीका के प्रारम्भ में प्राचीन ग्रन्थों का अनुसरण किये ही इसी तरह लिखते और सभा में इसी मत को पसन्द करते हैं किन्तु इसके विरुद्ध आचरण करते हैं। वह क्या स्वयं दुर्दैव के कारण ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट हुए दूसरे भी ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट न हों अथवा जीवदया से या अपने पाप को छिपाने से अथवा कलियुग के ब्राह्मणों के अधिकारभाव के आलोचन से ऐसा कहते हैं, इसके तत्त्व को मैं नहीं जानता।

क्षत्रियवैश्ययोर्मांसादियुतजपहोमसहितराजसपूजायामप्यधिकारः। स च केवलं काम्य एव न तु नित्यः। निष्कामक्षत्रियादेः सात्त्विकपूजाकरणे मोक्षादिफलातिशयः। एवं शूद्रादेरपि। शूद्रादेर्मन्त्रहीना जपादिरहिता मांसादिद्रव्यका तामसपूजापि विहिता। शूद्रेण सप्तशत्यादिजपहोमसहिता सात्त्विकीपूजा ब्राह्मणद्वारा कार्या।

---

१. भविष्यपुराणे—'पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे-पुरे। गृहे गृहे शक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः। वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः॥' इति।

क्षत्रिय वैश्य का मांस आदि से युक्त जप-होम-सहित राजसी पूजा में भी अधिकार है। वह केवल ऐच्छिक है, नित्य नहीं। निष्काम क्षत्रिय आदि को सात्त्विकी पूजा करने से वह मोक्ष आदि विशिष्ट-फल देने वाली है। उसी प्रकार शूद्र आदि के लिए भी है। शूद्र आदि को मन्त्ररहित जप और मांस आदि द्रव्यवाली तामसी पूजा भी विहित है। शूद्र को सप्तशती का जप आदि और होम सहित सात्त्विकी पूजा ब्राह्मण के द्वारा करानी चाहिए।

स्त्रीशूद्रादेः स्वतः पौराणमन्त्रपाठेऽपि नाधिकारः। अत एव 'शूद्रः सुखमवाप्नुयात्' इत्यत्र भाष्ये स्त्रीशूद्रयोः श्रवणादेव फलं न तु पाठादित्युक्तम्। एतेन स्त्रीशूद्रयोर्गीताविष्णुसहस्रनामपाठो दोषायैवेति ज्ञेयम्। क्वचित्पौराणमन्त्रयुक्तपूजायां स्त्रीशूद्रयोः स्वतोप्यधिकार उक्तः। जपहोमादौ विप्रद्वारैव।

स्त्री और शूद्र आदि को स्वयं पुराण के मन्त्रों को भी पढ़ने का अधिकार नहीं है। इसी लिए भाष्यकार ने—स्त्री शूद्र को सुनने से ही फल मिलता है, न कि पाठ करने से—ऐसा कहा है। इससे स्त्री और शूद्र को गीता और विष्णुसहस्र नाम का पाठ करना भी दोष ही के लिए होता है। कहीं पुराण के मन्त्रों से युक्त पूजा में स्त्री और शूद्र का स्वयं भी अधिकार कहा है। जप और होमादि तो ब्राह्मण के द्वारा ही होता है।

म्लेच्छादीनां तु ब्राह्मणद्वारापि जपहोमे समन्त्रकपूजायां नाधिकारः। किन्तु तैस्तत्तदुपचाराणां देवीमुद्दिश्य मनसोत्सर्गमात्रं वा कर्तव्यम्।

म्लेच्छ आदि को तो ब्राह्मण के द्वारा भी जप होम तथा मन्त्रसहित पूजा में अधिकार नहीं है। किन्तु उन लोगों को देवी के उद्देश्य से उन-उन उपचारों का मन से केवल उत्सर्गमात्र कर्तव्य है।

अथ नवरात्रेऽनुकल्पाः

तृतीयादिनवम्यन्तं सप्तरात्रं वा कर्तव्यम्। पञ्चम्यादिपञ्चरात्रं वा सप्तम्यादित्रिरात्रं वा अष्टम्यादिद्विरात्रं वा एकाहपक्षे केवलाष्टम्यां केवलनवम्यां वा। एषां पक्षाणां स्वस्वकुलाचारानुसारेण प्रतिबन्धादिना पूर्वपूर्वपक्षासंभवानुसारेण वा व्यवस्था। तत्र तृतीयापञ्चम्योर्निर्णयः प्रतिपदादिवत्। सप्तम्यादेस्तु निर्णयो वक्ष्यते।

तृतीया से नवमीपर्यन्त सात रात का भी किया जाता है। अथवा पंचमी से पंचरात्र, सप्तमी से त्रिरात्र और अष्टमी से नवमी तक द्विरात्र का भी होता है। एक दिन का भी पक्ष है, उसमें केवल अष्टमी में अथवा केवल नवमी में होता है। इन पक्षों में अपने-अपने कुलाचार के अनुसार अथवा किसी प्रतिबन्ध आदि से पूर्व पक्षों के न होने पर व्यवस्था कर लेनी चाहिए। उसमें तृतीया और पंचमी का निर्णय प्रतिपदा आदि के तुल्य है। सप्तमी आदि का निर्णय तो आगे कहेंगे।

नवरात्रादिपक्षेषु क्षयवृद्धिवशेन दिनाधिक्यन्यूनत्वे पूजाद्यावृत्तिः[1] कार्या। केचित्तु दिनक्षयेऽष्टावेव पूजाश्चण्डीपाठांश्च कुर्वन्ति। इदं देवीपूजनात्मकं नवरात्रकर्म नित्यम् अकरणे दोषश्रवणात्। फलश्रवणात्काम्यं च।

नवरात्र आदि पक्षों में तिथि-क्षय और तिथि-वृद्धि के कारण दिनों की अधिकता और कमी होने पर पूजा आदि की आवृत्ति करनी चाहिए। कोई तो तिथिक्षय में आठ ही पूजा और आठ ही चण्डी-

---

१. तिथि के क्षय होने पर दोनों तिथियों का पूजा-पाठ एक तिथि में दो बार कर लेना पूजाद्यावृत्ति का अभिप्राय है।

पाठ भी करते हैं। यह देवीपूजनात्मक नवरात्र कर्म नित्य है क्योंकि नहीं करने से दोष की श्रुति है। फल-श्रुति से काम्य भी है।

अथ नवरात्रे कर्तव्यानि

अत्र नवरात्रे घटस्थापनं [1]प्रातर्मध्याह्ने प्रदोषकाले चेति त्रिकालं द्विकालमेककालं वा स्वस्वकुलदेवतापूजनं सप्तशत्यादिजपोऽखण्डदीपः आचारप्राप्तमालाबन्धनम् उपवासनक्तैकभक्तादिनियमः सुवासिनीभोजनं कुमारीभोजनपूजनादि अन्ते सप्तशत्यादिस्तोत्रमन्त्रहोमादि इत्येतानि विहितानि।

इस नवरात्र में घटस्थापन—प्रातः, मध्याह्न और प्रदोष, इस प्रकार तीन काल, दो काल या एक काल में अपने अपने कुलदेवता का पूजन, सप्तशती आदि का जप, अखण्ड दीप, आचार के अनुसार मालाबन्धन, उपवास, नक्त और एकभक्त आदि का नियम, सौभाग्यवती-भोजन और कुमारीभोजन आदि, अन्त में सप्तशती आदि स्तोत्र के मंत्रों से होम आदि, ये विहित हैं।

एतेषां मध्ये क्वचित्कुले घटस्थापनादीनि द्वित्रादीन्येवानुष्ठीयन्ते न सर्वाणि। क्वचिद् घटस्थापनादिरहितानि कानिचित्क्वचित्सर्वाण्येवेत्येतेषां समुच्चयविकल्पौ कुलाचारानुसारेण व्यवस्थितौ ज्ञेयौ। कुलपरंपराप्राप्तादधिकं शक्तिसत्त्वेऽपि नानुष्ठेयमिति शिष्टाचारः। फलकामनया प्रार्थितमुपवासादिकं कुलाचाराभावेऽपि कुर्वन्ति।

इनमें से किसी कुल में घटस्थापन आदि दो तीन आदि का ही अनुष्ठान करते हैं, सम्पूर्ण नहीं करते। कहीं घटस्थापन के विना ही कुछ और कहीं सभी का अनुष्ठान करते हैं। इस प्रकार कुलाचार के अनुसार व्यवस्थित विकल्प जानना चाहिए। कुल परम्परा से शक्ति रहने पर भी नहीं करना चाहिए, ऐसा शिष्टाचार है। फल की कामना से उपवास आदि मनौती कुलाचार के न होने पर भी लोग करते हैं।

इदं कलशस्थापनं रात्रौ न[2] कार्यम्। तत्र कलशस्थापनार्थं शुद्धमृदा वेदिकां कृत्वा पञ्चपल्लवदूर्वाफलताम्बूलकुङ्कुमधूपाधिसंभारान्संपादयेत्।

यह कलशस्थापन रात में नहीं करना चाहिए। कलशस्थापन के लिए शुद्ध मिट्टी से वेदी बनाकर पंचपल्लव, दूब, फल, पान, कुंकुम और धूप आदि सामग्री का सम्पादन करे।

अथ संक्षेपतो नवरात्रारम्भप्रयोगः

प्रतिपदि प्रातः कृताभ्यङ्गस्नानः[3] कुंकुमचन्दनादिकृतपुण्ड्रो धृतपवित्रः सप-

---

१. देवीपुराणे—'प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत्। प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत्॥' विष्णुधर्मोक्त-प्रातःकाल—'भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दशनाडिकाः। प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु॥' इति।

२. मत्स्यपुराणे—'न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्।' इति।

३. परशुरामः—'पातादिवर्जिते प्रातर्नित्यं कर्म समाचरेत्। नद्यां वाऽथ तडागे वा देवखाते ह्रदेऽथवा॥ सूत्रोक्तविधिना शौचपूर्वं स्नानं समाचरेत्। ततः स्वगृहमागत्य मङ्गलस्नानमाचरेत्॥ सर्वौषधीगन्धचूर्णयुतैः कृष्णतिलामलैः। उद्वर्त्याङ्गानि तैलेन चम्पकादिसुगन्धिना॥' इति।

त्नीको दशघटिकामध्येऽभिजिन्मुहूर्ते वा देशकालौ संकीर्त्य 'मम सकुटुम्बस्यामुक-देवताप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्धनपुत्रादिवृद्धिशत्रुजयकीर्तिलाभप्रमुख-चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थमद्यप्रभृति महानवमीपर्यन्तं प्रत्यहं त्रिकालमेककालं वा-मुकदेवतापूजामुपवासनक्तैकभक्तान्यतमनियमसहितामखण्डदीपप्रज्वालनं कुमारी-पूजनं चण्डीसप्तशतीपाठं सुवासिन्यादिभोजनमित्यादि यावत्कुलाचारप्राप्तमनूद्य एवमादिरूपं शारदनवरात्रोत्सवाख्यं कर्म करिष्ये, देवतापूजाङ्गत्वेन घटस्थापनं च करिष्ये, '[1]तदादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं चण्डीसप्तश-तीजपाद्यर्थं ब्राह्मणवरणं च करिष्ये ।'

प्रतिपदा में प्रातःकाल तेल लगाकर स्नान करे। कुंकुम चन्दन आदि लगाकर पवित्री धारण करके पत्नी के सहित दस घड़ी के मध्य में या अभिजित् मुहूर्त में देश काल को कहकर 'कुटुम्बसहित मेरे अमुक देवता की प्रसन्नता के द्वारा सम्पूर्ण आपत्ति के शान्त्यर्थ अधिक आयु धन और पुत्रादि की वृद्धि, शत्रु को जीतने और कीर्ति-प्राप्त करनेके लिए तथा चारो प्रकार के पुरुषार्थ की सिद्धिके लिए आज से महानवमी तक प्रतिदिन तीन काल या एक काल में अमुक देवता की पूजा, उपवास, नक्त और एकभक्त में से किसी एक का, नियमसहित अखण्ड दीप, कुमारीपूजन, चण्डी-सप्तशती-पाठ और सौभाग्यवती-भोजन आदि कुलाचार से प्राप्त शारदीय नवरात्रोत्सव नामक कर्म करूँगा, देवता की पूजा का अंग होने से घटस्थापन भी करूँगा, उसके आरम्भ में निर्विघ्नता सिद्धि के लिए गणेशपूजन, पुण्याहवाचन, चण्डी-सप्तशती-जप आदि के लिए ब्राह्मणों का वरण करूँगा' ऐसा संकल्प करें।

एतानि कृत्वा घटस्थापनसत्त्रे मही द्यौरिति भूमिं स्पृष्ट्वा, तस्यां भुवि अङ्कुरा-रोपणार्थं शुद्धमृदं प्रक्षिप्य, ओषधयः समिति तस्यां मृदि यवान्प्रक्षिप्य, आकलशे-ष्विति कुम्भं निधाय, इमं मे गंगे इति जलेनापूर्य, गन्धद्वारामिति गन्धं, या ओष-धीरिति सर्वा ओषधीः, काण्डात्काण्डादिति दूर्वाः, अश्वत्थे व इति पञ्चपल्लवान्, स्योनापृथिवीति मृदः, याः फलिनीरिति फलं, सहिरत्नानि हिरण्यरूप इति रत्नहिरण्ये प्रक्षिप्य, युवासुवासा इति सूत्रेणावेष्ट्य, पूर्णादर्वीति पूर्णपात्रं निधाय, तत्त्वायामीति वरुणं संपूज्य, तत्कलशोपरि कुलदेवताप्रतिमां संस्थाप्य पूजयेत्। स्वस्थाने एव वा संस्थाप्य पूजयेत्। तद्यथा—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥
आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि ।
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये ॥

यह सब करके घटस्थापन करने पर 'महीद्यौः' इस मंत्र से प्रार्थना कर और उसका स्पर्श कर उस भूमि में अंकुररोपण के लिए शुद्ध मिट्टी को डालकर 'ओषधयः सम' इस मंत्र से उस मिट्टी में

१. लिंगपुराणे—'सर्वकामसमृध्यर्थमादौ पूज्यो विनायकः।' प्रभासखण्डे—'सर्वकार्येषु ये मर्त्याः पूर्वमेनं गणाधिपम्। स्मरिष्यन्ति न वै तेषां कार्यहानिर्भविष्यति ॥' पद्मपुराणे—'नार्चितो हि गणा-ध्यक्षो यज्ञादौ यत्सुरोत्तमाः। तस्माद् विघ्नं समुत्पन्नमाकस्मिकमिदं खलु ॥' इति ।

जौ आदि को छोड़कर 'आकलशेषु' इस मंत्र से मिट्टी पर कुम्भ रख 'इमं मे गंगे' इन मंत्र से घड़े को जल से भरकर 'गंधद्वाराम्' इस मंत्र से गंध, 'ओषधी' इस मंत्र से सर्वौषधि 'काण्डात् काण्डात्' इस मंत्र से दूब, 'अश्वत्थेव' इस मत्र से पंचपल्लव, 'स्योना पृथिवि' इस मंत्र से मिट्टी, 'याः फलिनी' इस मंत्र से फल, 'सहरत्नानि हिरण्यरूप' इस मंत्र से घड़े में रत्न और सुवर्ण छोड़ कर 'युवासुवासा' इस मंत्र से सूत्र से वेष्टन करके 'पूर्णादर्वी' इस मंत्र से घड़े पर पूर्णपात्र रख कर 'तत्वायामि' इस मंत्र से वरुण की पूजा कर उस कलश के ऊपर कुलदेवता की प्रतिमा स्थापित कर अथवा अपने स्थान पर ही स्थापित कर पूजन करे। वह इस प्रकार है—

अनेन पुरुषसूक्तश्रीसूक्तप्रथमऋग्भ्यां चावाह्य जयन्ती मङ्गला कालीति मन्त्रेण सूक्तऋग्भिश्चासनादिषोडशोपचारैः संपूजयेत्। सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये इत्यादिभिः संप्रार्थ्य प्रत्यहं बलिदानपक्षे माषभक्तेन कूष्माण्डेन वा बलिं दद्यात्। अन्ते एव वा बलिदानं न वा बलिदानम्। ततः—

अखण्डदीपकं देव्याः प्रीतये नवरात्रकम्।
उज्ज्वालये अहोरात्रमेकचित्तो धृतव्रतः॥ इत्यखण्डदीपंप्रतिष्ठापयेत्।

'जयन्ती मङ्गला' इत्यादि प्रथम दो मन्त्रों और पुरुषसूक्त श्रीसूक्त की ऋचाओं से आवाहन करके 'जयन्ती मंगला काली' इस मंत्र से और सूक्त की ऋचाओं से आसन आदि सोलह उपचारों से पूजा करे। 'सर्वमंगलमांगल्ये' इत्यादि से प्रार्थना करके प्रतिदिन बलिदान के पक्ष में उड़द-भात या कूष्माण्ड से बलि देवे। अन्त में ही बलि दे या न दे। इसके बाद देवी की प्रसन्नता के लिए 'अखण्डदीपकं' इस मंत्र से नवरात्र में अखण्डदीप स्थापित करे।

अथ चण्डीपाठप्रकारः

'यजमानेन वृतोऽहं चण्डीसप्तशतीपाठं नारायणहृदयलक्ष्मीहृदयपाठं वा करिष्ये' इत्यादि संकल्प्य आसनादि विधाय आधारे अन्यहस्तलिखितं पुस्तकं स्थापयित्वा नारायणं नमस्कृत्येति वचनात् ॐनारायणाय नमः, नराय नरोत्तमाय नमः, देव्यै सरस्वत्यै नमः, व्यासाय नमः, इति नमस्कृत्य प्रणवमुच्चार्य सर्वपाठान्ते [१]प्रणवं पठेत्।

'यजमान से वृत होकर मैं चण्डी-सप्तशती, नारायणहृदय अथवा लक्ष्मीहृदय का पाठ करूँगा' इत्यादि संकल्प कर आसन आदि रखकर दूसरे के हाथ से लिखी पुस्तक की स्थापना करके 'नारायणं नमस्कृत्य' इस वचन से 'ॐ नारायणाय नमः' आदि मूलोक्त मंत्रों से नमस्कार करके 'ॐ' का उच्चारण कर पूरे पाठ के अन्त में प्रणव (ॐ) को कहे।

हस्ते पुस्तकं न धारयेत्। स्वयं ब्राह्मणभिन्नेन च लिखितं विफलम्।
अध्यायं प्राप्य विरमेन्न तु मध्ये कदाचन।
कृते विरामे मध्ये तु अध्यायादि पठेत्पुनः॥
ग्रन्थार्थं बुध्यमानः स्पष्टाक्षरं नातिशीघ्रं नातिमन्दं रसभावस्वरयुतं वाचयेत्।

---

१. मत्स्यसूक्ते—'प्रणवं चादितो जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत्। अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपूरुषः। आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं वाचयेत् सुधीः। हस्तसंस्थापने चैव यस्मादल्पं फलं भवेत॥'———— इत्यादि विचार अन्यत्र देखें।

हाथ में पुस्तक धारण न करे अपने तथा ब्राह्मणेतर से लिखी पुस्तक द्वारा पाठ करने से फल नहीं मिलता। अध्याय बिना समाप्त किये बीच में विराम न करे। अगर बीच में विराम करे तो पुनः अध्याय के आरम्भ से पढ़े। ग्रन्थ के अर्थ को जानता हुआ अक्षरोच्चारण स्पष्ट करे। बहुत जल्दी न पढे। अत्यन्त मंद भी न बाँचे। रस भाव और स्वरयुक्त बाँचे।

अथ काम्यपाठः

त्रिवर्गफलकामेन चण्डीपाठः सदैव कर्तव्यः। 'तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः। श्रोतव्यं च सदा भक्त्या'इत्यादिवचनात्। नैमित्तिकपाठोप्युक्तः—

शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम॥ इत्यादि। तथा—
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः।
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः॥

इत्यादिसंकटान्युद्दिश्य,

सर्वबाधासु चोग्रासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा।
स्मरन्ममैतन्माहात्म्यं नरो मुच्येत संकटात्॥ इत्युक्तम्।

धर्म और कामना की इच्छा से चण्डीपाठ सर्वदा करना चाहिए। इसलिए मेरे माहात्म्य को समाहित चित्त से भक्तिपूर्वक सुने। इस आशय के वचन से। नैमित्तिक पाठ भी कहा है—शान्तिकर्म में, बुरे स्वप्न देखने, भयानक ग्रह-पीड़ा होने पर माहात्म्य को सुने, इत्यादि। इसी प्रकार जंगल की आग से घिरे हुए, डाकुओं से अकेले पकड़े गये या शत्रुओं से पकड़े जाने आदि संकट के उद्देश्य से सम्पूर्ण उग्र बाधाओं में अथवा वेदना से कष्ट पाकर मेरे इस माहात्म्य को स्मरण करने से मनुष्य संकट से मुक्त हो जाता है, ऐसा कहा है।

अथ कामनार्थे पाठसंख्या

उपसर्गोपशान्त्यर्थं त्रयः पाठाः कार्याः। ग्रहपीडाशान्तये पञ्च, महाभये सप्त, शान्त्यर्थं वाजपेयफलार्थं च नव, राजवश्यार्थमेकादश, वैरनाशार्थं द्वादश, स्त्रीपुंसवश्यतार्थं चतुर्दश, सौख्याय लक्ष्म्यर्थं च पञ्चदश, पुत्रपौत्रधनधान्यार्थं षोडश, राजभयनाशाय सप्तदश, उच्चाटनायाष्टादश, वनभये विंशतिः, बन्धमोचनाय पञ्चविंशतिः, दुश्चिकित्स्यरोगकुलोच्छेदायुर्नाशवैरिवृद्धिव्याधिवृद्धि-त्रिविधोत्पातादिमहासंकटनाशो राज्यवृद्धिश्च शतावृत्तिभिः, सहस्रावर्तनैः शताश्वमेधफलं सर्वमनोरथावाप्तिर्मोक्षश्चेति [1]'वाराहीतन्त्रे उक्तम्।

---

१. वाराहीतन्त्र में चण्डीपाठ का फल—'ईश्वर उवाच, चण्डीपाठफलं देवि शृणुष्व गदतो मम। ग्रहोपशान्त्यै कर्तव्यं पञ्चावृत्तं वरानने॥ महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तमुदीरयेत्। अर्कावृत्तेः काम्यसिद्धिर्वैरिहानिश्च जायते॥ मन्त्रावृत्त्या रिपुर्वश्यस्तथा स्त्रीवश्यतामियात्। सौख्यं पञ्चदशावृत्ताच्छ्रियमाप्नोति मानवः॥ कलावृत्तात् पुत्रपौत्रधनधान्यादिकं विदुः। राज्ञां भीतिविमोक्षाय वैरस्योच्चाटनाय च॥ कुर्यात् सप्तदशावृत्तं तथाऽष्टादशकं प्रिये। महाव्रणविमोक्षाय विंशावृत्तं पठेन्नरः॥ पञ्चविंशावर्तनाच्च भवेद् बन्धविमोक्षणम्। सङ्कटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये

उपसर्ग की शान्ति के लिए तीन पाठ करना चाहिए। ग्रह पीड़ा-शान्ति के लिए पाँच, बड़े उग्र-भय होने पर सात, शान्ति और वाजपेययज्ञ के फल के लिए नव, राजा को वश में करने के लिए ग्यारह, बैरनाश के लिए बारह, स्त्री-पुरुष को वश में करने के लिये चौदह, सुख और लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए पन्द्रह, पुत्र-पौत्र-धन-धान्य के लिए सोलह, राजभय-नाश के लिए सत्रह, उच्चाटन के लिए अठारह, वन में भय होने पर बीस और जेल से छूटने के लिए पच्चीस पाठ करे। कठिनता से चिकित्सा-योग्य रोगसमूह के उच्छेद, आयु के नाश, शत्रु की वृद्धि, व्याधि-वृद्धि तीनों प्रकार के उत्पात आदि बड़े संकट के नाश और राज्य-वृद्धि के लिए सौ बार पाठ करने से सिद्धि होती है। हजार पाठ करने से सौ अश्वमेध का फल, सम्पूर्ण मनोरथ की प्राप्ति तथा मोक्ष होता है यह वाराहीतंत्र में कहा है।

सर्वत्र काम्यपाठे आदौ संकल्पपूर्वकं पूजनमन्ते बलिदानं च कार्यम्। अत्राचाराद्वेदपारायणमपि कार्यम्। तद्विधिर्बौधायनोक्तः कौस्तुभे ज्ञेयः।

सब जगह काम्य-पाठ में आरम्भ में संकल्पपूर्वक पूजन करके अन्त में बलिदान भी करे। यहाँ पर आचार से वेद का पारायण भी करे। इसकी विधि बौधायन में कही हुई कौस्तुभ से जानना चाहिये।

अथ कुमारीपूजा

'एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां 'विवर्जयेत्'। द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षावधि कुमारीणां क्रमेण कुमारिका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चण्डिका शाम्भवी दुर्गा भद्रेति नामानि। आसां कुमारीणां प्रत्येकं पूजा मन्त्राः फलविशेषाः लक्षणानि चान्यत्र ज्ञेयानि। ब्राह्मणेन ब्राह्मणीत्येवं सवर्णा प्रशस्ता। विजातीयापि क्वचित्कामनाविशेषेणोक्ता। एकैकवृद्धया प्रत्यहमेका वा कुमारीपूजा।

मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम्।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम्॥
जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोस्तु ते॥

इति मन्त्रेण पादक्षालनपूर्वकं वस्त्रकुङ्कुमगन्धधूपदीपभोजनैः पूजयेदिति

तथा॥ जातिध्वंसे कुलच्छेदे आयुषो नाश आगते। वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये॥ तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवातिपातके। कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः सम्पद्यते शुभम्॥ श्रियो वृद्धिः शतावृत्ताद् राज्यवृद्धिस्तथा प्रिये। मनसा चिन्तितं देवि सिद्धयेदष्टोत्तराच्छतात्॥ शताश्वमेधयज्ञानां फलमाप्नोति सुव्रते। सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा॥ भुक्त्वा मनोरथान् सर्वान् नरो मोक्षमवाप्नुयात्। यथाऽश्वमेधः क्रतुराड् देवानां च यथा हरिः। स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः॥ अथवा बहुनोक्तेन किमेतेन वरानने। चण्ड्याः शतावृत्तिपाठात् सर्वाः सिद्धयन्ति सिद्धयः॥' इति।

१. स्कन्दपुराण में त्याज्य कुमारियों का वर्णन—'हीनाधिकाङ्गीं कुष्ठादिविकारां कुनखां तथा। ग्रन्थिस्फुटितगर्भाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम्॥ जात्यन्धां केकरीं काणीं कुरूपां तनुरोमशाम्। संत्यजेद् रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम्॥ एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत्। गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते॥' इति।

संक्षेपः । कुमारीपूजावद्देवीपूजाचण्डीपाठश्चैकोत्तरवृद्धयापि विहितः । भवानीसहस्रनामपाठोपि क्वचिदुक्तः ।

एक वर्ष की कन्या का पूजन वर्जित करे। दो वर्ष से लेकर दश वर्ष की अवधि तक कुमारियों के क्रम से कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा और भद्रा, ये नाम हैं। इन प्रत्येक कुमारियों की पूजा के मंत्र, विशेष-फल और लक्षण, दूसरे ग्रन्थ से जानना चाहिए। ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण वर्ण कुमारी श्रेष्ठ होती है। कामना-विशेष से कहीं विजातीय कुमारी भी कही गई है। एक एक कुमारी प्रतिदिन बढ़ाकर अथवा प्रतिदिन एक ही कुमारी की पूजा करनी चाहिए। 'मंत्राक्षरमयीं लक्ष्मीं' इत्यादि मंत्र से कुमारी का पैर धोने के बाद वस्त्र, कुंकुम, गन्ध, धूप, दीप और भोजन से पूजा करे। कुमारी-पूजा की तरह देवी-पूजा और चण्डी-पाठ प्रतिदिन एक-एक बढ़ा करके करने का विधान है। कहीं पर भवानीसहस्रनाम का पाठ भी कहा है।

अयं शारदनवरात्रोत्सवो मलमासे निषिद्धः। [1]शुक्रास्तादौ तु भवति। प्रथमारम्भस्तु न कार्यः।

यह शारद नवरात्र का उत्सव मलमास में नहीं किया जाता। शुक्रास्त आदि में तो होता है। शुक्रास्त आदि में भी पहले-पहल आरम्भ करना हो तो न करे।

अथ आशौचादौ नवरात्रविधिः

शावाशौचजननाशौचयोस्तु सर्वोऽपि घटस्थापनादिविधिर्ब्राह्मणद्वारा कार्यः। केचिदारम्भोत्तरं मध्ये आशौचपाते स्वयमेवारब्धं पूजादिकं [2]कार्यमित्याहुः। शिष्टास्त्वाशौचे पूजादेवतास्पर्शादेर्लोकविद्विष्टत्वादन्येनैव कारयन्ति। अपरे तृतीयादिपञ्चम्यादिसप्तम्याद्यनुकल्पेन नवरात्रविधीनां सत्त्वात्प्रतिपद्याशौचे तृतीयाद्यनुकल्पाश्रयणं कुर्वन्ति। सर्वथा लोपप्रसक्तावेव ब्राह्मणद्वारा कुर्वन्ति। उपवासादिशारीरनियमः स्वयं कार्यः। एवं रजस्वलापि उपवासादिकं स्वयं कृत्वा पूजादिकमन्येन कारयेत्। अत्र सभर्तृकस्त्रीणां उपवासे गन्धताम्बूलादिग्रहणं न दोषायेत्याहुः।

मरणाशौच और जननाशौच में तो सम्पूर्ण घटस्थापन आदि विधि ब्राह्मण के द्वारा करानी चाहिए। कोई आरम्भ के बाद बीच में आशौच पड़ने पर अपने से आरम्भ किया हुआ पूजा आदि करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। शिष्ट लोग तो आशौच में पूजा, देवता का स्पर्श, आदि, लोक में निन्दा होने से दूसरे से ही कराते हैं। अन्य लोग तो आशौच में तृतीया आदि पंचमी आदि और सप्तमी आदि अनुकल्पों से नवरात्र की विधियों के होने से प्रतिपदा में आशौच होने पर तृतीया आदि अनुकल्पों का आश्रयण करते हैं। इस प्रकार से पाठ न करने की स्थिति में ही

---

१. धर्मप्रदीपे—'नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ। कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः ॥' इति।

२. निर्णयामृत में विश्वरूपनिबन्ध—'आश्विने शुक्लपक्षे तु प्रारब्धे नवरात्रके। शावाशौचे समुत्पन्ने क्रिया कार्या कथं बुधैः ॥ सूतके वर्तमाने च तत्रोत्पन्ने सदा बुधैः ॥ देवीपूजा प्रकर्तव्या पशुयज्ञविधानतः ॥ सूतके पूजनं प्रोक्तं दानं चैव विशेषतः। देवीमुद्दिश्य कर्तव्यं तत्र दोषो न विद्यते ॥' विष्णुरहस्ये—'पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः। तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनविवर्जितम् ॥' इति।

ब्राह्मण के द्वारा कराते हैं। उपवास आदि शरीर के नियम स्वयं करना चाहिए। इसी प्रकार रजस्वला स्त्री भी उपवास आदि स्वयं करके पूजा आदि दूसरे से करावे। इसमें सौभाग्यवती स्त्रियों को उपवास में गन्ध ताम्बूल आदि का सेवन दोष-कारक नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

अथ पञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतम्

अत्र पञ्चमी अपराह्णव्यापिनी ग्राह्या। अपराह्णस्यैव तत्पूजाकालत्वोपपत्तेः। दिनद्वये कार्त्स्न्येनापराह्णव्याप्तौ साम्येन वैषम्येण वापराह्णैकदेशव्याप्तौ च पूर्वैव, युग्मवाक्यात्। परत्रैवापराह्णव्याप्तौ परैव। केचित्तु रात्रिव्यापिनीं गृह्णन्ति पूजादिकं च रात्रावेव कुर्वन्ति। तत्र मूलं चिन्त्यम्। अत्र पूजादिविधिर्ग्रन्थान्तरे प्रसिद्ध इति न लिख्यते।

इस व्रत में अपराह्णव्यापिनी पचमी ग्राह्य है क्योंकि इसमें पूजा का काल अपराह्ण ही कहा है। दो दिन में सम्पूर्णतया अपराह्णव्यापिनी होने पर अथवा साम्य और वैषम्य से अपराह्ण के एकदेश में होने से पूर्वा ही युग्मवाक्य से स्वीकारयोग्य है। दूसरे ही दिन अपराह्णव्यापिनी होने पर दूसरे ही दिन करना चाहिए। कुछ लोग तो रात में रहने वाली पंचमी को ग्रहण करते हैं और पूजा आदि भी रात ही में करते हैं। यह प्रमाण से रहित है। इसमें पूजा आदि की विधि दूसरे ग्रन्थों में प्रसिद्ध है इस लिए नहीं लिखते है।

अथ सरस्वत्यावाहनादि

आश्विनशुक्लपक्षे मूलनक्षत्रे पुस्तकेषु सरस्वतीमावाह्य पूजयेत्।

मूलेषु स्थापनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम्।
उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत्॥ इति वचनात्।

अत्र पूजयेत्प्रत्यहमिति [1]रुद्रयामलवचनात् 'मूले आवाहनं तदङ्गभूतं पूजनं करिष्ये' इत्यादि संकल्प्यावाहनपूजने कार्ये। 'पूर्वाषाढासु पूजनं करिष्ये'

---

१. रुद्रयामल में सम्पूर्ण वचन यों है—'मूलऋक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती। पूजयेत्प्रत्यहं देव यावद् वैष्णवऋक्षकम्॥ नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन। पुस्तके स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः॥' इति।

आश्विनशुक्ल षष्ठी में सायंकाल बिल्वाभिमन्त्रण करना चाहिये। यह सायन्तनव्यापिनी ग्राह्य है। यथा भविष्यपुराणे—'षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं सन्ध्यासु कारयेत्।' तिथितत्त्वे—'सायं षष्ठ्यां तु कर्तव्यं पार्वत्या अधिवासनम्। षष्ठ्य भावेऽपि कर्तव्यं सप्तम्यामपि मानद॥' यदि षष्ठी दो दिन सायन्तनव्यापिनी हो तो युग्मवाक्य के आदर से सप्तमीसे युक्त षष्ठी अर्थात् दूसरे दिन बिल्वाभिमन्त्रण करना चाहिये।

यदि पहले दिन सायंकाल के बाद षष्ठी की प्रवृत्ति होती हो और दूसरे दिन सायंकाल के पूर्व ही समाप्त हो जाती हो तो षष्ठी के अभाव में दूसरे दिन सप्तमीयुक्त षष्ठी में सायंकाल करना चाहिये। देवीपुराण का निर्णय भिन्न है—'ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम्। सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम्॥ पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्। उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवाम्। श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥' कालिकापुराणे—'बोधयेद् बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च। सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत्॥ पुनः पूजां तथाऽष्टम्यां विशेषेण समाचरेत्। जागरं च स्वयं कुर्याद् बलिदानं महानिशि॥ प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत्। विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद् वै शाबरोत्सवैः॥ धूलिकर्दमनिक्षेपैः क्रीडा-

इति संकल्प्यावाहनरहितपूजैव केवलम्। 'उत्तराषाढासु बलिदानं तदङ्गभूतां पूजां च करिष्ये' इत्येवं ते कार्ये। श्रवणे विसर्जनं कर्तुं 'तदङ्गभूतां पूजां करिष्ये' इति संकल्प्य संपूज्य विसर्जयेदिति क्रमः।

आश्विन शुक्लपक्ष के मूलनक्षत्र में पुस्तकों में सरस्वती का आवाहन कर पूजा करे। वचनानुसार मूलनक्षत्र में सरस्वतीदेवी की स्थापना और पूर्वाषाढ़ा में पूजन करे। उत्तराषाढ़ा में बलि देकर श्रवणनक्षत्र में सरस्वती का विसर्जन करे। रुद्रयामल में लिखा है कि प्रतिदिन पूजा करे। 'मूल में आवाहन और उसका अंग पूजन भी करूँगा' इत्यादि संकल्प करके आवाहन और पूजन करे। 'पूर्वाषाढ़ा में पूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करने पर आवाहन के बिना पूजा ही केवल करे। 'उत्तराषाढ़ा में बलिदान और उसकी अंगपूजा करूँगा' इस प्रकार दोनों को करे। श्रवण में विसर्जन करने के लिए 'उसकी अंगपूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करके पूजा करके विसर्जन करे, यही क्रम है।

तत्र मूलस्य प्रथमे पादे सूर्यास्तात्प्राक् त्रिमुहूर्तव्यापिनि सरस्वत्यावाहनम्। त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे रात्रौ वा प्रथमपादसत्त्वे तस्य विशेषवचनं विना ग्राह्यत्वाभावाद् द्वितीयादिपादे परदिन एवावाहनम्। एवं पूर्वाषाढादिनक्षत्रं पूजादौ दिनव्याप्येव ग्राह्यम्। विसर्जनं तु श्रवणप्रथमपादे रात्रिभागगतेऽपि कार्यम्, विशेषवचनात्। तच्च रात्रेः प्रथमप्रहरपर्यन्तमेवेति भाति।

उसमें मूलनक्षत्र के प्रथम चरण में सूर्यास्त के पहले तीन मुहूर्त रहने पर सरस्वती का आवाहन करे। तीन मुहूर्त से कम रहने अथवा रात में प्रथम चरण के होने पर उसके विशेष वचन के बिना ग्राह्यता न होने से द्वितीय आदि चरण में दूसरे दिन आवाहन करे। इसी प्रकार पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्र, पूजा आदि दिनव्यापी ही ग्राह्य है। विशेषवचनानुसार विसर्जन तो श्रवण के प्रथम चरण में रात्रि में भी करना चाहिए। वह भी रात के पहले पहर तक ही, ऐसा युक्त प्रतीत होता है।

अथ सप्तम्यादौ पत्रिकापूजा

अथ सप्तम्यादिदिनत्रये पत्रिकापूजनं विहितम्। तत्र सप्तम्यादितिथित्रयं [1]सूर्योदये मुहूर्तमात्रमपि ग्राह्यम्। तत्राधिवासनादिप्रयोगविस्तारः कौस्तुभा-

---

कौतुकमङ्गलैः।' यहां सभी जगह तिथि और नक्षत्र के योग का आदर मुख्य है। दोनों का संयोग न हो तो तिथि ही ग्राह्य है। देवलः—'तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम्। योगाभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि॥' इति।

१. धौम्यः—'आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम्। प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत्॥ त्रिरात्रं वाऽपि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम्।' देवीपुराणे—'नवरात्रव्रतेऽशक्तस्त्रिरात्रं चैकरात्रकम्। व्रतं चरति यो भक्तस्तस्मै दास्यामि वाञ्छितम्॥ 'तिथितत्त्वे—'भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः। तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद् बुधः॥' कृत्यतत्त्वार्णव में नवपत्रिकायें—'रम्भा कवी हरिद्रा च जयन्ती बिल्वदाडिमौ। अशोको मानवृक्षश्च धान्यादि नवपत्रिका॥' इति।

भविष्यपुराण में देवीमूर्तिके निर्माण-द्रव्य—'तत्र देवी प्रकर्तव्या हैमी वा राजती तथा। मृद्दार्क्षी लक्षणोपेता खड्गशूले च पूजयेत्॥' देवीपुराणे—'हैमराजतमृद्दारुशैलचित्रार्पिताऽपि वा। खड्गे शूलेऽर्चिता देवी सर्वकामफलप्रदा॥' कालिकापुराणे—'लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं मण्डलस्थां तथैव

दौ ज्ञेयः। यत्तु सप्तमीप्रभृति त्रिरात्रं नवरात्रकर्म कुर्वन्ति तत्र सप्तमी सूर्योदयोत्तरं मुहूर्ताधिकव्यापिनी ग्राह्या। मुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा।

सप्तमी आदि तीन दिन में पत्रिकापूजन विहित है। उसमें सप्तमी आदि तीनों तिथियाँ सूर्योदय काल में मुहूर्त मात्र भी हो तो ग्राह्य है। इसमें अधिवासन आदि का विस्तृत प्रयोग कौस्तुभ आदि से जानना चाहिए। जो कि सप्तमी से तीन रात नवरात्र कर्म करते हैं उसमें सप्तमी सूर्योदय के बाद एक मुहूर्त से अधिक रहने वाली ग्राह्य है। मुहूर्त से कम होने पर पूर्वा ग्राह्य है।

अथ महाष्टमीनिर्णयः

अथ महाष्टमी घटिकामात्राप्यौदयिकी [1]नवमीयुता ग्राह्या। सप्तमी स्वल्पयुता सर्वथा त्याज्या। यदा तु पूर्वत्र सप्तमीयुता परत्रोदये नास्ति घटिकान्यूना वा वर्तते तदा पूर्वा [2]सप्तमीविद्धापि ग्राह्या। इयं भौमवारेऽतिप्रशस्ता। यदा च पूर्वदिने षष्टिघटिकाष्टमी परदिने मुहूर्तादिव्यापिनी तदा नवमीयुतामप्युत्तरां त्यक्त्वा संपूर्णत्वात्पूर्वैव ग्राह्या। एवं नवम्याः क्षयवशेन दशमीदिने सूर्योदयोत्तरमनुवृत्त्यभावेऽष्टमीं नवमीयुतामौदयिकीमपि त्यक्त्वा सप्तमीयुतैवाष्टमी ग्राह्या। अष्टम्यां [3]पुत्रवतोपवासो न कार्यः। कुलाचारप्राप्तौ किंचिद्भक्ष्यं प्रकल्प्य कार्यः।

अष्टमी घड़ी भर भी उदयकाल की नवमीयुक्त ग्राह्य है। थोड़ी सप्तमी से युक्त अष्टमी सर्वथा

च। पुस्तकस्थां महादेवीं पावके प्रतिमासु च॥ चित्रे च त्रिशिखे खड्गे जलस्थां वाऽपि पूजयेत्। बिल्वपत्रैर्यजेद्देवीं तथा जातीप्रसूनकैः॥ नानापिष्टकनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः।' चित्रमृन्मयादि की मूर्ति में स्नानादि कराना सम्भव नहीं है इसलिये खड्ग या दर्पण को स्नान करावे—'अग्निके स्थापिते खड्गे स्नापयेद्दर्पणेऽथवा।' इति।

१. निगम वाक्यानुसार उपवास पूजादि में नवमी से युक्त ही अष्टमी ग्राह्य है—'शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता॥ उपवासादिकार्येषु एष धर्मः सनातनः।' स्मृतिसंग्रह में सप्तमीयुत अष्टमी का निषेध—'शरन्महाष्टमी पूज्या नवमीसंयुता सदा। सप्तमीसंयुता नित्यं शोकसन्तापकारिणी॥ जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता तु महाष्टमी। इन्द्रेण निहतो जम्भस्तस्माद्दानवपुङ्गवः॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमीमिश्रिताऽष्टमी। वर्जनीया प्रयत्नेन मनुजैः शुभकाङ्क्षिभिः॥ सप्तमीशल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोऽपि वा। महाष्टमीं प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥ सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्टमी भवेत्। तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौत्रक्षयप्रदम्॥' तथा—'पुत्रान् हन्ति पशून् हन्ति हन्ति राष्ट्रं सराजकम्। हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसहिताऽष्टमी॥' इति।

किसी का विचार है कि निशापूजा में यह अष्टमी महानिशाव्यापिनी होनी चाहिये। यदि वह उभय दिन महानिशाव्यापिनी हो तो नवमीयोग की प्रशंसा से उत्तर दिन की अष्टमी को ग्रहण करे। जब अष्टमी पूर्व दिन में महानिशाव्यापिनी हो, पर दिन में न हो तो ऐसी स्थिति में पूर्व दिनवाली सप्तमीयुक्त अष्टमी को ग्रहण करे।

२. स्मृतिसंग्रहे—'यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेऽहनि। तदाऽष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितां नृप॥' विश्वरूपनिबन्धे—'सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतो याऽष्टमी भवेत्। तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेऽहनि॥' इति।

३. कालिकापुराणे—'उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत्। यथा तथा वा पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत्॥' इति।

त्याज्य है। जब पहले दिन सप्तमीयुक्त हो दूसरे दिन उदय में नहीं हो, अथवा घड़ी भर से कम हो तब पूर्वा सप्तमीविद्धा भी ग्राह्य है। यह अष्टमी मंगलवार को हो तो बहुत उत्तम है। जब पहले दिन साठ घड़ी अष्टमी हो और दूसरे दिन मुहूर्त आदि व्यापिनी हो तब नवमीयुक्त भी दूसरी को छोड़कर सम्पूर्ण होने से पूर्वा ही ग्राह्य है। इसी प्रकार नवमी के क्षय होने से दशमी के दिन सूर्योदय के बाद नवमी के न रहने पर नवमीयुता उदयकालिकी सप्तमीयुक्ता ही अष्टमी लेनी चाहिए। पुत्रवान् अष्टमी में उपवास न करे। यदि उपवास का कुलाचार हो तो भी कुछ खा कर ही व्रत करे।

अथ महानवमीनिर्णयः

महानवमी तु बलिदानव्यतिरिक्तविषये पूजोपोषणादावष्टमीविद्धा[1] ग्राह्या। सा च यदि अष्टमीदिने सायं त्रिमुहूर्ता स्यात्तदैव ग्राह्या। त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे परैव ग्राह्या। नवमीप्रयुक्तमहाबलिदाने तु दशमीविद्धा। यदा शुद्धाधिका नवमी तदा बलिदानमपि पूर्णत्वात् पूर्वत्रैव कार्यम्। अष्टमीनवम्योः संधौ पूजोक्ता। साष्टमीनवम्योः पृथक्त्वे दिवारात्रौ वाष्टम्यन्तनाडीनवम्याद्यनाड्योः कार्या।

महानवमी तो बलिदान को छोड़कर पूजा उपवासादि में अष्टमीविद्धा ही ली जानी चाहिए। वह भी यदि अष्टमी के दिन में सायंकाल तीन मुहूर्त हो तभी ग्रहण करे। तीन मुहूर्त से कम होने पर परा ही ग्राह्य है। नवमीप्रयुक्त महाबलिदान में तो दशमीविद्धा नवमी का ग्रहण करे। जब शुद्धा और अधिका नवमी हो तब बलिदान भी सम्पूर्णता के कारण पहले ही दिन करना चाहिए। अष्टमी और नवमी की सन्धि में पूजा कही गई है। वह अष्टमी नवमी के अलग रहने से दिन में या रात में अष्टमी की अंत वाली घड़ी या नवमी की आदि वाली घड़ी में करे।

यदि तु अष्टमीनवम्योर्मध्याह्नेऽपराह्णे वा योगस्तदाष्टमीनवमीपूजयोरप्येकदिने एव प्राप्तेः 'अष्टमीनवमीपूजां तत्सन्धिपूजां च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य तन्त्रेण पूजा कार्या। यदि शुद्धाधिकाष्टमी तदा पूर्वेद्युरष्टमीपूजा परेद्युः सन्धिपूजानवमीपूजयोस्तन्त्रम्।

यदि अष्टमी नवमी का मध्याह्न में या अपराह्णमें योग हो तब अष्टमी नवमी दोनों की पूजा एक ही दिन पड़े तो 'अष्टमी नवमी की पूजा और उसकी सन्धिपूजा को तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प कर तन्त्र से पूजा करे। जब शुद्धा और अधिका अष्टमी हो तो पहले दिन अष्टमी पूजा और दूसरे दिन तन्त्रसे सन्धिपूजा और नवमीपूजा करे।

अत्र नवरात्रे स्वयं पूजादिकं कर्तुमशक्तावन्येन कारयेत्। षोडशोपचारपूजाविस्तारं कर्तुमशक्तो गन्धादिपञ्चोपचारपूजां कुर्यात्।

---

१. पद्मपुराणे—श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्॥ न कुर्यान्नवमीं तात दशम्या तु कदाचन।' लिङ्गपुराणे—'दुर्गापूजासु नवमी मूलाद् ऋक्षत्रयान्विता। महती कीर्तिता तस्यां दुर्गां महिषमर्दिनीम्। चण्डिकामुपहारैस्तु पूजयेद् राज्यवृद्धये।' कामरूपनिबन्ध में सन्धिपूजा का महत्त्व—'अष्टम्याः शेषदण्डश्च नवम्याः पूर्व एव च। तत्र या क्रियते पूजा विज्ञेया सा महाफला॥' इति।

बलिदान में दशमीविद्धा नवमी ग्राह्य और अष्टमीविद्धा नवमी निषिद्ध है। देवीपुराणे—'सूर्योदये परं रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि। बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र देशः शुभावहः॥ बलिदाने कृतेऽष्टम्यां राष्ट्रभङ्गो भवेन्नृप।' इति। विशेष मूलग्रंथ में ही स्पष्ट है। ग्रन्थान्तर में प्रमाण देखें।

इस नवरात्र में स्वयं पूजा आदि करने में असमर्थ हो तो दूसरे से पूजा करा ले। विस्तृत षोडशोपचार पूजा करने में असमर्थ व्यक्ति पंचोपचार पूजा ही करे।

अथ नवम्यां होमादि

नवम्यां पूजां विधाय होमः कार्यः। [1]केचिदष्टम्यामेव होम इत्याहुः। अन्ये तु अष्टम्यामुपक्रम्य नवम्यां होमः समापनीयः। स चारुणोदयमारभ्य सायंकालपर्यन्तमष्टमीनवम्योः संधौ संभवति। निशायां तत्सन्धौ तु रात्रौ होमादेरयोग्यत्वान्नवम्यामेव होमोपक्रमसमाप्ती कार्ये इत्याहुः। अत्र यथाकुलाचारं व्यवस्था।

नवमी में पूजा करके होम करना चाहिए। कुछ लोग अष्टमी में ही होम करे, ऐसा कहते हैं। दूसरे लोग अष्टमी में आरम्भ कर नवमी में होम समाप्त करे। वह भी अरुणोदय से आरम्भ करके सायंकाल तक अष्टमी नवमी की सन्धि में होता है। रात में और उसकी सन्धि में तो होम आदि कार्य की अयोग्यता से नवमी में ही होम का आरम्भ और समाप्ति करे, ऐसा कहते हैं। इसमें अपने कुलाचार के अनुसार व्यवस्था करे।

स च होमो नवार्णमन्त्रेण कार्यः। अथवा जयन्ती मङ्गला कालीति श्लोकेन। अथवा नमो देव्यै महा देव्यै इति श्लोकेन। अथवा सप्तशतीश्लोकैः। अथवा सप्तशतीस्तोत्रस्य सप्तशतमन्त्रैः कवचार्गलाकीलकरहस्यत्रयश्लोकसहितैर्होमः। सप्तशतमन्त्रविभागोऽन्यत्र ज्ञेयः। अत्रापि विकल्पेषु यथाकुलाचारं व्यवस्था।

वह होम नवार्ण के मन्त्र से करना चाहिए। अथवा 'जयन्ती मंगला काली' इस मन्त्र से या 'नमो देव्यै महादेव्यै' इस मन्त्र से या सप्तशती के श्लोकों से या सप्तशतीस्तोत्र के सात सौ मन्त्रों से कवच-अर्गला-कीलक और [तीनों रहस्य के श्लोकों के सहित होम करे। सात सौ मन्त्रों का विभाग दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिए। इसमें भी विकल्प होने पर जैसा अपना कुलाचार हो वैसा ही व्यवस्था करे।

होमद्रव्यं च—सर्पिर्मिश्रितं शुक्लतिलमिश्रं च [2]पायसं केवलतिलैर्वा होमः। क्वचित्किंशुकपुष्पदूर्वासर्षपलाजपूगयवश्रीफलरक्तचन्दनखण्डनानाविधफलानामपि पायसे मिश्रणं कार्यमित्युक्तम्। होमश्च जपदशांशेन कार्यः। कुलाचारप्राप्तश्चेन्नृसिंहभैरवादिदैवत्यमन्त्रहोमोऽपि कार्यः। अत्र सविस्तरः सग्रहमखो होमप्रयोगः कौस्तुभे ज्ञेयः।

---

१. इनके मत में देवीपुराण का 'पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्' यह वचन है।

२. डामरतन्त्रे—'पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम्। होमयेद् विधिवद् भक्त्या दशांशेन नृपोत्तम॥' यामलतन्त्रे—'प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा। किंशुकैः सर्षपैः पूगैर्लाजादूर्वाङ्कुरैरपि॥ यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा। रक्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च मनोहरैः॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयात्सर्वद्रव्याणि च क्रमात्। नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्या इतीति च॥' इति।

तन्त्रान्तर में देवी-देवताओं के अन्य होमद्रव्य–'यवार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं तिलाः स्मृताः। तिलार्धं शर्करा प्रोक्ता आज्यं भागचतुष्टयम्॥' आनन्दरामायण में इन द्रव्यों के भिन्न मान–'तिलार्धं तण्डुला देयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा। यवार्धं शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्धं च घृतं स्मृतम्॥' इति।

होमद्रव्य—घी और सफेद तिल से मिलाया हुआ खीर या तिल मात्र से होम करे। कहीं पर किंशुक का फूल, दूब, सरसो, लावा, सुपारी, जौ, बेल, रक्तचन्दन का टुकड़ा और नाना प्रकार के फलों को भी खीर में मिलाकर होम करे, ऐसा कहा है। जप के दशांश से होम करना चाहिए। कुलाचार हो तो नरसिंह भैरव आदि देवता के मन्त्र से भी होम करे। इसमें विस्तार के साथ ग्रहयज्ञसहित प्रयोग कौस्तुभ ग्रन्थ से जानना चाहिए।

अथ बलिदाननिर्णयः

ब्राह्मणेन माषादिमिश्रान्नेन [१]कूष्माण्डेन वा कार्यम्। यद्वा घृतमयं यवपिष्टादिमयं वा सिंहव्याघ्रनरमेषादिकं कृत्वा खड्गेन घातयेत्। ब्राह्मणेन पशुमांसमद्यादिबलिदाने ब्राह्मण्यभ्रष्टता। सकामेन क्षत्रियादिना सिंहव्याघ्रनरमहिषछागसूकरमृगपक्षिमत्स्यनकुलगोधादिप्राणिस्वगात्ररुधिरादिमयो बलिर्देयः। कृष्णसारमृगः क्षत्रियादिभिरपि न देयः। अत्र बलिदानमन्त्रादिप्रकारः सिन्धौ ज्ञेयः। अत्र शतचण्डीसहस्रचण्डीप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

ब्राह्मण, उड़द आदि मिले अन्न से या कूष्माण्ड से बलि दे। अथवा घी का या घृत मिले हुए जव के आंटा से सिंह, व्याघ्र, नर और मेड़े को बनाकर तलवार से मारे। ब्राह्मण, पशु मांस-मद्य आदि से बलिदान करने पर ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होता है। सकाम क्षत्रिय आदि, सिंह-बाघ-नर-भेड़ा-बकरा-सूअर मृग-पक्षी-मछली-नेवला-गोह आदि प्राणी के शरीर से रुधिर की बलि दे। क्षत्रिय आदि को भी कृष्णसार मृग की बलि नहीं देनी चाहिए। इसमें बलिदान के मन्त्र आदि की विधि निर्णयसिन्धु से जानना चाहिए। इसमें शतचण्डी और सहस्रचण्डी का प्रयोग कौस्तुभ आदि ग्रन्थों से ज्ञातव्य है।

अथाशौचे समाप्तिनिर्णयः

द्विविधाशौचेऽपि नवम्यां होमं घटादिदेवतोत्थापनं च ब्राह्मणद्वारा कारयित्वा स्वयं पारणं[२] कृत्वाऽऽशौचान्ते ब्राह्मणभोजनं दक्षिणादिदानं च कार्यम्। एवं

---

१. कालिकापुराणे—'कूष्माण्डमिक्षुदण्डश्च मद्यमासव एव च। एते बलिसमा ज्ञेयास्तृप्तौ छागसमाः स्मृताः ॥' रुद्रयामले—'छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वा मनोहरम्। वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिना ॥' तथा—'ब्राह्मणेन सदा देयं कूष्माण्डं बलिकर्मणि। श्रीफल वा सुराधीश छेदं नैव तु कारयेत् ॥' तथा—'माषान्नेन बलिर्देयो ब्राह्मणेन विजानता।' इति कूष्माण्डादि का छेदन विकल्प से है।

यदि छेदन करना हो तो कूष्माण्ड की प्रार्थना—'कूष्माण्डो बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः। प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ॥ चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम्। चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥' इस मन्त्र से खड्ग लेकर, 'यज्ञार्थं बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा। अतस्त्वां घातयाम्यद्य यस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥' इस मन्त्र से छेदन करे।

२. विष्णु के—'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः। नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥' इस वचन के अनुसार आशौच के मध्य में प्रारब्ध कार्य की पूर्ति अनिवार्य है इसलिये सूतक में होमपूर्वक पारणा करे। रुद्रयामले—'सूतके पारणं कुर्यान्नवम्यां होमपूर्वकम्। तदन्ते भोजयेद् विप्रान् दानं दद्याच्च शक्तितः ॥' कूर्मपुराणे—'काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके। तत्र काम्यं व्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम् ॥' सत्यव्रतः—'प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत्। न तत्रापि व्रतस्य स्यादवरोधः कदाचन ॥' इति।

रजस्वलापि पारणाकाले पारणं कृत्वा शुद्धौ दानादिकं कुर्यात्। विधवायास्तु रजोदोषे भोजननिषेधात्पारणापि शुद्ध्युत्तरमेव। एवं व्रतान्तरेष्यूहचम्।

दोनों प्रकार के आशौच में भी नवमी में होम और घट आदि से देवतोत्थापन भी ब्राह्मण के द्वारा कराकर स्वयं पारणा करके आशौच से निवृत्त होने पर ब्राह्मणभोजन और दक्षिणा आदि देनी चाहिए। इसी तरह रजस्वला भी पारणा काल में पारणा करके शुद्ध होने पर दान आदि करे। विधवा के रजस्वला अवस्था में भोजन के निषेध होने से पारणा भी शुद्ध होने के बाद ही करे। इसी तरह दूसरे व्रतों में भी कल्पना करे।

अथ शस्त्रादिपूजा

प्रतिपदादियावदष्टमि 'लोहाभिसारिकं[1] कर्म राज्ञां विहितम्। तत्र छत्रचामरादिराजचिह्नानां गजाश्वादीनां चापादिशस्त्राणां दुन्दुभ्यादीनां च पूजाहोमादिकं कार्यम्।

प्रतिपदा से अष्टमी तक लोहाभिसारिकाकर्म राजाओं के लिए विहित है। उसमें छत्र, चामर, आदि राज-चिह्नों का, हाथी घोड़ा आदि पशुओं का, धनुष आदि शस्त्रों और दुंदुभि आदि का पूजन होम आदि करना चाहिए।

अथ अश्वादिपूजा

ये हयान्पालयन्ति ते राजभिन्ना अपि स्वातीयुतामाश्विनप्रतिपदं द्वितीयां वारभ्य नवमीपर्यन्तं वाजिनीराजनाख्यं कर्म कुर्युः। तत्रोच्चैःश्रवःपूजा रैवतपूजा च प्रतिमायां कार्या। प्रत्यक्षमश्वपूजा नीराजनं च कार्यम्। कर्मद्वयेऽपि तत्पूजामन्त्रा होमादिमन्त्राः सविस्तरप्रयोगश्च कौस्तुभे।

राजा के अतिरिक्त भी जो घोड़े पालते हैं वे स्वातीनक्षत्रयुक्त आश्विन प्रतिपदा में या द्वितीया में आरम्भ करके नवमी तक घोड़े का नीराजन नामक कर्म करें। उसमें उच्चैःश्रवा और रैवत की पूजा प्रतिमा में करनी चाहिए। प्रत्यक्ष घोड़े की पूजा और आरती भी करनी चाहिए। दोनों कर्म में उसकी पूजा और होम आदि के मन्त्र तथा विस्तृत-प्रयोग कौस्तुभ में है।

इदानीमश्ववन्तः प्राकृतजनास्तु विजयादशम्यामश्वांस्तोयेऽवगाह्य पुष्पमालाभिर्विभूष्याश्वशालायां प्रवेशयन्ति। तत्र—

गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च॥
प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धय त्वं तुरंगमान्।
रिपून्विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव॥

इति मन्त्रेण केवलाश्वपूजापि कर्तुमुचिता।

आज कल घोड़े वाले पुराने लोग तो विजयादशमी में घोड़े को जल में नहला कर पुष्प मालाओं से भूषित कर घोड़सार में प्रवेश कराते हैं। उसमें—गन्धर्वकुल में उत्पन्न तुम कुलदूषक

---

१. लोहाभिसारिकं कर्म = नीराजन से मिलता जुलता एक सैनिक-संस्कार। 'लोहाभिसारोऽस्त्रभृतां राज्ञां नीराजनाविधिः' इत्यमरः। इसकी पूजनादि की विधि ग्रन्थान्तर में द्रष्टव्य है।

नहीं होना। ब्रह्मा के सत्य वचन से चन्द्रमा और वरुण तथा अग्नि के अभाव से तुम घोड़ों को बढाओ। संग्राम में शत्रुओं को पराजित कर मालिक के साथ सुखी हो।' इस आशय के मन्त्र से केवल घोड़े की पूजा ही करना उचित है।

अथ पारणाविसर्जनयोः कालः

तत्र विसर्जनं दशम्यां कार्यम्। दिनद्वये दशमीसत्त्वे पूर्वदशम्यां श्रवणान्त्यपादयोगे तत्रैव विसर्जनम्। तत्र तद्योगाभावे तु परदशम्यामेव। परत्र दशम्यभावे पूर्वदशम्यां नक्षत्रयोगे सत्यसति वा कार्यम्। नक्षत्रयोगानुरोधेन क्रियमाणं विसर्जनमपराह्णेऽपि भवति। अन्यथा प्रातरेव तत्र मृदादिप्रतिमाया [1]विसर्जनपूर्वकं जलादौ त्यागः।

उसमें विसर्जन दशमी में करना चाहिए। दो दिन दशमी हो तो पहली दशमी में श्रवण के अन्त्य चरण से योग होने पर उसी में विसर्जन करे। उसमें उस योग के न रहने पर तो दूसरी दशमी में ही विसर्जन करे। दूसरे दिन दशमी न हो तो पहली दशमी में नक्षत्र योग रहे या न रहे तो भी विसर्जन करना चाहिए। नक्षत्रयोग के अनुरोध से किया जाने वाला विसर्जन अपराह्ण में भी होता है। नहीं तो प्रातःकाल ही मिट्टी आदि की प्रतिमा का विसर्जनपूर्वक जल आदि में त्याग होता है।

परंपरया पूजिताया धातुप्रतिमायास्तु 'घटादिस्थानादुत्तिष्ठ' इत्यादिमन्त्रैरुत्थापनमात्रं कार्यं न तु विसर्जनम्। यद्दिने विसर्जनं तत्रैव नियमत्यागस्यौचित्यात्। विसर्जनोत्तरं तद्दिने एव पारणं कार्यम्। अन्ये तु सत्यपि दशम्यां विसर्जनविधौ नवम्यामेव पारणं कार्यम्। 'नवम्यां पारणं कुर्यात्। दशम्यामभिषेकं च कृत्वा मूर्तिं विसर्जयेत्' इत्यादिवचनादित्याहुः।

परम्परा से पूजी हुई धातु की प्रतिमा का तो 'घटादिस्थानादुत्तिष्ठ' इत्यादि मन्त्रों से उत्थापन मात्र करना चाहिए, विसर्जन नहीं। जिस दिन विसर्जन हो उसी दिन नवरात्र के नियम का त्याग भी उचित है। अतः विसर्जन के बाद उसी दिन पारणा करनी चाहिए। अन्य लोग तो—दशमी में विसर्जन विधि के होते हुये भी नवमी में ही पारणा करे। नवमी में पारण और दशमी में अभिषेक करके मूर्ति का विसर्जन करे। इस आशय के वचन से नवमी में पारण करने को कहते हैं।

---

१. विसर्जनकाल में देवी की उत्तरपूजा करके पुष्प लेकर अंजलि बांधकर—'रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे। पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे॥ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥' इन मन्त्र से प्रार्थनापूर्वक पुष्पांजलि दे। पश्चात् अक्षत लेकर विसर्जन करे—'उत्तिष्ठ देवि चण्डेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च। कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह॥ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके। व्रज स्रोतोजलं वृद्ध्यै स्थीयतां च जले त्विह॥'

फिर देवी को उठाकर जल के निकट ले जाकर 'दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते। संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम्। रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम्॥' इन मन्त्रों को पढ़कर जल में प्रवाहित करे।

अत्रैवं व्यवस्था—प्रथमदिने स्वल्पाष्टम्या युक्ता नवमी द्वितीयदिने पारणपर्याप्तनवम्या युक्ता दशमी तत्परदिने श्रवणयुक्ता विसर्जनार्हा दशमी। तत्राष्टमीनवम्युपवासयोः प्रथमदिने सिद्धत्वादवशिष्टनवम्यां पारणमवशिष्टदशम्यां विसर्जनम्। यदा तु अवशिष्टनवमीदिने एव दशमी श्रवणयुक्ता विसर्जनार्हा तदा विसर्जनोत्तरं पारणम्। यदा पूर्वदिने षष्टिदण्डाष्टमी परदिनेऽष्टमीशेषयुता नवमी तत्परदिने नवमीशेषयुता दशमी तदा नवम्या युक्तदशम्यामेव विसर्जनोत्तरं पारणा। अथ नवमी षष्टिदण्डा द्वितीयदिने नवमीशेषयुक्ता दशमी तत्रापि नवम्या युक्तदशम्यामेव विसर्जनपारणे। यदा तु अष्टमीनवमीदशम्यस्तिस्रोऽपि तिथयः सूर्योदयमारभ्यास्तमयपर्यन्तमखण्डास्तत्तत्कृत्यपर्याप्तास्तदा दाक्षिणात्यानां नवम्यामेव पारणाचारान्नवम्यामेव पारणविसर्जने। येषां दशम्यामेवाचारस्तेषां तदुभयं दशम्यामेव।

यहाँ ऐसी व्यवस्था है—पहले दिन थोड़ी अष्टमी से युक्त नवमी हो, दूसरे दिन पारणा के योग्य नवमीयुक्त दशमी हो, दशमी के दूसरे दिन श्रवणयुक्ता विसर्जन के योग्य दशमी हो तो इसमें नवमी दसमी में उपवास पहले दिन सिद्ध है। अतः अवशिष्ट नवमी में पारण और अवशिष्ट दशमी में विसर्जन करे। जब अवशिष्ट नवमी के दिन ही दशमी श्रवणयोग वाली विसर्जन के योग्य रहे तब विसर्जन के बाद पारण करे। जब पहले दिन साठ घड़ी अष्टमी हो, दूसरे दिन शेष अष्टमीयुक्त नवमी हो और उसके दूसरे दिन नवमी-शेष-युक्त दशमी हो तब नवमीयुक्त दशमी में ही विसर्जन के बाद पारण करे। यदि नवमी साठ घड़ी हो और दूसरे दिन नवमी-युक्त शेष दशमी हो तो उसमें भी नवमीयुक्त दशमी में ही विसर्जन और पारण करे। जब अष्टमी नवमी और दशमी तीनों तिथियाँ सूर्योदय से सूर्यास्त तक अखण्ड हों और उस कर्म के लिए पर्याप्त समय हो तब दाक्षिणात्यों के लिए नवमी में ही पारणा के आचार से नवमी में ही पारणा और विसर्जन कर्तव्य है। जिन लोगों का दशमीमें ही विसर्जन और पारणा का आचार हो उन लोगों को पारण और विसर्जन दोनों दशमी में ही करना चाहिए।

अथ विजयादशमीनिर्णयः

सा परदिने एवापराह्णव्याप्तौ परा। दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्तौ दिनद्वयेपि श्रवणयोगे सत्यसति वा पूर्वा। एवं दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यभावेऽपि श्रवणयोगसत्त्वासत्त्वयोः पूर्वैव। दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यव्याप्त्योरेकतरदिने श्रवणयोगे यद्दिने श्रवणयोगः सैव ग्राह्या। एवमपराह्णैकदेशव्याप्तावूह्यम्। यदा पूर्वदिने एवापराह्णव्याप्तापरदिने च श्रवणयोगाभावः तदापि पूर्वैव[1]। यदा तु पूर्वदिने एवापराह्णव्यापिनी

---

१. दूसरे दिन श्रवणयोग के अभाव में विजयादशमी पूर्व दिन की ही ग्राह्य है। स्कन्दपुराणे—'दशम्यां तु नरैः सम्यक् पूजनीयाऽपराजिता। ऐशानीं दिशमाश्रित्य अपराह्णे प्रयत्नतः॥ या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्याऽपराजिता। क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः। नवमीशेषयुक्तायां दशम्यामपराजिता। ददाति विजयं देवी पूजिता जयवर्धिनी॥' शिवरहस्ये—'आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेत्ततः। एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम्॥' इति।

परदिने च मुहूर्तत्रयादिव्यापिनी अपराह्णात्पूर्वमेव समाप्ता परत्रैव श्रवणयोग-वती तदा [1]परैव। अपराह्णे दशम्यभावेऽपि 'यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः' इत्यादिसाकल्यवचनैः श्रवणयुक्ताया ग्राह्याया औदयिकस्वल्पदशम्याः कर्मकाले सत्त्वापादनात्।

विजया दशमी पर दिन ही अपराह्णव्यापिनी हो तो परा लेनी चाहिए। दो दिन में अपराह्ण में रहने वाली दशमी दोनों दिन श्रवणयोग के रहने या न रहने पर पूर्वा ग्राह्य है। इसी तरह दोनों दिन में अपराह्णव्याप्ति के अभाव में भी श्रवणयोग के रहने या न रहने पर पूर्वा ही ग्राह्य है। दोनों दिन में अपराह्णव्यापिनी और अपराह्ण में न रहने वाली दशमी को किसी एक दिन जिस दिन श्रवण से योग हो ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार अपराह्ण के एकदेश में दशमी के रहने पर कल्पना कर लें। जब पहले दिन ही अपराह्णव्यापिनी दशमी हो और दूसरे दिन श्रवणयोग न हो तब भी पूर्वा ही ग्राह्य है। जब पूर्व दिन में ही अपराह्णव्यापिनी दशमी हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त आदि में रहे और अपराह्ण के पहले ही समाप्त होती हो और दूसरे ही दिन श्रवणयोग वाली हो तब दूसरे ही दिन करना चाहिए। अपराह्ण में दशमी के न होने पर भी जिस तिथि में सूर्य नारायण उदय लें वह तिथि सम्पूर्ण दिन मानी जाती है। इस आशय के वचन से श्रवणयोग वाली दशमी के ग्राह्य होने से उदयकाल में थोड़ी भी दशमी रहे तो कर्मकाल में रहना सिद्ध होने से दूसरे दिन श्रवणयोग में करना चाहिए।

[2]सिन्धौ तु इदं परदिनेऽपराह्णकाले श्रवणसत्त्वे एव। श्रवणस्याप्यपराह्णा-त्पूर्वमेव समाप्तौ तु पूर्वैवेत्युक्तम्। युक्तं चैतत्। यदा परदिने एवापराह्णव्याप्तिः पूर्वदिने एवापराह्णात्परत्र सायाह्नादौ श्रवणयोगस्तदा तु परैव ग्राह्येति मम प्रतिभाति।

निर्णयसिन्धु में—तो यह दूसरे दिन अपराह्णकाल में श्रवण होने पर ही करे। श्रवण यदि अपराह्ण के पहले ही समाप्त हो तो पूर्वा ही में करे—ऐसा कहा है। यह ठीक भी है। जब दूसरे ही दिन अपराह्णव्यापिनी दशमी हो और पहले दिन अपराह्ण के बाद सायाह्न आदि में श्रवणनक्षत्र आदि का योग हो तब तो परा ही का ग्रहण करना मुझे ठीक जँचता है!

---

१. पूर्व दिन में श्रवणयोग का अभाव और परदिन में स्वल्प भी श्रवण का योग हो तो पर दिन वाली ही ग्राह्य है। हेमाद्रि में कश्यप—'उदये दशमी किंचित् सम्पूर्णैकादशी यदि। श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा॥ श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः। उल्लङ्घयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो नराः॥' ज्योतिर्निबन्ध में नारद—'ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्तः किञ्चिदुद्भिन्नतारकः। विजयो नाम कालोऽयं सर्वकार्यार्थसिद्धिदः। इषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत्। श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने॥ सूर्योदये यदा राजन् दृश्यते दशमी तिथिः। आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः॥' इति।

२. यहाँ निर्णयसिन्धुकार का निम्नलिखित अर्थ है—'अपराह्णो मुख्यः कर्मकालः, तत्रैव पूजाद्युक्तेः। प्रदोषो गौणः। तत्र दिनद्वयेऽपराह्णव्यापित्वे पूर्वा, प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात्। दिनद्वये प्रदोषव्यापित्वे परा, अपराह्णव्याप्तेराधिक्यात्। श्रवणस्तु रोहिणीवदप्रयोजकः। दिनद्वयेऽपराह्णास्पर्शे तु पूर्वा। तत्रापि परदिनेऽपराह्णे श्रवणसत्त्वे परैवेति दिक्।'

अथापराजितापूजनादि

अत्रापराजितापूजनं सीमोल्लङ्घनं शमीपूजनं देशान्तरयात्रार्थिनां प्रस्थानं च विहितम्। तत्पूजाप्रकारस्तु अपराह्णे ग्रामादीशान्यां दिशि गत्वा शुचिदेशे भुवमुपलिप्य चन्दनादिनाष्टदलमालिख्य 'मम कुटुम्बस्य क्षेमसिद्ध्यर्थम् अपराजितापूजनं करिष्ये' इति संकल्प्य मध्ये अपराजितायै नमः इत्यपराजितामावाह्य तद्दक्षिणे क्रियाशक्त्यै नम इति जयां वामतः उमायै नम इति विजयां चावाह्य अपराजितायै नमः जयायै नमः विजयायै नमः इति नाममन्त्रैः षोडशोपचारां पूजां कृत्वा प्रार्थयेत्—

इमां पूजां मया देवि यथाशक्ति निवेदिताम्।
रक्षार्थं तु समादाय व्रजस्व स्थानमुत्तमम्॥ इति।

अथ राज्ञः संकल्पे 'यात्रायां विजयसिद्ध्यर्थम्' इति विशेषः। पूजानमस्कारान्ते— हारेण तु विचित्रेण भास्वत्कनकमेखला।
अपराजिता भद्ररता करोतु विजयं मम॥

इत्यादिमन्त्रैर्विजयं प्रार्थ्य पूर्ववद्विसृजेदिति संक्षेपः।

इसी दशमी में अपराजिता की पूजा, सीमा का उल्लङ्घन, शमीपूजन और दूसरे देश में जाने वालों का प्रस्थान भी विहित है। अपराजिता के पूजा का प्रकार तो अपराह्न में ग्राम से ईशान दिशा में जाकर पवित्र स्थान में जमीन को लीप कर उसमें चन्दन आदि से अष्टदल बनाकर 'मेरे कुटुम्बसहित की क्षेम-सिद्धि के लिए मैं अपराजिता का पूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करके बीच में अपराजिता को नमस्कार है यह कह कर अपराजिता का आवाहन करके उससे दक्षिण दिशा में क्रिया शक्ति को नमस्कार है इससे जया का आवाहन और बायीं ओर उमा को नमस्कार है इससे विजया का आवाहन कर अपराजिता को नमस्कार है जया को नमस्कार है और विजया को नमस्कार है। इन नाम मंत्रों से षोडशोपचार पूजा करके प्रार्थना करे। हे देवि! मुझसे यथाशक्ति निवेदित की गयी इस पूजा को रक्षार्थ लेकर आप अपने उत्तम स्थान में जाइये। राजा की यात्रा के संकल्प में 'यात्रा में विजयसिद्धि के लिए' इतना विशेष जोड़ना चाहिए। पूजा और नमस्कार के अन्त में—विचित्र हार से चमकती हुई सोने की करधनी वाली कल्याणरत अपराजिता देवी मेरी विजय करें इस आशय के मंत्र से विजय की प्रार्थना करके पहले की तरह विसर्जन करे।

अथ शमीपूजनादि

ततः सर्वे जनाः ग्रामाद्बहिरीशानदिगवस्थितां शमीं गत्वा पूजयेयुः। सीमोल्लङ्घनं तु शमीपूजनात्पूर्वं पश्चाद्वा कार्यम्। राजा तु अश्वमारुह्य सह पुरोहितः सामात्यः शमीमूलं गत्वा वाहनादवरुह्य स्वस्तिवाचनपूर्वकं शमीं संपूज्य कार्योद्देशानमात्यैः सह संवदन्प्रदक्षिणां कुर्यात्।

इसके बाद सब लोग गाँव के बाहर ईशान दिशा में स्थित शमीवृक्ष के पास जाकर उसकी पूजा करें। सीमा का उल्लंघन तो शमी की पूजा के बाद या पहले करे। पूजा तो अपने मंत्री और पुरोहित के साथ घोड़े पर चढ़ कर शमी के पास जाकर सवारी से उत्तर कर स्वस्तिवाचनपूर्वक शमी की पूजा करके अपने कार्य के उद्देश्यों को मंत्रियों के साथ कहते हुए शमी की प्रदक्षिणा करे।

पूजाप्रकारस्तु 'मम दुष्कृतामङ्गलादिनिरासार्थं क्षेमार्थं यात्रायां विजयार्थं च शमीपूजां करिष्ये' शम्यलाभे 'अश्मन्तकवृक्षपूजां करिष्ये' इति संकल्पः। राजा तु शमीमूले दिक्पालपूजां वास्तुदेवतापूजां च कुर्यात्।

अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च।
दुःखप्रणाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम्॥

इति पूजामन्त्रः। पूजान्ते—

शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका।
धरित्र्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी॥
करिष्यमाणा यात्रायां यथाकालं सुखं मया।
तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते॥ इति प्रार्थयेत्।

अश्मन्तकपूजने—

अश्मन्तक महावृक्ष महादोषनिवारण।
इष्टानां दर्शनं देहि शत्रूणां च विनाशनम्॥ इति प्रार्थयेत्।

राजा शत्रोर्मूर्तिंकृत्वा शस्त्रेण विध्येत्। प्राकृताः शमीशाखाश्छित्त्वा आनयन्ति, तन्निर्मूलम्।

गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां [1]मृदम्।
गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत्स्वगृहं प्रति॥
ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः सह।
नीराज्यमानः पुण्याभिर्युवतीभिः सुमङ्गलम्॥ इति।

पूजा की विधि तो 'मेरे पाप अमंगल आदि के निवारण, कल्याण और यात्रा में विजय के लिए शमी की पूजा करूंगा' ऐसा संकल्प करे। शमी के न मिलने पर 'अश्मन्तक वृक्ष की पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करे। राजा तो शमी के मूल में दिक्पाल और वास्तुदेवता की पूजा भी करे। अमंगलों और पाप का शमन तथा दुःख का नाश करने वाली शुभ धन्य शमी के शरण में प्रपन्न हूँ। इस आशय के मंत्र से पूजा करे। पूजा के अन्त में–शमी पाप को शान्त करती है, शमी लाल कांटेवाली

---

१. पूजा समाप्ति के बाद चलते समय शमीवृक्ष के जड़ की मिट्टी और अक्षत घर पर लाना चाहिये (और कोष में रख देना चाहिये) शमीवृक्ष रक्तपुष्प और कंटकयुक्त होता है। ज्योतिष में शमीवृक्ष को पूजा के अनन्तर खंजरीट दर्शन का फल—'कृत्वा नीराजनं राजा बलवृद्ध्यै यथाक्रमम्। शोभनं खञ्जनं पश्येज्जलगोगोष्ठसन्निधौ॥'

खञ्जरीट-दर्शन का मन्त्र—'नीलग्रीव शुभग्रीव सर्वकामफलप्रद। पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोऽस्तु ते॥' तिथितत्त्व में दर्शन का फल—'अब्जेषु गोषु गजवाजिमहोरगेषु राज्यप्रदः कुशकृदः शुचिशाद्वलेषु। भस्मास्थिकेशनखलोमतुषेषु दृष्टो दुःखं ददाति बहुशः खलु खञ्जरीटः॥ वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयं याम्यामग्निभयं सुरद्विषकलिर्व्भिः समुद्रालये। वायव्यां वरवस्त्रगन्ध-सलिलं दिव्याङ्गना चोत्तरे ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने॥' इति।

और अर्जुन के बाणों को धारण करने वाली एवं रामचन्द्र से प्रिय बोलने वाली हे रामपूजिते ! मेरी जो यात्रा होने वाली है उसमें यथासमय सुखदायक हो उस यात्रा को तुम निर्विघ्न करने वाली हो इस आशय के मंत्र से प्रार्थना करे। जब शमीवृक्ष न हो और अश्मन्तकवृक्ष का पूजन करना हो तो महादोष के निवारण करने वाले हे महावृक्ष अश्मन्तक! शत्रुओं को विनाश करो। अभीष्टजनों का दर्शन दो। इस आशय के मंत्र से प्रार्थना करे। राजा अपने शत्रु की मूर्ति बनाकर शस्त्र से वेधे। साधारण जन शमी की शाखा को तोड़ कर लाते हैं यह निर्मूल है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। लिखा है कि अक्षत के सहित गीली शमी के जड़ की मिट्टी को लेकर गाने बजाने के शब्दों के साथ अपने घर लावे। इसके बाद भूषण वस्त्र आदि को अपने आदमियों के साथ धारण करे और युवती स्त्रियों से मंगलदायक आरती करावे।

अथ देशान्तरं जिगमिषोर्यात्राकालः

अत्र देशान्तरं जिगमिषुभिर्विजयमुहूर्ते चन्द्राद्यानुकूल्याभावेऽपि प्रयाणं कार्यम्। तत्र विजयमुहूर्तो द्विविधः—

ईषत्संध्यामतिक्रम्य किंचिदुद्भिन्नतारकः।
विजयो नाम कालोयं सर्वकार्यार्थसाधकः ॥ इत्येकः।
एकादशो मुहूर्तोऽपि विजयः परिकीर्तितः।
तस्मिन्सर्वैर्विधातव्या यात्रा विजयकांक्षिभिः ॥ इत्यपरः।

उक्तद्वयान्यतरमुहूर्ते दशमीयुक्ते प्रस्थानं कार्यं न त्वेकादशीयुक्ते।

आश्वयुक्शुक्लदशमी विजयाख्याखिले शुभा।
प्रयाणे तु विशेषेण किं पुनः श्रवणान्विता ॥

इति ज्योतिर्ग्रन्थोक्तेरन्यान्यपि कर्माणि मासविशेषनिरपेक्षाण्यत्र चन्द्राद्यानुकूल्याभावेप्यनुष्ठेयानि। मासविशेषे विहितानि तु चूडाकर्मविष्ण्वादिदेवताप्रतिष्ठादीनि न कुर्यात्। राज्ञां पट्टाभिषेके नवमीविद्धा दशमी श्रवणयुतापि न ग्राह्या किन्त्वौदयिक्येव ग्राह्या।

इस दिन दूसरे देश में जाने की इच्छा करने वालों को विजय मुहूर्त में चन्द्रमा आदि के अनुकूल न होने पर भी यात्रा करनी चाहिए। इसमें विजय मुहूर्त दो प्रकार का होता है। पहला—कुछ सन्ध्याकाल के बाद एकाध तारे निकल आये हों वही काल सब कार्य के लिए साधक विजय नाम का है। दूसरा—ग्यारहवाँ मुहूर्त भी विजय कहलाता है। उसमें विजय चाहने वाले यात्रा करें। इन दोनों में से किसी एक में दशमी के रहते ही प्रस्थान करे। एकादशी में नहीं। आश्विन शुक्लपक्ष की दशमी विजय नाम की सम्पूर्ण कार्य में शुभ करने वाली है। विशेषतः यात्रा में श्रवण से युक्त हो तो क्या पूछना है। इस ज्योतिष ग्रन्थ की उक्ति से मास विशेष की अपेक्षा नहीं करने वाले अन्यान्य कार्य चन्द्रमा आदि के अनुकूल न होने पर भी करना चाहिए। मास विशेष में विहित तो चूडाकर्म और विष्णु आदि देवता की प्रतिष्ठा आदि कर्म न करे। राजाओं के पट्टाभिषेक में नवमीविद्धा दशमी श्रवण के योग रहते भी नहीं ग्राह्य है किन्तु उदयकाल में रहने वाली दशमी ही ग्राह्य है।

अथ कार्तिकस्नानविधिः

आश्विनस्य शुक्लां दशमीमेकादशीं[1] पूर्णमासीं वारभ्य मुहूर्तावशिष्टायां रात्रौ तीर्थादौ गत्वा प्रत्यहं मासपर्यन्तं कार्तिकस्नानं कार्यम्। तत्प्रकारः—विष्णुं स्मृत्वा देशकालौ संकीर्त्य,

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ इत्यर्घ्यं दत्वा,
कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥
ध्यात्वाहं त्वां च देवेश जलेस्मिन्स्नातुमुद्यतः ।
तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु ॥

इति मन्त्राभ्यां स्नात्वा पुनरर्घ्यं द्विर्दद्यात्। तत्र मन्त्रौ—

नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥
व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥

आश्विनशुक्ल दशमी एकादशी या पूर्णमासी से आरम्भ करके एक मुहूर्त रात रहने पर तीर्थ आदि में जाकर प्रति दिन महीने भर तक कार्तिक स्नान करे। इसकी विधि यह है—विष्णु को स्मरण करके देश और काल को कहकर हे कमलनाभ ! जल में सोने वाले हे हृषीकेश ! भगवान् मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण कीजिये। आप को नमस्कार है। इस आशय के मंत्र से अर्घ्य दे कर लक्ष्मी के सहित हे दामोदर ! हे देवेश ! आप की प्रसन्नता के लिए मैं कार्तिक में प्रातःस्नान करूँगा आप का ध्यान करके हे देवेश ! इस जल में स्नान करने को तत्पर हूँ। आपके प्रसाद से हे दामोदर ! मेरे पाप नष्ट हों। इस आशय के दोनों मन्त्रों से स्नान करके फिर दो बार अर्घ्य दे। उसके दो मंत्रों के आशय हैं—हे कृष्ण ! नित्य नैमितिक में पापनाशक कार्तिक में मेरा दिया हुआ अर्घ्य राधा के सहित आप ग्रहण करें। कार्तिकमास में विधिपूर्वक नहाये हुए मुझ व्रत वाले का दिया हुआ अर्घ्य राधा के सहित स्वीकार करें।

कुरुक्षेत्रगङ्गापुष्करादितीर्थविशेषेण फलविशेषः। अथान्योऽपि विशेषः—

कार्तिकं सकल मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
जपन् हविष्यभुग्दान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जले विशेत् ।
नाभिमात्रे जले तिष्ठन्व्रती स्नायाद्यथाविधि ॥

---

१. पद्मपुराणे—'आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत्। कार्तिकस्य व्रतानीह तस्यां वै प्रारभेत् सुधीः ॥' विष्णुरहस्ये—'प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामाश्विनस्य तु मानवः। प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत यावत्कार्तिकभास्करः ॥' आदित्यपुराणे—'पूर्णं आश्वयुजे मासि पौर्णमास्यां समाहितः।' काशीखण्डे—'वाराणस्यां पंचनदे त्र्यहं स्नातास्तु कार्तिके। अमी ते पुण्यवपुषः पुण्यभाजोऽतिनिर्मलाः ॥' इति।

कुरुक्षेत्र, गंगा और पुष्कर आदि तीर्थों में कार्तिकस्नान करने से विशेष फल की प्राप्ति होती है। और भी विशेषता है। सम्पूर्ण कार्तिकमास में जितेन्द्रिय होकर नित्यस्नान, जप, हविष्य-भोजन और इन्द्रियों का दमन करने वाला सब पापों से छूट जाता है। भागीरथी गंगा, विष्णु, शिव और सूर्य को स्मरण करके नाभि-पर्यन्त जल में प्रवेश करे। उसीमें खड़े-खड़े यथाविधि स्नान करे।

इदं कार्तिकस्नानं प्रातःस्नानं प्रातःसंध्यां च कृत्वा कार्यम्। ताभ्यां विनेतरकर्मानधिकारात्। यद्यपि प्रातःसंध्यायाः सूर्योदये समाप्तिस्तथाप्यत्र वचनबलादुदयात्पूर्वं संध्यां समाप्य कार्तिकस्नानं कार्यमिति निर्णयसिन्धावुक्तम्। नैवं ग्रन्थान्तरे दृश्यते। एवं मासस्नानाशक्तौ त्र्यहं स्नायात्।

यह कार्तिकस्नान प्रातःस्नान और प्रातःसंध्या करके ही करना चाहिये, क्योंकि स्नान सन्ध्या के बिना दूसरे कर्म में अधिकार नहीं होता। यद्यपि प्रातःसंध्या की समाप्ति सूर्योदय में होती है तथापि वचन बल से उदय के पूर्व ही संध्या समाप्त करके, कार्तिकस्नान करना चाहिए, यह निर्णयसिन्धु में कहा है। ऐसा दूसरे ग्रन्थों में नहीं देखा जाता है। पूरे महीने भर स्नान में असमर्थ को तीन दिन स्नान करना चाहिए।

अथ कार्तिकव्रतानि

अन्येषामपि कार्तिकमासव्रतानामत्रैवारम्भः। तानि यथा—

तुलसीदललक्षेण कार्तिके योऽर्चयेद्धरिम्।
पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम्॥

तुलसीमञ्जरीभिर्हरिहरार्चने मुक्तिः फलम्। रोपणपालनस्पर्शैः पापक्षयः। तुलसीछायायां श्राद्धात्पितृतृप्तिः। तुलसीशोभितगृहे तीर्थरूपे यमकिंकरा नायान्ति इत्यादितुलसीमाहात्म्यम्। एवं धात्रीमाहात्म्यमपि।

कार्तिके धात्रिवृक्षाधश्चित्रान्नैस्तोषयेद्धरिम्।
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या स्वयं भुञ्जीत[1] बन्धुभिः॥ १॥

धात्रीछायासु श्राद्धं धात्रीपत्रैः फलैश्च हरिपूजनं च महाफलम्। देवर्षि-सर्वयज्ञतीर्थानां धात्रीवृक्षे निवासोक्तेः।

अन्य कार्तिकमास के व्रतों का आरम्भ इसी में करना चाहिए। वे व्रत ये हैं—कार्तिक में एक लाख तुलसीदल से जो भगवान् की पूजा करते हैं, वे पत्ते-पत्ते में मोती चढ़ाने का फल पाते हैं। तुलसी की मञ्जरी से विष्णु और शंकर की पूजा का फल मुक्ति की प्राप्ति है। तुलसी के रोपण पालन और स्पर्श से पाप का क्षय होता है। तुलसी की छाया में श्राद्ध करने से पितरों की तृप्ति होती है। तुलसी से शोभित तीर्थ रूप गृह में यमराज के दूत नहीं आते इत्यादि तुलसी का माहात्म्य है। इसी तरह आंवले का माहात्म्य भी है। कार्तिक में आंवले के पेड़ के नीचे अनेक अन्नों से भक्तिपूर्वक

---

१. कार्तिकमाहात्म्ये—'धात्रीच्छायां समाश्रित्य भुङ्क्ते योऽन्नं हि मानवः। ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु वार्षिकं किल्विषं हरेत्॥' स्कन्दपुराणे—'धात्रीच्छाये तु यः कुर्यात् पिण्डदानं महामुने। मुक्तिं प्रयान्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य तु॥ धात्रीफलविलिप्ताङ्गो धात्रीफलविभूषितः। धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत्॥ धात्रीच्छायां समाश्रित्य योऽर्चयेच्चक्रधारिणम्। पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥' इति।

ब्राह्मणों को भोजन करावे और बन्धु बान्धव सहित स्वयं भोजन करे। इससे भगवान् को तुष्ट करे। आंवले की छाया में श्राद्ध, आंवले के पत्तों और फलों से भगवान् का पूजन, महाफल देने वाला है। आंवले के वृक्ष में देवता, ऋषि, सभी यज्ञ और तीर्थों का निवास है।

अत्रैव हरिजागरविधिः

जागरं कार्तिके मासि यः कुर्यादरुणोदये।
दामोदराग्रे सेनानीर्गोसहस्रफलं लभेत्॥
शिवविष्णुगृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि।
कुर्यादश्वत्थमूलेषु तुलसीनां वनेष्वपि॥
विष्णुनामप्रबन्धानि यो गायेद्विष्णुसन्निधौ।
गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोनि मानवः॥
वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत्।
सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात्॥
सर्वमेतल्लभेत्पुण्यं तेषां तु द्रव्यदः पुमान्।
अर्चनाद्दर्शनाद्वापि तत्षडंशमवाप्नुयात्॥ इति कौस्तुभे।

कार्तिक के महीने में भगवान् के आगे जो अरुणोदय में जागरण करता है वह हजार गोदान का फल पाता है। शिवमन्दिर और विष्णुमन्दिर के न होने पर सब देवताओं के मन्दिर में भी पीपल के जड़ों, तुलसी के वनों और विष्णु के निकट में विष्णु के नाम और उनकी कथाओं को जो गाता है वह मनुष्य हजार गोदान का फल पाता है। पूर्वोक्त देवताओं के सामने बाजा बजाने वाला भी वाजपेययज्ञ का फल पाता है। नाचने वाला सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान का फल पाता है। यह सम्पूर्ण फल वह पाता है जो उनको द्रव्य देता है। पूजन और दर्शन से भी छठा अंश पाता है, ऐसा कौस्तुभ में लिखा है।

सर्वाभावे ब्राह्मणानां विष्णुभक्तानां वाश्वत्थवटयोर्वा सेवने कुर्यादिति तत्रैव।

सरोरुहाणि[1] तुलसीमालतीमुनिपुष्पकम्।
कार्तिके विहितान्येवं दीपदानं च पञ्चमम्॥

कार्तिके मासोपवासो वानप्रस्थयतिविधवाभिः कार्यः। गृहस्थैर्न कार्यः।

कृच्छ्रं वाप्यतिकृच्छ्रं वा प्राजापत्यमथापि वा।
एकरात्रं व्रतं कुर्यात्त्रिरात्रव्रतमेव वा॥

---

१. पद्मपुराणे—'कार्तिके नार्चितो यैस्तु कमलैः कमलेक्षणः। जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे॥' 'तुलसीदललक्षेण कार्तिके योऽर्चयेद्धरिम्। पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम्॥' कार्तिकमाहात्म्ये—'मालतीमालया विष्णुः केतक्या चैव पूजितः। समाः सहस्रं सुप्रीतो भवेत्तु मधुसूदनः॥' नृसिंहपुराणे—'अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेच्च जनार्दनम्। दर्शनात्तस्य देवर्षेर्नरकं नाश्नुते नरः॥ विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम्। कार्तिके योऽर्चयेद् भक्त्या वाजपेयफलं लभेत्॥' पुष्करपुराणे—'तुलायां तिलतैलेन सायंकाले समागते। आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं हरिं प्रति॥ महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसम्पदम्।' नारदीये—'कार्तिके विष्णुमूर्त्यग्रे दीपदानाद्दिवं व्रजेत्।' इति।

शाकाहारं पयोहारं फलाहारमथापि वा ।
चरेद्यवान्नाहारं वा संप्राप्ते कार्तिके व्रती ॥

कृच्छ्र न करने पर विष्णुभक्त ब्राह्मणों की अथवा वटवृक्ष की सेवा करे, यह भी वहीं लिखा है कार्तिकमास में भगवान् पर कमल, तुलसी, मालती और अगस्त के पुष्प चढ़ाने चाहिए। इसी प्रकार दीपदान भी करना चाहिए। कार्तिक में एक महीने का उपवास वानप्रस्थ संन्यासी और विधवाओं का कर्तव्य है। गृहस्थ को मासोपवास नहीं करना चाहिए। कार्तिक में व्रत करने वाले कृच्छ्र व्रत करें या अतिकृच्छ्र अथवा प्राजापत्यव्रत करें। एक रात या तीन रात का व्रत करे। साग का आहार करे, दूध अथवा फल या जव का आहार करे।

अथ कार्तिके वर्ज्यानि

पलाण्डुलशुनहिङ्गुच्छत्राकगृञ्जनमूलकालाबुशिग्रुवृन्ताककूष्माण्डबृहतीफलकलिङ्गकपित्थतैललवणशाकद्विपाचितान्नपर्युषितान्नदग्धान्नानि माषमुद्गमसूरचणककुलित्थनिष्पावाढक्यादिद्विदलानि च वर्जयेत्। सप्तम्यां धात्रीफलं तिलाश्चाष्टम्यां नारिकेरं रविवारे[1] धात्रीफलं सर्वदा वर्ज्यम्।

प्याज, लहसुन, हींग, छत्राक, गृञ्जन, मूली, तुमड़ी लौकी, सहिजन, बैगन, कूष्माण्ड, बृहती-फल, कलिंग, कैत, तेल, नमक, साग, दो बार का पकाया अन्न, बासी अन्न, जले हुए अन्न, उड़द, मसूर, चना, कुर्थी और दाल का वर्जन करे। सप्तमी में आँवला, अष्टमी में तिल और नारीयल तथा रविवार में आंवले का फल सदा त्यागना चाहिए।

अथ कार्तिकव्रते दानानि

कांस्यपात्रे भोजनवर्जनव्रते कांस्यपात्रं घृतपूर्णं दद्यात्। मधुत्यागे घृतपायसशर्करादानं समाप्तौ कार्यम्। तैलत्यागे तिलदानम्। कार्तिके मौनभोजी सतिलां घण्टां दद्यात्। स्वर्णयुतानि माषयुतानि त्रिंशत्कूष्माण्डान्यत्र मासे दद्यात्। कार्तिके कांस्यभोजी कृमिभुक्। फलवर्जने फलं रसत्यागे रसः धान्यत्यागे धान्यानि च देयानि सर्वत्र गोदानं वा।

एकतः सर्वदानानि दीपदानं तथैकतः ।
कार्तिके दीपदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

कांसे के पात्र में भोजन न करने के व्रत में कांसे के पात्र को घीसे भर कर दान करे। मधु के त्याग में घी, खीर और शक्कर का दान समाप्ति में करना चाहिए। तेल के त्याग में तिलदान करना चाहिए। कार्तिक में मौन भोजन करने वाला तेल और घंटा का दान करे। सोने से युक्त और उदड़ से युक्त तीस कूष्माण्ड इस माह में दान करे। कार्तिक में कांसे के पात्र में भोजन करने वाला कीड़ों का भोजन करने वाला होता है। फल का वर्जन करने वाला फल, रस का त्याग करने वाला रस और धान्य का त्याग करने वाला धान्य का दान करे अथवा सर्वत्र गोदान करे। एक तरफ सब दान और एक तरफ दीपदान है। कार्तिक में दीपदान की सोलहवीं कला भी दूसरे दान नहीं कर सकते।

---

१. पद्मपुराणे—'क्रमात् कूष्माण्डबृहतीं तरणीं मूलकं तथा। श्रीफलं च कलिङ्गं च फलं धात्रीभवं तथा॥ नारिकेलमलाबुं च पटोलं बदरीफलम्। चर्मवृन्ताकवल्लीशाकं तुलसिजं तथा॥ शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु। धात्रीफलं रवौ तद्वद् वर्जयेत् सर्वदा व्रती॥' इति।

एतावद्व्रतासंभवे चातुर्मास्यव्रतासंभवे वा कार्तिके किंचिद् व्रतमवश्यं कार्यम् ।

अव्रतः कार्तिको येषां गतो मूढधियामिह ।
तेषां पुण्यस्य लेशोऽपि न भवेत्सूकरात्मनाम् ॥ इत्युक्तेः ।

शालग्रामादिदेवताग्रे स्वस्तिकमण्डलादिकं रङ्गवल्ल्यादिना करोति स स्वर्गादिफलं भुक्त्वा सप्तजन्मसु वैधव्यं नाप्नोति ।

इतने व्रतों के या चातुर्मास्यव्रत के न करने पर कार्तिक में कोई व्रत अवश्य करना चाहिए। जिन मूर्खों का कार्तिकमास बिना व्रत का बीतता है उन सूकरात्माओं को पुण्य का लेश भी नहीं होता। शालग्राम आदि देवता के आगे स्वस्तिकमण्डल आदि को रंग भरके जो स्त्री रखती है वह स्वर्ग आदि का फल भोग कर सात जन्म तक विधवा नहीं होती।

अथ कार्तिके पुराणादिश्रवणम्

कार्तिके [1]पुराणेतिहासश्रवणारम्भसमाप्ती विहिते । तत्प्रकारस्तु:—

ब्राह्मणं वाचकं कुर्यान्नान्यवर्णजमादरात् ।
श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥

---

१. कार्तिक में अष्टादशपुराण, महाभारत और वाल्मीकीयरामायण आदि इतिहास का श्रवण करे। वाचस्पत्युक्त अष्टादश-पुराण—'ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा। तथाऽन्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥ आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्य नवमं तथा। दशमं ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशं तथा ॥ वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चात्र त्रयोदशम्। चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा ॥ मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डमष्टादशं तथा।' इति।

प्रसङ्गतः प्रसिद्ध और प्रचलित होने से श्रीमद्भागवत के सप्ताहपारायण का विश्रामस्थल—'आद्ये हिरण्याक्षवधः द्वितीये भरतावधि। तृतीये त्वब्धिमथनं चतुर्थे कृष्णजन्म च ॥ पञ्चमे रुक्मिणीग्राहं षष्ठे चोद्धववादकम्। सप्तमेऽह्नि समाप्तिः स्यात्सप्ताह मुनिरब्रवीत् ॥' इसके अनुसार प्रतिदिन की अध्याय-संख्या—प्रथम दिन ४० अध्याय, द्वितीय दिन ६० अ०, तृ० दि० ५४ अ०, च० दि० ४२ अ०, पं० दि० ५० अ०, ष० दि० ४४ अ०, स० दि० ३६ अ०।

कौशिकसंहिता में सप्ताह का प्रकारान्तर—'मनुकर्दमसंवादपर्यन्तं प्रथमेऽहनि। ऋषभध्यानपर्यन्तं द्वितीये दिवसे वदेत् ॥ तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्धपूरणम्। कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थेऽहनि वाचयेत् ॥ रुक्मिण्युद्वाहपर्यन्तं पञ्चमेऽह्नि वदेत् सुधीः। श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेऽह्नि वाचयेद् ध्रुवम् ॥ सप्तमे दिवसे कुर्याद् श्रीभागवतपूरणम्।' इसके अनुसार अध्याय संख्या—प्र० दि० ५० अ०, द्वि० दि० ४९ अ०, तृ० दि० ५४ अ०, च० दि० ५१ अ०, पं० दि० ५१ अ०, ष० दि० ५० अ०, स० दि० ३१ अ०।

स्कन्दपुराणानुसार पाठ का विरामस्थल—प्र० दि० आरम्भ से तृतीयस्कन्ध के १९ अ० पर्यन्त, द्वि० दि० पञ्चमस्कन्ध के १५ अ० पर्यन्त, तृ० दि० अष्टमस्कन्ध के ९ अ० पर्यन्त, च० दि० दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के ३ अ० पर्यन्त, पं० दि० दशमस्कन्ध के ५३ अ० पर्यन्त, ष० दि० एकादशस्कन्ध के ७ अ० पर्यन्त और स० दि० द्वादशस्कन्ध के समाप्तिपर्यन्त। विशेष 'कल्याण' के भागवताङ्क में देखें। पद्मपुराण में सप्ताहश्रवण का फल—'मनसश्चाजयाद्रोगात् पुंसां चैवायुषःक्षयात्। कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥' इति।

विस्पष्टमद्रुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा ।
कलास्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥
ब्राह्मणादिषु सर्वेषु ग्रन्थार्थं चार्पयेन्नृप ।
य एवं वाचयेद्राजन्स विप्रो व्यास उच्यते ॥
समाप्तेषु पुराणेषु शक्त्या तं तर्पयेन्नृपः ।
वाचकः पूजितो येन प्रसन्नास्तस्य देवताः ॥
श्राद्धे यस्य द्विजो भुङ्क्ते वाचकः श्रद्धयान्वितः ।
भवन्ति पितरस्तस्य तृप्ता वर्षशतं नृप ॥ इति ।

कार्तिक में पुराण-इतिहास-श्रवण का आरम्भ और समाप्ति विहित है। उसका यह प्रकार है। आदर पूर्वक ब्राह्मण को कथावाचक नियत करे। अन्य वर्ण को कथावाचक न बनावे। ब्राह्मण को आगे करके चारों वर्णों को पुराण इतिहास सुनावे। कथावाचक स्पष्ट और धीरे-धीरे पद अक्षरको कहे। कला और स्वर से युक्त रस भाव के सहित कथा कहे। ब्राह्मण आदि सब वर्णों को ग्रन्थ का अर्थ अर्पण करे। जो इस प्रकार कथा बाचे हे राजन्! वही ब्राह्मण व्यास कहलाता है। पुराणों के समाप्त होने पर राजा व्यास को शक्ति के अनुसार खुश करे। कथावाचक को पूजा से जो सन्तुष्ट करता है, उस पर सब देवता प्रसन्न होते हैं। जिसके यहाँ श्राद्ध में कथावाचक ब्राह्मण श्रद्धा से भोजन करता है उसके पितृगण सौ वर्ष तक तृप्त होते हैं।

कार्तिकस्नानकालेऽभिलाषाष्टकं[1] काशीखण्डोक्तं पुत्रकामेन पठितव्यम्। अत्रैव दुग्धव्रतं समर्प्य दुग्धदानं कृत्वा द्विदलव्रतं[2] संकल्पयेत्। अत्रोत्पत्तौ येषां दलद्वयं दृश्यते ते वर्जनीया इत्येके। अन्ये त्वेवं लक्षणायां वचनाभावात्स्वरूपतो येषां द्विदलं दृश्यते ते वर्ज्या न तु अन्येनापि पत्रपुष्पादिकमित्याहुः। एवमन्यान्यपि ताम्बूल-केशकर्तनादिवर्जनरूपाणि व्रतानि ज्ञेयानि।

वाल्मीकीयरामायण का नवाह्पारायण—'उद्योगं रामराज्यस्य भरतोद्योगमेव च। मारीचस्य वधं यावत् सुग्रीवपुरवेशनम्॥ लक्ष्मणस्य ततो यावत् त्रिजटास्वप्नदर्शनम्। रावणस्य ततो यात्रा जयार्थं देवसत्तमु॥ समुद्रतरणं यावत्त्रिकुम्भवधमेव च। ततः पूर्णकथां कुर्यान्नवमेऽहनि सर्वदा॥' इसके अनुसार प्रथम दिन सर्गसंख्या ८२, आरम्भ से अयोध्याकाण्ड के ५ सर्गपर्यन्त। द्वि० दि० सर्ग संख्या ७७, अयोध्याकाण्ड के ८२ सर्गपर्यन्त। तृ० दि० सर्गसंख्या ८१, अरण्यकाण्ड के ४४ सर्गपर्यन्त। च० दि० सर्गसंख्या ७२, किष्किन्धाकाण्ड के ३१ सर्गपर्यन्त। पं० दि० सर्गसंख्या ६३, सुन्दरकाण्ड के २७ सर्गपर्यन्त। ष० दि० सर्गसंख्या ६३, लंकाकाण्ड के २२ सर्गपर्यन्त। स० दि० सर्गसंख्या ५५, लंकाकाण्ड के ७७ सर्गपर्यन्त। अ० दि० सर्गसंख्या ७७, उत्तरकाण्ड के २६ सर्गपर्यन्त। न० दि० सर्गसंख्या ८५, उत्तरकाण्ड के समाप्ति पर्यन्त।

स्वयं श्रीवाल्मीकि ने प्रतिदिन बीस बीस सर्ग के पाठ करने पर पच्चीस दिन में सुखसाध्य पाठ का प्रतिपादन किया है। विशेष अन्यत्र देखें।

१. काशीखण्डोक्त अभिलाषाष्टकस्तोत्र तृतीयपरिच्छेद के पूर्वार्द्ध में पुत्रप्राप्त्यर्थ विधानान्तर की सुधाविवृति में देखें।

२. स्कन्दपुराणे—'कार्तिके वर्जयेत्तद्द् द्विदलं बहुबीजकम्। माषमुद्गमसूराश्च चणकाश्च कुलित्थकाः॥ निष्पावा राजमाषाश्च आढक्यो द्विदलं स्मृतम्। नूतनान्यपि जीर्णानि सर्वाण्येतानि वर्जयेत्॥' इति।

कार्तिकस्नान के समय में काशीखण्ड का अभिलाषाष्टकस्तोत्र पुत्र चाहनेवाले को पढ़ना चाहिए। इसीमें दुग्धव्रत को समर्पण कर दूध का दान करके द्विदल (दाल) व्रत का संकल्प करे। कोई कहते हैं कि पैदा होने पर जिस अन्न के दो दल दिखाई पड़ते हैं उसी दल का त्याग करे। अन्य लोग तो इस प्रकार के वचन के न मिलने से स्वरूप से हो जिनके दो दल दिखाई देते हों उन्हीं का त्याग करना चाहिए, अन्य पत्र पुष्प आदि का त्याग नहीं करे, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार और भी पान, बालकटाना आदि वर्जन रूप व्रतों को जानना चाहिए।

अथाकाशदीपदानम्

अत्राकाशदीप उक्तः। सूर्यास्ते गृहाददूरे[1] पुरुषप्रमाणयज्ञियकाष्ठं भूमौ निखन्य तस्य मूर्ध्नि अष्टदलाद्याकृतिनिर्मिते दीपयन्त्रमध्ये मुख्यदीपं समन्ततोऽष्टाविति संस्थाप्य निवेदयेत्—

दामोदराय नभसि तुलायां दोलया सह।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे॥ इति मन्त्रः।

एवं मासमाकाशदीपदानान्महाश्रीप्राप्तिः।

कार्तिक में आकाशदीप कहा है। घर के समीप सूर्यास्त होने पर मनुष्य के नाप का यज्ञ सम्बन्धी काष्ठ को जमीन में गाड़ के उसके शिर पर आठ दल की आकृति बने हुए दीपयन्त्र के बीच में मुख्य दीप के चारो तरफ से आठ दीप रख कर तुला में झूले के साथ दामोदर भगवान् के लिए आकाश में दीप देता हूँ भगवान् अनन्त को नमस्कार है। इस आशय के मन्त्र से दीप निवेदन करे। इस प्रकार महीने भर आकाश-दीप देने से महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

अथ कोजागरव्रतम्

आश्विनपौर्णमास्यां[2] कोजागरव्रतम्। सा पूर्वत्रैव निशीथव्याप्तौ पूर्वा। उत्तरदिने एव दिनद्वयेऽपि वा निशीथव्याप्तौ दिनद्वये निशीथास्पर्शे वा उत्तरैव। केचित्पूर्वदिने निशीथव्याप्तिरेव परदिने प्रदोषव्याप्तिरेव तदा परेत्याहुः।

आश्विन पूर्णिमा में कोजागरव्रत होता है। वह पूर्णिमा पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो तो पूर्वा में करे। दूसरे दिन ही या दो दिन में अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो या दोनों दिन में अर्द्ध-रात्रि का स्पर्श न होने पर परा का ग्रहण करे। कुछ लोग—पहले दिन आधी रात में पूर्णिमा हो और दूसरे दिन प्रदोष में पूर्णिमा हो तब परा पूर्णिमा लेनी चाहिये—ऐसा कहते हैं।

अत्र लक्ष्मीन्द्रयोः पूजनं जागरणमक्षक्रीडा च विहिता। तत्र पद्मासनस्थां लक्ष्मीं ध्यात्वाऽक्षतपुञ्जे ॐलक्ष्म्यै नम इत्यावाहनादिषोडशोपचारैः संपूज्य,

---

१. आदित्यपुराणे—'दिवाकरेऽस्ताचलमौलिभूते गृहाददूरे पुरुषप्रमाणम्। यूपाकृतिं यज्ञियवृक्षदारुमारोप्य भूमावथ तस्य मूर्ध्नि। यवाङ्गुलच्छिद्रयुतास्तु मध्ये द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकास्तु। कृत्वा चतस्रोऽष्टदलाकृतीस्तु याभिर्भवेदष्टदिशानुसारो। तत्कर्णिकायां तु महाप्रकाशो दीपः प्रदेयो दलगास्तथाऽष्टौ। निवेद्य धर्माय हराय भूम्यै दामोदरायाप्यथ धर्मराज॥ प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पितृभ्यः प्रेतेभ्य एवाथ तमःस्थितेभ्यः।' इति।

२. लिङ्गपुराणे—'आश्विने पौर्णमास्यां तु चरेज्जागरणं निशि। कौमुदी सा समाख्याता कार्या लोकैर्विभूतये॥' 'कौमुद्यां पूजयेल्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थितम्। सुगन्धिर्निशि सद्वेष अक्षैर्जागरणं चरेत्॥' इति।

नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये ।
या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात् ॥

इति पुष्पांजलिं दत्त्वा नमेत् ।

चतुर्दन्तसमारूढो वज्रपाणिः पुरन्दरः ।
शचीपतिश्च ध्यातव्यो नानाभरणभूषितः ॥

इति ध्यात्वाऽक्षतपुञ्जादाविन्द्राय नम इति संपूज्य,

विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये ।
पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय सहस्राक्षाय ते नमः ॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा नमेत् ।

नारिकेलोदकं पीत्वा अक्षक्रीडां समारभेत् ।
निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी ॥
तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः ।

नारिकेलान्पृथुकांश्च देवेभ्यः पितृभ्यः समर्प्य बन्धुभिः सह स्वयं भक्षयेत् ।

इसमें लक्ष्मी और इन्द्र का पूजन, जागरण और जुआ खेलने का विधान है। उसमें कमल के आसन पर बैठी लक्ष्मी का ध्यान कर अक्षत के ढेर पर 'ॐ लक्ष्म्यै नमः' इस मन्त्र से आवाहन आदि सोलहों उपचारों से पूजा करके हे हरि-प्रिये ! आप सब देवताओं को वर देनेवाली हो, आप को नमस्कार है। आपके शरण में आनेवालों की जो गति होती है वह आपके पूजन से मेरी हो, इस आशय के मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर नमस्कार करे। चार दाँतवाले हाथी पर हाथ में वज्र लिये हुए शची के पति इन्द्र महाराज को जो अनेक भूषणों से अलंकृत हैं, उनका ध्यान करना चाहिए। ध्यान करने के बाद अक्षत की ढेर पर 'इन्द्राय नमः' इस मन्त्र से पूजा करे। और विचित्र ऐरावत हाथी पर बैठे और चमकते हुए वज्र को हाथ में लिये इन्द्राणी से आलिंगित अंग और हजार आँखों वाले आपको नमस्कार है।। इस आशय के मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर नमस्कार करे। नारियल का जल पीकर जुआ खेलना प्रारम्भ करे। आधी रात में वर देनेवाली लक्ष्मी 'कौन जागता है' ऐसा कहती हुई उसको और जो जुआ खेलता है उसे भी मैं धन दूँगी। नारियल और चिउड़ा देवताओं और पितरों को समर्पण कर भाई-बन्धुओं के सहित स्वयं भक्षण करे।

अथाश्वयुजीकर्म

अस्यामेवाश्वयुजीकर्माश्वलायनैः कार्यम्। तच्च पर्वद्वैधे पूर्वाह्णसंधौ शेषपर्वणि प्रकृतीष्टिं कृत्वा कार्यम्। अपराह्णसंधौ विकृतिमिमां कृत्वा प्रकृतेरन्वाधानम्। तत्प्रयोगोऽन्यत्र ज्ञेयः।

इसी पूर्णिमा में आश्वलायन शाखावाले आश्वयुजी कर्म करें। वह पूर्णिमा के सन्देह में पूर्वाह्ण सन्धि में शेष पर्व में प्रकृति इष्टि करके करें। अपराह्णसन्धि में इस विकृति को करके प्रकृति का अन्वाधान करे। उसका प्रयोग दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिए।

अथाग्रयणकालः

आश्विनकार्तिकयोः पौर्णमास्याममावास्यायां वा शुक्लपक्षगतकृत्तिकादिवि-

शाखान्तनक्षत्रेषु शुक्लपक्षस्थरेवत्यां वा [1]व्रीह्याग्रयणम्। एवं श्रावणभाद्रपदयोरुक्तेषु पर्वसु नक्षत्रेषु श्यामाकाग्रयणम्। चैत्रवैशाखयोः पर्वादिषु यवाग्रयणम्। तत्र पौर्णमासीपर्वणि संगवात्पूर्वसंधौ पूर्वदिने आग्रयणं कृत्वा प्रकृत्यन्वाधानम्। मध्याह्नात्परत्र संधौ संधिदिने आग्रयणं कृत्वा प्रकृत्यन्वाधानम्। मध्याह्ने संगवादूर्ध्वं मध्याह्नात्पूर्वत्र वा संधौ संधिदिने आग्रयणेष्टिं कृत्वा प्रकृतीष्टिः सद्यः परदिने वा कार्या।

आश्विन और कार्तिक की पूर्णिमा में या अमावास्या में शुक्लपक्ष की कृत्तिका से विशाखा पर्यन्त नक्षत्रों में शुक्लपक्ष की रेवतीनक्षत्र में धान का आग्रयण करे। इसी तरह श्रावण और भाद्रपद में कहे हुए पर्व और नक्षत्रों में सावांका आग्रयण करे। चैत और वैशाख के पर्व आदि में जौ का आग्रयण करे। उसमें पूर्णिमापर्व में संगव से पहली सन्धि में पहले दिन आग्रयण करके प्रकृति का अन्वाधान करे। मध्याह्न के बाद सन्धि होने पर सन्धि के दिन में आग्रयण करके प्रकृति का अन्वाधान करे। मध्याह्न में संगव के बाद या मध्याह्न से पहले दिन की सन्धि में सन्धि के दिन आग्रयणेष्टि करके प्रकृति की इष्टि तुरत अथवा दूसरे दिन करे।

दर्शे तु पूर्वाह्णेऽपराह्णे वा संधौ यथाकालं दर्शेष्टिं कृत्वा प्रतिपन्मध्ये आग्रयणेष्टिः कार्या। एवं नक्षत्राग्रयणपक्षेपि पौर्णमासेष्टेः प्राग्दर्शेष्टेः परं यथा भवेत्तथा आग्रयणं कार्यम्। तथा च दीपिका—'दर्शेष्टयाः परमुक्तमाग्रयणकं प्राक्पौर्णमासाच्च तत्' इति। यद्यपि अथोपूर्वाह्णपर्वक्षय इत्युपक्रमात्पूर्वाह्णसंधावेवायं क्रम इति हेमाद्रिसिद्धान्तानुसारि दीपिकामतं तथापि सर्वावस्थे संधावित्थमेव क्रम इति कौस्तुभसिद्धान्तानुसार्यत्रत्यसिद्धान्तो ज्ञेयः।

अमावास्या में तो पूर्वाह्ण या अपराह्ण सन्धि में यथासमय अमावास्या की इष्टि करके प्रतिपदा के मध्य में आग्रयणेष्टि करनी चाहिए। इसी तरह नक्षत्र के आग्रयण के पक्ष में भी। पौर्णमासेष्टि के पहले दर्शेष्टि के बाद जैसे हो वैसे आग्रयण करे। इसमें दीपिका का प्रमाण कहते हैं—'दर्शेष्टि के अनन्तर उक्त आग्रयण पूर्णिमा के पहिले करना चाहिये।' यद्यपि अथोपूर्वाह्णपर्वक्षय इससे प्रारम्भ करके पूर्वाह्णसन्धि में ही यह क्रम है, यह हेमाद्रि के सिद्धान्तानुसारी दीपिका का मत है फिर भी सब अवस्था में सन्धि में यही क्रम है, यह कौस्तुभ-सिद्धान्त के अनुसार यहां का सिद्धान्त जानना चाहिए।

अत्र पक्षे अथोपदं चार्थे योज्यम्। पूर्वाह्णे पर्वक्षये चेत्यर्थः। इत्थं च कृष्णपक्षे

---

१. शौनक के—'शरद्याग्रयणं नाम पर्वणि स्यात्तदुच्यते' इस कथन से आग्रयण, पर्व में करना चाहिये। आग्रयण तीन प्रकार के होते हैं—व्रीह्याग्रयण, यवाग्रयण और श्यामाकाग्रयण। इनमें श्यामाकाग्रयण अनित्य है। शेष दो अनाहिताग्नियों के लिये नित्य और यवाग्रयण आहिताग्नियों के लिए अनित्य है। श्रुति में इनके कर्तव्यकाल का निर्देश—'गृहमेधी व्रीहियवाभ्यां शरद्वसन्तयोर्यजेत श्यामाकैर्नीवारैर्वर्षास्वापत्काले नान्येन पुराणैर्वा'। आपस्तम्बने भी कालका निर्देश किया—'वर्षासु श्यामाकैर्यजेत शरदि व्रीहिभिर्वसन्ते यवैर्यथर्तु वेणुयवैः' इति। कारिका में आग्रयण कर्म बिना किये नवान्नभक्षण का प्रायश्चित्त है—'अकृताग्रयणोऽश्नीयान्नवान्नं यदि वै नरः। वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा॥' इति। आग्रयण-प्रयोग प्रयोगरत्न में देखें।

न भवतीति सिद्धम्। एतद्दीपिकाकारमतममावास्यापर्वण्याग्रयणविधानस्याखण्डदर्शे वैयर्थ्यापत्त्या न युक्तमिति गृह्याग्निसागरोक्तिर्न समीचीना प्रतिभाति। विकृत्यन्तराणां खण्डपर्वणि प्रकृत्युत्तरं प्रतिपद्यनुष्ठानेपि पर्वानुग्रहसंमतिवदखण्डदर्शेपि प्रतिपदि क्रियमाणाग्रयणस्य दर्शपर्वानुगृहसंमतिसंभवात्। खण्डदर्शे दर्शपर्वविधानसार्थक्यसंभवाच्चेति दिक्।

इस पक्ष में 'अथो' पद को च के अर्थ में लगाना चाहिए। इससे पूर्वाह्न में और पर्वक्षय में ऐसा अर्थ होता है। इस तरह कृष्णपक्ष में नहीं होता है यह सिद्ध हुआ। यह दीपिकाकार का मत अमावास्या में आग्रयण विधान का अखण्ड अमावास्या में व्यर्थ होने से ठीक नहीं है यह गृह्याग्निसागर की उक्ति ठीक नहीं मालूम होती। क्योंकि विकृतियों का खण्डपर्व में प्रकृति के बाद प्रतिपदा में करने पर भी पर्वानुग्रहसम्मति की तरह अखण्ड अमावास्या में भी प्रतिपदा में किया जानेवाला आग्रयण का दर्श-पर्वानुग्रह-सम्मति सम्भव है और खण्ड-दर्श में भी दर्शपर्व-विधान की सार्थकता की सम्भावना है।

श्रावणादौ श्यामाकाग्रयणं न कृतं चेच्छरदि व्रीह्याग्रयणेन समानतन्त्रं कार्यम्। तत्र 'स्मार्ते व्रीह्याग्रयणं श्यामाकाग्रयणं च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्येन्द्राग्निविश्वेदेवार्थमष्टौ व्रीहिमुष्टीन्निरूप्य शूर्पान्तरे श्यामाकान्सोमाय नाम्ना निरूप्य पुनः प्रथमशूर्पे द्यावापृथिव्यर्थं व्रीहिनिर्वापः। एवं होमेपि विश्वेदेवहोमात्परं सौम्यश्यामाकचरुं हुत्वा द्यावापृथिवीहोमः।

श्रावण आदि में सावां का आग्रयण न किया हो तो शरद् ऋतु में धान के आग्रयण के साथ तन्त्र से करे। इसमें 'स्मार्तकर्म में धान के आग्रयण और सावां का आग्रयण तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करके इन्द्र अग्नि और विश्वेदेवा के लिए आठ मुट्ठो धान रखके दूसरे सूप में सावां को चन्द्रमा के नाम से रखकर फिर पहले सूप में द्यावापृथ्वी के लिए धान रखे। इसी प्रकार होम में भी विश्वेदेवा के होम के बाद सोमदेवतावाले सावां के चरु का होम करके द्यावापृथ्वी का होम करे।

आश्विनपौर्णमास्यामपराह्णादिसंधावाग्रयणे क्रियमाणे आश्वयुजीकर्मणापि समानतन्त्रता कार्या। तथा च जीर्णव्रीहिचरुर्नववीहिचरुर्नवश्यामाकचरुश्चेति स्थालीत्रये चरुत्रयम्। पूर्वाह्णादिसंधौ तु संधिदिने प्रकृतियागोत्तरमाश्वयुजीपूर्वदिने संधिदिने वा प्रकृतियागात्पूर्वमाग्रयण इति कालैक्याभावान्नैकतन्त्रता। श्यामाकचर्वसंभवे श्यामाकतृणैः प्रस्तरं कृत्वा स्रुवादुत्तरत आस्तीर्य तत्र स्रुचो निधानं तावतैव श्यामाकाग्रयणसिद्धिरिति वृत्तिकृन्नारायणः।

आश्विन की पूर्णिमा में अपराह्न आदि सन्धि में किया जाने वाला आग्रयण आश्वयुजी कर्म के साथ तन्त्र से करे। तथा पुराने धान का चरु और नये धान का चरु एवं नये सावां का चरु, ये तीन बटलोही में तीन चरु होते हैं। पूर्वाह्न आदि की सन्धि में तो सन्धि के दिन प्रकृतियज्ञ के बाद आश्वयुजी कर्म के पहले दिन या सन्धि दिन में प्रकृति-याग के पहले आग्रयण होता है। इस प्रकार एक काल के न होने से एकतन्त्रता नहीं है। सावां के चरु न मिलने पर सावां के तृण से प्रस्तर बनाकर स्रुवा के उत्तर ओर बिछाकर उस पर स्रुवा को रक्खे, इतने ही से सावां की आग्रयणसिद्धि होती है ऐसा वृत्तिकार नारायण कहते हैं।

यवाग्रयणं तु कृताकृतम्। व्रीह्याग्रयणस्य वसन्तपर्यन्तं गौणकालः। यवाग्रयणस्य वर्षर्तुपर्यन्तम्। अनादिगौणकाले कुर्वन्कालातिपत्तिप्रायश्चित्तपूर्वकमाग्रयणं कुर्यात्। आपदि गौणकाले कुर्वन् प्रायश्चित्तं न कुर्यात्। गौणकालेऽप्यतिक्रान्ते वैश्वानरेष्टिं प्रायश्चित्तं कृत्वातिक्रान्ताग्रयणं कुर्यात्। स्मार्ते तु वैश्वानरदेवताकः स्थालीपाको ग्राह्यः। 'य एवाहिताग्नेः पुरोडाशास्त एवौपासनाग्निमतश्चरव' इत्युक्तेः।

जौ का आग्रयण तो कृताकृत है। धान के आग्रयण का वसन्तऋतु तक गौण काल है। जौ के आग्रयण का वर्षाऋतु तक गौण काल है। अनादि-गौण काल में करते हुए कालातिपत्ति प्रायश्चित्त पहले करके आग्रयण करना चाहिए। आपत्ति में गौण काल में करता हुआ प्रायश्चित्त न करे। गौणकाल के बीत जाने पर भी वैश्वानरेष्टि प्रायश्चित्त करके बीते हुए आग्रयण को करे। स्मार्त कर्म में तो वैश्वानर देवता वाला स्थालीपाक लेना चाहिए। क्योंकि जो आहिताग्नि का पुरोडाश होता है वही औपासन अग्निवाले का चरु है, यह वचन है।

प्रथमाग्रयणस्य शरदत्यये विभ्रष्टेष्टिं तद्देवताकस्थालीपाकं वा कृत्वाऽऽगामि-मुख्यकाले प्रथमाग्रयणं कार्यम्। गौणकाले प्रथमाग्रयणं न भवति। अनारब्धानां दर्शपूर्णमासाग्रयणादीनां प्रायश्चित्तविकल्पाद्विभ्रष्टेष्टिरपि विकल्पिता ज्ञेया। आग्र-यणमकृत्वा किमपि नवोत्पन्नं सस्यं न भक्षणीयम्।

अकृताग्रयणोऽश्नीयाद्यवान्नं यदि वै नरः।
वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा।
यद्वा समिन्द्ररायेति शतवारं जपेन्मनुम्॥

पहले आग्रयण का शरदऋतु के बीतने पर विभ्रष्टेष्टि अथवा उस देवता का स्थालीपाक करके आने वाले मुख्य काल में आग्रयण करे। गौणकाल में पहला आग्रयण नहीं होता। नहीं आरम्भ किये गये अमावास्या, पूर्णमास और आग्रयण आदि का प्रायश्चित्त के विकल्प होने से विभ्रष्टेष्टि को भी विकल्प से जानना चाहिए। आग्रयण नहीं करके कोई नया पैदा हुआ धान्य नहीं खाना चाहिए। बिना आग्रयण किये जो मनुष्य नये अन्न को खाता है, उसे वैश्वानर के लिए चरु करना चाहिए। अथवा पूर्णाहुति करे। अथवा 'समिन्द्रराय' इस मन्त्र का सौ बार जप करे।

अथाग्रयणानुकल्पाः

पृथगाग्रयणप्रयोगाशक्तौ प्रकृतीष्टिसमानतन्त्राग्रयणप्रयोगः। तत्र पौर्णमासेष्ट्या समानतन्त्रत्वे आदावाग्रयणप्रधानं पश्चात्प्राकृतप्रधानम्। दर्शेष्ट्यैकतन्त्रत्वे पूर्वं दर्शेष्टिप्रधानयागः पश्चादाग्रयणप्रधानयागः। अन्यत्पूर्वोत्तराङ्गजातमाग्रयणं विकृति-संबन्ध्येव कार्यम्। विरोधे वैकृतं तन्त्रमिति सिद्धान्तात्।

अलग आग्रयण प्रयोग में असमर्थ व्यक्ति, प्रकृति इष्टि के समान तन्त्र से आग्रयण का प्रयोग करे। उसमें पौर्णमासी इष्टि के समान तन्त्र होने में पहले आग्रयण प्रधान और पीछे प्राकृत प्रधान है। अमावास्या इष्टि से एक तन्त्र करने पर पहले दर्शेष्टि प्रधान याग और पीछे आग्रयण प्रधान याग होता है। बाकी पूर्वाङ्ग उत्तराङ्ग आग्रयण विकृति सम्बन्धी ही करे। क्योंकि 'विरोध में वैकृत तन्त्र होता है' यह सिद्धान्त है।

एतदसंभवे नवश्यामाकव्रीहियवैः पुरोडाशं कृत्वा दर्शपूर्णमासौ कुर्यात्। यद्वा नवव्रीह्यादिभिरग्निहोत्रहोमं कुर्यात्। अथवा नवान्नान्यग्निहोत्र्या गवा खादयित्वा तस्याः पयसाग्निहोत्रं जुहुयात्। यद्वा नवान्नेन ब्राह्मणान्भोजयेदिति संक्षेपः। इदं मलमासे न कार्यम्। गुर्वाद्यस्तेपि न कार्यमिति केचित्। जीर्णधान्यालाभे तु मलमासादौ कार्यम्। अस्यामेव पौर्णमास्यां ज्येष्ठापत्यनीराजनादिकं परविद्धायां कार्यम्।

ऐसा न हो सके तो नया सावां नया धान और नया जव से पुरोडाश बना कर दर्श और पौर्णमास करे। अथवा नये धान आदि से अग्निहोत्र का होम करे। अथवा नये अन्नों को अग्निहोत्री की गाय को खिला कर उसके दूध से अग्निहोत्र-होम करे। अथवा नये अन्न से ब्राह्मणों को भोजन करावे, यही संक्षेप है। इसे मलमास में नहीं करना चाहिए। कोई कहते हैं वृहस्पति आदि के अस्त होने पर भी नहीं करे। पुराने धान के न मिलने पर तो मलमास आदि में करे। इसी पर-विद्धा पूर्णिमा में बड़े सन्तान का नीराजन आदि करना चाहिए।

अथ करकचतुर्थी

आश्विनकृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी। सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्त्यादौ संकष्टचतुर्थीवन्निर्णयः।

अश्विनकृष्ण करकचतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी चाहिए। दो दिन में चन्द्रोदयव्यापिनी आदि में संकष्टचतुर्थी की तरह निर्णय है।

अथ राधाजयन्ती

कृष्णाष्टम्यां राधाकुण्डे स्नानं मथुरामण्डलवासिभिः कार्यम्। साऽरुणोदयव्यापिनी तदभावे सूर्योदयव्यापिनी ग्राह्या।

आश्विनकृष्ण अष्टमी में मथुरामण्डल में रहने वालों को राधाकुण्ड में स्नान करना चाहिए। अष्टमी अरुणोदयव्यापिनी होनी चाहिये। ऐसा न होने पर सूर्योदयव्यापिनी लेनी चाहिये।

अथ गोवत्सद्वादशी

आश्विनकृष्णद्वादशी गोवत्सद्वादशी। सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तौ परा। सायंकालाख्यगौणकाले सत्त्वात्। उभयत्र तद्व्याप्तौ पूर्वेति बहवः। परेति केचित्। अत्र वत्सतुल्यवर्णां सवत्सां पयस्विनीं गां[१] सम्पूज्य गोः पादे ताम्रपात्रेणार्घ्यं दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

क्षीरोदार्णवसंभूते सुरासुरनमस्कृते।
सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते॥

ततो माषादिवटकान् गोग्रासार्थं दत्त्वा प्रार्थयेत्—

---

१. भविष्यपुराणे—'सवत्सां तुल्यवर्णां च शीलिनीं गां पयस्विनीम्। चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत्॥ अर्घ्यं ताम्रमये पात्रे कृत्वा पुष्पाक्षतैस्तिलैः। पादमूले तु दद्याद् वै मन्त्रेणानेन पाण्डव॥' इति।

सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ।
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥

तद्दिने तैलपक्वं स्थालीपक्वं गोक्षीरं गोघृतं गोदधि तक्रं च वर्जयेत् । नक्तं माषान्नभोजनं भूशय्याब्रह्मचर्यं च कार्यम् ।

आश्विनकृष्ण द्वादशी को गोवत्सद्वादशी कहते हैं । यह प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य है । दोनों दिन में प्रदोषव्यापिनी न हो तो परा लेनी चाहिए । सायंकाल नामक गौणकाल में होने से । दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होने पर पूर्वा का ग्रहण करे, यह बहुतों का कहना है । कोई परा को कहते हैं । इसमें बछड़े के समान वर्णवाली बछड़े सहित दूध देने वाली गाय का पूजन कर उसके पैर में ताम्बे के पात्र से अर्घ्य दे । उसके मन्त्र का यह आशय है—'क्षीर समुद्र से उत्पन्न देवता और दैत्य से नमस्कृत सर्वदेवमयी माँ आप को नमस्कार है । हमारे अर्घ्य को आप ग्रहण करें । इसके बाद गोग्रास के लिए उड़द के बड़े आदि देकर प्रार्थना करे—सर्वदेवमयी हे देवि ! सब देवताओं से अलंकृत माता हे नन्दिनि ! मेरे सभी मनोरथ को सफल करो । उस दिन तेल और बटलोही का पकाया गाय का दूध, घी, दही और मट्ठा का वर्जन करे । रात को उड़द का भोजन, जमीन का सोना आदि ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

अथ नीराजनविधिः

इमामेव द्वादशीमारभ्य पञ्चसु दिनेषु पूर्वरात्रे [1]नीराजनविधिर्नारदेनोक्तः ।

नीराजयेयुर्देवांश्च विप्रान् गाश्च तुरंगमान् ।
ज्येष्ठान् श्रेष्ठान् जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः ॥ इति ।

इसी द्वादशी से आरम्भ कर पाँच दिनों में पूर्वरात्रि में नीराजनविधि नारद ने कही है । मातृ-प्रमुख स्त्रियां देवता, ब्राह्मण, गाय, घोड़े, जेठे, छोटे और श्रेष्ठों का नीराजन करे ।

अथ यमदीपदानम्

त्रयोदश्यामपमृत्युनाशार्थं यमाय[2] निशामुखे बहिर्दीपो देयः ।

त्रयोदशी में अपमृत्यु के नाश के लिये यमराज को घर से बाहर सायं-काल में दीप दे ।

अथ गोत्रिरात्रव्रतम्

इमामेव त्रयोदशीमारभ्य गोत्रिरात्रव्रतमुक्तम् । तत्प्रयोगः कौस्तुभे ।

इसी त्रयोदशी से आरम्भ कर गोत्रिरात्रव्रत कहा है । उसका प्रयोग कौस्तुभ-ग्रन्थ में है ।

अथ नरकचतुर्दशी

आश्विनकृष्णचतुर्दश्यां चन्द्रोदयव्यापिन्यां [3]नरकभीरुभिस्तिलतैलेनाभ्यङ्ग-

---

१. ज्योतिर्निबन्ध में कार्तिककृष्ण द्वादशी में नारदोक्त पांच दिन की नीराजनविधि—'आश्विने कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु । तिथिषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः ॥' यहाँ शुक्लप्रतिपदादि अमान्तमास से आश्विनकृष्ण द्वादशी कार्तिककृष्ण द्वादशी हुई ।

२. स्कन्दपुराणे—'कार्तिकस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे । यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥' दीपदान का मन्त्र—'मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन श्यामया सह । त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतां मम ॥' इति ।

३. कार्तिककृष्ण त्रयोदशी में चन्द्रोदय होने पर अभ्यंगस्नान करना चाहिये । भविष्योत्तरे—'कार्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यामिनोदये । अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ॥' तथा—'पूर्व-

स्नानं कार्यम्। अत्र रात्र्यन्त्ययाममारभ्यारुणोदयावधिस्ततश्चन्द्रोदयावधिस्ततः सूर्योदयावधिरिति कालत्रये पूर्वपूर्वो जघन्य उत्तरोत्तरः श्रेष्ठः। अतश्चन्द्रोदयोत्तरो मुख्यः कालः प्रातःकालो गौणः। तत्र पूर्वदिने एव चन्द्रोदयव्याप्तौ पूर्वा। परत्रैव तद्व्याप्तौ परा। अस्मिन्पक्षे तद्दिनेऽस्तमयादिकाले विहितमुल्कादानदीपदानादिकं तत्काले चतुर्दश्यभावेऽपि कार्यम्।

आश्विनकृष्ण चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्दशी में नरक से डरने वालों को तिल तैल लगाकर स्नान करना चाहिए। इसमें रातके अन्तिम प्रहर से आरम्भ कर अरुणोदय तक उसके बाद चन्द्रोदय तक और उसके बाद सूर्योदय तक की अवधि, इस प्रकार तीन काल में स्नान पूर्व-पूर्व अधम और उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। इस लिए चन्द्रोदय के बाद का काल मुख्य और प्रातःकाल का गौण है। इसमें पहले दिन ही चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो पूर्वा और दूसरे ही दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो परा ग्राह्य है। इस पक्ष में उस दिन सूर्यास्त आदि काल में विहित उल्कादान दीपदान आदि, उस समय में चतुर्दशी न रहे तब भी करना चाहिए।

दिनद्वये चन्द्रोदयव्याप्तौ पूर्वा। दिनद्वये चन्द्रोदयाव्याप्तौ पक्षत्रयं सम्भवति—पूर्वत्र चन्द्रोदयोत्तरमुषःकालं सूर्योदयं च व्याप्य प्रवृत्ता चतुर्दशी परत्र चन्द्रोदयात्पूर्वं समाप्ता। यथा—त्रयोदशीघट्यः ५८ पलानि ५० चतुर्दशी ५७। अस्मिन्प्रथमपक्षे उषःकालैकदेशे चतुर्दशीयुक्तेऽभ्यङ्गस्नानं कार्यम्। अथ पूर्वत्र सूर्योदयमात्रं व्याप्य प्रवृत्ता परत्र चन्द्रोदयात्पूर्वं समाप्ता अथवा सूर्योदयास्पर्शेन क्षय एव चतुर्दश्याः। यथा—त्रयोदशी ५९ पलानि ५९ चतुर्दशी ५७ यथा वा त्रयोदशी २ तद्दिने चतुर्दशी ५४।

दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी होने पर पूर्वा का ग्रहण करे। दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी न रहने पर तीन पक्ष सम्भव है—पहले दिन चन्द्रोदय के बाद उषःकाल और सूर्योदय को लेकर प्रवृत्त होने वाली चतुर्दशी दूसरे दिन चन्द्रोदय से पहले समाप्त होने वाली चतुर्दशी। जैसे—त्रयोदशी ५८ घड़ी ५०पल, चतुर्दशी ५७ घड़ी। इस पहले पक्ष में उषःकाल के एकदेश में चतुर्दशीयुक्त होने से अभ्यंगस्नान करे। इसके बाद पहले दिन सूर्योदयमात्र में व्यापिनी और दूसरे दिन चन्द्रोदय से पहले समाप्त होने वाली अथवा सूर्योदय के स्पर्श न करने वाली चतुर्दशी का। जैसे—त्रयोदशी ५९ घड़ी ५९ पल, चतुर्दशी ५७ घड़ी अथवा त्रयोदशी २ घड़ी। उस दिन चतुर्दशी ५४ घड़ी।

विद्धचतुर्दश्यां कार्तिकस्य सितेतरे। पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात् प्रयत्नतः॥' स्मृतिदर्पणे—'चतुर्दशी चाश्वयुजस्य कृष्णा स्वात्यर्क्षयुक्ता च भवेत् प्रभाते। स्नानं समभ्यज्य नरैस्तु कार्यं सुगन्धतैलेन विभूतिकामैः॥' पद्मपुराणे—'आश्वयुक्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां विधूदये। तिलतैलेन कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुणा॥' स्मृतिदर्पण और पद्मपुराण के दोनों वचनों में शुक्लादि अमान्तमास के अभिप्राय से आश्वयुक् शब्द का उल्लेख है अतः आश्विनकृष्ण चतुर्दशी कार्तिककृष्ण चतुर्दशी ही हुई।

वायुपुराण में कार्तिककृष्ण चतुर्दशी में श्री हनुमानजी के जन्म का उल्लेख है—'आश्विनस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे चतुर्दशी। मेषलग्नेऽञ्जनीगर्भात्स्वयं जातो हरः शिवः॥' इति। यहाँ भी शुक्लादि अमान्तमासाभिप्राय से 'आश्विनस्यासिते' यह कथन है।

अत्र पक्षद्वये परत्र चन्द्रोदयेऽभ्यङ्गस्नानम्। चतुर्थयामादिजघन्यकाले चतुर्दशीव्याप्तिसत्त्वात्। एतत्पक्षद्वये केचिदरुणोदयात्पूर्वमपि चतुर्दशीमध्ये एव स्नानं कार्यमिति वदन्ति। अपरे त्वरुणोदयोत्तरं चन्द्रोदयादिकालेऽमावास्यादियुक्तेऽपि स्नानमिति वदन्ति। यत्तु चतुर्दशीक्षये पूर्वत्र त्रयोदश्यां चन्द्रोदये स्नानमित्याहुस्तदयुक्तम्। अत्राभ्यङ्गस्नाने विशेषः—

सीतालोष्ठसमायुक्तसकण्टकदलान्वित।
हर पापमपामार्ग[1] भ्राम्यमाणः पुनः पुनः॥

इति मन्त्रेण लाङ्गलोद्धृतलोष्ठयुतापामार्गतुम्बीचक्रमर्दनशाखानां स्नानमध्ये त्रिवारं भ्रामणं कार्यम्। अभ्यङ्गस्नानोत्तरं तिलकादि कृत्वा कार्तिकस्नानं कार्यम्। उक्तकालेषु स्नानासंभवे सूर्योदयोत्तरं गौणकालेऽपि यत्यादिभिरप्यवश्यमभ्यङ्गस्नानं कार्यम्।

यहाँ दोनों पक्ष में दूसरे दिन चन्द्रोदय में अभ्यंगस्नान है। क्योंकि चौथे पहर आदि निकृष्ट काल में चतुर्दशी की व्याप्ति है। इन दोनों पक्ष में कोई अरुणोदय से पहले भी चतुर्दशी के मध्य में ही स्नान करे, ऐसा कहते हैं। दूसरे तो अरुणोदय के बाद चन्द्रोदय के पहले काल अमावास्या आदि से युक्त में भी स्नान करे, ऐसा कहते हैं। जो कि चतुर्दशी-क्षय के होने पर पहले त्रयोदशी में चन्द्रोदय हो तो उसमें स्नान करे यह ठीक नहीं है, ऐसा कहते हैं। इसमें अभ्यंगस्नान में विशेषता है। जोते हुए खेत के ढेला से युक्त काँटे के पत्तों से युक्त हे अपामार्ग! बार-बार घुमाने से हमारे पापों को हरण करो। इस आशय के मंत्र से हल से निकली हुई ढेला से युक्त अपामार्ग, तुमड़ी और चक्रमर्द की शाखाओं से स्नान के मध्य में (शिर पर) तीन बार घुमावे। अभ्यंगस्नान के बाद तिलक आदि करके कार्तिक स्नान करे। उक्त समय में स्नान न हो सकने पर सूर्योदय के बाद गौण काल में भी संन्यासी आदि को अवश्य अभ्यंगस्नान करना चाहिए।

अथ यमतर्पणम्

कार्तिकस्नानोत्तरं[2] यमतर्पणं कार्यम्। तद्यथा—यमाय नमः यमं तर्पयामीत्युक्त्वा तिलमिश्रान् त्रीनञ्जलीन्सव्येनापसव्येन वा देवतीर्थेन पितृतीर्थेन वा दक्षिणामुखो दद्यात्। एवमग्रेऽपि—धर्मराजाय० मृत्यवे० अन्तकाय० वैवस्वताय० कालाय० सर्वभूतक्षयाय० औदुम्बराय० दध्नाय० नीलाय० परमेष्ठिने०

---

१. पद्मपुराण में अपामार्ग आदि को शिर पर घुमाने का निर्देश—'अपामार्गमथो तुम्बी प्रपुन्नाटमथापरम्। भ्रामयेत् स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै॥' शिरसीति शेषः।

२. वृद्धमनुः—'दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम्।' ब्रह्मपुराणे—'अपामार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः॥' हेमाद्रि में तर्पण प्रकार—'एकैकेन तिलैर्मिश्रान् दद्यात्त्रींस्त्रीन् जलाञ्जलीन्। संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥' स्कन्दपुराणे—'दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलैः सव्यं समाहितः। देवतीर्थेन देवत्वात्तिलैः प्रेताधिपो यतः॥ तथा—'यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिनाऽथवा।' इस तर्पण को जीवत्पितृक व्यक्ति भी करें। यथा पद्मपुराणे—'जीवत्पिताऽपि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः।' इति।

वृकोदराय० चित्राय० चित्रगुप्ताय० । जीवत्पितृकस्तु यवैर्देवतीर्थेन सव्येन कुर्यात् ।

कार्तिकस्नान के बाद यमतर्पण करना चाहिए । वह जैसे—सव्य या अपसव्य से यमाय नमः इत्यादि कहकर तिल मिले हुए तीन अञ्जलि जल, सव्य देवतीर्थ या पितृतीर्थ से दक्षिण मुख होकर देवे । इसी प्रकार आगे भी धर्मराजाय नमः इत्यादि मन्त्रों से तीन तीन अञ्जलि तिल मिले हुए जल से तर्पण करे । जिसके पिता जीते हों वह जव से देवतीर्थ से सव्य होकर तर्पण करे ।

अथ दीपप्रज्वालनम्

ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोहरान् ।
देवालये मठे वापि प्राकारोद्यानवीथिषु ॥
गोवाजिहस्तिशालायामेवं घस्रत्रयेपि च ।
तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः ।
उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् ॥ तत्र दानमन्त्रः—

तदनन्तर प्रदोषकाल में सुन्दर दीपों को दे । देवता, मन्दिर, मठ, चहार दिवारी, बगीचे, गलियों, गोशाला, घोड़सार, हस्तिशाला, तुला के सूर्य, प्रदोषकाल और चतुर्दशी अमावस्या में तीन दिन हाथ में उल्का (लुकारी) लेकर पितरों का मार्ग-दर्शन करे । उसमें दान का मंत्राशय यह है—

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येप्यदग्धाः कुले मम ।
उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम् ॥
यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये ।
उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तु व्रजन्तु ते ॥

अस्यां नक्तभोजनं महाफलम् ।

मेरे कुल में अग्नि से जले हुए या नहीं जले हुए जो उज्ज्वल ज्योति से जले हैं वे परमगति कोप्राप्त करें । यमलोक छोड़कर जो महालय में आये हों वे उज्ज्वल-ज्योति से रास्ता देखते हुए जाँय । इस दिन नक्तभोजन का बड़ा फल होता है ।

अथ अमायां दीपदानलक्ष्मीपूजनादि (दीपावली)

अथाश्विनामावास्यायां प्रातरभ्यङ्गः [1]'प्रदोषे दीपदानलक्ष्मीपूजनादि विहितम् । तत्र सूर्योदयं व्याप्यास्तोत्तरं घटिकाधिकरात्रिव्यापिनि दर्शे सति न सन्देहः ।

---

१. कालादर्शे—'प्रत्यूष आश्वयुग्दर्शे कृताभ्यङ्गादिमङ्गलः । भक्त्या प्रपूजयेद् देवीमलक्ष्मी-विनिवृत्तये ॥' काश्यपसंहितायाम्—'इन्दुक्षयेऽपि संक्रान्तौ रवौ पाते दिनक्षये । तत्राभ्यङ्गो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये ॥' मत्स्यपुराणे—'दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता ।' हेमाद्रिः—'एवं प्रभातसमये त्वमावास्यां नराधिप । कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ॥ दीपान् दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि । स्वलंकृतेन भोक्तव्यं सितवस्त्रोपशोभिना ॥' तिथितत्त्वे—'दण्डैकरजनी-योगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिके ॥' ब्रह्मपुराणे—'अर्धरात्रे भ्रमत्येव लक्ष्मीराश्रयितुं गृहान् । अतः स्वलंकृता लिप्ता दीपैर्जाग्रज्जनोत्सवाः ॥ सुधाधवलिताः कार्याः पुष्पमालोपशोभिताः ।' दीपमालिका दान का फल—'यः कुर्यात् कार्तिके मासे शोभनां दीप-मालिकाम् । घृतेन च चतुर्दश्याममायां च विशेषतः ॥ यावद्दीपप्रसंख्या तु घृतेनापूर्य बोधिता । यावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥' इति ।

अत्र प्रातरभ्यङ्गदेवपूजादिकं कृत्वापराह्णे पार्वणश्राद्धं कृत्वा प्रदोषसमये दीपदानोल्काप्रदर्शनलक्ष्मीपूजनानि कृत्वा भोजनं कार्यम्। अत्र दर्शे बालवृद्धादिभिर्न्नैर्दिवा न भोक्तव्यं, रात्रौ भोक्तव्यमिति विशेषो वाचनिकः। तथा च परदिने एव दिनद्वये वा प्रदोषव्याप्तौ परा। पूर्वत्रैव प्रदोषव्याप्तौ लक्ष्मीपूजादौ पूर्वा। अभ्यङ्गस्नानादौ परा। एवमुभयत्र प्रदोषव्याप्त्यभावेपि।

उसके बाद आश्विन की अमावास्या में प्रातःकाल अभ्यंगस्नान, प्रदोष में दीपदान और लक्ष्मीपूजन आदि कहा है। इसमें सूर्योदय से सूर्यास्त के बाद एक घड़ी से अधिक रात्रि में रहने वाली अमावास्या में कोई संदेह नहीं है। इसमें प्रातः अभ्यंगस्नान देवपूजा आदि करके अपराह्ण में पार्वणश्राद्ध, प्रदोषकाल में दीपदान, उल्का का प्रदर्शन और लक्ष्मीपूजन करके भोजन करे। इस अमावास्या में बाल वृद्ध आदि को छोड़कर शेष को दिन में भोजन नहीं करना चाहिये, रात में भोजन करना चाहिये, यह विशेषता वाचनिक है। दूसरे दिन ही या दोनों दिन प्रदोष में रहने वाली अमावास्या परा लेनी चाहिए। लक्ष्मीपूजा आदि में पहले ही दिन प्रदोष में अमावास्या रहने पर पहली का ग्रहण करे। अभ्यंग स्नान आदि में पूरा लेनी चाहिए। इस प्रकार दोनों दिन प्रदोष में नहीं रहने वाली अमावास्या में भी करना चाहिये।

पुरुषार्थचिन्तामणौ तु पूर्वत्रैव व्याप्तिरिति पक्षे परत्र यामत्रयाधिकव्यापिदर्शे दर्शापेक्षया प्रतिपद्वृद्धिसत्त्वे लक्ष्मीपूजादिकमपि परत्रैवेत्युक्तम्। एतन्मते उभयत्र प्रदोषाव्याप्तिपक्षेपि परत्र दर्शस्य सार्धयामत्रयाधिकव्यापित्वात्परैव युक्तेति भाति। चतुर्दश्यादिदिनत्रयेपि दीपावलिसंज्ञके यत्र यत्राह्नि स्वातीनक्षत्रयोगस्तस्य तस्य प्राशस्त्यातिशयः। अस्यामेव निशीथोत्तरं नगरस्त्रीभिः स्वगृहाङ्गणादलक्ष्मीनिःसारणं[1] कार्यम्। इति आश्विनमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

पुरुषार्थचिन्तामणि में तो पहले ही दिन प्रदोषव्यापिनी अमावास्या हो तो इस पक्ष में दूसरे दिन तीन पहर से अधिक रहने वाली अमावास्या में अमावास्या की अपेक्षा प्रतिपद् की वृद्धि होने पर

भविष्यपुराण में इसी दिन अर्धरात्रि में कालीपूजा—'प्रतिसंवत्सरं कुर्यात् कालिकाया महोत्सवम्। कार्तिके तु विशेषेण अमावास्यानिशार्धके।। तस्यां संपूजयेद्देवीं भोगमोक्षप्रदायिनीम्।' इसी तरह कामाख्यातन्त्रादि में निशीथ में पूजा का विधान है। अमावास्या दो दिन निशीथव्यापिनी हो तो जिस दिन प्रदोष में रहे उसी दिन ग्रहण करे—'प्रदोषव्यापिनी यत्र महानिशि च सा भवेत्। तदैव कालिका पूज्या दक्षिणा मोक्षदायिनी।।' अमावास्या के दो दिन रहने पर चतुर्दशीयुक्त ग्राह्य है—'अर्धरात्रे महेशानि अमावास्या यदा भवेत्। चतुर्दशीयुता ग्राह्या चामुण्डापूजने सदा।।' शनि-भौमवार के पड़ जाने से चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी भी हो तो अमावास्या निशीथव्यापिनी ही ग्राह्य है—'चतुर्दशी प्रदोषे तु अमावास्या महानिशि। शनिभौमदिने देवि निशायां सर्वथा यजेत्।।' शनि-भौम दिन के अतिरिक्त दिन में पूर्व दिन प्रदोषव्यापिनी और पर दिन में प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी हो तो परदिन ही ग्राह्य है—'महानिशादिने देवि प्रतिपच्च यदा भवेत्। कालीकैवल्ययोगोऽयं तद्दिने कालिकाऽर्चनम्।।' इति।

१. भविष्यपुराणे—'एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्धलोचने। तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः।। निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात्।' इति।

लक्ष्मीपूजा आदिभी दूसरे ही अमावास्या में करे, ऐसा कहा है। इस मत में दोनों दिन प्रदोष में नहीं रहने वाली अमावास्या के पक्ष में भी दूसरे दिन साढ़े तीन पहर अमावास्या के अधिक रहने पर परा ही ठीक है। चतुर्दशी आदि तीन दिन में दीपावली होती है। इसमें जिस-जिस दिन स्वाती-नक्षत्र का योग हो वह-वह अत्यन्त प्रशस्त है। इसी अमावास्या में आधी रात के बाद नगर की स्त्रियाँ घर और आंगन से दरिद्रा का निष्कासन करें। आश्विनमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ कार्तिककृत्ये वृश्चिकसंक्रान्तिः

वृश्चिकसंक्रान्तौ पूर्वाः षोडशनाड्यः पुण्याः। शेषं प्राग्वत्। अथ कार्तिकशुक्लप्रतिपत्कृत्यम्। अत्राभ्यङ्ग आवश्यकः। एवं च चतुर्दश्यादिदिनत्रयेऽभ्यङ्गाद्युत्सवस्याकरणे नरकादिदोषश्रवणात्करणे लक्ष्मीप्राप्त्यलक्ष्मीपरिहारादिफलश्रवणाच्च नित्यकाम्योभयरूपत्वम्।

वृश्चिक की संक्रान्ति में पहली सोलह घड़ियाँ पुण्यप्रद हैं। शेष पूर्ववत् जानें। कार्तिकशुक्ल प्रतिपदा के कृत्य ये हैं, इसमें अभ्यंगस्नान आवश्यक है। इस प्रकार चतुर्दशी आदि तीन दिनों में अभ्यंग आदि उत्सव के न करने पर नरक आदि दोष और करने पर लक्ष्मी-प्राप्ति और अलक्ष्मी के परिहार आदि फल होने से यह नित्य और काम्य दोनों है।

अथ बलिपूजननिर्णयः

अस्यां प्रतिपदि [1]बलिपूजा दीपोत्सवो गोक्रीडनं गोवर्धनपूजा मार्गपालीबन्धनं वष्टिकाकर्षणं नववस्त्रादिधारणाद्युत्सवो द्यूतं नारीकर्तृकनीराजनं मङ्गलमालिका

---

१. बलिपूजा में प्रतिपदा पूर्वविद्धा ग्राह्य है। यथा पद्मपुराणे—'पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्।' निर्णयामृत में रात्रि में बलिपूजा—'कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः। पूजां कुर्यान्नृपः साक्षाद् भूमौ मण्डलके शुभे॥ बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः। गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत्॥ लोकश्चापि गृहस्यान्तः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः। संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैस्तु पूजयेत्॥' इति।

निर्णयामृत में अमावास्या से युक्त प्रतिपदा में गोक्रीडा—'या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप। पूजनात् त्रीणि वर्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः॥' देवलः—'प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम्। परविद्धेषु यः कुर्यात् पुत्रदारधनक्षयः॥' तथा—'प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां तु गोऽर्चनम्। क्षेत्रच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम्॥' तथा—'कार्तिकस्य सिते पक्षे प्रतिपच्छुभवासरे। हस्तस्वातौ च एतेषु गोपूजा शुभदा सदा॥'

पूर्व दिन प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी हो और द्वितीय दिन चन्द्रदर्शन की सम्भावना हो तभी पूर्वोक्त विधि-प्रतिषेध के ये सभी वचन हैं। पुराणसमुच्चये—'गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः। सोमो राजा पशून् हन्ति सुरभिः पूजकांस्तथा॥' प्रतिपदा दोनों दिन सायाह्नव्यापिनी हो तो उत्तर दिन द्वितीया से युक्त ही ग्राह्य है—'वर्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्धत्रियामिका। द्वितीया वृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते॥' दोनों दिन प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी न हो तो अमावास्या युक्त ही ग्राह्य है।

राजमार्तण्ड में गोपूजा का निषेध—'विशाखायाममावास्या विशाखा प्रतिपद्युता। आयुः पुत्रं धनं हन्ति सुरभीपूजकांस्तथा॥' तथा—'शनौ वारे तथाऽङ्गारे सूर्यवारे तथैव च। अन्यदृक्षगते वाऽपि गोपूजां नैव कारयेत्॥ यदि मोहात् कृता पूजा प्रायश्चित्तं भवेत्तदा। गवां नाशोऽर्थनाशश्च प्रजानाशो भवेद् ध्रुवम्॥ पापादे च विशाखायां गोपूजां नैव कारयेत्।' इति।

चेत्येवमादीनि कृत्यानि । तत्र यदि उदयं व्याप्य दश मुहूर्ता प्रतिपत्तदा चन्द्रदर्शनाभावाच्चन्द्रदर्शनप्रयुक्तद्वितीयावेधनिषेधाप्रवृत्तेः सर्वकार्याणि परप्रतिपद्येव भवन्ति । इष्टिनिर्णयप्रकरणे त्रिमुहूर्तद्वितीयाप्रवेशमात्रेण चन्द्रदर्शनमुक्तं तत्सूक्ष्मदर्शनाभिप्रायम् । अत्र तु स्थूलदर्शनमेव निषेधप्रयोजकम् । तच्च षण्मुहूर्तद्वितीयाप्रवेश एवेति न विरोध इति भाति ।

इस प्रतिपदा में बलिपूजा, दीपोत्सव, गोक्रीडन, गोवर्धनपूजा, मार्गपालीबन्धन, वष्टिकाकर्षण, नववस्त्रादि का धारण आदि उत्सव, जुआ, स्त्रीद्वारा आरती और मंगलमालिका आदि कृत्य होते हैं। इसमें यदि उदय से दश मुहूर्त तक प्रतिपदा हो तो चन्द्रदर्शन के न होने से चन्द्रदर्शनप्रयुक्त द्वितीयावेध निषेध की अप्रवृत्ति से सब कार्य दूसरी प्रतिपदा में ही होते हैं। इष्टि के निर्णयप्रकरण में तीन मुहूर्त द्वितीया के प्रवेशमात्र से चन्द्रमा का दर्शन कहा है, वह सूक्ष्मदर्शन के अभिप्राय से है। यहाँ तो स्थूलदर्शन ही निषेध का प्रयोजक है। वह छ मुहूर्त द्वितीया प्रवेश में ही है इसलिए कोई विरोध नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है।

यदि नवमुहूर्ता नास्ति तदा बलिपूजागोक्रीडागोवर्धनपूजामार्गपालीबन्धनवष्टिकाकर्षणानि पूर्वविद्धप्रतिपदि कार्याणि । अभ्यङ्गनववस्त्रादिधारणद्यूतनारीकर्तृकनीराजनमङ्गलमालिकादीनि औदयिकमुहूर्तव्यापिन्यामपि कार्याणि । बलिपूजादेः केनचिन्निमित्तेन पूर्वविद्धायामनुष्ठानासंभवे परविद्धायामनुष्ठानं कार्यं न तु कर्मत्यागस्तिथ्यन्तरपरिग्रहो वा । यथा बौधायनीयाद्यैः स्वस्वसूत्रोक्तानुष्ठानासंभवे आपस्तम्बीयादिसूत्रोक्तानुष्ठानं कार्यं न तु कर्मलोपः शाखान्तरपरिग्रहो वा तद्वदिति माधवीये स्पष्टम् ।

यदि नव मुहूर्त द्वितीया नहीं है तब बलिपूजा, गोक्रीड़ा, गोवर्धनपूजा, मार्गपालीबन्धन, वष्टिकाकर्षण, पूर्वविद्धा प्रतिपदा में ही करे। अभ्यंग, नये वस्त्रादि का धारण, जुआ, स्त्रीद्वारा नीराजन, और मंगलमालिका आदि कृत्य उदयकालिक मुहूर्तव्यापिनी द्वितीया में भी करे। बलिपूजा आदि किसी कारण से पूर्वविद्धा में न कर सकने पर परविद्धा में करे कर्मकाल का त्याग नहीं करे, अथवा दूसरी तिथि में करे। जैसे-बौधायनीय आदि अपने-अपने सूत्र के कहे हुए कृत्य के न हो सकने पर आपस्तम्बीय आदि सूत्रों के कहने के अनुसार कृत्य करते हैं, कर्म का लोप नहीं करते, अथवा दूसरी शाखा का ग्रहण करते हैं, उसी तरह ग्रहण करे, यह माधवीय में स्पष्ट है।

तत्र राजा पञ्चवर्णरंगैर्बलिं द्विभुजमालिख्य अन्यजनाः शुक्लतण्डुलैर्विरच्य पूजयेयुः । तत्र मन्त्रः—

बलिराज नमस्तुभ्यं विरोजनसुत प्रभो ।
भविष्येन्द्रसुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥
बलिमुद्दिश्य यत्किंचिद्दानकरणेऽक्षय्यं विष्णुप्रीतिकरं तत् ।
यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां मुनीश्वर ।
हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि ॥

इसमें राजा पाँच रंग से दो हाथ वाली बलि बनाकर अन्य लोग सफेद चावल से बनाकर पूजा करें। इसमें मंत्र का आशय यह है—हे विरोचन के पुत्र बलिराज! आप को नमस्कार है। इन्द्र और

देवताओं के होने वाले शत्रु बलि महाराज ! मेरी इस पूजा को स्वीकार करें। बलि के उद्देश्य से जो कुछ भी दान करने पर वह अक्षय और विष्णु का प्रीति-कारक होता है। जो हर्ष या दैन्य आदि जिस भाव से इस दिन रहता है, उसका वर्ष वैसा ही बीतता है।

अथास्यां द्यूतविधिः

अस्यां द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते सर्वमानवैः।
तस्मिन्द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः॥
विशेषवच्च भोक्तव्यं प्रशस्तैर्ब्राह्मणैः सह।
बलिराज्ये दीपदानात्सदा लक्ष्मीः स्थिरा भवेत्॥

इस दिन प्रातःकाल में सब मनुष्यों को जुआ खेलना चाहिए। उस जुए में जिसकी जीत होती है उसका साल भर तक जीत ही होती है। उत्तम ब्राह्मणों के साथ विशेष प्रकार का भोजन करे। बलिराज्य में दीप देने से लक्ष्मी स्थिर रहती है।

दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता।
बलिराज्यं समासाद्य यैर्न दीपावली कृता।
तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यन्ति केशव॥ इत्यादि।

अत्र लक्ष्मीपूजा कुबेरपूजा चोक्ता।

लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥
अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

इति मन्त्राभ्यां गवां सवत्सानां बलीवर्दानां च पूजनं विभूषणं च कृत्वा दोहनभारवहनादिकं वर्जयेत्।

दीपों के नीराजन से इसे दीपावली कहते हैं। बलिराज्य को पाकर जिसने दिवाली नहीं मनायी उसके घर में हे केशव ! कैसे दीप जलेंगे इत्यादि। इसमें लक्ष्मीपूजा और कुबेरपूजा भी कही है। जो लक्ष्मी लोकपालों की धेनुरूप से स्थित हैं और जो यज्ञ के लिए घी बहती है वह मेरे पापों को दूर करे। मेरे आगे मेरे पीछे मेरे हृदय में गाय रहें, गायों के बीच में मैं रहूँ, इस आशय के दो मंत्रों से बछड़े वाली गाय तथा बैलों का पूजन और उनका शृंगार करके गायों का दूहना और बैलों पर बोझा लादना आदि त्याग दे।

अथ गोवर्धनपूजा

मुख्यगोवर्धनसान्निध्ये तस्यैव [1]पूजा। तदसान्निध्ये गोमयेनान्नकूटेन वा गोवर्धनं कृत्वा तत्सहितगोपालपूजा कार्या। तत्र 'श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं गोवर्धनपूजन-गोपालपूजनात्मकं महोत्सवं करिष्ये' इति संकल्प्य,

---

१. स्कन्दपुराण में गोवर्धनपूजा—'प्रातर्गोवर्धनं पूज्य द्यूतं चापि समाचरेत्। भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चावाहदोहनाः।' गोमय से गोवर्धन बनाकर पीतपुष्पाक्षतादि से पूजन करे।

बलिराज्ञो द्वारपालो भवानद्य भव प्रभो।
निजवाक्यार्थनार्थाय सगोवर्धन गोपते ॥

इति मन्त्रेण सगोवर्धनं गोपालमावाह्य स्थापयेत्। ततो—

गोपालमूर्ते विश्वेश शक्रोत्सवविभेदक।
गोवर्धनकृतच्छत्रपूजां मे हर गोपते ॥
गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव ॥

इति मन्त्राभ्यां श्रीगोपालगोवर्धनौ षोडशोपचारैः पूजयेत्। तत्र यथावैभवं महानैवेद्यो देयः।

मुख्य गोवर्धन की सन्निधि में उन्हीं की पूजा करनी चाहिए। उनके सान्निध्य न होने पर गोबर अथवा अन्न के समूह से गोवर्धन बनाकर गोपाल की पूजा करे। उसमें 'श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए गोवर्धनपूजा और गोपालपूजात्मक-महोत्सव करूँगा, ऐसा संकल्प करके हे प्रभो! आप आज बलिराजा के द्वारपाल हों। गोवर्धन के सहित अपने वाक्य की याचना कीजिए, इस आशय के मंत्रों से गोवर्धन के साथ गोपाल का आवाहन करके स्थापना करे। तदनन्तर हे विश्वेश्वर! इन्द्र के उत्सव के नष्ट करने और गोवर्धन को छाता बनाने वाले गोपालमूर्ति हे कृष्ण! मेरी पूजा को ग्रहण कीजिए। गोवर्धन के धारण करने वाले, गोकुल के रक्षक विष्णु के बाहु से जिनकी छाया की गई है ऐसे हे भगवान्! करोड़ों गायों के देने वाले हों इस आशय के दोनों मंत्रों से श्रीगोपाल और गोवर्द्धन की षोडशोपचार से पूजा करे। उसमें जितना धन हो उसके अनुसार महा नैवेद्य देवे।

ततः तदङ्गत्वेन प्रत्यक्षधेनौ मृद्धेनौ वा गोपूजां पूर्वोक्तमन्त्राभ्यां कृत्वा 'आगावो अग्मन्प्रैते वदन्तु' इति ऋग्भ्यां गृहसिद्धचरुहोमः कार्यः। ब्राह्मणेभ्योऽन्नगवादिदानं गोभ्यस्तृणदानं गिरये बलिदानं च। ततो गोविप्रहोमाग्निगिरिप्रदक्षिणासहचरीभिर्गोभिर्युतैः कार्या।

इसके बाद इसके अंगरूपी प्रत्यक्ष धेनु या मिट्टी की धेनु में गौ का पहले कहे दो मंत्रों से पूजन करके 'आ गावो अग्मन् प्रैते वदन्तु' इन दो ऋचाओं से घर में बनाये हुए चरु से होम करे। ब्राह्मणों को अन्न और गाय आदि का दान, गायों के लिये तृणदान और गोवर्धन को बलिदान भी करे। इसके बाद गौ, ब्राह्मण, होम की अग्नि और पर्वत की प्रदक्षिणा, गायों के साथ करनी चाहिए।

अथापराह्णे मार्गपालीबन्धनम्

तत्र पूर्वस्यां दिशि कुशकाशमयरज्जुविशेषं यथाचारं कृत्वोच्चस्तम्भे वृक्षे च बध्वा,

[1]मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्वलोकसुखप्रदे।
विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ॥

---

१. स्कन्दपुराणे—'ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत। मार्गपाली प्रबध्नीयाद्युङ्गे स्तम्भेऽथ पादपे। कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिर्मुने। दर्शयित्वा गजानश्वान् सायमस्यास्तले नयेत्।

इति नमस्कृत्य प्रार्थ्य तदधोमार्गेण गोगजादिसहिताः विप्रराजादयः सर्वे गच्छेयुः। एवं काशादिमयीं[1] वष्टिकां दृढां कृत्वा एकतो राजपुत्रा अन्यत्र हीनजातयो जयज्ञानार्थं कर्षयेयुः। अत्र हीनजातिजये राजजयः। प्रातर्द्यूतं कार्यमित्युक्तम्। एवं नारीभिर्नीराजनमपि[2] प्रातरेव कार्यम्। रात्रौ गीतवाद्याद्युत्सवः कार्यः। नवैर्वस्त्रैश्च संपूज्या द्विजसंबन्धिबान्धवा इति।

इसमें पूर्व दिशा में कुश काश की रस्सी अपने कुलाचार के अनुसार बनाकर ऊँचे खम्भे या वृक्ष में बाँध कर हे मार्गपालि! आप को नमस्कार है। सब लोक को सुख देने वाली, पुत्र स्त्री के द्वारा पुनः मेरे व्रत में आइये, इस आशय के मंत्र से नमस्कार और प्रार्थना करके उसके नीचे के मार्ग से गौ हाथी आदि के साथ ब्राह्मण राजा आदि सब लोग चलें। इस प्रकार काश आदि की बनी हुई वष्टिका को मजबूत करके एक ओर राजपुत्र और दूसरी ओर नीच जाति के लोग विजय ज्ञान के लिये खींचे। इसमें नीच जाति के जीतने पर राजा का विजय होता है। प्रातःकाल में जुआ खेले यह कह चुके हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ नीराजन भी प्रातःकाल ही करें और रात में गाने बजाने आदि का उत्सव करें। नये वस्त्रों से ब्राह्मण तथा सम्बन्धी और बान्धवों का सत्कार करें।

अथ यमद्वितीया

यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहे स्वयम्।
अतो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर॥

अस्यां निजगृहे न भोक्तव्यं यत्नेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यम्। तेन धनधान्यसुखलाभः वस्त्रालंकरणैः सर्वा भगिन्यः पूज्याः। स्वभगिन्यभावे मित्रादिभगिन्यः पूज्याः। भगिन्या अपि भ्रातृपूजने अवैधव्यं[3] भ्रातुश्चिरजीवनं तदकरणे सप्तजन्मसु

कृतहोमे द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम्। नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत। नीराजनं च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम्॥ राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः। मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः स्युः सुखान्विताः।' इति। गोवर्धन पूजा ही गोधनपूजा है।

१. आदित्यपुराणे—'कुशकाशमयीं कुर्याद् वष्टिकां सुदृढां नवाम्। तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथाऽन्यतः। गृहीत्वा कर्षयेयुस्तां यथासारं मुहुर्मुहुः। जयेऽत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम्॥' इति। वष्टिका = पतली रस्सी।

२. मदनरत्न में ब्रह्मपुराणादि के वचनों के आधार पर नीराजन और मंगलमालिका का कर्तव्य उत्तर दिन में कहा है। ब्रह्मपुराणे—'कार्तिके शुक्लपक्षे तु विधानद्वितयं भवेत्। नारीनीराजनं प्रातः सायं मङ्गलमालिका॥ यदा च प्रतिपत्स्वल्पा नारीनीराजनं भवेत्। द्वितीयायां तदा कुर्यात् सायं मङ्गलमालिकाम्॥ भविष्यपुराणे—'लभ्यते यदि वा प्रातः प्रतिपद् घटिकाद्वयम्। तस्यां नीराजनं कार्यं सायं मङ्गलमालिका।' देवीपुराणे—'प्रातर्वा यदि लभ्येत प्रतिपद् घटिका शुभा। द्वितीयायां तदा कुर्यात् सायं मङ्गलमालिकाम्॥ कार्तिके शुक्लपक्षादौ त्वमावास्या घटीद्वयम्। देशभङ्गभयान्नैव कुर्यान्मङ्गलमालिकम्॥' इति।

३. ब्रह्माण्डपुराणे—'या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ। अर्चयेच्चापि ताम्बूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात्॥ भ्रातुरायुःक्षयो राजन्न भवेतत्र कर्हिचित्।' युग्मके = कार्तिकशुक्ल द्वितीया में।

इसमें चित्रगुप्तादि की पूजा होती है—'यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत्। अर्घ्यश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः॥' स्कन्दपुराण में अपराह्ण में इसके पूजन का विधान है—'ऊर्जशुक्ला-

भ्रातृनाशः। इय पूर्वेद्युरेवापराह्णव्याप्तौ पूर्वा। उभयत्र व्याप्त्यव्याप्त्यादिपक्षान्तरेषु परैव। अस्यां यमुनास्नानमपराह्णे चित्रगुप्तयमदूतसहितयमजपूजनं यमायार्घ्यंदानं च विहितम्।

यमुना के द्वारा अपने घर में यमराज खिलाये गये इसीलिए उसे लोक में यमद्वितीया कहते हैं। इस द्वितीया में अपने घर में भोजन नहीं करना चाहिए। यत्न से बहन के हाथ से ही भोजन करे ऐसा करने से धन धान्य और सुख की प्राप्ति होती है। सभी बहनों की वस्त्र और आभूषण से पूजा करनी चाहिए। अपनी बहन के न रहने पर मित्रादि के बहनों को पूजे। बहन भी भाई के पूजन में विधवा नहीं होती और भाई बहुत दिन तक जीता है। ऐसा न करने पर सात जन्म तक भाई का सुख नहीं होता। यह द्वितीया पहले दिन ही अपराह्ण में रहने से पहले ही दिन करे। दोनों दिन में रहने न रहने आदि दूसरे पक्षों में परा द्वितीया लेनी चाहिए। इस द्वितीया में यमुना का स्नान, अपराह्ण में चित्रगुप्त और यमदूत के साथ यमराज का पूजन तथा यम को अर्घ्यदान विहित है।

अथ वह्निषष्ठी (रविषष्ठी)

कार्तिकशुक्लषष्ठ्यां[1] भौमयुतायां वह्निं समभ्यर्च्य तत्प्रीत्यर्थं विप्रभोजनं कार्यम्।

द्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद् यमम्। स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति ॥' भानुजायाम् = यमुनानदी में।

१. मत्स्यपुराण में कार्तिकशुक्ल षष्ठी वह्निषष्ठी है—'वृश्चिकार्के शुक्लषष्ठी भौमवारेऽप्युपस्थिते। महाषष्ठीति सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः ॥ तस्यां स्वपिति वै वह्निः पूर्वत्रोपोष्य वै दिने। षष्ठ्यां वह्निं समभ्यर्च्य कुर्याद् वह्निमहोत्सवम् ॥' 'षण्मुन्योः' इस वचन से यह सप्तमीविद्धा ग्राह्य है।

कार्तिकशुक्ल षष्ठी रविषष्ठी (छठ)भी सप्तमीविद्धा ग्राह्य है। यथा ब्रह्मवैवर्ते—'न हि षष्ठी नागविद्धा कर्तव्या तु कदाचन। नागविद्धा तु या षष्ठी कृतपुण्यक्षया भवेत्। सप्तम्या सह कर्तव्या महापुण्यफलप्रदा ॥' स्कन्दपुराण में—'नागविद्धा न कर्तव्या षष्ठी चैव कदाचन। सप्तमीसंयुता कार्या षष्ठी धर्मार्थचिन्तकैः ॥' सौरपुराणे—'नागविद्धा तु या षष्ठी शिवविद्धा तु सप्तमी। दशम्येकादशीविद्धा नोपोष्या तु कथंचन ॥' विष्णुधर्मोत्तरे—'एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी। अमावास्या तृतीया च ता उपोष्याः परान्विताः ॥' तथा —'नागविद्धां तु ये षष्ठीमुपोष्यन्तीह मानवाः। वृद्धिः श्रेयश्च कल्याणं तेषां नश्यन्ति पूर्वजम् ॥ सगरेण कृता पूर्वं पञ्चम्या सह भारत। हतं पुत्रसहस्रं तु तस्माद् विद्वान्न कारयेत् ॥' कालमाधवोक्त-लिङ्गपुराणे—'षष्ठ्यामुपोष्य विधिवत् सप्तम्यामर्कमर्चयेत्। स द्रव्यभागरुक् चैव सम्प्राप्नोतीप्सितं फलम् ॥' द्वैतनिर्णये—'षष्ठीसमेता कर्तव्या सप्तमी नाष्टमीयुता। पतङ्गोपासनायाथ षष्ठ्यामाहुरुपोषणम् ॥' पतङ्गः = सूर्यः।

इन अनेक वचनों से सिद्ध है कि सूर्यव्रत में षष्ठी सप्तमीयुता ही ग्राह्य है। यदि उदयकाल में षष्ठी थोड़ी हो उसके बाद सप्तमी हो तो वही ग्राह्य है और उसी दिन सायंकाल का प्रथम अर्घ विहित है। तिथिचन्द्रिकामें—'कलाकाष्ठानिमेषोऽपि यदि स्यादपरेऽहनि। षष्ठ्याः कथञ्चिद् विप्रेन्द्र सैवोपोष्या प्रयत्नतः ॥ द्वितीय अर्घ सप्तमीयुक्त सूर्योदय में मुख्य है। तिथिनिर्णय में श्रीराजनाथ मिश्र ने लिखा—'पूर्वदिनं सायमर्घादिना पूजने षष्ठी वा सप्तमी ग्राह्येति न नियमः। प्रधानीभूतोत्तरत्रार्घदानस्य तदङ्गोपवासस्य वा अङ्गतयैव तदाचरणात्।'

अत एव सप्तमी के क्षय होने पर पुराणान्तर में कहा—'षष्ठ्याश्चैका कला यत्र तत्र सप्त-

कार्तिक शुक्लपक्ष की षष्ठी में मंगलवार के योग होने पर अग्नि की पूजा करके उसकी प्रसन्नता के लिए ब्राह्मण-भोजन करावे ।

अथ गोपाष्टमी

कार्तिकशुक्लाष्टमी गोपाष्टमी । अत्र गोपूजनगोप्रदक्षिणगवानुगमनैरिष्टकामावाप्तिः । कार्तिकशुक्लनवम्यां[1] मथुराप्रदक्षिणोक्ता । इयं युगादिरपि । अस्यां पूर्वाह्णव्यापिन्यामपिण्डकं श्राद्धमुक्तम् । अत्र विशेषो वैशाखप्रकरणे उक्तः ।

कार्तिक शुक्लपक्ष की अष्टमी को गोपाष्टमी कहते हैं । इसमें गाय का पूजन, गाय की प्रदक्षिणा करने और गाय के पीछे-पीछे चलने से मनोरथ की सिद्धि होती है । कार्तिकशुक्ल नवमी में मथुरा की प्रदक्षिणा कही गई है । यह नवमी युगादि तिथि भी है । पूर्वाह्णव्यापिनी नवमी में विना पिण्ड का श्राद्ध कहा है । इसमें विशेष बातें वैशाख प्रकरण में कह चुके हैं ।

अथ भीष्मपंचकव्रतम्

एकादश्यादिदिनपञ्चके [2]भीष्मपञ्चकव्रतमुक्तम् । तच्च शुद्धैकादश्यामारभ्य चतुर्दश्यविद्धौदयिकपौर्णमास्यां समापनीयम् । यदि शुद्धैकादश्यामारम्भे क्षयवशेन पौर्णमास्यां पञ्चदिनात्मकव्रतसमाप्तिर्न घटते तदा विद्धैकादश्यामप्यारम्भः । शुद्धैकादश्यामारम्भेपि दिनवृद्धिवशेन परविद्धपौर्णमास्यां समापने यदि षड्दिना-

---

हितो रविः । तत्र क्रतुशतं पुण्यमष्टम्यां पारणेन तु ।। षष्ठी च सप्तमी चैव रात्रिशेषे यदाऽष्टमी । त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता यथा चैकादशी पुनः । शुद्धैव सप्तमी ज्ञेया उपोष्या फलकाङ्क्षिभिः । अष्टम्यां पारणं कुर्याद् व्रतमेतन्नराधिप ।।'

इसी प्रकार जिस दिन उदयकाल में षष्ठी और सायंकाल में षष्ठी न भी रहे फिर भी सप्तमी के अनुरोध से सायंकाल में प्रथम अर्घ देय है । जब पंचमी की वृद्धि और षष्ठी का क्षय हो तब जिस दिन षष्ठी का क्षय हो उसी दिन सायंकाल प्रथम अर्घ और द्वितीय दिन में द्वितीय अर्घ देना चाहिये, यह कृत्यशिरोमणि में स्पष्ट है । केवल स्कन्दव्रत में ही षष्ठी पूर्वयुता ग्राह्य है, जैसा कि वसिष्ठ ने कहा—'कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रि-चतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ।।' इति ।

१. यह अक्षय-नवमी नाम से प्रसिद्ध है । यथा पद्मपुराणे—'कार्तिके नवमी शुक्ला पितॄणामुत्सवाय च । तस्यां स्नातं हुतं दत्तमनन्तफलदं भवेत् ।।' देवीपुराणे—'शुक्लपक्षे नवम्यां तु कार्तिकस्य समाहितः । स्नायाद्दद्यान्नमस्कुर्यादक्षयं लभते फलम् ।।' इसमें कूष्माण्ड के भीतर रत्नादि रखकर दान आदि का महत्त्व है ।

पद्मपुराण में इसी तिथि में विष्णु का त्रिरात्र व्रत कहा—'कार्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः । हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभुम् ।। पूजयेद् विधिना भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् । एवं यथोक्तविधिना कुर्याद् वैवाहिकं विधिम् ।।' इति ।

२. नारदः—'अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् । कार्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग् यतव्रतः ।। एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ।' भविष्यपुराण में पांच दिन तक शाक या मुन्यन्न-सेवन का निर्देश है—'यद् भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृतिपञ्चदशीनिरुद्धम् । मुन्यन्नभोजनपरस्य नरस्य तस्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा ।।' पद्मपुराणे—'पञ्चाहं पञ्चगव्याशी भीष्मायार्घ्यं च पञ्चसु । अहःस्वपि तथा दद्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ।।' मन्त्रः—'वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च । गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम् ।। अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे । वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च । अर्घ्यं ददामि भीष्माय सोमवंशोद्भवाय च ।।' इति ।

पत्तिस्तदा चतुर्दशीविद्धपूर्णिमायामपि समाप्तिः कार्या। व्रतप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

एकादशी से पाँच दिन तक भीष्मपञ्चकव्रत कहा है। इसे शुद्ध एकादशी से आरंभ करके चतुर्दशी से विद्ध न होने पर उदयकालिक पूर्णिमा में समाप्त करे। यदि शुद्ध एकादशी में आरम्भ करने पर क्षय के कारण पूर्णिमा में पाँच दिन का व्रत समाप्त नहीं होती हो तो विद्धा एकादशी से ही प्रारम्भ करे। शुद्ध एकादशी में आरम्भ करने पर भी तिथिवृद्धि के कारण परविद्धा पूर्णमासी में समाप्त करने से यदि छ दिन हो जाते हैं तो चतुर्दशीविद्धा पूर्णिमा में भी समाप्ति करे। व्रत का विधान कौस्तुभ आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए।

अथैकादश्यां शिवविष्णुदीक्षा

कार्तिकमासे एकादश्यादिपर्वणि चन्द्रतारादिबलान्विते शिवविष्णुमन्त्र-ग्रहणादिरूपा [1]दीक्षा कर्तव्या। 'कार्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मविमोचनी' इति नारदोक्तेः। तथात्र तुलसीकाष्ठमालाधारणमुक्तं स्कान्दद्वारकामाहात्म्ये विष्णु-धर्मे च—

निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसंभवाम्।
वहते यो नरो भक्त्या तस्य नैवास्ति पातकम्॥
तुलसीकाष्ठसंभूते माले कृष्णजनप्रिये।
बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्णवल्लभम्॥
एवं संप्रार्थ्यविधिवन्मालां कृष्णगलेर्पिताम्।
धारयेत्कार्तिके यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम्॥

इति निर्णयसिन्धौ स्पष्टम्।

कार्तिकमास में एकादशी आदि पर्व में चन्द्रमा, तारा आदि के बल-युक्त होने पर शिव और विष्णु की मन्त्र-दीक्षा लेनी चाहिए। नारद ने कहा है कि—कार्तिक मास की ली हुई दीक्षा मनुष्यों के जन्म छुड़ानेवाली है। इसी प्रकार इसमें तुलसी के काठ की माला का धारण करना कहा है। स्कन्दपुराण में द्वारका-माहात्म्य और विष्णुधर्म में भी जो भगवान् को तुलसी के काठ की माला का निवेदन करके धारण करता है उसको पातक नहीं होता। तुलसी-काठ की बनी कृष्णजन का प्रिय हे माले! मुझे कृष्ण का प्रिय करो इसलिए मैं तुम्हें कण्ठ में धारण करता हूँ। इस आशय के मंत्र से प्रार्थना करके जो कृष्ण के गले में अर्पित-माला को कार्तिक में धारण करता है वह वैष्णवपद को प्राप्त करता है। यह निर्णयसिन्धु में स्पष्ट है।

---

१. यामलतन्त्र में दीक्षा शब्द की व्युत्पत्ति—'दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्। तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः॥ दीक्षाग्रहण की आवश्यकता—'अदीक्षितानां मर्त्यानां दोषं शृण्वन्तु साधकाः। अन्नं विष्ठासमं ज्ञेयं जलं मूत्रसमं तथा॥ अदीक्षितकृतं श्राद्धं श्राद्धं चादीक्षितस्य च। गृहीत्वा पितरस्तस्य नरके चाशु दारुणे॥ पतन्त्येव न सन्देहो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। तथाप्यदीक्षितस्यार्चां देवा गृह्णन्ति नैव हि॥' ताराकल्प में बतलाया कि किन से दीक्षा न लेनी चाहिये—'पितुर्दीक्षा यतेर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनः। अनाश्रमाणां या दीक्षा सा दीक्षा दुःखदायिनी॥' चिदम्बररहस्य में स्त्रियों के लिये कहा—'पतिव्रतानां सर्वासां पतिरेव गुरुः स्मृतः। तस्मादेव तु सा दीक्षां गृह्णीयाद् भक्तिसंयुता॥' इति। विशेष विवेचन तन्त्र-ग्रन्थों में देखें।

यत्तु तत्रैव मालाधारणप्रकरणान्ते सर्वपुस्तकेष्वदृश्यमानमपि 'अत्र मूलं चिन्त्यम्' इति वाक्यं क्वचिन्निर्णयसिन्धुपुस्तके दृश्यते तस्य मालाधारणविधिवाक्यानां नाप्रामाणिकत्वे तात्पर्यम्। स्वयमेव स्कन्दपुराणस्थविष्णुधर्मस्थत्वेनोक्तानां स्वयमेवाप्रामाणिकत्वोक्तौ व्याघातप्रसंगात्।

तुलसीकाष्ठघटितै रुद्राक्षाकारकारितैः।
निर्मितां मालिकां कण्ठे निधायार्चनमारभेत्॥
तुलसीकाष्ठमालाया भूषितः कर्म आचरन्।
पितॄणां देवतानां च कृतं कोटिगुणं भवेत्॥

जो कि निर्णयसिन्धु में ही मालाधारण-प्रकरण के अन्त में सब पुस्तकों में नहीं दिखाई पड़ने वाला भी 'यहाँ मूल चिन्त्य है' यह वाक्य किसी निर्णयसिन्धु की पुस्तक में दिखाई देता है। उसके मालाधारण-विधि-वाक्यों की अप्रामाणिकता में तात्पर्य नहीं है। स्वयं ही स्कन्दपुराण और विष्णुधर्म में स्थित विधि-वचनों को कहा है अतः स्वयं उसको अप्रामाणिक कहना ठीक नहीं है। तुलसी काठ की बनायी हुई रुद्राक्ष के आकार की माला को कण्ठ में पहनकर पूजन प्रारम्भ करे। तुलसी के काठ की माला से अलंकृत हो दैव-पित्र्य-कर्म कोटिगुण-फलदायक होता है।

इति पद्मपुराणे पातालखण्डे नवसप्ततितमाध्याये प्रत्यक्षोपलभ्यमानवचनविरोधाच्च। किंत्वाषाढमासप्रकरणे आषाढशुद्धद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कार्यमित्युक्त्वा तत्र प्रमाणत्वेन 'आभाकासितपक्षेषु' 'मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः' इत्यादीनि भविष्यस्थविष्णुधर्मस्थानि वाक्यानि लिखित्वा यथान्ते 'इदं निर्मूलम्' इत्युक्तम्। एवं प्रकरणान्तरेपि तस्य च माधवादिमूलग्रन्थेषु नोपलभ्यत इत्येव तत्परिभाषातात्पर्यं न त्वप्रामाणिकत्वे।

इस प्रकार पद्मपुराण पातालखण्ड के ७९ अध्याय में प्रत्यक्ष-प्राप्त-वचन का विरोध भी है। किन्तु आषाढ़मास के प्रकरण में आषाढ़ शुद्ध द्वादशी में अनुराधा नक्षत्र का योग न होने पर पारण करना चाहिए, यह कह कर उसके प्रमाण में 'आभाकासितपक्षेषु' और 'मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः' इत्यादि भविष्यपुराण और विष्णुधर्म के वाक्यों को लिखकर 'यह निर्मूल है' ऐसा कहा है। इसी प्रकार दूसरे प्रकरणों में भी कहा है उसको माधव आदि के मूलग्रन्थों में नहीं होने से इतना ही मात्र उस परिभाषा का तात्पर्य है, न कि उसकी अप्रामाणिकता में तात्पर्य है।

तथात्वे भाद्रकार्तिकयोस्तद्वाक्यानुसारेण पारणनिर्णयलेखनासाङ्गत्यप्रसंगात्। कौस्तुभादिसर्वनवीनग्रन्थेषु तद्वाक्यानुसारेणैव निर्णयस्यासंगत्यापाताच्च। सर्वशिष्टानां तदनुसारेणैव पारणाचरणस्याप्यप्रमाणत्वापत्तेश्च, तद्वदत्रापि ज्ञेयम्। एतेन माधवादिष्वनुपलम्भादेवाप्रामाण्यापत्तिरितिनिरस्तम्। बहूनां माधवाद्यलिखितानां वाक्यानामाचाराणां चाप्रामाण्यापत्तेः। यत्र तु यानि यत्तु इत्येवमादिरूपेण यत्पदोपक्रममनूद्य तानि निर्मूलानीत्येवमादिरीत्या दूष्यन्ते। यथा श्रवणद्वादशीप्रकरणे श्रवणस्योत्तराषाढावेधनिषेधकवाक्यानि तत्र तेषामप्रमाणत्व एव सर्वथा तात्पर्यमिति सूक्ष्मबुद्धयो विदांकुर्वन्तु।

ऐसा होने पर भाद्रपद और कार्तिक मास में उनके वाक्य के अनुसार पारण का निर्णय लिखना संगत नहीं होगा। क्योंकि कौस्तुभ आदि सब नवीन-ग्रन्थों में उनके वाक्य के अनुसार ही निर्णय की असंगति आ जायगी और सब शिष्ट-लोगों के उसी के अनुसार पारणा चरण के अप्रामाण्य की आपत्ति होगी, उसी तरह यहाँ भी जानना चाहिए। इससे माधव आदि के ग्रन्थों में नहीं मिलने से अप्रामाण्य है यह आपत्ति हट गयी। क्योंकि बहुत से माधव आदि के नहीं लिखे वाक्यों और आचारों की अप्रामाणिकता हो जायगी। जहाँ 'यानि' 'यत्तु' इस प्रकार के रूप से 'यत्तद' के आरम्भ का अनुवाद करके वे निर्मूल हैं इत्यादि रीति से दोष दिये जाते हैं। जैसे श्रवणद्वादशी प्रकरण में श्रवण का उत्तराषाढ़ावेध का निषेधक वचन, उसमें उनका सर्वथा अप्रामाण्य में ही तात्पर्य है, यह सूक्ष्म-बुद्धि वाले लोग जानें।

ननु माधवादिग्रन्थेष्वनुपलम्भान्न निर्मूलत्वमुच्यते किंतु काष्ठमालाधारण-निषेधवाक्यानां बाधकानामुपलम्भादिति चेत् ? किं तानि वाक्यानि सामान्यतः काष्ठमालाधारणनिषेधकानि दृश्यन्ते विशेषतस्तुलसीकाष्ठमालानिषेधकानि वा। आद्ये सामान्यतः काष्ठमालानिषेधकवाक्यानां विशेषरूपैस्तुलसीधात्रीकाष्ठमाला-धारणविधिवाक्यैर्बाधः स्पष्टः। द्वितीये [1]षोडशीग्रहणाग्रहणवद्विहितप्रतिषिद्धत्वेन विकल्पमवगच्छ। स च विकल्पो वैष्णवावैष्णवविषयतया व्यवस्थितो भविष्यति। मूलवाक्येषु विष्ण्वादिपदश्रवणादिति न निर्मूलत्वसंभवः। अत एवैतद्वाक्यानां माधवाद्यनुल्लेखस्याशयो हरिवासरलक्षणवाक्ये पुरुषार्थचिन्तामणौ वैष्णवानामे-वावश्यकत्वादेतदनुपन्यासेपि माधवादीनां न न्यूनतेत्युक्तया रीत्योहितुं शक्यः। एवं धात्रीकाष्ठमालाधारणविधिर्ज्ञेयः।

क्या माधव आदि ग्रन्थों में वचन न मिलने से निर्मूल नहीं है, किन्तु काष्ठमाला-धारण के निषेध वाक्यों के बाधकों की प्राप्ति से ऐसा कहो तो वे कौन वचन हैं क्या वे काष्ठमाला पहनने के निषेधक वचन हैं ? या विशेषतः तुलसीकाष्ठ की माला के निषेध करने वाले हैं ? पहले में सामान्यतः काष्ठमाला के निषेध करने वाले वाक्यों और विशेष रूप से तुलसी आँवला के काष्ठ-माला-धारण करने के विधि-वाक्यों से स्पष्ट ही बाध है। दूसरे षोडशी ग्रहण और नहीं ग्रहण की तरह विहित और निषिद्ध होने से विकल्प जानो। वह भी वैष्णव और अवैष्णव के विषय में व्यवस्थित विकल्प होगा। क्योंकि मूलवाक्यों में विष्णु आदि पद के श्रवण से निर्मूलत्व सम्भव नहीं है। इसीलिए इन वाक्यों का माधव आदि के न लिखने का आशय हरिवासर-लक्षण-वाक्य में पुरुषार्थचिन्तामणि में वैष्णव का ही आवश्यक होने से इसके न लिखने से भी माधवादि की न्यूनता नहीं है, इस उक्त रीतिसे कल्पना कर सकते हैं। इसी तरह आँवला-काठ के माला-धारण की विधि जाननी चाहिए।

रामार्चनचन्द्रिकादौ तुलसीकाष्ठमालया जपविधिवाक्यानि तुलसीकाष्ठघटि-तैर्मणिभिर्जपमालिकेत्यादीनि स्पष्टानि। एवं ग्रन्थान्तरेषु बहूनि वाक्यान्यु-पलभ्यन्ते। तथा च प्रयोगपारिजाताह्निके पूजाप्रकरणे उक्तम्—आदौ देवपूजा-

---

१. विकल्प दो प्रकार का होता है व्यवस्थित-विकल्प और तुल्य-विकल्प। 'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति। नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' इत्यादि में षोडशी के ग्रहण तथा अग्रहण के विधान और प्रति-षेध की तरह यहाँ मूलोक्त-वाक्य वैष्णव अवैष्णव परक मानकर व्यवस्थित-विकल्प है।

साधनमग्रोदकगन्धपुष्पाक्षतादिकं संभृत्य पादौ पाणी प्रक्षाल्य यथाशक्ति धृतदुकूलादिशुद्धवस्त्रो भूषणभूषितो मुक्ताफलप्रवालपद्माक्षतुलसीमणिनिर्मितमालाः कण्ठे धृत्वा इति सर्वदेशीयवैष्णवेषु तुलसीकाष्ठमालाधारणजपाचारश्चोपलभ्यते। भस्मादिधारणद्वेषिवैष्णवस्पर्धया शैवागमाग्राहिभिः केवलं द्विष्यत इत्यलं बहुनेति दिक्।

रामार्चनचन्द्रिका आदि में तुलसी-काष्ठ की माला से जप करने के विधि-वाक्य, तुलसी के काठ की बनी हुई मनियों से जपमालिका होती है इत्यादि वचन स्पष्ट हैं। इस प्रकार दूसरे ग्रन्थों में भी बहुत से वचन मिलते हैं। जैसे प्रयोगपारिजात के आह्निकपूजा प्रकरण में कहा है। आरम्भ में देवपूजा का साधन अग्रोदक, गन्ध, पुष्प, अक्षत, आदि को इकट्ठा करके हाथ-पैर धो कर यथाशक्ति शुद्ध वस्त्र धारण कर अलंकरणों से अलंकृत मोती, मूंगा, कमल, तुलसी मणि से बनी हुई माला कण्ठ में धारण करके यह सम्पूर्ण देश के वैष्णवों में तुलसी काठ के माला का धारण और उसीसे जप करने का आचार मिलता है। भस्मादि धारण के विरोधी वैष्णवों की स्पर्धा से शैव आगम ग्रहण करने वाले केवल विरोध करते हैं। अत बहुत लिखने से क्या ?

अथ धात्रीमूले देवपूजाविधिः

'सर्वपापक्षयद्वारा श्रीदामोदरप्रीत्यर्थं धात्रीमूले श्रीदामोदरपूजां करिष्ये।' पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य गन्धपुष्पफलयुतमर्घ्यं दद्यात्—

अर्घ्यं गृहाण भगवन्सर्वकामप्रदो भव।
अक्षया संततिर्मेस्तु दामोदर नमोस्तु ते॥

ततोऽपरासहस्राणीति प्रार्थ्य धात्रीं कुंकुमगन्धादिनाभ्यर्च्य पुष्पैः पूजयेत्। धात्र्यै नमः शान्त्यै न० मेधायै० प्रकृत्यै० विष्णुपत्न्यै० महालक्ष्म्यै० रमायै० कमलायै० इन्दिरायै० लोकमात्रे० कल्याण्यै० कमनीयायै० सावित्र्यै० जगद्धात्र्यै० गायत्र्यै० सुधृत्यै० अव्यक्तायै० विश्वरूपायै० सुरूपायै० अब्धिभवायै०।

'सब पापों के नाश के द्वारा दामोदर भगवान् की प्रसन्नता के लिए आँवले के नीचे जड़ में दामोदर भगवान् की पूजा करूँगा।' पुरुषसूक्त से षोडशोपचारपूजा करके गन्ध पुष्प फल से युक्त अर्घ्य देवे—हे भगवन्! हमारा अर्घ्य ग्रहण करके मनोरथ को पूर्ण कीजिए। मेरे सन्तान अक्षय हों, हे दामोदर! आपको नमस्कार है। इसके बाद 'अपराधसहस्राणि' इससे प्रार्थना करके आँवले के पेड़ को गन्धादि से पूजा करके फूलों से पूजा करें। पूजा के धात्र्यै नमः इत्यादि मंत्र मूल में अंकित हैं देखें।

ततो धात्रीमूले सव्येन तर्पणं कार्यम्—

पिता पितामहश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः।
ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं०।

दामोदरनिवासायै धात्र्यै देव्यै नमोस्तु ते।
सूत्रेणानेन बध्नामि सर्वदेवनिवासिनीम्॥

इति सूत्रेण वेष्टयेत् । धात्र्यै नम इति चतुर्दिक्षु बलीन् दत्त्वाऽष्टदीपान्दद्यात् । अष्टकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य नमेत्—

धात्रीदेवि नमस्तुभ्यं सर्वपापक्षयंकरि ।
पुत्रान्देहि महाप्राज्ञे यशो देहि बलं च मे ॥
प्रज्ञां मेधां च सौभाग्यं विष्णुभक्तिं च शाश्वतीम् ।
नीरोगं कुरु मां नित्यं निष्पापं कुरु सर्वदा ॥

ततो घृतपूर्णं सहेमकांस्यपात्रं दद्यादिति संक्षेपः ।

अनन्तर आँवले की जड़ में सव्य से तर्पण करे । पिता, पितामह और जो पुत्र वाले नहीं हैं ऐसे हमारे गोत्र वाले आँवले की जड़ में दिया हुआ अक्षय जल पीवें, ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त देवता ऋषि और मनुष्यादि आँवले की जड़ में दिये हुए अक्षय जल को पीवें, ऐसा कहे । दामोदर भगवान् के यहाँ रहने वाली धात्री देवी को नमस्कार है । सब देवताओं में निवास करने वाली आप को इस सूत से मैं बांधता हूँ । इस आशय के मंत्र से सूत लपेटे । धात्र्यै नमः ऐसा कहके चारों दिशाओं में बलि देकर आठ दीप देवे । आठ बार प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे । हे धात्री देवी ! सब पापों को नाश करने वाली आपको नमस्कार है । हे महाप्राज्ञे ! पुत्र, यश, बल, बुद्धि, प्रज्ञा, मेधा, सौभाग्य और निरन्तर विष्णुभक्ति दीजिये । मुझे सदा नीरोग और सदा पापरहित कीजिये । इसके बाद काँसे के पात्र में घी भर कर सुवर्ण के सहित दान करे, यह संक्षेप से कहा है ।

अथ पारणानिर्णयः

कार्तिकशुक्लद्वादश्यां[1] रेवतीयोगरहितायां पारणम् । अपरिहार्ययोगे चतुर्थपादो वर्ज्य इत्यादिविशेषः श्रवणनिर्णयप्रकरणोक्तो द्रष्टव्यः ।

कार्तिकशुक्ल द्वादशी रेवतीनक्षत्ररहित में पारण करे । यदि रेवती के योग के बिना द्वादशी न हो तो रेवती के चौथे पाद को छोड़कर पारण करे । इत्यादि विशेष, श्रवण-निर्णय प्रकरण में कहा हुआ देखना चाहिए ।

अथ प्रबोधोत्सवतुलसीविवाहौ

तत्र प्रबोधोत्सवः कार्तिकशुक्लैकादश्यां[2] क्वचिदुक्तः । रामार्चनचन्द्रिकादौ द्वादश्यामुक्तः । उत्थापनमन्त्रे द्वादशीग्रहणाद् द्वादश्यामेव युक्तः । तत्रापि द्वादश्यां रेवत्यन्त्यपादयोगो रात्रिप्रथमभागे प्रशस्तः । तदभावे तत्रैव रात्रौ रेवतीनक्षत्रमात्रयोगोऽपि । तदभावे रात्रिप्रथमभागे केवलद्वादश्यपि । एवं केवलरेवत्यपि द्वादशीरेवत्योरुभयोरपि रात्रावभावे दिवैव द्वादशीमध्ये कार्यं इति कौस्तुभे स्थितम् ।

---

१. आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । संगमे न हि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशी हरेत् ॥' अर्थात् आषाढ-भाद्रपद-कार्तिकमास के शुक्लपक्ष द्वादशी में अनुराधा-श्रवण-रेवतीनक्षत्र के योग होने पर पारणा न करे । विष्णुधर्मे—'मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति । श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम् ॥' इति ।

२. ब्रह्मपुराणे—'एकादश्यां च शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम् । प्रसुप्तं बोधयेद् रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥' भविष्यपुराणे—'कार्तिके शुक्लपक्षे तु एकादश्यां पृथासुत । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेद् द्विजः ॥' प्रबोधोत्सव शुक्रास्तादि में भी करे । इसकी विधि अन्यत्र देखें ।

तथापि 'पारणाहे पूर्वरात्रौ' इति वचनात्पारणाहे रात्रिपूर्वभागे द्वादश्यभावेपि त्रयोदश्यामेव पारणाहे प्रबोधोत्सव इति देशाचारः ।

उसमें प्रबोध का उत्सव कार्तिकशुक्ल एकादशी में कहा है। रामार्चनचन्द्रिका आदि में द्वादशी में कहा है। उत्थापन के मंत्र में द्वादशी के ग्रहण से द्वादशी में ही ठीक है। उसमें भी द्वादशी में रेवती के चौथे पादका योग रात के प्रथम भाग में उत्तम है। उसके न रहने पर उसी रात में रेवतीनक्षत्र मात्र का योग भी ठीक है। ऐसा न होने पर रात के प्रथम भाग में केवल द्वादशी में भी प्रबोध का उत्सव करे। कौस्तुभ में लिखा है कि केवल रेवती भी द्वादशी और रेवती दोनों रात में न हों तो पर दिन में ही द्वादशी के मध्य में करे। फिर भी पारणा के दिन में पूर्व रात्रि में प्रबोध का उत्सव करे, इस वचन से पारणा के दिन रात्रि के पूर्व भाग में द्वादशी के न होने पर भी त्रयोदशी में ही पारणा के दिन प्रबोधोत्सव होता है, ऐसा देशाचार है।

अथ तुलसीविवाहकालः

एवं तुलसीविवाहस्य नवम्यादिदिनत्रये एकादश्यादिपूर्णिमान्ते यत्र क्वापि दिने कार्तिकशुक्लान्तर्गतविवाहनक्षत्रेषु वा विधानादनेककालत्वं तथापि पारणाहे प्रबोधोत्सवकर्मणा सहतन्त्रतयैव सर्वत्रानुष्ठीयते इति सोपि पारणाहे पूर्वरात्रे कार्यः। प्रबोधोत्सवात्पृथक्चिकीर्षायां कालान्तरे वा कार्यः। तत्र पुण्याहवाचन-नान्दीश्राद्धविवाहहोमाद्यङ्गसहितस्तुलसीविवाहप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

तुलसीविवाह का नवमी आदि तीन दिन में या एकादशी आदि पूर्णिमा तक जिस किसी दिन में कार्तिकशुक्ल के अन्तर्गत विवाहनक्षत्रों में विधान होने से अनेक समय हैं। तथापि पारणा के दिन प्रबोधोत्सवकर्म के साथ तंत्र ही से सर्वत्र किया जाता है। उसे भी पारणा के दिन पूर्वरात्रिमें करना चाहिए। प्रबोधोत्सव से अलग तुलसी-विवाह करने की इच्छा हो तो दूसरे समय में भी करे। उसमें पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, विवाह और होम आदि अंग के सहित तुलसी-विवाह-प्रयोग कौस्तुभ आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए।

संक्षेपतस्तु प्रबोधोत्सवेनैकतन्त्रतया शिष्टाचारमनुसृत्य लिख्यते। देशकालौ संकीर्त्य—'श्रीदामोदरप्रीत्यर्थं प्रबोधोत्सवं संक्षेपतस्तुलसीविवाहविधिं च तन्त्रेण करिष्ये, तदङ्गतया पुरुषसूक्तेन विधिना षोडशोपचारैस्तन्त्रेण श्रीमहाविष्णु-पूजां तुलसीपूजां च करिष्ये'।

संक्षेप से तो प्रबोधोत्सव के साथ एक तंत्र से तुलसी का विवाह शिष्टाचार का अनुसरण करके लिखते हैं। देशकाल को कहकर 'श्रीदामोदर की प्रीति के लिए प्रबोधोत्सव और संक्षेप से तुलसी की विवाह विधि भी तंत्र से करूँगा, उसके अंगस्वरूप पुरुषसूक्त की विधि से षोडशोपचार से तंत्र द्वारा श्रीमहाविष्णु की पूजा और तुलसी की पूजा करूँगा।'

न्यासादि विधाय श्रीविष्णुं तुलसीं च ध्यात्वा 'सहस्रशीर्षा' इति श्रीमहाविष्णुं तुलसीं चावाह्य 'पुरुष एव' इत्यादिभिः श्रीमहाविष्णवे दामोदराय श्रीदेव्यै तुलस्यै च नम आसनमित्यादिस्नानान्ते मङ्गलवाद्यैः सुगन्धितैलहरिद्राभ्यां नागवल्लीदल-गृहीताभ्यां उष्णोदकेन च मङ्गलस्नानं विष्णवे तुलस्यै च सुवासनीभिः कारयि-

त्वा स्वयं वा दत्वा पञ्चामृतस्नानं समर्प्य शुद्धोदकेनाभिषिच्य वस्त्रयज्ञोपवीत-चन्दनं दत्वा तुलस्यै हरिद्राकुंकुमकण्ठसूत्रमङ्गलालंकारान् दत्वा मन्त्रपुष्पान्त-पूजां समाप्य घण्टादिवाद्यघोषेण देवं प्रबोधयेत्। तत्र मन्त्राः—

न्यास आदि करके श्रीविष्णु और तुलसी का ध्यान कर 'सहस्रशीर्षा' इस मंत्र से महाविष्णु और तुलसी का आवाहन कर 'पुरुष एव' इत्यादि मंत्रों से आसन से लेकर स्नानपर्यन्त कर्म करे। मंगल के बाजों से सुगन्धित तेल हल्दी से पान के पत्ते पर लेकर गरम जल से विष्णु और तुलसी को सौभाग्य-वती-स्त्रियों से मंगलस्नान कराकर या स्वयं देकर पंचामृतस्नान का समर्पण करके शुद्ध जल से नहला कर वस्त्र, यज्ञोपवीत और चन्दन चढ़ाकर तुलसी को हल्दी, कुंकुम, कण्ठसूत्र और मंगलदायक आभूषणों को देकर मंत्रपुष्पान्त-पूजा समाप्त कर घंटा आदि बाजों की ध्वनि से देवता को जगावे। उसमें मंत्र यह है—

इदं विष्णु० यो जागारेति तु आचारप्राप्तः।

ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वन्दितवन्दनीय।
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव॥
इयं च द्वादशी देव प्रबोधार्थं तु निर्मिता।
त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तमुत्थिते चोत्थितं जगत्॥

एवमुत्थाप्य चरणं पवित्रं०।

गता मेघा वियच्चैव निर्मलं निर्मला दिशः।
शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव॥

इत्यादिमन्त्राभ्यां पुष्पाञ्जलिं दद्यात्।

'इदं विष्णुः' 'यो जागार' यह तो आचार से प्राप्त है। हे देवेश! हे जगन्निवास! ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, अग्नि, कुबेर, सूर्य और चन्द्रमा आदि से वन्दित हे वन्दनीय! मंत्र के प्रभाव से सुखपूर्वक जागिये। यह द्वादशी आप के जागने के लिए ही बनायी गयी है। शेष पर शयन करने वाले आपने ही सम्पूर्ण लोकों के हित के लिए इस द्वादशी का निर्माण किया है। हे गोविन्द! हे जगत्पते! निद्रा त्यागिये उठिये उठिये आपके सोने पर सम्पूर्ण जगत् सोता है और आपके उठने पर उठता है। इस आशय के मंत्रों से भगवान् को उठाकर 'चरणं पवित्रं' इत्यादि से हे केशव! मेघ चले गये, आकाश निर्मल हो गया, दिशाएँ भी निर्मल हो गयीं, मेरे दिये हुए शरत्काल के पुष्पों को ग्रहण कीजिए। इन दो मंत्रों से पुष्पाञ्जलि दे।

अथाचारात्तुलसीसंमुखां श्रीकृष्णप्रतिमां कृत्वा मध्येन्तःपटं धृत्वा मंगला-ष्टकपद्यानि पठित्वा अन्तःपटं विसृज्याक्षतप्रक्षेपं कृत्वा दामोदरहस्ते तुलसीदानं कुर्यात्—

देवीं कनकसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम्।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया॥

आचार के अनुसार तुलसी के सामने श्रीकृष्ण की प्रतिमा करके बीच में पर्दा लगाकर आठ मंगल श्लोकों को पढ़कर पर्दा हटाकर अक्षत छीट कर भगवान् दामोदर के हाथ में तुलसी का दान करे। इसमें यह मंत्र पढ़े। ब्रह्मलोक के जीतने की इच्छा से सुवर्ण से सम्पन्न सुवर्ण के आभूषणों से युक्त तुलसी देवी को विष्णु के लिए देता हूँ।

'मया संवर्धितां यथाशक्त्यलंकृतामिमां तुलसीं देवीं दामोदराय श्रीधराय वराय तुभ्यमहं संप्रददे' देवपुरतः साक्षतजलं क्षिपेत्। श्रीमहाविष्णुः प्रीयतामित्युक्त्वा इमां देवीं प्रतिगृह्णातु भवान् इति वदेत्। ततो देवहस्तस्पर्शं तुलस्याः कृत्वा 'क इदं कस्मा अदात्कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामं समुद्रमाविश कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते वृष्टिरसि द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी प्रतिगृह्णातु' इति मन्त्रमन्येन वाचयेत्। यजमानः—

'मुझसे बढ़ाई हुई यथाशक्ति अलंकृत इस तुलसीदेवी को दामोदर श्रीधर आप वर को मैं देता हूँ।' देवता के सामने अक्षतसहित जल छोड़े। श्रीमहाविष्णु प्रसन्न हों ऐसा कहके इस देवी को आप ग्रहण करें ऐसा कहे। इसके बाद देवता के हाथ को तुलसी का स्पर्श कराकर मूलोक्त 'क इदं कस्मा अदात्' इत्यादि मन्त्रों को दूसरे से कहलावे। यजमान कहे—

त्वं देवि मेऽग्रतो भूयास्तुलसीदेवि पार्श्वतः।
देवि त्वं पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानान्मोक्षमाप्नुयाम् ॥

'दानस्य प्रतिष्ठासिद्ध्यर्थमिमां दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे' देवपुरतो दक्षिणामर्पयेत्। ततः 'स्वस्तिनो मिमोता०' 'शं न' इत्यादिस्वस्वशाखोक्तानि शान्तिसूक्तानि विष्णुसूक्तानि च पठेयुः। तुलसीयुताय विष्णवे महानीराजनं कृत्वा मन्त्रपुष्पं दत्त्वा सपत्नीकः सगोत्रजः सामात्यो यजमानश्चतस्रः प्रदक्षिणाः कुर्वीत। ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं संकल्प्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात्।

हे तुलसीदेवी! आप मेरे आगे मेरे बगल में और मेरे पीठ की ओर रहें। आप के दान से मैं मोक्ष पा जाऊँ। 'दान-प्रतिष्ठा-सिद्धि के लिए मैं इस दक्षिणा को दे रहा हूँ' ऐसा कहकर देवता के आगे दक्षिणा अर्पित करे। इसके बाद 'स्वस्तिनो मिमीता' और 'शंन' इत्यादि स्वशाखोक्त शान्ति-सूक्त और विष्णु-सूक्तों को भी पढ़े। तुलसीसहित विष्णु का महानीराजन करके मंत्र-पुष्प देकर अपनी पत्नी, गोत्र और अपने मन्त्री के साथ यजमान चार प्रदक्षिणाएँ करे। ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन का संकल्प करके भगवान् को इस कर्म का अर्पण करे।

अथ व्रतोद्यापनम्

एवं देवं प्रबोध्य कार्तिके यद्यद्द्रव्यस्य वर्जनं कृतं तत्तद्द्रव्यमुक्तरीत्या द्रव्यान्तरं च ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा व्रतसंपूर्णतां प्रार्थयेत्—

इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो।
न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ इति।

ततो व्रतं भगवदर्पणं कुर्यात्। [1]चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिरप्यत्रैवेति केचित्।

---

१. महाभारते—'चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः। कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् ॥' लघुनारदीये—'चातुर्मास्यव्रतानां च समाप्तिः कार्तिके स्मृता ॥' इति।

कार्तिकमासव्रतोद्यापनं चातुर्मास्यव्रतोद्यापनं च चतुर्दश्यां पूर्णिमायां वेत्यपरे।

इसी प्रकार भगवान् को जगाकर कार्तिक में जिन-जिन द्रव्यों का वर्जन किया हो, उन-उन द्रव्यों और दूसरे भी द्रव्य को कही हुई विधि से ब्राह्मणों को देकर व्रत-सम्पूर्णता की प्रार्थना करे। पश्चात् हे देव! आप की प्रसन्नता के लिए इस व्रत को किया है। हे प्रभो! इसमें जो कुछ कमी हो वह आप के प्रसाद से हे जनार्दन! पूर्ण हो। इस आशय के मंत्र से व्रत को भगवान् को अर्पित करे। कोई लोग चातुर्मास्यव्रत की समाप्ति भी इसी दिन करते हैं। कार्तिकमासव्रत और चातुर्मास्यव्रत का उद्यापन भी चतुर्दशी या पूर्णिमा में करे ऐसा दूसरे कहते हैं।

अथ वैकुंठचतुर्दशी

पूर्वेद्युरुपवासं कृत्वारुऽणोदव्यापिन्यां चतुर्दश्यां [1]शिवं संपूज्य प्रातः पारणं कार्यम्। तथा च चतुर्दशीयुक्तारुणोदयवति अहोरात्रे उपवासः फलितः। उभयत्रारुणोदयव्याप्तौ परत्रारुणोदये पूजा पूर्वत्रोपवासश्च। केचित्तु विष्णुपूजायामियं निशीथव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तौ निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्येत्याहुः।

पहले दिन उपवास करके अरुणोदय में रहने वाली चतुर्दशी में शिव की पूजा करके प्रातः-काल पारण करे। इससे चतुर्दशी से युक्त अरुणोदय वाले दिन रात में उपवास करना सिद्ध हुआ। दोनों दिन अरुणोदय में रहने वाली चतुर्दशी में दूसरे दिन अरुणोदय काल में पूजन और पहले दिन उपवास करे। कोई लोग तो विष्णुपूजा में चतुर्दशी अर्द्धरात्रिव्यापिनी लेते हैं। दोनों दिन चतुर्दशी के रहने पर अर्द्धरात्रि और प्रदोष में रहने वाली ग्राह्य है, ऐसा कहते हैं।

अस्यामेव चतुर्दश्यां परविद्धायां [2]कार्तिकमासव्रतोद्यापनाङ्गत्वेनोपवासं कृत्वाधिवासनं विधाय,

> रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवाद्यादिमङ्गलैः।
> नराणां जागरे विष्णोर्गीतं नृत्यं च कुर्वताम्॥
> गोसहस्रं च ददतां फलं सममुदाहृतम्।

इत्यादिवाक्यैर्विहितं गीतनृत्यवाद्यविष्णुचरितपठनस्वेच्छालापलीलानुकारैर्ह-

---

१. सनत्कुमारसंहितायां—'वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति कार्तिके। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति॥ महादेवतिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके। स्नात्वा विश्वेश्वरो देव्या विश्वेश्वरमपूजयत्॥' तथा—'ततः प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम्। दण्डपाणेर्महाधाम्नि वनेऽस्मिन् कृतपारणः॥' भविष्यपुराणे—'कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप। सोपवासस्तु सम्पूज्य हरिं रात्रौ जितेन्द्रियः॥' इति।

२. पद्मपुराण में कार्तिकव्रत का उद्यापन—'अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं शृणु। ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती। तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम्॥ तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च। तस्योपरिष्टात् कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम्॥ पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया। रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवाद्यादिमङ्गलैः॥ ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान्। त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत्॥ अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम्। ततो गां कपिलां दद्यात् पूजयेद् विधिवद् गुरुम्॥' इति। विशेष अन्यत्र देखें।

रिजागरं कृत्वा परविद्धपौर्णमास्यां सपत्नीक आचार्यं वृत्वा 'अतो देवा' इति द्वाभ्यां तिलपायसं हुत्वा गोदानं कार्यमिति मासव्रतोद्यापनम् ।

इसी परविद्धा चतुर्दशी में कार्तिकमास के व्रत के उद्यापन का अंगभूत उपवास करे । उपवास और अधिवासन करके रात में गाने बजाने आदि मंगल से जागरण करे । जागने वाले मनुष्य विष्णु का गाना नाचना करें । इससे हजार गौ देने का फल प्राप्त होता है । इन वाक्यों से गाना नाचना विष्णुचरित का पढ़ना अपनी इच्छा से भगवान् की लीला का अनुकरण करते हुए भगवान् के लिए जागरण करके परविद्धा पूर्णिमा में सपत्नीक आचार्य का वरण करके 'अतो देवा' इन दो मंत्रों से तिल और खीर का हवन करके गोदान करे । यह मासव्रत का उद्यापन समाप्त हुआ ।

कार्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च मन्वादिः । सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । अन्यत्पूर्वमुक्तम् । अस्यां चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिः ।

कार्तिकशुक्ल द्वादशी और पौर्णमासी मन्वादि तिथि है । यह पूर्वाह्ण में रहने वाली ग्रहण के योग्य है । अन्य सब पहले कह चुके हैं । इसमें चातुर्मास्यव्रत की समाप्ति होती है ।

अथ चातुर्मास्यव्रतानां समाप्तौ दानानि

तत्र नक्तव्रते वस्त्रयुग्मम् । एकान्तरोपवासे गौः । भूशयने शय्या । षष्ठकालभोजने गौः । व्रीहिगोधूमादिधान्यत्यागे सौवर्णव्रीहिगोधूमादिदानम् । कृच्छ्रव्रते गोयुग्मम् । शाकाहारे गौः । पयोमात्रभक्षणे पयोवर्जने च गौः । मधुदधिघृतवर्जने वस्त्रं गौश्च । ब्रह्मचर्ये स्वर्णम् । ताम्बूलवर्जने वस्त्रयुग्मम् । मौने घण्टा घृतकुम्भो वस्त्रद्वयं च । रङ्गवल्लीकरणे गौः सुवर्णपद्मं च । दीपदानव्रते दीपिका वस्त्रद्वयं च । भूमिभोजने कांस्यपात्रं गौश्च । गोग्रासे गोवृषौ । प्रदक्षिणाशते वस्त्रम् । अभ्यङ्गवर्जने तैलपूर्णघटः । नखकेशधारणे मधुसर्पिर्हेमदानम् । यत्र विशेषतो दानं नोक्तं तत्र स्वर्णं गौश्च । गुडवर्जने गुडपूर्णं ससुवर्णं ताम्रपात्रम् । एवं लवणवर्जने लवणपूर्णं ताम्रपात्रमिति क्वचित् ।

नक्तव्रत करने पर एक जोड़ा वस्त्र का दान करे । एक दिन बीच देकर उपवास करने पर गौ देनी चाहिये । भूमिशयन करने पर शय्यादान करे । छठें काल में भोजन करने पर गौ देनी चाहिये । धान गेहूँ आदि अन्न वर्जन करने पर सोने का धान और गेहूँ आदि देना चाहिये । कृच्छ्र व्रत में एक जोड़ी गाय देवे । सागमात्र खाने पर गौ दे । केवल दूध पीकर रहने पर अथवा दूध छोड़ देने पर भी गौ दे । शहद, दही और घी का त्याग करने पर वस्त्र और गौका दान करे । ब्रह्मचर्य से रहने पर सुवर्ण का दान करे । पान न खाने पर एक जोड़ा वस्त्र का दान करे । मौन रहने पर घंटा और घी भरा घड़ा तथा दोवस्त्र का दान कर्तव्य है । रंगवल्ली करने पर गौ और सोने के कमल का दान करे । दीपदानव्रत में दीप और दो वस्त्र देवे । भूमि पर भोजन के व्रत में कांसे का वर्तन और गौ दे । गोग्रास व्रत में गौ और बैल का दान करे । सौ प्रदक्षिणारूप व्रत में वस्त्रदान करे । शरीर में तेल न लगाने रूप व्रत में तेल से भरे घड़े का दान हितकर है । नख-केश-धारण में शहद, घी और सुवर्ण का दान करे । जहां विशेष दान नहीं कहा है उसमें सोना और गौ देना चाहिये । गुडवर्जन व्रत में तामे के पात्र में गुड़ भरके सोनासहित दान करे । इसी प्रकार नमक के छोड़ने पर ताम्रपात्र में नमक भर कर दान करे, यह भी कहीं कहा है ।

अथ लक्षप्रदक्षिणानमस्कारोद्यापनम्

अस्यामेव लक्षप्रदक्षिणालक्षनमस्काराणामाषाढ्यादावारब्धानामुद्यापनं कार्यम् ।

इसी में लाख परिक्रमा और लाख प्रणामों का उद्यापन आषाढी पूर्णिमा में आरम्भ किये हुए का करना चाहिये ।

अथ तुलसीलक्षपूजाफलादि

एवं तुलसीलक्षपूजां कार्तिके माघे वारभ्य प्रत्यहं सहस्रतुलसीसमर्पणेन लक्षं समाप्य माघ्यां वैशाख्यां वोद्यापनं कार्यम् । एवं पुष्पादिलक्षपूजा अपि । तत्र बिल्वपत्रलक्षेण लक्ष्मीप्राप्तिः फलम् । दूर्वालक्षेणारिष्टशान्तिः । चम्पकलक्षेणायुष्यम् । अतसीलक्षेण विद्या । तुलसीलक्षेण विष्णुप्रसादः । गोधूमतण्डुलादिप्रशस्तधान्यलक्षेण दुःखनाश । एवं सर्वपुष्पैः सर्वकामावाप्तिः ।

कार्तिक या माघ में प्रारम्भ करके प्रतिदिन हजार तुलसी समर्पण करके लाख समाप्त कर माघ की पूर्णिमा या वैशाख की पूर्णिमा में उद्यापन करे । इसी तरह पुष्पादि से लक्षपूजा भी । इसमें लाख बेल पत्र से पूजा करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । लाख दूर्वा से अरिष्ट की शान्ति होती है । लाख चम्पा के पुष्प से आयु की वृद्धि होती है । तीसी के लाख पुष्पों से अर्चन करने पर विद्या की प्राप्ति होती है । लाख तुलसी से पूजन करने पर विष्णु की प्रसन्नता होती है । गेहूँ चावल आदि प्रशस्त धान्य की लाख संख्या से पूजन करने पर दुःख का नाश होता है । इसी प्रकार सब पुष्पों से सम्पूर्ण कामना का लाभ होता है ।

एवं लक्षवर्तिव्रतमपि मासत्रयं कृत्वा कार्तिके माघे वैशाखे वा उत्तरोत्तरप्रशस्ते समापनीयम् । एवं धारणपारणव्रतोद्यापनमपि पौर्णमास्यामेव । कार्तिकमासव्रतानां मासोपवासादीनां द्वादश्यामेव समापनम् । तत्रासंभवे पौर्णमास्याम् । एवं गोपद्मव्रतमाषाढशुक्लैकादश्यादावारम्य प्रत्यहं त्रयस्त्रिंशद्गोपद्मानि विलिख्य गन्धपुष्पैः प्रपूज्य तावत्संख्याकार्घ्यनमस्कारप्रदक्षिणाः कृत्वा कार्तिकद्वादश्यां त्रयस्त्रिंशदपूपवायनं दद्यादेवं वत्सरपञ्चकमनुष्ठायोद्यापनं कुर्यात् । लक्षप्रदक्षिणादिगोपद्मपर्यन्तोद्यापनानामितिकर्तव्यताः कौस्तुभे द्रष्टव्याः ।

इसी प्रकार लाख बत्ती के व्रत भी तीन महीना करके कार्तिक, माघ अथवा वैशाख में उत्तरोत्तर प्रशस्त समय में समाप्त करे । इसी तरह धारण पारण व्रत का उद्यापन भी पूर्णमासी में ही करे । कार्तिकमास के व्रतों को मासोपवास आदि की समाप्ति द्वादशी में ही करे । द्वादशी में न हो सकने पर पूर्णिमा में करे । इसी प्रकार गोपद्म-व्रत आषाढशुक्ल एकादशी से आरम्भ कर प्रतिदिन तैंतीसों गोपद्मों को बनाकर गन्ध पुष्पों से पूजा कर तैंतीस तैंतीस अर्घ्य, नमस्कार और प्रदक्षिणाएँ करके कार्तिक द्वादशी में तैंतीस पुआ वायन देवे । इस प्रकार पाँच वर्ष तक ऐसा करके उद्यापन करे । लक्ष प्रदक्षिणा आदि गोपद्मान्त उद्यापनों की विधि कौस्तुभ में देखना चाहिए ।

कार्तिकपौर्णमास्याः [1]कृत्तिकानक्षत्रयोगे महापुण्यत्वम् । रोहिणीयोगे महा-

---

१. ब्रह्मपुराणे—'पुण्या महाकार्तिकी स्याज्जीवेन्द्वोः कृत्तिकासु च ।' तथा—'आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवति क्वचित् । महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा ॥ यदा तु याम्यं

कार्तिकीत्वम्। कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कार्तिकेयदर्शनं करोति स सप्तसु जन्मसु धनाढ्यो वेदपारगो विप्रो भवेत्।

कार्तिकपौर्णमासी का कृत्तिकानक्षत्र के योग होने से अतिशय पुण्य होता है। रोहिणी के योग में महाकार्तिकी कहलाती है। कार्तिक की पूर्णिमा में कृत्तिकानक्षत्र के योग होने पर जो कार्तिकेय का दर्शन करता है वह सात जन्म तक धनाढ्य और वेद-पारग ब्राह्मण होता है।

अथ पद्मकयोगः

विशाखास्थे सूर्ये सति यद्दिने चन्द्रनक्षत्रं कृत्तिका तत्र पद्मकयोगः। अयं पुष्करतीर्थेऽतिप्रशस्तः। अस्यामेव [1]त्रिपुराख्यदीपदानमुक्तम्।

विशाखा के सूर्य में जिस दिन चन्द्रनक्षत्र कृत्तिका के हों उस दिन पद्मकयोग होता है। यह पुष्करतीर्थ में अत्यन्त उत्तम है। इसी में त्रिपुरानामक दीपदान कहा है।

अथ काम्यवृषोत्सर्गकालः

कार्तिके पौर्णमास्यां [2]काम्यवृषोत्सर्गोऽतिप्रशस्तः। एवं गजाश्वरथघृतधेन्वादिमहादानमपि प्रशस्तम्। वृषोत्सर्गस्याश्विनीपौर्णमासीग्रहणद्वयमयनद्वयं विषुवद्वयं चेति कालान्तराणि। अन्यत्र माघी चैत्री वैशाखी फाल्गुन्याषाढी चेति पौर्णमास्यो रेवतीनक्षत्रं वैधृतिव्यतीपातौ युगादिमन्वादिसूर्यसंक्रान्तिपितृक्षयाहाष्टका अपि काला उक्ताः। अत्र वृषोत्सर्गप्रयोगोऽतिविस्तृतो नानाशाखाभेदभिन्नः कौस्तुभे द्रष्टव्यः।

कार्तिक की पूर्णिमा में काम्य-वृषोत्सर्ग अत्यन्त प्रशस्त है। इसी प्रकार हाथी, घोड़ा, रथ और घृत धेनु आदि महादान अत्युत्तम है। वृषोत्सर्ग का समय आश्विन की पूर्णिमा चन्द्र-सूर्य-ग्रहण उत्तरायण, दक्षिणायन, दोनों विषुव, (मेष तुला की संक्रान्ति) ये भी हैं। दूसरे ग्रन्थों में माघ की पूर्णिमा, चैत्र, वैशाख, फाल्गुन और आषाढ़ की पूर्णिमा, रेवतीनक्षत्र, वैधृतियोग, व्यतीपात, युगादि मन्वादि तिथि, सूर्य की संक्रान्ति, पिता का मरण दिन और अष्टका भी ये काल कहे हैं। इसमें वृषोत्सर्ग का विधान जो अतिविस्तृत, अनेक शाखाओं के भेदों से भिन्न हैं, कौस्तुभ में देखना चाहिए।

भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित्। तिथिः साऽपि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता॥ प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप। सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा॥'

पद्मपुराणे—'विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः। स योगः पद्मको नाम पुष्करेष्वतिदुर्लभः॥ पद्मकं पुष्करे प्राप्य कपिलां यः प्रयच्छति। स हित्वा सर्वपापानि वैष्णवं लभते पदम्॥' इति।

इसी तिथि में सायंकाल विष्णु का मत्स्यावतार हुआ है। यथा पद्मपुराणे—'वरान् दत्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूप्यभवत्ततः। तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम्॥' इति।

१. निर्णयसिन्धौ—'पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः। दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये॥ कीटाः पतङ्गाः मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः। दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्ति नित्यं श्वपचा हि विप्राः॥' इति।

२. मत्स्यपुराणे—'कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्। शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम्॥' इति।

अथ कालभैरवाष्टमीनिर्णयः

कार्तिककृष्णाष्टमी [1]कालाष्टमी। इयं पूर्णिमान्तमासपक्षे मार्गशीर्षे कृष्णाष्टमीत्युच्यते। सेयं मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वैवेति सिन्धौ स्थितम्। प्रदोषव्यापिनीति कौस्तुभे। उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ तदेकदेशस्पर्शे वा परैव। यदा पूर्वत्र प्रदोषव्याप्तिरेव परत्र मध्याह्नव्याप्तिरेव तदा बहुशिष्टाचारानुरोधात्प्रदोषव्याप्त्यैव निर्णयो न मध्याह्नव्याप्त्येति भाति। अत्र कालभैरवपूजां कृत्वा त्रयोऽर्घ्या देयाः। उपवासो जागरश्च कार्यः। इति कार्तिकमासनिर्णयोद्देशः।

कार्तिककृष्ण अष्टमी को कालाष्टमी कहते हैं। इसे पूर्णिमान्त मास के पक्ष में अगहन कृष्णाष्टमी कहते हैं। इसे मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिए। दो दिन मध्याह्नव्यापिनी रहने पर पूर्वा ही ग्राह्य है ऐसा निर्णयसिन्धु में है। कौस्तुभ में प्रदोषव्यापिनी लिखा है। दो दिन प्रदोषव्यापिनी होने पर या एकदेश में स्पर्श होने पर परा ही लेनी चाहिए। जब पहले दिन प्रदोषव्याप्ति ही हो, दूसरे दिन मध्याह्न और प्रदोष दोनों में हो या उसके एकदेश में स्पर्श हो, तब भी परा ही ग्राह्य है। जब पहले दिन प्रदोषव्याप्ति ही हो और दूसरे दिन मध्याह्नव्याप्ति ही हो तब अधिक शिष्टाचार के अनुरोध से प्रदोषव्याप्ति से ही निर्णय करे मध्याह्नव्याप्ति से नहीं, ऐसा मुझे मालूम होता है। इसमें कालभैरव की पूजा करके तीन अर्घ्य देवे और उपवास तथा जागरण भी करे। कार्तिकमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ मार्गशीर्षमासे धनुःसंक्रान्तिः

धनुःसंक्रान्तौ पराः षोडशनाड्यः पुण्याः। अन्यत्प्रागुक्तम्।

धनुष की संक्रान्ति में पर की सोलह घड़ियाँ पुण्यकाल है। बाकी पहले कह चुके हैं।

अथ नागपूजापंचमी

मार्गशीर्षशुक्लपञ्चम्यां[2] नागपूजा दाक्षिणात्यानां प्रसिद्धा। इयं षष्ठीयुता ग्राह्येत्यादिविशेषः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः।

मार्गशीर्षशुक्ल पंचमी नागपूजा दाक्षिणात्यों प्रसिद्ध है। यह पंचमी, षष्ठीयुक्त ग्राह्य है यह सब विशेष प्रथमपरिच्छेद में कह चुके हैं।

अथ चम्पाषष्ठी स्कन्दषष्ठी च

मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी चम्पाषष्ठी महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धा। अत्र तिथिद्वैधे यस्मिन्दिने रविवारभौमवारशततारकावैधृतीनां मध्येऽधिकैर्योगः सा पूर्वा परा वा मुहूर्तत्रय-

---

१. शिवरहस्ये—'नित्ययात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते रवौ। तदोमरूपादनघान्मत्तः श्रीकालभैरवः॥ आविरासीत्तदा लोकान् भीषयन्नखिलानपि।' इस वचन से कालभैरव की उत्पत्ति मध्याह्न में है। इसमें उपवास की ही मुख्यता कही गयी है—'उपोषणस्याङ्गभूतमर्घ्यदानमिह स्मृतम्। तथा जागरणं रात्रौ पूजा यामचतुष्टये॥' त्रिस्थलीसेतौ—'कृत्वा च विविधां पूजां महासम्भारविस्तरैः। नरो मार्गसिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमुत्सृजेत्॥' इति।

२. स्कन्दपुराणे—'शुक्ला मार्गशिरे पुण्या श्रावणे या च पञ्चमी। स्नानदानैर्बहुफला नागलोकप्रदायिनी॥' यह षष्ठीयुता ग्राह्य है—'पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता। तस्यां तु तषिता नागा इतरा सचतुर्थिका॥' इति।

व्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वयेऽपि योगाभावे परैव त्रिमुहूर्ता ग्राह्या। इयमेव [1]स्कन्द-षष्ठी। सा पूर्वा ग्राह्या। अथ सप्तम्यां सूर्यव्रतं तद्विधिः कौस्तुभे। मृगयुतायां पौर्णमास्यां लवणदाने सुन्दररूपता।

मार्गशीर्षशुक्ल षष्ठी चम्पाषष्ठी नाम से महाराष्ट्रदेश में प्रसिद्ध है। इस तिथि के सन्देह में जिस दिन रविवार, मंगलवार, शततारका और वैधृति इनमें से जिस दिन अधिक योग मिले वह तीन मुहूर्त रहने वाली पूर्वा या परा षष्ठी लेनी चाहिए। दो दिन में भी योग के न होने पर तीन मुहूर्तवाली परा ही लेनी चाहिए। यही स्कन्द-षष्ठी है। यह पूर्वा ग्राह्य है। सप्तमी में सूर्य का व्रत होता है, इसकी विधि कौस्तुभ में है। मृगशिरायुक्त पूर्णिमा में लवण-दान करने से सुन्दर रूप होता है।

अथ दत्तात्रेयजयन्ती

मार्गशीर्षपौर्णमास्यां [2]दत्तात्रेयोत्पत्तिः। इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पौर्णमास्यां वा प्रदोषे आश्वलायनैः प्रत्यवरोहणं कार्यम्। तत्र कर्मकालव्यापिनी तिथिः। तत्प्रयोगः प्रयोगरत्नकौस्तुभादौ ज्ञेयः।

अगहन की पूर्णिमा में दत्तात्रेय भगवान् की उत्पत्ति है। यह पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य है। मार्गशीर्षशुक्ल चतुर्दशी या पूर्णिमा में आश्वलायन वालों को प्रत्यवरोहण करना चाहिए। उसमें कर्म के समय में रहने वाली तिथि ग्राह्य है। इसका विधान प्रयोगरत्न और कौस्तुभ आदि से जानना चाहिए।

अथान्वष्टकाः

मार्गशीर्षादिमासचतुष्टयस्य कृष्णाष्टमीष्वष्टकाश्राद्धानि[3]। तत्पूर्वसप्तमीषु पूर्वेद्युःश्राद्धानि तदुत्तरनवमीषु चान्वष्टक्यश्राद्धानि कर्तव्यानि। एवं भाद्रकृष्णपक्षेऽपि अष्टकादिश्राद्धानि कार्याणीति पञ्चाष्टकापक्ष आश्वलायनभिन्नशाखिनाम्। आश्वलायनानां तु मार्गादिचतुरष्टकापक्ष एव। भाद्रपदकृष्णाष्टम्यां तु 'माध्यावर्ष-

१. भृगुः—'कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी। एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्॥' योगविशेष से महाराष्ट्र में इसे चम्पाषष्ठी कहते हैं और यह पूर्वयुता या परयुता ग्राह्य है। ब्रह्माण्डपुराण के मल्लारिमाहात्म्य में इसका योगविशेष—'मार्गे भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी वैधृतिसंयुता। रविवारेण संयुक्ता सा चम्पेतीह कीर्तिता॥' मदनरत्न में—'विशाखा भौमवारेण सा चम्पेतीह कीर्तिता' यह पाठ है। दिवोदासने—'चम्पाषष्ठी सप्तमीयुता' कहा है।

२. स्कन्दपुराण के सह्याद्रिखण्ड में—'मार्गशीर्षे तथा मासि दशमेऽह्नि सुनिर्मले। मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां ज्ञस्य च वासरे॥ जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम्। तं विष्णुमागतं ज्ञात्वा अत्रिर्नामाकरोत्स्वयम्॥ दत्तवान् स्वस्य पुत्रत्वाद् दत्तात्रेय इतीश्वरः॥' इति।

३. यहाँ अष्टकाशब्द कर्मवाचक होता हुआ भी काल का उपलक्षक है, जैसे—'वार्त्रघ्नी पौर्णमासी वृधन्वन्ती अमावास्या' यहाँ पर पौर्णमासी और अमावास्याशब्द कर्माभिधायक होते हुये काल के भी उपलक्षक हैं। अन्यथा 'आग्रहायण्या ऊर्ध्वं तिस्रोऽष्टकाः' इससे प्रतिपदा में ही अष्टकाकर्म की प्राप्ति होगी इसलिये अष्टकाशब्द से अष्टमी उपलक्षित होती है। जैसा कि आश्वलायन ने कहा—'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा' इति।

श्राद्धं करिष्ये' इति संकल्प्य सर्वमष्टकाश्राद्धवत्कार्यम्। सप्तम्यां तु 'माघ्यावर्षश्राद्धं कर्तुं पूर्वेद्युःश्राद्धं करिष्ये' इति संकल्पः। नवम्याम् 'अन्वष्टकाश्राद्धं करिष्ये' इति संकल्प इति विशेषः।

अगहन से चार महीने की कृष्णाष्टमी में अष्टकाश्राद्ध होते हैं। इसके पूर्व की सप्तमी में पूर्वेद्युःश्राद्ध और इसके बाद वाली नवमी में अन्वष्टका श्राद्ध करे। इसी प्रकार भाद्रपद कृष्णपक्ष में भी अष्टकादि श्राद्ध करे। इस प्रकार पाँच अष्टका का पक्ष आश्वलायन शाखा से भिन्न शाखा वालों के लिए है। आश्वलायन वालों का तो अगहन आदि चार अष्टका का ही पक्ष है। भाद्रपद कृष्णाष्टमी में तो 'माघ्यावर्ष श्राद्ध करूँगा' ऐसा संकल्प करके अष्टका श्राद्ध की तरह सब करे। सप्तमी में तो 'माघ्यावर्ष श्राद्ध करने के लिए पूर्वेद्युःश्राद्ध करूँगा' ऐसा संकल्प है। और नवमी में 'अन्वष्टका श्राद्ध करूँगा' यह संकल्प में विशेषता होगी।

एवं भाद्रकृष्णाष्टमीश्राद्धस्य माघ्यावर्षसंज्ञकत्वादाश्वलायनानां चतुरष्टकापक्षः। अन्यशाखिनां पौषादित्र्यष्टकापक्षोऽपि। एवं सर्वा अष्टकाः कर्तुमशक्तेन एकैवाष्टका कार्या। सा च माघपौर्णमास्यनन्तरकृष्णपक्षस्य सप्तम्यामष्टम्यां नवम्यामिति दिनत्रये कार्या। दिनत्रये श्राद्धत्रयं कर्तुमशक्तेन माघकृष्णेऽष्टमीश्राद्धमेव कार्यम्।

एवं भाद्रपद कृष्णाष्टमीश्राद्ध का माघ्यावर्ष नाम होने से आश्वलायनों का चार अष्टका पक्ष है। अन्य शाखावालों के लिये पौष आदि से तीन अष्टका का पक्ष भी है। इस प्रकार सब अष्टका जो नहीं कर सकते वे एक ही अष्टका-श्राद्ध करें। यह माघ की पूर्णिमा के बाद कृष्णपक्ष की सप्तमी, अष्टमी और नवमी इस प्रकार तीन दिन में करे। तीन दिन में तीन श्राद्ध करने में असमर्थ व्यक्ति को माघकृष्ण अष्टमी में ही श्राद्ध करना चाहिए।

तत्राष्टकाश्राद्धेऽपराह्णव्यापिन्यष्टमी ग्राह्या। दिनद्वये व्याप्त्यव्याप्त्यादौ दर्शवन्निर्णयः। अष्टम्यनुरोधेन पूर्वपरदिनयोः पूर्वेद्युःश्राद्धान्वष्टक्यश्राद्धे कार्ये न तु सप्तम्यादेरपराह्णव्याप्तिरपेक्षणीया। एकदिनेऽप्यशक्तस्य प्रत्याम्नायाः—अनडुहो यवसमाहरेत्, अग्निना वा कक्षं दहेत्, अपि वानूचानेभ्य उदकुम्भमाहरेत्, अपि वा श्राद्धमन्त्रानधीयीतेति। क्वचिदुपवासोऽप्युक्तः। एवं श्रवणाकर्मादिपाकसंस्थालोपे प्रतिपाकयज्ञं प्राजापत्यकृच्छ्रं प्रायश्चित्तमुक्तम्। मलमासेऽष्टकाश्राद्धानि न कार्याणीति नारायणवृत्तिः। अष्टकादिश्राद्धत्रयप्रयोगः कौस्तुभप्रयोगरत्नादौ।

इस अष्टकाश्राद्ध में अपराह्ण में रहनेवाली अष्टमी ग्रहण के योग्य है। दो दिन में अपराह्णव्यापिनी रहने या न रहने पर दर्श की तरह निर्णय करे। अष्टमी के अनुरोध से पहले दिन और दूसरे दिन में पूर्वेद्युःश्राद्ध और अन्वष्टकाश्राद्ध करे, सप्तमी आदि को अपराह्णव्यापिनी की अपेक्षा नहीं है। एक दिन में भी अष्टकाश्राद्ध में असमर्थ व्यक्ति श्राद्ध के स्थान में बैल को भूसा खिलावे, या अग्नि से तृण जलावे, अथवा अंगसहित वेद पढ़ने वालों को जल का घड़ा पहुँचावें, अथवा श्राद्ध के मंत्रों को पढ़े। कहीं पर उपवास भी कहा है। इसी तरह श्रवणाकर्म आदि पाकसंस्था के न करने पर प्रत्येक पाकयज्ञ के स्थान में प्राजापत्यकृच्छ्र प्रायश्चित-स्वरूप कहा है। नारायणवृत्ति में लिखा है कि मलमास में अष्टकाश्राद्ध नहीं करे। अष्टका आदि तीन श्राद्धों का विधान कौस्तुभ और प्रयोगरत्न आदि से जानना चाहिये।

अत्राष्टमीश्राद्धे कामकालसंज्ञकौ विश्वेदेवौ। सप्तमीनवम्योस्तु पुरूरवार्द्रवाविति। आहिताग्नेः पूर्वेद्युः श्राद्धाङ्गहोमोऽष्टकाङ्गहोमोऽन्वष्टकाग्नौकरणहोमो दिनत्रये हविःश्रपणं च दक्षिणाग्नौ भवतीति विशेषः। शेषमनाहिताग्निवत्। अष्टकालोपे प्राजापत्यमुपवासो वा प्रायश्चित्तम्। अन्वष्टक्यलोपे तद्दिने शतवारम् 'एभिर्द्युभिः सुमना' इति मन्त्रजपः।

इस अष्टकाश्राद्ध में काम-काल नाम के दो विश्वेदेवा होते हैं। सप्तमी नवमी के श्राद्ध में पुरूरव और आर्द्रव विश्वेदेवा होते हैं। अग्निहोत्री को पहले दिन श्राद्धाङ्गहोम अष्टकाङ्गहोम और अन्वष्टका-अग्नौकरण-होम और तीन दिन हविष्य का पकाना दक्षिणाग्नि में होता है, इतना विशेष है। बाकी सब अनाहिताग्नि की तरह होता है। अष्टका न करने पर प्राजापत्य अथवा उपवास प्रायश्चित होता है। अन्वष्टका न करने पर उस दिन 'एभिर्द्युभिः सुमना' इस मन्त्र का सौ बार जप करे।

अथ द्वादशमासेषु रविवारव्रतम्

मार्गशीर्षादिरविवारेषु काम्यं [1]सौरव्रतमुक्तम्। तत्र भक्ष्याणि—मार्गे तुलसीपत्रत्रयम्, पौषे त्रिपलं घृतम्, माघे तिलानां मुष्टित्रयम्, फाल्गुने त्रिपलं दधि, चैत्रे त्रिपलं दुग्धम्, वैशाखे गोमयम्, ज्येष्ठे तोयाञ्जलित्रयम्, आषाढे मरीचकत्रयम्, श्रावणे त्रिपलाः सक्तवः, भाद्रे गोमूत्रम्, आश्विने शर्करा, कार्तिके सद्धविरिति। इति मार्गशीर्षमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

अगहन आदि के रविवारों में काम्य सौरव्रत कहा है। उनमें भक्ष्य हैं—अगहन में तुलसी के तीन पत्ते, पौष के रविवार में तीन पल घी, माघ में तीन मुठ्ठी तिल, फाल्गुन में तीन पल दही, चैत में

---

१. सूर्याब्जाह्स्कर में रविव्रत—'मार्गे मासि तथा माघे वैशाखाषाढयोरपि। शुक्लपक्षे व्रतं कुर्यात् सम्यग् देवस्य भास्वतः॥' रविव्रत का आरम्भ मार्गशीर्षमास शुक्लपक्ष के प्रथम रविवार और समाप्ति वैशाखमास शुक्लपक्ष के अन्तिम रविवार में करनी चाहिए—'आदौ वृश्चिकमेषान्ते रविवारो यदा भवेत्। तदा रविव्रतारम्भविसर्गौ शास्त्रसम्मतौ॥' साम्बपुराणे—'अलिमेषगते भानौ भगवत्यर्कवासरे। शुक्लपक्षे स विधिवद् व्रतं साम्ब समाचरेत्। धनुर्वृषगते भानौ यः कुर्यात् सवितुर्व्रतम्। सप्तजन्मनि कुष्ठी स्याद् दरिद्रश्चोपजायते॥ देवोत्थानात् परं ग्राह्यं व्रतं देवस्य भास्वतः। कदाचिदलिमेषार्के कृष्णपक्षे न कारयेत्॥

रविव्रत में नक्तव्रत की प्रशंसा। यथा विष्णुधर्मोत्तरे—'ये त्वादित्यदिनं प्राप्य नक्तं कुर्वन्ति मानवाः। सप्तजन्मनि ते प्राप्य सम्भवन्त्यवियोगिनः॥' नरसिंहपुराण में अन्य नक्तव्रतों से रविनक्तव्रत का भेद—'आत्मनो द्विगुणच्छायां यदा सन्तिष्ठते रविः। सौरं नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्॥' अर्थात् अपने शरीर की छाया मध्याह्न के बाद जब पूर्व की ओर द्विगुण हो जाय तब रविनक्त है। यथा अपरार्के—'यदा तु प्राङ्मुखी छाया पुरुषाद् द्विगुणा भवेत्। तदा नक्तं विजानीयादनक्तं त्वन्यथा भवेत्॥' भविष्यपुराणे—'ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन्नक्तं कुर्वन्ति मानवाः। दिनान्ते ते तु भुञ्जी रविषेवो रात्रिभोजने॥'

वैशाख में मलमास होने पर मलमासीय शुक्लपक्ष में ही रविव्रत करना चाहिये, क्योंकि शुद्ध वैशाखशुक्लपक्ष में वृष का सूर्य रहेगा, जो सांबपुराण के 'धनुर्वृषगते भानौ' इस वचन से दूषित है। सूर्याब्जाह्स्करे—'सूर्यव्रतं तु वैशाखे मलमासो यदा भवेत्। तदा तत्रैव कर्तव्यं वृषादित्ये न कारयेत्॥' इति। रविवार में क्षौर-तैल-मांस-गर्मजल-रात्रिभोजन-रति-मध्याह्नस्नान आदि निषिद्ध है।

तीन पल दूध, वैशाख में गोबर, जेठ में तीन अञ्जलि जल, आषाढ़ में तीन कालीमिर्च, श्रावण में तीन पल सत्तू, भाद्रपद में गोमूत्र, आश्विन में चीनी और कार्तिक में हविष्य। मार्गशीर्षमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ पौषे मकरसंक्रान्तिनिर्णयः

दिवामकरसंक्रमे संक्रान्त्यनन्तरं [1]'चत्वारिंशन्नाड्यः पुण्याः। घटिकाद्यल्पदिनशेषे मकरसंक्रान्तौ संक्रान्त्यासन्नपूर्वकाले दिवैव स्नानश्राद्धदानभोजनानि कार्याणि। रात्रौ श्राद्धदानादेर्निषेधात्स्वल्पदिनभागे स्नानश्राद्धस्वभोजनादेः कर्तुमशक्यत्वाद्रात्रौ भोजननिषेधात्पुत्रवद्गृहिण उपवासनिषेधाच्च। तस्मादीदृशे विषये परपुण्यकालत्वं बाधित्वा मकरसंक्रान्तेः पूर्वभाग एव पुण्यत्वं ज्ञेयम्।

दिन में मकरसंक्रान्ति होने पर संक्रान्ति के बाद ४० घड़ी पुण्यकाल होता है। घड़ी आदि से कम दिन बाकी रहते मकर-संक्रान्ति होने पर संक्रान्ति के समीप पूर्वकाल में दिन ही में स्नान, श्राद्ध, दान और भोजन करना चाहिये। क्योंकि रात में स्नान दान आदि के निषेध और अल्पतर समय में स्नान, श्राद्ध और भोजन की अशक्यता तथा रात में भोजन के निषेध और पुत्र वाले गृहस्थ को उपवास का निषेध है। ऐसी स्थिति में पर पुण्यसमय को बाध कर मकरसंक्रान्ति के पूर्व समय में ही पुण्य होता है, यह जानना चाहिये।

रात्रौ पूर्वभागे परभागे निशीथे वा मकरसंक्रमे उत्तरदिनं पुण्यम्। तत्राप्युत्तरदिनपूर्वार्धं पुण्यतरम्। तत्रापि सूर्योदयोत्तरं पञ्चनाड्यः पुण्यतमाः। एवं रात्रिसंक्रान्तिविषयेऽन्यत्रापि यत्र पूर्वदिनोत्तरार्धस्य पुण्यत्वं तत्र दिनान्ते पञ्चनाडीनां पुण्यतमत्वम्। यत्रोत्तरदिनपूर्वार्धस्य पुण्यत्वं तत्रोदयोत्तरं पञ्चनाडीनां पुण्यतमत्वम्।

रात में आधी रात के पूर्वभाग में अथवा परभाग वा ठीक अर्धरात्रि आदि में, मकर संक्रान्ति हो तो दूसरे दिन में ही पुण्यकाल होता है। इसमें भी दूसरे दिन के पूर्वार्ध में अधिक पुण्य तथा सूर्योदय के अनन्तर पाँच घड़ी तक पूर्वार्ध भाग से भी अधिक पुण्य होता है। इसी प्रकार रात्रि संक्रान्ति के विषय में अन्य संक्रान्तियों में भी जहाँ पहिले दिन का उत्तरार्ध पुण्य बतलाया है वहाँ सायंकाल की ५ घड़ियों का अधिक पुण्य होता है। जहां उत्तर दिन का पूर्वार्ध पुण्यकाल कहा है, वहाँ सूर्योदय के बाद ५ घड़ी अत्यन्त पुण्यकाल होता है।

एवं दिवासंक्रमेऽपि संक्रान्तिसन्निहितनाडीनां मकरादिषूत्तरासां कर्कादिषु पूर्वासां पुण्यतमत्वं ज्ञेयम्। 'या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृता' इत्युक्तेः। मुहूर्तचिन्तामण्यादौ तु सूर्यास्तादूर्ध्वं घटीत्रयं संध्याकालस्तत्र मकर-

---

१. धर्मसिन्धुकार का यह निर्णय हेमाद्रि में ब्रह्मवैवर्तके 'त्रिंशत्कर्कोटके नाड्यो मकरे तु दशाधिकाः' इस वचन के अनुसार है। माधव ने वृद्धवसिष्ठ के 'त्रिंशत्कर्कोटके पूर्वा मकरे विंशतिः परा' इस वचन से संक्रान्ति के अनन्तर बीस घड़ी पुण्यकाल कहा है। इसी प्रकार माधव ने वृद्धगार्ग्य के 'यद्यस्तमयवेळायां मकरं याति भास्करः। प्रदोषे वाऽर्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि॥' और भविष्य के 'कार्मुकं तु परित्यज्य झषं संक्रमते रविः। प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि॥' इन वचनों से द्वितीय दिन पुण्यकाल कहा है। विशेष अन्य निबन्धों में देखें।

संक्रमे परदिने पुण्यत्वं बाधित्वा पूर्वदिने पुण्यत्वमुक्तम् । नेदं सर्वत्र धर्मशास्त्रग्रन्थेषु दृश्यते । शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां संक्रान्तिर्ग्रहणाधिका ।

इसी प्रकार दिन की संक्रान्ति में भी दिन की संक्रान्ति के समीप की घड़ियों का मकर आदि संक्रान्तियों में दूसरी और कर्क आदि संक्रान्तियों में पूर्वा का अतिशय पुण्य जानना चाहिये । क्योंकि 'या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यफलाः स्मृताः' ऐसी उक्ति है । मुहूर्तचिन्तामणि आदि में तो सूर्यास्त के बाद तीन घड़ी का सन्ध्याकाल होता है, इसमें यदि संक्रान्ति मकर की हो तो पर दिन के पुण्यकाल को बाधकर पूर्व दिन में पुण्यकाल कहा है । यह बात सभी धर्मशास्त्रग्रन्थों में नहीं मिलती है । शुक्लपक्ष की सप्तमी में संक्रान्ति होने पर ग्रहण से भी अधिक पुण्य होता है ।

अथ मकरसंक्रमणे कृत्यम्

रविसंक्रमणे प्राप्ते न स्नायाद्यस्तु मानवः ।
सप्तजन्मनि रोगी स्यान्निर्धनश्चैव जायते ॥

इति वचनान्मनुष्यमात्रस्य स्नानं नित्यम् । एवं श्राद्धमप्यधिकारिणो नित्यम् । तच्चापिण्डकम् ।

संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः ।
तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥

अयनसंक्रान्तौ त्रिदिनमुपवासः । यद्वा संक्रान्तिमत्यहोरात्रे पुण्यकालवत्यहोरात्रे वोपवासं कृत्वोक्तपुण्यकाले स्नानदानादि कार्यम् ।

सूर्यसंक्रान्ति में जो मनुष्य नहीं नहाता वह सात जन्म तक धनहीन और रोगी होता है इस वचन से मनुष्यमात्र का स्नान संक्रान्ति में नित्य है । इसी प्रकार अधिकारी का संक्रान्ति में श्राद्ध भी नित्य है । श्राद्ध विना पिण्ड का होता है । संक्रान्ति में दाता लोग जो हव्य या कव्य देते हैं उन सबको भगवान् सूर्य जन्म-जन्मान्तर में अवश्य देते हैं । अयन की संक्रान्ति में तीन दिन का उपवास करे । अथवा संक्रान्तिवाले दिन रात में या पुण्यकाल वाले दिन रात में उपवास करके कहे हुए पुण्य काल में स्नान दान आदि करना चाहिये ।

अयमुपवासः सापत्यगृहस्थेन न कार्यः ।

धेनुं तिलमयीं राजन्दद्याच्चैवोत्तरायणे ।
तिलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवगृहे शुभाः ॥
सतिलैस्तण्डुलैश्चैव पूजयेद्विधिवच्छिवम् ।
तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्वर्तनं तिलैः ॥
तिला देयाश्च होतव्या भक्ष्याश्चैवोत्तरायणे ।

शुक्लतिलैर्देवादितर्पणं कृष्णतिलैः पितृतर्पणं च कार्यम । अत्र शम्भौ घृताभिषेको महाफलः । अत्र सुवर्णयुततिलताम्रपात्रं देयम् । तत्प्रयोगो वक्ष्यते ।

यह उपवास सन्तान वाले गृहस्थ को नहीं करना चाहिये । उत्तरायण संक्रान्ति में तिल की धेनु का दान करे और शिवमन्दिर में तिल के तेल का दीप जलाना शुभप्रद है । तिलसहित चावल से सविधि शङ्कर की पूजा करे । उत्तरायण संक्रान्ति में काले तिल से स्नान करना और तिल

का उबटन लगाना, तिल का दान करना, तिल से होम करना और तिलों का भक्षण करना चाहिए। सफेद तिलों से देवतर्पण और काले तिलों से पितृतर्पण भी करना धर्म है। इसमें शङ्कर भगवान् का घृत से अभिषेक करना महाफलदायक है। इस संक्रान्ति में ताम्रपात्र में सोने के साथ तिल का दान भी होता है, इसका विधान आगे कहेंगे।

अथ मकरसंक्रान्तौ शिवपूजाव्रतम्

पूर्वदिने उपोष्य संक्रान्तिदिने तिलोद्वर्तनतिलस्नानतिलतर्पणानि कृत्वा शिवं गव्येनाज्येन मर्दयित्वा शुद्धोदकेन प्रक्षाल्य वस्त्राद्युपचारैः पूजयित्वा सुवर्णहीरकनीलपद्मरागमौक्तिकमिति पञ्चरत्नानि कर्षार्धं सुवर्णं वा समर्प्य तिलदीपैः ससुवर्णैः साक्षतैस्तिलैः संपूज्य घृतकम्बलं दत्त्वा वितानचामरे समर्प्य विप्रेभ्यः ससुवर्णतिलान् दत्त्वा तिलान् हुत्वा विप्रान् यतींश्च संभोज्य दक्षिणां दत्त्वा सतिलं पञ्चगव्यं पीत्वा पारणं कुर्यादिति।

संक्राति के पहले दिन उपवास करके संक्रान्ति के दिन तिल का उबटन लगाकर तिल से स्नान कर और तिल से तर्पण करके शङ्कर को गाय के घी से मर्दन कर शुद्धजल से नहला कर वस्त्र आदि उपचार से पूजन कर सुवर्ण, हीरा, नीलम, पद्मराग और मोती को समर्पण कर अथवा आधा कर्ष सुवर्ण चढ़ाकर तिल-दीप सुवर्ण-अक्षत-सहित-तिलों से पूजकर घृत कम्बल देकर चन्दवा तान कर चँवर को समर्पण कर ब्राह्मणों को सुवर्णसहित तिल देकर और तिलों से होमकर ब्राह्मण तथा संन्यासी को भोजन कराकर और उन्हें दक्षिणा देकर तिलसहित पञ्चगव्य पीकर पारण करे।

अत्र वस्त्रदानं महाफलम्। तिलपूर्वमनडवाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते। अत्र क्षीरेण भास्करं स्नापयेत्सूर्यलोकप्राप्तिः। दिवा विषुवायनसंक्रान्तौ तस्मिन्दिने पूर्वरात्रौ आगामिरात्रौ चानध्यायः। रात्रौ तत्संक्रमे तस्यां रात्रौ पूर्वदिवसे आगामिदिवसे चेति पक्षिण्यनध्यायः। अत्र रात्रौ संक्रमे ग्रहणवद्रात्रावेव स्नानदानादीति पक्षः कैश्चिल्लिखितो न सर्वशिष्टसंमतः।

इसमें वस्त्रदेने का विशेष फल है। तिल पूर्वक बैल का दान करने से रोग से मुक्त होता है। इसमें दूध से सूर्य भगवान् को नहलाने से सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। दिन में मेष और तुला को अयनसंक्रान्ति में उस दिन उससे पहिली रात्रि में तथा आने वाली रात में भी अनध्याय होता है। रात में विषुव (मेष तुला) की सक्रान्ति में उस रात में और संक्रान्ति से पहिले दिन तथा आने वाले दिन में इस प्रकार पक्षिणी अनध्याय होता है। यहाँ रात की संक्रान्ति होने पर ग्रहण के सदृश रात में ही स्नान दान आदि करने का पक्ष किसी ने लिखा है। यह पक्ष सम्पूर्ण-शिष्ट-सम्मत नहीं है।

अयनदिनं तत्परं करिसंज्ञकं च दिनं शुभेषु वर्ज्यमित्युक्तम। तत्रार्धरात्रादर्वागयनसंक्रान्तौ तद्दिनं तत्परदिनं च वर्ज्यम। निशीथात्परत्र निशीथे वा संक्रान्तौ परं तत्परं च वर्ज्यमिति भाति। एवं ग्रहणेऽप्यूह्यम्। पौषशुक्लाष्टम्यां बुधवासरयुतायां स्नानजपहोमतर्पणविप्रभोजनानि कार्याणि। अस्यां भरणीयोगे महापुण्यत्वमित्येके। रोहिण्यार्द्रायोग इति परे। पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः, निर्णयः प्रागुक्तः।

अयन वाला दिन और उसके बाद करिसंज्ञकदिन शुभकर्म में वर्जित है, यह कह चुके हैं। आधी रात के पहिले अयनसंक्रान्ति में वह दिन और इसके बाद वाला दिन वर्जित है। आधी रात के बाद बाद या आधी रात में संक्रान्ति होने पर दिन तथा तृतीय दिन भी वर्ज्य है, यह युक्त है। इसी प्रकार ग्रहण में भी कल्पना कर लेनी चाहिए। बुधवारयुक्त पौषशुक्ल अष्टमी में स्नान, जप, होम, तर्पण और ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इसमें भरणी के योग होने से महापुण्य होता है, ऐसा कोई कहते हैं। दूसरे लोग रोहिणी और आर्द्रा के योग को अत्युत्तम कहते हैं। पौष-शुक्ल एकादशी मन्वादि तिथि है, इसका निर्णय पहिले कह चुके हैं।

अथ माघस्नानम्

तत्र [1]पौषस्य शुक्लैकादश्यां पौर्णमास्याममावास्यायां वा माघस्नानारम्भः। माघे द्वादशीपूर्णिमादौ समापनम्। यद्वा मकरसंक्रमणप्रभृतिकुम्भसंक्रमणपर्यन्तं स्नानं कार्यम्।

पौष की शुक्ला एकादशी या पूर्णिमा अथवा अमावास्या में माघस्नान प्रारम्भ करना चाहिये। माघ की द्वादशी या पूर्णिमा में समाप्त करे या मकर की संक्रान्ति से कुम्भ की संक्रान्ति तक स्नान करे।

अथ स्नानकालः—अरुणोदयमारभ्य प्रातःकालावधिः।

उत्तमं तु सनक्षत्रं लुप्ततारं च मध्यमम्।
सवितर्युदिते भूप ततो हीनं प्रकीर्तितम्॥
माघमासे रटन्त्यापः किंचिदभ्युदिते रवौ।
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतन्तं पुनीमहे॥

माघस्नान, अरुणोदय से आरम्भ कर प्रातःकाल तक करे। उत्तम स्नान नक्षत्रों के दिखलाई पड़ने तक और मध्यम स्नान तारों के न होने तक और मध्यम से भी हीन सूर्योदय काल में होता है। कुछ कुछ सूर्योदय के होने पर माघमास में जल रटते हैं कि किस ब्राह्मणघाती, शराबी तथा पतित को हम पवित्र करें।

अत्राधिकारिणः—

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः॥ इति।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी तथा बाल, वृद्ध, जवान, स्त्री, पुरुष और नपुंसक भी माघस्नान के अधिकारी हैं।

अथ जलतारतम्येन फलम्—

तप्तेन वारिणा स्नानं यद्गृहे क्रियते नरैः।
षडब्दफलदं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे॥

---

१. विष्णु ने सौरमास में माघस्नान कहा—'तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत्। हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघस्नाने महाफलम्॥' ब्रह्मपुराणे—'एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समारभेत्। द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा शुक्लपक्षे समापनम्॥' इस वचन से चान्द्रमास के अनुसार ही माघस्नानार्थी प्रायः स्नानारम्भ करते हैं।

वाप्यादौ द्वादशाब्दफलम्, तडागे तद्द्विगुणम्, नद्यां तच्चतुर्गुणम्, महानद्यां शतगुणम्, महानदीसंगमे तच्चतुर्गुणम्, गङ्गायां सहस्रगुणम्, गङ्गायमुनासङ्गमे एतच्छतगुणमिति यत्र कुत्रापि स्नाने [1]प्रयागस्मरणं कार्यम्। इदं समुद्रेऽप्यतिप्रशस्तम।

जो मनुष्य घर में गर्म जल से स्नान करते हैं, उनको मकर की संक्रान्ति में एक स्नान से छ वर्ष के स्नान का पुण्य-फल मिलता है। बावली आदि में बारह वर्ष का, बावली से द्विगुण तालाब के स्नान से, नदी में स्नान से चौगुना, महानदी में स्नान से सौगुना, महानदी-संगम में स्नान से चौगुना, गङ्गा में स्नान से हजार गुना, गङ्गा-यमुना के संगम में स्नान से लाख गुना अधिक फल मकर संक्रान्ति में स्नान से मिलता है अतः जहां कहीं भी स्नान करते समय प्रयाग का स्मरण करना चाहिये। मकर-संक्रान्ति का स्नान समुद्र में भी अत्यन्त प्रशस्त है।

अथ स्नानविधिः—

माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येहं देव माधव।
तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति संकल्प्य चेतसि ॥ इत्येकतीर्थं परिगृह्य,
दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च।
प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम् ॥
मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव।
स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव।
इमौ मन्त्रौ समुच्चार्य स्नायान्मौनसमन्वितः ॥

प्रत्यहं सूर्यार्घ्यमन्त्रः—

सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा ॥ इति।

पितृतर्पणादि नित्यं विधाय माधवं पूजयेत्।

भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलसमन्वितम्।
हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघमासे महाफलम् ॥

अत्रेन्धनकम्बलवस्त्रोपानत्तैलघृततूलपूर्णपटीसुवर्णान्नदानानि महाफलानि।

हे माधवदेव! मैं पूरे माघ भर इस तीर्थ जल में नित्य स्नान करूँगा ऐसा मन में संकल्प कर किसी एक तीर्थ को स्वीकार कर 'माघ में दुःख दरिद्रता के नाशार्थ श्रीविष्णु की प्रीति के लिये पाप विनाशक माघ स्नान करता हूँ। मकर के सूर्य में माघ में हे गोविन्द हे अच्युत हे माधव! स्नान से जैसा फल कहा है उसे दीजिये'। इन दोनों मन्त्रों को कहकर मौन रहकर स्नान करे। प्रतिदिन सूर्यार्घ्य 'सवित्रे प्रसवित्रे च' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से देवे। पितृतर्पण आदि नित्य कर्म करके माधव की पूजा करे। भूमि पर सोवे, घृतमिश्रित तिल का होम करे हविष्य का भोजन करे ब्रह्मचर्य का पालन करे यह सब माघमास में विशेष फल-दायक है। माघमास में लकड़ी-कम्बल-वस्त्र-जूता-तेल-घी-रूई भरी तोसक-रजाई-सोना और अन्न-दान अत्यन्त फल देने वाले हैं।

---

१. ब्रह्मपुराणे—'यत्र कुत्रापि यो माघे प्रयागस्मरणान्वितः। करोति मज्जनं तीर्थे स लभेद् गाङ्गमज्जनम् ॥' इति।

तन्नियमाः—

न वह्निं सेवयेत्स्नातो ह्यस्नातोपि वरानने।
होमार्थं सेवयेद्वह्निं शीतार्थं न कदाचन॥
अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः।

त्रयो भागास्तिलानां चतुर्थः शर्करायाः। अत्राभ्यङ्गो वर्ज्यः।

माघे मास्युषसि स्नानं कृत्वा दांपत्यमर्चयेत्।
माघे यत्नेन संत्याज्यं मूलकं मदिरोपमम्॥
पितॄणां देवतानां च मूलकं नैव दापयेत्।

स्नान के नियम—अग्निसेवन स्नान के बाद और पहले भी न करे। होम के लिये अग्नि-सेवन करे। जाड़े के कारण अग्निसेवन न करे। चीनी मिले तिलका प्रतिदिन दान करे। तीन भाग तिल और एक भाग चीनी मिलाकर दान करे। इसमें शरीर में तेल न लगावे। माघ में उषा काल में स्नान करे और ब्राह्मण-स्त्री-पुरुष का पूजन करे। माघमास में मूली, मदिरा के समान है अतः उसका सेवन न करे। देवता और पितृगण को भी मूली न देवे।

अथ माघे मलमासे निर्णयः

यदा माघो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कर्तव्याः। मासोपवासचान्द्रायणादिकं तु मलमास एव समापयेदित्युक्तम्। इदं माघस्नानं नित्यकाम्योभयरूपम्।

जब माघ मलमास हो तो उसमें काम्यकर्म की समाप्ति का निषेध होने से दोनों मास, स्नान और उसके नियमों का पालन करे। महीने भर उपवास वाले चान्द्रायण आदि तो मलमास में ही समाप्त किये जाते हैं, ऐसा कहा है। यह माघस्नान काम्य और नित्य दोनों है।

मासपर्यन्तं स्नानेप्यशक्तः[१]त्र्यहमेकाहं वा स्नायात्। तत्राद्यं दिनत्रयमिति केचित्। त्रयोदश्यादिदिनत्रयमिति बहुसंमतम्। पौषपूर्णिमानन्तरासु अष्टमीसप्तमीनवमीष्वष्टकादिश्राद्धानि प्रागुक्तानि।

एक मास तक स्नान करने में असमर्थ को तीन दिन अथवा एक दिन स्नान करना चाहिये। इसमें कोई कहते हैं कि माघमास के आदि के तीन दिन का स्नान करे। बहुतों के संमत तो यह है कि अन्त के त्रयोदशी से पूर्णिमापर्यन्त तीन दिन स्नान करे। पौष पूर्णिमा के बाद वाली अष्टमी, सप्तमी और नवमी में अष्टकाश्राद्ध आदि पहले कह आये हैं।

अथ अर्धोदययोगनिर्णयः

पौषामावास्यायामर्धोदययोगः[२]।

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः।
अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः॥

---

१. पद्मपुराणे—'अस्मिन् योगे त्वशक्तोऽपि स्नायादपि दिनत्रयम्।' इति।

२. स्कन्दपुराण के नागरखण्ड में—'दिवैव योगः शस्तोऽयमुषःकालेऽपि वा यदि। न तु रात्रौ स विज्ञेयो नरैर्धर्मपरायणैः॥' अतः रात्रि में इस अर्धोदययोग को मानना निर्मूल है। जयसिंह-

'किंचिन्न्यूनं महोदय' इति चतुर्थपादं केचित्पठन्ति । पौषमाघयोर्मध्यवर्तिनीत्यर्थं इत्येके । अमान्तमासे पौषस्य पूर्णिमान्तमासे माघस्य चेत्यर्थं इत्यपरे । सर्वथा पौषपौर्णमास्युत्तरामावास्येत्यर्थः ।

दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन ।
अर्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम् ॥
शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसन्निभाः ।
यत्किंचिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम् ॥

पौष की अमावास्या में अर्धोदय योग होता है । पौष-माघ की अमावास्या, रविवार-व्यतीपात और श्रवणनक्षत्र से युक्त हो तो वह अर्धोदय योग करोड़ों ग्रहण के समान पुण्यदायक होता है । कोई लोग तो 'किञ्चिन्न्यूनो महोदयः' ऐसा चौथे पाद को पढ़ते हैं अर्थात् पूर्वोक्त योगों में से कुछ योग होने से महोदययोग होता है । अन्यजन तो पौष-माघ के बीच वाली अमावास्या, ऐसा अर्थ करते हैं । सर्वथा पौष-माघ की बाद वाली अमावास्या, यही अर्थ है । यह योग दिन में ही होने से अर्धोदय योग होता है, रात में योग होने से नहीं होता । अर्धोदययोग में सब जल, गङ्गाजल के समान होता है । सब ब्राह्मण, शुद्धात्मा और ब्रह्म के समान होते हैं । इस योग में जो भी दान किया जाता है, वह मेरुपर्वत के समान अधिकतम फल देता है ।

अथ पात्रदानप्रयोगः

देशकालौ संकीर्त्य 'समुद्रमेखलायाः पृथ्व्याः सम्यग्दानफलकामोऽहमर्धोदयविहितामत्रदानं करिष्ये' इति संकल्प्योपलिप्ते देशे धौततण्डुलैरष्टदलं कृत्वा तत्र चतुःषष्टिपलं चत्वारिंशत्पलं वा पञ्चविंशतिपलं वा कांस्यपात्रं कृताग्न्युत्तारणं स्थापयेत् ।

देशकाल-कथन-पूर्वक 'समुद्रमेखला-पृथिवी-दान का सम्यक् फलप्राप्ति की कामना से मैं अर्धोदय में विहित पात्रदान करूँगा' ऐसा संकल्प करके लीपी हुई भूमि में धोये हुए चावल से अष्टदल बनाकर चौंसठ पल या चालीस पल अथवा पचीस पल के काँसे का पात्र अग्न्युत्तारण किये हुए की स्थापना करे ।

कल्पद्रुमे—'पातस्यान्तः पूर्वभागस्त्वमायाः श्रोणामध्यं भास्करस्योदये च । भानोर्वारे पुण्यमर्धोदयः स्यात् किञ्चिन्न्यूने तं महत्पूर्वमाहुः ॥' अर्थात् योग-तिथि-नक्षत्रों के मान को तीन भाग करके पातयोग के तृतीय भाग, अमावास्या तिथि के पूर्व भाग और श्रवणनक्षत्र के मध्यभाग का सूर्योदय में रविवार को दिन में जब संयोग हो तब अर्धोदय योग होता है । अर्धोदय का यह लक्षण युक्त है ।

प्रयाग में कुम्भ का योग—'माघामायां मृगे भानौ मेषराशिगते गुरौ । कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे त्वतिदुर्लभः ॥' इति ।

हरिद्वार में कुम्भ का योग—'पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ । गङ्गाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनामा तदोत्तमः ॥' इति ।

गोदावरी में कुम्भ का योग—'श्रावणमास की अमावास्या में तब होता है जब कर्क-राशि-स्थित गुरु हों—'कर्के गुरुस्तथा भानुश्चन्द्रश्चन्द्रक्षयस्तथा । गोदावर्यां तदा कुम्भो जायतेऽवनिमण्डले ॥' इति ।

गुञ्जादिप्रमाणानि—तत्राष्टगुञ्जात्मको माषः, चत्वारिंशन्माषाः कर्षः, पलं कर्षचतुष्टयम्। अमरसिंहमते तु अशीतिगुञ्जात्मकः कर्षः, पलं कर्षचतुष्टयम्। [1]कांस्यपात्रे पायसं निक्षिप्य पायसेऽष्टदलं कृत्वा तत्कर्णिकायां कर्ष-तदर्ध-तदर्धान्यतमपरिमाणहेमलिङ्गं निधाय कांस्यपात्रे ब्रह्माणं पायसे विष्णुं लिङ्गे शिवं यथाधिकारं वैदिकैर्मन्त्रैर्नामभिर्वावाहनाद्युपचारैः संपूजयेत्। ततो विप्रं वस्त्रादिभिः पूजयेत्।

गुंजा आदि तौल का प्रमाण यह है—आठ घुंघुची का एक माशा होता है। चालीस माशे का एक कर्ष होता है। चार कर्ष का एक पल होता है। अमरसिंह के मत में तो अस्सी घुंघुची का एक कर्ष होता है, चार कर्ष का एक पल होता है। कांसे के पात्र में खीर रखके खीर में अष्टदल बनाकर उसकी कर्णिका में एक कर्ष, आधा कर्ष, चौथाई कर्ष, इन तौलों में से किसी एक तौल का सुवर्ण लिङ्ग रखकर कांसे के पात्र में ब्रह्मा, खीर में विष्णु, लिङ्ग में शिव, अपने अधिकार के अनुसार वैदिक मन्त्रों से या नाम मन्त्रों से आवाहन कर षोड़शोपचार से पूजा करे। तदनन्तर वस्त्र आदि से ब्राह्मण की पूजा करे।

सुवर्णपायसामत्रं यस्मादेतत्त्रयीमयम्।
आवयोस्तारकं यस्मात्तद् गृहाण द्विजोत्तम॥

'अमुकगोत्रायामुकशर्मणे तुभ्यमिदं सुवर्णलिंगपायसयुक्तममत्रं समुद्रमेखला-पृथ्वीदानफलकामोऽहं संप्रददे न मम' इति विप्रहस्ते जलं दद्यात्। विप्रः देवस्यत्वेति प्रतिगृह्णीयात्। दाता—'दानस्य संपूर्णतार्थमिमां दक्षिणां संप्रददे' इति यथाशक्ति हिरण्यं दद्यात्।

जिस लिये हे ब्राह्मणदेव! सोना, खीर और पात्र, ये तीनों हम दोनों को तारने वाले हैं, इस लिये इन्हें ग्रहण कीजिये। अमुकशर्मा मैं अमुकशर्मा आप को यह सुवर्णलिङ्गसहित पात्र समुद्रमेखला-पृथिवी-दान की फलकामना से दे रहा हूँ यह मेरा नहीं है, इस आशय का संकल्प कर ब्राह्मण के हाथ में जल दे दे। ब्राह्मण 'देवस्यत्वा' इत्यादि मन्त्र से प्रतिग्रहण करे! दाता 'दान की संपूर्णता के लिए इस दक्षिणा को देता हूँ' ऐसा कह कर यथाशक्ति सुवर्ण की दक्षिणा दे।

हेमाद्र्याद्युक्तः प्रकारान्तरेणार्धोदयव्रतप्रयोगो ब्रह्मादियुततिलपर्वतत्रयशय्यात्रयगोत्रयदानहोमादिसहितः कौस्तुभे द्रष्टव्यः। इति पौषमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

हेमाद्रि आदि में कहा हुआ दूसरे प्रकार का अर्धोदय व्रत का प्रयोग—ब्रह्मा आदि से युक्त तीन तिलपर्वत तथा तीन शय्या और तीन गोदान होम आदि सहित कौस्तुभ आदि में देखना चाहिये। पौषमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ माघमासे कुम्भसंक्रान्तिः

कुम्भसंक्रान्तौ पूर्वं षोडश नाड्यः पुण्याः। माघे वेणीस्नानमहिमा।

---

१. स्कन्दपुराणे—'एवं सुघटितं कार्यं कांस्यभाजनमुत्तमम्। निधाय पायसं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत्॥ पद्मस्य कर्णिकायां तु कर्षमात्रं सुवर्णकम्। तदभावे तदर्धं वा तदर्धं वापि कारयेत्॥ भूमौ तु तण्डुलैः शुद्धैः कृत्वाऽष्टदलमुत्तमम्। अमत्रं स्थापयेत्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥ तेषां पूजा ततः कार्या श्वेतमाल्यैस्तु शोभनैः। वस्त्रादिभिरलंकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥' इति।

सितासिते तु यत्स्नानं माघमासे युधिष्ठिर ।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र कुत्रावगाहिता ।
तस्माद्दशगुणा विन्ध्ये काश्यां शतगुणा ततः ॥
काश्याः शतगुणा प्रोक्ता गंगायमुनयाऽन्विता ।
सहस्रगुणिता सापि माघे पश्चिमवाहिनी ॥

कुम्भसंक्रान्ति में पहिले की सोलह घड़ियां पुण्यकाल होता है। माघ में प्रयाग में श्वेत कृष्ण गङ्गा यमुना के संगम में जो स्नान करते हैं उनका सैकड़ों करोड़ कल्प तक भी जन्म नहीं होता, ऐसा कृष्ण भगवान् ने युधिष्ठिर जी से कहा है। जहाँ कहीं माघ में गंगास्नान करने से कुरुक्षेत्र स्नान के समान पुण्य होता है, इससे दशगुणित फल विन्ध्यस्थित गंगास्नान से मिलता है तथा काशी में गंगास्नान से सौगुना फल प्राप्त होता है। काशी गंगास्नान से सौगुना फल, गङ्गा यमुना के संगम में स्नान करने से मिलता है। माघ में पश्चिमवाहिनी गंगा के स्नान से तो हजार गुना अधिक पुण्य लाभ होता है।

अथ माघे तिलपात्रदानं प्रशस्तम्। तत्प्रयोगः—

ताम्रपात्रे तिलान्कृत्वा पलषोडशनिर्मिते ।
सहिरण्यं स्वशक्त्या वा विप्राय प्रतिपादयेत् ॥

'वाङ्मनःकायजत्रिविधपापनाशपूर्वकं ब्रह्मलोकप्राप्तिकामस्तिलपात्रदानं करिष्ये।' उक्तपरिमाणे ताम्रपात्रे प्रस्थतिलान् कर्षसुवर्णयुतान् यथाशक्ति सुवर्णयुतान् वा कृत्वा विप्रं संपूज्य,

देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थफलप्रद ।
तिलपात्रं प्रदास्यामि तवाग्रे संस्थितो ह्यहम् ॥ इति मन्त्रेण दद्यात्।

माघ में तिलपात्र का दान अत्युत्तम है। इसका प्रयोग इस प्रकार है—सोलह पल के तौल से बनाये ताम्रपात्र में तिल रखके अपने सामर्थ्य के अनुसार सुवर्ण के साथ ब्राह्मण को देवे। इसमें 'वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न तीन तरह के पाप-नाश-पूर्वक ब्रह्मलोक पाने की कामना से मैं तिलपात्र का दान करूँगा' ऐसा संकल्प कर पूर्वोक्त तौल वाले ताम्रपात्र में एक सेर तिल रखके एक सुवर्ण के साथ अथवा अपनी शक्ति के अनुसार सोना रखके ब्राह्मण की पूजा कर 'देवदेव जगन्नाथ' इत्यादि मन्त्र से देवे।

कुडवादिधान्यमानानि—

धान्यमाने तु कुडवो मुष्टीनां स्याच्चतुष्टये ।
चत्वारः कुडवाः प्रस्थश्चतुःप्रस्थमथाढकम् ॥
अष्टाढको भवेद् द्रोणो द्विद्रोणः शूर्प उच्यते ।
सार्धशूर्पो भवेत् खारी, इत्युक्तरीत्या—
पलं सुवर्णाश्चत्वारः कुडवं प्रस्थमाढकम् ।
द्रोणं च खारिका चेति पूर्वंपूर्वाच्चतुर्गुणम् ॥

इत्युक्तरीत्या वा प्रस्थमानस्वरूपं ज्ञेयम् । यद्वा हिरण्यरहितांस्तिलांस्ताम्रपात्रे निधाय,

तिलाः पुण्याः पवित्राश्च सर्वपापहराः स्मृताः ।
शुक्लाश्चैव तथा कृष्णा विष्णुगात्रसमुद्भवाः ॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
तिलपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा ॥

'इदं तिलपात्रं यथाशक्ति दक्षिणासहितं यमदैवतं ब्रह्मलोकप्राप्तिकामस्तुभ्यमहं संप्रददे' इति दद्यात् ।

चार मुट्ठी धान्यका एक कुडव, चार कुडव का प्रस्थ (सेर), चार प्रस्थ का एक आढक, आठ आढक का एक द्रोण, दो द्रोण का एक सूप तथा डेढ़ सूप की एक खारी; इस रीति से अथवा चार सुवर्ण का एक पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण और खारी नाप है, जो पहले से दूसरे आदि चौगुने होते हैं इस रीति से प्रस्थ का मान और स्वरूप जानना चाहिये। या सोने के बिना तिलों को ताम्रपात्र में रख कर 'तिलाः पुण्याः पवित्राश्च' इत्यादि मूलोक्त मन्त्रों को कह कर 'यमदेवता का यह तिलपात्र यथाशक्ति दक्षिणा के साथ ब्रह्मलोकप्राप्ति की कामना से आप को मैं देता हूँ' ऐसा संकल्प करके ब्राह्मण को देदे ।

अथ हिरण्यतुलसीपत्रदानमन्त्रः—

सुवर्णतुलसीदानाद् ब्रह्मणः कार्यसंभवात् ।
पापं प्रशममायातु सर्वे सन्तु मनोरथाः ॥

अथ शालग्रामदानमन्त्रः—

शालग्रामशिला पुण्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
शालग्रामप्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः ॥
चक्राङ्कितसमायुक्ता शालग्रामशिला शुभा ।
दानेनैव भवेत्तस्या उभयोर्वाञ्छितं फलम् ॥

सुवर्ण-तुलसीपत्र-दान का मंत्रार्थ—सुवर्ण के तुलसीपत्र के दान से ब्रह्माके कार्य की सम्भावना से समग्र-पाप शान्त हों और सब मनोरथ पूर्ण हों। शालग्राम के दान का मन्त्रार्थ-पुण्यदायिका शालग्रामशिला जो भुक्ति और मुक्ति को देने वाली है, उसके दान से मेरे सकल मनोरथ पूर्ण हों। चक्र से चिह्नित शुभदा शालग्रामशिला के दान से दाता प्रतिग्रहीता दोनों की मनोवाञ्छित सिद्धि होती है।

अथ प्रयागे वेणीदानम्

तत्र सर्वेषां वपनविधिः—

ऊर्ध्वमब्दाद् द्विमासोनाद्यदा तीर्थं व्रजेन्नरः ।
तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्तमृते द्विज ॥

प्रयागे तु योजनत्रयादागतस्य दशमासादर्वागपि प्रथमयात्रायां तु जीवत्पितृकगुर्विणीपतिकृतचूडबालानामपि सभर्तृकस्त्रीणामपि वपनमिति विशेषः । केचित्तु सभर्तृकस्त्रीणां 'सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम्' इत्याहुः ।

प्रयाग में वेणीदान दो महीने कम सालभर के बाद जब तीर्थ करने जाय तब प्रायश्चित के बिना बालों का मुण्डन प्रशस्त है। प्रयाग में तो तीन योजन से तीर्थ करने वालों को दस महीने के पहिले भी पहिली यात्रा में जिसके पिता जीते हों, गर्भवती स्त्री का पति, जिन बालकों का मुण्डन संस्कार हो गया हो और सौभाग्यवती स्त्रियों का भी क्षौर होता है, यही प्रयाग की विशेषता है। कुछ लोग तो सौभाग्यवती स्त्रियों के सब बाल इकट्ठा पकड़ कर केवल दो अंगुल काट दे, ऐसा कहते हैं।

तत्प्रयोगः—वेणीभूतकेशा कृतमाङ्गलिकवेषा स्त्री भर्तारं नत्वा तदाज्ञया सर्ववपनं द्व्यङ्गुलकेशच्छेदं वा कृत्वा स्नात्वा त्रिवेणीपूजां कुर्याद् भर्त्रा वा कारयेत्। पूजान्ते पत्नी छिन्नवेणीयुक्तं वैणवपात्रमञ्जलौ धृत्वा तस्या हैमवेणीं मौक्तिकादिकं च निधाय,

वेण्यां वेणीप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु।
जन्मान्तरेष्वपि सदा सौभाग्यं मम वर्धताम्॥ इति त्रिवेण्यां क्षिपेत्।

विप्राः सुमङ्गलीरियं वधूरिति पठेयुः। ततो विप्रान् सुवासिनीश्च वस्त्रादिना तोषयेत्।

केशों की वेणी बनाकर माङ्गलिक वेष धारण कर स्त्री अपने पति को प्रणाम करके पति की आज्ञा से सम्पूर्ण केशों को या दो अङ्गुल केश को काटकर स्नानकर त्रिवेणीकी पूजा करे। अथवा पति से पूजा करावे। पूजा के अनन्तर पत्नी कटे हुए केशोंको बांसके पात्र में अँजुरी में रखकर उसमें सुवर्ण या मोती आदि की वेणी रखकर 'वेण्यां वेणीप्रदानेन' इत्यादि मन्त्र को कहकर त्रिवेणी में फेंक दे। ब्राह्मणगण 'सुमङ्गलीरियं वधूः' यह मन्त्र पढ़े। तदनन्तर ब्राह्मण और सुहागिन स्त्रियों को वस्त्र आदि के दान से प्रसन्न करे।

अथ त्रिवेण्यां देहत्यागविधिः

'ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते' इति श्रुतिर्माघमासविषया। 'तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः' इति ब्राह्मोक्तेः। अन्यमासे तनुत्यागात्स्वर्गप्राप्तिः। तत्र यथाशक्तिसर्वप्रायश्चित्तं कृत्वा श्राद्धाधिकार्यभावे स्वीयजीवच्छ्राद्धं सपिण्डनान्तं कृत्वा गोदानादि कृत्वा कृतोपवासः पारणाहे फलोल्लेखपूर्वकं संकल्प्य विष्णुं ध्यात्वा वेणीं प्रविशेदिति। जीवच्छ्राद्धप्रयोगः कौस्तुभे द्रष्टव्यः।

जो माघ में शरीर का त्याग प्रयाग में करते हैं उनकी मुक्ति निस्सन्देह होती है। दूसरे महीनों में शरीरत्याग से स्वर्ग पाता है। इसमें शक्ति के अनुसार सर्व-प्रायश्चित्त करके श्राद्ध करने वाला न हो तो अपना जीवितश्राद्ध सपिण्डनपर्यन्त करके गोदान आदि और उपवास करके पारणा के दिन फल का उल्लेखपूर्वक संकल्प करके विष्णु भगवान् का ध्यान कर त्रिवेणी में प्रवेश करे। जीवितश्राद्धका विधान, कौस्तुभ में देखना चाहिये।

अथ माघे तिलस्नानादि

माघं प्रकृत्य—

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी।
तिलभुक् तिलदाता च षट् तिलाः पापनाशनाः॥

इत्युक्ते वाक्ये तिलस्नायिपदेन तिलयुक्तोदकेन स्नानम्। तिलहोमपदेनायुत-लक्षतिलहोमाद्यात्मकस्य ग्रहमखस्यापि संग्रहः। तिलोदकीति पदेन तिलयुक्तोदकेन देवपूजातर्पणसंध्यादिकं पानं च कार्यमित्यर्थः। स च होमस्त्रिधा—

प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परः।
कोटिहोमस्तृतीयस्तु सर्वकामफलप्रदः॥ इति।

लक्षहोमादिप्रयोगः कुण्डमण्डपनिर्माणादिसहितः कौस्तुभमयूखादौ ज्ञेयः।

माघ को लेकर—तिलसहित जल से स्नान, तिल का उबटन, तिलका होम, तिल से जल-दान, तिलका भोजन, तिल का दान, ये छ कर्म पाप का नाश करने वाले हैं। इस कहे हुए वाक्य में 'तिलस्नायी' इस पद से तिलयुक्त जल से स्नान यह अर्थ है। 'तिलहोम' पद से दस हजार अथवा लाख तिल का हवन वाला ग्रहयज्ञ का भी ग्रहण है। 'तिलोदकी' इस पद से तिलयुक्त जल से देवपूजा, तर्पण, संध्या आदि कर्म और पीने के जल के ग्रहण का तात्पर्य है। वह तिलका होम तीन प्रकार का होता है—पहिला दस हजार तिल का हवन, दूसरा लाख तिलका और तीसरा करोड़ तिल का होम, जो अखिल कामना के फल को देता है। कुण्ड-मण्डप-निर्माणादि सहित लाख होम आदि का विधान, कौस्तुभ और मयूख आदि से जानना चाहिये।

अथ माघशुक्लचतुर्थ्यां ढुण्ढिराजव्रतम्

माघशुक्लचतुर्थ्यां [1]ढुण्ढिराजोद्देशेन नक्तव्रतं तत्पूजा तिललड्डुकादिनैवेद्यं तिलभक्षणं चोक्तम्। अत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। अस्यामेव प्रदोषव्यापिन्यां कुन्द-पुष्पैः शिवं संपूज्योपवासं नक्तभोजनं वा कुर्यात्, श्रियं प्राप्नुयात्। अत्र [2]विना-यकव्रतस्य तु भाद्रशुक्लचतुर्थीवन्निर्णयः।

माघशुक्ल चतुर्थी में ढुण्ढिराज-गणेश के उद्देश से नक्तव्रत किया जाता है। श्रीढुण्ढिराज का पूजन तिलके लड्डु आदि का नैवेद्य और तिल का भोजन भी कहा है। इसमें प्रदोषव्यापिनी चतुर्थी ग्रहण-योग्य है। इसी प्रदोषव्यापिनी चतुर्थी में कुन्द के फूलों से श्रीशङ्कर जी का पूजन कर उपवास या नक्त (रात्रि) भोजन करे, इससे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसमें विनायकव्रत का तो भाद्रशुक्ल चतुर्थी के तुल्य निर्णय है।

---

१. काशीखण्डे—'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणाः। ये त्वां ढुण्ढेऽर्चयिष्यन्ति तेऽर्च्याः स्युरसुरद्रुहाम्॥' इस तिथि में तिल-भक्षण की महत्ता से इसका नाम तिलचतुर्थी है और इसमें कुन्द-पुष्पों से शिव की पूजा की जाती है इसलिये इसे कुन्दचतुर्थी भी कहते हैं। कूर्मपुराणे—'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु कुन्दपुष्पैः सदाशिवम्। सम्पूज्य यो हि नक्ताशी स प्राप्नोति श्रियं नरः॥' इति।

२. माघकृष्ण चतुर्थी गणेशचतुर्थी में गणेश की उत्पत्ति शिवधर्म में वर्णित है—'सर्वदेव-मयः साक्षात् सर्वमङ्गलकारकः। माघकृष्णचतुर्थ्यां तु प्रादुर्भूतो गणाधिपः॥' यह तृतीयायुता ग्राह्य है। यथा बृहस्पतिः—'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते।'

यदि उभय दिन मध्याह्नव्यापिनी हो तो तृतीया-विद्धत्व-गुण के सद्भाव से पूर्व दिन की और उत्तर-दिनमात्र में मध्याह्नव्यापिनी हो तो पंचमी से विद्ध भी उत्तर दिन की ही ग्राह्य है। स्मृत्यन्तरे—'मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थी गणनायके। मध्याह्ने परतश्चेत्स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते॥' इति।

अथ वसन्तपंचमी

माघशुक्लपञ्चमी [1]वसन्तपञ्चमी । तस्यां वसन्तोत्सवारम्भः । अस्यां रति-कामयोः पूजोक्ता । इयं परत्रैव पूर्वाह्णव्याप्तौ परा, अन्यथा पूर्वैव ।

माघशुक्ल पञ्चमी वसन्तपञ्चमी है, इसमें वसन्तोत्सव का आरम्भ होता है। इसमें रति और कामदेव का पूजन कहा है। यह दूसरे ही दिन पूर्वाह्णव्यापिनी हो तो परा ग्राह्य है, ऐसा न होने पर पूर्वा लेनी चाहिये ।

अथ रथसप्तमी

माघशुक्लसप्तमी[2] रथसप्तमी । साऽरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयेऽरुणो-दयव्याप्तौ पूर्वा । यदा घटिकादिमात्रा षष्ठी सप्तमी च क्षयवशादरुणोदयात्पूर्वं समाप्यते तदा षष्ठीयुक्ता ग्राह्या । तत्र षष्ठ्यां सप्तमीक्षयघटीः प्रवेश्यारुणोदये स्नानं कार्यम् । अत्र व्रते षष्ठ्यामेकभक्तं कृत्वा सप्तम्यामरुणोदये स्नानं कार्यम् । तत्र मन्त्रः—

---

१. पुराणसमुच्चये—'माघमासे नृपश्रेष्ठ शुक्लायां पञ्चमीतिथौ । रतिकामौ तु सम्पूज्य कर्तव्यः सुमहोत्सवः ।। दानानि च प्रदेयानि तेन तुष्यति माधवः ।।' यह हेमाद्रिमत से पर और माधवमत से पूर्व का ग्राह्य है ।

इसका नाम श्रीपञ्चमी भी है । वाराहपुराणे—'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रियः । पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यात् समृद्धये ।।' श्रीपंचमी में वाग्देवता श्रीसरस्वती की पुस्तक या मृन्म-यादि-प्रतिमा में पूजा करनी चाहिये । भविष्यपुराण में प्रतिमा निर्माण के द्रव्य—'अनुक्तद्रव्यतत्संख्या देवताप्रतिमा नृप । सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मातिका तथा ।। चित्रजा पिष्टलेपोत्था निजवित्तानु-रूपतः । आमाषात्पलपर्यन्ता कर्तव्या शाठ्यवर्जितैः ।।' इति ।

२. विष्णुः—'सूर्यग्रहणतुल्या तु शुक्ला माघस्य सप्तमी । अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ।। अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी । प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ।।' इस तिथि में शिर पर सात अर्कपत्र (अकवन मदार के पत्ते) और बैर के पत्ते रखकर अरुणोदय में मूलोक्त-मन्त्र पढ़ कर स्नान करे ।

इसमें रथवर (सूर्य) का पूजन आदि किया जाता है इसलिये इसे रथसप्तमी कहते हैं । भविष्योत्तरे—'एवंविधं रथवरं रथवाजियुक्तं हैमं च हैमगतदीधितिना समेतम् । दद्याच्च माघ-सितसप्तमिवासरे यः सोऽसङ्गचक्रगतिरेव महीं भुनक्ति ।।' दिवोदास के—'अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रि-र्महाभरः । द्वादशी वत्सपूजायां सुखदा प्राग्युता सदा ।।' इस वचन से इस तिथि का अचला सप्तमी नाम से निर्णय किया जाता है अतः इसे अचला-सप्तमी भी कहते हैं । स्वर्ण-निर्मित-सूर्य का पूजन, अर्घ्य और दान के मन्त्र अन्यत्र देखें ।

जब इस तिथि में रविवार पड़ जाय तो यह विजया-सप्तमी या संक्रान्ति हो तो महाजया सप्तमी कहलाती है और दान का महाफल है । 'शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां सूर्यवारो यदा भवेत् । सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ।।' भास्करपुराणे—'शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदा संक्रमते रविः । तदा महाजया प्रोक्ता सप्तमी भास्करप्रिया ।। स्नानं दानं तपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् । सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तं भास्करस्य वचो यथा ।।' इति । देवीपुराण में अरुणोदयादि-समय का निर्देश—'चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते ।' 'पञ्च पञ्च उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः । अष्ट पञ्च भवेत् प्रातः शेषः सूर्योदयो मतः ।।' इति ।

यदा जन्मकृतं पापं मया जन्मसु जन्मसु ।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हंतु सप्तमी ॥
एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम् ।
मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः ॥
इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके ।
सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमी ॥ अथार्घ्यमन्त्र.—
सप्तसप्तिवहप्रीत सप्तलोकप्रदीपन ।
सप्तमीसहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥ इति ।

इयं च मन्वादिरपि । शुक्लपक्षमन्वादित्वात्पौर्वाह्णिकी ग्राह्येत्युक्तम् ।

माघशुक्ल सप्तमी रथसप्तमी कहलाती है। यह अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्य है। दोनों दिन अरुणोदयव्यापिनी होने पर पूर्वा ग्रहणयोग्य है। जब एक घड़ी तक षष्ठी हो और सप्तमी क्षय के कारण अरुणोदय के पहिले ही समाप्त होती हो तो षष्ठीयुक्त लेनी चाहिये। इसमें षष्ठी में सप्तमी की क्षयघटी को प्रविष्ट कर अरुणोदय में स्नान कर्तव्य है। इस व्रत में षष्ठी में एकभक्तव्रत करके सप्तमी में अरुणोदय में स्नान करे। उसका मन्त्रार्थ यह है–जो जन्म से लेकर प्रत्येक जन्मों में पाप किये हैं, उससे जो रोग और शोक मेरे हों उसे मकर की सप्तमी नष्ट करे। इस जन्म का किया पाप और जो दूसरे जन्मों में मन से वाणी से और शरीर से पाप किये हों तथा जो जाना अनजाना पाप हो, इस प्रकार सात तरह के पापों को इस रथसप्तमी के स्नान से हे मकर की सप्तमी! तुम हरण करो। अर्घ्य का 'सप्तसप्तिवह' इत्यादि मन्त्र है। यह सप्तमी मन्वादि तिथि भी है। शुक्लपक्ष की मन्वादि-तिथि होने से यह पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्य है, ऐसा कह चुके हैं।

माघशुक्लाष्टमी [1]भीष्माष्टमी। अस्यां भीष्मोद्देशेन ये श्राद्धं कुर्वन्ति ते सन्ततिमन्तो भवन्ति। तत्र श्राद्धं काम्यं तर्पणं तु नित्यम्। तर्पणे कृते संवत्सरोपात्तदुरितनाशः, अकृते पुण्यनाश इत्युक्तेः। तत्र तर्पणमन्त्रः—

वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ।
गङ्गापुत्राय भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥
अपुत्राय जलं दद्मि नमो भीष्माय वर्मणे ।
भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥
आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम्। इति ।

एवमपसव्येन तर्पणं कृत्वाचम्य सव्येनार्घ्यं दद्यात्—

---

१. पद्मपुराणे—'माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम्। श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः ॥' महाभारते—'शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद् भीष्माय यो जलम्। संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥' इन वचनों से भीष्म के तर्पण में सभी वर्णों का अधिकार है। मदनरत्न में तर्पण नहीं करने से दोष कहा—'ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम्। संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम ॥' इति ।

वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबाल्यब्रह्मचारिणे ॥ इति ।

अत्र जीवत्पितृकस्य नाधिकार इति कौस्तुभः । जीवत्पितृकस्याप्यधिकार इति बहवः । अत्र मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी ग्राह्या, श्राद्धादेरेकोद्दिष्टत्वादिति ।

माघशुक्ल की अष्टमी भीष्माष्टमी होती है। इसमें श्रीभीष्म के उद्देश से जो श्राद्ध करते हैं वे सन्तान वाले होते हैं। इससे श्राद्ध काम्य है और तर्पण तो नित्य है। तर्पण करने से साल भरके पाप का नाश होता है। तर्पण नहीं करने से पुण्य का नाश होता है, ऐसा शास्त्रों का कथन है। इसमें तर्पण के 'वैयाघ्रपद्यगोत्राय' इत्यादि मूलोक्त मंत्र है। इनसे अपसव्य होकर तर्पण करके आचमन करके सव्य होकर अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य का 'वसूनामवताराय' इत्यादि मूलोक्त मंत्र है। इसमें जिसके पिता जीवित हों उसका अधिकार नहीं है, ऐसा कौस्तुभकार का मत है। जीवितपितृक का भी अधिकार है, ऐसा बहुतों का कहना है। एकोद्दिष्ट श्राद्ध आदि होने से इसमें मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी ग्राह्य है।

माघशुक्लद्वादश्यां[1] तिलोत्पत्तिरतोऽस्यामुपोष्य तिलस्नानं तिलैर्विष्णुपूजनं तिलनैवेद्यं तिलतैलेन दीपदानं तिलहोमस्तिलदानं तिलभक्षणं कार्यम्। माघी पूर्णिमा[2] परा । अत्र कृत्यम्—

एवं माघावसाने तु देयं भोज्यमवारितम् ।
भोजयेद् द्विजदांपत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः ॥

कम्बलाजिनरक्तवस्त्राणि तूलगर्भचोलकानि उपानहौ प्रच्छादनपटाश्चैतानि माधवः प्रीयतामित्युक्त्वा देयानि ।

माघशुक्ल द्वादशी में तिलकी उत्पत्ति हुई है इसलिये इसमें उपवास करे और तिल से स्नान, तिलों से श्रीविष्णु का पूजन, तिलका नैवेद्य, तिलके तेल से दीपदान, तिलका दान और तिल खाना चाहिये। माघ की पूर्णिमा परा लेनी चाहिये। इसमें कृत्य हैं—इस प्रकार माघ की समाप्ति में भोज्य-वस्तु बिना रुकावट के देना चाहिये। इसी तरह ब्राह्मण स्त्री-पुरुष केजोडे को खिलावे

---

१. माघशुक्ल द्वादशी भीष्मद्वादशी है। यथा पद्मपुराणे—'त्वया कृतमिदं वीर तव नाम्ना भविष्यति। सा भीष्मद्वादशीत्येषा सर्वपापहरा शुभा ॥' इसमें भीष्म के उद्देश से श्राद्ध एवं तर्पण करना चाहिये।

२. ब्रह्मवैवर्ते—'भूतविद्धे न कर्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन ।' योगविशेष से माघ की पूर्णिमा कभी महामाघी हो जाती है। ब्रह्मपुराणे—'मघास्थयोश्च जीवेन्द्वोर्महामाघीति कथ्यते ।' ज्योतिषे—'मेषपृष्ठे तथा सौरिः सिंहे च गुरुचन्द्रमाः। भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता ॥'

इसी प्रकार सिंहस्थ-गुरु में फाल्गुन की पूर्णिमा फाल्गुनीनक्षत्र से युक्त होने पर महाफाल्गुनी और सिंहस्थ गुरु में चैत्र की पूर्णिमा चित्रानक्षत्र से युक्त होने पर महाचैत्री होती है।

इसी तरह सभी मासों की पूर्णिमा माससंज्ञक नक्षत्र और गुरु के योग से महा हो जाती है। जैसा कि राजमार्तण्ड में कहा—'माससंज्ञे यदा ऋक्षे चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः। गुरुणा याति संयोगं सा तिथिर्महती स्मृता ॥'

भविष्यपुराण में—'वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः। स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ॥' तथा—'तिलपात्राणि देयानि कञ्चुकाः कम्बलास्तथा ।' इति ।

और भूषण वस्त्र से भूषित करे। कम्बल, मृगचर्म, लालरंग का वस्त्र, रूई, चोली, जूते, ओढ़ने का वस्त्र, सबको 'माधवः प्रीयताम्' ऐसा कहकर ब्राह्मण को देवे।

अथ माघस्नानोद्यापनम्

'अत्र कृतस्य माघस्नानस्य साङ्गतार्थमुद्यापनं करिष्ये' इति संकल्प्य,

सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं या तु सहस्रधा॥
दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते।
परिपूर्णं करिष्येऽहं माघस्नानं तवाज्ञया॥

इति मन्त्राभ्यामपि संकल्पः कार्यः। एवं चतुर्दश्यां संकल्पोपवासाधिवासनमाधवपूजनानि कृत्वा पूर्णिमायां तिलचर्वाज्यैरष्टोत्तरशतहोमं कृत्वा तिलशर्करागर्भत्रिंशन्मोदकात्मकं वायनं देयम्। तत्र मन्त्रौ—

सवितः प्रसवस्त्वं हि परं धाम जले मम।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा॥
दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते।
परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते॥ इति।

यहाँ किये गये माघस्नान की सांगतासिद्धि के लिये उद्यापन करूँगा' ऐसा संकल्प करके 'सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम' इत्यादि इन दोनों मन्त्रों से भी संकल्प करे। इसी प्रकार चतुर्दशी में संकल्प, उपवास, अधिवासन और माधव का पूजन करके पूर्णिमा में तिल चरु और घी से १०८ होम करके चीनी में तिल के लड्डू बनाकर वायन देवे। इसमें 'सवितः प्रसवस्त्वं हि' इत्यादि मूलोक्त दो मंत्र हैं।

ततो दम्पत्योः सूक्ष्मवाससी सप्तधान्यानि च दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो दाम्पत्याय च षड्रसभोजनं देयम्। तत्र मन्त्रः—

सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः। इति।
एवं माघप्लवी याति भित्त्वा देवं दिवाकरम्।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥ इति।

इसके बाद पति-पत्नी को महीन एक जोड़े वस्त्र और सप्तधान्य देकर ब्राह्मणों को तथा जोड़े स्त्री-पुरुषों को छ रस का भोजन करावे। इसमें 'सूर्यो मे प्रीयतां' इत्यादि मंत्रों का अर्थ है—इस प्रकार माघरूपी नौका पर चढ़कर सूर्यभगवान् को भेदन करके संन्यासी योगी और संग्राम में जो सामने मरता है, इस प्रकार माघ में नहाने वाले सब स्वर्गगामी होते हैं।

माघकृष्णाष्टम्यां चतुरष्टकाकरणाशक्त एकाष्टकां पूर्वेद्युःश्राद्धान्वष्टक्यश्राद्धसंहितां कुर्यात्। दिनत्रये कर्तुमशक्तोऽष्टम्यामेवैकामष्टकां कुर्यात्।

माघकृष्ण अष्टमी में चार अष्टका करने में असमर्थ व्यक्ति एक अष्टका, पूर्वेद्युःश्राद्ध और अन्वष्टकाश्राद्ध के साथ करे। तीन दिन में करने की शक्ति न हो तो एक दिन में केवल अष्टमी में ही करे।

अथ शिवरात्रिः

[1]सा निशीथव्यापिनी ग्राह्या। निशीथस्तु रात्रेरष्टमो मुहूर्त इत्युक्तम्। तत्र परदिन एवार्धरात्रौ परा। पूर्वत्रैव तद्व्याप्तौ पूर्वा। दिनद्वयेऽप्यर्धरात्रव्याप्त्यभावेऽपि परैव। दिनद्वये कात्स्न्येनैकदेशेन वार्धरात्रव्याप्तौ पूर्वेति हेमाद्र्याशयानुसारी कौस्तुभः। परैवेति माधवनिर्णयसिन्धुपुरुषार्थचिन्तामण्यादयो बहवः। परेद्युर्निशीथैकदेशव्याप्तौ पूर्वेद्युः संपूर्णतद्व्याप्तौ पूर्वैव। पूर्वदिने निशीथैकदेशव्याप्तौ परदिने संपूर्णतद्व्याप्तौ परैव। इदं व्रतं रविवारभौमवारयोगे शिवयोगयोगे चातिप्रशस्तम्[2]।

शिवरात्रि आधी रात में रहने वाली ग्राह्य है। निशीथ (आधी रात) तो रात के आठवें मुहूर्त को कह चुके हैं। इसमें यदि दूसरे दिन ही आधी रात में हो तो परा ही ग्रहण करे और यदि पूर्वदिन ही

---

१. लिङ्गपुराण में शिवरात्रिव्रत का महत्त्व—'फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः। कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गमर्चयन्ति शिवं शुभे ॥ ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम्।' ईश्वरसंहिता में यमराज से शिव का कथन—'वेदसारेण संपूज्य शिवरात्रौ महेश्वरम्। शिवरात्रिव्रतं कृत्वा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः ॥ विद्यासारेण मन्त्रेण शिवरात्रौ महेश्वरम्। शिवरात्रिव्रतं कृत्वा विष्णुर्विष्णुत्वमागतः ॥ शिवरात्रौ शिवं पूज्य मृत्युमोचनविद्यया। कल्पायुरभवत् पूर्वं मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ अष्टौ च वसवः पूर्वं रुद्रा एकादश स्मृताः। वेदसारेण मां पूज्य सर्वे देवत्वमागताः ॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन सारभूतं वचः शृणु। आचाण्डालं मनुष्याणां पापसंदहनक्षमम् ॥'

इस व्रत के निर्णायक वचनों में कहीं प्रदोषव्यापिनी और कहीं निशीथव्यापिनी चतुर्दशी को ग्राह्य कहा है। प्रदोषव्यापिनी के सम्बन्ध में माधवोदाहृत स्मृत्यन्तर—'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिचतुर्दशी। रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत् ॥' 'रात्रौ जागरणं यस्मात्' इस हेतुवचन के वश से यहाँ प्रदोषशब्द रात्रिपरक है। तथा—'आदित्यास्तमये काले अस्ति चेद् या चतुर्दशी। तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्सा भवेदुत्तमोत्तमा ॥' इति।

निशीथव्यापिनी के सम्बन्ध में नारदसंहिता का वचन—'अर्धरात्रियुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी। शिवरात्रिव्रतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥' ईशानसंहिता—'माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि। शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः।' इन वचनों में शुक्लप्रतिपदादि अमान्तमास के अनुसार फाल्गुनकृष्ण चतुर्दशी के अभिप्राय से माघकृष्ण चतुर्दशी का कथन किया है।

यह व्रत नित्य और काम्य दोनों है। नित्यत्व की पुष्टि में स्कन्दपुराण—'परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिव्रतात्परम्। न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः। वर्षे वर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता ॥ शिवरात्रौ महादेवं कामं भक्त्या प्रपूजयेत्। अर्णवो यदि वा शुष्येत् क्षीयेत हिमवानपि ॥ मेरुमन्दरलङ्काश्च श्रीशैलो विन्ध्य एव च। चलन्त्येते कदाचिद् वै निश्चलं हि शिवव्रतम् ॥' काम्यत्व की पुष्टि में ईशानसंहिता—'एवमेतद् व्रतं कुर्यात् प्रतिसंवत्सरं व्रती। द्वादशाब्दिकमेव स्याच्चतुर्विंशाब्दिकं तु वा ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य चेह च मानवः।' इति।

२. स्कन्दपुराण में रविवारादि के योग में इसका प्राशस्त्य—'माघकृष्णचतुर्दश्यां रविवारो भवेद्यदा। भौमो वापि भवेद्देवि कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ शिवयोगस्य योगे वै तद्भवेदुत्तमोत्तमम्।' इति। विशेष निर्णय मूल में और अन्यत्र देखें।

अर्धरात्रि में हो तो पूर्वदिन शिवरात्रि करे। दोनों दिन भी आधी रात में न हो तब भी दूसरे दिन करे। दोनों दिन सम्पूर्णतया अथवा एकदेश में आधी रात में हो तो पूर्वा लेनी चाहिये, यह हेमाद्रि के आशय का अनुसरण करने वाला कौस्तुभ का कहना है। परा में ही शिवरात्रि व्रत करे, यह माधव, निर्णयसिन्धु और पुरुषार्थचिन्तामणि आदि बहुतों का मत है। दूसरे दिन आधी रात के एकदेश में रहने पर और पहिले दिन आधी रात में सम्पूर्ण रहने पर तो पूर्व दिन में ही करना चाहिये। पहले दिन आधी रात के एकदेश व्याप्ति में और दूसरे दिन सम्पूर्णतया व्याप्ति में तो परा ही ग्राह्य है। यह व्रत रविवार भौमवार से युक्त तथा शिवयोग से युक्त होने पर अतिप्रशस्त है।

अथ शिवरात्रिपारणानिर्णयः

यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तौ [1]चतुर्दश्यन्ते पारणम्। यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां चतुर्दश्यां प्रातश्चतुर्दशीमध्ये एव पारणमिति माधवादयः। निर्णयसिन्धौ तु यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तावपि चतुर्दशीमध्ये एव पारणं, न तु कदाचिदपि चतुर्दश्यन्ते।

उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां च पारणम्।
कृतैः सुकृतलक्षैस्तु लभ्यते यदि वा न वा॥
सिक्थे सिक्थे फलं तस्य शक्तो वक्तुं न पार्वति।

इत्यादिना चतुर्दशीमध्ये पारणे पुण्यातिशयोक्तेरित्युक्तम्।

तीन पहर से पहिले चतुर्दशी समाप्त हो तो चतुर्दशी के अन्त मे पारण करे। तीन पहर से अधिक चतुर्दशी बढ़ने पर चतुर्दशी के मध्य में ही प्रातःकाल पारण कर ले, ऐसा माधव आदि का कहना है। निर्णयसिन्धु में तो तीन पहर से पहले चतुर्दशी समाप्त होती हो तब भी चतुर्दशी में ही पारण करे, चतुर्दशी के अन्त में पारण कभी न करे। चतुर्दशी में उपवास और चतुर्दशी में ही पारण करे। लाखों पुण्य करने पर भी मिले या नहीं मिले। हे पार्वति! उसकी सिक्थी सिक्थी में फल को कहा नहीं जा सकता, इत्यादि वचनों से चतुर्दशी के मध्य में पारण करने से अधिक पुण्य की प्राप्ति होना कहा है।

अत्रैवं व्यवस्था बोध्या—यदा नित्यकृत्यपूर्वकपारणपर्याप्ता चतुर्दशी नास्ति तदा वा येषां चतुर्दशीशेषदिने दर्शादिश्राद्धप्रसक्तिस्तैर्वा तिथ्यन्ते पारणम्। द्वादश्यामिवात्र नित्यकृत्यापकर्षकवाक्याभावात्। तिथ्यन्तपारणविधायकवाक्यसत्त्वेन संकटविषयकजलपारणविधिवाक्यानामत्राप्रवृत्तेश्च। कर्मपर्याप्तचतुर्दशीसत्त्वे श्राद्धप्रसक्त्यभावे च तिथिमध्य एव पारणमिति।

---

१. स्कन्दपुराण में तिथि के अन्त में पारण कहा—'कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी। एताः पूर्वयुता ग्राह्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्॥ जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्। स्कन्दपुराण में ही तिथि के मध्य में पारणा—'उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम्। कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते वाऽथवा न वा॥ ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै। संस्नातानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते॥ तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु। तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद् विना शिवचतुर्दशीम्॥' तिथितत्त्वोदाहृत-गौतम—'दिनमानप्रमाणेन या च रात्रौ चतुर्दशी। शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया चतुर्दश्यान्तु पारणम्॥' इति। विशेष अन्य-निबन्धों में देखें।

इसमें ऐसी व्यवस्था ज्ञेय है। जब नित्यकृत्य करने योग्य पर्याप्त समय के बाद पारणा के लिये चतुर्दशी न रहे या जिन्हें चतुर्दशी के शेष दिन में अमावास्या श्राद्ध आदि करना हो वे चतुर्दशी के अन्त में पारण करें। क्योंकि द्वादशी के समान इसमें नित्य कृत्य का अपकर्ष करने वाले वचन नहीं हैं और तिथि के अन्त में पारणा के विधान करने वाले वाक्य के होने से संकट-समय में जल से पारणा के विधि-वाक्यों की यहां प्रवृत्ति नहीं है। कर्म के लिये पर्याप्त चतुर्दशी के रहने पर श्राद्ध की प्राप्ति न हो तो तिथि के मध्य में ही पारण होता है।

अथ शिवरात्रिव्रतप्रयोगः

त्रयोदश्यां कृतैकभक्तश्चतुर्दश्यां कृतनित्यक्रियः प्रातर्मन्त्रेण संकल्पं कुर्यात्—

शिवरात्रिव्रतं ह्येतत्करिष्येऽहं महाफलम्।
निर्विघ्नमस्तु मे चात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥
चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा शंभो परेऽहनि।
भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर ॥ इति।

द्विजस्तु 'रात्रीं प्रपद्ये जननीम्' इत्यृचावपि पठित्वा जलमुत्सृजेत्। ततः सायाह्ने कृष्णतिलैः स्नानं कृत्वा धृतभस्मत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षो निशामुखे शिवायतनं गत्वा क्षालितपादः स्वाचान्त उदङ्मुखो देशकालौ संकीर्त्य 'शिवरात्रौ प्रथमयामपूजां करिष्ये' इति यामचतुष्टये पूजाचतुष्टयचिकीर्षायां संकल्पः। सकृत्पूजाचिकीर्षायां 'श्रीशिवप्रीत्यर्थं शिवरात्रौ श्रीशिवपूजां करिष्ये' इति संकल्पः। तत्रादौ सामान्यतः पूजाविधिरुच्यते। यामभेदेन विशेषस्तु वक्ष्यते।

त्रयोदशी में एकभक्त कर चतुर्दशी में नित्य कर्म से निवृत्त होकर प्रातःकाल 'शिवरात्रिव्रतं ह्येतत्' इत्यादि मन्त्र से संकल्प करे। द्विज तो 'रात्रीं प्रपद्ये जननीम्' इन दोनों ऋचाओं को पढ़कर जल छोड़े। इसके अनन्तर सायं समय में काले तिल से स्नान करके त्रिपुण्ड्र भस्म और रुद्राक्ष धारण कर प्रदोष में शिवमन्दिर में जाकर पैर धोकर आचमन कर उत्तरमुख हो देश काल कह कर 'शिवरात्रि में पहले पहर की पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प चारो पहर की पूजा करने की इच्छा होने पर करे। एक बार पूजा करने की इच्छा हो तो 'श्रीशिव की प्रसन्नता के लिये शिवरात्रि में श्री शङ्कर की पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करे। आरम्भ में सामान्य पूजा की विधि कहता हूँ। प्रहरभेद से विशेष पूजा आगे कहूँगा।

अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरमन्त्रस्य वामदेवऋषिः अनुष्टुप्छंदः श्रीसदाशिवो देवता न्यासे पूजने च विनियोगः। वामदेवऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, श्रीसदाशिवदेवतायै नमो हृदि, ॐ नं तत्पुरुषाय नमः हृदये, ॐ मं अघोराय नमः पादयोः, ॐ शिं सद्योजाताय नमो गुह्ये, ॐ वां वामदेवाय नमो मूर्ध्नि, ॐ यं ईशानाय नमो मुखे। ॐ ॐ हृदयाय नमः ॐ नं शिरसे स्वाहा, ॐ मं शिखायै वषट्, ॐ शिं कवचाय हुं, ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं यं अस्त्राय फट्। कुंभपूजां विधाय—

इस शिवपञ्चाक्षर-मन्त्र का वामदेव-ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, श्रीसदाशिव-देवता, न्यास और पूजन में विनियोग है। 'वामदेवऋषये नमः' कहकर शिर का स्पर्श करे, 'अनुष्टुप्छन्दसे नमः' कहकर मुख का, 'श्रीसदाशिवदेवतायै नमः' कहकर हृदय का स्पर्श करे, 'ओं नं तत्पुरुषाय नमः' कहकर हृदय में, 'ओं मं अघोराय नमः' कहकर दोनों पैरों में, 'ओं शिं सद्योजाताय नमः' कहकर लिंग और गुदा में, 'ओं वां वामदेवाय नमः' कहकर शिर में, 'ओं यं ईशानाय नमः' कहकर मुख में, 'ओं ओं हृदयाय नमः' से हृदय में, 'ओं नं शिरसे स्वाहा' से शिर में, ओं मं शिखायै वषट् से शिर में, 'ओं शिं कवचाय हुं' से दोनों बाहुओं में, 'ओं वां नेत्रत्रयाय वौषट्' से नेत्रों में, 'ओं यं अस्त्राय फट्' से ताली बजावे, ऐसा न्यास करके कुम्भ की पूजा करके—

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

इति ध्यात्वा प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा स्थाप्यलिङ्गं स्पृशन् ॐ भूः पुरुषं सांबसदाशिवमावाहयामि। ओं भुवः पुरुषं सांब० ओं स्वः पुरुषं सांब० ओं भूर्भुवः स्वः पुरुषं सांब० इत्यावाहयेत्।

स्वामिन्सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकम्।
तावत्त्वं प्रीतिभावेन लिङ्गेस्मिन्सन्निधो भव॥

इति पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। स्थावरलिङ्गे पूर्वसंस्कृतचरलिङ्गे प्राणप्रतिष्ठाद्यावाहनान्तं न कार्यम्। ओं सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः आसनं समर्पयामि।

'ओं ध्यायेन्नित्यं महेशं' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से ध्यान और प्राणप्रतिष्ठा करके स्थाप्य लिङ्ग का स्पर्श करते हुये 'ओं भूः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि' इत्यादि मूलोक्त मन्त्रों को कहकर आवाहन करे। तदनन्तर 'स्वामिन्सर्वजगन्नाथ' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि दे। स्थावर-लिङ्ग में और पहिले संस्कार किये हुए चल-लिङ्ग में भी प्राण-प्रतिष्ठा से लेकर आवाहन पर्यन्त पूजा नहीं करनी चाहिये। 'ओं सद्योजातं प्रपद्यामि' इत्यादि मूलोक्त मंत्र कहकर आसन दे।

स्त्रीशूद्रश्चेत्—ओं नमः शिवायेति पञ्चाक्षरीस्थाने श्रीशिवायनम इति नमोऽन्तमन्त्रेण पूजयेत्। ओं भवे भवे नातिभवे भवस्व मां ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः पाद्यं समर्पयामि। ओं भवोद्भवाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बस० अर्घ्यं० ओं वामदेवाय नमः ओं नमःशिवाय श्रीसाम्ब० आचमनम् ओं ज्येष्ठाय नमः ओंनमः शिवाय० स्नानम्।

पूजक स्त्री या शूद्र हो तो—'ओं नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षरी की जगह 'श्रीशिवाय नमः' इस नमोन्त मन्त्र से पूजा करे। 'ओं भवे भवे' इत्यादि मंत्र कहकर पाद्य का समर्पण करे। 'ॐ भवोद्भवाय नमः' इत्यादि मंत्र से अर्घ्य देवे। 'ॐ वामदेवाय नमः' इत्यादि मन्त्र कहकर आचमन दे, 'ॐ ज्येष्ठाय नमः' इत्यादि मंत्र कहकर स्नान करावे।

ततो मूलमन्त्रेण आप्यायस्वेत्यादिभिश्च पञ्चामृतैः संस्नाप्य आपोहिष्ठेति तिसृभिः शुद्धोदकेन प्रक्षाल्य एकादशावृत्त्यैकावृत्त्या वा रुद्रेण पुरुषसूक्तेन च चन्दनकुंकुमकर्पूरवासितजलेनाभिषेकं कृत्वा ओं नमः शिवायेति स्नानान्ते आचमनं दत्त्वा साक्षतजलेन तर्पणं कार्यम्। ओं भवं देवं तर्पयामि १, शर्वं देवं तर्पयामि २, ईशानं देवं तर्पयामि ३, पशुपतिदेवं तर्पयामि ४, उग्रं देवं त० ५, रुद्रं देवं त० ६, भीमं देवं त० ७, महान्तं देवं त० ८, भवस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि, शर्वस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि, ईशानस्य देवस्य पत्नीं त०, पशुपतेर्देवस्य प०, उग्रस्य देवस्य प०, रुद्रस्य देवस्य प०, भीमस्य देवस्य प०, महतो देवस्य प०८।

इसके अनन्तर मूलमन्त्र और 'आप्यायस्व' इत्यादि मंत्र से पञ्चामृत से नहलाकर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं से शुद्ध जल से प्रक्षालन करके ग्यारह आवृत्ति या एक आवृत्ति रुद्रसूक्त और पुरुषसूक्त से चन्दन, कुंकुम और कपूर से वासित जलसे अभिषेक कर 'ॐ नमः शिवाय' इससे स्नानान्त में आचमन देकर अक्षतसहित जल से तर्पण करे। तर्पण के 'ॐ भवं देवं तर्पयामि' इत्यादि मूलोक्त आठ मंत्र हैं।

ओं ज्येष्ठाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्ब० वस्त्रं० मूलेनाचमनम्, ओं रुद्राय नमः ओं नमः शिवाय० यज्ञोपवीतं०, मूलेनाचमनम्, ओं कालाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः चन्दनं०, ओं कलविकरणाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः पुष्पाणि०, सहस्रमष्टोत्तरशतं वा सहस्रादिनामभिर्मूलमन्त्रेण वा बिल्वपत्राणि दद्यात्। ओं बलाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः धूपं०, ओं बलप्रमथनाय नमः ओं नमः शिवाय श्री० दीपं० ओं सर्वभूतदमनाय नमः ओं नमः शिवाय० नैवेद्यं, मूलेनाचमनं फलं च०, ओं मनोन्मनाय नमः ओं नमः शिवाय० ताम्बूलं, मूलेन वैदिकैर्मन्त्रैश्च नीराजनं०, ओम् ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्। ओं नमः शिवाय० मन्त्रपुष्पं०।

'ओं ज्येष्ठाय नमः' इत्यादि मंत्र से वस्त्र चढ़ावे। मूलमन्त्र से आचमन दे। 'ॐ रुद्रायनमः' इत्यादि मंत्र से यज्ञोपवीत चढ़ावे। मूलमन्त्र से आचमन दे। 'ओं कालाय नमः' इत्यादि मन्त्र से चन्दन चढ़ावे। 'ॐ कलविकरणाय नमः' इत्यादि मंत्र से अक्षत चढ़ावे। 'ॐ बलविकरणाय नमः' इत्यादि मंत्र से पुष्प चढ़ावे। एक हजार या एक सौ आठ बिल्वपत्र श्री शिव के सहस्र नाम से या मूलमन्त्र से शिवपर चढ़ावे। 'ॐ बलाय नमः' इत्यादि मंत्र से धूप दे। 'ॐ बलप्रमथनाय नमः' इत्यादि मंत्र से दीप दे। 'ॐ सर्वभूतदमनाय' इत्यादि मंत्र से नैवेद्य चढ़ावे। मूल मन्त्र से आचमन और फल चढ़ावे। ओं मनोन्मनाय नमः' इत्यादि मंत्र से ताम्बूल दे। मूलमन्त्र और वैदिक-मन्त्रों से आरती करे। 'ओं ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः' इत्यादि मंत्रों से मन्त्रपुष्पाञ्जलि देवे।

भवाय देवाय नमः शर्वाय देवायेत्याद्यष्टौ भवस्य देवस्य पत्न्यै इत्याद्यष्टौ च नमस्कारान्कृत्वा, शिवाय० रुद्राय० पशुपतये० नीलकण्ठाय० महेश्वराय० हरिके-

शाय० विरूपाक्षाय० पिनाकिने० त्रिपुरान्तकाय० शम्भवे० शूलिने० महादेवाय नम इति द्वादशनामभिर्द्वादशपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा मूलेन प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा क्षमापयित्वाऽनेन पूजनेन श्रीसाम्बसदाशिवः प्रीयतामिति निवेदयेत् ।

'भवाय देवाय नमः' इत्यादि आठ भवदेव की पत्नी के लिये आठ नमस्कार करके 'शिवाय नमः' इत्यादि बारह नामों से बारह पुष्पाञ्जलि देकर मूलमन्त्र से प्रदक्षिणा और नमस्कार करके एक सौ आठ मूलमन्त्र को जप कर क्षमा प्रार्थना करके इस पूजन से श्रीसाम्बसदाशिव प्रसन्न हों ऐसा निवेदन करे ।

अथ चतुर्षु यामेषु पूजाचतुष्टये विशेषः—तत्र प्रथमयामे मूलमन्त्रान्ते श्रीशिवायासनं समर्पयामीति शिवनाम्ना सर्वोपचारसमर्पणम् । 'द्वितीययामे शिवरात्रौ द्वितीययामपूजां करिष्ये' इति संकल्प्य श्रीशङ्करायासनमिति शङ्करनाम्ना । ततो 'महानिशि पूजां करिष्ये' इति संकल्प्य पूर्ववत्पूजा । ततः 'तृतीय यामपूजां करिष्ये' इत्युक्त्वा श्रीमहेश्वरायासनमित्यादि महेश्वरनाम्ना । एवमेव चतुर्थयामे श्रीरुद्रनाम्ना । प्रतियामं तैलाभ्यङ्गपञ्चामृतोष्णोदकशुद्धोदकगन्धोदकाभिषेकाः कार्याः ।

चारों पहर की चार पूजा में विशेषता यह है कि पहले पहर में मूलमन्त्रके अन्त में 'श्रीशिवायासनं समर्पयामि' इसी प्रकार शिव के नाम से सब उपचारों को समर्पण करे । दूसरे पहर में 'शिवरात्रि के दूसरे पहर की पूजा करूंगा' ऐसा संकल्प कर 'श्रीशङ्करायासनं' इस तरह शंकर के नाम से पूजा करे। तदनन्तर 'अर्धरात्रि में पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प कर पहिले की तरह पूजा करे । इसके बाद 'तृतीय याम की पूजा करूँगा' ऐसा कहकर 'श्रीमहेश्वरायासनं' इत्यादि कह कर महेश्वर के नाम से पूजा करे । इसी प्रकार चौथे पहर में 'श्रीरुद्राय' ऐसा कहके रुद्र के नाम से पूजा करे । प्रत्येक पहर में तैलाभ्यङ्ग, पञ्चामृत, गर्मजल और शुद्ध जल से अभिषेक करे ।

यज्ञोपवीतान्ते गोरोचनकस्तूरीकुंकुमकर्पूरागरुचन्दनमिश्रितानुलेपेन लिङ्गं लेपयेत् । पञ्चविंशतिपलमितः सर्वोनुलेप इति अनुलेपपरिमाणं, यथाशक्ति वा । धत्तूरकरवीरकुसुमैर्बिल्वपत्रैश्च पूजनमतिप्रशस्तम् । पुष्पाभावे शालितण्डुलगोधूमयवैः पूजा । नैवेद्योत्तरं ताम्बूलमुखवासौ उक्तौ ।

यज्ञोपवीत चढ़ाने के बाद गोरोचन-कस्तूरी-कुंकुम कपूर-अगरु-चन्दन मिले हुए अनुलेपन का शिवलिङ्ग में लेपन करे । पहिले कही गोरोचन आदि पचीस परिमित अनुलेपन का परिमाण होता है । अथवा यथाशक्ति अनुलेपन है । धतूर तथा करवीर के फूलों और बिल्वपत्र से पूजन अत्यन्त उत्तम है । फूल न मिलने पर साठी का चावल, गेहूँ और जव से पूजा करे । नैवेद्य के बाद ताम्बूल और मुखवास देवे ।

अथ ताम्बूलमुखवासलक्षणम्

नागवल्लीपत्रक्रमुकफलशुक्त्यादिचूर्णेतित्रयं ताम्बूलसंज्ञम् । एतदेव नारिकेलकर्पूरैलाकङ्कोलैः सहितं मुखवाससंज्ञम् । एतेषामन्यतमद्रव्यालाभे तत्तद् द्रव्यं स्मरेद् बुधः । सर्वपूजान्ते प्रार्थना—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यत्कृतं तु मया शिव ।
तत्सर्वं परमेशान मया तुभ्यं समर्पितम् ॥ इति ।
शिवरात्रिव्रतं देव पूजाजपपरायणः ।
करोमि विधिवद्दत्तं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ इत्यर्घ्यः ।

एवं यामचतुष्टयेऽर्घ्यभेदः कौस्तुभे ।

सुपारी, पान, सितुही का चूना, इन तीन का नाम ताम्बूल है । यही तीन में नारियल, कपूर, इलायची और कंकोल को मिला देने से यही मुखवास हो जाता है । इनमें से किसी एक द्रव्य के न मिलने पर उस द्रव्य का पण्डित स्मरण कर ले । सब पूजा के अन्त में 'नित्य नैमित्तिकं काम्यं' इत्यादि मूलोक्तमंत्र से प्रार्थना करे । 'शिवरात्रिव्रतं देव' इत्यादि मंत्र से अर्घ्य दे । इसी प्रकार चारो पहर की पूजा में अर्घ्यभेद कौस्तुभ में है ।

ततः प्रभाते स्नात्वा पुनः शिवं संपूज्य पूर्वोक्तद्वादशनामभिर्द्वादशब्राह्मणानशक्तावेकं वा संपूज्य तिलपक्वान्नपूर्णान् द्वादशकुम्भानेकं वा दत्त्वा व्रतमर्पयेत् ।

यन्मयाद्य कृतं पुण्यं तद्रुद्रस्य निवेदितम् ।
त्वत्प्रसादान्महादेव व्रतमद्य समर्पितम् ॥
प्रसन्नो भव मे श्रीमन्सद्गतिः प्रतिपाद्यताम् ।
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः ॥ इति ।

इसके बाद प्रातःकाल स्नान कर शिवभगवान् की फिर पूजा करके पहले कहे हुए बारह नामों से बारह ब्राह्मणों की पूजा कर, शक्ति न हो तो एक ब्राह्मण की पूजाकर तिल को पक्वान्न से परिपूर्ण बारह कुम्भों या एक कुम्भ को ब्राह्मण को देकर 'यन्मयाऽद्य कृतं पुण्यं' इत्यादि मूलोक्त मंत्र पढ़कर व्रत अर्पण करे ।

ततो ब्राह्मणान् भोजयित्वा पूर्वनिर्णीते काले स्वजनैः सह पारणं कुर्यात् । तत्र मन्त्रः—

संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शङ्कर ।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥

इति शिवरात्रिव्रतविधिः ।

तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराके पहले निर्णय किये काल में अपने जनों के साथ पारण करे । पारण का 'संसार क्लेशदग्धस्य' इत्यादि मंत्र है । शिवरात्रि व्रतविधि समाप्त ।

अथ पार्थिवलिंगपूजा

अथ मृन्मयलिङ्गे शिवपूजाचिकीर्षायां तद्विधिः—ओं हराय नमः इति मृदमाहृत्य शोधितायां तस्यां जलप्रक्षेपेण संपीड्य तेन पिण्डेन ओं महेश्वराय नम इति लिङ्गं कुर्यात् । तच्च लिङ्गमशीतिगुञ्जात्मककर्षादधिकपरिमाणमङ्गुष्ठमात्रं ततोऽधिकं वा कार्यं न न्यूनम् । मृन्मयलिङ्गे पञ्चसूत्रसंपादनाभावेऽपि न दोषः । अत एव—

मिट्टी के लिङ्ग में शिवपूजा करने की इच्छा हो तो इसकी विधि यह है—'ओं हराय नमः' यह कहके मिट्टी ले आवे उसको सशोधन करके उसमें जल डाल कर मसल कर पिण्डी बनाकर 'ओं महेश्वराय नमः' इस मन्त्र से लिङ्ग बनावे। वह लिंग ८० गुंजा के १ कर्ष के परिमाण से अधिक तौल का अंगूठे के बराबर या अंगूठे से बड़ा बनावे, छोटी न हो। मिट्टी के लिङ्ग में पंचसूत्री बनाने में दोष नहीं है। इसलिये—

सप्तकृत्वस्तुलारूढं वृद्धिमेति न हीयते।
बाणलिङ्गमिति प्रोक्तं शेषं नार्मदमुच्यते॥

इत्युक्तलक्षणाद् बाणलिङ्गादतिदुर्लभाद् दुःसंपाद्य पञ्चसूत्रसंपादनात्सुवर्णादि-लिङ्गाच्च मृन्मयलिङ्गं[1] श्रेष्ठम्। 'द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे' इति वचनाच्च।

सात बार तराजू से तौलने पर जिसकी तौल कम न हो उसे बाणलिङ्ग कहते हैं, यह बढ़ता ही है घटता नहीं है। इसे बाणलिङ्ग कहते हैं। अतिरिक्त नार्मद लिङ्ग होता है। इस लक्षण वाला बाणलिङ्ग के अत्यन्त दुर्लभ होने से उसका पंचसूत्र सम्पादन के दुःसम्पाद्य होने से सुवर्ण आदि के लिङ्ग से मिट्टी का लिङ्ग श्रेष्ठ है। क्योंकि 'द्वापर में पारे का लिङ्ग श्रेष्ठ है। कलि में तो मिट्टी का सबसे श्रेष्ठ होता है' इस आशय का वचन प्रमाण है।

ततः ओं शूलपाणये नमः शिव इह प्रतिष्ठितो भवेति सबिल्वपत्रे पूजापीठे प्रतिष्ठाप्य ध्यायेन्नित्यं महेशमिति ध्यात्वा ओं पिनाकधृषे नमः श्रीसाम्बसदाशिव इहागच्छ इह प्रतिष्ठेह सन्निहितो भवेत्यावाहयेत्। इह द्विजानां सर्वत्र मूल-मन्त्रोपि ज्ञेयः।

तदनन्तर 'शूलपाणये नमः' कहकर बिल्वपत्रसहित पूजा के आसन पर स्थापित कर 'ध्याये-न्नित्यं महेशं' इससे ध्यान कर 'ओं पिनाकधृषे नमः' इत्यादि कहकर आवाहन करे। यहाँ द्विजों को सर्वत्र मूलमन्त्र को भी जानना चाहिये।

ततः ओं नमः शिवायेति मूलमन्त्रेण पाद्यमर्घ्यमाचमनं दत्त्वा पशुपतये नमः इति मूलेन च स्नानं वस्त्रमुपवीतं गन्धं पुष्पं धूपदीपनैवेद्यफलताम्बूलनीराजन-मन्त्रपुष्पाञ्जलीन्दत्त्वा शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः इति प्राच्यां पूजयेत्। भवाय जलमूर्तये नमः ईशान्यां, रुद्रायाग्निमूर्तये० उदीच्याम्, उग्राय वायुमूर्तये नमः वा-यव्यां, भीमायाकाशमू० प्रतीच्यां, पशुपतये यजमानमूर्तये नमः इति नैऋत्यां, महादेवाय सोममूर्तये नमः इति दक्षिणस्याम्, ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः इत्या-ग्नेय्यां, ततः स्तुत्वा नमस्कृत्य महादेवाय नमः इति विसर्जयेदिति संक्षेपः।

इसके बाद 'ओं नमः शिवाय' इस मूलमन्त्र से पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय देकर 'पशुपतये नमः' इससे और मूलमंत्र से स्नान, वस्त्र, जनेऊ, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, नीराजन और मन्त्रपुष्पाञ्जलि देकर 'शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः' इससे पूर्व दिशा में पूजे। 'भवाय जलमूर्तये नम' इससे ईशान दिशा में, 'रुद्रायाग्निमूर्तये नम' इससे उत्तर दिशा में, 'उग्राय वायुमूर्तये

---

१. नन्दिपुराण में पार्थिवलिङ्गका प्राशस्त्य-प्रतिपादन—'वरमिं भवेल्लिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत्। तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम्॥' इति।

नमः' इससे वायव्य दिशा में, 'भीमायाकाशमूर्तये नमः' इसे कहकर पश्चिम दिशा में, 'पशुपतये यजमान मूर्तये नमः, इसे कहकर नैर्ऋत्य दिशा में, 'महादेवाय सोममूर्तये नमः' इससे दक्षिण दिशामें, 'ईशानाय-सूर्यमूर्तये नमः' इससे आग्नेय दिशा में पूजा करे। तदनन्तर स्तुति और नमस्कार करके 'महादेवाय नमः' कहकर विसर्जन करे, यह संक्षिप्त विधि है।

विस्तरस्तु पुरुषार्थचिन्तामणौ ज्ञेयः। शिवरात्रिश्चेत्पूर्वोक्तपूजाविधिः पार्थिवलिङ्गेऽपि कार्यः। पार्थिवलिङ्गोद्यापनविधिः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

विस्तारपूर्वक तो पुरुषार्थचिन्तामणि से जानना चाहिये। यदि शिवरात्रि हो तो पहिले कही हुई पूजाविधि को पार्थिवलिङ्ग में भी करे। पार्थिवलिङ्ग के उद्यापन की विधि कौस्तुभ आदि से जानना चाहिये।

अथ लिङ्गविशेषेण फलविशेषः

आयुष्यं हीरजे लिङ्गे, मौक्तिके रोगनाशः, वैडूर्ये शत्रुनाशः, पद्मरागे लक्ष्मीः, पुष्परागजे सुखम्, ऐन्द्रनीले यशः, मारकते पुष्टिः, स्फाटिके सर्वकामाः, राजते राज्यं पितृमुक्तिः, हैमे सत्यलोकः, ताम्रे पुष्टिरायुश्च, पैत्तले तुष्टिः, कांस्ये कीर्तिः, लौहे शत्रुनाशः, सीसजे आयुष्यम्। मतान्तरे सौवर्णे ब्रह्मस्वपरिहारः स्थिरलक्ष्मीश्च। एवं गन्धमये सौभाग्यम्, हस्तिदन्तजे सेनापत्यम्, व्रीह्यादिधान्यपिष्टजे पुष्टिसुखरोगनाशादि, माषजे स्त्रीः, नावनीते सुखम्, गोमयजे रोगनाशः, गौडेऽन्नादि, वंशांकुरजे वंशवृद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः।

हीरा के लिङ्ग से आयु, मोती के लिङ्ग से रोग का नाश, वैडूर्य के लिङ्ग से शत्रु का नाश, पद्मराग के लिङ्ग से लक्ष्मीप्राप्ति, पोखराज के लिङ्ग से सुख, इन्द्रनील के लिङ्ग से यश, मरकत के लिङ्ग से पुष्टि, स्फटिक के लिङ्ग से मनोरथसिद्धि, चांदी के लिङ्ग से राज्य और पिता की मुक्ति, सुवर्ण के लिङ्ग से सत्यलोक, ताम्बे के लिङ्ग से पुष्टि और आयु, पीतल के लिङ्ग से तुष्टि, कांसे के लिङ्ग से कीर्ति, लोहे के लिङ्ग से शत्रुनाश, सीसे के लिङ्ग से आयु। दूसरे मत से सुवर्ण लिङ्ग से ब्रह्मस्व का परिहार और लक्ष्मी स्थिर रहती है। इसी प्रकार गन्धमय लिङ्ग से सौभाग्य, हाथी दांत के लिङ्ग से सैनापत्य, धान आदि अन्न के आँटे के लिङ्ग से पुष्टि, सुख और रोगनाश आदि फल होता है। ऊर्द के आँटे के लिङ्ग से स्त्रीप्राप्ति, मक्खन के लिङ्ग से सुख, गोबर के लिङ्ग से रोगनाश, गुड के लिङ्ग से अन्न आदि की प्राप्ति, बांसके अङ्कुर से बने लिङ्ग से वंशवृद्धि होती है, ऐसा अन्य ग्रन्थों में विस्तृत-फल द्रष्टव्य है।

एवं लिङ्गसंख्याविशेषात्फलविशेषः कौस्तुभे। शिवनिर्माल्यग्रहणाग्रहणविचारस्तृतीयपरिच्छेदे ज्ञेयः। मासशिवरात्रिनिर्णयः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः। शिवरात्रिव्रतोद्यापनं कौस्तुभादौ ज्ञेयम्। मासशिवरात्रिव्रतोद्यापनमपि कौस्तुभे स्पष्टम्। माघामावास्यायामपराह्णव्यापिन्यां युगादित्वादपिण्डकं[1] श्राद्धं

---

[1] मनुः—'सहस्रगुणितं दानं भवेद्दत्तं युगादिषु। कर्म श्राद्धादिकं चैव तथा मन्वन्तरादिषु॥' विष्णुपुराण में विशेष—'माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन। ऋक्षेण कालः स परः पितॄणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ॥' माघ अमावास्या में कुम्भयोग का विवेचन पौषअमावस्या अर्धोदययोग में देखें।

कार्यम्। तच्च दर्शश्राद्धेन सह तन्त्रं कार्यम्। माघामावास्यायां शततारकायोगे परमः पुण्यकालस्तत्र श्राद्धात्परमा पितृतृप्तिः। इति माघमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

इसी प्रकार लिङ्ग के संख्याविशेष से फलविशेष कौस्तुभ में है। शिवनिर्माल्य के ग्रहण करने और ग्रहण नहीं करने के सम्बन्ध में विचार तृतीयपरिच्छेद से जानना चाहिये। मास शिवरात्रि का निर्णय प्रथम परिच्छेद में कह चुका हूँ। शिवरात्रिव्रत का उद्यापन कौस्तुभ आदि से जानना चाहिये। मास शिवरात्रि व्रत का उद्यापन भी कौस्तुभ में स्पष्ट है। अपराह्णव्यापिनी माघ की अमावास्या युगादि तिथि होने से इस दिन विना पिण्ड का श्राद्ध करे। वह दर्शश्राद्ध के साथ तन्त्र से करे। माघ की अमावास्या शततारका के योग में अतिशय पुण्यसमय होता है इसमें श्राद्ध करने से पितरों की परम तृप्ति होती है। माघमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ फाल्गुनमासे मीनसंक्रान्तिः

मीनसंक्रान्तौ पराः षोडश नाड्यः पुण्याः। रात्रौ तु प्रागुक्तम्। फाल्गुने गोव्रीहिवस्त्रदानं [1]गोविन्दप्रीतये कार्यम्। अथ फाल्गुनशुक्लप्रतिपदमारभ्य द्वादशदिनपर्यन्तं पयोव्रतं श्रीभागवते उक्तम्। तत्प्रयोगो मूलानुसारेणोह्यः।

मीन संक्रान्ति के पर की सोलह घड़ियाँ पुण्यकाल है। रात में तो पहले कह चुके हैं। फाल्गुन में गौ, धान्य, अन्य वस्तु का दान भगवान् की प्रीति के लिये करना चाहिये। फाल्गुनशुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ करके बारह दिन तक पयोव्रत श्रीमद्भागवत में कहा है। इसका विधान भागवत के मूल श्लोकों के अनुसार जानें।

अथ होलिकानिर्णयः

फाल्गुनीपौर्णमासी मन्वादिः। सा पौर्वाह्णिकी। इयमेव होलिका[2]। सा

---

१. फाल्गुनशुक्लद्वादशी में गोविन्दद्वादशी का योग कृत्यामृत में—'फाल्गुनस्य सिते पक्षे कुम्भस्थे दिवसाधिपे। जीवे धनुषि संस्थे च शोभने रविवासरे॥ पुष्यर्क्षेण च संयुक्ता गोविन्दद्वादशी मता।' तिथितत्त्वे—'फाल्गुने शुक्लपक्षस्य पुष्यर्क्षे द्वादशी यदि। गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी॥ गोविन्दद्वादशीं प्राप्य गच्छेच्छ्रीपुरुषोत्तमम्। विनाऽऽयासेन राजेन्द्र मुक्तः सायुज्यमाप्नुयात्॥'

कृत्यामृत में लक्षणान्तर—'यदा चापे जीवो भवति घटराशौ दिनमणिस्तथा तारानाथः स्वभवनगतः फाल्गुनसिते। यदाऽर्को द्वादश्यां यदि च गुरुभं शोभनयुतं तदा गोविन्दाख्यं हरिदिवसमस्मिन् भुवि तले॥ कदाचिद्योगोऽयं परमपुरुषार्थैकनिलये जगन्नाथक्षेत्रे मिलति यदि भाग्योदयवशात्। नरस्तत्र स्नात्वा सरसि सहसा कृष्णपदवीं सुरेन्द्रैर्दुष्प्रापां भजति बहुपापोऽपि नितराम्॥' पुष्यर्क्षे द्वादशी शुक्ला फाल्गुनस्य तु या भवेत्। गोविन्दद्वादशी नाम गंगायामतिदुर्लभा॥' पद्मपुराण में गंगास्नान का मन्त्र—'महापातकसंज्ञानि यानि पापानि सन्ति मे। गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि॥' इसमें गोविन्द (विष्णु) का पूजनादि करे।

व्रतरत्नाकर में नारद—'अन्ते सितायां द्वादश्यां सौवर्णीं प्रतिमां हरेः। अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्दद्याद् वेदविदे तथा॥ द्विषट्कसंख्यान् विप्रांश्च भोजयित्वा सदक्षिणान्। दत्त्वा विसर्जयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥ फाल्गुनी द्वादशी शुक्ला या पुष्यार्क्षेण संयुता। गोविन्दद्वादशी नाम सा स्याद् गोविन्दभक्तिदा॥ तस्यामुपोष्य विधिना भगवन्तं प्रपूजयेत्।' इति।

२. भविष्यपुराण के अनुसार सत्ययुग में ढुंढा नाम की राक्षसी शंकर से वर पाकर प्रतिदिन बालकों को पीडित किया करती थी। भयभीत-जनता ने राजा रघु से कहा। राजा ने जब पुरोहित से

प्रदोषव्यापिनी भद्रारहिता ग्राह्या। दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परदिने प्रदोषैकदेश-व्याप्तौ वा परैव, पूर्वदिने भद्रादोषात्। परदिने प्रदोषस्पर्शाभावे पूर्वदिने प्रदोषे भद्रासत्त्वे यदि पूर्णिमा परदिने सार्धत्रियामा ततोधिका वा तत्परदिने च प्रति-पद्वृद्धिगामिनी तदा परदिने प्रतिपदि प्रदोषव्यापिन्यां होलिका।

फाल्गुन की पूर्णिमा मन्वादि तिथि है। यह पूर्वाह्न में होने पर ग्राह्य है। यही होलिका कहलाती है। यह भद्रा से रहित प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य है। दोनों दिन प्रदोष में रहने पर अथवा प्रदोष के एकदेश में रहने पर परा ही ग्राह्य है क्योंकि पहले दिन भद्रा का दोष है। दूसरे दिन प्रदोषस्पर्श

उसके नाश का उपाय पूछा तो पुरोहित ने कहा—'संचयं शुष्ककाष्ठानामुपलानां च कारयेत्। तत्राग्निं विधिवद् हुत्वा रक्षोघ्नैर्मन्त्रविस्तरैः॥ ततः किलकिलाशब्दैस्तालशब्दैर्मनोरमैः। तमग्निं त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च॥ तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता। भयेन तेन सा रण्डा पलायेल्ल-ज्जिता सती॥ मरिष्यति न सन्देहो भस्मीभूता तु पूतना। तदा तद्वचनं श्रुत्वा स नृपः पाण्डुनन्दन॥ सर्वं चकार विधिवद् यदुक्तं तेन धीमता। गता सा राक्षसी नाशं तेन घोरेण कर्मणा॥

ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् होलिका ख्यातिमागता। सर्वदुष्टापहो होमः सर्वरोगोपशान्तिदः॥ क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा होलिका स्मृता। अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे॥ गोम-येनोपलिप्ते च सुचतुष्के गृहाङ्गणे। आकारयेच्छिशुप्रायान् बहुव्यग्रकरान्नरान्॥ ते काष्ठखड्गैः संस्पृश्य गीतैर्हास्यकरैः शिशून्। रक्षन्ति तेभ्यो दातव्यं गुडपक्वान्नमेव च॥ एवं दुण्ढेति राक्षस्याः स दोषः प्रशमं व्रजेत्। बालानां रक्षणं कार्यं तस्मात्तस्मिन्निशागमे॥' सुचतुष्क का सुचतुरस्र और शिशुप्राय का शिशुबहुल अर्थ है।

ज्योतिर्निबन्ध में नारद—'प्रतिपद्भूतभद्रासु याऽर्चिता होलिका दिवा। संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति साऽद्भुतम्॥ प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पौर्णिमा फाल्गुनी सदा। तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे॥' यदि पूर्णिमा दो दिन प्रदोष में अथवा प्रदोष के एकदेश में व्याप्त हो तो पहले दिन भद्रा के रहने के कारण पर दिन को ही ग्रहण करे, जैसा कि पुराणसमुच्चय में कहा—'दिनार्धात् परतोऽपि स्यात् फाल्गुनी पूर्णिमा यदि। रात्रौ भद्रावसाने तु होलिका दीप्यते तदा॥'

जब पूर्व दिन चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी हो और दूसरे दिन क्षय होने के कारण पूर्णिमा सायाह्न के पूर्व ही समाप्त हो जाय तब पर दिन प्रतिपदा में ही करे क्योंकि पूर्व दिन सम्पूर्ण रात्रि में भद्रा रहेगी और भद्रा में होलिकादाह निषिद्ध है। यथा भविष्यपुराणे—'सार्धयामत्रयं वा स्याद् द्वितीयदिवसे यदा। प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा सा होलिका स्मृता॥' तथा—'असत्यामपि पूर्णायां वृद्धित्वे होलिकार्चनम्। क्रियमाणं च नन्दायां शान्तिर्भवति नो क्षयः॥'

यदि प्रतिपदा का ह्रास हो तो पूर्व दिन भद्रामुख का त्याग कर भद्रापुच्छ में होलिकादाह करे, जैसा कि नारद ने कहा—'प्रदोषव्यापिनी चेत्स्याद्यदा पूर्वदिने तदा। भद्रामुखं वर्जयित्वा होलि-कायाः प्रदीपनम्॥' विद्याविनोदे—'यामत्रयोर्ध्वयुक्ता चेत् प्रतिपत्तु भवेत्तिथिः। भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होला मनीषिभिः॥' दिवोदासीय वचन से दिन में होलिकादाह निषिद्ध है—'निशागमे प्रपूज्येत होलिका सर्वदा बुधैः। न दिवा पूजयेत् ढुण्ढां पूजिता दुःखदा भवेत्॥'

होलिकादाह के समय का वायुफल—'पूर्वे वायौ होलिकायां प्रजाभूपालयोः सुखम्। पलायनं च दुर्भिक्षं दक्षिणे जायते ध्रुवम्॥ पश्चिमे तृणसम्पत्तिरुत्तरे धान्यसम्भवः। यदीशानेऽप्यनावृष्टि-रूर्ध्वं राजा समाश्रयेत्॥' इति।

फाल्गुन पूर्णिमा मन्वादि है। यथा मत्स्यपुराणे—'कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा। मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारकाः॥' इति। विशेष अन्य-निबन्धों में देखें।

के अभाव में और पहले दिन प्रदोष में भद्रा के होने पर यदि पूर्णिमा दूसरे दिन साढ़े तीन पहर या उससे अधिक हो और दूसरे दिन प्रतिपदा बढ़ती हो तो दूसरे दिन प्रदोषव्यापिनी प्रतिपदा में होलिका जलावे।

उक्तविषये यदि प्रतिपदो ह्रासस्तदा पूर्वदिने भद्रापुच्छे वा भद्रामुखमात्रं त्यक्त्वा भद्रायामेव वा होलिकादीपनम्। परदिने प्रदोषस्पर्शाभावे पूर्वदिने यदि निशीथात्प्राग्भद्रासमाप्तिस्तदा भद्रावसानोत्तरमेव होलिकादीपनम्। निशीथोत्तरं भद्रासमाप्तौ भद्रामुखं त्यक्त्वा भद्रायामेव। प्रदोषे भद्रामुखव्याप्ते भद्रोत्तरं प्रदोषोत्तरं वा। दिनद्वयेपि पूर्णिमायाः प्रदोषस्पर्शाभावे पूर्वदिन एव भद्रापुच्छे तदलाभे भद्रायामेव प्रदोषोत्तरमेव होलिका। रात्रौ पूर्वार्धभद्राया ग्राह्यत्वोक्तेः न तु पूर्वप्रदोषादौ चतुर्दश्यां न वा परत्र सायाह्नादौ। दिवा होलिकादीपनं तु सर्वग्रन्थविरुद्धम्।

ऐसे स्थल में यदि प्रतिपदा का ह्रास हो तब पहले दिन भद्रा के पुच्छ में या भद्रा के मुख मात्र को छोड़कर भद्रा में ही होली जलावे। दूसरे दिन प्रदोषस्पर्श के अभाव में पहिले दिन यदि आधी रात से पहले भद्रा की समाप्ति होती हो तो भद्रा के अन्त में होलिका जलावे। अर्द्धरात्रि के बाद भद्रा समाप्त होती हो तो भद्रामुख छोड़कर भद्रा में ही जलावे। प्रदोष में भद्रामुख हो तो भद्रा के बाद या प्रदोष के बाद जलावे। दोनों दिन में भी पूर्णिमा का प्रदोष से स्पर्श न हो तो पहले ही दिन भद्रापुच्छ में या भद्रापुच्छ न मिलने पर भद्रा में ही प्रदोष के अनन्तर होलिका का दीपन करे। क्योंकि रात में भद्रा के पूर्वार्द्ध के ग्रहण की उक्ति है, न कि पूर्व प्रदोष के आदि में या चतुर्दशी में और न दूसरे दिन सायंकाल में होली जलावे। दिन में होलिका दीपन तो सब ग्रन्थों के विरुद्ध है।

इदं होलिकापूजनं श्रवणाकर्मादिवद्भुक्त्वापि कुर्वन्ति। युक्तं चैतत्। केचिद्धोलिकापूजनं कृत्वा भुञ्जते तेषां भोजनस्य पूजनस्य वा न नियमेन शास्त्रविहितकाललाभः। इदं चन्द्रग्रहणसत्त्वे वेधमध्ये कार्यम्। ग्रस्तोदये परदिने प्रदोषे पूर्णिमासत्त्वे ग्रहणमध्य एव कार्यम्, अन्यथा पूर्वदिने।

यह होलिकापूजन श्रवणाकर्म की तरह भोजन करके भी करते हैं। यह ठीक भी है। कुछ लोग होलिका पूजन करके भोजन करते हैं, उन लोगों को भोजन और पूजन के नियम से शास्त्र-विहित भोजनकाल नहीं मिलता। इसे चन्द्र ग्रहण रहते वेध के मध्य में भी करना चाहिये। ग्रस्तोदय में दूसरे दिन प्रदोष में पूर्णिमा के रहने पर ग्रहण के मध्य में ही करे, नहीं तो पहिले दिन।

अथ भद्रामुखपुच्छलक्षणम्

पूर्णिमायां भद्रायास्तृतीयपादान्ते घटीत्रयं पुच्छम्। चतुर्थपादाद्यघटीपञ्चकं मुखम्। तथा च मध्यममानेन षष्टिघटीमितायां पूर्णिमायां पूर्णिमाप्रवृत्त्युत्तरं सार्धैकोनविंशतिघटिकोत्तरं घटीत्रयं पुच्छं सार्धद्वाविंशतिघटिकोत्तरं घटीपञ्चकं मुखम्[1]। तिथेश्चतुःषष्टिघटीमितत्वे पूर्णिमाया एकविंशतिघटिको-

---

[1] नारदसंहिता में मुख का परिमाण—'मुखे पञ्च गले त्वेका वक्षस्येकादश स्मृताः। नाभौ चतस्रः षट् कट्यां तिस्रः पुच्छाख्यनाडिकाः॥' निशामुख के साहचर्य से यहाँ आदि में पञ्च नाड़ी-परिमित मुख जानना चाहिये।

त्तरं पुच्छं चतुर्विंशतिघटिकोत्तरं मुखम् । एवं तिथेर्मानान्तरेप्यूह्यम् ।

पूर्णिमा में भद्रा के तृतीय चरण के अन्तमें ३ घटी भद्रापुच्छ होता है। चौथे चरण के आदि की ५ घटी भद्रामुख होता है। इस प्रकार मध्यमान से यदि पूर्णिमा ६० घड़ी हो तो पूर्णिमा की प्रवृत्ति के बाद साढे उन्नीस घड़ी के उत्तर तीन घड़ी पुच्छ और साढे बाइस घड़ी के बाद पांच घड़ी मुख होता है। पूर्णिमा तिथि ६४ घटी हो तो उसकी २१ घटी के बाद भद्रापुच्छ और २४ घटी के बाद भद्रामुख होता है। इसी प्रकार तिथि के दूसरे मानों में भी कल्पना कर लेनी चाहिये।

अथ होलिकापूजाविधिः

देशकालौ संकीर्त्य 'सकुटुम्बस्य मम ढुण्ढाराक्षसीप्रीत्यर्थं तत्पीडापरिहारार्थं होलिकापूजनमहं करिष्ये' इति संकल्प्य शुष्काणां काष्ठानां गोमयपिण्डानां च राशिं कृत्वा वह्निना प्रदीप्य तत्र—

अस्माभिर्भयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलिके यतः ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव ॥

इति पूजामन्त्रेण श्रीहोलिकामावाहयामीत्यावाह्य होलिकायै नम इति मन्त्रेणासनपाद्यादिषोडशोपचारान् दत्त्वा,

तमग्निं त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च ।
जल्पन्तु स्वेच्छया लोका निःशङ्का यस्य यन्मतम् ॥

देश काल को कहकर 'सकुटुम्ब ढूंढा राक्षसी की प्रीति के लिये उसके द्वारा प्राप्त पीड़ा के हटाने के लिये मैं होलिकापूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करके सूखे काष्ठ और गोबर के पिण्डों की राशि बनाकर अग्नि से जलाकर वहाँ 'अस्माभिर्भयसन्त्रस्तैः' इत्यादि पूजा-मन्त्र से 'श्रीहोलिकायै नमो होलिकामावाहयामि' इससे आवाहन करके 'होलिकायै नमः' इस मन्त्र से आसन पाद्य आदि षोडशोपचार से पूजन कर, उस अग्नि की तीन परिक्रमा करके स्वेच्छा से गावें हंसे निःशंक होकर जिसका जो मन हो कहे।

ज्योतिर्निबन्धे—

पञ्चमीप्रमुखास्तासु तिथयोऽनन्तपुण्यदाः ।
दश स्युः शोभनास्तासु काष्ठस्तेयं विधीयते ॥
चाण्डालसूतिकागेहाच्छिशुहारितवह्निना ।
प्राप्तायां पूर्णिमायां तु कुर्यात्तत्काष्ठदीपनम् ॥
ग्रामाद्बहिश्च मध्ये वा तूर्यनादसमन्वितः ।
स्नात्वा राजा शुचिर्भूत्वा स्वस्तिवाचनतत्परः ॥
दत्त्वा दानानि भूरीणि दीपयेद्धोलिकाचितिम् ।
ततोऽभ्युक्ष्य चितिं सर्वां साज्येन पयसा सुधीः ॥
नारिकेलानि देयानि बीजपूरफलानि च ।
गीतवाद्यैस्तथा नृत्यै रात्रिः सा नीयते जनैः ॥

तमग्निं त्रिः परिक्रम्य शब्दैर्लिङ्गभगाङ्कितैः ।
तेन शब्देन सा पापा राक्षसी तृप्तिमाप्नुयात् ॥

एवं रात्रौ होलिकोत्सवं कृत्वा प्रातः प्रतिदिनं यः श्वपचं दृष्ट्वा[1] स्नानं कुर्यात्,

न तस्य दुष्कृतं किञ्चिन्नाधयो व्याधयोपि च ।
कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः ॥
वन्दयेद्धोलिकाभूतिं सर्वदुष्टोपशान्तये । वन्दने मन्त्रः—
वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ।
अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव ॥

ज्योतिर्निबन्ध में पंचमी आदि तिथियाँ अनन्त पुण्य देने वाली हैं। उनमें १० शोभन हैं। उनमें लकड़ी की चोरी का विधान है। चांडाल के घर और सूतिका के घर से लकड़ी की चोरी कर बच्चे से अग्नि मंगावे। पूर्णिमा के आने पर उस लकड़ी को जला दे। गांव के बाहर या बीच में तुरही बाजे की ध्वनि के साथ राजा स्नान करके पवित्र होकर स्वस्तिवाचन करे। बहुत से दान देने के बाद होलिका की चिता को जलावे। इसके बाद सम्पूर्ण चिता में घी दूध का छींटा डाले। नारियल, अनार के फल चढ़ावे। उस रात को गाने बजाने और नाच से बितावे। उस अग्नि की तीन परिक्रमा करके लिंग भग के शब्दोंसे उस पापा राक्षसी को तृप्त करे। इस प्रकार रात में होलिकोत्सव मनाकर प्रातःकाल प्रतिपदा में चांडाल को देखकर या स्पर्श कर स्नान करे। उसको कोई पाप नहीं होता। शारीरिक या मानसिक कोई व्यथा नहीं होती। आवश्यक कार्यों को करके देवपितृतर्पण करके सब दुष्टों की शान्ति के लिये होलिका के भस्म को प्रणाम करे। प्रणाम का मन्त्र 'वन्दितासि०' इत्यादि है।

अथ करिदिननिर्णयः

होलिकादिनं करिसंज्ञकतदुत्तरदिनं च शुभे वर्ज्यम् ।
होलिकाग्रहणभावुकायनं प्रेतदाहदिवसोत्र पञ्चमः ।
तत्परं च करिसंज्ञकं दिनं वर्जितं सकलकर्मसूभयम् ॥ इत्युक्तेः ।
ग्रहणायनप्रेतदाहेषु निशीथविभागेन पूर्वदिनकरिदिनयोर्निर्णयोः ज्ञेयः ।
नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् ।
फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥

होली और उसके उत्तर के करिसंज्ञक दिन शुभकर्म में वर्जित है। होली का दिन, ग्रहण, उत्तरायण, दक्षिणायण, प्रेतदाह, उसके बाद करिसंज्ञक दिन प्रत्येक कर्म में वर्जित है। ग्रहण, अयन और प्रेतदाह में आधी रात के विभाग से पूर्व दिन और करि-दिन का निर्णय जानना चाहिये। झूले पर बैठे हुए पुरुषोत्तम भगवान् का फाल्गुन की पूर्णिमा में दर्शन करने से वैकुण्ठलोक प्राप्त होता है।

---

१. भविष्य में दृष्ट्वा की जगह स्पृष्ट्वा पाठ है और पूर्णश्लोक है—'चैत्रे मासि महाबाहो पुण्ये तु प्रतिपद्दिने। यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ॥' पद्मपुराणे—'चैत्रे मासि महापुण्या निर्मिता प्रतिपत् पुरा। तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यात् सचैलकम् ॥ न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो न च। भवन्ति कुरुशार्दूल तस्मात्सम्यक् समाचरेत् ॥' इति।

अथ वसन्तोत्सवः

फाल्गुनकृष्णप्रतिपदि वसन्तारम्भोत्सवः । सा चौदयिकी ग्राह्या । दिनद्वये सत्त्वे [1]पूर्वा । अत्र तैलाभ्यङ्ग उक्तः । अत्र प्रतिपदि चूतपुष्पप्राशनमुक्तम् । तत्प्रकारः-गोमयोपलिप्ते गृहाङ्गणे शुक्लवस्त्रासन उपविष्टः प्राङ्मुखः सुवासिन्या कृतचन्दनतिलकनीराजनः सचन्दनमाम्रकुसुमं[2] प्राश्नीयात् । तत्र मन्त्रः—

चूतमग्र्यं वसन्तस्य माकन्द कुसुमं तव ।
सचन्दनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये ।। इति ।

फाल्गुनकृष्ण प्रतिपदा में वसन्तारम्भ का उत्सव होता है। वह प्रतिपदा उदयकालीन लेनी चाहिये । । दोनों दिन उदयकाल में रहने पर पूर्वा ग्राह्य है । इस दिन तैलाभ्यंग कहा है । इस प्रतिपदा में आम की बौर का भक्षण विहित है । उसका प्रकार यह है— घर के आंगन में गोबर से लिपी हुई भूमि में शुक्ल वस्त्र के आसन पर पूर्व मुंह बैठकर सौभाग्यवती स्त्री से चन्दन लगवा अपनी आरती कराकर चन्दनसहित आम की बौर का प्राशन करे । उसमें 'चूतमग्र्यं वसन्तस्य' इत्यादि मन्त्र है ।

कृष्णद्वितीयायां देशग्रामाधिपतिर्वितते वितानादिशोभिते देशे रम्यासने उपविश्य पौरजानपदान् लोकान् सिन्दूरादिक्षोदैः चन्दनादिभिः पट्टवासैश्च विकीर्य तेभ्यस्ताम्बूलादि दत्त्वा नृत्यगीतविनोदैर्महोत्सवं कुर्यात् । इदानीं प्राकृतजनास्तु कृष्णपञ्चमीपर्यन्तमेतमुत्सवं कुर्वन्ति । इति होलिकोत्सवः ।

कृष्णपक्ष की द्वितीया में देश या ग्राम के मालिक शामियाना आदि से सुशोभित विस्तृत स्थान में सुन्दर आसन पर बैठकर पुर और जनपद के लोगों को सिन्दूर चन्दन आदि से उनके वस्त्रों पर छोड़ कर उन लोगों को ताम्बूल आदि देकर नाच गाना आदि के विनोदों से वसन्त-महोत्सव मनावे । इस समय प्राकृत मनुष्य तो कृष्ण पंचमी तक ही इस उत्सव को करते हैं । होलिकोत्सव समाप्त ।

फाल्गुनामावास्या मन्वादिः । साऽपराह्णव्यापिनी ग्राह्या । इति फाल्गुनमासकृत्यनिर्णयोद्देशः समाप्तः ।

फाल्गुन की अमावास्या मन्वादि-तिथि है । इसे अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये । फाल्गुन मासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ परिच्छेदद्वयशेषाख्यं प्रकीर्णप्रकरणमुच्यते—द्वादशस्वपि मासेषु श्राद्धे व्यतीपातादियोगस्य भरण्यादिनक्षत्रस्य चापराह्णव्याप्त्या दर्शवन्निर्णयो ज्ञेयः । उपवासादौ प्रचुराचाराभावान्नोक्तः ।

---

१. वृद्धवसिष्ठ ने उदयकाल में दो दिन प्रतिपदा के रहने पर पूर्व दिन को ग्राह्य कहा—'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ॥' वृद्धवसिष्ठ ने इस तिथि में तैलाभ्यंग न करने पर दोष कहा—'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ।।' इति ।

२. पुराणसमुच्चये—'वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च । सम्प्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषोऽथ समाः सुखी स्यात् ।।' इति ।

अब दोनों परिच्छेदों का बचा हुआ प्रकीर्णक प्रकरण कहता हूँ। बारहों महीनों के श्राद्ध में व्यतीपात आदि योगों और भरणी आदि नक्षत्रों का अपराह्णव्यापिनी होने से अमावास्या की तरह निर्णय जानना चाहिये। उपवास आदि में विशेष आचार के न होने से नहीं कहा।

अथ चन्द्रसांवत्सरभेदाः

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोथ प्रजापतिः।
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च ॥
ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः।
चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवोऽव्ययः ॥
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः।
नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ॥
हेमलम्बो विलम्बोथ विकारी शार्वरी प्लवः।
शुभकृच्छोभकृत्क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ॥
प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत्।
परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः ॥
पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थी रौद्रदुर्मती।
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ॥ इति।

प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, अव्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शार्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभकृत्, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवंग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत्, परिधावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, अनल, पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थी, रौद्र, दुर्मति, दुंदुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्षी, क्रोधन और क्षय, ये संवत्सर के साठ नाम है

रवेः राशिसंक्रमवन्नक्षत्रसंक्रमेऽपि षोडश नाड्यः पूर्वत्र परत्र च पुण्यकालः।

सूर्य-राशि की संक्रान्ति की तरह नक्षत्र-संकान्ति में भी सोलह घड़ियां पहिले और पीछे पुण्यकाल है।

अथ चन्द्रादीनां संक्रान्तौ पुण्यकालः

चन्द्रस्य संक्रान्तौ प्राक् परत्र च त्रयोदशपलाधिका घटी पुण्यकालः। भौमस्यैकपलाधिकाश्चतस्रो नाड्यः। बुधस्य चतुर्दशपलाधिकास्तिस्रः। गुरोः सप्तत्रिंशत्पलाधिकाश्चतस्रः। शुक्रस्यैकपलाधिकाश्चतस्रः। शनेः सप्तपलाधिकाः षोडश। एताः सर्वाः प्राक् परत्र च बोद्धव्याः। रात्रौ ग्रहान्तराणां संक्रमे रात्रावेव पुण्यकालः, सूर्यसंक्रान्तिवद्दिवापुण्यत्वविधायकाभावात्। चन्द्रादिसंक्रान्तिषु स्नानं काम्यं न तु नित्यम्।

चन्द्र की संक्रान्ति में पहिले और पीछे १३ पल-अधिक १ घटी पुण्यकाल होता है। मंगल का एक पल अधिक ४ घटी। बुध का ३ घटी १४ पल, बृहस्पति का ४ घटी ३७ पल, शुक्र

का ४ घटी १ पल, शनि का १६ घटी ७ पल, यह सब पहिले और बाद में भी जानना चाहिये। रात्रि में दूसरे ग्रहों की संक्रान्ति में रात में ही पुण्यकाल होता है, क्योंकि सूर्य-संक्रान्ति के समान दिन में पुण्य का विधान नहीं है। चन्द्रादि ग्रहों की संक्रान्तियों में स्नान काम्य है, नित्य नहीं।

अथ आदित्यादिसूचितपीडानिरासार्थं[१] स्नानानि

मञ्जिष्ठागजमदकुङ्कुमरक्तचन्दनानि जलपूर्णे ताम्रपात्रे प्रक्षिप्य स्नानं सूर्यपीडाहरम्। उशीरशिरीषकुङ्कुमरक्तचन्दनयुतशंखतोयेन स्नानं चन्द्रदोषहरम्। खदिरदेवदारुतिलामलकयुतरौप्यपात्रजलेन स्नानं भौमे। गजमदयुतसङ्गमजलेन मृत्पात्रस्थेन स्नानं बुधे। औदुम्बरबिल्ववटामलकानां फलैर्युतसौवर्णपात्रजलेन स्नानं गुरौ। गोरोचनगजमदशतपुष्पाशतावरीयुतराजतपात्रजलेन स्नानं शुक्रे। तिलमाषप्रियङ्गुगन्धपुष्पयुतलोहपात्रस्थजलेन स्नानं शनौ। गुग्गुलुहिङ्गुहरितालमनःशिलायुतमहिषश्रृङ्गपात्रजलेन स्नानं राहौ। वराहोत्खातपर्वताग्रमृच्छागक्षीरयुतखड्गपात्रजलेन स्नानं केतौ।

सूर्य की पीड़ा हरण के लिये मञ्जीठ, हाथी का मद, कुंकुम और रक्तचन्दन को जल से भरे ताम्बे के पात्र में छोड़कर स्नान करना चाहिये। खश, शिरीष, कुंकुम, रक्तचन्दन और शंखकोजलमें डाल कर स्नान से चन्द्र-जन्य-पीड़ा की निवृत्ति होती है। खैर, देवदारु, तिल और आंवला को चाँदी के पात्र में भरे जल में स्नान करने से मंगल की बाधा दूर होती है। गजमद से युक्त संगम के मिट्टी के पात्र में स्थित जल द्वारा स्नान से बुध की पीड़ा का हरण होता है। गूलर, बेल, बैर और आँवला के फलों से जल भरे सोने के पात्र द्वारा स्नान से बृहस्पति की बाधा दूर होती है। शुक्र की बाधा हरण के लिये चाँदी के जल भरे पात्र में गोरोचन, गजमद, सौंफ और शतावरी डाल कर स्नान करना चाहिये। शनि की पीड़ा हरण के लिये तिल, ऊर्द, प्रियंगु और गन्ध पुष्प से युक्त जल भरे लोहपात्र से स्नान करे। राहु की पीड़ा हरण करने के लिये गुग्गुल, हींग, हरताल और मैनसिल से युक्त भैंस के सींग के पात्रस्थित जल से स्नान करना चाहिये। केतुजन्य-पीड़ा की निवृत्ति के लिये पर्वत के अग्रभाग से सूअर की खोदी हुई मिट्टी, बकरी का दूध मिले गैंडे के सींग के पात्र में जल से स्नान करना चाहिये।

अथ ग्रहप्रीत्यर्थं[२] दानानि

माणिक्यगोधूमधेनुरक्तवस्त्रगुडहेमताम्ररक्तचन्दनकमलानि रवेः प्रीत्यर्थं दानानि। वंशपात्रस्थतण्डुलकर्पूरमौक्तिकश्वेतवस्त्रघृतपूर्णकुम्भवृषभाश्चन्द्रस्य। प्रवालगोधूम-

---

१. ज्योतिःप्रकाश में सूर्यादिग्रहों की पीडा के निराकरणार्थ तीन प्रकार की शान्ति—'यथोक्तमौषधीस्नानं ग्रहविप्रार्चनं तथा। ग्रहानुद्दिश्य होमो वा त्रिधा शान्तिर्बुधैः स्मृता॥' श्रीपतिः—'देवब्राह्मणवन्दनाद् गुरुवचःसम्पादनात्प्रत्यहं साधूनामपि भाषणाच्छ्रुतिरवोच्छ्रेयःकथाऽऽकर्णनात्। होमादध्वरदर्शनाच्छुचिमनोभावाज्जपाद्दानतो नो कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहाः पीडनम्॥' इति।

२. संहिताप्रदीप में सूर्यादिग्रहों के दोषशमनार्थं दानान्तर—'भानुस्ताम्बूलदानादपहरति नृणां वैकृतं वासरोत्थं सोमः श्रीखण्डदानादवनिवरसुतो भोजनात् पुष्पदानात्। सौम्यः शक्रस्य मन्त्री हरिहरनमनाद् भार्गवः शुभ्रवस्त्रैस्तैलस्नानात् प्रभाते दिनकरतनयो ब्रह्मनत्या परे च।' इति।

दान-प्रसङ्ग से दान-द्रव्यों के देवता, जैसा कि विष्णुधर्मोत्तर में कहा—'अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता। कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः॥ प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो

मसूरिकारक्तवृषगुडसुवर्णरक्तवस्त्रताम्राणि भौमस्य। नीलवस्त्रसुवर्णकांस्यमुद्गगारुत्मतदासीहस्तिदन्तपुष्पाणि बुधस्य। पुष्परागमणिहरिद्राशर्कराश्वपीतधान्यपीतवस्त्रलवणसुवर्णानि सुरगुरोः। चित्रवस्त्रश्वेताश्वधेनुवज्रमणिसुवर्णरजतगन्धतण्डुलाः शुक्रस्य। इन्द्रनीलमाषतैलतिलकुलित्थमहिषीलोहकृष्णधेनवः शनेः। गोमेदाश्वनीलवस्त्रकम्बलतैलतिललोहानि राहोः। वैडूर्यतैलतिलकम्बलकस्तूरीच्छागवस्त्राणि केतोर्दानानि। शनिपीडापरिहारार्थं शनिवारे तैलाभ्यङ्गस्तैलदानं[१] च।

सूर्य की प्रीति के लिये माणिक, गेहूँ, नयी ब्यायी गाय, लाल वस्त्र, गुड़, सुवर्ण, ताम्र, रक्त-चन्दन और कमल का दान करे। चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिये बाँस के पात्र में चावल भर के कपूर, मोती, सफेद वस्त्र, घी से भरा घड़ा और बैल का दान करे। मंगल की प्रीति के लिये मूँगा, गेहूँ, मसूर, लाल बैल, गुड़, सुवर्ण, लाल वस्त्र और तांबे का दान करे। बुध को प्रसन्न करने के लिये नील रंग का वस्त्र, सुवर्ण, कांसा मूँग गारुत्मत, दासी, हाथी का दाँत और पुष्प का दान करे। बृहस्पति की प्रसन्नता के लिये पुखराज मणि, हल्दी, चीनी, घोड़ा, पीला अन्न, पीला वस्त्र, नमक और सुवर्ण का दान करे। शुक्र की अनुकूलता के लिये चित्र-वस्त्र, सफेद घोड़ा, नई ब्याई गाय, हीरा, सोना, चाँदी, सुगन्ध द्रव्य और चावल का दान करे। शनि महाराज की प्रसन्नता के लिये इन्द्रनील मणि, ऊर्द, तेल, तिल, कुर्थी, भैंस, लोहा और काली ब्याई गाय का दान करे। राहु की प्रसन्नता के लिये गोमेद, घोड़ा, नीला वस्त्र, कम्बल, तेल, तिल और लोहा का दान करे। केतु के प्रसन्नार्थ वैदूर्य-मणि, तेल, तिल, कम्बल, कस्तूरी, बकरा और वस्त्र का दान करे। शनि की पीड़ा हरण के लिये शनिवार को तेल लगाना और तेल का दान करना चाहिये।

अथ शनिव्रतम्

लोहमयं शनिं तैलकुम्भे लौहे मृन्मये वा निक्षिप्य कृष्णवस्त्राभ्यां कम्बलेन

यमदैवतः। तथा चैकशफं सर्वं कथितं यमदैवतम्॥ महिषश्च तथा याम्य उष्ट्रो वै नैर्ऋतस्तथा। रौद्री धेनुर्विनिर्दिष्टा छाग आग्नेय उच्यते॥ मेषं तु वारुणं विद्याद् वराहो वैष्णवः स्मृतः। आरण्याः पशवः सर्वे कथिता वायुदैवताः॥ जलाश्रयानि सर्वाणि वारिधानि कमण्डलुः। कुम्भश्च करकं चैव वारुणानि विनिर्दिशेत्। समुद्रजानि रत्नानि सामुद्राणि तथैव च। आग्नेयं काञ्चनं प्रोक्तं सर्वलोहानि वाप्यथ॥ प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वान्नमपि च द्विजाः। ज्ञेयानि सर्वगन्धानि गान्धर्वाणि विचक्षणैः॥ बार्हस्पत्यं स्मृतं वासः सौम्यान्यथ रसानि च। पक्षिणश्च तथा सर्वे वायव्याः परिकीर्तिताः॥ विद्या ब्राह्मी विनिर्दिष्टा विद्योपकरणानि च। सारस्वतानि ज्ञेयानि पुस्तकाद्यानि पण्डितैः॥ सर्वेषां शिल्पभाण्डानां विश्वकर्मा तु दैवतम्। द्रुमाणामथ पुष्पाणां शाकानां हरितैः सह॥ फलानामपि सर्वेषां तथा ज्ञेयो वनस्पतिः। मत्स्यमांसं विनिर्दिष्टं प्राजापत्यं तथैव च॥ छत्रं कृष्णाजिनं शय्या रथमासनमेव च। उपानहौ तथा यानं यच्चान्यत्प्राणवर्जितम्॥ उत्तानाङ्गिरसं त्वेतत्प्रतिगृह्णीत मानवः। पर्जन्याय तथा सीरं शस्त्रवर्मध्वजादिकम्॥ रथोपकरणं सर्वं कथितं शक्रदैवतम्। गृहं तु सर्वदैवत्यं यदनुक्तं द्विजोत्तमाः॥ तज्ज्ञेयं विष्णुदैवत्यं सर्वं वा विष्णुदैवतम्।' इति।

१. शनिवार के दिन सायंकाल पीपलवृक्ष के मूल में घृत या तैल का दीप अक्षत पुंज पर रखकर प्रज्वलित करने से शनिदेव की तुष्टि होती है। दीप दान के पश्चात् पीपल वृक्ष की एक परिक्रमा करके प्रणाम करना चाहिये। इस प्रकार शान्ति पर्यन्त प्रति शनिवार में यह नियमतः कर्तव्य है।

वा युतं कृष्णैः सुगन्धपुष्पैश्च कृसरान्नैस्तिलोदनैः पूजयित्वा कृष्णाय द्विजाय तदभावेऽन्यस्मै सशनिर्देयः । तत्र शन्नोदेवीरिति मन्त्रः । शूद्रादेस्तु—

यः पुनर्नष्टराज्याय नलाय परितोषितः ।
स्वप्ने ददौ निजं राज्यं स मे सौरिः प्रसीदतु ॥
नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय ।
श्रुत्वा रहस्यं भवकामदस्त्वं फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र ॥ इत्यादयः ।

एवं व्रतं प्रतिशनिवारं संवत्सरं कार्यम् ।

कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः ।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः ॥

इति दशनामानि वा नित्यं पठनीयानि ।

लोहे के शनि को तेल भरे लोहे के घड़े या मिट्टी के घड़े में छोडकर काले दो वस्त्रों से या कम्बल से युक्त काले सुगन्ध फूलों से खिचड़ी या तिल-भात से पूजा करके काले ब्राह्मण को, उसके न मिलने पर अन्य को शनि के साथ दे दे। उसमें 'शन्नो देवी' इत्यादि मन्त्र है। शूद्रादि के लिये तो 'यः पुनर्नष्टराज्याय' इत्यादि मन्त्र है। इस प्रकार सालभर तक प्रति शनिवार को करे। अथवा 'कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः' इत्यादि श्लोकोक्त दश नामों को प्रतिदिन पढ़े।

अथ शनिस्तोत्रम्

पिप्पलाद उवाच—

नमस्ते कोणसंस्थाय पिङ्गलाय नमोस्तु ते ।
नमस्ते बभ्रुरूपाय कृष्णाय च नमोस्तु ते ॥ १ ॥
नमस्ते रौद्रदेहाय नमस्ते चान्तकाय च ।
नमस्ते यमसंज्ञाय नमस्ते सौरये विभो ॥ २ ॥
नमस्ते मन्दसंज्ञाय शनैश्चर नमोस्तु ते ।
प्रसादं कुरु देवेश दीनस्य प्रणतस्य च ॥ ३ ॥

अनेन स्तोत्रेण प्रत्यहं प्रातः शनिस्तवनेन सार्धसप्तवार्षिकशनिपीडानाशः । रविवारे सूर्यपूजोपवाससूर्यमन्त्रजपैः सर्वरोगनाशः । ह्रीं ह्रीं सः सूर्यायेति षडक्षरः सूर्यमन्त्रः । इति प्रकीर्णनिर्णयोद्देशः ।

शनि का 'नमस्ते कोणसंस्थाय' इत्यादि स्तोत्र मूल में अंकित है। स्तोत्र का आशय है—कोणसंस्थ, पिंगल, बभ्रुस्वरूप, कृष्ण, रौद्र देह, अन्तक, यम, सौरि, मन्द और शनैश्चर को प्रणाम करता हूँ, हे देवेश ! प्रणत इस दीन के ऊपर आप प्रसन्न हों। इस स्तोत्र से प्रतिदिन प्रातःकाल में शनि की स्तुति करने से साढ़े साती शनि की पीड़ा नष्ट होती है। रविवार को सूर्य की पूजा उपवास और सूर्य के मन्त्रों का जप करने से सब रोगों का नाश होता है। सूर्य का 'ह्रीं ह्रीं सः' इत्यादि मन्त्र है। प्रकीर्णनिर्णयोद्देश समाप्त।

उक्त आद्यपरिच्छेदे सामान्येन विनिर्णयः ।
द्वितीयेऽस्मिन्परिच्छेदे विशेषेण विनिर्णयः ॥ १ ॥
मीमासाधर्मशास्त्रज्ञाः सुधियोऽनलसा नराः ।
कृतकार्याः प्राङ् निबन्धैस्तदर्थं नायमुद्यमः ॥ २ ॥
ये पुनर्मन्दमतयोऽलसा अज्ञाश्च निर्णयम् ।
धर्मं वेदितुमिच्छन्ति रचितस्तदपेक्षया ॥ ३ ॥
निबन्धोऽयं धर्मसिन्धुसारनामा सुबोधनः ।
अमुना प्रीयतां श्रीमद्विट्ठलो भक्तवत्सलः ॥ ४ ॥

पहले परिच्छेद में सामान्य निर्णय कहा है। विशेष निर्णय दूसरे परिच्छेद में कहा है। मीमांसा धर्मशास्त्र का ज्ञाता आलस्यरहित विद्वान् पुरुष पूर्व निबन्धों से कृतकृत्य हो चुके हैं, उनके लिये यह हमारा परिश्रम नहीं है। आलसी, मतिमन्द और अज्ञ, जो धर्म का निर्णय जानना चाहते हैं, उनकी अपेक्षा से धर्मसिन्धुसार नामक इस निबन्ध को सुखपूर्वक जानने के लिये बनाया है। इससे भक्त-प्रिय श्रीमान बिट्ठल भगवान् प्रसन्न हों। ॥ १-४ ॥

सर्वत्र [1]मूलवचनानीह ज्ञेयानि तद्विचारश्च ।
कौस्तुभनिर्णयसिन्धुश्रीमाधवकृतनिबन्धेभ्यः ॥ ५ ॥
प्रेम्णा सद्भिर्ग्रन्थः सेव्यः शब्दार्थतः सदोषोऽपि ।
संशोध्य वापि हरिणा सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव ॥ ६ ॥

इति द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ।

सब जगह मूलवचन और उसका विचार कौस्तुभ, निर्णयसिन्धु और श्रीमाधव के निबन्धों से जानना चाहिये। सज्जनगण शब्द और अर्थ से दोषयुक्त होने पर भी प्रेम से इस ग्रन्थ को संशोधन कर अपनावें, जैसे सुदामा मुनि के भूसी के सहित एक मुट्ठी-चिउड़ा को भगवान् ने अपनाया ॥५-६॥
प्रकीर्णनिर्णयोद्देश समाप्त ।

द्वितीयपरिच्छेद समाप्त ।

---

१. धर्मसिन्धुकार ने निर्णयसिन्धु प्रभृति निबन्ध-ग्रन्थों के आधार पर उनके सिद्धार्थ का प्रतिपादन अल्पज्ञों को सरलता से बोध के लिये इस निबन्ध की रचना की किन्तु मूलवचन के जिज्ञासुओं की जिज्ञासा इससे पूर्ण नहीं होती इसलिये उन निबन्धों के विशिष्ट वचनों का यथास्थल विन्यास एवं अनुक्त-विषयों के निर्णय इस सुधाविवृति में किये गये हैं।

इति द्वितीयपरिच्छेदे सुधाविवृतिः समाप्ता ।

तृतीयः परिच्छेदः

पूर्वार्द्धम्

श्रीपाण्डुरङ्गमकलङ्ककलानिधानकान्ताननं यदबुधानमनं मुधा न।
श्रीवत्सकौस्तुभरमोल्लसितोरसं तं वन्दे पदाब्जभृतनन्ददुदारसन्तम्॥ १॥

भीमाप्रियं सुकरुणार्णवमाशुतोषं दीनेष्टपोषमघसंहतिसिन्धुशोषम्।
श्रीरुक्मिणीमतिमुषं[1] पुरुषं परं तं वन्दे दुरन्तचरितं हृदि संचरन्तम्॥ २॥

वन्दे प्रतिघ्नन्तमघानि शङ्करं धत्तां स मे मूर्ध्नि दिवानिशं करम्।
शिवां च विघ्नेशमथो पितामहं सरस्वतीमाशु भजेऽपि तामहम्॥ ३॥

निष्कलंक कलानिधान श्रीपांडुरंग भगवान् का प्रिय मुख जो अपण्डितों को नहीं नवाता यह बात झूठ नहीं है। श्रीवत्स कौस्तुभमणि और लक्ष्मी से उल्लसित छाती वाले, चरण कमल में बढ़ते हुए उदार सन्तों को धारण करने वाले, उस श्री पांडुरंग भगवान् को मैं बन्दना करता हूँ। भीमा के प्रिय, दया के समुद्र, शीघ्र प्रसन्न होने वाले दुःखी इष्टजनों के पोषक, पाप रूप समुद्र के शोषक, सबके हृदय में वसने और श्रीरुक्मिणी की बुद्धि को चुराने वाले उस दुरंत-चरित परम पुरुष को मैं प्रणाम करता हूँ। पापों को नाश करने वाले शंकर भगवान् की बन्दना करता हूँ। वे शंकरदेव मेरे सिर पर दिन रात अपना हाथ रक्खें। पार्वती, गणेश, ब्रह्मा और उस सरस्वती को मैं शीघ्र भजता हूँ॥ १-३॥

श्रीलक्ष्मीं गरुडं सहस्रशिरसं प्रद्युम्नमीशं कपिं
श्रीसूर्यं विधुभौमविद्गुरुकविच्छायासुतान् षण्मुखम्।
इन्द्राद्यान्विबुधान् गुरूंश्च जननीं तातं त्वनन्ताभिधं
नत्वार्यान्वितनोमि माधवमुखान् धर्माब्धिसारं मितम्॥ ४॥

दृष्ट्वा पूर्वनिबन्धान् प्राच्यांश्च नवांश्च तेषु सिद्धार्थान्।
प्रायेण मूलवचनान्युज्झित्य[2] लिखामि बालबोधाय॥ ५॥

---

१. भीमायाः प्रियं सुकरुणायाः शोभनदयायाः अर्णवं समुद्रं दीनानां शरणागतानां प्रणतजनानामिष्टपोषं मनोरथपूरकम् अघसंहतिसिन्धुशोषं पापपुञ्जसरित्पतिशोषकं श्रीरुक्मिण्याः मतिमुषं बुद्धिचौरं दुरन्तचरितमनन्तचरित्रं हृदि मानसे सञ्चरन्तं विचरणशीलं तं पूर्वोक्तं परं परमपुरुषं श्रीपाण्डुरङ्गाभिधं श्रीकृष्णचन्द्रं वन्दे नमामि। श्रीकृष्णः श्रीरुक्मिण्यादिमतेरेव चौरो न किन्तु प्राणिनामनेकजन्मार्जितपापपुञ्जापहारकोऽप्यस्तीति।

२ उज्झित्य=त्यक्त्वा, 'उज्झ उत्सर्गे' इति धातोः क्त्वो ल्यपि, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इति तुकि कृते उज्झित्येति। ग्रन्थकर्ता निर्णयसिन्ध्वादिनिबन्धस्थितमूलवचनानि त्यक्त्वा तत्तन्निबन्धग्रन्थेषु सिद्धान्तरूपेण प्रतिपादितानर्थान् अस्मिन् धर्मसिन्धुसारे विलिखति, किन्तु एतावता मूलवचनजिज्ञासूनां जिज्ञासा पूरिता न भवतीति अस्यां सुधा-विवृतौ यथास्थलमहं मूलवचनानि सङ्गृह्य विलिखामि।

श्रीलक्ष्मी, गरुड़, हजार फणा वाले शेष, प्रद्युम्न ईश, कपि, श्रीसूर्य, चन्द्रमा, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, राहु, केतु और श्रीस्कन्द, इन्द्रादि देवता, गुरु, माता, अनन्त नामक पिता और माधव आदि श्रेष्ठों को नमस्कार करके संक्षिप्त धर्मसिन्धुसार को बनाता हूँ। प्राचीन और नवीन निबन्धों को देखकर उनके सिद्ध-अर्थ को बालको के ज्ञान के लिये प्रायः मूलवचनो को छोड़कर लिखता हूँ ॥४-५॥

उक्त्वा धर्माब्धिसारेस्मिन्निर्णयं कालगोचरम् ।
परिच्छेदे प्रथमजे द्वितीये च यथाक्रमम ॥ ६ ॥
अथ गर्भादिसंस्कारान्धर्मान्गृह्यादिसंमतान् ।
वक्ष्ये संक्षेपतः संतोऽनुगृह्णन्तु दयालवः ॥ ७ ॥
काशीनाथाभिधेनात्रानन्तोपाध्यायसूनुना ।
निर्णीयते यदेतत्तु शोधनीयं मनीषिभिः ॥ ८ ॥

इस धर्मसिन्धुसार में कालगोचर-निर्णय प्रथमपरिच्छेद में कहकर द्वितीयपरिच्छेद में क्रमानुसार गृह्यादि-सम्मत गर्भादि सस्कारो को सक्षेप से कहूँगा। कृपालु सज्जनगण मुझ पर अनुग्रह करें। श्री अनन्तोपाध्याय के पुत्र काशीनाथ ने जो यह निर्णय किया है, उनका विद्वज्जन शोधन करें ॥ ६-८ ॥

तत्रादौ गर्भाधानसंस्कार उच्यते

तदुपयोगितया प्रथमरजोदर्शने दुष्टमासादि निर्णीयते। तत्र चैत्रज्येष्ठाषाढभाद्रपदकार्तिकपौषमासा दुष्टाः। प्रतिपद्रिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीपञ्चदश्योऽनिष्टफलास्तिथयः[१]। तथा रविभौममन्दवारेषु भरणीकृत्तिकार्द्राश्लेषामघापूर्वात्रयविशाखाज्येष्ठानक्षत्रेषु विष्कम्भगण्डातिगण्डशूलव्याघातवज्रपरिघपूर्वार्धव्यतीपातवैधृतियोगेषु विष्टयां ग्रहणे रात्रिसंध्यापराह्णकालेषु निद्रायां जीर्णरक्तनीलचित्र-

१. यहा पचदशी से अमावास्या का ही ग्रहण है। क्योकि मुहूर्तमार्तण्ड की टीका में पूर्णिमा में प्रथमरजोदर्शन का सुपुत्रिणी होना फल कहा है। प्रतिपदादि-तिथियों के क्रम से प्रथमरजोदर्शन का नारदोक्त फल—'वैधव्य सुतलाभश्च मैत्र शत्रुविवर्धनम्। मित्रलाभः शत्रुवृद्धिः कुलर्द्धिर्बन्धुनाशनम् ॥ मरणं वंशवृद्धिश्च निराहारः कुलक्षयः। तेजश्च सुतनाशश्च कुलहानिस्तिथिक्रमात् ॥' रविवारादि-दिन के क्रम से प्रथम रजोदर्शन का फल—'रोगी पतिव्रता दु.खी पुत्रिणी भोगभागिनी। पतिव्रता क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥'

अश्विनी आदि क्रम से नक्षत्रों का गर्गोक्त फल—'सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता। धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसन्तानमोदिनी ॥ सुपुत्रा चैव दुःपुत्रा पितृवेश्मरता सदा। दीना प्रजावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥ साध्वी पतिप्रिया नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी। स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुण्यपुत्रादिसयुता ॥ नित्यं धनचयासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता। मूर्खा चाज्ञा पुण्यवती दस्रर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥' नारद ने शुभदायक राशियों का निर्देश किया—'कुलीरवृषचापान्त्यनृयुक्कन्यातुलाघटाः। राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्तवे ॥'

निषिद्ध तिथिवारादि में प्रथम-रजोदर्शन-जन्य-अनिष्टफल के शमनार्थ वसिष्ठोक्त-शान्ति करनी चाहिये—'ईशानतो गोमयमण्डलेन परिसृतेऽग्नौ जुहुयात् सदूर्वाम्। युग्मां घृताक्तां च समित्प्रमाणां गायत्रिकां साष्टसहस्रसंख्याम्। शतप्रमाणामथवाऽघहन्त्री शुभैर्यवैर्व्याहृतिभिस्तिलैश्च। ततः सुरान् भूमिसुरान् पितॄंश्च संतर्पयेदन्नसुवर्णवस्त्रैः ॥' इति।

वस्त्रेषु नग्नत्वे परगृहपरग्रामेषु अल्पाधिकनीलादिरक्तत्वे चानिष्टफलम्। [1]संमार्जनीकाष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा स्यात्। वस्त्रे विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रफलाः, समाः कन्याफलाः।

गर्भाधान में उपयोगी होने से प्रथम रजोदर्शन में दुष्ट आदि मास का निर्णय करता हूँ। इसमें चैत, ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, कार्तिक और पौषमास अशुभ हैं। प्रतिपदा, रिक्ता, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी और पूर्णिमा तिथियां अनिष्ट फल देने वाली हैं। उसीतरह रवि-मंगल-शनिवार में, भरणी-कृत्तिका-आर्द्रा-आश्लेषा-मघा-तीनों पूर्वा-विशाखा-ज्येष्ठा-नक्षत्रों में, विष्कम्भ-गण्ड-अतिगंड-शूल-व्याघात-परिघ-व्यतीपात का पूर्वार्द्ध और वैधृतियोगों में, भद्रा-ग्रहण-रात्रि-सन्ध्या में, अपराह्नकाल, निद्रावस्था में, पुराने-लाल-नील-चित्र-वस्त्रों में, नंगे रहने, दूसरे के घर और दूसरे गांव में, कम अधिक नील आदि रक्त होने पर अनिष्ट फल होता है। झाड़ू, लकड़ी, तृण, अग्नि और सूप हाथ में धारण करती हुई रजस्वला हो तो कुलटा होती है। कपड़े में विषम रक्तबिन्दु दिखाई पड़े तो पुत्र-प्राप्ति होती है। सम रक्त बिन्दुओं से कन्या होती है।

अथ प्रथमर्तौ विशेषः

अथ प्रथमर्तौ अक्षतैरासनं कृत्वा तत्र तामुपवेश्य पतिपुत्रवत्यः स्त्रियो हरिद्राकुङ्कुमगन्धपुष्पस्रक्ताम्बूलादि तस्यै दत्त्वा दीपैर्नीराज्य सदीपालंकृते गृहे तां वासयेयुः सुवासिनीभ्यो गन्धादिकं लवणमुद्गादि च दद्यात्।

प्रथम ऋतु में अक्षत से आसन बनाकर उसपर रजस्वलाको बैठाकर पति पुत्र वाली स्त्रियाँ हरदी, कुंकुम, गंध, पुष्पमाला और ताम्बूल आदि, रजस्वला को देकर दीपों से आरती उतार कर दीप से सुशोभित घर में उसे रक्खें। सौभाग्यवती स्त्रियोंको गन्ध आदि नमक और मूंग आदि भी दे।

अथ सर्वर्तुसाधारणनियमाः—त्रिरात्रमस्पृश्या भूत्वा [2]अभ्यङ्गाञ्जनस्नानदिवास्वापाग्निस्पर्शदन्तधावनमांसाशनसूर्याद्यवलोकान् भूमौ रेखाकरणं च वर्जयेद-

---

१. देवरातः—'सम्मार्जनीकाष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात्। तल्पोपभोगे तपसि स्थिता चेद् दृष्ट रजो भाग्यवती तदा स्यात्॥' वस्त्रधारण का गर्गोक्त फल—'सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद् दृढवस्त्रा पतिव्रता। क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता॥ दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद् रोगिणी रक्तवाससा। नीलाम्बरधरा नारी पुष्पिता विधवा ततः॥ वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात्। समाश्चेत्कन्यकाश्चेति फलं स्यात् प्रथमार्तवे॥'

स्मृतिरत्न में पूर्वाह्णादि का फल—'शुभं चैव तु पूर्वाह्णे मध्याह्ने मध्यमं फलम्। अपराह्णे तु वैधव्यं पूर्वरात्रे शुभं भवेत्॥ मध्यरात्रे मध्यमं स्यात् पररात्रे शुभान्विता।' इति।

२. रजस्वला का दक्षोक्त वर्जित-कर्म—'अञ्जनाभ्यञ्जने स्नानं प्रवासं दन्तधावनम्। न कुर्यात् सार्तवा नारी ग्रहाणामीक्षणं तथा॥' अत्रिः—वर्जयेन्मधु मांसं च पात्रे खर्वे च भोजनम्। गन्धमाल्ये, दिवास्वापं ताम्बूलं चास्यशोधनम्॥ दग्धे शरावे भुञ्जीत पेयं चाञ्जलिना पिबेत्॥' हारीतः—'रजःप्रसावधः शयीत भूमौ, कार्ष्णायसे पाणौ मृन्मये वाऽश्नीयात्' विष्णुधर्मः—'आहारं गोरसानां च पुष्पालङ्कारधारणम्। अञ्जनं कङ्कतं गन्धान् पीठशय्याऽधिरोहणम्॥ अग्निसंस्पर्शनं चैव वर्जयेत्सा दिनत्रयम्।'

लिङ्गपुराणे—'स्नानं शौचं तथा गानं रोदनं हसनं तथा। यानमभ्यञ्जनं नारी द्यूतं चैवानुलेपनम्॥ दिवास्वापं विशेषेण तथा वै दन्तधावनम्। मैथुनं मानसं वाऽपि वाचिकं देवताऽर्चनम्॥ वर्जयेत् सर्वयत्नेन नमस्कारं रजस्वला।' स्मृत्यन्तर में विशेष—'स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत्। स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नाता न शुद्ध्यति॥ सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेन्नान्यस्य कस्यचित्। अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत्॥' इति।

धः शयीत। अञ्जलिना ताम्रलोहपात्रेण वा जलं न पिबेत्। या खर्वपात्रेण पिबति, तस्याः खर्वः पुत्रः। नखनिकृन्तने कुनखीपुत्रः, पर्णेन पाने उन्मत्त इति।

सब ऋतुओं के साधारण नियम—तीन रात अस्पृश्य होकर तेल लगाना, आखों में काजल लगाना, स्नान करना, दिन का सोना, अग्नि-स्पर्श, दतुवन करना, मांस का खाना, सूर्य आदि का देखना और भूमि में लकीर खींचना, वर्जित करे। जमीन पर सोवे, अँजुरी से ताम्र या लोहे के पात्र से जल न पीवे। जो छोटे पात्र से जल पीती है, उसका पुत्र नाटे कद का होता है। नख काटने पर पुत्र कुनखी होता है। पत्ते से जल पीने पर पुत्र पागल होता है।

अथ द्वितीयर्तौ नियमाः

द्वितीयादिषु ऋतुषु प्रवासगन्धमाल्यादिधारणताम्बूलगोरसभक्षणपीठाद्यारोहणं वर्जयेत्। मृन्मये आयसे भूमौ वा भुञ्जीत।

दूसरी आदि ऋतुओं में परदेश जाना, गन्ध माला आदि का धारण करना, ताम्बूल और गोरस का भक्षण करना, पीढ़े आदि पर चढ़ना छोड़ दे। मिट्टी के पात्र में लोहे के पात्र में या भूमि पर भोजन करे।

अथ रजस्वलायाः नैमित्तिकस्नाने विधिः

ग्रहणादिनिमित्तकस्नानप्राप्तौ नोदकमज्जनरूपं स्नानं किन्तु पात्रान्तरितजलेन स्नात्वा न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत्। एवं मृताशौचादिनिमित्तस्नानप्राप्तावपि।

ग्रहण आदि नैमित्तिक स्नान प्राप्त होने पर डुबकी लगाकर स्नान नहीं करे, किन्तु किसी पात्र में जल रखकर उस जल से नहाकर वस्त्र को नहीं निचोड़े और दूसरा वस्त्र भी न पहने। इसी प्रकार मृताशौच आदि नैमित्तिक-स्नान में भी आचरण करे।

अथ रजस्वलयाः स्पर्शादौ विधिः

सगोत्रयोर्योनिसम्बन्धिन्योर्वा ब्राह्मण्यो रजस्वलयोः परस्परं स्पर्शे उक्तरीत्या तदैव स्नानमात्रेण शुद्धिः। बुद्ध्या स्पर्शे एकरात्रमुपवासः। गोत्रादिसम्बन्धाभावे अबुद्ध्या स्पर्शे तस्मिन्दिने स्नात्वा न भुञ्जीत। मत्या स्पर्शे तु आशुद्धेर्न भुञ्जीत। भोजने तु शुद्ध्यनन्तरं तावद्दिनसंख्ययोपवसेत्। उपवासाशक्तौ तु तत्प्रत्याम्नायब्राह्मणभोजनादि कुर्यात्। सर्वत्र शुद्ध्युत्तरं पञ्चगव्याशनं ज्ञेयम्। शूद्रीब्राह्मण्यो रजस्वलयोः स्पर्शे आशुद्धेरभोजनम्। शुद्धौ कृच्छ्रप्रायश्चित्तं ब्राह्मण्याः। शूद्र्यास्तु पादकृच्छ्रमात्रम्।

अपने गोत्र की योनि सम्बन्धिनी या रजस्वला-ब्राह्मणी से परस्पर स्पर्श होने पर पूर्वोक्त विधि से उसी समय केवल स्नान से शुद्धि होती है। जानबूझ कर स्पर्श करने पर एक रात्रि उपवास करे। अपने गोत्र आदि का सम्बन्ध न होने पर विना जाने स्पर्श हो तो उस दिन नहाकर भोजन न करे। जानबूझ कर स्पर्श करने पर तो शुद्धि-पर्यन्त भोजन न करे। भोजन करे तो शुद्धि के बाद उतने ही दिन उपवास करे। उपवास में असमर्थ हो तो उसके बदले में ब्राह्मणभोजन आदि करावे। रजस्वला की शुद्धि के बाद पंचगव्य-प्राशन करना चाहिये। शूद्री-ब्राह्मणी-रजस्वला के परस्पर स्पर्श होने पर शुद्धि तक भोजन न करे। शुद्ध होने पर ब्राह्मणी कृच्छ्र-प्रायश्चित्त करे। शूद्री तो पादकृच्छ्र व्रत करे।

अथ रजस्वलासूतिकयोश्चाण्डालादिस्पर्शे विधिः

रजस्वलायाः सूतिकाया वा चाण्डालादिस्पर्शे आशुद्धेर्न भोजनमतिकृच्छ्रं च। अमत्या स्पर्शे प्राजापत्यम्। दण्डादिपरंपरया चाण्डालादिस्पर्शे स्नानमात्रम्। भुञ्जानायाः स्पर्शे प्राजापत्यं द्वादशब्राह्मणभोजनं च। मिताक्षरायां तु पतितान्त्यजचाण्डालैः कामतः स्पर्शे आशुद्धेरभुक्त्वा शुद्धयुत्तरं प्रथमेह्नि स्पर्शे त्र्यहमुपवासः द्वितीये द्व्यहं तृतीये एकाहः। अकामतस्तु आशुद्धेरभोजनमात्रम्। एवं ग्रामकुक्कुटसूकरश्ववायसरजकादिस्पर्शेऽपि।

रजस्वला या प्रसव करने वाली स्त्री का चांडाल आदि से स्पर्श होने पर शुद्धि तक भोजन न करे और अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे। अनजाने स्पर्श होने पर प्राजापत्यव्रत करे। छडी आदि की परंपरा से चांडाल आदि से स्पर्श होने पर केवल स्नान करे। भोजन करते हुए स्पर्श होने पर प्राजापत्यव्रत और १२ ब्राह्मणभोजन करावे। मिताक्षरा में तो पतित, अन्त्यज और चाण्डाल से जानते हुए स्पर्श होने पर शुद्धि तक विना खाये शुद्धि के बाद पहिले दिन स्पर्श करने पर तीन दिन का उपवास करे, दूसरे दिन दो दिन और तीसरे दिन एक दिन का उपवास करे। विना जाने स्पर्श होने पर तो शुद्धि तक केवल भोजन न करे। इसी प्रकार मुर्गा, सूअर, कुत्ता, कौवा और रजक आदि से स्पर्श होने पर भी करे।

अशक्तौ तु स्नात्वा यावन्नक्षत्रदर्शनमभोजनम्। भुञ्जानायाः श्वचाण्डालादिस्पर्शे आशुद्धेरभोजनं षड्रात्रं गोमूत्रयावकाहारः। अशक्तौ सुवर्णदानं विप्रभोजनं वा। उच्छिष्टयो रजस्वलयोः स्पर्शे उच्छिष्टचाण्डालेन स्पर्शे वा कृच्छ्रेण शुद्धिः। उच्छिष्टद्विजस्पर्शे रजस्वलायास्त्र्यहमूर्ध्वोच्छिष्टे[1] अधरोच्छिष्टे त्वेकाहमुपवास इत्युक्तम्। उच्छिष्टशूद्रस्पर्शे अधिकं कल्प्यम्। पुष्पिण्याः सूतक्याद्यशुद्धनरस्पर्शे आशुद्धेरभोजनं, भोजने तु कृच्छ्रम्।

असमर्थ होने पर तो स्नान करके जब तक तारोंका दर्शन नहीं होता तब तक भोजन न करे। खाते समय कुत्ता चाण्डाल आदि से छू जाने पर शुद्धि-पर्यन्त भोजन करे और छ दिन तक गोमूत्र और जव का आहार करे। सामर्थ्य न रहने पर सोने का दान करे या ब्राह्मणभोजन करावे। उच्छिष्टावस्था में दो रजस्वलाओं का परस्पर स्पर्श होने पर अथवा उच्छिष्ट-चाडाल से स्पर्श होने पर कृच्छ्रव्रत से शुद्धि होती है। उच्छिष्ट-द्विज से स्पर्श पोने पर रजस्वला को भोजन के बाद विना कुल्ला किये को ऊर्ध्वोच्छिष्ट कहते हैं। पेशाब आदि करने के बाद शुद्धि न होने तक अधरोच्छिष्ट कहलाता है। इस प्रकार ऊर्ध्वोच्छिष्ट में तीन दिन का उपवास और अधरोच्छिष्ट में एक दिन का उपवास कहा है। उच्छिष्ट-शूद्र से स्पर्श होने पर अधिक की कल्पना करनी चाहिये। रजस्वला को सूतकी आदि अशुद्ध पुरुष से स्पर्श होने पर शुद्धि तक भोजन न करे, भोजन करने पर तो कृच्छ्रव्रत करे।

पञ्चनखद्विशफैकशफपशुस्पर्शे अण्डजस्पर्शे चाशुद्धेरभोजनम्। रजस्वलायाः श्वजम्बुकगर्दभदंशे आशुद्धेरभोजनम्। शुद्धौ पञ्चरात्रमुपवासः। नाभेरूर्ध्वं दंशे

---

१. भोजनोत्तरं मुखप्रक्षालनात् पूर्वावस्था ऊर्ध्वोच्छिष्टम्। मूत्रपुरीषोत्सर्गोत्तरमकृतशौचात्पूर्वावस्था अधरोच्छिष्टम्।

दशरात्रं मूर्ध्नि दंशे विंशतिरात्रम्। भुञ्जाना रजस्वला रजस्वलां पश्यति चेदाशुद्धेरभोजनम्। चाण्डालं पश्यति चेदुपवासत्रयमपि। कामतश्चाण्डालं पश्यति चेत्प्राजापत्यम्। रजस्वलायाः शवसूतिकाभ्यां स्पर्शे शुद्ध्यन्ते त्रिरात्रमुपवासः, आशुद्धेरभोजनं च। भोजने तु कृच्छ्रम्। सर्वत्र [1]ब्रह्मकूर्चविधिना पञ्चगव्याशनमुक्तमेव।

पांच नख दो खुर और एक खुर वाले पशु से स्पर्श होने पर तथा अण्डे से उत्पन्न होने वाले से स्पर्श होने पर शुद्धि तक भोजन न करे। रजस्वला को कुत्ता, सिआर और गदहा के काटने पर शुद्धि-पर्यन्त भोजन न करना चाहिये। शुद्धि होने पर पाँच दिन का उपवास करे। नाभि से ऊपर काटने पर दस दिन का, और सिर में काटने पर बीस दिन का उपवास है। रजस्वला भोजन करती हुई दूसरी रजस्वला को देखती है तो शुद्धि तक भोजन न करे। यदि चाण्डाल को देखती है तो ३ उपवास भी करे। जानबूझ का चाण्डाल को देखती है तो प्राजापत्यव्रत करे। रजस्वला को मुर्दे से और दस दिन के भीतर प्रसव करने वाली स्त्री से स्पर्श होने पर शुद्धि के अन्त में तीन दिन का उपवासऔर शुद्धि तक भोजन न करना चाहिये। भोजन करने पर तो कृच्छ्रव्रत करे। सब जगह ऐसे स्थल में ब्रह्मचर्य-विधि से पंचगव्य-प्राशन कहा ही है।

आशौचिभिः स्पर्शे स्नानात्प्राग्रजोदर्शने चतुर्थदिनपर्यन्तमभोजनम्। अशक्तौ तु सद्यः स्नात्वा भुञ्जीत। एवं बन्धुमरणश्रवणे स्नानात्प्राग्रजोदर्शनेऽपि। तथा रजोदर्शनोत्तरं बन्धुमरणश्रवणेपि शक्तायाः आशुद्धेरभोजनमशक्तायाः सद्यःस्नानेन भोजनम्। सर्वत्रास्पृश्यस्पर्शे अशक्तायाः स्नाने कृते भोजनं, शुद्ध्यन्ते अनशनप्रत्याम्नाय इति केचित्।

स्नान से पहिले रजोदर्शन होने पर आशौचियो से स्पर्श हो तो चार दिन तक भोजन न करे। अशक्त तो तुरत स्नान करके भोजन करे। इसी प्रकार स्नान के पहिले रजोदर्शन में भी भाई का मरण सुनने पर भी करे। ऐसे ही रजोदर्शन के बाद भाई का मरण सुनने पर भी शक्ता स्त्री शुद्धि तक उपवास और अशक्ता तुरत स्नान करके भोजन करे। कोई कहते हैं कि सब जगह अस्पृश्य का स्पर्श करने पर शक्तिहीना स्त्री का स्नान करके भोजन शुद्धि के अन्त में प्रायश्चित्त के बदले में है।

अथ रजसि जननमरणयोः प्रथमदिननिर्णयः

रजस्वलायाः [2]प्रथमदिननिर्णयस्तु रात्रेः पूर्वभागद्वये पूर्वदिनं प्रथमम्। तृतीये भागे रजोदर्शने उत्तरदिनं प्रथमम्। यद्वाऽर्धरात्रात्पूर्वं पूर्वदिनं प्रथमम्। अर्धरात्रादूर्ध्वमुत्तरदिनं प्रथमम्। एवं जननमरणाशौचेऽपि ज्ञेयम्।

---

१. पंचगव्यपान रूप व्रतविशेष को ब्रह्मकूर्च कहते हैं, जैसा कि जाबालि ने कहा है—'अहोरात्रोषितो भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः। पंचगव्यं पिबेत् प्रातः ब्रह्मकूर्चविधिः स्मृतः ॥' आगे हरिवंशश्रवणविधि के प्रसंग में ब्रह्मकूर्च की विधि प्रतिपादित है।

२. पारिजात में प्रथमदिन का निर्णय—'पूर्वांशयोस्तु रात्रौ चेज्जननं मरणं रजः। दृष्टं पूर्वदिनादित्वं तृतीये तूत्तरेऽहनि ॥ केचिदेवोदिते सूर्ये जननं मरणं तथा। रजो वा दृश्यते स्त्रीणां यस्याहस्तस्य शर्वरी ॥ अपरे त्वर्धरात्रात्प्राङ् मृतौ रजसि सूतके। पूर्वमेव दिनं प्राहुरूर्ध्वं चेदुत्तरेऽहनि ॥' इति। इस मतभेद की व्यवस्था अपने देश की प्रचलित-परम्परा अनुसार करनी चाहिये।

रजस्वला के प्रथम दिन का निर्णय तो रात के पहिले दो भाग में पहिला दिन प्रथम दिन रजस्वला का होता है। तीसरे भाग में रजोदर्शन होने पर दूसरा दिन पहिला कहलाता है। अथवा आधी रात के पहिले पहिला दिन रजस्वला का प्रथम होता है। आधी रात के बाद रजोदर्शन होने पर दूसरा दिन पहिला होता है। इसी प्रकार जननमरणाशौच मे भी जानना चाहिये।

अथ सप्तदशाहादौ पुना रजोदर्शने विचारः

यस्याः प्रायेण मासे रजोदर्शनं तस्याः सप्तदशदिनपर्यन्तं पुना रजोदर्शने स्नानाच्छुद्धिः। अष्टादशाहे एकरात्रमशुचित्वम्, एकोनविंशे द्विरात्रं, विंशतिप्रभृतित्रिरात्रम्। यस्याः प्रायः पक्षे पक्षे रजोदर्शनं तस्याः दशदिनपर्यन्तं स्नानाच्छुद्धिः। एकादशाहे रजोदृष्टौ एकाह.। द्वादशे द्विरात्रमूर्ध्वं त्रिरात्रम्।

जिस स्त्री को महीने भरपर प्रायः रजोदर्शन होता है उसको सत्रह दिन में फिर रजोदर्शन हो तो उसकी स्नान से शुद्धि होती है। अठारहवें दिन में एक रात की, उन्नीसवे दिन में दो रात की और बीसवें आदि दिनो में रजोदर्शन से तीन रात की अशुद्धि होती है। जिस स्त्री को प्रत्येक पक्ष में प्रायः रजोदर्शन होता है उसको दस दिन में स्नान से शुद्धि होती है। ग्यारहवे दिन रजोदर्शन में एक दिन, बारहवे दिन में दो दिन, इसके बाद वाले दिनों में तीन दिन पर शुद्धि होती है।

अथ रोगजन्यरजसि निर्णयः

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं प्रतिवर्तते तत्र [1]नास्पृश्यत्वं किंतु रजोनिवृत्तिपर्यन्तं पाकदैवपित्र्यकर्मानधिकारमात्रम्।

जिन स्त्रियो को रोग से प्रतिदिन रज दिखाई पड़ता है वे स्पर्श के योग्य हैं, किन्तु रजोदर्शन के निवृत्त होने तक पाक बनाने में और दैव-पितृ-कर्म की अधिकारिणी नहीं होती।

अथ रोगजन्यरजोमध्ये मासजे विचारः

रोगजे वर्तमानेऽपि मासजं रजो निर्यात्येव तत्र सावधाना सती त्रिरात्रशुमचिर्भवेत्। यत्तु गर्भिण्याः प्राक्प्रसवाद्रोगजं रजोदर्शनं तत्र त्रिदिनमेवाशौचम्।

रोग-जन्य-रज के रहने पर भी महीने में निकलने वाला रज निकलता ही है उसमें सावधान रहकर तीन रात अशुचि रहे। जो कि गर्भिणी स्त्री को बच्चा पैदा होने के पहिले रोग से रजोदर्शन होता है उसमें तीन दिन का ही आशौच होता है।

अथ सूतिकाया उच्छिष्टायाश्च रजसि विधिः

प्रसूतिकायाः किंचिदूनमासात्पूर्वं रजोनुवृत्तौ स्नानमात्रं, पूर्णे मासे त्रिरात्रम्। उच्छिष्टा स्त्री यदि रजस्वला भवति तदा शुद्धयन्ते त्र्यहमधरोच्छिष्टे त्वेकाहमुपवासः।

प्रसूतिका को एक महीने से कुछ कम दिन के पहिले रज दिखाई दे तो स्नानमात्र से शुद्धि

---

१. संग्रहे—'रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्तते। नाशुचिस्तु भवेत्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम् ॥' इति। रजकी निवृत्ति होने पर ही शंख ने कर्माधिकार का प्रतिपादन किया—'साध्वाचारा न तावत्स्यात्स्नाताऽपि स्त्री रजस्वला। यावत्प्रवर्तमानं हि रजो नैव निवर्तते ॥' इति।

होती है। पूरे महीने पर तीन रात में शुद्धि होती है। उच्छिष्टा स्त्री यदि रजस्वला होती है तो शुद्धि के अन्त में तीन दिन उपवास करे और अधरोच्छिष्ट में तो एक दिन का उपवास करे।

अथ रजोदर्शनाज्ञाने विचारः

अविज्ञातरजोदोषा यदि गृहे व्यवहरति तदा तया स्पृष्ट गोरसमृद्भाण्डादिकं च न त्याज्यम्। सूतकवज्ज्ञानकालमारभ्यैव दोषात्। अशुचित्वं तु ज्ञानदिनमारभ्य त्रिदिनमिति केचित्। अन्ये तु द्वितीयादिदिने रजसि ज्ञाते सूतकवच्छेषदिनैरेव शुद्धिरित्याहुः।

रजोदोष को विना जाने जो घर में व्यवहार करती है तो उसका छुआ हुआ गोरस, मिट्टी का पात्र आदि और जल आदि का त्याग न करे। क्योंकि सूतक की तरह से ज्ञान होने पर ही दोष होता है। कोई कहते हैं कि आशौच के दिन का ज्ञान होने से तीन ही दिन तक अशुद्धि रहती है। अन्य लोग तो—दूसरे आदि दिन में रजोज्ञान होने पर सूतक की तरह ज्ञान के बाद वाले दिनों ही से शुद्धि होती है, ऐसा कहते हैं।

अथ रजस्वलायाः शुद्धिः

एवं त्रिदिनं स्थित्वा चतुर्थेऽहनि षष्टिवारं मृत्तिकाशौचेन मलं प्रक्षाल्य दन्तधावनपूर्वकं [1]संगवकाले स्नायात्। सूर्योदयात्प्राक् स्नानं त्वनाचारः।

इस प्रकार तीन दिन रजस्वला अवस्था में रहकर चौथे दिन साठ बार मिट्टी से मल का प्रक्षालन करके दन्तधावन कर सगवकाल में नहाये। सूर्योदय से पहिले स्नान करना तो आचार-विरुद्ध है।

अथ चतुर्थेह्नि कार्याकार्यविचारः

चतुर्थेऽहनि रजोनिवृत्तौ भर्तृशुश्रूषणादौ शुद्धिः। पञ्चमेऽहनि [2]दैवपित्र्यकर्मणि शुद्धिः। कानिचिद्दिनानि रजो यद्यनुवर्तेत तदा तन्निवृत्तिपर्यन्तं दैवपित्र्ययोर्न शुद्धिः। रोगेण त्वनुवृत्तौ प्रागुक्तम्।

---

१. सङ्गता गावो दोहनाय यस्मिन् काले स संगवः। प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय जो दिन के पांच भागों में से दूसरा है, उसे सगव कहते हैं।

२. भारद्वाजः—'प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति॥ भर्तुः स्पृश्या चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला। पञ्चमेऽहनि योग्या स्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥' आपस्तम्बः—'स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते। गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथंचन॥' इति।

देवयाज्ञिकभाष्य 'में देवता के उद्देश से द्रव्यत्यागपूर्वक होम का विधान—'आदौ द्रव्यपरित्यागः पश्चाद्धोमो विधीयते। प्रयोग इदमिन्द्राय न ममेति यथार्थतः॥ अवत्तं तु त्यजेदन्नं मनसा वचसाऽपि च। ततश्च प्रक्षिपेदग्नाविति धर्मः सनातनः॥ अकृत्वा जुहुयाद्यस्तु मोहेनान्वितमानसः। देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा॥ यत्किञ्चिज्जुहुयादग्नौ तत्सर्वं त्यागपूर्वकम्। अन्यथा जुहुयाद्यस्तु नरकं स तु गच्छति॥' यज्ञपुरुष के जिह्वा में ही होम करना चाहिये—'यत्र काष्ठं तत्र कर्णौ जुहुयाच्चेद् व्याधिक्रन्नरः। धूमस्थान शिरः प्रोक्तं मनो दुःखं भवेदिह॥ यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यजमानस्य नाशनम्। भस्मस्थाने तु क्लेशः स्यात्स्थाननाशो धनक्षयः॥ अङ्गारे नासिकां विद्यान्मनोदुःखं विदुर्बुधाः। यत्र प्रज्ज्वलनं तत्र जिह्वा चैव प्रकीर्तिता॥ गजवाजिप्रणादी तु वह्निः शुभफलप्रदः।' इति।

चौथे दिन रज के निवृत्त होने पर पति की सेवा आदि कार्य के लिये शुद्धि है। पाँचवें दिन देव-पितृ-कर्म के लिये शुद्धि है। कुछ दिनो तक यदि रज दिखाई दे तो जब तक वह निवृत्त नही हो जाय तब तक देव-पितृ-कर्म के लिये शुद्धि नही है। रोग से अधिक दिन तक रज के चलते रहने के विषय में पहले कहा जा चुका है।

केचित्तु चतुर्थदिवसे दर्शेष्ट्यादिश्रौतकर्माणि कर्तव्यानीत्याहुः। अपरे तु इतरदिनापेक्षया चतुर्थदिनस्यैवानुकूलत्वे तत्रैव गर्भाधान रजोदर्शनशान्तिश्च कर्तव्या।

कुछ लोग यह कहते है कि चौथे दिन दर्शेष्टि आदि श्रौत-कर्म करना चाहिये। दूसरे तो अन्य दिनो की अपेक्षा चौथा दिन ही यदि अनुकूल हो तो उसीमें गर्भाधान और दुष्ट रजोदर्शन की शान्ति करनी चाहिये, ऐसा कहते हैं।

अथ महासंकटे ग्राह्याग्राह्यविचारः

महासंकटे श्रीसूक्तहोमपूर्वकाभिषेकेणोपनयनादिकमपि चतुर्थेऽह्नि कर्तव्यमित्याहुः। अथ चतुर्थेऽह्न्यधिकारनिर्णयः सर्वथा रजोनिवृत्तावेव ज्ञातव्यः।

कोई महासकट में श्रीसूक्त से होम करके अभिषेक से उपनयनादिक भी चौथे दिन करे, ऐसा कहते है। यह चौथे दिन का अधिकार-निर्णय सर्वथा रज के निवृत्त होने ही में जानना चाहिये।

अथ रोगिण्याः स्नानविधिः

यदि ज्वरादिभिरातुरा[1] चतुर्थेऽहनि स्नातुं न शक्ता तदा तामन्या नारी नरो वा दशवारं स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा स्नायादाचामेच्च। प्रतिस्नानमातुरस्य वस्त्रमन्यदन्यत्परिधापनीयम्। अन्ते स्पृष्टानां सर्ववस्त्राणां त्याग.। आर्द्रवस्त्रादिव्यवधानेन शुद्धवस्त्रग्रहणान्ते ब्राह्मणभोजनात्पुण्याहवाचनाच्च शुद्धिः। सर्वेषामप्यातुराणामेवं शुद्धिर्विधीयते। एवं शुद्धयन्ते शुभे दिने दुष्टरजोदर्शनप्रयुक्तां शौनकोक्तां भुवनेश्वरीशान्तिं ग्रन्थान्तरोक्तां वा शान्तिं विधाय गर्भाधानं कार्यम्।

यदि ज्वरादि से बीमार हो गई और चौथे दिन स्नान नही कर सकती है तब उसको दूसरी स्त्री या पुरुष दस बार स्पर्श कर स्नान और आचमन करे। प्रत्येक बार स्नान में बीमार को वस्त्र दूसरा पहिनाना चाहिये। अन्त में स्पर्श किये हुए सब वस्त्रो का त्याग कर दे। गीले वस्त्र आदि के व्यवधान से शुद्ध वस्त्र पहनने के बाद पुण्याहवाचन और ब्राह्मणभोजन से शुद्धि होती है। सब बीमारों का इसी प्रकार शुद्धि का विधान है। इस तरह शुद्धि के अन्त में शुभ दिन में दुष्ट रजोदर्शन के लिये शौनक की कही हुई भुवनेश्वरीशान्ति अथवा दूसरे ग्रन्थो की कही हुई शान्ति करके गर्भाधान करे।

---

१. उशनाः—'ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता। कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा॥ चतुर्थेऽनि सम्प्राप्ते स्पृशेदन्यां तु तां स्त्रियम्। सा सचैलाऽवगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत्॥ दश द्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनः पुनः। अन्ते च वाससां त्यागस्ततः शुद्धा भवेत्तु सा॥ यह विधि पराशर के निर्देशानुसार आतुरमात्र के लिये है—'आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः। स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः॥' इति।

अथ ग्रहणकाले रजसि विधिः

सूर्यग्रहे रजोदर्शने हैमं सूर्यबिम्बं तन्नक्षत्ररूपं च सीसेन राहुं च कृत्वा संपूज्यार्कसमिद्भिः सूर्यं नक्षत्रेशं प्लक्षै राहुं दूर्वाभिर्हुत्वाज्यचरुतिलैश्च जुहुयात् । चन्द्रग्रहे राजतं चन्द्रबिम्बं पालाश्यश्च समिध इति विशेषः । ग्रहणव्यतीपातादिबहुतरदोषे रजोदर्शने तु द्वितीयादिरजोदर्शने शान्तिपूर्वकं गर्भाधानं कार्यम् ।

सूर्यग्रहण में रजोदर्शन होने पर सोने का सूर्यबिम्ब बनाकर उस नक्षत्र का रूप और शीशे से राहु बनाकर उसकी अच्छी तरह से पूजा करके आक की लकड़ी से सूर्य, पाकड़ को लकड़ी से नक्षत्रेश तथा दूब से राहु को होम करके घी, चरु और तिलों से भी होम करे । चन्द्रग्रहण में चान्दी का चन्द्रबिम्ब बनावे और पलाश की समिधा से होम करे, इतना विशेष है । ग्रहण, व्यतिपात आदि अधिकतर दोष में रजोदर्शन हो तो दूसरे आदि रजोदर्शन में शान्ति करके गर्भाधान करे ।

अथ गर्भाधाने गुरुशुक्रास्तादिनिर्णयः

गर्भाधाने गुरुशुक्रास्ताधिकमासादिदोषो नास्ति । यदि तु प्रथमरजोदर्शने शान्तिर्न कृता द्वितीयादिरजोदर्शने शुक्रास्तादिदोषप्रसक्तिस्तदा निमित्तान्तरमेव यत्र नैमित्तिकानुष्ठानं तत्रास्तादिदोषाभावः । मुख्यकालातिक्रमे तु अस्तादिदोषोऽस्त्येवेति सामान्यनिर्णयानुसारेण ऋतुशान्तिरस्तादौ न कार्या । तदनुरोधेन गर्भाधानं च न कार्यमिति भाति ।

गर्भाधान-कर्म में गुरु शुक्र का अस्त और अधिकमास आदि का दोष नहीं है । यदि पहिले रजोदर्शन में शान्ति नहीं किया हो तो द्वितीय आदि रजोदर्शन में शुक्रास्तादिका दोष पडे तब निमित्त के बाद ही जहाँ नैमित्तिक का अनुष्ठान होता है वहाँ अस्तादि का दोष नहीं होता है । मुख्यकाल के बीतने पर तो अस्तादि का दोष है ही इस सामान्य-निर्णय के अनुसार ऋतुशान्ति अस्तादि में नहीं करनी चाहिये । इसके अनुरोध से गर्भाधान भी नहीं करे, ऐसा युक्त प्रतीत होता है ।

अथ भुवनेश्वरीशान्तिः

शान्तिश्च सग्रहमखैव कार्या । शान्तौ भुवनेश्वरीप्रधानदेवता इन्द्रेन्द्राण्यौ पार्श्वदेवते । एवं कलशत्रयेपि प्रतिमात्रयस्थापनम् । 'ग्रहाणामर्कादिसमिधश्चरुराज्यं च द्रव्यम् । प्रधानदेवताया दूर्वास्तिलमिश्रगोधूमाः पायसमाज्यं चेति हविश्चतुष्टयम् । एवं पार्श्वदेवतयोरपि पायसस्य स्थण्डिलाग्नौ श्रपणमेव कार्यं न तु गृहसिद्धस्य ग्रहणम् । ग्रहहोमार्थं गृहसिद्धचरुः । पात्रासादनकाले पायसश्रपणार्थमेका स्थाली गृहसिद्धान्नसंस्कारार्थमपरेति स्थालीद्वयम् । अनेककर्तृकाज्यहोमप्रसक्तावनेकस्रुवासादनम् । आज्येन सह हविस्त्रयस्य गृहसिद्धान्नस्य च पर्यग्निकरणम् । स्रुवादिसंमार्गान्ते गृहसिद्धान्नमासादितचरुस्थाल्यामादायाग्नावधिश्रित्याभिघारणादिबर्हिरासादनान्तं कुर्यात् । ततः पायसाभिघारणाद्यासादनान्तम् ।

---

१. बौधायनगृह्यपरिशिष्टे—'समिपदर्क मयी भानोः पालाशी शशिनस्तथा । खादिरी भूमिपुत्रस्य अपामार्गी बुधस्य च ॥ शमीजा तु शनेः प्रोक्ता राहोर्दूर्वामयी तथा ।' 'सर्वेषामभावे पालाशीर्या' इति ।

शान्ति भी ग्रहयज्ञ के साथ ही करनी चाहिये। शान्ति में मुख्य देवता भुवनेश्वरी हैं। पार्श्व-देवता इन्द्र और इन्द्राणी हैं। इस प्रकार तीन कलशों में तीन प्रतिमा का स्थापन करे। ग्रहो के लिये अर्कादि की समिधा चरु और घी द्रव्य है। प्रधान देवता के लिये दूब-तिल से मिला गेहूँ और खीर तथा घी, यह चार हवि है। इसी प्रकार पार्श्व-देवता के लिये भी खीर को स्थण्डिल की अग्नि में ही केवल पकावे, घर का बना हुआ नहीं होना चाहिये। ग्रहहोम के लिये घर का बना चरु, पात्र रखने के समय में खीर बनाने के लिये एक बटुली, घर के बने अन्न के सस्कार के लिये दूसरी बटुली, इस प्रकार दो बटुली रहनी चाहिये। बहुत आदमी घृत होम करने वाले हों तो अनेक स्रुवास्थापन करे। घी के साथ तीनो हवि और घर के बने अन्न का भी पर्यग्निकरण होना चाहिये। स्रुवादि के समार्जन के बाद घर के बने अन्न को चरुस्थाली में लेकर अग्नि पर गरम करके अभिघारणादि कुश आसादन तक करे। तदनन्तर खीर का अभिघारण आदि आसादन पर्यन्त करे।

अन्वाधाने हविस्त्यागे च प्रधानदेवताया भुवनेश्वरीपदेन सवितृपदेन वोच्चारः 'गायत्र्या होमोक्तेः[1]। आज्यभागान्ते यजमानोऽन्वाधानानुसारेण प्रतिदैवतमष्टाविंशत्याहुतिपर्याप्तमर्कादिजातीयसमिच्चर्वाज्यात्मकं[2] हविस्त्रयं सूर्याय सोमाय भौमाय बुधाय बृहस्पतये शुक्राय शनये राहवे केतवे च न मम। अष्टाष्टसंख्यापर्याप्तं हविस्त्रयं तत्तदधिदेवताप्रत्यधिदेवताभ्यो न मम। चतुश्चतुःसंख्यापर्याप्तं तद्धविस्त्रयं विनायकादिभ्यः क्रतुसंरक्षकक्रतुसाद्गुण्यदेवताभ्यो न मम। अष्टोत्तरशतसंख्याकाहुतिपर्याप्तं दूर्वातिलगोधूमपायसाज्येति हविश्चतुष्टयं भुवनेश्वर्यै न मम। यद्वा सवित्रे न मम। एवमष्टाविंशतिसंख्यापर्याप्तं तच्चतुष्टयमिन्द्रेन्द्राणीभ्यां न ममेति त्यागं कुर्यात्।

अन्वाधान में और हवि के त्याग में भी प्रधानदेवता का भुवनेश्वरी-शब्द से अथवा सवितृपद से उच्चारण करे, क्योंकि गायत्री से होम कहा है। आज्यभाग के अन्त में यजमान अन्वाधान के अनुसार प्रत्येक देवता के लिये २८ आहुति के योग्य अर्कादि की समिधायें और चरुघृतात्मक तीनों हवि—सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु के लिये है, मेरे नही। आठ-आठ संख्या का पर्याप्त हवि—तीन अधिदेवता के लिये हैं, मेरे नहीं। चार चार आहुति के योग्य तीनो हवि—विनायकादि और यज्ञ-संरक्षक क्रतु साद्गुण्यदेवता के लिये हैं, मेरे नहीं। १०८ आहुति के लिये पर्याप्त—दूब, तिल, गेहूँ, खीर और घी ये चार हविष्य भुवनेश्वरी के लिये हैं, मेरे नही। इसी प्रकार २८ संख्या के पर्याप्त चार हवि—इन्द्र और इन्द्राणी देवता के लिये हैं मेरे नहीं, ऐसा कहकर त्याग करे।

बहुतरदोषेऽष्टोत्तरसहस्रसंख्याको होमो भुवनेश्वर्या इन्द्रेन्द्राण्योरष्टोत्तरशत-

---

१. नारदः—'तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः। प्रत्येकाष्टशतं चैव गायत्र्या जुहुयात्ततः॥ स्वर्णगोभूतिलान् दद्यात् सर्वदोषापनुत्तये। शौनकः—'दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च। तिसृभिश्चैव दूर्वाभिरेकैका चाहुतिर्भवेत्॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा। गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम्॥' इति। विस्तृत शान्ति-विधि अन्यत्र देखें।

२. वायुपुराणे—'पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः। उदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्च ये॥ सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा। समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः॥ ग्राह्याः कण्टकिनश्चैवं यज्ञिया एव केचन। पूजिताः समिदर्थेषु पितॄणां वचनं यथा॥' इति।

संख्याक इन्द्रेन्द्राण्योर्होमः कृताकृतः । होमान्ते ग्रहादिबलयः भुवनेश्वर्यादिबलयोऽ-भिषेकश्चेति सक्षेप. । समन्त्रक. सविस्तरः प्रयोगः [1]स्वस्वशाखीयानुसारेण ज्ञेय. ।

अधिकतर दोष में एक हजार आठ आहुति का होम भुवनेश्वरी और एक सौ आठ का होम इन्द्र तथा इन्द्राणी के लिये है। इन्द्र और इन्द्राणी का होम करना न करना समान है। होम के अन्त में ग्रहादि की बलि, भुवनेश्वरी आदि की बलि और अभिषेक करे, यह सन्क्षेप से कहा है। मन्त्र के सहित विस्तार-पूर्वक प्रयोग अपनी अपनी शाखा के अनुसार जानना चाहिये ।

अथ स्मार्तहोमकर्मपूर्वोत्तराङ्गक्रमौ

संकल्पः स्वस्तिवाग्विप्रवरणं भूतनि.सृतिः ।
पञ्चगव्यैर्भूमिशुद्धिर्मुख्यदैवतपूजनम् ॥ १ ॥
अग्निप्रतिष्ठासूर्यादिग्रहस्थापनपूजनम् ।
देवतान्वाहिति. पात्रासादनं हविषां कृतिः ॥ २ ॥
यथाक्रमं त्यागहोमाविति पौर्वाङ्गिकः क्रमः ।
पूजास्विष्टं नवाहुत्या बलिः पूर्णाहुतिस्तथा ॥ ३ ॥
पूर्णपात्रविमोकाद्यग्न्यर्चनान्तेऽभिषेचनम् ।
मानस्तोकेति भूतिश्च देवपूजाविसर्जने ॥ ४ ॥
श्रेयोग्रहो दक्षिणादिदानं कर्मेश्वरार्पणम् ।
क्रमोऽयमुत्तराङ्गाना प्रायः स्मार्तेष्विति स्थितिः ॥ ५ ॥

एवं मदनरत्नोक्ता बौधायनोक्ता च शान्तिः कौस्तुभे द्रष्टव्या ।

संकल्प, स्वस्तिवाचन, ब्राह्मणवरण, भूतनिस्सारण, पंचगव्य से भूमि की शुद्धि, मुख्य देवता का पूजन, अग्निस्थापन, सूर्यादि-ग्रहो का स्थापन और पूजन, देवता का अन्वाधान, पात्र का आसादन, हविष्य का बनाना, क्रम के अनुसार त्याग और होम, ये सब पूर्वांग क्रम हैं। पूजा में स्विष्ट, नव आहुति से बलि, पूर्णाहुति, पूर्णपात्र का दान, अग्निपूजन के अन्त में अभिषेचन, 'मानस्तोके' इस मन्त्र से देवता का पूजन और विसर्जन, आशीर्वादग्रहण, दक्षिणा आदि का देना, कृतकर्म का ईश्वरार्पण, यह क्रम प्रायः स्मार्तों के उत्तरांग का है। इसी प्रकार मदनरत्न और बौधायन की कही शान्ति भी कौस्तुभ में देखना चाहिये ।

अथ पत्नीगमनविचारः

प्राग्रजोदर्शनात् पत्नीगमने ब्रह्महत्यादोषोक्तेः किञ्चित्प्रायश्चित्तं विधेयमिति भाति। ऋतौ तु गमनमावश्यकम् । अन्यथा [2]भ्रूणहत्यादोषः। अयं च मनसि कामे

१. छन्दोगपरिशिष्टे—'स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं तु यः । कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम् ॥' इति ।

२. पराशरः—'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥' इसके अपवाद में व्यास की उक्ति—'व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु । ऋतुकालेऽपि नारीणां भ्रूणहत्या प्रमुच्यते ॥ वृद्धां वन्ध्यामसद्वृत्तां मृतापत्यामपुष्पिणीम् । कन्यासूं बहुपुत्रां च वर्जयन्मुच्यते भयात् ॥' इति ।

सति द्वेषादिना स्त्रियमनुपगच्छतो ज्ञेयः। विरक्तस्य न कोऽपि दोष इति श्रीभागवते लोके व्यवायेति पद्ये टीकाया च स्पष्टम्। ऋतुकालस्तु रजोदर्शनमारभ्य [1]षोडशदिनपर्यन्तं ज्ञेयः।

रजोदर्शन के पहिले स्त्री-प्रसग करने से ब्रह्महत्या का दोष कहा है। इसलिये कुछ प्रायश्चित करना चाहिये, ऐसा युक्त प्रतीत होता है। ऋतु में तो स्त्री-सहवास आवश्यक है, नहीं तो गर्भहत्या का दोष लगता है। यह मन में इच्छा रहने पर भी द्वेषादि से स्त्रीगमन नहीं करने से भ्रूणहत्या का दोष जानना चाहिये। ससार से विरक्त पुरुष को तो कोई दोष नहीं है। यह बात भागवत में 'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा' इस श्लोक की टीका में स्पष्ट किया है। ऋतुकाल तो रजोदर्शन से आरम्भ करके सोलह दिन का जानना चाहिये।

तत्र प्रथमदिनचतुष्टयैकादशत्रयोदशदिनेषु गमनं वर्ज्यम्। अवशिष्टदिनेषु [2]पुत्रार्थिना समदिने, कन्यार्थिना विषमदिने गमनं कार्यम्। तत्राप्युत्तरोत्तररात्रीणा प्राशस्त्यम्। एकस्यां रात्रौ सकृदेव गमन कार्यम्। सकृद्गमनं च युग्मासु सर्वासु आवश्यकमिति केचित्। अन्यकाले प्रतिबन्धादिना गमनासम्भवे श्राद्धैकादश्यादिदिनेऽपि ऋतुगमनं कार्यमिति केचित्।

इसमें प्रथम चारो दिन ग्यारहवें और तेरहवें दिन में स्त्रीगमन वर्जित है। शेष दस दिनों में पुत्र चाहने वाले सम-दिन और कन्या चाहने वाले विषम-दिन में गमन करें। इसमें भी आगे आगे वाली रातें स्त्री-गमन के लिये उत्तम हैं। एक रात में एक ही बार गमन करना चाहिये। एक बार स्त्री-गमन भी सब सम रातों में आवश्यक है, ऐसा कोई कहते हैं। दूसरे काल में प्रतिबन्ध आदि से गमन असभव हो तो श्राद्ध के दिन एकादशी आदि दिन में भी ऋतुगमन करना चाहिये, यह भी कोई कहते हैं।

---

१. याज्ञवल्क्य.—'षोडशर्तुनिशा. स्त्रीणा तस्मिन् युग्मासु सविशेत्। ब्रह्मचार्यैव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ॥' मनु.—'ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणा रात्रयः षोडश स्मृताः। तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तथा ॥ त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः।' इति।

भावप्रकाश में पुरुष के लिये स्त्रीगमन का विधान—'स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोऽर्चितः। भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतिः ॥ ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः। पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे ॥' अर्थात् स्त्रीसम्भोगार्थी पुरुष पुत्रप्राप्ति की इच्छा से स्नान करके शरीर में चन्दन लगा, सुगन्धित फूलों की माला पहन, वीर्यवर्धक दुग्धघृतादि द्रव्यों का सेवन कर सुन्दर वस्त्र एवं सुन्दर वेश से अपने को अलंकृत कर मुख में पान रखकर अधिक कामान्वित तथा स्त्री में अनुरक्त होकर उत्तम शय्या पर स्त्री के पास जाय। स्त्री को भी इन्हीं गुणों से युक्त होना चाहिये।

२. शंखः—'युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।' मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने कहा—'यदा युग्मायामपि रात्रौ शोणिताधिक्यं तदा स्त्र्येव पुरुषाकृतिः। अयुग्मायामपि शुक्राधिक्ये पुमानेव स्त्र्याकृतिः, कालस्य निमित्तत्वात्; शुक्रशोणितयोश्च उपादानकारणत्वेन प्राबल्यात्। तस्मात् क्षामा कर्तव्या।' इति।

अथ अनृतौ गमनविचारः

स्त्रीणां [1]वरमनुस्मरन् पत्नीच्छयाऽनृतावपि गच्छन्न दोषभाक् किंतु ब्रह्मचर्यहानिमात्रम्।

ऋतौ गच्छति यो भार्यामनृतौ नैव गच्छति ।
यावज्जीवं ब्रह्मचारी मुनिभिः परिकीर्तितः ।

स्त्रियों के वर का स्मरण करते हुए पत्नी की इच्छा से ऋतुभिन्न काल में भी गमन करने में दोष नहीं है, किन्तु केवल ब्रह्मचर्य की हानि है। ऋतुकाल में जो स्त्री-गमन करता है और ऋतुभिन्न काल में नहीं गमन करता वह जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी कहलाता है, ऐसा मुनियों ने कहा है।

अथ स्त्रीगमने निषिद्धकालः

अष्टमीचतुर्दशीपौर्णिमाऽमावास्यासूर्यसंक्रान्तिवैधृतिव्यतीपातपरिघपूर्वदलविष्टिसंध्यासु मातापित्रोर्मृतदिने श्राद्धतत्प्राग्दिने जन्मनक्षत्रे [2]दिवा च स्त्रीगमनं वर्ज्यम्।

अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या, सूर्यसंक्रान्ति, वैधृति, व्यतीपात, परिघ का प्रथमभाग, भद्रा, सन्ध्या, मातापिता का मरणदिन, श्राद्धका पहला दिन और जन्मनक्षत्र, इनमें स्त्री-गमन वर्जित है।

अथ गर्भाधानकालः

चतुर्थीषष्ठीचतुर्दश्यष्टमीपञ्चदशीरहितास्तिथयः प्रशस्ताः। चन्द्रबुधगुरुशुक्रवाराः शुभाः। मूलमघारेवतीज्येष्ठानक्षत्राणि वर्ज्यानि। भरणीकृत्तिकार्द्राश्लेषापूर्वात्रयविशाखामध्यमानि। शेषाणि [3]शुभानि।

---

१. इन्द्र ने स्त्रियों को वरदान दिया था कि 'भवतीनां कामविहन्ता पातकी स्यात्' यथा—'ता अब्रुवन् वरं वृणीमहा ऋत्वियात् प्रजां विन्दामहै काममाविजनितोः संभवामेति तस्मादृत्वियात् स्त्रियः प्रजां विन्दते काममाविजनितोः सम्भवन्ति वारे वृत ं ह्यासाम्' इति।

इसलिये पत्नी के इच्छानुसार ऋतुभिन्न काल में भी पत्नीगमन में दोष नहीं है। याज्ञवल्क्य ने भी आदेश दिया है—'यथाकामी भवेद् वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्। स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः॥' इति।

२. शिवारहस्ये—'दिवा जन्मदिने चैव न कुर्यान्मैथुनं व्रती। श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोऽर्थी न च पर्वसु॥' याज्ञवल्क्य के—'ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' इस वचन की मिताक्षरा में लिखा कि 'यत्र श्राद्धादौ ब्रह्मचर्यं विहितं तत्राप्यृतौ गच्छतो न ब्रह्मचर्यस्खलनदोषः' इसलिये शिवरहस्य का निषेध-वचन ऋतुकाल से भिन्न काल के लिये है।

३. श्रीधर—'षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा। शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशाङ्कार्यसितेन्दुजानाम्॥' आर्यः=गुरुः, सित=शुक्रः, इन्दुजः=बुधः। 'विष्णुप्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानि निषेककार्ये। पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रादित्याश्च मध्यमफलाः, विफलाः स्युरन्ये॥'

रत्नमालामें विष्ण्वादिदैवत्यनक्षत्र—'भेशा दस्रयमाग्निधातृशशिनः शर्वोऽदितिर्वाक्पतिः कद्रूजाः पितरो भगोऽर्यमरवी त्वष्टाह्वयो मारुतः। शक्राग्नी त्वथ मित्र इन्द्रनिरृती तोयं च विश्वे विधिर्गोविन्दो वसवोऽम्बुपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः॥' इति।

चौथी, छठीं, चौदहवीं, आठवीं और पन्द्रहवीं तिथियों को छोड़कर शेष तिथियाँ उत्तम हैं। सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार शुभ है। मूल, मघा, रेवती, और ज्येष्ठानक्षत्र वर्जित हैं। भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, तीनो पूर्वा और विशाखा मध्यम हैं। शेष सब शुभ हैं।

अथ चन्द्रबलविचारः

सर्वकार्येषु गोचरे चन्द्रबलमावश्यकम्। तद्यथा—

चन्द्रोऽन्नमधनं सौख्यं रोगं कार्यक्षतिं श्रियम्।
स्त्रियं मृत्युं नृपभयं सुखमायं व्ययं क्रमात्॥
स्थानेषु द्वादशस्वेतज्जन्मराशेः प्रयच्छति।
शुक्लपक्षे शशी श्रेष्ठो द्विपञ्चनवमेष्वपि॥

अनेकभार्यस्य ऋतुयौगपद्ये विवाहक्रमेण ऋतुप्राप्तिक्रमेण वा गर्भाधानम्।

सब कामों में गोचर में चन्द्रबल आवश्यक है। जैसे—चन्द्रमा जन्मराशि से बारहों स्थानों में क्रम से अन्न, दरिद्रता, सुख, रोग, कार्य की हानि, लक्ष्मी, स्त्री, मृत्यु, राजभय, सुख, आय और व्यय देता है। शुक्लपक्ष में दूसरे, पाँचवें और नवें में भी चन्द्रमा श्रेष्ठ होता है। अनेक भार्या वाले को एक ही समय में दो ऋतु होने पर विवाह के क्रम से अथवा ऋतु-प्राप्ति के क्रम से गर्भाधान करना चाहिये।

अथ ऋतावप्यगमने दोषाभावविचारः

व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु।
वृद्धां वंध्यामसद्वृत्तां मृतापत्यामपुष्पिणीम्॥
कन्यासूं बहुपुत्रां च अगच्छन्नैव दोषभाक्।

ऋतु में भी स्त्री-गमन न करने से विशेष अवस्था में दोष नहीं है। जैसे—बीमार, बन्धन और प्रवास में रहने पर, पर्वों में, स्त्री—वृद्धा, बन्ध्या, दुश्चरित्रा, मृतापत्या, अपुष्पिणी, केवल कन्या का प्रसव करने वाली और बहुत पुत्र वाली हो तो ऋतु में स्त्री गमन नहीं करने पर दोष का भागी नहीं होता।

अथ गर्भाधाने होमः

तत्र प्रथमर्तुगमनं गर्भाधानहोमं गृह्याग्नौ कृत्वा कार्यम्। द्वितीयादिकऋतुगमने च न होमादिकम्। येषां सूत्रे होमो नोक्तस्तैर्होमवर्ज्यं मन्त्रपाठादिरूपो गर्भाधानसंस्कारः प्रथमगमने कार्यः। आहिताग्नेरर्धाधानिनोऽनाहिताग्नेश्चौपासनाग्निसिद्धिसत्त्वे तत्रैव होमः।

उसमें प्रथम ऋतु में गमन और गर्भाधान का होम, गृह्य अग्नि में करके करे। दूसरे आदि ऋतुगमन में होमादिक नहीं करे। जिनके सूत्र में होम नहीं कहा है वे होम को छोड़कर मन्त्रपाठ आदिरूप गर्भाधान-संस्कार प्रथम गमन में करे। आधा आधान करने वाले अग्निहोत्री की और नहीं अग्नि वाले को औपासनादि की सिद्धि होने पर उसी में होम करना चाहिये।

अथ होमार्थं गृह्याग्न्युत्पादनम्

औपासनाग्निविच्छेदे द्वादशदिनपर्यन्तमयाश्चेत्याज्याहुत्या तत ऊर्ध्वं प्रायश्चित्तपूर्वकं पुनःसंधानविधिनाग्निमुत्पाद्य तत्र कार्यः। तत्र प्रत्यब्दं प्राजापत्य-

कृच्छ्रप्रायश्चित्तम्। तत्रेत्थं संकल्पः—'मम गृह्याग्निविच्छेददिनादारभ्यैतावन्तं कालं गृह्याग्निविच्छेदजनितदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गृह्याग्निविच्छेददिनादारभ्यैतावदब्दपर्यन्तं प्रत्यब्दमेकैककृच्छ्रान् यथाशक्ति तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतरजतनिष्कनिष्कार्धनिष्कपादनिष्कपादार्धान्यतमद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये, तथा एतावद्दिनेषु गृह्याग्निविच्छेदेन लुप्तसायंप्रातरौपासनहोमद्रव्यं लुप्तदर्शपौर्णमासस्थालीपाकादिकर्मपर्याप्तव्रीह्याद्याज्यद्रव्यं च तन्निष्क्रयं वा दातुमहमुत्सृज्ये।' कृच्छ्रप्रत्याम्नायान्तरचिकीर्षायां तथोहः कार्यः।

औपासन अग्नि के विच्छेद में बारह दिन तक 'अयाश्च' इस मन्त्र से घी की आहुति देकर उसके अनन्तर प्रायश्चित्त करके पुन:संधानविधि से अग्नि पैदा कर उसमें होम करे। उसमें प्रतिवर्ष प्राजापत्यकृच्छ्र प्रायश्चित्त होता है। उसमें ऐसा सकल्प करे—'मेरे अग्निविच्छेद के दिन से आरभ कर इतने काल तक गृह्य-अग्नि-विच्छेद-जन्य-दोष-परिहार के द्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिये गृह्याग्नि-विच्छेद के दिन से आरम्भ करके इतने वर्षपर्यन्त प्रत्येक वर्ष का एक एक कृच्छ्र यथाशक्ति या इसके बदले में गाय का निष्क्रय एक निष्क, आधा निष्क, चौथाई निष्क या निष्क का आठवाँ भाग, इनमें से मैं कोई एक रजत-द्रव्य देकर करूँगा, या इतने दिनों में गृह्याग्नि-विच्छेद से लुप्त सायंकाल प्रातःकाल के औपासन होम का द्रव्य दर्शपौर्णमास, स्थालीपाक आदि का कर्म जो नहीं हुआ उसके लिये धान्यादि और घी या उसका निष्क्रय देने को मैं त्याग करता हूँ।' कृच्छ्र के बदले में दूसरा कुछ करने की इच्छा हो तो वैसा ही संकल्प में योजना कर ले।

अशीतिगुञ्जात्मको निष्कपादः। अयं चतुर्गुणितो निष्कः। एवं संकल्प्य 'विच्छिन्नस्य गृह्याग्नेः पुनःसंधानं करिष्ये' इति संकल्पपूर्वकं स्वस्वसूत्रानुसारेण गृह्याग्निं संसाधयेत्।

अस्सी गुजा का चौथाई निष्क होता है। इसको चौगुना करने पर पूरा निष्क होता है। ऐसा संकल्प करके 'विच्छिन्न गृह्याग्नि का पुनः संधान करूँगा' ऐसे संकल्प से अपने-अपने सूत्र के अनुसार अग्नि का साधन करे।

अथ सर्वाधान्यर्धाधानिनोर्गृह्याग्निसिद्धिनिर्णयः

सर्वाधानिनापि एवमेव पुनःसंधानेन गृह्याग्निमुत्पाद्य गर्भाधानपुंसवनादिहोमः कार्यः। तत्र कृच्छ्रसंकल्पो होमादिद्रव्यदानसंकल्पश्च न कार्यः। 'गर्भाधानहोमं कर्तुं गृह्यपुनःसंधानं करिष्ये' इत्येव संकल्पः। गर्भाधानान्तेऽग्नित्यागः। अर्धाधानिनामपि पक्षद्वयम्—गृह्याग्नौ सायंप्रातर्होमस्थालीपाकाः कार्या इत्येकः। गृह्याग्निः केवलं संरक्ष्यो न तु तत्र होमादिकार्यमित्यपरः। आद्यपक्षे पूर्वोक्तहोमादिद्रव्यदानं कार्यम्। होमाद्यकरणपक्षे प्रायश्चित्तमात्रं कार्यं न तु द्रव्यदानम्।

सर्वाधानी को भी पुनःसंधान से गृह्याग्नि का उत्पादन कर गर्भाधान और पुंसवन आदि का होम करना चाहिये। इसमें कृच्छ्र का संकल्प होमादि-द्रव्य-दान का संकल्प न करे। 'गर्भाधानहोमं कर्तुं गृह्यपुनःसंधानं करिष्ये' इतना ही संकल्प करे। गर्भाधान के अन्त में अग्नि का त्याग करे। अर्धाधानियों के भी दो पक्ष हैं, पहिला है—गृह्याग्नि में सायं प्रातः होम और स्थालीपाक करना।

दूसरा पक्ष है—गृह्याग्नि केवल रक्षा के योग्य है न कि उसमें होम आदि कार्य करना। पहिले पक्ष में पहिले कहा हुआ होम आदि द्रव्य का दान करना चाहिये। होम आदि न करने के पक्ष में केवल प्रायश्चित्त करे, द्रव्य दान नहीं।

अथ द्विभार्यस्याग्निद्वयसंसर्गः

द्विभार्यस्याग्निद्वयसंसर्गात्पूर्वमुभयाग्न्यनुगतौ उभयविच्छेददिनादब्दगणनया पृथक्पृथक् कृच्छ्रप्रायश्चित्तं पृथक्पृथक् होमद्रव्यदानं स्थालीपाकद्रव्यदानं च कृत्वा पुनःसंधानद्वयेनाग्निद्वयमुत्पाद्याग्निद्वयसंसर्गं विधाय तत्र गर्भाधानहोमः। अग्निद्वयसंसर्गात्पूर्वम् एकाग्न्यनुगतौ तन्मात्रप्रायश्चित्तं तद्धोमद्रव्यमात्रदानं च कार्यं न तु स्थालीपाकद्रव्यदानम्। भार्यान्तरस्यासन्निधाने यस्यां गर्भाधानं तदग्निविच्छेदप्रायश्चित्तादिना गृह्यमुत्पाद्य तत्र होमः। सर्वत्र पुनःसंधाने स्थालीपाकानारम्भे स्थालीपाकादिद्रव्यदानं कृताकृतम्।

दो भार्या वाले की दो अग्नि के ससर्ग से पहिले दोनों के अग्नि का जब से दोनों का विच्छेद हुआ उस दिन से वर्ष गणना करके अलग अलग कृच्छ्र प्रायश्चित्त और अलग अलग होम द्रव्य का दान तथा स्थालीपाक द्रव्य का दान करके दोनों अग्नि का पुन संधान और दोनों अग्नि का उत्पादन तथा दोनों अग्नि का संसर्ग करके उसमें गर्भाधान होम करे। दोनों अग्नि के संसर्ग से पहिले एक अग्नि के रहने पर उतनेमात्र का प्रायश्चित्त और केवल उस होमद्रव्य का दानमात्र करे, स्थालीपाक का द्रव्य दान न करे। दूसरी स्त्री के पास में न रहने पर जिस स्त्री में गर्भाधान हुआ है उसका अग्नि-विच्छेद होने पर प्रायश्चित्त आदि से गृह्य अग्नि का उत्पादन कर इसमें होम करे। सब जगह पुनःसंधान में और स्थालीपाक न करने पर स्थालीपाक आदि का द्रव्य दान करना न करना समान है।

अथ गर्भाधानसंकल्पादि

एवं यथायथं गृह्यसिद्धिं कृत्वा 'ममास्यां भार्यायां संस्कारातिशयद्वाराऽस्यां जनिष्यमाणसर्वगर्भाणां बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गर्भाधानाख्यं कर्म करिष्ये' तदङ्गत्वेन स्वस्तिवाचनेत्यादि संकल्प्य पुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धादि कृत्वा यथागृह्यं गर्भाधानसंस्कारः कार्यः। अत्र गर्भाधानकर्मणो ब्रह्मदेवताकत्वात्पुण्याहवाचनान्ते कर्माङ्गदेवता ब्रह्मा प्रीयतामिति वदेत्। औपासनाङ्गे स्वस्तिवाचने अग्निसूर्यप्रजापतयः प्रीयन्तां, स्थालीपाकारम्भे अग्निः प्रीयतामिति। एवमन्यत्र ग्रन्थान्तरादूह्यम्।

इस प्रकार गृह्य अग्नि की सिद्धि करके गर्भाधान आदि का संकल्प करे। संकल्प का स्वरूप यह है—'मेरी इस पत्नी में संस्कारातिशय द्वारा इस पत्नी में आगे उत्पन्न होने वाले सब गर्भों का बीजगर्भ से उत्पन्न पाप को हटाने और भगवान् की प्रसन्नता के लिये गर्भाधान नामक कर्म करूँगा' इसके अंग होने से स्वस्तिवाचन आदि का संकल्प करके पुण्याहवाचन, मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध आदि करके अपने गृह्यसूत्र के अनुसार गर्भाधान संस्कार करे। इस गर्भाधान कर्म के देवता ब्रह्मा हैं अतः पुण्याहवाचन के अन्त में कर्म के अंग देवता ब्रह्मा प्रसन्न हों ऐसा कहे। औपासन के अंग स्वस्तिवाचन में अग्नि, सूर्य और प्रजापति प्रसन्न हों, स्थालीपाक के आरंभ में अग्निदेव प्रसन्न हों ऐसा कहे। इसी प्रकार अन्यत्र दूसरे ग्रन्थों से कल्पना करनी चाहिये।

अथ नान्दीश्राद्धविचारः

गौर्यादिमातृकापूजनं[1] नान्दीश्राद्धाङ्गम्। यत्र नान्दीश्राद्धं न क्रियते तत्र मातृकापूजनमपि न कार्यम्। तत्र पूर्वं [2]मातृपार्वणं ततः पितृपार्वणं ततः सपत्नीकमातामहपार्वणमिति पार्वणत्रयात्मकं नान्दीश्राद्धम्। मातृजीवने सापत्नमातृमरणेऽपि न मातृपार्वणम्। एवं मातामह्या जीवने मातामहीसपत्न्या मरणेऽपि न मातामहादेः सपत्नीकत्वम्। एवं दर्शादावपि मातृजीवने सापत्नमातृमरणेऽपि न सपत्नीकत्वं पित्रादेः। अत्र स्वधाशब्दस्थाने स्वाहाशब्द. । सव्येनैव सर्वाः क्रियाः। प्रतिपार्वणं दैवे च युग्मा ब्राह्मणाः।

गौरी आदि मातृकापूजन नान्दीश्राद्ध का अंग है। जहाँ नान्दीश्राद्ध नहीं किया जाता, वहाँ मातृकापूजन भी नहीं करना चाहिये। उसमें पहिले मातृपार्वण होता है उसके बाद पितृपार्वण, अनन्तर पत्नीसहित नाना का पार्वण, इस प्रकार तीन पार्वण वाला नान्दीश्राद्ध होता है। माता के जीते सौतेली मां के मरने में भी मातृपार्वण नहीं होता। इसी तरह से नानी के जीते नानी के सौत के मरने में भी मातामहादिका सपत्नीकत्व नहीं होता। इस प्रकार दर्श आदि में भी माता के जीते सौतेली मां के मरने से भी पिता का सपत्नीकत्व नहीं होता। नान्दीश्राद्ध में स्वधाशब्द

---

१. शातातपः—'अनिष्ट्वा पितृयज्ञेन वैदिकं किंचिदाचरेत्। तत्रापि मातरः पूर्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः॥ अकृत्वा मातृयागं तु य. श्राद्धं परिवेषयेत्। तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः॥ कूर्मपुराणे—'पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि। पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः॥' अपि च—'यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः' इति।

'कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः। पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः॥' इति कात्यायनेन साक्षात्कर्माङ्गत्वेन अवगताया एव मातृपूजाया 'दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽन्येन यजेत' इति वत् श्राद्धपूर्वकालतामात्रबोधनेन अङ्गाङ्गित्वे मानाभावं वदन्ति। अत एव श्राद्धरहितेष्वपि वर्धापनादिकर्मसु मातॄणां पूजनं दृश्यते इति केचित्। पूर्वोक्त शातातपादि के वचनों से गौर्यादिमातृपूजन आभ्युदिकश्राद्ध का पूर्वाङ्ग-कृत्य है।

भविष्यपुराण में गौर्यादिमातृकाओं का निरूपण—'गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया। देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥ धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह। गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश॥' नान्दीश्राद्ध पार्वणत्रयात्मक है—मात्रादित्रय, पित्रादित्रय और सपत्नीक-मातामहादित्रय। इसका कृत्य मातृपूर्वक है।

२. शाट्यायनः—'मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितॄणां तदनन्तरम्। ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥' नान्दीश्राद्ध में पितर देवरूप हैं, जैसा स्मृति में लिखा है—'पितॄणां रूपमास्थाय देवा अन्नमदन्ति ते। तस्मात् सव्येन दातव्यं वृद्धिपूर्वेषु दातृभिः॥'

प्रचेताः—'अपसव्यं न कुर्वीत न कुर्यादप्रदक्षिणम्। प्राङ्मुखो दैवतीर्थेन क्षिप्रं देवविसर्जनम्॥ दक्षिणं पातयेज्जानु देवान् परिचरेत् सदा। निपातो न हि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित्॥ यथैवोपचरेद्देवाँस्तथा वृद्धौ पितॄनपि। शातातपः—'सव्येन चोपवीतेन ऋजुदर्भैश्च धीमता। पितॄणां रूपमास्थाय देवा अन्नं समश्नुते॥ तस्मात्सव्येन दातव्यं वृद्धिश्राद्धेषु नित्यशः। यथैवोपचरेद्देवांस्तथा वृद्धौ पितॄनपि॥' पृथ्वीचन्द्रोदये—'अनस्मद्वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम्। अनाम्नामतिलाद्यैश्च नान्दीश्राद्धं च सव्यवत्॥' पुराणसमुच्चये—'न स्वधाशर्मवर्मेति पितृनाम न चोच्चरेत्। न कर्म पितृतीर्थेन न कुशा द्विगुणीकृताः॥ न तिलैर्नापसव्येन पित्र्यमन्त्रविवर्जितम्। अस्मच्छब्दं न कुर्वीत श्राद्धे नान्दीमुखे क्वचित्॥' इति।

की जगह स्वाहाशब्द कहना चाहिये। सब क्रिया शब्द से ही होती है। प्रत्येक पार्वण के दैव में दो ब्राह्मण होते हैं।

[1]कुशस्थाने दूर्वाः, विवाहादिमङ्गलकर्माङ्गे वृद्धिश्राद्धे। यज्ञादिकर्माङ्गे तु अमूला दर्भा ग्राह्याः। दूर्वा दर्भाश्च युग्मा एव। [2]उदङ्मुखः कर्ता प्राङ्मुखा विप्राः। प्राङ्मुखो वा कर्ता उदङ्मुखा विप्राः। पूर्वाह्णकालः, प्रदक्षिणं कर्म। आधानाङ्गं त्वपराह्णे कार्यम्। पुत्रजन्मनिमित्तकं रात्रावपि।

कुश के स्थान में दूर्वा ग्राह्य है, विवाह आदि मांगलिककर्माङ्ग वृद्धिश्राद्ध में। यज्ञादिकर्मांग में तो बिना जड़ के कुश ग्राह्य है दूब या कुश जोड़े ही होने चाहिये। श्राद्धकर्ता उत्तर मुँह बैठे और ब्राह्मण पूरब मुह बैठे। अथवा श्राद्धकर्त्ता पूरब मुंह बैठे और ब्राह्मण उत्तर मुह बैठे। समय पूर्वाह्ण का है, प्रदक्षिणक्रम से कर्म होते हैं। आधान का अंग नान्दीश्राद्ध हो तो अपराह्ण में करना चाहिये। पुत्रजन्मनिमित्तक श्राद्ध रात में भी होता है।

एवं च विश्वदेवार्थविप्रसहिता अष्टौ विप्राः, अत्यशक्तौ चत्वारो वा। वृद्धि श्राद्धे विश्वेदेवाः सत्यवसुसंज्ञकाः। सोमयागगर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनाधानादि-कर्माङ्गभूतवृद्धिश्राद्धे क्रतुदक्षसंज्ञकाः।

इस प्रकार विश्वेदेवा के ब्राह्मणसहित आठ ब्राह्मण होते है। अत्यन्त असमर्थ होने पर चार ब्राह्मण होना आवश्यक है। वृद्धिश्राद्ध में सत्यवसु नामक विश्वेदेवा होते हैं। सोमयाग, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, आधान आदि कर्मांगभूत वृद्धिश्राद्ध में क्रतुदक्ष नामक विश्वेदेवा होते हैं।

अथ नान्दीश्राद्धावश्यकत्वानावश्यकत्वनिर्णयः

[3]गर्भाधानादिसंस्कारेषु वापीदेवप्रतिष्ठादिपूर्तकर्मसु अपूर्वाधानादिषु संन्यासस्वीकारे काम्यवृषोत्सर्गे गृहप्रवेशे तीर्थयात्रायां श्रवणाकर्मसर्पबल्याश्वयुज्याग्रयणादिपाकसंस्थानां प्रथमारम्भे नान्दीश्राद्धमावश्यकम्। पुनराधाने सोमयागादिभिन्ने असकृत्क्रियमाणे कर्मणि अष्टकादिश्राद्धकर्मसु च नान्दीश्राद्धं न कार्यम्।

---

१. ब्रह्माण्डपुराणे—'स्वाहाशब्दं प्रयुञ्जीत स्वधास्थाने तु बुद्धिमान्। कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये ॥' इति। तेन सस्कारक-कर्माङ्गनान्दीश्राद्धे दर्भस्थाने दूर्वा वा कार्या इति।

२. मार्कण्डेयपुराणे –'उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः। वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत नान्यवक्त्रः कदाचन ॥' आश्वलायनगृह्यपरिशिष्ट में उदङ्मुख और प्राङ्मुख की व्यवस्था—'अभ्युदये युग्मा ब्राह्मणाः, अमूला दर्भाः, प्राङ्मुखेभ्य उदङ्मुखो दद्यात्, उदङ्मुखेभ्यः प्राङ्मुखो द्वौ दर्भौ पवित्र' इति।

३. शौनकसंहिता में आभ्युदयिक के निमित्त—'कार्यमभ्युदयं श्राद्धं श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः ॥ पुत्रोत्पत्तौ वृषोत्सर्गे आश्रमस्वीकृतौ तथा। गर्भाधानादिसंस्कारे जातकर्मादिकेषु च ॥ वापीकूपतडागादेरुत्सर्गे शान्तिपौष्टिके। राज्याभिषेके उत्सवादौ महादाने वास्तुकर्मणि ॥ उपाकर्मोत्सर्जनयोः श्रवणागृह्यकर्मसु। वेदव्रतेषु सर्वेषु नवान्नस्य च भोजने ॥ ऊढायाः प्रथमर्तौ च अन्नप्राशनके तथा। उद्यापनेऽग्न्याधानंप्रभृतिश्रौतकर्मसु ॥' निर्णयसिन्धौ—'एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः। त्रिषट् चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते ॥' वृद्धमनुः—'अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः। पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम् ॥' इति।

गर्भाधान आदि संस्कारों, बावली देवप्रतिष्ठा आदिपूर्त्त कर्म, अपूर्व आधान आदि, संन्यासाश्रम स्वीकार करने, काम्यवृषोत्सर्ग, गृहप्रवेश, तीर्थयात्रा, श्रवणा-कर्म, सर्पबलि, आश्वयुजी और आग्रयण आदि पाकसंस्थाओं के प्रथम आरंभ में, नान्दीश्राद्ध आवश्यक है। दुबारा आधान, सोम आदि से भिन्न बार बार किये जाने वाले कर्म और अष्टका आदि श्राद्ध में नान्दीश्राद्ध नहीं करे।

गर्भाधानपुंसवनसीमन्तचौलमौञ्जीविवाहातिरिक्तसंस्कारेषु श्रवणाकर्मादिषु च नान्दीश्राद्धं वैकल्पिकम्। जातकर्माङ्गं पुत्रजन्मनिमित्तकं च नान्दीश्राद्धं पृथगेव। जन्मकाले एव जातकर्मणि क्रियमाणे 'पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्माङ्गं च वृद्धिश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य सकृदेव कार्यम्। नामकर्मणा सह जातकर्म चिकीर्षायां पुत्रजन्मनिमित्तकं जन्मकाले एव हेम्ना कृत्वा कर्माङ्गं नामकर्मकाले कार्यम्।

गर्भाधान, पुंसवव, सीमन्त, चौल, उपनयन और विवाह से अतिरिक्त संस्कारों तथा श्रवणाकर्म आदि में नान्दीश्राद्ध वैकल्पिक है। पुत्र-जन्म के निमित्त जातकर्म का अंग नान्दीश्राद्ध तो अलग ही है। जन्मकाल में ही जातकर्म करने में 'पुत्रजन्म-निमित्तक-जातकर्म का अंग वृद्धिश्राद्ध तन्त्र से करूंगा' ऐसा संकल्प करके एक ही बार करना चाहिये। नामकर्म के साथ जातकर्म करने की इच्छा होने पर पुत्र जन्म के निमित्त नान्दीश्राद्ध, जन्मकाल में ही सुवर्ण से करके कर्मांग नामकर्म, समय से करे।

तदा तदकरणे नामकर्म काले एव—'पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्मनामकर्माङ्गं च नान्दीश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्यैकमेव कार्यम्। एवं चौलादिकर्मणा सह जातकर्मादिषु क्रियमाणेषु 'पुत्रजन्मनिमित्तकं चौलान्तसंस्कारांगं च नान्दीश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्पः। तथा च सहैव क्रियमाणेषु चौलादिष्वन्येषु च कर्मसु नान्दीश्राद्धस्य सकृदेवानुष्ठानं न तु प्रतिकर्म पृथगनुष्ठानम्। एवं यमलयोर्युगपदेकसंस्कारकरणेपि ज्ञेयम्।

उस समय उसके न करने पर नामकर्म के समय में ही 'पुत्रजन्म-निमित्तक जातकर्म और नामकर्म का अंग नान्दीश्राद्ध तन्त्र से करूंगा' ऐसा संकल्प करके एक ही नान्दीश्राद्ध करे। एवं चौल आदि कर्म के साथ जातकर्म आदि करने पर 'पुत्रजन्म-निमित्तक-चौलान्त-संस्कारों का अंग नान्दीश्राद्ध तन्त्र से करूंगा' ऐसा संकल्प करे। उसी तरह साथ ही किये जाने वाले चौल आदि संस्कारों में और अन्य कर्मों में भी नान्दीश्राद्ध का करना एकबार ही होता है। प्रत्येक कर्म में अलग-अलग नान्दीश्राद्ध नहीं होता। इसी तरह जोडुंवा संतान का एक काल में ही एक संस्कार करने में भी जानना चाहिये।

अथ नान्दीमुखपदविचारः

ऋक्शाखिभिः कात्यायनैश्च पितृपितामहप्रपितामहा इति पितृपूर्वक उच्चारः कार्यः। अन्यशाखिभिस्तु प्रपितामहपितामहपितरो नान्दीमुखा इति प्रपितामहपूर्वक उच्चारः। मातृपार्वणे नान्दीमुखशब्दे ङीष्विकल्पान्नान्दीमुख्य इति नान्दीमुखा इति पक्षद्वयमुच्चारे। अनादिसंज्ञात्वेन 'नखमुखात्संज्ञायाम्' इति निषेधानवतारादिति पुरुषार्थचिन्तामणिकारः।

ऋक्‌शाखा वाले और कात्यायनशाखा वाले भी 'पितृ-पितामह-प्रपितामहाः' इस प्रकार पितृ पूर्वक उच्चारण करें। अन्य शाखा वाले तो 'प्रपितामह-पितामह-पितरो नान्दीमुखाः' इस प्रकार प्रपितामह पूर्वक उच्चारण करें। मातृपार्वण में नान्दीमुख शब्द में ङीष्‌के विकल्प होने से नान्दी-मुख्यः या नान्दीमुखाः यह उच्चारण में दो पक्ष हैं। अनादि संज्ञा होने से 'नखमुखात्सञ्ज्ञायाम्' इस निषेध के न होने से, ऐसा पुरुषार्थचिन्तामणिकार कहते है।

अथ वृद्धिश्राद्धकर्तुर्जीवत्पितृकत्वे निर्णयः

'जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्' इति न्यायेन जीवत्पितृकः स्वापत्यसंस्कारेषु मातृमातामहपार्वणयुतं नान्दीश्राद्धं कुर्यात्। मातरि जीवत्यां मातामहपार्वणकमेव। मातामहे जीवति मातृपार्वणकमेव। केवलमातृपार्वणे विश्वेदेवा न कार्याः। वर्गत्रयाद्येषु मातृपितृमातामहेषु जीवत्सु नान्दीश्राद्धलोप एव सुतसंस्कारेषूचितः।

'जो वर्ग (पिता आदि) जीता हो उस वर्ग को त्याग दे' इस न्याय से जिसके पिता जीते हो वह अपनी सन्तानो के संस्कारो में माता और नाना के पार्वण के साथ नान्दीश्राद्ध करे। माता के जीते रहने पर नाना का पार्वण ही करे। नाना के जीते रहने पर मातृपार्वणक ही नान्दीश्राद्ध करे। केवल मातृपार्वण में विश्वेदेवा नही करना चाहिये। तीनो वर्गो में माता पिता और नाना के जीते रहने पर नान्दीश्राद्ध का लोप ही पुत्रसंस्कारों में उचित है।

द्वितीयविवाहाधानपुत्रेष्टिसोमयागादिषु स्वसंस्कारकर्मसु येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्। तथा च मृतमातृमातामहकोपि जीवत्पितृकः स्वसंस्कारे पितुर्मातृपितामहीप्रपितामह्यः, पितृपितामहप्रपितामहाः, पितुर्मातामहमातृपिता-महमातृप्रपितामहाः इत्येव पार्वणत्रयमुद्दिश्य श्राद्धं कुर्यात्, न तु स्वमातृमाता-महपार्वणोद्देशः।

दूसरे विवाह का आधान और पुत्रेष्टि तथा सोमयागादि अपने सस्कारकर्म में जिनको पिता देते हो उन्हें ही दे। इसलिये जिसके पिता जीवित हो माता और नाना मर गये हों, अपने संस्कार में पिता की माता, दादी, परदादी और पिता के पिता, पितामह, प्रपितामह, फिर पिता के नाना और माताके पितामह, प्रपितामह, इतने ही का तीन पार्वण के उद्देश से श्राद्ध करे, अपनी माता और नाना के पार्वण के उद्देश से न करे।

अथ पितरि पितामहे जीवति निर्णयः

पितरि पितामहे च जीवति स्वसंस्कारे पितामहस्य मातृपितामहीप्रपिता-मह्य इत्याद्युद्देशः। एवं प्रपितामहेऽपि योज्यम्। पितुर्मात्रादिजीवने तत्पार्वणलोप एव। तथा च येभ्य एव पिता दद्यादिति पक्षस्य वर्गाद्यजीवने तत्पार्वणलोप इति द्वारलोपपक्षस्य च स्वसंस्कारस्वापत्यसंस्कारभेदेन व्यवस्था सिद्धान्तितेति ज्ञेयम्। केचित्तु पक्षद्वयस्यैच्छिको विकल्पो न तु व्यवस्थित इत्याहुः। एवं मृतपितृकस्य जीवन्मातृमातामहस्य पितृपार्वणेनैव नान्दीश्राद्धसिद्धिर्ज्ञेया।

पिता और पितामह के जीते रहने पर अपने संस्कार में पितामह की माता, पितामही और प्रपितामही के उद्देश्य से पार्वण करे। इसी तरह से प्रपितामह में भी योजना कर लें। पिता के माता

आदि के जीते रहने पर उनके पार्वण का लोप ही होगा। इस प्रकार जीवितपितृक पिता जिनको देते हों उन्हीं को दे। इस पक्ष का वर्ग के आदि पुरुष के जीते रहने पर उसके पार्वण का लोप होगा इस द्वारलोप पक्ष का भी अपना संस्कार और अपनी सन्तान के संस्कार भेद से व्यवस्था का सिद्धान्त किया गया है, ऐसा जानना चाहिये। कुछ लोग तो दोनों पक्ष का ऐच्छिक विकल्प मानते हैं, व्यवस्थित विकल्प नहीं मानते, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार जिसके पिता मर गये हैं तथा माता और नाना जीवित हों, उनके पिता के पार्वण से ही नान्दीश्राद्ध की सिद्धि जाननी चाहिये।

अथ समावर्तने नान्दीश्राद्धकर्तुर्देवतायाश्च निर्णयः

समावर्तनस्य माणवककर्तृत्वेऽपि तदङ्गभूतनान्दीश्राद्धे पितुस्तदभावे ज्येष्ठभ्रात्रादेरधिकार इति केचित्। तत्र पिता पुत्रसमावर्तने स्वपितृभ्यो नान्दीश्राद्धं कुर्यात्। पिता जीवत्पितृकश्चेत्सुतसंस्कारत्वाद् द्वारलोपपक्षो युक्त इति भाति। माणवकपितुः प्रवासादिना असन्निधाने भ्रात्रादिर्माणवकस्य पितुर्मातृपितामही-प्रपितामह्य इत्याद्युच्चार्य श्राद्धं कुर्यात्। मृतपितृकमाणवकसमावर्तने पितृव्य-भ्रात्रादिरस्य माणवकस्य मातृपितामहीत्याद्युच्चारयेत्। भ्रात्रादेरभावे स्वयमेव स्वपितृभ्यो दद्यात्।

यदि बालक समावर्तन स्वयं करता है तो उसके अंगभूत नान्दीश्राद्ध में बालक के पिता के न रहने पर जेठे आदि भाई का नान्दीश्राद्ध में अधिकार है, ऐसा कोई कहते हैं। उसमें पिता—पुत्र के समावर्तन में अपने पितरों का नान्दीश्राद्ध करे। यदि पिता जीवितपितृक हो तो अपने पुत्र के संस्कार होने से द्वारलोपपक्ष युक्त है, ऐसा ठीक मालूम पड़ता है। बालक के पिता के परदेश में रहने से सन्निधि में न रहें तो भाई आदि बालक के पिता की माता-पितामही-प्रपितामही इत्यादि उच्चारण कर श्राद्ध करे। जिस बालक का पिता मर गया हैं उसके समावर्तन में उसके चाचा या भाई आदि इस बालक की माता-पितामही-इत्यादि का नान्दीश्राद्ध में उच्चारण करे। भाई आदि के न होने पर स्वयं अपने पितरों का नान्दीश्राद्ध करे।

एवं जीवत्पितृकोऽपि पितुरसन्निधाने भ्रात्रादेरभावे पितुः पितृभ्यः स्वयमेव नान्दीमुखं कुर्यात्। उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात्। एवं विवाहेऽपि द्रष्टव्यम्। मृतपितृकस्य चौलोपनयनादिकं पितृव्यमातुलादिः कुर्वन् अस्य संस्कार्यस्य पितृपितामहेत्याद्युच्चार्य श्राद्धं कुर्यात्। जीवतः पितुरसन्निधानेन कुर्वन्मातुलादिरस्य संस्कार्यस्य पितुर्जनकादीनुद्दिश्य कुर्यान्न तु संस्कार्यस्य मृतानपि मात्रादीनिति संक्षेपः।

इसी प्रकार जिसके पिता जीते हों वह भी पिता और भाई आदि के न रहने पर पिता के पितरों का स्वयं नान्दीमुख करे, क्योंकि उपनयन होने से कर्म करने का बालक को अधिकार प्राप्त है। ऐसे विवाह में भी देखना चाहिये। जिस बालक के पिता मर गये हैं, उसका चौल उपनयन आदि उसके चाचा या मामा आदि करें तो जिसका संस्कार करना है उसके पिता पितामह आदि का उच्चारण करके श्राद्ध करे। जिसके पिता जीते हों, दूर परदेश में हों, उसका संस्कार मामा आदि करें तो उस बालक के पिता के पिता आदि के उद्देश से श्राद्ध करें, न कि उस बालक की मरी हुई माता आदि के उद्देश से, यह संक्षेप से कहा है।

अथ वृद्धिश्राद्धे पिण्डादिनिर्णयः

नान्दीश्राद्धे पिण्डदानं कुलधर्मानुसारेण वैकल्पिकम्[1]। पिण्डेषु दधिमधुबदरद्राक्षामलकमिश्रणम्। दक्षिणायां द्राक्षामलकानि। प्रथमान्तेन संकल्पः। सर्वत्रोच्चारे संबन्धनामगोत्रं वर्जयेत्। [2]मालतीमल्लिकाकेतकीकमलानां माला देया, न तु रक्तपुष्पाणाम्। कुंकुमचन्दनाद्यलंकृताः सर्वे। नान्दीश्राद्धारम्भे पाकान्तरेण वैश्वदेवः साग्निकानग्निकैः सर्वशाखिभिः कार्यः।

नान्दीश्राद्ध में पिण्डदान करना अपने कुल धर्म के अनुसार वैकल्पिक है। पिण्डों में दही, मधु, बेर, दाख और आँवले का मिश्रण होता है। दक्षिणा में दाख और आँवला होता है। प्रथमान्त पद से संकल्प किया जाता है। सब जगह संकल्पादि के उच्चारण में सम्बन्ध, नाम और गोत्र का त्याग करे। मालती, मल्लिका, केवड़ा और कमल की माला दे, न कि लाल फूलों की। कुंकुम चन्दन आदि से सबका अलंकार करे। नान्दीश्राद्ध के आरम्भ में साग्निक निरग्निक सब शाखा वालों को दूसरे पाक से विश्वेदेव करना चाहिये।

द्वयोर्द्वयोर्विप्रयोर्युगपन्निमन्त्रणम्। भवद्भ्यां क्षणः क्रियतामों तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवावेत्युक्तिः। शंनो देवीरित्यनुमन्त्र्य यवानेव क्षिपेत्। 'यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितॄनिमांल्लोकान्प्रीणयाहि नः स्वाहा नम इति' पित्र्ये मन्त्रः। द्विर्द्विर्गन्धादिदानम्। पाणिहोमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति।

दो दो ब्राह्मणो को एक काल में निमंत्रण दे। ब्राह्मण से कहे कि आप दोनों नान्दीश्राद्ध में उत्सव करें। वे लोग स्वीकार करें। तथा आप लोग प्राप्त हों। ब्राह्मण कहें हम लोग प्राप्त रहेंगे। 'शन्नो देवी' इस मन्त्र से अनुमन्त्रण करके और जौ को ही छोड़े। 'यवोऽसि सोमदेवत्यो' यह मूलोक्त पितृकर्म का मन्त्र है। दो दो बार गंध आदि दे। पाणिहोम 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से करे।

अत्र श्राद्धे नापसव्यं न तिलाः न च पितृतीर्थेन दानम्। पावमानी शंवतीः शकुनिसूक्तं स्वस्तिसूक्तं च श्रावयेत् मधुवाता इति त्र्यृचस्थाने उपास्मै गायेति

---

१. भविष्यपुराणे—'पिण्डनिर्वपणं कुर्यान्न वा कुर्यान्नराधिप। वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु॥ 'पिण्डनिर्वपण पक्ष में पारस्करगृह्य के—'दधिबदराक्षतमिश्राः पिण्डाः' इस सूत्र के अनुसार दही, बैर और अक्षत मिले पिण्ड का विधान है। श्राद्धकाशिकाभाष्य में यहाँ अक्षत में यव लिया है। इसके प्रमाण में कात्यायन का वचन है—'सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यञ्जनैरुपसिच्य च। संयोज्य यवकर्कन्धुदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः॥'

अङ्गिराने पिण्ड में शाल्यन्न एवं मधुमिश्रण की विशेषता बतलायी है—'शाल्यन्नं मधुसंयुक्तं बदराणि यवास्तथा। मिश्राणि कृत्वा चत्वारि पिण्डाञ्छ्रीफलसम्मितान्॥ दद्यात्' इति। नान्दीश्राद्ध में विश्वेदेव का नाम सत्य और वसु है। शंखः—'इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौ सत्यौ नान्दीमुखे वसू। नैमित्तिके कामकालौ कामे च धुरिलोचनौ॥ पुरूरवार्द्रवौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ।' इति। विशेष वचन अन्य निबन्धों में देखें।

२. वृद्धपाराशरः—'मालत्या शतपत्र्या वा मल्लिकाकुब्जयोरपि। केतक्या पाटलाया वा देया मालानुलोहिताः॥' तथा—'सुवेशभूषणैस्तत्र सालङ्कारैस्तथा नरैः। कुङ्कुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं तु ब्राह्मणैः सह॥ स्त्रियोऽपि स्युस्तथाभूता गीतनृत्यादिहर्षिताः॥' इति।

पञ्चर्चः, अक्षं नमीमदंतेति च। तृप्तिप्रश्नस्थाने संपन्नमिति। दैवे रुचितमिति प्रश्नः।

इस श्राद्ध में अपसव्य, तिल का प्रयोग और पितृतीर्थ से पिण्डदान भी नहीं करे। पावमानी शंवतीः, शकुनिसूक्त और स्वस्तिसूक्त भी सुनावे। 'मधुव्वाता' इन तीन ऋचाओ के स्थान में 'उपास्मै गायता' यह पाच ऋचाए कहे और 'अक्षन्नमीमदन्त' यह भी पढ़े। तृप्ति प्रश्न की जगह 'सम्पन्नम्' ऐसा कहे। दैवकर्म में 'रुचितम्' ऐसा प्रश्न कहे।

पूर्वाग्रेषु कुशेषु दूर्वासु वा एकस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ। अक्षय्यस्थाने नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्। स्वधावाचनस्थाने नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये इत्यादि न स्वधां प्रयुञ्जीत। त्यमूषु वाजिनमिति विप्रविसर्जनम्। केचिन्नान्दीश्राद्धान्ते वैश्वदेवो बह्वृचानामित्याहुः।

पूर्वाग्र कुशों में या दूर्वाओं में एक के लिये दो दो पिण्ड, अक्षय्यस्थान में 'नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्' ऐसा कहे। स्वधावाचन की जगह 'नान्दीमुखान् पितन् वाचयिष्ये' इत्यादि स्वधा का प्रयोग न करे। 'त्यमूषु वाजिन' इससे ब्राह्मण का विसर्जन करे। कुछ लोग बह्वृचों के लिये नान्दीश्राद्ध के अन्त में वैश्वदेव की बात कहते हैं।

नात्र श्राद्धाङ्गतर्पणम्। अत्राहिताग्निना पिण्डदानं कार्यम्। पितुर्मात्रादिवर्गत्रयोद्देशेन श्राद्धे पितुः 'माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही' इत्यादिश्लोकपाठः। द्वारलोपपक्षे यत्पार्वणलोपस्तत्पार्वणविषयकश्लोकैकदेशलोपः। केवलमातृपार्वणे देवा न कार्याः, 'एता भवन्तु सुप्रीता' इत्यूहः कार्यः। सांकल्पविधिना संक्षिप्तनान्दीश्राद्धप्रयोगः प्रयोगरत्नादौ द्रष्टव्यः। इति नान्दीश्राद्धविचार.।

इसमें श्राद्धांग तर्पण नही होता। इसमें आहिताग्निक को पिण्डदान करना चाहिये। पिता के माता आदि तीन वर्ग के उद्देश्य से श्राद्ध में पिता का 'माता, पितामही और प्रपितामही' इत्यादि आशय के श्लोक का पाठ। द्वारलोपपक्ष में जिस पार्वण का लोप हो उस पार्वणविषयक श्लोक के एक देश का लोप होता है। केवल माता के पार्वण में देवता नहीं कहे, 'एता भवन्तु सुप्रीता' इसकी कल्पना करे। संकल्पविधि से संक्षिप्त नान्दीश्राद्ध का प्रयोग प्रयोगरत्न आदि में देखना चाहिये। नान्दीश्राद्ध विचार समाप्त।

अथ संकटे गर्भाधानप्रयोगः

एवं स्वस्तिवाचनं ऋतुदक्षसंज्ञकविश्वेदेवयुतं च नान्दीश्राद्धं गर्भाधानाङ्गं कृत्वा यथाशाखं गर्भाधानसंस्कारः कार्यः। आश्वलायनैः गृह्याग्नौ प्राजापत्यं चरुं हुत्वा विष्णुं षड्वारं सकृत्प्रजापतिं चान्येन हुत्वा जपोपस्थाने न स्तः करणादिकं च कार्यम्।

विष्णुर्योनिं जपेत्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभिर्व्रती।
गर्भाधानं ततः कुर्यात् सुपुत्रो जायते ध्रुवम्॥

इस प्रकार स्वस्तिवाचन और क्रतु-दक्ष-संज्ञक विश्वेदेव के साथ नान्दीश्राद्ध गर्भाधान का अंग है, उसे करके शाखानुसार गर्भाधान संस्कार करे। आश्वलायनशाखा वाले गृह्य अग्नि में प्राजापत्य चरु का होम करके और विष्णु को छ वार, प्रजापति को एक बार घृत की आहुति देकर जप उपस्थान नहीं होते करणादिक तो करना चाहिये। गर्भाधान करने वाला विष्णुयोनि सूक्त का जप करे। योनि का तीन बार स्पर्श करके तब गर्भाधान करे। इससे निश्चय सुपुत्र उत्पन्न होता है।

एवं नेजमेषेत्यादिजपोऽपि। सर्वथा होमासंभवे अश्वगन्धारसम् उदीर्ष्वात इति मन्त्रेण दक्षिणनासायामासिच्योपगमनं कार्यम्। एवं गर्भाधानसंस्कारमकृत्वा स्त्रीगमने गर्भोत्पत्तौ तत्प्रायश्चित्तं गोदानं कृत्वा पुंसवनं कार्यम्।

इसी प्रकार 'नेजमेष' इत्यादि का जप भी करे। सर्वथा होम के असंभव होने पर 'उदीर्ष्वात' इस मन्त्र से दाहिनी नाक में असगन्ध के रस को डालकर तब गमन करे। इस प्रकार गर्भाधान संस्कार न करके स्त्री-गमन करे और गर्भ जब रह जाय तो उसका प्रायश्चित्त गोदान करके पुंसवन संस्कार करे।

अथ मैथुनान्ते विचारः

ऋतौ तु गर्भशङ्कित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम्।
अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत्॥

इत्युक्तरीत्या शौचं कृत्वाऽऽचामेत्। आचमनं विना मूत्रपुरीषोत्सर्गे तु—

तैलाभ्यक्तस्त्वनाचान्तः श्मश्रुकर्मणि मैथुने।
मूत्रोच्चारं यदा कुर्यादहोरात्रेण शुध्यति॥

इत्येकाहोपवासः। स्त्रीणां तु न स्नानम्, 'शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान्' इत्युक्तेः। इति गर्भाधानाद्युपयोगिनिर्णयः।

मैथुन के अन्त में ऋतु में तो गर्भ की शंका से मैथुन करने वाले को स्नान करना चाहिये। ऋतुभिन्न काल में यदि गमन करे तो मूत्र पुरीष की तरह शुद्धि करे। इसके बाद आचमन करे। आचमन के बिना मूत्रपुरीषोत्सर्ग में तो बिना आचमन के तैलाभ्यंग हजामत बनाने और मैथुन में यदि पेशाब पाखाना करता है तो एक दिन में शुद्ध होता है। इस प्रकार एक दिन का उपवास करना पड़ता है। मैथुन के बाद स्त्रियों को स्नान आवश्यक नहीं है, क्योंकि वचन है कि 'शयन से उठने पर नारी शुद्ध रहती है और पुरुष अशुद्ध'। गर्भाधान आदि के उपयोगी निर्णय समाप्त।

अथ नारायणबलिः

एवं कृते गर्भाधाने यदि गर्भोत्पत्त्यभावो मृतापत्यता वा तदा प्रतिबन्धकप्रेतोपद्रवनिवृत्त्यर्थं नारायणबलिर्नागबलिश्च कार्यः। तत्र नारायणबलिः शुक्लैकादश्यां पञ्चम्यां श्रवणे वा, कालान्तरानुपलब्धेः। तत्प्रयोगः परिशिष्टस्मृत्यर्थसारानुसारी कौस्तुभे। शुक्लैकादश्यां नदीतीरे देवालयादौ तिथ्यादिकीर्तनान्ते 'मदीयकुलाभिवृद्धिप्रतिबन्धकप्रेतस्य प्रेतत्वनिवृत्त्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये'। विधिना स्थापितकुम्भद्वये हेमादिप्रतिमयोर्विष्णुं वैवस्वतयमं चावाह्य पुरुषसूक्तेन यमाय सोममिति च षोडशोपचारैः संपूजयेत्।

इस प्रकार गर्भाधान करने पर गर्भ नहा रहे या मरे बच्चे होते हों, तब गर्भ के न रहने देने वाले प्रेत के उपद्रव की निवृत्ति के लिये नारायणबलि और नागबलि करना चाहिये। उसमें दूसरे काल के न मिलने पर नारायणबलि शुक्ल एकादशी, पंचमी या श्रवण में करे। इसका प्रयोग परिशिष्ट स्मृत्यर्थसार के अनुसरण करने वाले कौस्तुभ में है। शुक्ल एकादशी में नदी के तट पर देवमन्दिर आदि में तिथि आदि कहकर 'मेरे कुल के वृद्धि-प्रतिबन्धक-प्रेतत्व की निवृत्ति के लिये नारायणबलि

करूँगा'। विधि से स्थापित दो कुम्भ में सोने आदि की प्रतिमा में विष्णु और वैवस्वत यम का आवाहन करके विष्णुसूक्त और 'यमाय सोमं' इस मन्त्र से षोडशोपचार पूजा करे।

अत्र केचित्कुम्भपञ्चके ब्रह्मविष्णुशिवयमप्रेतान् पूजयन्ति। तत्पूर्वभागे रेखायां दक्षिणाग्रकुशेषु शुन्धतां विष्णुरूपी प्रेत इति दशस्थानेषु दक्षिणसंस्थमपो निनीय मधुघृततिलयुतान् दशपिण्डान् काश्यपगोत्र देवदत्तप्रेत विष्णुदैवत अयं ते पिण्ड इति दक्षिणमुखः प्राचीनावीती वामं जान्वाच्य पितृतीर्थेन दद्यात्। गन्धादिभिरभ्यर्च्य प्रवाहणान्तं कृत्वा विसृजेत्। तस्यामेव रात्रौ श्वः करिष्यमाण-श्राद्धे क्षणः क्रियतामिति एकं त्रीन् पञ्च वा विप्रान्निमन्त्र्योपोषित जागरं कुर्यात्।

कोई इसमें पांच कुम्भ में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और प्रेत की पूजा करते हैं। उसके पूर्व भाग में रेखा करके उसमें दक्षिणाग्रकुश रखकर 'शुन्धन्तां विष्णुरूपी प्रेत' इससे दस स्थानो में दक्षिण में रखे हुए जल को लेकर मधु-तिल-युक्त दस पिण्डों को काश्यपगोत्र देवदत्तप्रेत विष्णुदैवत यह तुम्हारा पिण्ड है ऐसा कहकर दक्षिण मुख होते हुए प्राचीनावीती बाँएँ घुटने को नीचे टेककर पितृ-तीर्थ से पिण्ड दे। गन्ध आदि से पूजा कर नदी में बहाने तक कृत्य करके विसर्जन करे। उसी रात में एक, तीन या पांच ब्राह्मणों को उपवास करके कल होने वाले श्राद्ध में उत्सव करें, ऐसा कहकर रात में जागरण करे।

श्वोभूते मध्याह्ने विष्णुं संपूज्य विष्णुरूपं प्रेतं विष्णुब्रह्मशिवयमप्रेतान् वो-द्दिश्यैकोद्दिष्टविधिना पादक्षालनादितृप्तिप्रश्नान्तं कृत्वा रेखाकरणाद्यवनेजनान्तं तूष्णीं कृत्वा विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय सपरिवारयमायेति चतुरः पिण्डान्नाममन्त्रै-र्दत्त्वा विष्णुरूपं प्रेतं ध्यायन् काश्यपगोत्र देवदत्त विष्णुरूपप्रेत अयं ते पिण्ड इति पञ्चमं पिण्डं दत्त्वा अर्चनादिप्रवाहणान्ते आचान्तान् दक्षिणादिभिः संतोष्य तेष्वेकस्मै गुणवते प्रेतबुद्ध्या वस्त्राभरणादि दत्त्वा विप्रान् वदेत्—भवन्तः प्रेताय तिलोदकाञ्जलिदानं कुर्वन्त्विति। ते च पवित्रपाणयः कुशतिलतुलसीयुततिलाञ्जलिं प्रेताय काश्यपगोत्राय विष्णुरूपिणे अयं तिलाञ्जलिरिति दद्युः।

दूसरे दिन मध्याह्न में विष्णु की पूजा करके विष्णुरूप प्रेत अथवा विष्णु, ब्रह्मा, शिव, यम और प्रेत के उद्देश से एकोद्दिष्टविधि से पैर धोने से तृप्तिप्रश्नपर्यन्त कर्म करके रेखाकरण से अवनेजन तक मौन होकर विष्णु, ब्रह्मा, शिव और सपरिवार यम को इस प्रकार चार पिण्डो को उन उनके नाम मन्त्रों से देकर विष्णुरूप प्रेत को ध्यान करके काश्यपगोत्र देवदत्त विष्णुरूप-प्रेत यह आप का पिण्ड है, ऐसा कहते हुए पाँचवाँ पिण्ड देकर पूजन आदि प्रवाहणपर्यन्त कृत्य करके आचमन किये हुए ब्राह्मणों को दक्षिणा आदि से संतुष्ट कर उनमें से एक गुणवान् ब्राह्मण को प्रेत मानकर वस्त्र, अलंकार आदि देकर ब्राह्मणों से कहे आप लोग प्रेत के लिये तिल जल से अंजलि दान करें। वे भी पवित्र हाथों से कुश तिल और तुलसीयुक्त काश्यपगोत्र विष्णुरूपी प्रेत के लिये यह तिलांजलि है, ऐसा कह कर दें।

विप्रान्वाचयेत्—अनेन नारायणबलिकर्मणा भगवान् विष्णुरिमं देवदत्तं प्रेतं शुद्धमपापमहं करोत्विति विसृज्य स्नात्वा भुञ्जीतेति। सिन्धौ तु कुम्भपञ्चके

विष्णुब्रह्मशिवयमप्रेतेति पञ्चकं पूजयेत् । [1]स्वर्णरूप्यताम्रलौहमयाश्चत्वारः प्रेतो दर्भमयः । अग्निं प्रतिष्ठाप्य श्रपितचरुं नारायणाय पुरुषसूक्तेन षोडशाहुतिभिर्हुत्वा दशपिण्डान्ते पुरुषसूक्ताभिमन्त्रितशंखोदकेन प्रेतं प्रत्यृचं तर्पयेत्, विष्णवादिचतुर्भ्यो बलिं दद्यात् । श्वोभूते 'एकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपञ्चकं करिष्ये' इति संकल्प्य विप्रपञ्चक पाद्यादिपिण्डदानान्ते तर्पणादीति विशेष उक्तः । शेषं पूर्ववत् ।

ब्राह्मणों से कहवावे—इस नारायणबलि कर्म से भगवान् विष्णु इस देवदत्त प्रेत को निष्पाप शुद्ध करें, ऐसा कहकर विसर्जन और स्नान करके भोजन करे । निर्णयसिन्धु में तो पांच कलश में विष्णु, ब्रह्मा, शिव, यम और प्रेत, इन पांचों की पूजा कही है । विष्णु आदि यमपर्यन्त के सोना, चान्दी, ताम्र और लोहे की चार प्रतिमा क्रम से बनावे तथा प्रेत कुश का बनावे । अग्नि की स्थापना कर पकाए हुए चरु की १६ आहुति पुरुषसूक्त से नारायण को देकर दस पिण्ड के अन्त में पुरुषसूक्त से अभिमन्त्रित शख के जल से पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचाओ से प्रेत का तर्पण करे और विष्णु आदि चारों देवताओं को बलि दे । दूसरे दिन 'एकोद्दिष्ट विधि से पांच श्राद्ध करूँगा' यह सकल्प कर पांच ब्राह्मणों को पाद्य आदि पिण्डदान के अन्त में तर्पण आदि करे, इतना विशेष कहा है । शेष पहले ही की तरह से है ।

अथ नागबलिः

स च दर्शे पौर्णमास्यां [2]पञ्चम्यामाश्लेषायुतनवम्यां वा कार्यः । तत्र पर्षदं प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा तदग्रे गोवृषनिष्क्रयं निधाय सभार्यस्य ममेह जन्मनि जन्मान्तरे वा जातसर्पवधदोषपरिहारार्थं प्रायश्चित्तमुपदिशन्तु भवन्तः सर्वे धर्मविवेक्तारइत्यादि० । विप्रैश्चतुर्दशकृच्छ्रप्रायश्चित्तेन अमुकप्रत्याम्नायद्वारा पूर्वोत्तराङ्गसहितेनाचरितेन तव शुद्धिर्भविष्यतीत्युपदिष्टो देशकालौ संकीर्त्य 'पर्षदुपदिष्टं चतुर्दशकृच्छ्रप्रायश्चित्तममुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये' इति संकल्प्य वपनादिविधिना तदाचरेत् ।

वह अमावास्या, पूर्णिमा और पचमी में अथवा आश्लेषानक्षत्रयुक्त नवमी में करे । उसमें पर्षद् की प्रदक्षिणाकर नमस्कार करके उनके आगे गाय और बैल का मूल्य रखकर 'स्त्री के साथ मेरे इस जन्म या दूसरे जन्म में जो सर्पबध हुआ है उसको हटाने के लिये धर्म विवेचन करने वाले आप सब लोग प्रायश्चित्त का उपदेश करें ।' ब्राह्मण लोग 'चौदह कृच्छ्रप्रायश्चित्त के या उसके बदले में अन्य व्रत द्वारा पूर्वांग उत्तराग सहित के करने से तुम्हारी शुद्धि होगी' ऐसा उपदेश पाकर देश काल कहकर 'परिषद् का बतलाया हुआ चौदह कृच्छ्रप्रायश्चित्त उसके बदले में अन्य व्रत को मै करूँगा' ऐसा संकल्प करके क्षौर आदि कराकर उसे करे ।

वपनासंभवे द्विगुणः [3]कृच्छ्रप्रत्याम्नायः । 'सर्पवधदोषपरिहारार्थमिमं लोहदण्डं

---

१. गरुडपुराणे—'विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा । ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत् ॥ प्रेतो दर्भमयः कार्य इति देवप्रकल्पना ॥' इति ।

२. शौनकः—'अथ वक्ष्यामि सर्पस्य सस्कारविधिमुत्तमम् । सिनीवाल्यां पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वापि कारयेत् ॥' इति ।

३. हारीतः—'राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः केशानां वपनं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ केशानां रक्षणार्थं तु द्विगुणं व्रतमाचरेत् । द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणा दक्षिणा भवेत् ॥' इति ।

सदक्षिणं तुभ्यमहं संप्रददे इति दत्त्वा गुर्वनुज्ञां लब्ध्वा गोधूमव्रीहितिलान्यतमपिष्टेन सर्पाकृतिं कृत्वा शूर्पे निधाय सर्पं प्रार्थयेत्—

एहि पूर्वमृतः सर्प अस्मिन्पिष्टे समाविश ।
संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समाहितः ॥

आवाहनादिषोडशोपचारैः संपूज्य नत्वा 'भो सर्प इमं बलिं गृहाण ममाभ्युदयं कुरु' इति बलिं दत्त्वा पादौ प्रक्षाल्याचामेत् ।

बाल मुडाना सम्भव न हो तो दूना कृच्छ्र करे । 'सर्पवध-दोष के परिहार के लिये दक्षिणा सहित लोहे का दंड आपको मैं देता हूँ' इस प्रकार देकर गुरु की आज्ञा प्राप्त कर गेहूँ, धान और तिल में से किसी एक के आँटा से सर्प की आकृति बनाकर सूप में रखकर सर्प से प्रार्थना करे और कहे—पहले मुझसे मारे हुए हे सर्प ! आइये, इस आँटे में प्रवेश कीजिये, समाहितचित्त होकर भक्ति से संस्कार के लिये मै प्रार्थना करता हूँ । आवाहनादि सोलह उपचारों से पूजा और स्नान करके कहे कि हे सर्प ! इस बलि को ग्रहण कीजिये और मेरे अभ्युदय को कीजिये, ऐसा कह बलि देकर पैरों को धोकर आचमन करे ।

देशकालौ संकीर्त्य 'सभार्यस्य ममेह जन्मनि जन्मान्तरे वा ज्ञानादज्ञानाद्वा जातसर्पवधोत्थदोषपरिहारार्थं सर्पसंस्कारकर्म करिष्ये' इति संकल्प्य स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा 'अस्मिन्सर्पसंस्कारहोमकर्मणि देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये'। चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते अग्नौ अग्निं वायुं सूर्यम्, आज्येन सर्पमुखे प्रजापतिमाज्येन आज्यशेषेण सर्पं सद्यो यक्ष्ये इति समिधा वाधाय अग्नेराग्नेयदिशि प्रोक्षितभूमौ चितिं कृत्वा अग्निं चितिं च परिसमुह्याग्नेयाग्रदर्भैः परिस्तीर्य परिषिच्य षट्पात्रासादनादि चक्षुषी हुत्वा सर्पं चित्यामारोप्य जलं श्रोत्रं च स्पृष्ट्वा अग्नौ भूः स्वाहा अग्नय इदमित्यादिव्याहृतित्रयेणाज्याहुतीर्हुत्वा समस्तव्याहृतिभिश्चतुर्थीं सर्पमुखे जुहुयात् । आज्यशेषं स्रुवेणैव सर्पदेहे निषिञ्चेत् ।

देशकाल को कहकर 'सपत्नीक मेरे इस जन्म में या दूसरे जन्म में जानकर या बिना जाने हुए सर्पबध से उत्पन्न दोष के परिहार के लिये सर्पसंस्कार कर्म करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्थण्डिल में अग्नि की स्थापना कर ध्यान करके 'इस सर्पसंस्कार होमकर्म में देवता के परिग्रह के लिये अन्वाधान करूँगा' । चक्षुषी इस मन्त्र के अन्त में घृत से, अग्नि में अग्नि, वायु और सूर्य को, घृत से सर्प के मुख में और प्रजापति को, शेष घृत से सर्प को तत्क्षण पूजा करूँगा' इससे समिधाधान कर अग्नि से आग्नेयदिशा में पवित्रित भूमि में चिता बनाकर अग्नि और चिता को परिसमूहन करके आग्नेय कोण में कुश के अग्रभाग को बिछाकर और जल से छींटा देकर छ पात्रासादनादि कर्म करके 'चक्षुषी' इससे होम करके सर्प को चिता पर रखकर अपने कान और जल का स्पर्शकर अग्नि में 'भूःस्वाहा' इत्यादि तीनों व्याहृति से घी की आहुति और समस्त व्याहृतियों से होम करके चौथी आहुति सर्प के मुंह में दे । बचे हुए घी को स्रुवा से सांप के देह में सिंचन करे ।

नात्र स्विष्टकृदादिशेषम् । चमसजलैः समस्तव्याहृत्या सर्पं पाणिना प्रोक्ष्य अग्नेरक्षाणो वसिष्ठोग्निर्गायत्री सर्पायाग्निदाने वि० । अग्नेरक्षाणो अंहस ऋक् । अथोपस्थानम्—

नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये अंतरिक्षे ये दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥
ये दोरोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सद.स्कृतं तेभ्यः० ॥
या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ्रनु ।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः० ॥
त्राहि त्राहि महाभोगिन् सर्पोपद्रवदुःखतः ।
संतति देहि मे पुण्यां निर्दुष्टां दीर्घजीविनीम् ॥
प्रपन्नं पाहि मां भक्त्या कृपालो दीनवत्सल ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्पवधो मया ॥
जन्मान्तरे तथैतस्मिन्मत्पूर्वैरथवा विभो ।
तत्पापं नाशय क्षिप्रमपराधं क्षमस्व मे ॥

इति संप्रार्थ्य नागेन्द्रं स्नात्वागत्य ततः पुनः व्याहृतिभिः क्षीराज्येनाग्निं संप्रोक्ष्य हुते सर्पे जलेनाग्निं सिञ्चेत् ।

यहाँ स्विष्टकृत् आदि शेष कर्म नहीं किया जाता । सम्पूर्ण व्याहृति से चमस के जल से सर्प को हाथ से प्रोक्षण करके 'अग्ने रक्षाणोव शिष्ठोऽग्निः' इत्यादि विनियोग पढ़कर 'अग्ने रक्षाणो अंधस ऋक्' इत्यादि मन्त्र से अग्निदान दे । पश्चात् उपस्थान 'नमो अस्तु सर्पेभ्यो 'ये दोरोचने' 'या इषवो' इत्यादि मूलोक्त इन तीन मन्त्रों से करे । हे महाभोगिन् ! सर्पों के उपद्रवस्वरूप दुःख से मेरी रक्षा करें । दीर्घजीविनी पुण्य-सन्तति मुझे दें । शरणागत मुझे हे दीनवत्सल ! मेरी रक्षा करें । जानकर या बिना जाने मैंने या मेरे पूर्वजों ने इस जन्म में अथवा दूसरे जन्म में सर्पों का वध किया हो तो उन पापों का नाश कीजिये मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये । ऐसी प्रार्थना करके नागेन्द्र को स्नान कराकर फिर वहाँ आकर व्याहृतियों से दूध और घी से अग्नि का सम्प्रोक्षण कर सर्प के होम हो जाने पर जल से अग्नि को सींचे ।

यज्ञोपवीतिना सर्वं सर्पसंस्कारकर्म तु ।
नास्थिसंचयनं कुर्यात्स्नात्वाचम्य गृहं व्रजेत् ॥

सभार्यस्य कर्तुस्त्रिरात्रमाशौचं ब्रह्मचर्यं च कार्यम् । चतुर्थेऽहनि सचैलं स्नात्वा घृतपायसभक्ष्यैरष्टौ विप्रान् भोजयेत् । तद्यथा—सर्पस्वरूपिणे ब्राह्मणाय इदं ते पाद्यम्—अनन्तस्वरूपिणे० शेषस्वरूपि० कपिलस्व० नागस्व० कालिकस्व० शंखपालस्व० भूधरस्व० इत्यष्टसु दत्वा स्वपादौ प्रक्षाल्याचम्य सर्पस्वरूपिणे ब्रा० इदमासनम् आस्यताम् । एवमनन्तादिषु । ततः सर्पस्थाने क्षणः क्रियतामित्यादि ओं तथा प्राप्नोतु भवान् प्राप्नवानि । भो सर्परूप इदं ते गन्धम् । एवमनन्तादिषु।

सर्प के सम्पूर्ण संस्कारों में यज्ञोपवीती होकर करे । अस्थिसंचयन न करे । स्नान आचमन करके घर चला आवे । सपत्नीक कर्ता तीन रात का आशौच और ब्रह्मचर्य करे । चौथे दिन

सवस्त्र स्नान करके घी के बने भोज्यपदार्थों तथा खीर से आठ ब्राह्मणों को भोजन करावे। वह इस प्रकार है—सर्परूपवाले ब्राह्मण के लिये यह आपके लिये पाद्य है। अनन्तस्वरूपी, शेषस्वरूपी, कपिलस्वरूपी, नागस्वरूपी, कालिकस्वरूपी, शंखपालस्वरूपी और भूधरस्वरूपी ब्राह्मण को पाद्य देकर अपने पैरों को धोकर और आचमन करके सर्पस्वरूपी ब्राह्मण के लिये यह आसन है, इस पर आप बैठिये। इसी प्रकार अनन्तादिक में भी कहे। तदनन्तर सर्प के स्थान में 'क्षणः क्रियताम्' ऐसा कहकर वैसे आप प्राप्त करें। सर्पस्वरूपी ब्राह्मण कहे प्राप्त करूँगा। हे सर्परूप ब्राह्मण! यह आप के लिये गन्ध है। इसी प्रकार अनन्तादिक को गन्धादिक का दान करे।

एवं पुष्पधूपदीपवस्त्रादि दत्त्वा अन्नं परिविष्य प्रोक्ष्य सर्पाय इदमन्नं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं च दत्तं दास्यमानं चातृप्तेरमृतरूपेण स्वाहा संपद्यन्तां न मम। एवमनन्तादिभ्योपि। आचान्तेषु भो सर्प अयं ते बलिरित्यादिनाममन्त्रैर्बलिदानम्। तेषु पिण्डेषु वस्त्रादिपूजा च कार्या। इदमपि सर्वं सव्येनैव। विप्रेभ्यस्ताम्बूलदक्षिणादि दत्त्वा आचार्यं संपूज्य कलशे सुवर्णनागमावाहनादिषोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत्—

इसी प्रकार पुष्प, धूप, दीप और वस्त्रादि देकर अन्न परोस कर उसका प्रोक्षण करके कहे—यह अन्न परोसा हुआ और परोसा जाने वाला, दिया हुआ और आगे दिया जाने वाला तृप्तिपर्यन्त अमृत रूप से स्वाहा सम्पन्न हो यह मेरा नहीं है। इसी प्रकार अनन्तादिक के लिये भी कहे। ब्राह्मणों को भोजन आचमन कर लेने के बाद हे सर्प! यह तुम्हारी बलि है। इस प्रकार नाममन्त्रों से बलि दे। और उन पिण्डों पर वस्त्रादि से पूजा करे। यह सब कृत्य सव्य हो कर ही करे। ब्राह्मणों को ताम्बूल दक्षिणा आदि देकर आचार्य की सम्यक्पूजा करके कलशस्थित सुवर्णनाग को आवाहन आदि षोडशोचार से पूजाकर प्रार्थना करे—

ब्रह्मलोके च ये सर्पाः शेषनागपुरोगमाः।
नमोस्तु तेभ्यः सुप्रीताः प्रसन्नाः सन्तु मे सदा॥
विष्णुलोके च ये सर्पा वासुकिप्रमुखाश्च ये। नमोस्तु०॥
रुद्रलोके च ये सर्पास्तक्षकप्रमुखास्तथा। नमोस्तु०॥
खाण्डवस्य तथा दाहे स्वर्गं ये च समाश्रिताः। नमोस्तु०॥
सर्पसत्रे च ये सर्पा आस्तिकेन च रक्षिताः। नमोस्तु०॥
मलये चैव ये सर्पाः कर्कोटप्रमुखाश्च ये। नमोस्तु०॥
धर्मलोके च ये सर्पा वैतरण्यां समाश्रिताः। नमोस्तु०॥
ये सर्पाः पार्वतीयेषु दरीसंधिषु संस्थिताः। नमोस्तु०॥
ग्रामे वा यदि वारण्ये ये सर्पाः प्रचरन्ति हि। नमोस्तु०॥
पृथिव्यां चैव ये सर्पा ये सर्पा बिलसंस्थिताः। नमोस्तु०॥
रसातले च ये सर्पा अनन्ताद्या महाबलाः। नमोस्तु०॥

शेषनाग आदि जो सांप ब्रह्मलोक में हैं उनको नमस्कार है, वे मुझपर सदा प्रसन्न रहें। वासुकि आदि जो सर्प विष्णुलोक में हैं उनको नमस्कार है, वे मेरे ऊपर सदा प्रसन्न रहें। तक्षक

आदि सर्प जो रुद्रलोक में हैं उनको नमस्कार है और वे सदा मुझपर प्रसन्न रहें। खाण्डव वन के जलने पर जो सर्प स्वर्ग का आश्रय लिये हैं उनको नमस्कार है वे मुझपर सदा प्रसन्न रहें। जो सर्प सर्पयज्ञ में आस्तिक से बचाये गये हैं उनको नमस्कार है वे सदा मुझपर प्रसन्न रहें। कर्कोट आदि प्रमुख सर्प जो मलय पर्वत पर हैं उनको मेरा नमस्कार है वे सदा मुझ पर प्रसन्न रहें। जो सर्प यम लोक में वैतरणी में रहते हैं उनको नमस्कार है वे सदा मुझपर प्रसन्न रहें। पर्वतो की कन्दरा की सन्धि में जो सर्प रहते हैं उन सर्पो को नमस्कार है वे मुझपर सदा प्रसन्न रहें। गाव में या जगल में जो सर्प घूमते हैं उनको नमस्कार है वे मुझपर सदा प्रसन्न रहें। पृथिवी पर जो सर्प बिल में रहते हैं उनको नमस्कार है वे सदा मुझपर प्रसन्न रहें। महा बलवान् अनन्तादि सर्प जो रसातल में रहते हैं उनको मेरा नमस्कार है वे सदा मेरे ऊपर प्रसन्न रहें।

एवं स्तुत्वा देशकालौ संकीर्त्य 'कृतसर्पसंस्कारकर्मणः सांगतार्थमिमं हैमनागं सकलशं सवस्त्रं सदक्षिणं तुभ्यमहं संप्रददे नमम'। अनेन स्वर्णनागदानेनानन्तादयो नागदेवताः प्रीयन्ताम्। आचार्याय गोदानम्। यस्य स्मृत्या च०। मया कृतं सर्पसंस्काराख्यं कर्म तद्भवतां विप्राणां वचनात्परमेश्वरप्रसादात्सर्वं परिपूर्णमस्तु। तथास्त्विति ते ब्रूयुः। ब्राह्मणांस्तोषयेत्। सांगतार्थं ब्राह्मणान् भोजयेत्।

कृत्वा सर्पस्य संस्कारमनेन विधिना नरः।
विरोगो जायते क्षिप्रं संततिं लभते शुभाम्॥ इति सर्पबलिः।

ऐसी स्तुति कर देशकाल का नाम लेकर 'किये हुए सर्प-संस्कार कर्म की सांगता-सिद्धि के लिये इस सुवर्ण नाग को कलश वस्त्र और दक्षिणा के सहित आप को मैं दे रहा हूँ मेरा नहीं। इस सोने के सर्प दान से अनन्त आदि नाग देवता प्रसन्न हों। आचार्य को गोदान दे। 'यस्य स्मृत्या' इत्यादि मन्त्र पढ़कर मेरा किया हुआ सर्प-संस्कार नामक कर्म आप ब्राह्मणों के वचन और परमेश्वर के अनुग्रह से सब परिपूर्ण हो ऐसा कर्त्ता कहे। ब्राह्मण लोग 'ऐसा ही हो' ऐसा कहें। ब्राह्मणो को संतुष्ट करे। सांगता के लिये ब्राह्मणो को भोजन करावे। जो मनुष्य इस विधि से सर्प-संस्कार करता है वह रोगरहित होता है और शीघ्र शुभ-सन्तति पाता है।

अथ हरिवंशश्रवणविधिः

एवमपि पुत्रोत्पत्त्यसिद्धौ कर्मविपाकग्रन्थोक्तहरिवंशश्रवणादिविधानं[1] कुर्यात्। तच्च षडब्दं चतुरब्दं त्र्यब्दं सार्धाब्दमब्दं वा प्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम्।

---

१. भविष्यपुराणोक्त हरिवंश का नवाहपारायण विधान—'प्रथमे कृष्णजननं द्वितीये धेनुकार्दनम्। तृतीये कुण्डनपुरे रुक्मिणीहरणं तथा॥ चतुर्थे षट्पुरवधमार्यास्तोत्रं च पञ्चमे। मधोश्चरित्रं षष्ठे वै सप्तमे पावकस्तुतिः॥ अष्टमे पौण्ड्रकवधो नवमेऽह्नि समापयेत्। वाचयेदनया रीत्या हरिवंशं यथाक्रमम्॥'

प्रमाणान्तर—'प्रथमे यदुवंशस्य कीर्तनावधि कीर्तयेत्। अध्यायानां पञ्चत्रिंशत्कीर्तनीया हि तद्दिने॥ द्वितीयेऽह्नि पठेद् विद्वान् धेनुकस्य वधावधि। अध्यायानां त्रयस्त्रिंशत् पठितव्या हि तद्दिने॥ जरासन्धवधो युद्धे गोमन्तस्य च रोहणम्। तावत्प्रकीर्तयेद् धीमान् तृतीयेऽह्नि विचक्षणः॥ अध्यायानामूनत्रिंशत् कीर्तनीया हि तद्दिने। पारिजातस्य हरणं युद्धं कृष्णेन्द्रयोर्मिथः॥

प्रकीर्तयेच्चतुर्थेऽह्नि तावदेव नरः सुधीः। एकत्रिंशत्परिमितानध्यायान् समुदीरयेत्॥ सैन्यभङ्गः

नारायणबलि और नागबलि करने पर भी संतान-प्राप्ति न हो तो कर्मविपाकग्रन्थ का कहा हुआ हरिवंशश्रवण आदि विधान को करे। उसे छ वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, डेढ़ वर्ष, या एक वर्ष का प्रायश्चित्त करके करे।

अथ कृच्छ्रादिलक्षणम्

तत्र त्रिंशत्कृच्छ्रात्मकोऽब्दः। कृच्छ्रस्तु द्वादशदिनसाध्यः। तथा हि—प्रथमदिने मध्याह्ने हविष्यस्यैकभक्तस्य षड्विंशतिर्ग्रासा भोक्तव्याः। द्वितीयेऽहनि नक्तं द्वाविंशतिर्ग्रासाः। तृतीये अयाचितस्य चतुर्विंशतिर्ग्रासाः। चतुर्थे निरशनम्। अयं [1]पादकृच्छ्रः। कथंचित् त्रिगुणीकृतोयं [2]प्राजापत्यः कृच्छ्रः। एकभक्तनक्तायाचितद्वयोपवासद्वयैरर्धकृच्छ्रः। यद्वा त्र्यहमयाचितं त्र्यहमुपवास इत्यर्धकृच्छ्रः। एकभक्तायाचितोपवासैः कथंचित् त्रिगुणैः पादोनकृच्छ्रः।

इसमें तीस कृच्छ्र का एक वर्ष होता है। बारह दिन में एक कृच्छ्र होता है। पहिले दिन मध्याह्न में हविष्य से एकभक्त का छब्बीस ग्रास भोजन करे। दूसरे दिन रात में बाईस ग्रास, तीसरे

शम्बरस्य वाक्यं श्रीनारदस्य च। तावत् प्रकीर्तयेद् विद्वान् पञ्चमेऽह्नि प्रयत्नत.॥ त्रयस्त्रिंशत्परिमिता अध्याया विहितास्तदा। जनमेजयवंशस्य भविष्यस्य च वर्णनम्॥ षष्ठेऽह्नि तावद्वक्तव्यं पारायणशुभेच्छुना। अध्यायास्तु चतुस्त्रिंशन्मितास्तस्मिन् प्रकीर्तिताः॥

सप्तमे दैत्यसैन्यानां विस्तारो यावदेव हि। अध्यायाश्चाष्टचत्वारिंशन्मिता एव कीर्तिताः॥ यावद्धि घण्टाकर्णस्य समाधेर्वर्णन भवेत्। तावदेव पठेद्धीमानष्टमेह्नि प्रयत्नतः॥ अस्मिंस्तु दिवसेऽध्यायाः कीर्तितास्त्रिंशदेव हि। समाप्त्यन्तं च नवमे धीरकण्ठः शुभेच्छुकः॥

अध्यायाः पञ्चपञ्चाशन्मितास्तु विहितास्तदा। हरिवंशनवाहस्य पारायण उदाहृतः॥ क्षणं विश्रम्य मध्याह्ने प्रपठेत्तु दिनावधि। गायत्र्या हवनं कुर्यादथवा विष्णुमन्त्रतः॥ भोजयेत् पायसैर्विप्रान् मधुरैश्च विशेषतः। दक्षिणा चात्र सामान्यान्निष्कत्रयमितोदिता॥ गोद्वयं चाथवैकां गां शय्यां वस्त्रं सुभूषणम्। दद्यात्पुत्रप्राप्तिकामो वित्तशाठ्यं न कारयेत्॥' इति।

हरिवंशनवाहपारायण के प्रतिदिन का अध्याय-संख्याक्रम।

प्रथम दिन	प्रारम्भ से	३४	अध्यायपर्यन्त	(३५ अध्याय)
द्वितीय दिन	विष्णु पर्व के	१३	,,	(३३ ,,)
तृतीय दिन	,, ,,	४२	,,	(२९ ,,)
चतुर्थ दिन	,, ,,	७३	,,	(३१ ,,)
पंचम दिन	,, ,,	१०६	,,	(३३ ,,)
षष्ठ दिन	भविष्य पर्व के	२	,,	(२४ ,,)
सप्तम दिन	,, ,,	५०	,,	(४८ ,,)
अष्टम दिन	,, ,,	८०	,,	(३० ,,)
नवम दिन	,, ,,	१३५	,,	(३५ ,,)

१. याज्ञवल्क्यने पादकृच्छ्र का लक्षण कहा है—'एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः॥' इति। आपस्तम्बः—'त्र्यहमनक्ताश्यदिवाशी च ततस्त्र्यहम्। त्र्यहमयाचितव्रतस्त्र्यहं नाश्नाति किंचन॥' इति।

२. मनुने प्राजापत्यकृच्छ्र का लक्षण कहा है—'त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। परं त्र्यहं च नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन् द्विजः॥' इति।

दिन अयाचित का चौबीस ग्रास, चौथे दिन उपवास, यह पादकृच्छ्र है। इसी प्रकार तिगुना किया हुआ प्राजापत्यकृच्छ्र कहलाता है। एकभक्त, नक्त और अयाचित का दो उपवास करने से अर्धकृच्छ्र होता है। अथवा तीन दिन अयाचित करे और तीन दिन उपवास करे। इस प्रकार भी अर्धकृच्छ्र होता है। इसी प्रकार एकभक्त, अयाचित और उपवास को तिगुना करने पर एकपाद कम कृच्छ्र होता है।

येषु नवदिनेषु भोजनप्राप्तिस्तत्र ग्रासनियमं त्यक्त्वा पाणिपूरान्नभोजने [1]अतिकृच्छ्रः। एकग्रासपर्याप्तस्य प्राणधारणपर्याप्तस्य वा दुग्धस्य एकविंशतिदिनेषु भक्षणे कृच्छ्रातिकृच्छ्रः। एकदिने सकुशोदकमिश्रपञ्चगव्याशनमेक उपवास इति द्वैरात्रिकः [2]सान्तपनकृच्छ्रः। पञ्चगव्यकुशोदकानाममिश्राणामेकैकस्यैकैक-दिनेऽशनमेक उपवास इति सप्ताहसाध्यो महासान्तपनः।

जिन नव दिनो में भोजन मिल जाय उसमें ग्रास का नियम छोड़कर पसर भर अन्न भोजन करने पर अतिकृच्छ्र होता है। एक ग्रास के बराबर जीवन धारण के योग्य दूध का इक्कीस दिन पीने पर कृच्छ्रातिकृच्छ्र होता है। एक दिन कुशोदक मिलाकर पञ्चगव्य ले और एक दिन उपवास करे यह दो रात का सान्तपनकृच्छ्र होता है। एक दिन पञ्चगव्य ले दूसरे दिन केवल कुशोदक ले इस प्रकार दो दिन का एक उपवास होता है। इसी को सात दिन में करे तो महासान्तपन होता है।

त्र्यहं मिश्रितपञ्चगव्याशने [3]यतिसान्तपनम्। तप्तानां दुग्धघृतजलानामेकै-कस्य त्रिदिने पानमुपवासत्रयं चेति तप्तकृच्छ्रः। शीतानां पाने शीतकृच्छ्रः। यद्वा तप्तानां घृतादीनामेकैकदिनेऽशनं चतुर्थदिने उपवास इति दिनचतुष्टय-साध्यस्तप्तकृच्छ्रः। द्वादशाहोपवासेन पराककृच्छ्रः।

तीन दिन कुशोदक मिलाकर पञ्चगव्य पीने से यतिसान्तपन होता है। दूध, घी और जल गर्म करके एक एक को तीन दिन में पीने पर और तीन उपवास करने पर तप्तकृच्छ्र होता है। ठंडे दूध घी और जल पीने से तीन दिन में शीतकृच्छ्र होता है। अथवा गर्म घी, दूध और जल को एक एक दिन पीने पर तथा चौथे दिन उपवास करने पर यह चार दिन में होने वाला भी तप्तकृच्छ्र है। बारह दिन के उपवास से पराककृच्छ्र होता है।

शुक्लपक्षे प्रतिपदादितिथिषु मयूराण्डसमानैकैकग्रासान् वर्धयन् पूर्णिमायां पञ्चदशग्रासाः। क्षये चतुर्दशवृद्धौ षोडश सम्पद्यन्ते। कृष्णपक्षे एकैकग्रासह्रासेना-मायामुपवास इति माससाध्यं यवमध्यसंज्ञं चान्द्रायणम्।

शुक्लपक्ष में प्रतिपदा आदि तिथियों में मोर के अंडे के समान एक एक ग्रास बढ़ाते हुए पूर्णिमा को पन्द्रह ग्रास होते हैं। तिथिक्षय में चौदह ग्रास होते हैं। तिथि वृद्धि में सोलह ग्रास

---

१. याज्ञवल्क्यने—'अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात् पाणिपूरान्नभोजनः।' इससे अतिकृच्छ्र का और 'कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम्।' इससे कृच्छ्रातिकृच्छ्र का लक्षण बतलाया।

२. याज्ञवल्क्य ने—'गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। जग्ध्वा परेह्न्युपवसेत् कृच्छ्रं सान्तपनं चरन्॥' इससे सान्तपन का। और 'पृथक्सान्तपनद्रव्यैःषडहः सोपवासकः। सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनः स्मृतः॥' इससे महासान्तपन का लक्षण बतलाया।

३. यतिसान्तपन-तप्तकृच्छ्र-शीतकृच्छ्र-तप्तकृच्छ्र-पराककृच्छ्र-यवमध्यचान्द्रायण-पिपीलिकामध्यचा-न्द्रायण-कृच्छ्रचान्द्रायण के मूलवचन धर्मशास्त्रग्रन्थों में देखिये।

सम्पन्न होते हैं। कृष्णपक्ष में एक एक ग्रास घटाने पर अमावास्या में उपवास होता है यह एक महीने में होने वाला यवमध्यनामक चान्द्रायण है।

कृष्णपक्षे प्रतिपदि चतुर्दशग्रासान् भुक्त्वा एकैकग्रासह्रासेन दर्शे अनशनं शुक्ले एकैकग्रासवृद्धिरिति कृष्णादिशुक्लान्तं पिपीलिकामध्यचान्द्रायणम्। कृच्छ्र-चान्द्रायणादेः त्रिकालस्नानग्रासाभिमन्त्रणादिविधियुतः प्रयोगः प्रायश्चित्तप्रकरणे ज्ञेयः। अतिकृच्छ्रादिलक्षणं प्रसंगादत्रोक्तम्। अब्दगणना तु प्राजापत्यकृच्छ्रैरेव।

कृष्णपक्ष में प्रतिपदा को चौदह ग्रास खाकर एक एक ग्रास कम करने से अमावास्या को उपवास करे। शुक्लपक्ष में एक एक ग्रास बढ़ा करके इस प्रकार कृष्ण पक्ष से प्रारम्भ करकेशुक्लपक्ष तक एक मास में पिपीलिकामध्यचान्द्रायण होता है। कृच्छ्र चान्द्रायण आदि का तीनों समय में स्नान और ग्रास का अभिमन्त्रण आदि विधिसहित प्रयोग प्रायश्चित्त प्रकरण से जानना चाहिये। अतिकृच्छ्र आदि का लक्षण प्रसग से यहां कहा है। वर्ष की गणना प्राजापत्यकृच्छ्र से करनी चाहिये।

अथ व्रताशक्तौ प्रत्याम्नायाः

तत्र प्राजापत्यप्रत्याम्नायाः दशसहस्रगायत्रीजपः, गायत्र्या सहस्रं तिलहोमः। क्वचित्सहस्रं व्याहृत्या तिलहोम उक्तः। शतद्वयं प्राणायामाः। द्वादशब्राह्मणभोजनम्। यावत्केशशोषणं विरम्य तीर्थे द्वादशस्नानानि। वेदसंहितापारायणम्। योजनयात्रा। द्वादशसहस्रं नमस्काराः। द्वात्रिंशदुत्तरशतं प्राणायामान्कृत्वा अहोरात्रमुपोषितः प्राङ्मुखस्तिष्ठेत्। गोमूत्रेण यावकभक्षणे ऐकाहिककृच्छ्रम्। कश्चिद् रुद्रैकादशिनीजपात्कृच्छ्रमाह। पावकेष्टिः पावमानेष्टिः षडुपवासाः प्राजापत्यप्रत्याम्नायाः। एकविप्रभोजनमुपवासस्य। अत्यशक्तौ सहस्रगायत्रीजपो द्वादशप्राणायामा वेति स्मृत्यर्थसारे।

इसमें प्राजापत्य व्रत करने में असमर्थ को बदले में दस हजार गायत्री का जप, एक हजार गायत्री से तिल का होम करना चाहिये। कहीं पर एक हजार व्याहृति से तिल का होम कहा है। दो सौ प्राणायाम, बारह ब्राह्मणों का भोजन, नहाने पर जब बाल सूख जाय तब तक ठहर के किसी तीर्थ में बारह स्नान, वेदसंहिता का पारायण, चार कोस की यात्रा, बारह हजार नमस्कार, एकसौ बत्तीस प्राणायामों को करके दिन रात उपवासकर पूरब मुख रहे। गोमूत्र से जव को भक्ष्य बनाकर खाय, यह एक दिन का कृच्छ्र है। कोई रुद्रैकादशिनी के जप से कृच्छ्र कहते हैं। पावकेष्टि, पावमानेष्टि, उपवास, प्राजापत्य के बदले में करे। एक उपवास के बदले में एक ब्राह्मण-भोजन होता है। अत्यन्त अशक्त होने पर एक हजार गायत्री का जप या बारह प्राणायाम ऐसा स्मृत्यर्थसारमें कहा है।

प्राजापत्येऽप्यशक्तस्तु धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्।
धेनोरभावे निष्कं स्यात्तदर्धं पादमेव वा॥

अशीतिगुञ्जात्मकः कर्षः, चत्वारः कर्षा निष्कम्, निष्कनिष्कार्धनिष्कपादान्यतमप्रमाणं हेम रूप्यं वा धेनुमूल्यं देयम्। अत्यशक्तेन निष्कपादार्धरजतं तत्समं धान्यादि वा देयम् अतिकृच्छ्रे च गोद्वयम्। सांतपने गोद्वयम्। पराके तप्तकृच्छ्रे

च गोत्रयम्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रे गोचतुष्टयं गोत्रयं वा। चान्द्रायणे अष्टौ पञ्च चतस्रस्तिस्रो वा गावः। मासं पयोव्रते यावकव्रते मासोपवासे च पञ्च गावः। मासं गोमूत्रयावकव्रते षड् गावः।

प्राजापत्य करने में असमर्थ तो दूध देने वाली गाय का दान करे। धेनु न मिलने पर एक निष्क, आधा निष्क या चौथाई निष्क सुवर्णदान करे। अस्सी गुजे का एक कर्ष, चार कर्ष का एक निष्क होता है। एक निष्क आधा निष्क और चौथाई निष्क में से कोई एक सोने या चांदी का गोमूल्य दे। अल्पशक्त को चौथाई निष्क की आधी चांदी या उसके बराबर अन्नदानादि दे। अतिकृच्छ्र में दो गोदान, सान्तपन मे भी दो गौ का दान, पराक और तप्तकृच्छ्र में भी दो गोदान, कृच्छ्रातिकृच्छ्र में चार गोदान या तीन गोदान, चान्द्रायण में आठ, पाँच, चार या तीन गोदान करे। महीने भर के पयोव्रत में या जव खाकर महीने भर उपवास करने पर भी पाच गोदान करे। महीने भर गोमूत्र से यावकव्रत में छ गोदान करे।

अथ प्रायश्चित्तप्रयोगः

सचैलं स्नात्वा शक्तौ क्लिन्नवासाः पर्षदग्रे गोवृषप्रत्याम्नायं निष्कादिप्रमाणं ब्रह्मदण्डं निधाय साष्टाङ्गं प्रणम्य पर्षदं प्रदक्षिणीकुर्यात्।

सर्वे धर्मविवेक्तारो गोप्तारः सकला द्विजाः।
मम देहस्य संशुद्धिं कुर्वन्तु द्विजसत्तमाः॥
मया कृतं महाघोरं ज्ञातमज्ञातकिल्बिषम्।
प्रसादः क्रियतां मह्यं शुभानुज्ञां प्रयच्छथ॥
पूज्यैः कृतपवित्रोऽहं भवेयं द्विजसत्तमाः।

मामनुगृह्णन्तु भवन्त इति वदेत्। विप्रः किं ते कार्यं मिथ्या मावादीः सत्यमेव वदेति पृष्टः स्वपापं ख्यापयेत्।

सचैल स्नान करके शक्ति हो तो गीले ही वस्त्र से परिषद के आगे गाय और बैल के बदले में निष्क आदि प्रमाण का ब्रह्मदण्ड रखकर साष्टांग प्रणाम करके प्रदक्षिणा करे। सब धर्म के विवेचन करने वाले सम्पूर्ण ब्राह्मण मेरे देह की शुद्धि करें। मैंने जो ज्ञान अज्ञान में महा घोर पाप किये हैं। मुझपर प्रसन्न होकर शुभ आज्ञा दे। आप पूज्य ब्राह्मणों से मैं तृप्त हो जाऊँगा आप लोग मुझपर अनुग्रह करें, ऐसा कहे। ब्राह्मण गण पूछें 'क्या तुम्हारा काम है, झूठ न बोलना सत्य ही कहो' धर्मवादियों के ऐसा पूछने पर अपने पापों को प्रकाशित करे।

मया मम पत्न्या वा इह जन्मनि जन्मान्तरे वा अनपत्यत्वमृतापत्यत्वादिनिदानभूतबालघातविप्ररत्नापहारादिदुरितं कृतं तस्य नाशाय करिष्यमाणे हरिवंशश्रवणादौ कर्मविपाकोक्ते विधानेऽधिकारार्थं दीर्घायुष्मत्पुत्रादिसंततिप्राप्तये प्रायश्चित्तमुपदिशन्तु भवन्त इति प्रार्थयेत्। ते च पापिना पूजितानुवादकाग्रे षडब्दत्र्यब्दसार्धाब्दान्यतमप्रायश्चित्तेन पूर्वोत्तराङ्गसहितेनाचरितेन तव शुद्धिर्भविष्यति तेन त्वं कृतार्थो भविष्यसीति वदेयुः। अनुवादकः पापिनं वदेत्।

मैंने या मेरी स्त्री ने इस जन्म में या दूसरे जन्म में संतान न होने पर या संतान होकर मर

जाने का कारणरूप बालघात ब्राह्मण का रत्न चुराना आदि पाप किया है, उसके नाश के लिये किये जाने वाले हरिवंशश्रवण आदि में कर्मविपाक के कहे हुए विधान के अधिकार के लिये बहुत दिनों तक जीने वाले पुत्र आदि संतति की प्राप्ति के लिये आप लोग प्रायश्चित्त का उपदेश करें, ऐसी प्रार्थना करे। वे लोग पापी से पूजित अनुवादक के आगे छ वर्ष, तीन वर्ष या डेढ़ वर्ष में से पूर्वांग उत्तरांग सहित किसी एक प्रायश्चित्त को करने से तुम्हारी शुद्धि होगी उससे तुम कृतार्थ हो जाओगे, ऐसा कहें। अनुवादक पापी से कहे।

ततः कर्ता ओमित्यङ्गीकृत्य पर्षदं विसृज्य देशकालौ संकीर्त्य 'सभार्यस्य ममैतज्जन्मजन्मातरार्जितानपत्यत्वमृतापत्यत्वादिनिदानभूतबालघातविप्ररत्नापहारादिजन्यदुरितसमूलनाशकर्मविपाकोक्तविधानाधिकारसिद्धिद्वारादीर्घायुष्मद्बहुपुत्रादिसंततिप्राप्तये षडब्दं त्र्यब्दं सार्धाब्दं वा प्रायश्चित्तं पूर्वोत्तराङ्गसहितममुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये' इति संकल्प्य दिनान्ते केशरोमनखादि वापयित्वा स्नात्वा,

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशु वसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥

इति विहितकाष्ठेन दन्तधावनं कुर्यात्।

तब कर्त्ता 'हां' ऐसा स्वीकार कर परिषद् का विसर्जन करके देश काल को कहकर 'सपत्नीक मेरे इस जन्म या दूसरे जन्म के अनपत्यत्व मृतापत्यत्व आदि का कारण रूप बालघात और ब्राह्मण का रत्न चुराना आदि से उत्पन्न पाप का समूल नाश करने वाला कर्मविपाकोक्त-विधान के अधिकार की सिद्धि द्वारा और लम्बी आयु वाले बहुत पुत्र आदि संतति की प्राप्ति के लिये छ वर्ष, तीन वर्ष या डेढ़ वर्ष का पूर्वांग और उत्तरांगसहित प्रायश्चित्त के बदले में अमुक का आचरण करूँगा' ऐसा संकल्प करके सायंकाल में केश रोम नखों को कटवाकर स्नान करके हे वनस्पते! आयु, बल, यश, तेज, सन्तान, पशु, धन, वेद और बुद्धि आप मुझे दें, इस आशय के मन्त्र से शास्त्रोक्त काठ से दतुवन करे।

अथ दशविधस्नानविधिः

ततो दशस्नानानि तत्र भस्मस्नानम्—ईशानाय नमः शिरसि, तत्पुरुषाय नमो मुखे, अघोराय नमो हृदये, वामदेवाय नमो गुह्ये, सद्योजाताय नमः पादयोः, प्रणवेन सर्वाङ्गेषु भस्म विलिम्पेत्। ईशानादिपदोपेतैर्मन्त्रैर्वा भस्मलेपः।

तदनन्तर दशविध स्नान करे। पहले भस्म स्नान—भस्म हाथ में लेकर 'ईशानाय नमः' कह के सिर में, 'तत्पुरुषाय नमः' कह के मुंह में, 'अघोराय नमः' कहके हृदय में, 'वामदेवाय नमः' कहके पेशाब पाखाना करने के स्थान में, 'सद्योजाताय नमः' इससे दोनों पैरों में और प्रणव से सब अंगों में लेपन करे। अथवा ईशानादि पदों से युक्त मन्त्रों से भस्म का लेपन करे।

अथ गोमयस्नानम्—गोमयमादाय प्रणवेन दिक्षु दक्षिणभागं तीर्थे चोत्तरभागं प्रक्षिप्य शेषं मानस्तोक इत्यभिमन्त्र्य गन्धद्वारामिति सर्वाङ्गमालिप्य हिरण्यशृङ्गमिति द्वाभ्यां प्रार्थ्य याः प्रवत इति तीर्थमभिमृश्य स्नात्वा द्विराचामेत्।

गोबर लेकर प्रणव से दिशाओ में दक्षिणभाग और तीर्थ में उत्तरभाग को छोडकर शेषभाग को 'मान स्तोक' इस मन्त्र से अभिमन्त्रण करके 'गन्धद्वारा' इस मन्त्र से सर्वांग में लेपन करके 'हिरण्य श्रृग' इन दो मन्त्रो से प्रार्थना करके 'याः प्रवत' इससे तीर्थ का स्पर्श और स्नान करके दो बार आचमन करे।

अथ मृत्तिकास्नानम्—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
शिरसा धारयिष्यामि रक्षस्व मां पदे पदे॥

इति मृत्तिकामभिमन्त्र्य,

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

इति तामादाय नमो मित्रस्येति सूर्याय प्रदर्श्य गन्धद्वारामिति मन्त्रेण स्योना पृथिवीति मन्त्रेण वा इदं विष्णुरिति वा शिरः प्रभृत्यङ्गानि विलिम्पेत्। द्विराचामेत्।

'अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते' इत्यादि मूलोक्त मंत्र से मिट्टी का अभिमन्त्रण करके 'उद्धृतासि वराहेण' इस मन्त्र से मिट्टी को लेकर 'नमो मित्रस्य' इससे सूर्य को दिखाकर 'गन्धद्वारा' इस मन्त्र से या 'स्योना पृथिवी' इस मन्त्र से अथवा 'इद विष्णु.' इस मन्त्र से सिर आदि सब अंगों में लेपन करे। दो बार आचमन करे।

अथ वारिस्नानम्—आपो अस्मानित्युक्त्वा भास्कराभिमुखः स्थितः इदं विष्णुर्जपित्वा च प्रतिस्रोतो निमज्जति। ततः पञ्चगव्यकुशोदकैः समन्त्रकैः पृथक् पृथक् स्नात्वा स्नानाङ्ग तर्पणादि कुर्यात्। विष्णुश्राद्धं पूर्वाङ्गगोप्रदानं च कृत्वाऽग्नि प्रतिष्ठाप्य पञ्चगव्य होमं व्याहृतिभिरष्टोत्तरशतमष्टाविंशति वाऽऽज्यहोमं च कृत्वा व्रतं ग्रहीष्य इति विप्रान्प्रार्थ्य हुतशेषं पञ्चगव्यं प्रणवेन पिबेत्। मुख्यप्रायश्चित्तकृच्छ्रान् संकल्पानुसारेणानुष्ठाय व्याहृत्याज्यहोमविष्णुश्राद्धगोदानानि पूर्ववत्कुर्यात्। आज्यहोमे पञ्चगव्यहोमे च इध्माधानादिस्थालीपाकेतिकर्तव्यतां केचिन्नेच्छन्ति। व्याहृत्याज्यहोमे पापापहा महाविष्णुर्देवतेति केचित्।

सूर्य के सामने खड़ा हो करके 'आपो अस्मान्' इस मन्त्र को कह कर 'इदं विष्णुः' इत्यादि मन्त्र का जप करके डुबकी लगावे। तदनन्तर पञ्चगव्य और कुश के जल से मन्त्रसहित अलग अलग नहा कर स्नानांग तर्पण आदि करे। विष्णुश्राद्ध और पूर्वांग गोदान करके अग्निस्थापन कर व्याहृतियों से १०८ या २८ पञ्चगव्य और घृत से होम करके 'व्रत ग्रहण करूँगा' ऐसा ब्राह्मणों से प्रार्थना करके हवन से बचा हुआ पञ्चगव्य प्रणव से पीये। मुख्य प्रायश्चित्त कृच्छ्रों को संकल्प के अनुसार करके व्याहृति से घृतहोम विष्णुश्राद्ध और गोदान पहिले की तरह करे। कुछ लोग घृत होम तथा पञ्चगव्य के होम में भी समिदाधान आदि स्थालीपाकपर्यन्त कर्म नहीं चाहते। व्याहृति से घृतहोम में पाप को नष्ट करने वाले महाविष्णु देवता हैं, ऐसा कहते हैं।

अथ पञ्चगव्यविधिः

[1]पञ्चगव्यविधिस्तु—ताम्रे पालाशे वा पात्रे ताम्राया गोमूत्रमष्टमाषप्रमाणं गायत्र्यादाय, गन्धद्वारामिति श्वेतगोशकृत्षोडशमाषमादाय, आप्यायस्वेति पीतगोक्षीरं द्वादशमाषं, दधिक्राव्ण इति नीलगोर्दधि दशमाषं, तेजोसि शुक्रमसीति कृष्णगोघृतमष्टमाषमादाय, तत्र देवस्यत्वेति कुशोदकं चतुर्माषं प्रक्षिप्य प्रणवेनालोडयेत्। अत्र माषः पञ्चगुञ्जात्मकः। तत्सप्तपत्रैः साग्रैः कुशैर्जुहुयात्।

इरावतीति पृथ्वीं, इदंविष्णुरिति विष्णुं, मानस्तोक इति रुद्रं, शन्नोदेवीरित्यपः ब्रह्मयज्ञानमिति ब्रह्माणं वा, अग्निं सोमं च नाम्ना, गायत्र्या सूर्यं, प्रजापते नत्वदिति समस्तव्याहृतिभिर्वा प्रजापतिं, प्रणवेन प्रजापतिम् अग्निं स्विष्टकृतं च नाम्नेत्येताः पञ्चगव्येनाग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चेति वा महाविष्णुं वाऽऽज्येनाष्टाविंशतिसंख्याहुतिभिरित्यन्वाधानम्।

पञ्चगव्य की विधि तो—तामे या पलाश के पात्र में गायत्री मन्त्र से तामे के रंग वाली गाय का आठ माशा, 'गन्धद्वारां' इस मन्त्र से सफेद गाय का गोबर १६ माशा, 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से पीली गाय का दूध १२ माशा, 'दधिक्राव्ण' इस मन्त्र से नीले रंग की गाय का दही १० माशा, 'तेजोसि शुक्रमसि' इस मन्त्र से काली गाय का घी ८ माशा और 'देवस्यत्वा' इस मन्त्र से ४ माशा कुश का जल लेकर प्रणव से मिलावे। यहां माशा ५ गुंजा का है। अग्रभागसहित कुश के सात पत्तों से होम करे। 'इरावती' इस मन्त्र से पृथिवी को, 'इदं विष्णुः' इससे विष्णु को, 'मानस्तोक' इस मन्त्र से रुद्र को, 'शन्नो देवी' इस मन्त्र से जल को, 'ब्रह्म यज्ञानं' इस मन्त्र से ब्रह्मा को, नाम मन्त्र से अग्नि और सोम को, गायत्री से सूर्य को, 'प्रजापते न त्वदे' इससे या समस्त व्याहृति से प्रजापति को, प्रणव से प्रजापति, अग्नि और स्विष्टकृत् इन सब को अथवा पञ्चगव्य से अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति को या विष्णु को घी से २८ आहुतियों से अन्वाधान करे।

स्त्रीशूद्राणां होमो न कार्यः। केचिद्ब्राह्मणद्वारा होमः कार्य इत्याहुः। स्त्रीशूद्राणां पञ्चगव्यपाने विकल्प इति महार्णवः। स्त्रीशूद्रौ विप्रैः पञ्चगव्यं कारयित्वा तूष्णीं पिबत इति स्मृत्यर्थसारः। अयं प्रायश्चित्तविधिः कृच्छ्रन्यूनप्रायश्चित्तेषु न कार्यः। कृच्छ्रप्रभृतिषु सर्वत्र प्रायश्चित्तेष्वनुष्ठेयः।

---

१. अन्यत्र यही 'ब्रह्मकूर्च विधि' नाम से व्यवहृत है। जैसा पाराशरने कहा है—'गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। निर्दिष्टं पंचगव्यं तु प्रत्येकं कायशोधनम्॥गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चापि गोमयम्। पयः काञ्चनवर्णायाः नीलायाश्च तथा दधि॥घृतं च कृष्णवर्णायाः सर्वं कापिलमेव च। अलाभे सर्ववर्णानां पञ्चगव्येष्वयं विधिः॥ गोमूत्रं माषकास्त्वष्टौ गोमयस्य तु षोडश। क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश कीर्तिताः॥ गोमूत्रवद् घृतस्येष्टस्तदर्धं तु कुशोदकम्। गायत्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्॥आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि। तेजोसि शुक्रमित्याज्यं देवस्यत्वा कुशोदकम्॥पञ्चगव्यमृचा पूतं होमयेदग्निसन्निधौ। सप्तपत्राश्च ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुचित्विषः॥एतैरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि। इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंवतीः॥एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद् द्विजः। प्रणवेन समालोड्य प्रणवेनाभिमन्त्र्य च॥ प्रणवेन समुद्धृत्य पिबेत्तत्प्रणवेन तु। मध्यमेन पलाशस्य पद्मपत्रेण वा पिबेत्॥ स्वर्णपात्रेण रौप्येण ब्राह्मतीर्थेन वा पुनः। यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मानवे॥ ब्रह्मकूर्चोपवासस्तु दहत्यग्निरिवेन्धनम्।' इति।

स्त्री और शूद्र को हवन नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण के द्वारा होम करे, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। स्त्री और शूद्र को पञ्चगव्य पीने में विकल्प है, ऐसा महार्णव का मत है। स्त्री और शूद्र ब्राह्मण से पञ्चगव्य बनवाकर विना मन्त्र के चुपचाप पीयें, यह स्मृत्यर्थसार का कहना है। यह प्रायश्चित्त विधि कृच्छ्र से कम प्रायश्चित्तों में न करे। कृच्छ्र आदि सब प्रायश्चित्तों में करे।

एवं कृच्छ्राद्यनुष्ठाय सूर्यारुणसंवादमहार्णवादिकर्मविपाकग्रन्थोक्तं हरिवंश-श्रवणादिकर्म कुयात्।

तत्र शुभे दिने देशकालौ संकीर्त्य अनेकजन्मार्जितानपत्यत्वमृतापत्यत्वादि-निदानभूतबालघातनिक्षेपाहरणविप्ररत्नापहरणादिजन्यदुरितसमूलनाशद्वारा दीर्घा-युष्मद्बहुपुत्रादिसंततिप्राप्तिकामो हरिवंशं श्रोष्यामीत्येकस्य कर्तृत्वे दंपत्योः कर्तृत्वे श्रोष्याव इति संकल्प्य गणेशपूजनस्वस्तिवाचननान्दीश्राद्धानि विनायक-शान्तिं च कृत्वा हरिवंशश्रवणार्थं श्रावयितारं त्वां वृणे इति विप्रं वृत्वा वस्त्रालंकारैः पूजयेत्।

इस प्रकार कृच्छ्र आदि करके सूर्यारुणसंवाद, महार्णव आदि कर्मविपाक ग्रन्थ का कहा हुआ हरिवंशश्रवण आदि कर्म करे। उसमें शुभ दिन में देशकाल का उच्चारण कर 'अनेक जन्मों से अर्जित निस्सन्तानक मृतापत्यत्व आदि कारणो से बालघात, धरोहर का न देना, ब्राह्मण के रत्नों का चुराने आदि से उत्पन्न पाप का समूल नाश के द्वारा बहुत बड़ी आयु से युक्त बहु पुत्र आदि संतति-प्राप्ति की कामना से हरिवंश सुनूँगा'। एक श्रोता सुने तो ऐसा संकल्प कहे। पति पत्नी दोनों के सुनने में 'श्रोष्यावः' ऐसा संकल्प करके गणेशपूजन, स्वस्तिवाचन, नान्दीश्राद्ध और विनायकशान्ति करके 'हरिवंश सुनने के लिये सुनाने वाले आप को मैं वरण करता हूँ' इस प्रकार ब्राह्मण का वस्त्र अलंकारों से वरण करके उसकी पूजा करे।

वाचकं प्रत्यहं पायसादिना भोजयेत्। दंपती प्रतिदिनं त्रायन्तामित्यादि-वैदिकैः सुरास्त्वामिति पौराणैश्च मन्त्रैः सुस्नातावलंकृतौ तदेकचित्तौ शृण्वन्तौ तैलताम्बूलक्षौरमैथुनखट्वाशयनानि यावत्समाप्तिं वर्जयन्तौ हविष्यं भुञ्जीया-ताम्। अन्ते वाचकाय गां सुवर्णत्रयमेकं वा सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा प्रत्यवरोह-मन्त्रेण सहस्रं तिलाज्यं हुत्वा शतं विप्रान् चतुर्विंशतिमिथुनानि वा पायसेन भोजयेदिति हरिवंशश्रवणप्रयोगः।

बाचने वाले को प्रतिदिन खीर आदि का भोजन करावे। पति पत्नी प्रतिदिन 'त्रायन्तां' इत्यादि वैदिक मन्त्र 'सुरास्त्वा' इत्यादि पौराणिक मन्त्रों से नहा कर अलंकार करके एकचित्त होकर सुनते हुए तेल, ताम्बूल, क्षौर, मैथुन, खटिया पर सोना, समाप्ति तक वर्जित करते हुए हविष्य का भोजन करें। अन्त में कथा वाचने वाले को गाय, तीन सुवर्ण या एक सुवर्ण दक्षिणा देकर प्रत्य-वरोह मन्त्र से तिल घी की १००० आहुतिं होम करके १०० ब्राह्मण अथवा २४ जोड़े ब्राह्मण ब्राह्मणी को खीर से भोजन करावे। हरिवंशश्रवणप्रयोग समाप्त।

अथ विधानान्तराणि

सौवर्णं बालकं कृत्वा दद्याद्दोलासमन्वितम्।
अथवा वृषभं दद्याद्विप्रोद्वाहनमेव वा॥

[1]महारुद्रजपो वापि लक्षपद्मैः शिवार्चनम्।
स्वर्णधेनुः प्रदातव्या सवत्सा वा यथाविधि ॥
घृतकुम्भप्रदानं वा संक्षेपादिदमीरितम्।

अथवा प्रत्यहं पार्थिवलिङ्गपूजां कृत्वा [2]अभिलाषाष्टकजपं संवत्सरं कुर्यात्। अभिलाषाष्टकस्तोत्रं कौस्तुभे ज्ञेयम्। एवमपि फलाप्राप्तौ दत्तकपुत्रो ग्राह्यः।

झूला पर बैठे हुए सुवर्ण का बालक बना कर झूला समेत उसको दान करे। या बैल का दान करे। अथवा महारुद्र का जप करे। अथवा लाख कमलों से शंकर जी की पूजा करे। या यथाविधि बछड़ा समेत सोने की गाय का दान करे। या घृतपूर्ण घड़ा ब्राह्मण को दे। यह संक्षेप से कहा है। अथवा प्रतिदिन पार्थिवलिंग की पूजा करके अभिलाषाष्टकस्तोत्र का पाठ साल भर तक करे। अभिलाषाष्टकस्तोत्र कौस्तुभ से जाने। ऐसा करने पर भी पुत्र की प्राप्ति न हो तो दत्तकपुत्र लेना चाहिये।

अथ दत्तके ग्राह्याग्राह्यविचारः

ब्राह्मणानां सोदरभ्रातृपुत्रो मुख्यत्वात्प्रथमं [3]ग्राह्यः। तदभावे सगोत्रसपिण्डो

---

१. स्कान्दे—'रुद्राध्यायजपं सम्यक् कुर्वन्तु विमलाशयाः। तेषां जपानुभावेन सद्यः श्रेयो भविष्यति।' महारुद्रजप ब्राह्मण के द्वारा कराने पर शौनकोक्त दक्षिणा—'धेनु पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च भूषणैः। सदक्षिणमनड्वाहं प्रदद्याद्रुद्रजापिने ॥' इति।

जाबालि.—'अहोरात्रोषितो भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः। पञ्चगव्यं पिबेत्प्रातर्ब्रह्मकूर्चविधिः स्मृतः ॥' इति।

२. स्कन्दपुराण काशीखण्डोक्त अभिलाषाष्टकस्तोत्र—'विश्वानर उवाच—एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किंचित्। एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥ १ ॥ एकः कर्ता त्वं हि विश्वस्य शंभो नानारूपेष्वेकरूपोऽस्य रूप.। यद्वत्प्रत्यम्ब्वर्क एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नान्यं त्वां विनेश प्रपद्ये ॥ २ ॥ रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ। यद्वत्तद्वद्विष्वगेष प्रपञ्चो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥ ३ ॥ तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः। पुष्पे गन्धो दुग्धमध्ये च सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ॥ ४ ॥ शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रेरघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात्। व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये ॥ ५ ॥ नो वेदस्त्वामीश साक्षाद्धि वेद नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य। नो योगीन्द्रानेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये ॥ ६ ॥ नो ते गोत्रं नापि जन्मापि नाख्या नो वा रूपं नैव शीलं न देशः। इत्थं भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्वान्कामान्पूरयेस्तद्भजे त्वाम् ॥७॥ त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः। त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्किं यत्त्वं नास्यतस्त्वां नतोऽस्मि ॥ ८ ॥ स्तुत्वेति भूमौ निपपात विप्रः सदण्डवद्यावदतीव हृष्टः। तावत्सबालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच भूदेव वरं वृणीहि ॥ ९ ॥ तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती। प्रत्यब्रवीत्किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥ १० ॥ सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वः सर्वप्रदो भवान्। याच्ञां प्रतिनियुङ्क्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम् ॥ ११ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो विश्वानरस्य ह। शुचेः शुचिव्रतस्याथ शुचिस्मित्वाब्रवीच्छिशुः ॥ १२ ॥ बाल उवाच—त्वया शुचे शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि। अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयः ॥ १३ ॥ तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते। ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिः सर्वामरप्रियः ॥ १४ ॥ अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम्। अब्दं त्रिकालपठनात्कामदं शिवसन्निधौ ॥ १५ ॥

३. व्यासः—'दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्रिमः स्मृतः।' मनुः—'माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि। सदृशं प्रीतिसंयुक्तौ स ज्ञेयो दत्तकः सुतः ॥' यहाँ प्रीतिसंयुक्तौ इस कथन से

यः कश्चित् सापत्नभ्रातृपुत्रो वा । तदभावे त्वसगोत्रसपिण्डो मातुलकुलजः पितृष्वस्रादिकुलजः । तदभावे त्वसपिण्डः समानगोत्रः । तदभावे त्वसपिण्डः पृथक्गोत्रोऽपि । असगोत्रसपिण्डेषु भागिनेयदौहित्रौ वर्ज्यौ । एवं विरुद्धसंबन्धापत्त्या पुत्रबुद्ध्यनर्हो मातुलोऽपि न ग्राह्यः । अत एव सगोत्रसपिण्डेषु भ्राता पितृव्यो वा न ग्राह्यः । विप्रादीनां वर्णानां समानवर्ण एव । तत्रापि देशभेदप्रयुक्तगुर्जरत्वान्ध्रत्वादिना समानजातीय एव । सर्वोपि सभ्रातृक एव ग्राह्यः । तत्रापि ज्येष्ठपुत्रो न ग्राह्यो न देयः । शूद्रस्य दौहित्रभागिनेयावपि ग्राह्यौ । अत्र मूलम्—

सहोदर भाई का पुत्र मुख्य होने से ब्राह्मण पहिले उसी को ग्रहण करे। उसके अभाव में सगोत्र और सपिण्ड जो कोई भी हो उसको दत्तक बनावे। अथवा सौतेला भाई का पुत्र ग्राह्य है। इन सबके अभाव में तो असगोत्र सपिण्ड मामा के कुल का फूआ आदि के कुल का लड़का ग्राह्य है। इसके अभाव में तो असपिण्ड समान गोत्र को दत्तक करे। इनके भी अभाव में तो असपिण्ड और भिन्न गोत्र का भी ग्राह्य है। असगोत्र सपिण्डों में बहिन का पुत्र और लड़की का पुत्र दोनों वर्जित हैं। एवं विरुद्ध सम्बन्ध की आपत्ति से पुत्र-बुद्धि के अयोग्य मामा को भी ग्रहण न करे। इसीलिये सगोत्र सपिण्डो में भाई या चाचा नहीं ग्राह्य है। ब्राह्मणादि वर्णों को समान वर्ण ही में दत्तक ग्राह्य है। उसमें भी देशभेद से प्रयुक्त गुर्जरत्व आन्ध्रत्वादि से समानजातीय ही ग्राह्य है। सभी दत्तक भाई वाले ही ग्राह्य हैं। उसमें ज्येष्ठ पुत्र को ग्रहण न करे और न देवे। शूद्र को तो लड़की का लड़का और बहिन का लडका भी ग्राह्य है। इसमें प्रमाण है—

भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ।
सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥

अनेन वचनेन 'नापुत्रस्य लोकोऽस्ति जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते' इत्यादिशास्त्रबोधितस्याप्रजत्वप्रयुक्तदोषस्य निवृत्तिर्विधिना अस्वीकृतेनापि भ्रातृपुत्रेण पितृव्यस्य भवतीति बोध्यते । अतः पुत्रसदृशत्वाद् ग्राह्येषु मुख्य इति ज्ञाप्यते । मुख्याभावे तत्सदृशः प्रतिनिधिरिति न्यायात् ।

बहुत से भाइयों के बीच में एक भाई पुत्रवान् है तो उस पुत्र से सब भाई पुत्र वाले होते हैं, ऐसा मनु ने कहा है।' इस वचन से विना पुत्र वाले को स्वर्गादि लोक नहीं होते और ब्राह्मण उत्पन्न होते ही तीन ऋण से ऋणी होता है इत्यादि शास्त्र के बोधन से निस्संतानत्व प्रयुक्त दोष की निवृत्ति, विधि से स्वीकार नहीं करने पर भाई के पुत्र से चाचा का हो जाता है यह पूर्वोक्त मनुवचन

भयलोभ से नहीं किया गया किन्तु प्रेमपूर्वक किया गया यह अर्थ पर्यवसित हुआ। पति के रहने पर पति की आज्ञा से और न रहने पर स्त्री को स्वतः दान या प्रतिग्रह का अधिकार है। 'ब्राह्मणानां सपिण्डेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः । तदभावेऽसपिण्डो वा अन्यत्र तु न कारयेत् ॥'

पुत्रग्रहण का प्रकार—'प्रथमं नित्यकर्म विधाय अग्निस्थापनं कृत्वा आधारावाज्यभागौ हुत्वा महाव्याहृति होमं पञ्चवारुणसर्वप्रायश्चित्तप्राजापत्यस्विष्टकृद्धोमं च कृत्वा व्याहृतिहोमं कुर्यात् । होमानन्तरं पूर्णाहुतिं दत्वा पुत्रं गृह्णीयात् ।

दत्तकस्य जनकगोत्रं पिण्डदातृत्वं वा तद्धनहारित्वं न तिष्ठति । किन्तु येन गृहीतस्तस्यैव गोत्रं पिण्डदत्वं धनहारित्वं च दत्तकस्य । दत्तकग्रहणमुहूर्तः—'हस्तादिपञ्चकभिषग्वसुपुष्यभेषु सूर्यक्षमाजगुरुभार्गववासरेषु । रिक्ताविनार्जिततिथिष्वलिकुम्भलग्ने सिंहे वृषे भवति दत्तपरिग्रहोऽयम् ॥' इति ।

से बोधित होता है। इसलिये ग्राह्य पुत्रों में पुत्र के सादृश्य से भाई का पुत्र ही मुख्यतः ग्राह्य है। मुख्य के न होने पर मुख्य के सदृश प्रतिनिधि होता है यह न्याय है।

न चास्मादेव वाक्याद् विधिवत्प्रतिग्रहं विनैव तस्य पुत्रत्वमिति शंकचम्। तथा सति औरसदत्तकादिद्वादशविधपुत्रवदेतस्य पत्नीतः पूर्वमेव धनहारित्वपिण्डदत्वौचित्येन 'पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तत्सुता गोत्रजा बन्धुः'इति तत्क्रमवाक्ये भ्रात्रनन्तरं भ्रातृसुतनिवेशानुपपत्तेः। तस्मात्पत्नीतः पूर्वं मदीयपिण्डदानधनग्रहणेऽधिकारी कश्चिद्भवत्विति कामनायां विधिवत्स्वीकृत एव तथाधिकारी भवति नान्यथा।

इसी वाक्य से विधिपूर्वक प्रतिग्रह के विना ही उसका पुत्रत्व है इसकी शंका नहीं करनी चाहिये। ऐसा होने पर औरस दत्तक आदि बारह प्रकार के पुत्रों की तरह इस भ्रातृ पुत्र की स्त्री से पहिले ही धन-हरण और पिण्डदान के औचित्य से 'पत्नी दुहितरश्चैव' इत्यादि मूलोक्त इस क्रम वाक्य में भाई के बाद भाई के पुत्र के निवेश होने की अनुपपत्ति होगी। इसलिये पत्नी से पहिले मेरे पिण्डदान और मेरे धन का ग्रहण करने वाला कोई अधिकारी हो इसी कामना से विधिवत् स्वीकृत ही वैसा अधिकारी होता है, अन्य प्रकार से नहीं।

तादृशकामनाया अभावे तु पितृऋणापाकरणादिपारलौकिकमात्रार्थं दत्तपुत्रो न ग्राह्यः। भ्रातुपुत्रेणैव तत्सिद्धेरित्येवं वचनतात्पर्यम्।

वैसी कामना के न होने पर तो पिता का ऋण आदि देकर परलोकमात्र ही के लिये दत्तक पुत्र नहीं लिया जाता, क्योंकि भतीजे से इन सब की सिद्धि हो जाती है, यही उस वचन का तात्पर्य है।

क्वचिद्देशे वैदिकविधिं विनापि दातृग्रहीतृसंमतिराजपुरुषाद्यनुमत्यादिलौकिकव्यापारमात्रेणोपनयनादिसंस्कारकरणमात्रेण च सगोत्रसपिण्डे पुत्रत्वसिद्धिव्यवहारो दृश्यते। तत्र मूलं नोपलभ्यते।

किसी देश में वैदिक विधि के बिना भी देने लेने वाले की सम्मति राजपुरुषों की अनुमति आदि केवल लौकिक-व्यापार तथा उपनयन आदि संस्कार करने मात्र से सगोत्र और सपिण्ड में पुत्रत्व-सिद्धि का व्यवहार देखा जाता है। किन्तु इसमें प्रमाण नहीं पाया जाता।

अथ सपत्न्याः सपुत्रत्वे सपत्न्या अग्राह्यत्वम्

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत्।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रिण्यो मनुरब्रवीत्॥

इति वचनं तु सापत्नपुत्रस्यागृहीतस्यापि पुत्रत्वपिण्डदानाद्यधिकारित्वविधायकम्। तेनैकसपत्न्याः सपुत्रत्वेऽन्यसपत्न्या पुत्रो न ग्राह्यः।

दौहित्रो भागिनेयश्च शूद्राणां विहितः सुतः।
ब्राह्मणादित्रये नास्ति भागिनेयसुतः क्वचित्॥

न त्वेवैकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वेति न ज्येष्ठं पुत्रं दद्यादिति च। अत्रौरसानेकपुत्रेण पुत्रदानं कार्यमिति विधीयते। तेन पूर्वं दत्तको गृहीतस्तत औरसो जातस्तादृशानेकपुत्रेण दत्तक एकल औरसो वा न देयः।

'सर्वासामेकपत्नीनां' यह वचन तो अगृहीत सौतेले पुत्र को भी पुत्रत्व पिण्डदान आदि का अधिकारित्व का विधायक है। इससे एक सौत को लड़का होने पर दूसरी सौत को पुत्र का ग्रहण नहीं करना चाहिये। शूद्रों को लड़की के लड़के और बहिन के लड़के को दत्तक पुत्र लेना विहित है। ब्राह्मणादि तीनों वर्णों में बहिन का लड़का कही पुत्र नही माना जाता। केवल एक पुत्र हो तो न दे न ले और जेठे पुत्र को नहीं दे। इसमें जिसके अनेक औरस पुत्र हों वही पुत्रदान करे यही विधान है। इससे पहले दत्तक को ग्रहण कर लिया तदनन्तर औरस उत्पन्न हो गया वैसे अनेक पुत्र वाला दत्तक या अकेला औरस पुत्र न दे।

सधवया स्त्रिया पत्यनुज्ञया पुत्रो ग्रहीतव्यो दातव्यश्च। भर्त्रनुज्ञाभावे तु न ग्राह्यो न देयः। एवं विधवयापि स्त्रिया त्वया पुत्रः स्वीकार्य इति उक्त्वा भर्तरि मृते ग्राह्यः। स्पष्टमीदृशानुज्ञाभावे भर्तृजीवनदशायां तन्मरणोत्तरमाप्तमुखाद्वा पुत्रस्वीकारविषयकभर्त्रभिप्रायं ज्ञातवत्यापि ग्राह्य इति सर्वसंमतम्।

सधवा स्त्री को पति की आज्ञा से पुत्रग्रहण और पुत्रदान करना चाहिये। पति की अनुज्ञा के विना तो न लेना न देना चाहिये। इसी तरह विधवा स्त्री को भी 'तुम दत्तक पुत्र स्वीकार कर लेना' यह कहकर पति के मरने पर दत्तक लेने का अधिकार है। ऐसी स्पष्ट आज्ञा यदि पति से न मिली हो तो पति के जीवनावस्था मे या उसके मरने के बाद या यथार्थवक्ता के द्वारा पुत्र स्वीकार विषयक पति के अभिप्राय को जानने वाली भी विधवा पुत्र-ग्रहण कर सकती है, यह सर्व-सम्मत है।

एतदुभयविधभर्त्रनुज्ञाभावेपि तत्तच्छास्त्रान्नित्यकाम्यव्रतादिधर्माचरण इव पुत्रप्रतिग्रहेपि नापुत्रस्य लोकोस्तीत्यादिसामान्यशास्त्रादेव विधवाया अधिकारः। 'न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वान्यत्र भर्त्रनुज्ञानात्' इति वसिष्ठवाक्यं तु भर्त्रनुज्ञारहितां प्रति पुत्रप्रतिग्रहाभ्यनुज्ञापरं न तु पुत्रप्रतिग्रहनिषेधपरम्, शास्त्रप्राप्तनिषेधायोगात्। अतस्तादृशस्त्रियाः पुत्रप्रतिग्रहप्रतिबन्धेन वृत्तिलोपपिण्डविच्छेदादिकुर्वन्नरकभाग्भवति। 'यो ब्राह्मणस्य वृत्तौ तु प्रतिकूलं समाचरेत्। विड्भुजां तु कृमीणां स्यात्' इति शास्त्रादिति कौस्तुभे विस्तरः।

इन दो प्रकार से पति की आज्ञा न होने पर भी उन-उन शास्त्रों से नित्य, काम्यव्रत आदि धर्माचरण की तरह पुत्रग्रहण में भी 'नापुत्रस्य लोकोऽस्ति' इत्यादि सामान्यशास्त्र ही से विधवा को पुत्रग्रहण का अधिकार है। 'न स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्र भर्त्रनुज्ञानात्' यह वशिष्ठ वाक्य तो भर्ता की आज्ञा से रहित के प्रति, पुत्रग्रहण का आज्ञा-परक है, न कि पुत्र प्रतिग्रह का निषेधपरक, क्योंकि शास्त्र प्राप्त निषेध वचन का अयोग है। इसलिये ऐसी स्त्री का त्र प्रतिग्रह के प्रतिबन्ध होने से जीविका का नाश पिण्ड का विच्छेद करता हुआ नरकगामी होता है शास्त्र का वचन है कि जो आदमी ब्राह्मण की वृत्ति में बाधक होता है वह विष्ठाखाने वाले कृमियों में उत्पन्न होता है। यह कौस्तुभ में विस्तारपूर्वक लिखा है।

स्त्रीभिः पुत्रस्वीकारे व्रतादिवद्विप्रद्वारा होमादिकं कार्यम्, एवं शूद्रेणापि। विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय वैदिकमन्त्रैस्तदीयहोमादि करोति तत्र शूद्रः पुण्यफलभाग्भवति किंतु विप्रस्यैव प्रत्यवायः। पुत्रं प्रतिगृह्य ग्रहीत्रा जातकर्माद्याश्चूडाद्या वा संस्काराः कार्या इति मुख्यः पक्षः। असंभवे सगोत्रसपिण्डेषु कृतोपनयनोपि

विवाहितोपि वा दत्तको भवति । असंजातपुत्र एव विवाहितो ग्राह्य इति मे भाति । सपिण्डसगोत्रेषु कृतोपनयन एवेत्यपि भाति । भिन्नगोत्रस्तु अकृतोपनयन एव ग्राह्यः । केचित्तु कृतोपनयनोपि भिन्नगोत्रो ग्राह्य इत्याहुः । इति ग्राह्याग्राह्यविवेकः ।

स्त्रियों के द्वारा पुत्र स्वीकार करने में व्रत आदि की तरह ब्राह्मण द्वारा होमादि कराना चाहिये, इसी प्रकार शूद्र को भी । ब्राह्मण शूद्र से दक्षिणा लेकर वैदिक-मन्त्रों से उसका होम आदि करता है तो इसमें शूद्र पुण्य फल का भागी होता है, किन्तु ब्राह्मण ही प्रायश्चित्ती होता है । पुत्र का प्रतिग्रह लेकर ग्रहण करने वाला जातकर्म आदि या चूड़ा आदि संस्कारों को करे, यह मुख्य पक्ष है । ऐसा सम्भव न होने पर सगोत्र सपिण्ड में से उपनयन किया हुआ भी या विवाहित भी दत्तक होता है । विवाहित दत्तक विना पुत्र हुआ ही ग्रहण करना चाहिये, ऐसा मुझे अच्छा लगता है । असपिण्ड सगोत्रों में उपनयन किया हुआ ही ग्राह्य होता है, यह भी युक्त है । भिन्न गोत्र तो जिसका उपनयन नहीं हुआ है, ऐसे ही को ग्रहण करे । कोई तो उपनयन किया हुआ भी भिन्न गोत्र की ग्राह्यता है, ऐसा कहते है । ग्राह्या ग्राह्यविवेक समाप्त ।

अथ ऋग्वेदिनां पुत्रप्रतिग्रहप्रयोगः

पूर्वेद्युः कृतोपवासः पवित्रपाणिः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य 'ममाप्रजत्वप्रयुक्तपैतृकऋणापाकरणपुन्नामनरकत्राणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं शौनकोक्तविधिना पुत्रप्रतिग्रहं करिष्ये, तदङ्गत्वेन स्वस्तिवाचनमाचार्यवरणं विष्णुपूजनमन्नदानं च करिष्ये ।' आचार्यमधुपर्कान्ते विष्णुं संपूज्य ब्राह्मणादिभोजनं संकल्पयेत् ।

पहिले दिन उपवास करके पवित्र हाथ से प्राणायाम करके देशकाल कह कर 'मेरे अप्रजत्व प्रयुक्त पितृ संबन्धी ऋण को हटाने के लिये पुम्नामक नरक से रक्षा द्वारा भगवान् की प्रसन्नता के लिये शौनक की कही विधि से पुत्र का प्रतिग्रह करूँगा और पुत्र प्रतिग्रह का अंग होने से स्वस्तिवाचन, आचार्यवरण, विष्णुपूजन और अन्नदान भी करूँगा' ऐसा संकल्प कर आचार्य के मधुपर्क के अन्त में विष्णु की सम्यक् पूजा करके ब्राह्मण आदि के भोजन का संकल्प करे ।

आचार्यः 'यजमानानुज्ञया पुत्रप्रतिग्रहाङ्गत्वेन विहितं होमं करिष्ये' इति संकल्प्य अग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते सकृदग्निं सूर्यासावित्रीं षड्वारं चरुणा अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि अन्वाधाय अष्टाविंशतिमुष्टीस्तूष्णीं निरुप्य तथैव प्रोक्ष्याज्योत्पवनान्तं कुर्यात् । दातारं गत्वा एतस्मै पुत्रं देहीति याचयेत् ।

आचार्य 'यजमान की आज्ञा से पुत्र प्रतिग्रह का अंग होने से विहित होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्नि की प्रतिष्ठा कर 'चक्षुषी आज्येन' इसके अन्त में एक बार अग्नि को सूर्य और सावित्री को छ बार चरु से, अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति को घी से तथा बाकी बचे हुए घी से स्विष्टकृत् इत्यादि करके अट्ठाइस मुट्ठी रखकर और उसका प्रोक्षण और घी का उत्पवन कर्म करे । आचार्य—पुत्र-दाता के पास जाकर 'इनके लिये पुत्र दीजिये' ऐसी याचना करे ।

दाता देशकालौ संकीर्त्य 'श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुत्रदानं करिष्ये' इति संकल्प्य गणपतिपूजनान्ते प्रतिग्रहीतारं यथाशक्ति संपूज्य ये यज्ञेनेति पञ्चानां नाभाने-

दिष्ठो मानवो विश्वेदेवास्त्रिष्टुप् पञ्चम्यनुष्टुप् पुत्रदाने विनियोगः । ये यज्ञेनेति ऋक्पञ्चकान्ते 'इमं पुत्रं तव पैतृकऋणापाकरणपुन्नामनरकत्राणसिद्धयर्थम् आत्मनः श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं तुभ्यमहं संप्रददे नमम प्रतिगृह्णातु पुत्रं भवान्' इति प्रतिग्रहीतृहस्ते जलं क्षिपेत् ।

दाता, देश काल को कहकर 'भगवान् की प्रसन्नता के लिये पुत्रदान करूँगा' ऐसा संकल्प करके गणपति पूजन के बाद प्रतिग्रह करने वाले की यथाशक्ति पूजा करे 'ये यज्ञेन' इन पांच मन्त्रों का मूलोक्त विनियोग है । 'ये यज्ञेन' इन पांच ऋचा के अन्त में 'इस पुत्र को आपके पैतृक ऋण हटाने के लिये पुम् नामक नरक से रक्षा की सिद्धि और भगवान् की प्रीति के लिये आप को देता हूँ मेरा नही है आप पुत्र को ग्रहण करें, ऐसा कहकर प्रतिग्रहीता के हाथ में जल छोड़ दे ।

ग्रहीता देवस्यत्वेपि हस्तद्वयेन प्रतिगृह्य स्वाङ्के उपवेश्य अङ्गादङ्गात्संभवसीति मन्त्रेण मूर्धनि जिघ्रेत् । वस्त्रकुण्डलाद्यलंकृतं गीतवाद्यैः स्वस्तिमन्त्रैश्च स्वगृहमानीय पादौ प्रक्षाल्याचम्याचार्यदक्षिणतः स्वयं स्वदक्षिणे भार्योत्सङ्गे पुत्र इत्युपविशेत् । आचार्यो बर्हिरासादनाद्याज्यभागान्ते चरुमवदाय यस्त्वाहृदेति द्वयोरात्रेयो वसुश्रुतोग्निस्त्रिष्टुप् पुत्रप्रतिग्रहाङ्गहोमे विनियोगः । यस्त्वाहृदेति ऋग्द्वयेनैकमेवावदानं जुहुयात् ।

ग्रहण करने वाला 'देवस्यत्वा' इस मन्त्र से दोनों हाथों से ग्रहण करके अपनी गोद में बैठाकर 'अगादगात्सम्भवसि' इत्यादि मन्त्र से बालक का शिर सूंघे । वस्त्र कुण्डल आदि से अलकृत और गाने बजाने के साथ स्वस्ति मन्त्रों के पाठ से अपने घर लाकर पैर धोकर आचमन करके स्वय आचार्य के दाहिनी ओर और अपने दाहिनी ओर स्त्री के गोद में पुत्र रखकर बैठे । आचार्य कुशा आसादन आदि आज्यभाग के अन्त में चरु को लेकर 'यस्त्वाहृदा' इन दो मन्त्रों का 'आत्रेय वसुश्रुतोऽग्नि' विनियोग है । 'यस्त्वाहृदा' इन दो ऋचाओं से एक ही अवदान का होम करे ।

यजमानः अग्नय इदं नमम तुभ्यमग्ने पर्यवहन्सूर्यासावित्री सूर्यासावित्र्यनुष्टुप् सूर्यासावित्र्या इदं० । सोमो ददिति पञ्चानां सूर्यासावित्री सूर्यासावित्री अनुष्टुभौ जगती त्रिष्टुबनुष्टुप् । पंचस्वपि सूर्यासावित्र्या इदं० । एवं सप्तचर्वाहुतीर्हुत्वाज्यं व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा स्विष्टकृदादिसमाप्याचार्याय धेनुं दत्त्वा विप्रान्भोजयेत् ।

यजमान कहे 'अग्नये इदं न मम' 'तुभ्यमग्ने पर्यवहन् सूर्यासावित्री' इन पांचो ऋचाओं में भी सूर्यासावित्र्या इदं न मम । इसी प्रकार सात चरु आहुति का होम करके व्यस्त समस्त व्याहृतियों से होम करके स्विष्टकृत् आदि समाप्त कर आचार्य को ब्याई हुई गाय देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे ।

अथ यजुर्वेदिनां बौधायनोक्तरीत्या प्रयोगः

तत्र राज्ञः शिष्टानां बन्धूनां चानुमतिं लब्ध्वा संकल्पादि आचार्यपूजनान्तं प्राग्वत्कुर्यात् । ब्राह्मणभोजनसंकल्पान्ते आचार्यो देवयजनोल्लेखनादि आप्रणीताभ्यः कुर्यात् । ग्रहीता दातुः समक्षं गत्वा पुत्रं मे देहीति स्वयमेव भिक्षेत् ।

दाता ददामीत्याह । ततो दातुः संकल्पादिपुत्रदानान्तं पूर्ववत् । ग्रहीता धर्मायत्वा गृह्णामि संतत्यै त्वा गृह्णामीति परिगृह्यैनं पुत्रं वस्त्रकुण्डलाङ्गुलीयकैरलंकुर्यात् ।

राजा शिष्टों और बन्धुओं की अनुमति पाकर संकल्प से लेकर आचार्य पूजन तक पहिले की तरह करे । ब्राह्मणभोजन सकल्प के अन्त में आचार्य देवयजनोल्लेखनादि प्रणीतापर्यन्त कृत्य करे । पुत्र-प्रतिग्रह लेने वाला, पुत्र-दाता के सामने जाकर 'मुझे पुत्र दीजिये' स्वयं ऐसी याचना करे । दाता—'देता हूँ' ऐसा कहे । तदनन्तर दाता का संकल्प आदि पुत्र दानान्त कृत्य पहिले की तरह करे । पुत्र ग्रहण करने वाला कहे 'धर्म के लिये तुम्हें ग्रहण करता हूँ, सन्तति के लिये तुमको ग्रहण करता हूँ' ऐसा कहकर ग्रहण करे । पुत्र को वस्त्र कुण्डल और अंगूठी से अलंकृत करे ।

आचार्यः कुशमयं बर्हिः पालाशमयमिध्मं च संपाद्य परिधानप्रभृति अग्निमुखं कृत्वा चरुश्रपणासादनान्ते पूर्वाङ्गहोमं कृत्वा यस्त्वाहृदाकीरिणेति पुरोनुवाक्यामुक्त्वा यस्मै त्वं सुकृते इति याज्यया हुत्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतीर्हुत्वा स्विष्टकृदादि कुर्यात् । आचार्याय दक्षिणावस्त्रकुण्डलाङ्गुलीयकं दद्यादिति ।

आचार्य कुशमय बर्हि और पालाशमय समिधा ठीक कर परिधान प्रभृति अग्निमुख करके चरु का श्रपण और आसादन के अन्त में पूर्वांग होम करके 'यस्त्वाहृदा कीरिण' इस पूरे अनुवाक्या को कहकर 'यस्मै त्वं सुकृते' इस याज्या से होम करके व्यस्त समस्त व्याहृति का होम करके स्विष्टकृत् आदि करे । आचार्य को दक्षिणा, वस्त्र, कुण्डल और अंगूठी देवे ।

अथ दत्तकस्य गोत्रसापिण्ड्यादिनिर्णयः

परगोत्रोत्पन्नदत्तकस्योपनयनमात्रे पालकगोत्रेण कृते उपनयनोत्तरं प्रतिग्रहे वा दत्तकेनाभिवादनश्राद्धादिकर्मसु गोत्रद्वयोच्चारः कार्यः । चूडादिसंस्कारे पालकेन कृते पालकैकगोत्र एव ।

दूसरे गोत्र में उत्पन्न दत्तक का केवल उपनयन में पालक-गोत्र से करने पर अथवा उपनयन के बाद प्रतिग्रह में दत्तक को अभिवादन श्राद्ध आदि कर्मों में दोनों गोत्र का उच्चारण करना चाहिये । पालक ने चूड़ा आदि संस्कार किया हो तो पालक का एक ही गोत्र का उच्चारण करना चाहिये ।

विवाहे तु सर्वदत्तकेन जनकपालकयोरुभयोरपि पित्रोर्गोत्रप्रवरसंबन्धिनी कन्या वर्जनीया । नात्र साप्तपुरुषं पाञ्चपुरुषमित्येवं पुरुषनियम उपलभ्यते ।

विवाह में तो सब दत्तक को जनक और पालक दोनो के गोत्र और प्रवर संबन्धिनी कन्या वर्ज्य है । इसमें सात पीढ़ी पांच पीढी इस प्रकार का पुरुष नियम नहीं मिलता है ।

सापिण्ड्यं तु जनकगोत्रेणोपनयने जनकमातृपित्रोः कुले साप्तपूरुषं पाञ्चपूरुषं, ग्रहीतृमातृपितृकुले त्रिपूरुषम् । ग्रहीतृगोत्रेणोपनयनमात्रे कृते उभयत्र पाञ्चपुरुषं, पितृकुले मातृकुले तु त्रिपुरुषम् । जातकर्माद्युपनयनान्तसंस्कारे ग्रहीत्रा कृते ग्रहीतृकुले साप्तपुरुषं, मातृतः पाञ्चपूरुषम् । अतो न्यूनं जनककुले कल्प्यम् ।

केचित्तु दत्तकप्रवेशे कुलद्वयेपि सर्वथा न्यूनमेव सापिण्ड्यमित्याहुः। एवं दत्तकसन्ततेरपि सापिण्ड्यं ज्ञेयम्।

सापिण्ड्य तो जनकगोत्र से उपनयन करने पर उत्पन्न करने वाले माता पिता के कुल में सात पुरुष, पाच पुरुष का और ग्रहण करने वाले माता पिता के कुल में तीन पुरुष का होता है। ग्रहीता के गोत्र से केवल उपनयन मात्र करने पर दोनो तरफ पितृकुल में पाच पुरुष मातृकुल मे तीन पुरुष का होता है। जातकर्म से लेकर उपनयन पर्यन्त सस्कार ग्रहीता से किये जाने पर ग्रहीता के कुल में सात पुरुष और माता सेपांच पुरुष का होता है। इससे कम जनक कुल में सापिण्ड्य की कल्पना करनी चाहिये। कुछ लोग तो दत्तक के आने पर दोनों कुल में भी सब प्रकार से कम ही सापिण्ड्य होता है, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार दत्तक की सतति का भी सापिण्ड्य जानना चाहिये।

अथ दत्तकसूतकनिर्णयः

दत्तकस्य मरणे पूर्वापरपित्रोस्त्रिरात्रं सपिण्डानामेकाहमाशौचम्। उपनीतदत्तकमरणादौ पालकसपिण्डाना दशाहादीति नीलकण्ठीये दत्तकनिर्णये। एवं दत्तकेनापि पूर्वापरपित्रोर्मृतौ त्रिरात्र पूर्वापरसपिण्डाना मरणे एकाहम्। पित्रोरौर्ध्वदेहिककरणे तु कर्माङ्गं दशाहमेव। दत्तकस्य पुत्रपौत्रादेर्जन्ममरणयोः सपिण्डानामेकाहः। सगोत्रसपिण्डे दत्तीकृते तु सर्वेषां दशरात्रमव।

दत्तक के मरने पर पहिले और पीछे के माता पिता को त्रिरात्राशौच और उनके सपिण्डों को एक दिन का आशौच होता है। उपनयन किये हुए दत्तक के मरण आदि में पालक के सपिण्डों को दस दिन का आशौच नीलकण्ठ के बनाये 'दत्तकनिर्णय' में कहा है। इसी प्रकार पहिले पीछे के माता पिता के मरने पर दत्तक को भी त्रिराशौच होता है। पहिले पीछे के पिता के सपिण्डों को मरने में एक दिन का आशौच होता है। पिता माता के और्ध्वदेहिक कर्म करने पर तो कर्मांग दस दिन का ही आशौच होता है। दत्तक के पुत्र पौत्र आदि के जन्म और मरण में सपिण्डों को एक दिन का ही आशौच होता है। सगोत्र सपिण्ड में से दत्तक करने पर तो सबको दस ही दिन का आशौच होता है।

अथ दत्तकधनभागकथनम्

पत्नीदुहित्रादिसत्त्वेपि दत्तक एव पितृधनभागी भवति। दत्तकग्रहणोत्तरमौरसे जाते दत्तकश्चतुर्थांशभागी न समभागी। केचित्तु प्रतिग्रहीत्रा जाताद्युपनयनान्तसस्कारे विधाने च कृते औरससमानांशभागित्वम्। संस्कारमात्रकरणे विधानाभावे विवाहमात्रलाभो नान्यधनलाभः। कतिपयसंस्कारकरणे चतुर्थांशलाभ इत्याहुः।

पत्नी लड़की आदि के रहने पर भी दत्तक ही पितृ धन का अधिकारी होता है। दत्तक लेने के बाद औरस पुत्र होने पर दत्तक चौथाई भाग का अधिकारी होता है, बराबर हिस्सा नहीं पाता। कोई तो दत्तक लेने वाले के द्वारा जातकर्म से लेकर उपनयन पर्यन्त संस्कार करने और विधान के करने पर भी औरस के समान हिस्से का अधिकारी दत्तक होता है। केवल सस्कार करने पर और विधान नहीं करने पर केवल विवाह ही का लाभ होता है अन्य धन का लाभ नहीं होता। दो एक संस्कार करने पर चतुर्थांश धन पाता है, ऐसा कहते हैं।

अथ दत्तकौरसयोः सत्त्वे पिण्डदाननिर्णयः

दत्तकसत्त्वेऽप्यौरसस्यैव पित्रोः पिण्डदानेऽधिकारः। जनकस्य पिण्डदाभावे दत्तक एव जनकपालकयोरुभयोरपि श्राद्धं कुर्याद् धनं चोभयोर्गृह्णीयादिति नीलकण्ठीये।

दत्तक के रहने पर भी माता पिता के पिण्डदान में औरस पुत्र का ही अधिकार होता है। जनक को कोई पिण्ड देने वाला न हो तो दत्तक ही जनक और पालक दोनों का श्राद्ध करे और दोनों का धन ग्रहण करे, ऐसा नीलकण्ठ के दत्तकनिर्णय में है।

अथ दत्तककन्याविचारः

एवं दत्तकन्याया अपि स्वीकार उक्तविधिना कार्यः। तत्र परगोत्रोत्पन्नाया ग्रहणे विवाहे गोत्रद्वयवर्जनं प्राग्वत्। पुत्रपत्न्योरभावे दत्तकन्यैव पितृधनभागिनी। इति दत्तोपयोगिसर्वनिर्णयः।

जिस प्रकार पुत्र के न रहने पर दत्तकपुत्र का ग्रहण किया जाता है इसी प्रकार दत्तक कन्या को भी कही हुई विधि से स्वीकार कर लेना चाहिये। उसमें दूसरे गोत्र की उत्पन्न कन्या के ग्रहण करने पर विवाह में दोनों के गोत्र का वर्जन पहिले की तरह से करे। ग्रहीता के पुत्र और स्त्री के न रहने पर दत्त-कन्या पिता के धन की अधिकारिणी होती है। दत्तक के उपयोगी सब निर्णय समाप्त।

अथ कन्यानामेवोत्पत्तौ पुत्रार्थं पुत्रकामेष्टिः

ऋतुकालात्षष्ठे दिने सभार्यः कृताभ्यङ्गः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य 'पुत्रकामः पुत्रकामेष्टिं करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादिनान्दीश्राद्धान्तेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनात्र प्रधानम् अग्निं पञ्चवारं वरुणं पञ्चवारं विष्णुं पृथ्वीं विष्णुं सोमं सूर्यासावित्रीं पायसेन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। निर्वापकाले तूष्णीं षष्टिमुष्टीन्निरुप्य तथैव प्रोक्ष्य श्वेतवत्सश्वेतगोः क्षीरेण चरुं पक्त्वाज्यभागान्ते आते गर्भ इति अग्निरैतु इति सूक्तद्वयस्य हिरण्यगर्भऋषिः क्रमेणाग्नीवरुणौ देवते अनुष्टुप्जगत्यौ छन्दसी पायसचरुहोमे विनि०।

ऋतुकाल से छठे दिन पत्नी के साथ अभ्यंग स्नान करके प्राणायाम कर देशकाल को कहकर 'पुत्र की इच्छा से पुत्रकामेष्टि करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्वस्तिवाचन से लेकर नान्दीश्राद्ध के अन्त में अग्निस्थापन कर 'चक्षुषी आज्येन' से यहां प्रधान अग्नि को पांच बार, वरुण को पांच बार, विष्णु पृथ्वी, विष्णु सोम, सूर्य और सावित्री की पायस से और शेष बचे हुए से स्विष्टकृत् इत्यादि करे। निर्वाप के समय में चुपचाप साठ मुट्ठी रखकर उसी तरह से साफ करके सफेद बच्चेवाली सफेद गाय के दूध से चरु पकाकर आज्यभाग के अन्त में 'आते गर्भः' 'अग्निरैतु' इन दोनों सूक्तों का 'हिरण्यगर्भ ऋषि' इत्यादि मूलोक्त विनियोग करके,

ॐ आते गर्भो योनिमैतु पुमान्बाण इवेषुधिम्।
आवीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा॥ अग्नय इदं०।
करोमि ते प्राजापत्यमागर्भो योनिमैतु ते।
अनूनः पूर्णो जायतामश्लोणोऽपिशाचधीतः स्वाहा॥ अग्नय०।

पुमांस्ते पुत्रो नारितं पुमाननुजायताम् ।
तानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्तु नौ स्वाहा ॥ अग्नय० ।
यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति नः ।
तैस्त्वं पुत्रान्विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव स्वाहा ॥ अग्नय० ।
काम. समृद्धचतां मह्यमपराजितमेव मे ।
यं कामं कामये देव तं मे वायो समर्धय स्वाहा ॥ अग्नय० ।
अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् ।
तदयं राजा वरुणोनुमन्यतां यथेयं स्त्रीपौत्रमघं न रोदात्स्वाहा ॥

वरुणायेदं० ।

इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः ।
अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिप्रबुध्यतामियं स्वाहा ॥

वरु० ।

मा ते गृहे निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु ।
मा त्वं विकेश्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके
विराजपश्यन्ती प्रजां सुमनस्यमाना स्वाहा ॥ वरु० ।
अप्रजस्तां पौत्रमृत्युं पाप्मानमुतवाघम् ।
शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्यद्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशं स्वाहा ॥ वरुणा० ।
देवकृतं ब्राह्मणं कल्पमानं तेन हन्मि योनिषदः पिशाचान् ।
क्रव्यादो मृत्यूनधरान्पातयामि दीर्घमायुस्तव जीवन्तु पुत्राः स्वाहा ॥ वरु० ।

नेज मेषेति तिसृणा विष्णुस्त्वष्टागर्भकर्ताविष्णुपृथ्वीविष्णवोनुष्टुप् । नेज मेष० विष्णव० यथेयं पृथिवी० पृथिव्या इ० विष्णो श्रेष्ठेन० विष्णव० सोमो धेनुं राहूगणो गौतमः सोमस्त्रिष्टुप् । सोमो धेनुं० सोमायेदं० तां पूषन् सूर्यासावित्री सूर्यासावित्री त्रिष्टुप् । पायसचरुहोमे वि० । तां पूषञ्छिव० सूर्यासावित्र्या इदं०

इति पञ्चदशाहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृद्धोमं कृत्वा दंपती अपश्यंत्वेति द्वयोः प्रजावान्प्राजापत्यः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् हुतशेषचरुप्राशने विनियोगः । अपश्यंत्वेति द्वाभ्यां प्राश्य पिशंगभृष्टिमित्यस्य दैवोदासिः पारुच्छेप इन्द्रो गायत्री नाभ्यालंभने वि० । पिशंगभृष्टि० इति दंपती नाभ्यालंभनं कुर्याताम् । यजमानः प्रायश्चित्तादिहोमशेषं समाप्य विप्रेभ्यो गां सुवर्णादिदक्षिणां च दत्त्वा रात्रौ दंपती दर्भास्तरणे शयीयाताम् । इति पुत्रकामेष्टिप्रयोगः ।

ॐ आते गर्भो० १, करोमि ते० २, पुमांस्ते पुत्रो ३, यानि भद्राणि० ४, कामः समृद्धयतां० ५, अग्निरैतु० ६, इमामग्निस्त्रायतां० ७, मा ते गृहे० ८, अप्रजस्तां० ९, देवकृतं

ब्राह्मणं० १०, नेजमेष० ११, यथेयं पृथिवी० १२, विष्णो श्रेष्ठेन० १३, सोम धेनु० १४, तां पूषञ्छिव० १५,

इन मूलोक्तमन्त्रों से १५ आहुति होम करके और स्विष्टकृत् होम करके 'अपश्यन्त्वा' इत्यादि दोनों मन्त्रों के विनियोग के पश्चात् 'अपश्यन्त्वा' इन दो मन्त्रों के हवन से बचे हुए चरु का प्राशन और 'पिशगभृष्टि' इत्यादि विनियोग करके 'पिशगभृष्टि' इस मन्त्र से पति और पत्नी अपने नाभि का स्पर्श करें। यजमान प्रायश्चित्त आदि होम का अवशिष्ट कर्म समाप्त कर ब्राह्मणों को गाय सुवर्ण आदि दक्षिणा देकर रात में पति पत्नी कुश बिछाकर जमीन पर सोवें। पुत्रकामेष्टि प्रयोग समाप्त।

अथ पुंसवनम्

तत्र [1]पुंसवनं व्यक्ते गर्भे द्वितीये चतुर्थे षष्ठेऽष्टमे वा मासे सीमन्तेन सह वा कार्यम्। शुक्लपञ्चमीमारभ्य कृष्णपञ्चमीपर्यन्त चतुर्थीनवमीचतुर्दशी-पञ्चदशीवर्जिते तिथौ सूर्यभौमगुरुवारेषु प्रशस्तम्। कचिच्चन्द्रबुधशुक्रवारा उक्ताः। नक्षत्राणि तु पुन्नामकानि प्रशस्तानि। तानि च पुष्यश्रवणहस्तपुनर्वसुमृगाभि-जिन्मूलानुराधाऽश्विनीत्येतानि। अत्र पुष्यो मुख्यः। तदभावे श्रवणस्तदभावे हस्तादीनि।

उसमें पुंसवनसंस्कार गर्भ के प्रकट होने पर दूसरे, चौथे, छठे और आठवें महीने में करे। अथवा सीमन्तसंस्कार के साथ ही करे। शुक्ल पञ्चमी से लेकर कृष्ण पञ्चमी तक चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को छोड़कर सूर्य भौम और गुरुवार को उत्तम होता है। कहीं पर चन्द्र, बुध और शुक्रवार भी कहा है। नक्षत्र तो पुन्नामक प्रशस्त होते हैं। पुंनामक नक्षत्र—पुष्य, श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, अभिजित्, मूल, अनुराधा और अश्विनी, ये हैं। इनमें पुष्य मुख्य है। उसके न मिलने पर श्रवण, उसके अभाव में हस्तादि नक्षत्र है।

अयमेव [2]अनवलोभनस्यापि कालः, पुंसवनेन सह करणीयत्वविधानात्। पुंसव-नानवलोभने प्रतिगर्भं कार्ये, गर्भसंस्कारत्वात्। गर्भाधानसीमन्तोन्नयने तु स्त्री-संस्कारत्वात्प्रतिगर्भं नावर्तेते, किन्तु प्रथमगर्भे एव कार्ये। प्रथमगर्भे लोपे तु प्रतिगर्भं तयोर्लोपप्रायश्चित्तमावश्यकम्। न च प्रथमापत्ये तयोः प्रायश्चित्तेन द्वितीयादिगर्भाणां संस्कारसिद्धिर्भवति।

---

१. गर्भाधान से द्वितीयादि मास में जिस दिन पुंसंज्ञक नक्षत्र हो उस दिन स्त्री के दक्षिण नासिका पुट में सवन अर्थात् न्यग्रोधादि-औषधियों के रस का सविधि आसिंचन करना पुंसवन संस्कार कहलाता है। जातूकर्ण्यः—'द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत्। व्यक्ते गर्भे भवेत्कार्यं सीमन्तेन सहाथवा ॥' बृहस्पतिः—'तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टेरन्यत्र शोभनम्। गृष्टेश्चतुर्थे मासे तु षष्ठे मास्यथ वाष्टमे ॥' ज्योतिर्निबन्ध में वसिष्ठ—'मृत्युश्च सौरेस्तनुहानिरिन्दोर्मृतप्रजा पुंसवने बुधस्य। काकी च वन्ध्या भवतीह शुक्रे स्त्रीपुत्रलाभो रविभौमजीवैः ॥' गर्ग के मत में पुंसंज्ञक-नक्षत्र—'पुन्नामा श्रवणस्तिष्यो हस्तश्चैव पुनर्वसुः। अभिजित्प्रौष्ठपाच्चैव अनूराधास्तथाश्वयुक् ॥' मदनरत्न में—'मृतो देशान्तरगतो भर्ता स्त्री यद्यसंस्कृता। देवरो वा गुरुर्वापि वंश्यो वापि समाचरेत् ॥' इति।

२. गर्भ के तीसरे मास में किये जाने वाले संस्कार-विशेष का नाम अनवलोभन है।

ये ही अनवलोभन का भी काल हैं क्यों कि पुंसवन के साथ ही अनवलोभन करने का विधान है। गर्भ संस्कार होने से पुसवन और अनवलोभन सस्कार प्रत्येक गर्भ में करना चाहिये। गर्भाधान और सीमन्तोन्नयन तो स्त्री-संस्कार है इसलिये प्रथम गर्भ के अतिरिक्त दूसरे आदि गर्भों में नहीं करे किन्तु प्रथम गर्भ में ही करे। प्रथम गर्भ में लोप होने पर प्रतिगर्भ में दोनो सस्कार का लोपजन्य प्रायश्चित्त आवश्यक है। प्रथम सतान में गर्भाधान सीमन्तोन्नयन के प्रायश्चित्त से द्वितीयादि गर्भों की संस्कार-सिद्धि नही होती है।

प्रायश्चित्तेन हि प्रत्यवायपरिहारमात्रं न त्वपूर्वाख्यातिशयोत्पादनम्। तत्तु संस्कारविधिनैवेति युक्त प्रतिगर्भ प्रायश्चित्तम्। पुंसवनानवलोभनयोस्तु प्रथमगर्भेऽनुष्ठानेपि प्रतिगर्भं तयोर्लोपे प्रायश्चित्तम्। तच्च पादकृच्छ्रं प्रतिसंस्कारं कार्यम्। बुद्धिकृतलोपे द्विगुणम्। पुंसवने पतिः कर्ता तदभावे देवरादिः।

प्रायश्चित्त से केवल पाप दूर होता है, न कि अपूर्वाख्य अतिशय का उत्पादन होता है। वह तो संस्कार विधि से ही करने पर होता है। अतः प्रत्येक गर्भ में प्रायश्चित्त ठीक है। पुंसवन और अनवलोभन का तो पहिले गर्भ में उनके न करने से प्रायश्चित्त करना चाहिये। वह प्रायश्चित्त कृच्छ्र का चतुर्थांश प्रतिसंस्कार में कर्तव्य है, वह प्रायश्चित्त अज्ञान से नहीं करने पर है। जान बूझ कर नहीं करने से दूना करना चाहिये। पुसवन सस्कार में पति सस्कारकर्ता है पति के न रहने पर देवर आदि कर्ता है।

अथ सीमन्तकालः

तच्चतुर्थेऽष्टमे षष्ठे पञ्चमे मासि वा हितम्।
नवमे मासि वा कुर्याद्यावद् गर्भविमोचनम्॥
स्त्री यद्यकृतसीमन्ता[1] प्रसूयेत कदाचन।
गृहीतपुत्रा विधिवत्सा तं संस्कारमर्हति॥

---

१ गर्भस्पन्दन होने पर पुंसवन कर्म की तरह चतुर्थादिमास एवं पुंसंज्ञक-नक्षत्र में गर्भिणी के सीमन्त को सविधि औदुम्बरादि पाँच द्रव्यों से ऊर्ध्व विनयन करना और औदुम्बरादिपञ्चक को नवगुणित सूत्र से बाँधना सीमन्तोन्नयन कर्म कहलाता है। विज्ञानेश्वर के मत में इसे एक ही बार करना चाहिये। हारीतः—'सकृत्संस्कृतसंस्काराः सीमन्तेन द्विजस्त्रियः। यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत्॥'

हेमाद्रि के मत में इसे प्रत्येक गर्भ में करना चाहिये। हेमाद्रि और कारिका में विष्णु की उक्ति—'सीमन्तोन्नयन कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते। केचिद् गर्भस्य संस्कारात् प्रतिगर्भं प्रयुञ्जते॥' कार्ष्णाजिनिः—'गर्भलम्भनमारभ्य यावन्न प्रसवस्तदा। सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छङ्खस्य वचनं यथा॥' कालविधाने—'सीमन्ते तिष्यहस्तादितिहरिशशभृत्पौष्णविध्युत्तराख्याः पक्षच्छिद्रं च रिक्तां पितृतिथिमपहायापराः स्युः प्रशस्ताः।'

वसिष्ठ के मत में पक्षच्छिद्र—'चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा। षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वयाः स्मृताः॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः। भूता५ष्ट८मनु१४तत्त्वा२५ङ्क९दश१०शेषास्तु शोभनाः॥ मुहूर्तचिन्तामणिः—'वेदा४ङ्का६ष्ट८नवा९के१२न्द्र१४-पक्षरन्ध्रतिथौ त्यजेत्। वस्व८ङ्क९मनु१४तत्त्वा२५शा१०शरा५नाडी परा शुभा॥' अर्थात् पर में शुभ और पूर्व में अशुभ है। नारदः—'विप्रक्षत्रिययोः कुर्याद्दिवा सीमन्तकर्म तत्। वैश्यशूद्रकयोरेतद्दिवा निश्यपि केचन॥' इति।

पक्षतिथिवारनक्षत्राणि पुंसवनोक्तान्येव प्रशस्तानि । कचिद्दशमीपर्यन्तं कृष्णोऽपि ग्राह्यः । पष्ठ्यष्टमीद्वादश्यो रिक्ताः पञ्चदशी च वर्ज्याः । तासु संकटे चतुर्थीचतुर्दशीपौर्णमास्यो ग्राह्याः । क्रमेणाष्टचतुर्दशदशनाडिका आद्यास्त्यक्त्वा षष्ठ्यष्टमीद्वादश्योपि ग्राह्याः । पुन्नक्षत्राणामलाभे रोहिणीरेवत्युत्तरात्रयाणि ग्राह्याणि । उक्तनक्षत्राणां प्रथमान्त्यपादौ त्यक्त्वा मध्यमपादद्वयं ग्राह्यमित्युक्तम् ।

वह सीमन्त चौथे, आठवें, छठे या पाँचवें मास में हितकर है । नवें महीने में भी तब तक किया जा सकता है जब तक गर्भ मुक्त नहीं होता । विना सीमन्त-संस्कार किये कदाचित् स्त्री प्रसव करे तो पुत्र को लेकर उस संस्कार को विधिवत् करे । इसमें पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, पुसवन की तरह ही प्रशस्त है । कहीं दशमी तक कृष्णपक्ष भी गृहीत है । षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, रिक्ता तिथि और पूर्णिमा वर्जित है । संकट में चतुर्थी, चतुर्दशी और पूर्णिमा भी ग्राह्य है । क्रम से आठ, चौदह और दस घटी पहिली छोड़कर षष्ठी, अष्टमी और द्वादशी को भी ग्राह्य माना है । पुन्नामक नक्षत्र के न मिलनेपर रोहिणी, रेवती और तीनों उत्तरा ग्राह्य हैं । कहे हुए नक्षत्रों के प्रथम और चतुर्थ चरण को छोड़ कर बीच के दोनों चरण ग्राह्य हैं, ऐसा कहा है ।

अथ पुंसवनादिप्रयोगनिर्णयः

इदं कर्म सकृदेव कार्यमित्युक्तम् । कात्यायनानां तु गर्भसंस्कारत्वात्प्रतिगर्भमावर्तनीयम् । सीमन्तोन्नयने पतिरेव कर्ता । गर्भाधानलोपे तत्प्रायश्चित्तार्थं विप्राय गां दत्त्वा पुंसवनादि कार्यम् ।

इस पुंसवन कर्म को एक ही बार करना चाहिये, यह कह चुके हैं । किन्तु कात्यायन शाखावालों को तो गर्भसंस्कार होने से प्रतिगर्भ में करना चाहिये । सीमन्तोन्नयन में पति ही कर्ता होता है । गर्भाधान-संस्कार न करने पर उसके प्रायश्चित्त के लिये ब्राह्मण को गाय देकर पुंसवन आदि संस्कार करे ।

तत्राश्वलायनानां देशकालसंकीर्तनान्ते 'ममास्यां भार्यायामुत्पत्स्यमानगर्भस्य गार्भिकबैजिकदोषपरिहारपुंरूपतासिद्धिज्ञानोदयप्रतिरोधपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुंसवनमनवलोभनं ममास्यां भार्यायां गर्भाभिवृद्धिपरिपन्थिपिशितरुधिरप्रियाऽलक्ष्मीभूतराक्षसीगणदूरनिरसनक्षमसकलसौभाग्यनिदानमहालक्ष्मीसमावेशनद्वारा प्रतिगर्भं बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा च श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं स्त्रीसंस्काररूपं सीमन्तोन्नयनाख्यं कर्म च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्पः सीमन्तेन सह त्रयाणां करणे ज्ञेयः ।

उसमें आश्वलायनों को संकल्प में देशकाल कहने के अनन्तर 'मेरी इस भार्या में उत्पन्न होने वाले गर्भ के गर्भ सम्बन्धी और बीज सम्बन्धी दोष को हटाने के लिये तथा पुत्र-प्राप्ति की सिद्धि के लिये एवं ज्ञान-वृद्धि का प्रतिरोध-परिहार के लिये भगवान् की प्रसन्नता के लिये पुंसवन और अनवलोभन संस्कार मेरी इस पत्नी में गर्भवृद्धि को रोकने वाले मांस रुधिर जिनको प्रिय हैं ऐसे अलक्ष्मी बनी हुई राक्षसी समूह को दूर हटाने में योग्य मेरे सम्पूर्ण सौभाग्य के कारण महालक्ष्मी के समावेश द्वारा प्रतिगर्भ के बीज और गर्भ से उत्पन्न पाप को हटाने के लिये श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ

स्त्री के संस्कार रूप सीमन्तोन्नयन नामक कर्म को तन्त्र से करूँगा' ऐसा सकल्प सीमन्त के साथ तीनो के करने मे जानना चाहिये।

नान्दीश्राद्धे क्रतुदक्षसंज्ञका विश्वेदेवाः। पुंसवनस्य पृथक्त्वे पवमानसंज्ञकमौपासनाग्निं प्रतिष्ठापयेत्। त्रयाणां सहत्वे मङ्गलनामानं प्रतिष्ठापयेत्। गृह्याग्निविच्छेदे सर्वाधानिनश्चाग्न्युत्पत्तिः पूर्ववत्। पुंसवने प्रजापतिं चरुणा सीमन्ते धातारं द्विः राकां द्विः विष्णुं त्रिः प्रजापतिं सकृदाज्येन जुहुयात्। अवशिष्टः प्रयोगोऽन्यत्र ज्ञेयः। शाखान्तरेषु च तत्तद्ग्रन्थेभ्यो ज्ञेयः। अत्र प्रतिसंस्कारं दश दश त्रींस्त्रीन् वा ब्राह्मणान् भोजयेत्। शक्तेन शतं शतम्।

नान्दीश्राद्ध में क्रतुदक्ष नामक विश्वेदेवा होते हैं। पुंसवन कर्म अलग करने पर पवमान नामक औपासनाग्नि की स्थापना करे। तीनो को एक साथ करने पर मगल नामक अग्नि की स्थापना करे। गृह्याग्नि के विच्छेद होने पर सर्वाधानी को भी पहिले की तरह अग्नि का उत्पादन करना चाहिये। पुंसवन में चरु से प्रजापति को सीमन्त में धाता को दो बार, राका को दो बार और विष्णु को तीन बार और प्रजापति को एक बार घृत की आहुति दे। बचा हुआ प्रयोग अन्य ग्रन्थों से जानें। दूसरी शाखाओं में भी उन-उन ग्रन्थों से जानना चाहिये। इसमें प्रत्येक सस्कार में दस दस या तीन तीन ब्राह्मण खिलावे। समर्थ तो सौ सौ ब्राह्मणो को भोजन करावे।

अथ सीमन्तान्नभुक्तौ प्रायश्चित्तम्

सीमन्तान्नभोजने प्रायश्चित्तं पारिजाते—

ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा।
जातश्राद्धे तथा भुक्त्वा भोक्ता चान्द्रायणं चरेत्॥

यद्वा [1]'अरा इवेति मन्त्रस्य शतवारं जपः। एतच्च आधानाङ्गब्रह्मौदनाङ्गभोजन इव सीमन्ताङ्गभोजने ज्ञेयम्। न तु तद्दिने तद्गृहे भोक्तृमात्रस्येति पारिजातोक्तं युक्तम्।

सीमन्तांग ब्राह्मणभोजन में पारिजात-ग्रन्थ में प्रायश्चित्त कहा है। ब्रह्मौदन में, सोमयज्ञ में और सीमन्तोन्नयन में तथा जन्मश्राद्ध में खाने वाला दोषशान्ति के लिये चान्द्रायण व्रत करे। अथवा 'अरा इव' इस मन्त्र का सौवार जप करे। यह आधान और ब्रह्मौदन के अंग-भोजन की तरह सीमन्ताग भोजन में जानना चाहिये। न कि उस दिन उसके घर में भोजन करने वाले सभी प्रायश्चित्त करें, यह पारिजात का कहना ठीक है।

अथ गर्भिणीधर्माः

गर्भिणी [2]कुञ्जराश्वादिशैलहर्म्यादिरोहणम्।
व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोहणं त्यजेत्॥

---

१. ऋग्विधाने—'अरा इवे जपेन्मन्त्रं शतवारं न संशयः। सीमन्ते च यदा भुङ्क्ते मुच्यते किल्विषात्तदा॥' मन्त्रः—'अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्रजायन्ते अकवा महोभिः। पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या सम्मिमिक्षुः॥' इति। (ऋ० सं० अ०४ अ० ३)

२. भावप्रकाशे—'आर्तवस्नानदिवसात् त्र्यहं सा ब्रह्मचारिणी। शयीत दर्भशय्यायां पश्येदपि पतिं न च॥ करे शरावे पर्णे वा हविष्यं त्र्यहमाचरेत्। अश्रुपातं नखच्छेदमभ्यङ्गमनुलेपनम्॥ नेत्र-

न भस्मादावुपविशेन्मुसलोलूखलादिषु ।
त्यजेज्जलावगाहं च शून्यं सद्म तरोस्तलम् ॥
कलहं गात्रभङ्गं च तीक्ष्णात्युष्णादिभक्षणम् ।
संध्यायामतिशीताम्लं गुर्वाहारं परित्यजेत् ॥
व्यवायशोकासृङ्मोक्षं दिवास्वापं निशि स्थितिम् ।
भस्माङ्गारनखैर्भूमिलेखनं शयनं सदा ॥

गर्भवती स्त्री हाथी, घोड़ा, पर्वत, मकान के छत पर न चढ़े। व्यायाम न करे। जल्दी जल्दी न चले। गाड़ी पर न चढ़े। भस्म पर न बैठे। मूसल और उखल आदि पर न बैठे। जल में नहाना, सूने घर में रहना, पेड के नीचे बैठना त्याग दे। झगड़ा न करे। शरीर को टेढ़ा मेढ़ा न करे। तीखे और बहुत गर्म भोजन न करे। शाम को बहुत ठंडा, खट्टा, गरिष्ठ आहार छोड़ दे। मैथुन, शोक, खून का गिरना, दिन में सोना, रात में बैठना, भस्म पर बैठना, कोयले पर बैठना, जमीन को नख से कुरेदना और सोना सदा छोड़ दे।

त्यजेदमङ्गलं वाक्यं न च हास्याधिका भवेत् ।
न मुक्तकेशा नोद्विग्ना कुक्कुटासनगा न च ॥
गर्भरक्षा सदा कार्या नित्यं शौचनिषेवणात् ।
प्रशस्तमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यानुलेपनात् ॥
विशुद्धगेहवसनाद्दानैः श्वश्र्वादिपूजनैः ।
हरिद्राकुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा ।
केशसंस्कारताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥
चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे गर्भिणीवधूः ।
यात्रां विवर्जयेन्नित्यमाषष्ठात्तु विशेषतः ॥

अमंगल वाक्य न बोलना, अधिक हँसना, बालों को खुला रखना, उद्विग्न होना, मुर्गे की तरह बैठना छोड़ दें। सर्वदा पवित्र रहकर गर्भ की रक्षा करे। पवित्र घर में रहना, दान करना, सास आदि का सत्कार करना, हल्दी, रोरी, सिन्दूर, काजल, बालों का संस्कार, पान खाना और शुभ मंगल करने वाले आभूषण का धारण करना गर्भिणी के लिये हितकर है। गर्भिणी स्त्री चौथे, छठे, आठवें महीने में देश विदेश की यात्रा विशेषतः छठे महीने ही से त्याग दें।

योरञ्जनं स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम्। अत्युच्चशब्दश्रवणं हसनं बहुभाषणम्। आयामं भूमिखननं प्रवातं च विवर्जयेत्। ततश्चतुर्थे दिवसे स्नात्वा सद्वसनादिभिः॥ भूषिता सुमनाः पश्येद् भर्तारं समलङ्कृतम्। पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना॥ तादृशं जनयेत् पुत्रं ततः पश्येत् पति प्रियम्। अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लौल्याद्वा दैवतेन या॥ सा चेत् कुर्यान्निषिद्धानि गर्भदोषांस्तदाप्नुयात्।

एतस्या रोदनाद् गर्भो भवेद् विकृतलोचनः॥ नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत्। अनुलेपात्तथा स्नानाद् दुःखशीलोऽञ्जनादहक्॥ स्वापशीला दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात् प्रधावनात्। अत्युच्चशब्दश्रवणाद् बधिरः खलु जायते॥ तालुदन्तौष्ठजिह्वासु श्यावो हसनतो भवेत्। प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात्॥ खलतिर्भूमिखननादुन्मत्तो वातसेवनात्। शाकाहाराल्लोमपूर्णः श्वित्री दुग्धस्य सेवनात्॥ शूरणाच्चर्मरोगी स्यान्नेत्रस्रावी कटूषणात्। अतिश्रमादङ्गहीनो गर्भबालोऽभिजायते॥' इति।

अथ गर्भिणीपतिधर्माः

गर्भिणीवाञ्छितं द्रव्यं तस्यै दद्याद्यथोचितम् ।
सूते चिरायुषं पुत्रमन्यथा दोषमर्हति ॥
सिन्धुस्नानं द्रुमच्छेदं वपनं प्रेतवाहनम् ।
विदेशगमनं चैव न कुर्याद् गर्भिणीपतिः ॥
वपनं मैथुनं तीर्थं श्राद्धभोजनमेव च ।
वर्जयेत्सप्तमान्मासान्नाव आरोहणं तथा ॥
युद्धादि वास्तुकरणं नखकेशविकर्तनम् ।
चौलं शवानुगमनं विवाहं च विवर्जयेत् ॥
मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः ।
न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च ॥

गर्भवती स्त्री जिन चीजों को चाहे उसे यथोचित देवे । ऐसा करने से आयुष्मान् पुत्रका प्रसव करती है। ऐसा नही करने पर दोष होता है । समुद्र का स्नान, पेड़ का काटना, मुण्डन करना, मुर्दा ढोना और विदेश का जाना गर्भिणी का पति त्याग दे । गर्भ के सातवें महीने से मुंडन, मैथुन, तीर्थ, श्राद्ध का भोजन और नाव पर चढ़ना छोड़ दे । युद्ध आदि का गृहनिर्माण, नख केश का काटना, चूड़ासंस्कार, मुर्दे के साथ जाना और विवाह वर्जित है । मुंडन, पिण्डदान और सब प्रकार का प्रेतकर्म, गर्भिणी का पति और जिसके पिता जीते हो नही करे ।

अत्र कर्तनमपि निषिध्यते । 'वपनस्य निषेधेपि कर्तनं तु विधीयते' इति वाक्यं तु जीवत्पितृकादीनां यो वपननिषेधस्तत्र कर्तनविधिपरम् । एतदपवादः—

क्षौरं नैमित्तिकं कुर्यान्निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ।
पित्रोः प्रेतविधानं च गर्भिणीपतिराचरेत् ॥

अन्वष्टक्याष्टकयोर्गर्भिणोपतिः पिण्डदानं कुर्यात् । केचित्पित्रोः प्रतिसांवत्सरिके पिण्डदानं कुर्वन्ति । दर्शमहालयादिषु नैव कार्यम् ।

इसमें बालों का कटवाना भी निषिद्ध है 'मुंडन निषेध होने पर भी कर्तन का विधान है' यह वाक्य तो जिनके पिता जीते हों उनके जो वपन का निषेध है वह कर्तनविधि-परक है । इसका यह अपवाद है—निषेध होने पर भी गर्भिणी पति नैमित्तिक क्षौर अवश्य करावे और माता पिता का प्रेत-विधान करे । अष्टका और अन्वष्टका में पिण्डदान करे । कुछ लोग माता पिता के प्रत्येक सांवत्सरिक श्राद्ध में पिण्डदान करते हैं । दर्शश्राद्ध और महालय आदि में पिण्डदान नहीं करना चाहिये ।

अथ गर्भस्रावहरदानम् ।

अथ [1]गर्भस्रावहरं काञ्चनयज्ञोपवीतदानं महार्णवे । इदं स्त्रीकर्तृकम् । शुभ-दिने स्त्री आचम्य देशकालौ संकीर्त्य 'मम गर्भस्रावनिदानसकलदोषपरिहारद्वारा

---

१. आयुर्वेदे गर्भपातनिवारणार्थं योगः—'मधुच्छागीपयः पीत्वा किं वा श्वेताद्रिकर्णिकाम् । शर्करां पद्मकन्देन तिलकं मधुकान्वितम् ॥ भक्षित्वा धारयेन्नित्यं पतन्तं गर्भमञ्जसा । समभागं सिता-युक्तं शालितण्डुलचूर्णितम् । उदुम्बरशिफाक्वाथं पीतो गर्भं न मुञ्चति ॥' इति ।

श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं वायुपुराणोक्तं सुवर्णयज्ञोपवीतदानविधिं करिष्ये' इति संकल्प्य पलेन तदर्धेन तदर्धार्धेन यथाशक्ति वा हैमं यज्ञोपवीतं ग्रन्थिप्रदेशे मौक्तिकयुतं कृत्वा तथैव वज्रमणियुतं राजतमुत्तरीयं च कृत्वोभयं पञ्चगव्येन गायत्र्या प्रक्षाल्य ताम्रपात्रे द्रोणमितं दधि निक्षिप्य तन्मध्ये द्रोणमितमाज्यं निक्षिप्याज्योपरि तदुभयं संस्थाप्य भर्ता ब्राह्मणो वा गायत्रीमन्त्रेण गन्धादिभिः पूजयेत् ।

गर्भस्राव हटाने वाला सुवर्ण का यज्ञोपवीत दान महार्णव में कहा है । यह स्त्री को करना चाहिये । स्त्री किसी शुभ दिन में आचमन करके देशकाल को कहकर 'मेरे गर्भस्राव का आदि कारण सब दोष को हटाने के लिये श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं वायुपुराणोक्त सुवर्णयज्ञोपवीतदान-विधि करूँगी' ऐसा संकल्प कर एक पल आधे पल और चतुर्थांश पल से या यथाशक्ति सुवर्ण का यज्ञोपवीत जिसकी ग्रन्थि में मोती लगी हो ऐसा बनवाकर और हीरे से युक्त चांदी का दुपट्टा बनवाकर पंचगव्य और गायत्री मन्त्र से प्रक्षालन कर ताम्रपात्र में द्रोणपरिमित दही रख कर उसके बीच में उतना ही घी रखकर घी के ऊपर वे दोनों यज्ञोपवीत आदि रखकर पति या ब्राह्मण गायत्रीमन्त्र द्वारा गन्ध आदि से पूजा करे ।

अथ गुञ्जामाषादिमानानि

अष्टगुञ्जात्मको माषः दशमाषाः सुवर्णम् । पलकुडवप्रस्थाढकद्रोणाः सुवर्णादिपूर्वपूर्वचतुर्गुणाः । दध्याज्ययोर्द्रोणपरिमाणाभावे शक्त्यनुसारि प्रमाणम् । ब्राह्मणद्वारा आज्यमधुमिश्रैस्तिलैरष्टोत्तरशतं गायत्र्या व्याहृतिभिर्वा होमं कारयेत् । त्यागं भर्ता वा स्त्री वा कुर्यात् । होमकर्तारं विप्रं वस्त्राद्यैः संपूज्य प्राङ्मुखाय तस्मै उदङ्मुखा स्त्री दानं कुर्यात् । तद्यथा—

उपवीतं परिमितं ब्रह्मणा विधृतं पुरा ।
भव नौकास्यदानेन गर्भं संधारये ह्यहम् ॥

इति मन्त्रेण विप्रस्य नामगोत्रे उच्चार्य ताम्रपात्रस्थदध्याज्यसंस्थं सुपूजितं सोत्तरीयकमिदं यज्ञोपवीतं गर्भस्रावनिदानदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं तुभ्यमहं संप्रददे नमम । प्रतिगृह्यताम् । विप्रः प्रतिगृह्णामीत्यादि । यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वाऽन्येभ्योपि यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा प्रतिग्रहीतुरनुव्रज्य नमस्कारक्षमापनादि कृत्वा विप्रभोजनं संकल्प्य कर्मेश्वरायार्पयेत् ।

आठ रत्ती का एक माशा और दस माशे का सुवर्ण होता है । पल, कुडव, प्रस्थ, आढक और द्रोण, सुवर्ण आदि से पूर्व पूर्व चौगुने होते हैं । दही और घी का द्रोण परिमाण न होने पर शक्ति के अनुसार प्रमाण रक्खे । तिल में घी मधु मिलाकर गायत्रीमन्त्र से या व्याहृतियों से ब्राह्मण द्वारा एक सौ आठ आहुति होम करावे । त्याग पति या स्त्री करे । होम करने वाले ब्राह्मण को वस्त्र आदि से सम्मानित कर पूर्वमुख बैठे उस ब्राह्मण को उत्तरमुख बैठने वाली स्त्री दान करे । वह इस प्रकार है—पहिले काल में परिमित यज्ञोपवीत ब्रह्मा ने धारण किया इसके दान से आप इसकी नौका बनें जिससे मैं गर्भ को धारण कर सकूं । इस आशय के मन्त्र से ब्राह्मण का नाम गोत्र उच्चारण करके 'ताम्र के पात्र में स्थित दही घी पर रखा हुआ सुपूजित दुपट्टे के साथ यह यज्ञोपवीत गर्भस्राव के दोष को हटाने और भगवान् को प्रसन्न करने के लिये आप को मैं देती हूँ यह मेरा

नहीं है। इसे आप ग्रहण करें। ब्राह्मण कहे—'मैं ग्रहण करता हूँ'। इस प्रकार ब्राह्मण को और अन्य को भी यथाशक्ति दक्षिणा देकर दान लेने वाले के पीछे पीछे कुछ दूर चलकर नमस्कार अपराध क्षमापन इत्यादि करके ब्राह्मणभोजन का सकल्प कर इस कर्म को ईश्वरार्पण करे।

एतच्च 'स्रवद्गर्भा भवेत्सा तु बालकं हन्ति या विषैः' इत्युक्तेर्बालहत्याप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम्। अन्यत्र तु स्वर्णधेनुदानहरिवंशश्रवणादीन्युक्त्वा घृतपूर्ण-[1]ताम्रकलशदानादिविधानान्युक्तानि।

यह तो 'उस स्त्री को गर्भस्राव होता है जो विष से बालक को मारती है' इस उक्ति से बालहत्या का प्रायश्चित्त करके करना चाहिये। अन्य ग्रन्थों में तो स्वर्णधेनु का दान और हरिवंशश्रवण आदि कहकर घी से भरे ताम्रकलशदान का विधान कहा है।

अथ सूतिकागृहप्रवेशः

गृहनैर्ऋत्यां सूतिकागृहं कृत्वा तत्राश्विनीरोहिणीमृगपुनर्वसुपुष्यत्र्युत्तराहस्तचित्रास्वात्यनुराधाधनिष्ठाशततारकानक्षत्रेषु रिक्तादिवर्ज्यतिथौ चन्द्रानुकूल्ये शुभलग्ने सूतिकाप्रवेशो गोविप्रदेवपूजनं कृत्वा मन्त्रवाद्यघोषेण सापत्यस्त्रीभिः सह कार्यः। असंभवे [2]सद्यो वा।

घर के नैर्ऋत्य दिशा में सूतिका घर बनाकर उसमें अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में रिक्ता आदि से वर्जित तिथि में चन्द्रमा के अनुकूल रहने पर शुभ लग्न में गाय ब्राह्मण और देवता का पूजन करके मन्त्र और बाजे के शब्द से संतान वाली स्त्रियों के साथ उसमें प्रवेश करना चाहिये। यह संभव न हो तो तुरत प्रवेश करे।

अथ सुखप्रसवकरम्

प्रसवप्रतिबन्धे ऋग्विधाने प्रमंदिने इत्यृचं विजिहीर्ष्वेति सूक्तं वा जपेत्। एताभ्यामभिमन्त्रितजलं वा पाययेत् तेन सुखप्रसवः। शीघ्रप्रसवमन्त्रस्तु—

हिमवत्युत्तरे पार्श्वे सुरथा नाम यक्षिणी।
तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्॥

ॐ क्षीं ॐ स्वाहेति मन्त्रेण दूर्वाङ्कुरेण तिलतैलं शतं सहस्रं वाऽभिमन्त्र्य किंचित्पाययेत्। किंचिन्मात्रस्य गर्भे लेपश्च। सम्यग्लेपे शीघ्रं सुखप्रसवः। अस्थिमात्रावशिष्टगोमस्तकस्य सूतिकागृहोपरि निधाने सुखप्रसवः। वंशनिम्बयोस्त्वक्तुलसीमूलं कपित्थपत्रं करवीरबीजं च समभागं महिषीदुग्धेन पेषयित्वा तेन सतैलेन योनिलेपे [3]सद्यःप्रसवः।

---

१. 'ताम्रकलशदानादि' इत्यत्र आदिपदेन कमलपुष्पादिभिः शिवपूजनं कुर्यात्।

२. वसिष्ठः—'प्रसूतिसमये काले सद्य एव प्रवेशयेत्। विष्णुधर्मः—'दशाहं सूतिकागारमायुधैश्च विशेषतः। वह्निना तिन्दुकालातैः पूर्णकुम्भैः प्रदीपकैः॥ मुसलेन तथा वारिवर्णकैश्चित्रितेन च।' इति।

३. आयुर्वेदे—'अपामार्गस्य मूलं च समुत्पाट्य शुभे दिने। अश्वलोम्ना च संवेष्ट्य शिरसा बन्धनात्ततः॥ क्षणमात्रेण सा नारी सुखेनैव प्रसूयते। श्वेतं पुनर्नवामूलचूर्णं योनौ प्रवेश-

प्रसव की रुकावट होने पर ऋग्विधान के 'प्रमदिने' या 'विजिह्वीश्व' इस सूक्त को जपे। या इन दोनों ऋचाओं से अभिमंत्रित जल पिलावे इससे सुखपूर्वक प्रसव होता है। शीघ्र प्रसव कराने का मंत्र तो 'हिमवत्युत्तरे पार्श्वे सुरथा नाम' से ॐ क्षीं ॐ स्वाहा पर्यन्त मूल में अंकित मन्त्र से दूब के अंकुर से तिल तैल को सौ या हजार बार अभिमन्त्रित करके थोड़ा पिला दे। और थोड़ा गर्भ में लेप भी कर दे। अच्छी तरह से लेप करने पर शीघ्र सुख-प्रसव होता है। हड्डी मात्र बचे हुए गोमस्तक को सूतिका के घर के ऊपर रखने से सुख-प्रसव होता है। बाँस और नीम की छाल, तुलसी की जड, कैत के पत्ते और करवीर के बीज समभाग, भैंस के दूध में पीस कर तेल के साथ योनि मे लेप करने से सद्य प्रसव होता है।

अथ जातकर्म

मूलज्येष्ठाव्यतीपातादावनुत्पन्नस्य जातमात्रस्य पुत्रस्य पिता मुखं कुलदेवतावृद्धप्रणामपूर्वकमवलोक्य नद्यादावुदङ्मुखः स्नायात्। तदसंभवे गृहे आनीताभिः शीताभिः स्वर्णयुताभिरद्भिः स्नायात्। एतच्च [1]रात्रावपि नद्यादौ कार्यम्। अशक्तो रात्रावग्निसन्निधौ स्वर्णयुतशीतोदकैः। मूलादिषु जनने तु मुखमदृष्ट्वैव स्नानम्। देशान्तरगते जनके पुत्रजन्मश्रवणोत्तरं स्नानम्। सर्वत्र स्नानात्प्रागस्पृश्य-

---

येत् ॥ क्षणात् प्रसूयते नारी गर्भेणातिप्रपीडिता। सबीजं तिन्तिणीवृक्षं समुत्पाट्य च यत्नतः॥ केशेषु ग्रथितं कृत्वा नासाग्रं तत्प्रलम्बयेत्। घ्रात्वा तद् गर्भिणी सम्यक् शीघ्रमेव प्रसूयते॥' भावप्रकाशे—'कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्ट्वा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात्। सुखं प्रसूतिं कुरुतेऽङ्गनानां निपीडितानां बहुभिः प्रमादैः।' सुश्रुत की—'लाङ्गलीमूलकल्केन वाऽस्याः पाणिपादतलमालिम्पेत्' इस उक्ति के अनुसार हस्तपाद की तली में कलिहारीकन्द के लेप करने से भी शीघ्र प्रसव होता है।

गृह्यसूत्रों में प्रसव के पूर्व प्रसवजन्य पीड़ा वाली स्त्री के लिये सोष्यन्ती (सुखप्रसवार्थ) कर्म का सविधि वर्णन है। इस स्मार्तकर्म का अनुष्ठान कर्तव्य है।

चक्रव्यूह-यन्त्र

पूर्वोक्त औषधियों के व्यवहार के अतिरिक्त सुखपूर्वक शीघ्र प्रसव के लिये 'चक्रव्यूह-यन्त्र' का कुछ क्षण तक निरन्तर अवलोकन करने से अतिशीघ्र प्रसव होता है।

इस यन्त्र को अलग भोजपत्र या कागज पर बना लें। यन्त्र को केवल धूप दिखाकर उसे देखें। यन्त्र ठीक से नहीं बना सकें तो पुस्तक पर अङ्कित इसी यन्त्र को धूपित करके देखें।

१. यह स्नान नैमित्तिक है इसलिये यह रात्रि में भी कर्तव्य है। व्यासः—'रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषत'। नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु॥' कारिका—'जाते पुत्रे सचैलं स्यात् स्नानं नैमित्तिकं पितुः।' नैमित्तिकदान—'ग्रहणोद्वाहसङ्क्रान्तियात्रादौ प्रसवेषु च। दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि न दुष्यति॥' जैमिनिः—'यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते॥' इति।

त्वम्। एवं कन्योत्पत्तावपि स्नानं तत्प्रागस्पृश्यत्वं च ज्ञेयम्। अन्यसपिण्डाशौचमध्ये जननेपि पितुस्तात्कालिकी स्नानदानादौ जातकर्मणि च शुद्धिः।

मूल, ज्येष्ठा और व्यतीपात आदि में जो नहीं उत्पन्न हुआ हो ऐसे तुरत उत्पन्न हुए पुत्र का मुख कुल देवता और वृद्धों को प्रणाम करके पिता देखकर नदी आदि मे उत्तरमुख होकर स्नान करे। नदी आदि के असंभव होने पर घर में लाए हुए स्वर्णयुक्त ठढे जल से स्नान करे। यह स्नान तो रात्रि में भी नदी आदि में कर्तव्य है। असमर्थ रात में अग्नि के सामने सुवर्णयुक्त ठडे जलसे करे। मूल आदि में जन्म होने पर तो बिना मुख देखे ही नहाये। पिता परदेश में हो तो पुत्र का जन्म सुनने के बाद नहावे। स्नान के पहले अस्पृश्यत्व होता है। इसी तरह कन्या की उत्पत्ति में भी स्नान और उसके पहिले अस्पृश्यत्व होता है, यह जानना चाहिये। दूसरे सपिण्ड के आशौच में जन्म होने पर भी पिता की स्नान दान आदि और जातकर्म आदि में भी तात्कालिक शुद्धि होती है।

केचिन्मृताशौचे पुत्रजनने जातकर्माशौचान्ते[1] कार्यमित्याहुः। नालच्छेदनात्पूर्वं संपूर्णसंध्यावन्दनादिकर्मणि नाशौचम्। प्रथमदिने पञ्चमषष्ठदशमदिने च दानप्रतिग्रहयोर्न[2] दोषः। शृतमन्नं न ग्राह्यम्। ज्योतिष्टोमादिदीक्षावता स्वयमन्येन वा जातकर्म न कार्यं किंतु अवभृथस्नानान्ते दीक्षा विसृज्य स्वयं कार्यम्। श्रेष्ठः कनिष्ठेन पुंसवनादिकं न कारयेत्, जातकर्म तु कारयेत्।

कुछ लोग मरणाशौच में पुत्रजन्म होने पर जननाशौच के अन्त में जातकर्म करे, ऐसा कहते हैं। नार काटने के पहले सम्पूर्ण सन्ध्यावंदन आदि कर्म में आशौच नही होता। पहिले पाचवें, छठे और दशमदिन में दान देने लेने में दोष नहीं है। पकाया हुआ अन्न नहीं लेना चाहिये। ज्योतिष्टोम आदि दीक्षा वाले स्वयं अथवा दूसरे से जातकर्म न करवावें किन्तु अवभृथस्नान के अन्त में दीक्षा का विसर्जन कर स्वय करे। बड़ा छोटे भाई से पुंसवन आदि सस्कार न करावे, जातकर्म तो करावे।

अतिक्रान्तं तु स्वयमेव कुर्यात्। महारोगार्तो जातकर्म स्वयं न कुर्यात्। 'अच्छिन्ननाभि कर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि।' पुत्रपदेन कन्यापि गृह्यते। तथा च संस्काराङ्गभिन्नं कन्यापुत्रयोर्जन्मनिमित्तकं नान्दीश्राद्धं विधीयते। एतच्च रात्रावपि कार्यम्। तच्च[3] हेम्नैव कार्यं न त्वन्नादिना।

बीता हुआ तो स्वयं करे। महारोग से पीडित स्वय जातकर्म न करे। जब तक नार नहीं कटा हो पुत्रजन्म में श्राद्ध करे। पुत्र पद से कन्या का भी ग्रहण होता है। इस तरह सस्कारांग से भिन्न कन्या और पुत्र के जन्मनिमित्तक नान्दीश्राद्ध किया जाता है। इस श्राद्ध को रात में भी करे। इसे सुवर्ण से ही करे अन्नादि से नहीं।

---

१. स्मृतिसंग्रहे—'मृताशौचस्य मध्ये तु पुत्रजन्म यदा भवेत्। आशौचापगमे कार्यं जातकर्म यथाविधि॥' इति।

२. इन दिनों में जन्म का सूतक नहीं लगता इसलिये दान प्रतिग्रह में दोष नहीं है, जैसा व्यास ने कहा है—'प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा। त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि॥' यहाँ पुत्रशब्द अपत्यमात्र परक है। ब्रह्मपुराणे—'देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम्। आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठं च सर्वदा॥' इति।

३. हेमाद्रि में संवर्त का वचन है—'पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान्। न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन्॥' इति।

अथ जातकर्मप्रयोगः

तथा च स्नातोऽलंकृतः पिता अकृतनालच्छेदमपीतस्तन्यमन्यैरस्पृष्टं प्रक्षालितं कुमारं मातुरुत्सङ्गे कारयित्वाचमनादिदेशकालादिकीर्तनान्ते—'अस्य कुमारस्य गर्भाम्बुपानजनितदोषनिबर्हणायुर्मेधाभिवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं [1]जातकर्म करिष्ये तदादौ स्वस्तिपुण्याहवाचनं च करिष्ये, हिरण्येन पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्माङ्गं च नान्दीश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य यथागृह्यं कुर्यात्।

पिता स्नान करके अलंकृत हो जब तक नार न कटा हो और माता का स्तन नहीं पीया हो और दूसरों से बिना छुआ हुआ प्रक्षालित कुमार को माता की गोद में रखकर आचमन आदि देशकाल आदि के कहने के अन्त में 'इस कुमार का गर्भ के जल पीने से उत्पन्न दोष को हटाने के लिये आयु और मेधा का अभिवृद्धिपूर्वक बीज और गर्भ से उत्पन्न पापनिवृत्ति द्वारा श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ जातकर्म करूँगा' उसके आदि में स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन और मातृपूजन भी करूँगा, पुत्र जन्म निमित्तक जातकर्म का अंग नान्दीश्राद्ध तन्त्र से सुवर्ण द्वारा करूँगा' ऐसा संकल्प कर अपने गृह्य के अनुसार करे।

ततो दद्यात्सुवर्णं च भूमिं गां तुरगं रथम्।
छत्रं छागं च माल्यं च शयनं चासनं गृहम्॥
तिलपूर्णानि पात्राणि सहिरण्यानि चैव हि।
भक्षयित्वा तु पक्वान्नं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥
सूतके तु सकुल्यानां न दोषो मनुरब्रवीत्।

अथारिक्तपाणिर्ज्योतिर्विदं संपूज्य तस्माज्जन्मलग्नगतशुभाशुभग्रहनिर्णयं ज्ञात्वा प्रतिकूलग्रहानुकूल्यार्थं तत्तद्ग्रहप्रीत्यर्थं दानानि कुर्यात्। ग्रहमन्त्रजपादिशान्तिसूक्तजपादिकर्मणि विप्रान् वा नियोजयेत्। ततो नालच्छेदं कारयित्वा हिरण्योदकेन मातुर्दक्षिणस्तनं प्रक्षाल्य मात्रा कुमारं पाययेत्। तत्र इमां कुमार इत्यादिमन्त्रं विप्रादिः पठेत्। जातकर्माद्यन्नप्राशनान्तसंस्कारेषु आश्वलायनानां होमः कृताकृतः।

उसके बाद सोना, भूमि, गाय, घोड़ा, रथ, छाता, बकरा, माला, खटिया, आसन, घर और सुवर्णसहित तिल-पूर्ण-पात्र का दान करे। पक्वान्न भोजन करने पर तो द्विज चान्द्रायण करे। समान कुल वालों के सूतक में तो भोजन में दोष नहीं है, ऐसा मनु कहते हैं। इसके बाद विना खाली हाथ ज्योतिषी की पूजा कर उससे जन्म-लग्न-गत शुभ और अशुभ ग्रह का निर्णय जानकर प्रतिकूलग्रह को अनुकूल करने के लिए उन-उन ग्रहों के प्रसन्नता के लिये दान करे। अथवा ग्रहके मन्त्रों और शान्ति-

---

१. गृह्यसूत्रों में जातकर्म का दूसरा नाम 'मेधाजननायुष्यकर्म' है। हेमाद्रिः—'जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि। दैवादतीतकालं चेदतीते सूतके भवेत्॥' मनुः—'प्राङ् नाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते।' यहाँ वर्धन का छेदन अर्थ है। कार्ष्णाजिनिः—'प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। स्नात्वाऽनन्तरनात्मीयान् पितॄन् श्राद्धे न तर्पयेत्॥'

सूक्त के जप आदि कर्म में ब्राह्मणों को नियुक्त करे। तदनन्तर नार कटवा कर सुवर्ण के जल से माता के दहिने स्तन को धोकर माता के द्वारा कुमार को स्तन पिलावे। उसमें 'इमां कुमार' इत्यादि मन्त्र को ब्राह्मण आदि पढ़ें। जातकर्म से लेकर अन्नप्राशनपर्यन्त संस्कारों में आश्वलायनों का होम वैकल्पिक है।

होमपक्षे 'नान्दीश्राद्धान्ते जातकर्माङ्गहोमं करिष्ये' इति संकल्प्य लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधानाद्याज्यभागान्ते अग्निमिन्द्रं प्रजापतिं विश्वान्देवान्ब्रह्माणमाज्येन जुहुयात्। मधुसर्पिःप्राशनादिमूर्धावघ्राणान्ते स्विष्टकृदादिकुर्यादिति क्रमः। अन्येषां यथागृह्यं होमादि ज्ञेयम्। कुमार्या अपि जातकर्मादिसंस्कारा-श्चौलान्ताः सर्वे अमन्त्रकं कार्याः, विवाहस्तु समन्त्रकः। अतः कन्याया जातकर्मादिसंस्कारलोपे तत्तत्काले विवाहकाले वा प्रायश्चित्तं कृत्वा विवाहः कार्यः।

होम करने के पक्ष में 'नान्दीश्राद्ध के अन्त में जातकर्म का अंग होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर लौकिक अग्नि की स्थापना कर अन्वाधान आदि आज्यभाग के अन्त में अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, विश्वेदेवा और ब्रह्मा का घृत से होम करे। मधु घी चटाना आदि सिर सूंघना पर्यन्त कर्म करने पर स्विष्टकृत् आदि का प्रयोग करे, यही क्रम है। अन्य को अपने गृह्य के अनुसार होमादि जानना चाहिये। लड़की का भी जातकर्म-संस्कार से चूड़ाकरणपर्यन्त सब संस्कार विना मन्त्र के करे, विवाह तो मन्त्र से। इसलिये कन्या के जातकर्म आदि संस्कार के लोप होने पर उस-उस काल में अथवा विवाह के समय प्रायश्चित्त करके विवाह करना चाहिये।

अत्र सर्वत्र जातकर्मनामकर्मादौ मुख्यकालातिक्रमे गुर्वाद्यस्तरहिते शुभनक्षत्रादौ जातकर्मादिकं कार्यम्। तत्र जातकर्मणि नक्षत्राणि रोहिणीत्युत्तराश्विनी-हस्तपुष्यानुराधारेवतीमृगचित्राश्रवणादित्रयस्वातीपुनर्वसवः। रिक्तापर्वरहितास्तिथयः। भौमशनिभिन्नवाराः। भद्रावैधृत्यादिशून्ये सुकेन्द्रलग्ने शुभम्।

यहाँ सर्वत्र जातकर्म और नामकर्म आदि में मुख्य काल के बीत जाने पर गुरु आदि के अस्त रहित शुभनक्षत्र आदि में जातकर्म आदि करना चाहिये। जातकर्म के नक्षत्र ये हैं—रोहिणी, तीनों उत्तरा, अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, श्रवण आदि तीन नक्षत्र, स्वाती और पुनर्वसु, रिक्ता तथा पर्व से रहित तिथियां, मंगल और शनि के अतिरिक्त वार, भद्रा वैधृति आदि से रहित समय में और केन्द्र लग्न में शुभ ग्रह हों तो शुभ है।

अथ षष्ठीपूजनम्

अथ पञ्चमषष्ठदिनयोर्जन्मदानां[१] पूजनम्। रात्रेः प्रथमयामे पित्रादिः स्नात्वाचम्य देशकालौ संकीर्त्य 'अस्य शिशोः समातृकस्यायुरारोग्यप्राप्तिसकलारिष्टशान्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विघ्नेशस्य जन्मदानां जीवन्त्यपरनाम्न्याः षष्ठीदेव्याः शस्त्रगर्भाभगवत्याश्च पूजनं करिष्ये' इति संकल्प्य तण्डुलपुञ्जेषु विघ्नेशं जन्मदाश्च नाममन्त्रेणावाह्य—

१. मिताक्षरा में मार्कण्डेय की उक्ति—'रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः। रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः॥ पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः। रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके॥'इति।

आयाहि वरदे देवि महाषष्ठीति विश्रुते ।
शक्तिभिः सह बालं मे रक्ष जागर वासरे ॥
इति षष्ठीदेवीमावाह्य नाम्ना भगवतीमावाह्य नामभिः,
शक्तिस्त्वं सर्वदेवानां लोकानां हितकारिणी ।
मातर्बालमिमं रक्ष महाषष्ठि नमोस्तु ते ॥
इति मन्त्रेण च षोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत्—
लम्बोदर महाभाग सर्वोपद्रवनाशन ।
त्वत्प्रसादादविघ्नेश चिरं जीवतु बालकः ॥
जननीसर्वभूतानां बालानां च विशेषतः ।
नारायणीस्वरूपेण बालं मे रक्ष सर्वदा ॥
प्रेतभूतपिशाचेभ्यो शाकिनीडाकिनीषु च ।
मातेव रक्ष बालं मे श्वापदे पन्नगेषु च ॥
गौरीपुत्रो यथा स्कन्दः शिशुत्वे रक्षितः पुरा ।
तथा ममाप्ययं बालः षष्ठिके रक्ष्यतां नमः ॥ इति ।

विप्रेभ्यस्ताम्बूलदक्षिणादि दद्यात् । रात्रौ जागरणं कुर्यात् । पञ्चमषष्ठदिनयोर्दानप्रतिग्रहयोर्न[१] दोषः । दशमदिने बलिदानं स्वीयेभ्योऽन्नदानं च कार्यम् ।

पांचवें, छठे दिन जन्मदा देवता का पूजन करे। रात के पहिले प्रहर में पिता आदि स्नान आचमन करके देशकाल को कह कर 'माता के साथ इस बालक के आयु आरोग्य की प्राप्ति और संपूर्ण अनिष्ट की शान्ति द्वारा भगवान् की प्रसन्नता के लिए गणेश और जन्मदाओं का जिनका दूसरा नाम जीवन्ती है ऐसी षष्ठीदेवी का और शस्त्रगर्भा भगवती का पूजन करूंगा' ऐसा संकल्प कर चावल की राशि पर गणेश और जन्मदा का नाममन्त्र से आवाहनकर 'आयाहि वरदे देवि' इत्यादि मन्त्र से षष्ठीदेवी का आवाहन कर नाममन्त्र से भगवती का आवाहनकर 'शक्तिस्त्वं सर्वदेवानां' इस मन्त्र से षोडशोपचार से पूजन कर 'लम्बोदर महाभाग' इत्यादि मूलोक्त इन मंत्रों से प्रार्थना करे। ब्राह्मणों को ताम्बूल दक्षिणा आदि दे और रात में जागरण करे। पांचवें छठे दिन में दान करने और प्रतिग्रह लेने में दोष नहीं है। दसवें दिन बलिदान और अपने बन्धुजनों को अन्नदान करना चाहिये।

अथाशौचे कर्तव्यनिर्णयः

सूतके मृतके कुर्यात्प्राणायाममन्त्रकम्[२] ।
तथा मार्जनमन्त्रांश्च मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥

---

१. षष्ठीपूजननिमित्त ये दिन सूतकदोष से रहित एवं शुद्ध हैं जैसा व्यास ने कहा है—'सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः । तासां यागनिमित्तं तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता ॥ प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥' इति ।

२. अपरार्क में पुलस्त्य के वचन से प्राणायाम मन्त्र पढ़कर करे—'सन्ध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत् । न त्यजेत्सूतके वापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः ॥ सूतके मृतके चैव सन्ध्याकर्म समाचरेत् । मनसोच्चारयेन्मन्त्रान् प्राणायाममृते द्विजः ॥' इति ।

गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।
उपस्थानं नैव कार्यं मार्जनं तु कृताकृतम् ॥

सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात् । गायत्रीजपो न कार्यः । [१]अर्घ्यान्ता मानसी संध्येत्युक्तेः । केचिन्मनसा दशगायत्रीजपः कार्य इत्याहुः । वैश्वदेवब्रह्मयज्ञादयः पञ्च महायज्ञा न कार्याः । वेदाभ्यासो न कार्यः । औपासनहोमपिण्डपितृयज्ञावसगोत्रेण कारयेत् ।

जननाशौच और मरणाशौच में विना मन्त्र के प्राणायाम करे तथा मार्जन के मन्त्रों का मन से उच्चारण करके मार्जन करे । गायत्रीमन्त्र सम्यक् उच्चारण करके सूर्य को अर्घ्य देवे । सूर्योपस्थान करे । मार्जन तो करे, अथवा न करे । सूर्य का ध्यान करते हुए उनको नमस्कार करे । गायत्री का जप न करे, क्योंकि अर्घ्यान्त मानसिक सन्ध्या करे ऐसा वचन है । कुछ लोग मन से दश बार गायत्री का जप करना चाहिये, ऐसा कहते हैं । बलिवैश्वदेव ब्रह्मयज्ञ आदि महायज्ञ न करे। वेदाभ्यास नहीं करे । औपासन होम और पिण्डपितृयज्ञ, दूसरे गोत्र से करावे ।

केचिच्छ्रौतकर्मणि सद्यः शुद्धयुक्तेरग्निहोमः स्नात्वाचम्य स्वयं कार्य इत्याहुः। अपरे तु सर्वस्याप्याशौचापवादस्यानन्यगतिकत्वात्सति ब्राह्मणे ब्राह्मणद्वारैव कार्यः, ब्राह्मणाभावे स्वयं कार्य इत्याहुः । स्थालीपाको न कार्यः । आशौचान्ते कार्यः । सर्वथा लोपप्रसक्तौ स्थालीपाकोपि ब्राह्मणद्वारा कार्यः ।

कुछ लोग श्रौत कर्म में सद्यः शुद्धि के कहने से अग्निहोत्र का होम स्नान और आचमन स्वयं करे, ऐसा कहते हैं । दूसरे लोग तो सभी आशौचापवाद के अनन्यगतिक होने से ब्राह्मण के रहने पर ब्राह्मण द्वारा ही करावे ब्राह्मण के नही रहने पर स्वयं करे, ऐसा कहते हैं । स्थालीपाक न करे । आशौच के अन्त में करे । सब प्रकार से लोप की प्रसक्ति में स्थालीपाक भी ब्राह्मण के द्वारा करावे ।

अन्वाधानोत्तरं सूतकप्राप्तौ ब्राह्मणद्वारा श्रौतेष्टिस्थालीपाकौ होमादौ त्यागः स्नात्वा स्वयं कार्यः । दर्शादिश्राद्धस्य लोप एव । प्रतिसांवत्सरिकं श्राद्धमाशौचान्ते एकादशाहे कार्यम् । तत्रासंभवे दर्शव्यतीपातादिपर्वणि । एवं पत्न्यामृतुमत्यामपि पिण्डयज्ञदर्शश्राद्धे कार्ये । अन्वाधानोत्तरं रजोदोषे इष्टिस्थालीपाकौ कार्यौ । अन्यथा कालान्तरे दानप्रतिग्रहाध्ययनानि वर्ज्यानि । आशौचेऽन्यस्यान्नं नाश्नीयात् ।

अन्वाधान के बाद सूतक होने पर ब्राह्मण के द्वारा श्रौतेष्टि और स्थालीपाक करे । होम आदि में आहुतित्याग स्नान करके स्वयं करे । दर्श आदि श्राद्ध का लोप ही होता है । प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध आशौच के अन्त में ग्यारहवें दिन करे । उसमें न होने पर दर्श व्यतीपात आदि पर्व में करे । एवं स्त्री के रजस्वला अवस्था में भी पिण्डयज्ञ और दर्शश्राद्ध करना चाहिये । अन्वाधान के बाद स्त्री के रजस्वला अवस्था में भी पिण्डयज्ञ और दर्श श्राद्ध करना चाहिये । अन्वाधान के बाद स्त्री के रजस्वला होने पर इष्टि और स्थालीपाक करे । नहीं तो दूसरे समय में करना चाहिये । दान, प्रतिग्रह और अध्ययन का वर्जन करे । आशौच में दूसरे का अन्न न खाय ।

---

१. च्यवन ने कहा है—'अर्घ्यान्ता मानसी सन्ध्या कुशावारिविवर्जिता ।' इति ।

पितृयज्ञस्थालीपाकश्रवणाकर्मादिसंस्थानां प्रथमारम्भो ब्राह्मणद्वाराप्याशौचयोर्न भवति। प्रथमारम्भोत्तरं श्रवणाकर्मादिकं विप्रद्वाराऽऽशौचेपि पत्न्यार्तवेऽपि कार्यम्। आग्रयणं तु न भवति। अग्निसमारोपप्रत्यवरोहौ आशौचे न भवतः। तेन समारोपोत्तरमाशौचे तैत्तिरीयाणां त्रिदिनं होमलोपे बह्वृचादीनां द्वादशदिनं होमलोपेऽग्निनाशादाशौचान्ते श्रौतस्मार्तयोः पुनराधानमेव, समारोपप्रत्यवरोहयोरन्यकर्तृकत्वाभावात्। अग्न्यनुगमे प्रायश्चित्तपूर्वकपुनरुत्पत्तिरन्यद्वारा भवति।

पितृयज्ञ, स्थालीपाक, श्रवणाकर्म आदि संस्थानों का पहिला आरंभ ब्राह्मण के द्वारा भी जनन-मरणाशौच में नहीं होता। प्रथमारंभ के बाद श्रवणाकर्म आदि ब्राह्मणके द्वारा आशौच तथा पत्नी के रजस्वला में भी करना चाहिये। आग्रयण तो नहीं होता। अग्नि का समारोप और प्रत्यवरोह आशौच में नहीं होता। इससे समारोप के बाद आशौच में तैत्तिरीयों को तीन दिन का होम-लोप होने और बह्वृचादि को बारह दिन का होम-लोप होने पर अग्नि के नाश से आशौच के अन्त में श्रौत स्मार्त का पुनः आधान ही होता है, क्योंकि समारोप और प्रत्यवरोह का दूसरे कर्ता के न होने पर अग्नि के अनुगमन में प्रायश्चित्तपूर्वक फिर से अग्नि की उत्पत्ति दूसरे के द्वारा होती है।

अथ भोजनकाले सूतकप्राप्तौ निर्णयः

भोजनकाले[1] आशौचप्राप्तौ मुखस्थं ग्रासं त्यक्त्वा स्नायात्। तद्ग्रासभक्षणे एकोपवासः। सर्वान्नभक्षणे त्रिरात्रोपवासः। 'सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने' इत्युक्तेर्ग्रहणे स्नात्वा श्राद्धदानजपादिकमाशौचेपि कार्यम्। एवं संक्रान्तिस्नानदानादिकमपि। संकटे नान्दीश्राद्धोत्तरं मौञ्जीविवाहयोर्नाशौचम्[2]। संकटे मधुपर्कोत्तरमृत्विजां नाशौचम्। यजमानस्य दीक्षणीयोत्तरं प्रागवभृथान्नाशौचम्[3]। अवभृथमाशौचोत्तरं कार्यम्।

भोजन करते हुए आशौच होने पर मुख का ग्रास त्याग कर स्नान करे। उस ग्रास को खा लेने पर एक उपवास करना पड़ता है। सम्पूर्ण अन्न खाने पर तीन रात का उपवास करना चाहिये। जननाशौच मरणाशौच में ग्रहण का दोष नहीं लगता इस वचन से ग्रहण में स्नान कर श्राद्ध दान और जप आदि आशौच में भी करे। इसी प्रकार संक्रान्ति का स्नान और दान भी करे। संकटकाल में नान्दीश्राद्ध के बाद यज्ञोपवीत और विवाह में आशौच नहीं होता। संकट में मधुपर्क के बाद ऋत्विजों को आशौच नहीं लगता। यजमान को दीक्षा लेने के बाद अवभृथस्नान के पहले तक आशौच नहीं होता। अवभृथस्नान आशौच के बाद करना चाहिये।

---

१. वृद्धशातातपः—'यदा भोजनकाले तु अशुचिर्भवति द्विजः। भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति॥ भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरात्रेण शुद्ध्यति। अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति॥' इति।

२. लघुविष्णुः—'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः। नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥' इति।

३. ब्रह्मपुराणे—'तद्वद् गृहीतदीक्षस्य त्रैविद्यस्य महामखे। स्नानं त्ववभृथे यावत्तावत्तस्य न सूतकम्॥' इति।

अथ व्रतादिषु आशौचापवादः

व्रतेषु नाशौचमित्युक्तेरनन्तव्रतादिकमन्यैः[1] कारयेत्। प्रारब्धान्नसत्रस्यान्नदानादिषु नाशौचम्। पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः।' उदकदुग्धदधिघृतलवणफलमूलभर्जिताद्यन्नानां सूतकिगृहस्थितानां स्वयं ग्रहणे दोषाभावः। सूतकिहस्तात्तु न ग्राह्यम्। केचित्तण्डुलादिकमपक्वमन्नं ग्राह्यमाहुः। इति संक्षेपेण निर्णयो विशेषस्तु वक्ष्यते।

व्रतों में आशौच नहीं होता इस कथन से अनन्तव्रत आदि को दूसरे से करावे। पहले से प्रारंभ किये हुए अन्न-सत्र का अन्नदान आदि में आशौच नहीं होता। पहले के संकल्प किये हुये अन्नों में दोष नहीं होता। आशौच वाले को घर में रखे हुए जल, दूध, दही, घी, नमक, फल, मूल और भुजाये हुए अन्न आदि का अपने से ग्रहण करने में दोष नहीं है। आशौची के हाथ से तो ग्रहण न करे। कोई लोग बिना पके चावल आदि अन्न को ग्राह्य कहते हैं। यह संक्षेप से निर्णय है विशेष तो आगे कहेंगे।

अथ सूतिकाशुद्धिः

[2]दशाहान्ते सूतिकाया अस्पृश्यत्वनिवृत्तिर्नामकर्मजातकर्मादिप्राप्तकर्माधिकारश्च। जातेष्टिविवाहोपनयनादिकर्मसु तु पुत्रप्रसूनां विंशतिरात्रान्तेऽधिकारः। कन्याप्रसूनां मासान्तेऽधिकारः।

दस दिन के अन्त में प्रसूति की अस्पृश्यत्व-निवृत्ति और नामकरण, जातकर्म आदि का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है। जातेष्टि, विवाह और उपनयन आदि कर्म में तो पुत्र उत्पन्न करने वाली का बीस रात के बाद अधिकार होता है। कन्या पैदा करने वाली को एक माह के बाद अधिकार होता है।

अथ जन्मनि दुष्टकालशान्तिनिर्णयः

अथ जन्मनि [3]दुष्टकालास्तच्छान्तयश्च निर्णीयन्ते—तत्रादौ गोप्रसवः। यत्र जन्मकाले पितुर्मातुः सुतस्य चारिष्टमुक्तं तत्र गोप्रसवशान्तिस्तत्तन्नक्षत्रादिशान्तिश्च

---

१. निर्णयामृते—'भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्। असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते॥' स्कान्दे—'पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा। एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत्॥' इति।

२. मनुः—'माता शुद्ध्येद्दशाहेन उपस्पृश्य पिता शुचिः।' सूतिकास्नानमुहूर्तः—'करेन्द्रभाग्यानिलवासवान्त्यमैत्रेन्दवाश्विध्रुवभेऽह्नि पुंसाम्। तिथावरिक्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनीन्द्राः॥' अर्थात् हस्त ज्येष्ठा पूर्वाफाल्गुनी स्वाती धनिष्ठा रेवती अनुराधा मृगशिरा अश्विनी रोहिणी तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों तथा रिक्ता भिन्न तिथियों में सूतिकास्नान शुभदायक है। स्नान में त्याज्य नक्षत्र—'पुनर्वसुद्वयं चित्रा विशाखा भरणीद्वयम्। मूलमार्द्रा मघा हेया श्रवणो दशमस्तथा॥' इति।

३. दुष्टकालाः गण्डान्तः, स त्रिविधः। तदुक्तं—'गण्डान्तस्त्रिविधो ज्ञेयो नक्षत्रतिथिलग्नगः। नवपञ्चचतुर्थान्त्ये द्व्येकार्द्धात्परतोऽग्रगाः। अस्यार्थः—अश्विनीतो नवममाश्लेषा ततो ज्येष्ठा रेवती तदन्त्ये घटिके परतो दशमं मघा ततो मूलं ततोऽश्विनी तदादौ घटिके। एवं चतुर्घट्यो गण्डान्तः। एवं प्रतिपत्प्रभृतिपञ्चमान्ते षष्ठादौ चैकघटिका तिथिगण्डान्तः। एवं मेषप्रभृतिचतुर्थान्ते पञ्चमादौ च अर्द्धार्द्धघटिका लग्नगण्डान्तः।

कार्या। धनाद्यरिष्टेषु न कार्या। मूलाश्लेषाज्येष्ठामघानक्षत्रेषु जनने चतुर्थपादादिषु पित्राद्यरिष्टाभावेपि गोप्रसवः। अश्विनीरेवतीपुष्यचित्रासु नक्षत्रशान्त्यभावेपि गोप्रसवशान्तिरेव कार्या। तत्र 'अस्य शिशोरमुकदुष्टकालोत्पत्तिसूचितारिष्टनिवृत्त्यर्थं गोमुखप्रसवशान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्य गणेशपूजनमात्रं[१] कृत्वा अङ्गादङ्गादिति मन्त्रेण शिशुमूर्धावघ्राणान्ते प्रयोगमध्य एव पुण्याहवाचनमिति कौस्तुभमयूखौ।

जन्मकाल में दुष्ट काल और उसकी शान्ति का निर्णय करते हैं—जहाँ जन्मकाल में पिता माता और पुत्र का अरिष्ट कहा है, वहाँ गोप्रसवशान्ति और उन-उन नक्षत्रों आदि की शान्ति भी करनी चाहिये। धन आदि के अरिष्टों में नहीं करे। मूल, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मघा नक्षत्र में जन्म होने से चौथे पाद आदि में पिता आदि को अरिष्ट होने पर गोप्रसवशान्ति करनी चाहिये। अश्विनी, रेवती, पुष्य और चित्रा में नक्षत्र शान्ति न होने पर भी गोप्रसवशान्ति ही करे। उसमें 'इस बालक के अमुक दुष्टकाल में उत्पन्न होने से जो अरिष्ट हो उसकी निवृत्ति के लिये गोमुखप्रसवशान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प करके केवल गणेशपूजन करके 'अंगादंगात्' इस मन्त्र से बच्चे के सिर सूंघने के बाद प्रयोग के बीच में ही पुण्याहवाचन करे, ऐसा कौस्तुभ और मयूख में कहा है।

पुण्याहवाचनं शाखोक्तं कृत्वा मूर्धावघ्राणान्ते अस्य गोमुखप्रसवस्य पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्त्वित्येकवाक्यमेव त्रिर्वदेत्। ऋत्विजश्च प्रतिब्रूयुर्न तु शाखोक्तमिति कमलाकरः। नान्दीश्राद्धं न कार्यम्। अग्निप्रतिष्ठान्ते कस्मिंश्चित्पीठे नवग्रहान् अधिदेवतादिरहितान् प्रतिष्ठाप्यान्वाधानं कुर्यात्। आज्यभागान्ते अपः आपोहिष्ठेति त्र्यृचेन अप्सु मे सोम इति गायत्र्या ऋचा च मिलितदधिमध्वाज्येन प्रत्यृचमष्टाष्टसंख्याहुतिभिर्विष्णुं तद्विष्णोरित्यृचा मिलितदधिमध्वाज्येनाष्टाहुतिभिः यक्ष्महृणमक्षीभ्यामिति सूक्तेन प्रत्यृचमष्टा-

---

तदुक्तं रत्नमालायाम्—'पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्यर्क्षयोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम्। तद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम्॥' ज्योतिर्निबन्धे—'पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिनाडीद्वयं तथा। गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु॥ कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः। गण्डान्तमन्तरालं स्याद् घटिकार्धं मृतिप्रदम्॥'

ज्योतिर्निबन्धे नक्षत्रगण्डान्तमन्यथोक्तम्—'सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वन्त्यषडंशांशा भसन्धयः। तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञकाः॥' षडंशा इत्यत्र षोडशांशा इति पाठान्तरम्।

गण्डान्तफलमुक्तं रत्नसंग्रहे—'सर्वेषा गण्डजातानां परित्यागो विधीयते। वर्जयेद्दर्शनं तेषां तच्च षाण्मासिकं भवेत्। तिथ्यर्क्षगण्डे पितृमातृनाशो लग्ने तु सन्धौ तनयस्य नाशः। सर्वेषु नो जीवति हन्ति बन्धून् जीवन् पुनः स्याद् बहुवारणाश्वः॥'

उत्तरगार्ग्ये एषां दानमुक्तम्—'तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते। काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति॥ उत्तरे तिलपात्रं स्यात्पुष्ये गोदानमुच्यते। अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे स्यात् पूर्वाषाढे च काञ्चनम्॥ उत्तरापुष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च। कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजं बुधः॥' इति। गोप्रसवसंक्षिप्तशान्तिविधिः नक्षत्रशान्त्यन्तर्गतमूलशान्तौ वक्ष्यते।

१. गणेशपूजनादि आचार्यवरणान्तं सर्वं कृत्वेत्यर्थः।

ष्टमिलितदधिमध्वाज्याहुतिभिर्नवग्रहान् दधिमध्वाज्येन[1] अष्टाष्टसंख्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि मयूखादयः ।

अपनी शाखा का कहा हुआ पुण्याहवाचन करके सिर सूंघने के बाद इस गोमुखप्रसव का आप लोग पुण्याह कहें । इस एक वाक्य ही को तीन बार कहे । ऋत्विग् लोग भी पुण्याहं तीन बार कहें । शाखा में कहा हुआ न कहे ऐसा कमलाकर कहते हैं । नान्दीश्राद्ध नहीं करे । अग्नि-स्थापना के बाद किसी पीढ़े पर अधिदेवता आदि से रहित नवग्रहों को स्थापित करके अन्वाधान करे । आज्य-भाग के अन्त में 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से 'अप्सु मे सोमः' इस मन्त्र से और गायत्री मन्त्र से दही, मधु और घी की आठ आहुतियों से जल का 'तद्विष्णोः' इस मंत्र से आठ-आठ आहुतियों से विष्णु का 'यक्ष्मग्रहणम् अक्षीभ्यां' इस सूक्त की प्रत्येक ऋचाओं से आठ आठ दही मधु घृतादि की आहुतियों से यक्ष्महा का और दही मधु घृत की आठ-आठ आहुतियों से नवग्रहों का होम करे । शेष दध्यादि से स्विष्टकृत् होम करे, ऐसा मयूख आदि में कहता है ।

कमलाकरस्तु दधिमध्वाज्येनापश्चतुर्वारं विष्णुं सकृत् यक्ष्महणमक्षीभ्यामिति सूक्तेन प्रत्यृचमष्टाष्टसंख्याहुतिभिर्नवग्रहानेकैकयाहुत्या शेषेण स्विष्टकृतमित्याह । आज्यभागहोमान्ते एकस्मिन्कुम्भे विष्णुवरुणौ प्रतिमयोः संपूज्यौ । प्रतिमासु विष्णुवरुणयक्ष्महणः पूज्या इति मयूखे । ततो यथान्वाधानं होम इति संक्षेपः । अवशिष्टः प्रयोगः शान्तिग्रन्थेषु । एवमग्रेपि देवताद्रव्याहुतिसंख्यानिमित्तफलमात्रं लिख्यते, विस्तरोऽन्यत्र ज्ञेयः ।

कमलाकर ने तो दही, मधु, घृत से जल को चार, विष्णु को एक और 'यक्ष्महणमक्षीभ्यां' इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा से आठ आठ आहुतियां यक्ष्महा को और एक एक नवग्रहों को दे, बचे हुए से स्विष्टकृत् ऐसा कहा है । आज्यभाग के अन्त में एक कलश में विष्णु और गरुड़ की प्रतिमा की पूजा करे । प्रतिमा में विष्णु, वरुण और यक्ष्महा पूज्य हैं, ऐसा मयूख में कहा है । तदनन्तर अन्वाधान के अनुसार होम करे, यह संक्षेप से कहा है । बाकी प्रयोग शान्तिग्रन्थों से जानें । इसी प्रकार आगे भी देवता, द्रव्य और आहुति की संख्या के निमित्त केवल फल लिखते हैं । विस्तार अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिये ।

अथ कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम् ।
चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् ॥
द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं तथा ।
चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् ॥
षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ।

तत्र चतुर्दश्याः षडंशानां मध्ये द्वितीयतृतीयषष्ठांशेषु जनने गोमुखप्रसव-पूर्वकं चतुर्दशीशान्तिः । अन्यभागे केवलचतुर्दशीशान्तिः । अस्य शिशोः कृष्ण-चतुर्दश्या अमुकांशजननसूचितसर्वारिष्टनिरासद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमित्यादि-

१. मात्स्ये—'होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत् । अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते ॥' इति ।

संकल्पः । आग्नेय्यादिचतुर्दिक्षु चत्वारः कुम्भा मध्ये शतच्छिद्रकुम्भे प्रतिमायां रुद्रावाहनम् ।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में प्रसव होने का फल छ प्रकार का है। चतुर्दशी को छ भाग कर दे। उसमें पहिला भाग शुभ होता है। दूसरे भाग में जन्म होने से पिता को मारता है। तीसरे में माता को, चौथे में मामा को, पाचवें में वंश का नाश, छठे में तो धन की हानि और अपने वंश का नाश कहा है। उसमें चतुर्दशी के छ अंशो में दूसरे तीसरे और छठे अंश में जन्म होने से पहले गोमुख-प्रसवशान्ति करके चतुर्दशी की शान्ति करे। अन्य भागों में केवल चतुर्दशी की शान्ति करे। इस बालक के कृष्ण चतुर्दशी के अमुक अंश में जन्म होने से सूचित सम्पूर्ण अरिष्ट को हटाने के लिये श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ इत्यादि संकल्प करे। आग्नेय आदि चारों दिशाओं में चार कलश स्थापित करे। बीच में सौ छेद वाले कलश में रुद्र की प्रतिमा में आवाहन करे।

मयूखे तु पीठादौ रुद्रप्रतिमां संपूज्य तत्प्राच्यामुदीच्यां वा शतच्छिद्रादि-पञ्चकलशस्थापनं पूजनम् । अन्वाधाने ग्रहानष्टाष्टसंख्यसमिदाज्यचरुभिरधिदेवता-दीन् एकैकसंख्यसमिच्चर्वाज्याहुतिभिः रुद्रम् अश्वत्थप्लक्षपलाशखदिरसमिद्भिश्च-र्वाहुतिभिराज्याहुतिभिर्माषस्तिलैः सर्षपैश्च प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यन्यतर-संख्यया त्र्यंबकमिति मन्त्रेण, अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च तिलाहुतिभिरमुकसं-ख्याभिः सकृद्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिः यद्वा प्रजापतिमेव समस्तव्याहृतिभिस्ति-लैः शेषेणेत्यादि ।

मयूख में तो पीढ़े आदि पर रुद्र-प्रतिमा की पूजा कर उससे पूरब या उत्तर दिशा में सौ छेद आदि पांच कलशों की स्थापना और पूजन करे। अन्वाधान में ग्रहों को आठ आठ समिधा और घृत चरु से, अधिदेवता आदि को एक एक समिधा और चरु आज्याहुतियों से, रुद्र को 'त्र्यम्बकं' इस मन्त्र से पीपल, पकड़ी, पलाश और खैर की समिधाओं से और चरु की आहुतियों से घी की आहुतियों से उर्द, तिल और सरसों से प्रत्येक द्रव्य के १०८ या २८ में से किसी एक संख्या से होम करे। अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति को तिलाहुतियों से व्यस्त समस्त व्याहृतियों से १०८ या २८ आहुति अथवा प्रजापति को ही समस्त व्याहृतियों से तिलों से होम करे शेष से स्विष्टकृत् ।

अथ सिनीवालीकुहूजननशान्तिः

तत्रामावास्यायाः प्रथमो यामः सिनीवाली । अन्त्योपान्त्ययामौ कुहूः । मध्यवर्तिपञ्चयामा दर्श इति केचित् । अपरे तु चतुर्दशीमात्रयुतेऽहोरात्रे वर्तमाना अमावास्या सिनीवाली । प्रतिपन्मात्रयुतेऽहोरात्रे वर्तमाना कुहूः । तेनामाया वासरत्रयस्पर्शित्वलक्षणदिनवृद्ध्यभावे सूर्योदयस्पर्शत्वाभावलक्षणक्षयाभावे च दर्शो नास्त्येव । उदयात्पूर्वाहोरात्रे वर्तमानायाः सिनीवालीत्वात् । उदयोत्तरं वर्त-मानायाः कुहूत्वात् । दिनक्षये सर्वाप्यमा दर्शसंज्ञा, न तत्र सिनीवालीकुहूभागौ; केवलचतुर्दशीकेवलप्रतिपद्युक्तत्वाभावात् ।

उसमें अमावास्या के प्रथम प्रहर को सिनीवाली कहते हैं। अन्त और अन्त के समीप पहर को कुहू कहते हैं। बीच वाले पांच पहरों को दर्श कहते हैं, यह किसी का कहना है। अन्य लोग तो केवल चतुर्दशीयुक्त अहोरात्र में रहने वाली अमावास्या को सिनीवाली कहते हैं और केवल प्रतिपदा

युक्त अहोरात्र में रहने वाली अमावास्या को सिनीवाली कहते हैं और केवल प्रतिपदायुक्त अहोरात्र में रहने वाली अमावास्या को कुहू कहते हैं। इससे अमावास्या को तीन दिन स्पर्श करने वाली दिन-वृद्धि के अभाव में सूर्योदय को स्पर्श न करने वाली क्षय के अभाव में दर्श नहीं है। उदय से पहिले दिन रात में रहने से सिनीवाली हो जाने और उदय के बाद वर्तमान रहने से कुहू होने के कारण। दिन क्षय में सम्पूर्ण अमावास्या का दर्श नाम है उसमें न सिनीवाली और न कुहू भाग होता है, क्योंकि केवल चतुर्दशी और केवल प्रतिपदा के योग का अभाव है।

एवं दिनवृद्धौ त्रिदिनस्पर्शे मध्यदिनस्था षष्टिनाडीमितामावास्या दर्शसंज्ञा, चतुर्दश्यादियोगाभावात्; पूर्वोत्तरदिनस्थौ भागौ सिनीवालीकुहूसंज्ञावित्याहुः। इदं मयूखे स्पष्टम्।

सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा।
गजाश्वा महिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥
गोपक्षिमृगदासीनां प्रसूतिरपि वित्तहृत्।
कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी स्मृता॥
यस्य प्रसूतिरेतेषां तस्यायुर्धननाशनम्।
शान्त्यभावेऽर्हति त्यागमत्र जातो न संशयः॥
अत्यागे नाशयेत्किंचित्स्वयं वा नाशमाप्नुयात्।

सिनीवालीजननसूचितेत्यादिः कुहूजननसूचितारिष्टनाशेत्यादिश्च संकल्पः।

इस प्रकार दिनवृद्धि होने पर तीन दिन के स्पर्श होने पर मध्यदिन में रहने वाली साठ घड़ी वाली अमावास्या की दर्श संज्ञा है, चतुर्दशी आदि योग के अभाव से पहले दूसरे दिन के दो भागों को सिनीवाली और कुहू कह चुके हैं, यह मयूख में स्पष्ट किया है। जिसकी स्त्री या पशु सिनी-वाली में प्रसव की हो हथिनी, घोड़ी, भैंस, वह यदि इन्द्र भी हों तो उसकी लक्ष्मी का हरण हो जाता है। गाय, पक्षी और दासी का भी प्रसव धनहरण करने वाला होता है। कुहू अमावास्या का प्रसव अत्यन्त दोषकर कहा है। जिसके हाथी घोड़े आदि ये पशु हैं उस मालिक की आयु धन का नाश होता है। शान्ति न करने पर इसमें उत्पन्न संतति का त्याग कर दे इसमें संशय नहीं है। नहीं त्याग करने पर कुछ नाश करती है या स्वयं नाश हो जाती है। इसमें सिनीवाली-जनन-सूचित इत्यादि तथा कुहू-जनन-सूचितारिष्टनाश इत्यादि संकल्प है।

कुहूजनने गोप्रसवोपीति केचित्। अत्रोभयत्रापि चतुर्दशीशान्तिवच्छतच्छिद्र-कलशसहिताः पञ्चकलशाः। मध्ये रुद्रः प्रधानदेवता इन्द्रः पितरश्च पार्श्वदेवते इति प्रतिमात्रयम्। इन्द्रस्य पितॄणां च प्रधानरुद्रन्यूनसंख्यया प्रधानोक्तसर्वद्रव्यैः[1]-र्होमः। अवशिष्टान्वाधानदेवतोहश्चतुर्दशीशान्तिवत्।

कुहू में जन्म लेने पर गोप्रसव भी करे, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। इसमें दोनों जगह चतु-र्दशी शान्ति की तरह सौ छेद वाले कलश सहित पांच कलश होते हैं। मध्य में प्रधानदेवता रुद्र, पार्श्वदेवता इन्द्र और पितृगण हैं, इस प्रकार तीन प्रतिमा हैं। इन्द्र और पितरों को भी प्रधानरुद्र की न्यून संख्या से प्रधान के कहे गये सब द्रव्यों से होम करे। अवशिष्ट अन्वाधान के देवता की कल्पना चतुर्दशी शान्ति की तरह करे।

---

१. कौस्तुभोक्तैः अश्वत्थप्लक्षपालाशखदिरसमिद्भिः आज्यचरुसर्षपतिलमाषैश्च द्रव्यैरित्यर्थः।

अथ दशदानानां नामानि

प्रधानदेवतापूजोत्तरं गोवस्त्रस्वर्णदानानि कृत्वा,
गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ।
रौप्यं लवणमित्येतद्दशदानानि दापयेत् ॥
क्षीराज्यगुडदानं च कृत्वा होमं समारभेत् ।

एतानि दानानि ऋत्विग्भ्यो देयानि । तेनान्ते पृथक् दक्षिणादानं न कार्यम् । अत एवात्र गवादेर्दक्षिणारूपत्वात्सदक्षिणं दानं न भवति । अन्यत्र दशदानादीनां सदक्षिणं दानं कार्यम् ।

प्रधानदेवता की पूजा के बाद गाय, वस्त्र और सुवर्ण दान करके गाय, भूमि, तिल, सुवर्ण, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड़, चांदी और लवण, इस प्रकार दश दानो को दे । दूध, घी और गुड़ का दान करके होम प्रारंभ करे । इन दानों को ऋत्विजों को दे । इससे अन्त में अलग दक्षिणा न दे । इसलिये यहाँ गाय आदि का दक्षिणारूप से दक्षिणासहित दान नहीं होता । इससे भिन्न स्थल में दक्षिणा के सहित दस दान देना चाहिये ।

अथ दशदानद्रव्याणां मानम्

अथैतेषां मानम्—भुवो मानं गोचर्म, सप्तहस्तो दण्डः त्रिंशद्दण्डा वर्तनम्, दशवर्तनानि गोचर्म, तिलानां द्रोणः, सुवर्णरजतयोर्दशमाषतदर्धतदर्धान्यतमम्, आज्यस्य चत्वारिंशत्पलानि, वासस्त्रिहस्तत्वम्, धान्यस्य पञ्चद्रोणाः। एवं गुडलवणयोः।

अब इन दसों दानों का मान बताते हैं—पृथ्वी का मान गोचर्म है । ७ हाथ का दंड होता है और ३० दण्ड का वर्तन होता है । १० वर्तन का एक गोचर्म है । तिलों का मान द्रोण है, सोने चाँदी का मान १० माशा ५ माशा और २॥ माशा में से कोई एक । घी का ४० पल, वस्त्र ३ हाथ प्रमाण का, धान्य का ५ द्रोण, यही प्रमाण गुड़ और नमक का भी है ।

एतावत्प्रमाणाशक्तौ नित्यनैमित्तिके यथाशक्ति देयानि । यथाशक्ति हिरण्यं वा तत्तत्प्रतिनिधित्वेन हिरण्यगर्भेति मन्त्रेण देयम्, नैमित्तिकादेरकरणे प्रत्यवायात् । अभ्युदयादिफलार्थं तु दशदानानि शक्तिं विना न कार्याणीति भाति । होमान्ते बलिदानाभिषेकादि । इति सिनीवालीकुहूशान्तिः ।

इतने तौल नाप से देने में असमर्थ होने पर नित्य नैमित्तिक कर्म में यथाशक्ति दे । यथाशक्ति सोना या उसके एवज में दूसरी वस्तु 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि मन्त्र से दे, क्योंकि नैमित्तिक आदि के न करने पर प्रायश्चित्त होता है । अभ्युदय आदि फल के लिये तो दस दानों को विना शक्ति के न करे, ऐसा ठीक मालूम होता है । होम के अन्त में बलिदान अभिषेक आदि करे । सिनीवाली कुहू शान्ति समाप्त ।

अथ दर्शशान्तिः

अथातो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता ।
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं वक्ष्यामि ते तदा ॥

अस्य० दर्शजननसूचितारिष्टनिरासार्थं शान्तिं करिष्ये इति संकल्पः । स्थ-

ण्डिलात्पूर्वदेशे कलशं प्रतिष्ठाप्य कलशाग्न्योर्मध्ये सर्वतोभद्रपीठे ब्रह्मादिमण्डल-देवता आवाह्य तन्मध्ये स्वर्णप्रतिमायां ये चेहेति मन्त्रेण पितॄनावाहयेत्। तद्द-क्षिणे रजतप्रतिमायामाप्यायस्वेति सोममुत्तरतस्ताम्रप्रतिमायां सवितापश्चाता-दिति सूर्यं चावाह्य संपूज्याग्निं प्रतिष्ठाप्य सर्वतोभद्रैशान्यां ग्रहस्थापनादि।

दर्श में जन्म लेने वाले बालकों के माता पिता को दरिद्रता होती है इस दोष के परिहार के लिये उसकी शान्ति कहेंगे। इसमें संकल्प ऐसा करे—'इस दर्शजनन सूचित अरिष्ट के निरासार्थ शान्ति करूँगा'। स्थंडिल से पूर्व देश में कलश की स्थापना कर कलश अग्नि के बीच से सर्वतोभद्र पीठ में ब्रह्मा आदि मण्डल देवताओं का आवाहन कर उसके बीच में सुवर्ण की प्रतिमा में 'ये चेह' इस मंत्र से पितरों का आवाहन करे। उसके दक्षिण में चांदी की प्रतिमा में 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से चन्द्र-मा का आवाहन करे। उससे उत्तर दिशा में ताम्र प्रतिमा में 'सविता पश्चातात्' इस मन्त्र से सूर्य का आवाहन और पूजन करके अग्नि की स्थापना कर सर्वतोभद्र से ईशान दिशा में ग्रहों की स्थापना आदि करे।

अन्वाधाने आदित्यादिग्रहान् अमुकसंख्याभिः समिच्चर्वाज्याहुतिभिः पितॄन्। अष्टाविंशतिसंख्याकाभिः समिच्चरुभ्यां सोमं सूर्यं च प्रत्येकमष्टोत्तरशतसंख्यसमि-च्चर्वाज्याहुतिभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। अत्र स्विष्टकृतः पूर्वं मातापितृशिशूनां कलशोदकेनाभिषेकस्ततः स्विष्टकृद्बलिदानादीति विशेषः। इति दर्शशान्तिः।

अन्वाधान में आदित्यादि ग्रहों को अमुक संख्या की समिधा चरु और आज्याहुतियों से पितरों को २८ संख्यावाली समिधा और चरु से चन्द्रमा और सूर्य प्रत्येक को १०८ संख्या की समिधा और चरु की आहुतियों से बाकी बचे हुए से स्विष्टकृत् इत्यादि करे। यहां पर स्विष्टकृत् के पहले माता पिता और बच्चों का कलश के जल से अभिषेक करे तदनन्तर स्विष्टकृत् और बलिदान आदि करे, इतना विशेष है। दर्शशान्ति समाप्त।

अथ नक्षत्रशान्तिः मूलादिजन्मफलं च

तत्र मूलनक्षत्रफलम्—

पिता म्रियेत मूलाद्ये पादे पुत्रजनिर्यदि।
द्वितीये जननीनाशो धननाशस्तृतीयके॥
चतुर्थे कुलनाशोऽतः शान्तिः कार्या प्रयत्नतः।
क्वचिच्चतुर्थचरणः शुभ उक्तो मनीषिभिः॥
एवं च दुहितुर्ज्ञेयं मूलजातफलं बुधैः।

इसमें मूलनक्षत्र का फल—मूल के प्रथम चरण में यदि पुत्र उत्पन्न हो तो पिता का मरण होता है। दूसरे चरण में माता, तीसरे चरण में धन और चौथे में कुल का नाश होता है इसलिये प्रयत्न पूर्वक शान्ति करनी चाहिये। कहीं मूल के चतुर्थ चरण को पण्डितों ने शुभ कहा है। इसी प्रकार मूलनक्षत्र में उत्पन्न हुई लड़की का फल भी पण्डितों ने कहा है।

केचित्तु—

न कन्या हन्ति मूलर्क्षे पितरं मातरं तथा।
मूलजा श्वशुरं हन्ति श्वश्रूमाश्लेषजा सुता॥

ज्येष्ठायां तु पतिज्येष्ठं विशाखोत्था तु देवरम् ।
शान्तिर्वा पुष्कला स्याच्चेत्तर्हि दोषो न विद्यते ॥ इत्याहुः ।

कोई तो—मूलनक्षत्र में उत्पन्न हुई कन्या माता और पिता का नाश नहीं करती, श्वशुर का नाश करती है । आश्लेषा में उत्पन्न कन्या सास का नाश करती है । ज्येष्ठा में उत्पन्न कन्या तो पति के जेठे भाई का नाश करती है । विशाखा में उत्पन्न कन्या देवर का नाश करती है । यदि बहुत बड़ी शान्ति की जाय तो दोष नहीं होता, ऐसा कहते हैं ।

अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेत्तु बालकम् ।
समाष्टकं पिताथवा न तन्मुखं विलोकयेत् ।
ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् ।
अभुक्तमूलमथवा संधिनाडीचतुष्टयम् ॥
वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिवि स्थितं युग्मतुलाङ्गनान्त्ये ।
पातालगं मेषधनुःकुलीरनक्रेषु मर्त्येष्विति संस्मरन्ति ॥ एतल्लग्नफलम् ।

अभुक्तमूल में उत्पन्न बालक का परित्याग कर दे । अथवा पिता उस बालक का मुख ८ वर्ष तक न देखे । ज्येष्ठा के अन्तवाली एक घड़ी, मूल के आदि की दो घड़ी अभुक्तमूल कहलाता है । अथवा दोनों नक्षत्रों के संधि की ४ घड़ी को अभुक्तमूल कहते हैं । वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ में मूलनक्षत्र स्वर्ग में रहता है । मिथुन, तुला और कन्या के अन्त में पाताल में रहता है । मेष, धनु, कर्क और मकर में मर्त्यलोक में रहता है, ऐसा लोग कहते हैं । यह लग्न का फल है ।

स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले च धनागमः ।
मृत्युलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत् ॥
नवमासं सार्पदोषो मूलदोषोऽष्टवर्षकम् ।
ज्यैष्ठो मासान्पञ्चदश तावद्दर्शनवर्जनम् ॥
व्यतीपातेऽङ्गहानिः स्यात्परिघे मृत्युमादिशेत् ।
वैधृतौ पितृहानिः स्यान्नष्टेन्दावन्धतां व्रजेत् ॥
मूले समूलनाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ भवेत् ।
विकृताङ्गश्च हीनश्च संध्ययोरुभयोरपि ॥
तद्वत्सदन्तजातस्तु पादजातस्तथैव च ।
तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत ग्रहाणां क्रूरचेतसाम् ॥

व्यतीपातादौ ग्रहमखसहिता तत्तच्छान्तिरवश्यं कार्या । इतरशान्तिषु ग्रहमखो नावश्यक इत्यर्थः ।

स्वर्गस्थ मूल में राज्य होता है । पाताल में रहने पर धन की प्राप्ति और मृत्युलोक में जब रहता है तब शून्य फल कहना चाहिये । आश्लेषा का दोष ९ मास, मूल का दोष ८ वर्ष, ज्येष्ठा का दोष १५ महीना तक होता है, तब तक बालक को देखना नहीं चाहिये । व्यतीपात में उत्पन्न बालक की अंग-हानि होती है । परिघ में उत्पन्न का मृत्यु-फल है । वैधृति में पिता की हानि, अमावास्या में अन्धा होता है । मूल में समूल नाश होता है । धृति में कुल का नाश होता है । दोनों

संध्याओं में उत्पन्न बालक विकृतांग और हीनांग होता है। उसी तरह दांत के साथ जन्म लेने वाला पैर की ओर से जन्म लेने वाला बालक अंगहीन होता है। इसलिये क्रूरचित्त वाले ग्रहों की शान्ति करनी चाहिये। व्यतीपात आदि में ग्रहयज्ञ के साथ इन सब की शान्ति अवश्य करे। अन्य शान्तियों में ग्रहयज्ञ आवश्यक नहीं है।

अथ शान्तिकालनिर्णयः

मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमस्य यत्नतः।
जातस्य द्वादशाहे तु जन्मर्क्षे वा शुभे दिने॥

जननाद् द्वादशाहे शान्तिकरणे शान्त्युक्तनक्षत्राहुतिवह्निचक्रावलोकनादिकं नावश्यकम्। कालान्तरे आवश्यकम्। एवमन्यशान्तिष्वपि ज्ञेयम्।

यत्नपूर्वक शान्ति-होमका मुख्यकाल कहता हूँ। जन्मदिन से बारहवें दिन, जन्मनक्षत्र या शुभ दिन में शान्ति करे। जन्म से बारहवें दिन शान्ति करने में शान्ति में कहे नक्षत्राहुति और अग्नि-चक्र का अवलोकन आदि आवश्यक नहीं है। दूसरे समय में आवश्यक होता है। इसी प्रकार अन्य शान्तियों में भी जानना चाहिये।

अथ अग्निचक्रम्

तद्यथा—

शुक्लादितस्तिथिः सैका वारयुक्ताब्धिशेषिता।
खे गुणे भुवि वासोऽग्नेर्द्व्येकयोः स्यादधो दिवि॥ भूमावग्निः शुभः।
होमाहुतिः[1] सूर्यभतस्त्रिभं त्रिभं गण्यं मुहुस्तत्र च चन्द्रभावधि।
सूर्यज्ञशुक्रार्कजचन्द्रभूमिजा जीवस्तमः केतुरसत्यसन्मुखे॥

संस्कारनित्यकर्मसु निमित्ताव्यवहितनैमित्तिकेषु रोगातुरे च वह्निचक्रादिकं[2] नापेक्षितम्।

अग्नेः स्थापनवेलायां पूर्णाहुत्यामथापि वा।
आहुतिर्वह्निवासश्च विलोक्यौ शान्तिकर्मणि॥

---

१. सूर्याश्रित-नक्षत्र से चन्द्राश्रित-नक्षत्र-पर्यन्त तीन-तीन नक्षत्र के गिनने पर १, २ और ३ संख्या सूर्यभाग, तदनन्तर नक्षत्रत्रय की ४, ५ और ६ संख्या बुधभाग, पुनः नक्षत्रत्रय की ७,८ और ९ संख्या शुक्रभाग। इसी प्रकार १०, ११, १२ शनिभाग। १३, १४, १५ चन्द्रभाग। १६, १७, १८ भौमभाग। १९, २०, २१ गुरुभाग। २२, २३, २४ राहुभाग। २५, २६, २७ केतु-भाग। इनमें शुभग्रह—बुध, शुक्र, चन्द्र और गुरु के सूर्यनक्षत्र से ४, ५, ६, ७, ८, ९, १३, १४ १५, १९, २०, २१ एतदन्यतम चन्द्रनक्षत्र में होमाहुति शुभ है। अशुभग्रह—सूर्य, शनि, भौम, राहु और केतु के उपर्युक्त नक्षत्र की संख्या में होमाहुति न करे।

२. वह्निवास का अपवाद—'दुर्गाहोमविधौ विवाहसमये सीमन्तपुत्रोत्सवे गर्भाधानविधौ च वास्तुसमये विष्णोः प्रतिष्ठादिषु। मौञ्जीबन्धनवैश्वदेवकरणे संस्कारनैमित्तिके होमे नित्यभवे न दोषकथनं चक्रस्य वह्नेरपि॥' अपि च—'संस्कारेषु विचारोऽस्य न कार्यो नापि वैष्णवे। नित्ये नैमित्तिके कार्यो न चाब्दे मुनिभिः स्मृतः॥' इति। इसी प्रकार जपादि के अंग-होम में भी दिन शोधने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसका स्वतन्त्रकाल नहीं होता।

वह इस प्रकार है—शुक्लादि तिथि जिसमें एक संख्या और बार का योग करने पर तथा चार से भाग देने पर शून्य एवं तीन शेष रहने पर अग्नि का पृथिवी पर वास होता है। तथा दो शेष रहने पर पाताल में और एक शेष रहने पर स्वर्ग में वास रहता है। भूमि में अग्नि का वास शुभ होता है। होम की आहुति सूर्यनक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र तक तीन तीन नक्षत्र गिने। उसमें सूर्यनक्षत्र का आदि नक्षत्रत्रय सूर्य का, उसके बाद का तीन नक्षत्र बुध का। इस प्रकार गणना करने पर शुभग्रह का नक्षत्र होमाहुतिचक्र के मुख में हो तो ठीक है। संस्कार और नित्यकर्म में निमित्त से व्यवधानरहित नैमित्तिकों में और रोग से आतुर में भी अग्निचक्र आदि की अपेक्षा नहीं है। अग्निस्थापन के समय में अथवा पूर्णाहुति में, आहुति और वह्नि का वास शान्ति कर्म में देखना चाहिये।

अथ सर्वशान्त्युपयोगिशुभदिननिर्णयः

त्र्युत्तरारोहिणीश्रवणधनिष्ठाशततारकापुनर्वसुस्वातीमघाश्विनीहस्तपुष्यानुराधारेवतीनक्षत्रेषु गुरुशुक्रास्तमलमासरहिते शुभवारतिथ्यादौ शान्तिः कार्या। निमित्ताव्यवहितनमित्तिके रोगशान्तौ च अस्तादिविचारणा नास्ति। इति प्रसङ्गात्सर्वशान्त्युपयोगिशुभदिननिर्णयः।

तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, पुनर्वसु, स्वाती, मघा, अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा और रेवती नक्षत्रों में बृहस्पति और शुक्र के अस्त में मलमास से रहित शुभवार तिथि आदि में शान्ति करनी चाहिये। निमित्त से व्यवधानरहित नैमित्तिक में और रोग शान्ति में भी अस्त आदि का विचार नहीं करना चाहिये। यह प्रसंग से सब शान्ति का उपयोगी शुभदिन का निर्णय किया।

अथ मूलशान्तिप्रयोगः

अभुक्तमूलोत्पत्तौ वर्षाष्टकं शिशुत्यागस्ततः शान्तिः। तदन्यमूलोत्पत्तौ द्वादशाहे अव्यवहितागामिमूलयुते शुभदिने वान्यत्र शुभदिने वा [1]गोप्रसवशान्तिं कृत्वास्य शिशोर्मूलप्रथमचरणोत्पत्तिसूचितारिष्टनिरासार्थं सग्रहमखां शान्तिं करिष्ये इति संकल्पयेत्। द्वितीयादिपादोत्पत्तौ संकल्पे तथोहः। ब्रह्मसदस्यौ कृताकृतौ। ऋत्विजोऽष्टौ चत्वारो वा। मध्यकलशे स्वर्णप्रतिमायां रुद्रावाहनादि। तस्य चतुर्दिक्षु कुम्भचतुष्टयेऽक्षतपुञ्जेषु वरुणपूजा। यद्वा—

---

१. गणेशपूजनाद्याचार्यवरणान्तानि सर्वाणि कृत्यानि कृत्वा ईशानभागे श्वेतरजोभिः कर्णिकायुतं पद्मं रचयित्वा तत्र व्रीहौ शूर्पं स्थापयित्वा शूर्पे रक्तवस्त्रं प्रसार्य तत्र तिलान् विकीर्य तदुपरि प्राक्शिरसं पश्चिमपादं शिशुं निधाय शिशुसहितं शूर्पं सूत्रेण वेष्टयित्वा गोमुखसान्निध्यं नीत्वा विष्णुर्योनिमिति सूक्तेन शिशुजन्म भावयित्वा पञ्चगव्येन शिशुं स्नापयित्वा गवामङ्गेष्विति मन्त्रेण गोः सर्वाङ्गे वामाङ्गेषु वा स्पर्शं कारयित्वा आचार्यः शिशुं मात्रे दद्यात्।

माता शिशुं गोमुखसमीपे नीत्वा गोपुच्छदेशे पित्रे दद्यात्। तत आचार्यः पितृहस्तेन मात्रे दापयेत्। ततः पिता शिशुं नववस्त्रे संस्थाप्य आच्छादनमपसार्य पुत्रमुखेक्षणं कृत्वा आपोहिष्ठेति त्र्यृचेन पञ्चगव्येन शिशुं प्रोक्षेत्। ततः पिता हस्तद्वयेन परिग्रहपूर्वकं अङ्गादङ्गादिति मन्त्रेण मूर्धनि त्रिरवघ्राय स्वस्थाने पुण्याहवाचनं कृत्वा गोदानं वस्त्रस्वर्णधान्यदानं च कृत्वा होमं कुर्यादिति गोप्रसवशान्तेः संक्षिप्तविधिः। विस्तरेण शान्तिसारादिग्रन्थे द्रष्टव्यः।

अभुक्तमूल में उत्पन्न होने पर ८ वर्ष तक बच्चे का त्याग किया जाता है उसके बाद शान्ति की जाती है। अभुक्तमूल से अतिरिक्त मूल में जन्म लेने पर बारहवें दिन व्यवधान रहित आने वाले मूल से योग होने पर शुभ दिन में या किसी शुभ दिन में गोप्रसवशान्ति करके 'इस बालक का मूल के प्रथम चरण में उत्पन्न होने के कारण अरिष्ट निवारण के लिये ग्रहयज्ञ के साथ शान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प करे। दूसरे आदि चरणों में उत्पन्न होने पर वैसा ही संकल्प करे। ब्रह्मा और सदस्य कृताकृत हैं। ऋत्विक् ८ या ४ होने चाहिये। बीच वाले कलश में सुवर्ण की प्रतिमा में रुद्र का आवाहन आदि करे। उसकी चारो दिशाओं के चारो कलशों में अक्षतसमूह पर वरुण की पूजा करे। अथवा—

मध्यकुम्भे प्रतिमायां रुद्रस्तदुत्तरकुम्भे वरुणः पूज्य इति। कुम्भद्वयं रुद्रकुत्तरतः कुम्भे प्रतिमासु निर्ऋतिमिन्द्रमपश्चावाहच पद्मस्य चतुर्विंशतिदलेषु उत्तराषाढाद्यनूराधान्तचतुर्विंशतिनक्षत्राणां विश्वेदेवादिचतुर्विंशतिदेवतास्तण्डुलपुञ्जादिष्वावाहच दिक्षुलोकपालांश्चावाहच पूजयेत्। अग्निग्रहस्थापनाद्यन्तेऽन्वाधानेऽर्कादिग्रहान् समिच्चर्वाज्याहुतिभिः निर्ऋतिं प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिर्घृतमिश्रपायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिः। यद्वा—

बीच वाले कलश में प्रतिमा में रुद्र, उसके बाद वाले कुम्भ में वरुण की पूजा करे। रुद्र कुंभ से उत्तर तरफ प्रतिमा में निर्ऋति इन्द्र और वरुण का आवाहन करके कमल के २४दलों पर उत्तराषाढ़ा से लेकर अनुराधा तक २४ नक्षत्रों को और विश्वेदेवा आदि २४ देवताओं को चावल की राशि पर आवाहन कर दिशाओं के लोकपालों का आवाहन करके पूजा करे। अग्नि और ग्रहस्थापन के अन्त में अन्वाधान में सूर्यादि ग्रहों को समिधा और चरु घी की आहुतियों से, निर्ऋति को प्रतिद्रव्य १०८ संख्या घृत मिलित चरु, समिधा घी चरुकी आहुतियों से, अथवा—

पायसेनाष्टोत्तरशतसंख्यया समिदाज्यचरुभिरष्टाविंशतिसंख्यया इन्द्रमपश्च प्रतिद्रव्यमष्टाविंशतिसंख्यया पायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिर्विश्वेदेवादिचतुर्विंशतिदेवता [1]अष्टाष्टपायसाहुतिभिः रक्षोहणमग्निं कृणुष्वपाजेति पञ्चदशर्ग्भिः प्रत्यृचमष्टाष्टसंख्यकृसराहुतिभिः १२० सवितारं दुर्गां त्र्यंबकं कवीन् दुर्गां वास्तोष्पतिमग्निं क्षेत्रपालं मित्रावरुणावग्निं चाष्टाष्टकृसराहुतिभिः श्रियं हिरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्ग्भिः प्रत्यृचमष्टाष्टसमिदाज्यचर्वाहुतिभिः सोमं त्रयोदशपायसाहुतिभिः रुद्रं स्वराजं चतुर्गृहीताज्येनाग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। कवीनित्यत्र ऋत्विक्स्तुतिमित्युद्देशो मयूखादौ।

चरु से १०८ संख्या से, समिधा घी और चरु से २८ संख्या से, विश्वेदेवा आदि २४ देवताओं को आठ आठ खीर की आहुतियों से 'रक्षोहणं' 'अग्निं' 'कृणुष्वपाज' इन पन्द्रह ऋचाओं से प्रत्येक ऋचाओं से आठ आठ खिचड़ी की आहुति दे। सूर्य, दुर्गा, त्र्यम्बक, शुक्र, दुर्गा, इन्द्र, अग्नि, क्षेत्रपाल, मित्रावरुण और अग्नि को आठ आठ खिचड़ी की आहुतियों से तथा लक्ष्मी

१. याज्ञवल्क्यः—'एकैकस्यात्राष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा। होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा युताः॥' मात्स्ये—'होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत्। अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते॥' इति।

को 'हिरण्यवर्णां' इन पन्द्रह ऋचाओं से प्रत्येक ऋचा से आठ आठ समिधा घी और चरु की आहुतियों से चन्द्रमा को १३ खीर की आहुतियों से, रुद्र और स्वराज को चार बार ग्रहण किये घी से, अग्नि, वायु, सूर्य, और प्रजापति को घी से आहुति दे और बचे हुए से स्विष्टकृत् आदि करे। कवीन् जो पद है वह ऋत्विक्-स्तुति के उद्देश्य से है, ऐसा मयूख आदि में कहा है।

शूर्पत्रये निर्वापः। तत्र प्रथमे शूर्पे पायसार्थं तूष्णीं द्वादशमुष्टीन्निर्ऋतिमिन्द्रमपश्चोद्दिश्य निरुप्य द्वितीये चर्वर्थं तदेव त्रयमुद्दिश्य द्वादशमुष्टीन् पुनः प्रथमे षण्णवतिमुष्टीन् पायसार्थं तृतीये शूर्पे कृसरार्थं चतुश्चत्वारिंशन्मुष्टीन् द्वितीये पुनश्चतुरो मुष्टीन् प्रथमे पुनः सोमार्थं चतुर्मुष्टीन्निरुप्य ततः शूर्पत्रये आहुतिपर्याप्ततण्डुलान् गृहीत्वा निर्वापसंख्यया प्रोक्ष्यपात्रत्रये हविस्त्रयं श्रपयेत्।

तीन सूप में निर्वाप करे। पहिले सूप में पायस के लिये चुपचाप १२ मुट्ठी निर्ऋति, इन्द्र और जल के उद्देश्य से रखकर, दूसरे सूप में चरु के लिये पूर्वोक्त तीन के उद्देश्य से १२ मुट्ठी रखे फिर पहले सूप में ९६ मुट्ठियों को पायस के लिये और तीसरे सूप में खिचड़ी के लिये ४४ मुट्ठी रखे। दूसरे सूप में फिर ४ मुट्ठी रखे। पुनः पहिले सूप में चन्द्रमा के लिये ४ मुट्ठी रखकर तीनों सूप में से आहुति के लिये पर्याप्त चावल लेकर निर्वाप की संख्या के अनुसार प्रोक्षण करके ३ पात्र में तीनों हविष्य पकावे।

तिलमिश्रतण्डुलपाकेन [1]कृसरो भवति ग्रहार्थं गृहसिद्धान्नं ग्राह्यम्। सर्वग्रन्थेषु निर्ऋत्याद्यर्थं निर्वापादिक्रमेण श्रपणमेवोक्तम्। अतो गृहसिद्धान्न एव तिलदुग्धमिश्रणेन कृसरादिसंपादनं प्रमादालस्यादिकृतकर्मभ्रंश एव। ततो होमकाले यजमानस्त्यागं कुर्यात्। तत्र एतावत्संख्याहुतिपर्याप्तं समिदाज्यचरुद्रव्यमादित्यादिनवग्रहेभ्यो न मम। एवमधिदेवतादिभ्यः।

तिल मिले हुए चावल को पका देने से कृसर (खिचड़ी) होता है। ग्रहों के लिये घर का बना हुआ अन्न ग्राह्य है। सब ग्रन्थों में निर्ऋति आदि के लिये निर्वाप आदि क्रम से पकाना ही कहा है। इसलिये घर के बनाये हुए अन्न ही में तिल दूध मिलाने से कृसर आदि सम्पन्न होता है, यह प्रमाद और आलस्य के कारण कर्म का भ्रंश ही है। तदनन्तर होम के समय यजमान त्याग करे। उसमें इतनी संख्या की आहुति के लिये पर्याप्त समिधा, घी और चरु द्रव्य आदित्यादि नवग्रहों के लिये है मेरा नहीं। इसी प्रकार अधिदेवता आदि को भी।

ततोऽष्टोत्तरशतसंख्याहुतिपर्याप्तं घृतमिश्रपायसमष्टोत्तरशताहुतीनामष्टाविंशत्याहुतीनां वा पर्याप्तं समिदाज्यचर्वात्मकद्रव्यत्रयमिदं निर्ऋतये न मम। अष्टाविंशत्याहुतिपर्याप्तं पायससमिच्चर्वाज्यमिन्द्राय न मम। एवमद्भ्यः अष्टाष्टाहुतिपर्याप्तं पायसं विश्वेभ्यो देवेभ्यो० १ विष्णवे २ वसुभ्यो ३ वरुणाय ४ अजायैकपदे ५ अहये बुध्न्याय ६ पूष्णे ७ अश्विभ्यां ८ यमाय ९ अग्नये १० प्रजापतये ११ सोमाय १२ रुद्राय १३ अदित्यै १४ बृहस्पतये १५ सर्पेभ्यः १६ पितृभ्यः १७

१. अन्यत्र—'ओदनस्तिलमिश्रस्तु कृसरः परिकीर्तितः। तिलकल्कान् विनिक्षिप्य श्रृतो वा कृसरो भवेत्॥' अथवा—'तिलतण्डुलसम्मिश्रः कृसरः सोऽभिधीयते।' दानसंग्रहे तु—'तण्डुलमुद्गसहितः कृसरः' इति।

भगाय १८ अर्यम्णे १९ सवित्रे २० त्वष्ट्रे २१ वायवे २२ इन्द्राग्निभ्यां २३ मित्राय २४ न मम

तदनन्तर १०८ आहुति के लिये पर्याप्त घी मिली हुई खीर और १०८ या २८ आहुति के लिये पर्याप्त समिधा, घी और चरुद्रव्य तीनों निर्ऋति के लिये है मेरा नहीं। २८ आहुति के लिये पर्याप्त खीर समिधा चरु और घी इन्द्र के लिये है मेरा नहीं। इसी प्रकार जल के लिये भी आहुति त्याग करे। आठ आठ आहुति के लिये पर्याप्त खीर विश्वेदेव के लिये है मेरा नहीं। विष्णु के लिये वसु के लिये, वरुण के लिये, अजैकपाद के लिये, अहिर्बुध्न्य के लिये, पूषा के लिये, अश्विनी कुमार के लिये, यम के लिये, अग्नि के लिये, प्रजापति के लिये, सोम के लिये, रुद्र के लिये, अदिति के लिये, बृहस्पति के लिये, सर्पों के लिये, पितरों के लिये, भग के लिये, अर्यमा के लिये, सविता के लिये, त्वष्टा के लिये, वायु के लिये, इन्द्राग्नि के लिये और मित्र के लिये है मेरा नहीं।

विंशत्यधिकशताहुतिपर्याप्तं कृसरं रक्षोऽग्नये न मम। अष्टाष्टाहुतिपर्याप्तं कृसरं सवित्रे दुर्गायै त्र्यम्बकाय कविभ्यो दुर्गायै वास्तोष्पतयेऽग्नये क्षेत्रपालाय मित्रावरुणाभ्यामग्नये च न मम। प्रतिद्रव्यं विंशत्यधिकशताहुतिपर्याप्तानि समिच्चर्वाज्यानि श्रियै न मम। त्रयोदशाहुतिपर्याप्तं पायसं सोमाय, चतुर्गृहीताज्यं रुद्राय स्वराजे, एकैकाहुतिपर्याप्तमाज्यमग्नये वायवे सूर्याय प्रजापतये च न मम। एवं सविस्तरं तत्तद् द्रव्यसंख्यादेवतोच्चारेण त्यागः सर्वत्र ज्ञेयः।

१२० आहुति के लिये पर्याप्त कृसर रक्षोहण अग्नि के लिये है मेरा नहीं। आठ-आठ आहुति के लिये पर्याप्त कृसर सविता, दुर्गा, त्र्यम्बक, कवि, दुर्गा, इन्द्र, अग्नि, क्षेत्रपाल, मित्रावरुण और अग्नि के लिये है मेरा नहीं। १३ आहुति के लिये पर्याप्त पायस सोम के लिये, ४ बार गृहीत घृत स्वराज रुद्र के लिये है। एक एक आहुति का पर्याप्त घृत अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति के लिये है, मेरा नहीं। इसी प्रकार विस्तार के सहित उन-उन द्रव्यों की संख्या देवता के उच्चारण से त्याग करना सर्वत्र जानना चाहिये।

केचित्तु इदमुपकल्पितमन्वाधानोक्तद्रव्यजातमन्वाधानोक्ताहुतिसंख्यापर्याप्तमन्वाधानोक्ताभ्यो वक्ष्यमाणाभ्यो देवताभ्यो न ममेति संक्षेपेण त्यागं कुर्वन्ति। ततो ग्रहमन्त्रैर्निर्ऋत्यादिमन्त्रैश्च यथायथं होमान्ते ग्रहपूजास्विष्टकृन्नवाहुतिबलिदानपूर्णाहुतिपूर्णपात्रविमोकादिवह्निपूजान्ते यजमानाद्यभिषेके कृते धृतशुक्लवस्त्रगन्धो यजमानो मानस्तोक इति विभूतिं धृत्वा मुख्यदेवतापूजनविसर्जनश्रेयोग्रहणदक्षिणादानानि कुर्यात्। शतं तदर्धं दश वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः।

कुछ लोग तो यह उपकल्पित अन्वाधान में कहा हुआ द्रव्यसमूह अन्वाधान में कही हुई आहुति संख्या के लिये पर्याप्त अन्वाधान में कहे हुए देवताओं के लिये है, मेरा नहीं। इस प्रकार संक्षेप से त्याग करते हैं। तदनन्तर ग्रहों के मन्त्रों से निर्ऋत्यादि के मन्त्रों से भी यथायथ (जैसे-जैसे) होम के अन्त में ग्रहपूजा, स्विष्टकृत्, नवाहुति, बलिदान, पूर्णाहुति, पूर्ण पात्र का दान, आदि अग्नि पूजा के अन्त में यजमान आदि के अभिषेक करने पर यजमान सफेद वस्त्र पहन गन्धधारण कर 'मानस्तोक' इस मन्त्र से विभूति धारण कर मुख्यदेवता का पूजन, विसर्जन, श्रेयोग्रहण और दक्षिणादान करे। १०० या ५० या १० ब्राह्मणों को भोजन करावे। यह संक्षेप से कहा है।

अथाश्लेषाशान्तिः

तत्राश्लेषाफलम्[१]—आश्लेषायाः क्रमेण पञ्चसप्तद्वित्रिचतुरष्टैकादशषण्नवपञ्चेति दशधा विभक्तनाडीषु क्रमेण राज्यंपितृनाशो मातृनाशः कामभोगः पितृभक्तिर्बलं हिंसकत्वं त्यागो भोगो धनमिति फलानि। अथ पादविभागेन फलम्—तत्राद्यपादः शुभः। द्वितीये पादे धनस्य नाशः। तृतीये मातुः चतुर्थे पितुः। आश्लेषान्त्यपादत्रयजाता कन्या श्वश्रूं हन्ति। एवं वरोपि अन्त्यपादत्रयजः स्वश्वश्रूं हन्ति।

आश्लेषासर्वपादेषु शान्तिः कार्या प्रयत्नतः।
जातस्य द्वादशाहे तु शान्तिकर्म समाचरेत्॥
असंभवे तु जन्मर्क्षे अन्यस्मिन्वा शुभे दिने।

उसमें आश्लेषा का फल यह है—आश्लेषा को क्रम से पांच, सात, दो, तीन, चार, आठ, ग्यारह, छ, नव और पाँच इस प्रकार दस प्रकार से विभक्त घटी में क्रम से राज्य, पितृमरण, कालभोग, पितृभक्ति, बल, हिंसकत्व, त्याग, भोग और धन, ये फल हैं। चरण विभाग से आश्लेषा का फल—उसमें पहिला पाद शुभ है। दूसरे चरण में धन का नाश होता है। तीसरे में माता का और चौथे में पिता का नाश होता है। आश्लेषा के अन्त के तीन चरणों में उत्पन्न कन्या सास का नाश करती है। इसी प्रकार अन्त के तीन चरणों में वर भी अपनी सास का नाश करता है। आश्लेषा के सम्पूर्ण चरणों की शान्ति करनी चाहिये। उत्पन्न बालक का शान्ति-कर्म बारहवें दिन करे। यह न हो सकने पर जन्मनक्षत्र या दूसरे शुभ दिन में करे।

अथोक्तकाले गोमुखप्रसवं कृत्वा अस्य शिशोराश्लेषाजननसूचितसर्वारिष्टपरिहारेत्यादि संकल्पं कृत्वा मूलशान्तिवत्कुम्भद्वये रुद्रवरुणौ द्वौ संपूज्य चतुर्विंशतिदलपद्मस्थकुम्भे प्रतिमायामाश्लेषाधिपतीन् सर्पानावाह्य तद्दक्षिणे पुष्यदेवतां बृहस्पतिमुत्तरतो मघादेवतां पितॄंश्चावाह्य दलेषु पूर्वदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन पूर्वाधिपतिभगादि पुनर्वसुदेवतादितिपर्यन्तचतुर्विंशतिदेवतावाहनादि कुर्यात्।

उक्त काल में गोमुखप्रसव करके इस बालक के आश्लेषा में जन्म से विहित सब अरिष्टों के परिहार के लिये संकल्प करके मूलशान्ति की तरह दो कलशों में रुद्र और वरुण की पूजा कर २४ दल वाले कमल-स्थित कलश पर प्रतिमा में आश्लेषा के अधिपति सांपों का आवाहन कर उसके दक्षिण में पुष्य-देवता और बृहस्पति का उससे उत्तर की ओर मघादेवता और पितरों का भी आवाहन कर बाहर के दलों में पूर्व के कमल-दलों को प्रारंभ कर प्रदक्षिण क्रम से पूर्व के अधिपति भग आदि पुनर्वसुदेवता अदिति तक २४ देवता का आवाहन आदि करे।

कौस्तुभे तु—तैत्तिरीयकमन्त्रैः पुष्यमघापूर्वादिनक्षत्राणामावाहनमुक्तं न तु नक्षत्रदेवतानाम्। ततो लोकपालानावाह्यावाहितसर्वदेवताः संपूज्याग्निं ग्रहांश्च प्रतिष्ठाप्यान्वादध्यात्। आदित्यादिग्रहाद्युद्देशान्ते प्रधानदेवताः सर्पान् प्रतिद्रव्य-

१. शान्तिसारे—'मूर्धास्यनेत्रगलकर्णयुतं च बाहू हृज्जानुगुह्यपदमित्यहिदेहभागाः। बाणाद्रिनेत्रहुतभुक्श्रुतिनागरुद्रषण्नन्दपञ्च शिरसः क्रमशस्तु नाड्यः॥ राज्यं पितृक्षयो मातृनाशः कामक्रिया रतिः। पितृभक्तो बली स्वप्नस्त्यागी भोगी धनी क्रमात्॥' इति।

मष्टोत्तरशतसंख्यमष्टाविंशतिसंख्यं वा घृतमिश्रपायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिः बृहस्पतिं पितॄंश्चाष्टाविंशतिसंख्यमष्टसंख्यं वा तैरेव द्रव्यैर्भगादिचतुर्विंशतिदेवता अष्टाष्टपायसाहुतिभिः रक्षोहणमित्यादिशेषदेवतानिर्देशो मूलशान्तिवत्। तद्वदेव पायसकृसरचरूणां श्रपणं हविस्त्यागश्च कार्यः। कौस्तुभोक्तप्रधानदेवतामन्त्रैस्तत्तद्धोमः। शेषं मूलशान्तिवत्।

कौस्तुभ में तो तैत्तिरीयक मन्त्रों से पुष्य, मघा और पूर्वा आदि नक्षत्रों का ही आवाहन कहा है, नक्षत्र देवताओं का नहीं। तदनन्तर लोकपालों का आवाहन और आवाहित सब देवताओं का पूजन कर अग्नि और ग्रहों की स्थापना करके अन्वाधान करे। आदित्यादि ग्रहों के उद्देश के बाद प्रधानदेवता और सर्पों का प्रतिद्रव्य १०८ या २८ संख्या घी मिले पायस समिधा और घृत चरु की आहुतियों से, बृहस्पति और पितरों का २८ या ८ संख्या उन्हीं द्रव्यों से, और भग आदि २४ देवताओं का आठ आठ पायस की आहुतियों से होम करे। रक्षोहण इत्यादि शेष देवताओं का निर्देश मूलशान्ति की तरह से है। वैसे ही पायस कृसर (खिचड़ी) और चरुओं का पकाना हविष्यत्याग भी वैसा ही करे। कौस्तुभ में कहे हुए प्रधान देवता के मन्त्रों से उन-उन देवताओं का होम करे। शेष मूलशान्ति की तरह करे।

अथ ज्येष्ठानक्षत्रफलं शान्तिश्च

ज्येष्ठाया[1] दशभागेषु आद्ये मातामहीमृतिः।
मातामहं द्वितीये च तृतीये हन्ति मातुलम्॥
तुर्ये जातो मातरं च हन्त्यात्मानं तु पञ्चमे।
गोत्रजान्षष्ठभागे च सप्तमे तूभयं कुलम्॥
अष्टमे स्वाग्रजं हन्ति नवमे श्वशुरं तथा।
दशमांशकजातस्तु सर्वं हन्ति शिशुर्ध्रुवम्॥
ज्येष्ठर्क्षे तु पुमाञ्जातो ज्येष्ठभ्रातुर्विनाशकः।
ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं धवाग्रजम्॥
पादत्रये जातनरो ज्येष्ठोप्यत्र प्रजायते।
ज्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य च नाशकः॥

ज्येष्ठा के दस भागों में पहिले में नानी का मरण, दूसरे में नाना का, तीसरे में मामा का, चौथे में अपनी माता का और पाचवें में अपना नाश करता है। छठे में गोत्रजों का, सातवें में दोनों कुल का, आठवें में अपने बड़े भाई का नवें में ससुर का और दसवें भाग में उत्पन्न बालक तो सबका विनाश करता है। ज्येष्ठा में उत्पन्न पुरुष जेठे भाई का विनाशक होता है। ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न कन्या पति के बड़े भाई का शीघ्र नाश करती है। ज्येष्ठा के तीन चरणों में उत्पन्न बालक अकेला ज्येष्ठ ही रहता है। ज्येष्ठा के अन्तिम चरण में उत्पन्न पिता का और अपना भी नाश करने वाला होता है।

---

१. ऐसा ही फल-निर्देश ब्रह्मयामल में है—'ज्येष्ठादौ जननीमाता द्वितीये जननीपिता। तृतीये जननीभ्राता स्वयं माता चतुर्थके॥ आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत्। सप्तमे चोभयकुलं ज्येष्ठभ्रातरमष्टमे॥ नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके। इति। कौस्तुभे—'घटिकैका च मैत्रान्ते ज्येष्ठादौ घटिकाद्वयम्। तयोः सन्धिरिति ज्ञेयं शिशुगण्डं समीरितम्॥' इति।

द्वादशाहे शान्त्युक्तशुभदिने वा गोप्रसवशान्तिं कृत्वाऽस्य शिशोर्ज्येष्ठर्क्षजनन-सूचितसर्वारिष्टपरिहारद्वारेत्यादि संकल्प्य मध्यकलशे सुवर्णप्रतिमायां शचीसहित-मैरावतारूढमिन्द्रं लोकपालांश्चावाह्य रक्तवस्त्रद्वयशष्कुलीनैवेद्यसहितषोडशोपचारैः पूजयेत् । तस्य चतुर्दिक्षु कुम्भचतुष्टयं तत्पूर्वमध्यभागे शतच्छिद्रं च निधाय पूर्ण-पात्रयुतेषु चतुर्षु फलादौ वरुणावाहनपूजनादि ।

बारहवें दिन या शान्ति में कहे हुए शुभ दिन में गोप्रसवशान्ति करके 'इस बालक का ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न होने से सूचित संपूर्ण अरिष्ट के अपहार द्वारा, इत्यादि संकल्प करके मध्य कलश पर स्थापित सुवर्ण प्रतिमा में इन्द्राणीसहित ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए इन्द्र तथा लोकपालों का आवाहन करके लाल दो वस्त्रों में पूड़ी नैवेद्यसहित षोडशोपचार से इन्द्र की पूजा करे। इन्द्र के चारों दिशाओं के ४ कलशों में उनके पूर्व मध्य भाग में १०० छिद्र वाला कलश रखकर पूर्णपात्र युक्त ४ फलों आदि में वरुण का आवाहन पूजन करे।

अन्वाधाने ग्रहान्वाधानान्ते इन्द्रं पलाशसमिदाज्यचरुद्रव्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तर-शतसंख्यया इन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति मन्त्रेण प्रजापतिमष्टोत्तरशततिलाहुतिभिः समस्तव्याहृतिमन्त्रेण शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि । अष्टोत्तरशतं ब्राह्मणान् भोजयेत्। इति ज्येष्ठाशान्तिसंक्षेपप्रयोगः ।

अन्वाधान में ग्रहों को या अन्वाधान के अन्त में इन्द्र को पलाश की समिधा, घृत और चरु द्रव्यों से प्रतिद्रव्य १०८ संख्या से 'इन्द्रायेन्दो मरुत्वत' इस मन्त्र से, प्रजापति को समस्त व्याहृति मन्त्र से १०८ तिल की आहुति देकर बाकी बचे द्रव्य से स्विष्टकृत् इत्यादि करे। १०८ ब्राह्मणों का भोजन करावे । संक्षिप्त ज्येष्ठानक्षत्रशान्ति समाप्त ।

अथ चित्रादिनक्षत्रशान्तिः

चित्राद्येऽर्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये ।
जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते पित्रोर्भ्रातुः स्वस्य चापि प्रणाशम् ॥

उत्तराफाल्गुन्याद्यपादे इत्यर्थः। अत्रेत्थं भाति—चित्रापूर्वार्धे जातस्य गोप्रसवं कृत्वा नक्षत्राधिपतिप्रतिमां संपूज्य अजादानं कार्यम् । एवं पुष्यद्वितीयतृतीयपा-दयोर्जनने गोप्रसवनक्षत्राधिपपूजागोदानानि कार्याणि । उत्तराफाल्गुनीप्रथमपादे जनने नक्षत्राधिपपूजां तिलपात्रदानं च कुर्यात् ।

चित्रा के आदि के आधे पाद में, पुष्य के मध्य के दो पाद में, पूर्वाषाढा के तृतीय पाद में तथा उत्तरा के आदि चरण में उत्पन्न पुत्र माता पिता और अपने भाई का नाश करता है। उत्तरा फाल्गुनी के पहिले चरण में यह अर्थ है। यहाँ ऐसा ठीक मालूम पड़ता है कि चित्रा के पूर्वार्द्ध में उत्पन्न बालक का गोप्रसव और नक्षत्राधिपति की प्रतिमा का पूजा कर बकरी का दान करे। इसी प्रकार पुष्य के द्वितीय तृतीय चरण में उत्पन्न होने पर गोप्रसवशान्ति, नक्षत्राधिपतिपूजा और और गोदान करें। उत्तराफाल्गुनी के प्रथम चरण में जन्म होने से नक्षत्राधिपति की पूजा और तिल पात्र का दान करे ।

एवं पूर्वाषाढातृतीयपादे जनने नक्षत्रेशपूजाकाञ्चनदानम्। मघाप्रथमपादजनने मूलवत्फलम् । तत्र गोप्रसवनक्षत्रेशपूजनग्रहमखाः कार्याः। मघाया आद्यघटीद्वयज-

नने नक्षत्रगण्डान्तशान्तिरपि। रेवत्यन्त्यघटीद्वयेऽश्विन्याद्यद्वये जनने नक्षत्रगण्डान्त-शान्तिगोप्रसवग्रहमखाः कार्याः। रेवत्यश्विन्योरितरभागेषु मघान्तिमपादत्रये च दोषविशेषानुक्तेर्न शान्त्यादिकम्।

इसी प्रकार पूर्वाषाढ़ा के तृतीय चरण में जन्म होने से नक्षत्रेश की पूजा और सुवर्ण-दान करे। मघा के प्रथमपाद में जन्म होने से मूल की तरह फल जानना चाहिये। उसमें गोप्रसव नक्षत्रेश-पूजन और ग्रहयज्ञ करे। मघाकी पहिली दो घड़ी में जन्म होने पर नक्षत्र-गण्डान्त की शान्ति भी करे। रेवती की अन्त की दो घड़ियों और अश्विनी की पहली दो घड़ियों में जन्म होने पर नक्षत्र गण्डान्त शान्ति, गोप्रसव और ग्रहयज्ञ करे। रेवती अश्विनी के अन्य भागों और मघा के अन्तिम तीन चरणों में दोष-विशेष के नहीं कहने के कारण शान्ति आदि नहीं करनी चाहिए।

एवं विशाखाचतुर्थपादजनने शालकदेवरनाशादिदुष्टफलोक्तेर्ग्रहमखः कार्यः। यत्र काले दुष्टफलमात्रमुक्तं शान्तिर्नोक्ता तत्र ग्रहमख इति कमलाकरोक्तेः। एव-मितरत्राप्यूह्यम्। इति नक्षत्रशान्तयः।

एवं विशाखा के चौथे चरण में जन्म होने पर साले और देवर का नाश आदि दुष्ट-फल के कथन से ग्रहयज्ञ करे। जिस काल में दुष्ट-फल-मात्र कहा हो उसमें शान्ति नहीं कही गई है वहाँ कमलाकर के कथन से ग्रहयज्ञ करे। इसी प्रकार अन्य जगह भी कल्पना कर लेनी चाहिये।

अथ व्यतीपातवैधृतिसंक्रान्तिशान्तिः

कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः।
संक्रमश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यकारकः॥
अश्रियं मृत्युमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
स्त्रीणां च शोकं दुःखं च सर्वनाशकरो भवेत्॥
गोमुखप्रसवं कुर्याच्छान्तिं च सनवग्रहाम्।

उक्तकाले संकल्पादिकं कृत्वा पञ्चद्रोणपरिमितव्रीहिराशिं कृत्वा तदुपरि सार्धद्रोणद्वयमिततण्डुलराशिं तदुपरि सपादद्रोणपरिमिततिलराशिं च कृत्वा तिलराशौ विधिना स्थापितकुम्भे सौवर्णप्रतिमायां सूर्यमावाह्य तद्दक्षिणोत्तरयोरग्निरुद्रावावाह्य तिस्रो देवताः व्यतीपातशान्तौ संक्रान्तिशान्तौ च पूजयेत्।

बच्चे के जन्म-समय में व्यतीपात तथा वैधृति हो और उसी में सूर्य की संक्रान्ति हो जाय तो दरिद्र होता है और दरिद्र रहकर मृत्यु प्राप्त करता है, उसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है। स्त्रियों को शोक और दुःख देता है और सबका नाश करने वाला होता है। नवग्रह के सहित गोमुखप्रसव शान्ति करे। कहे हुए समय में संकल्प आदि करके ५ द्रोणपरिमित व्रीहि की ढेर करके उसके ऊपर २॥ द्रोण तण्डुल की राशि पर १। द्रोण परिमित तिल-राशि करके तिल की राशि में विधि से स्थापित कलश पर सोने की प्रतिमा में सूर्य का आवाहन कर उसके दक्षिण उत्तर में अग्नि और रुद्र का आवाहन कर तीनों देवताओं की व्यतिपात-शान्ति और संक्रान्ति-शान्ति में भी पूजा करे।

व्यतीपातसंक्रान्त्योर्जनने व्यतीपातसंक्रान्तिशान्तिं तन्त्रेण संकल्प्यैकैव शान्तिः कार्या। अत्र पूजाहोमादेः प्रसङ्गसिद्धिः द्विगुणो वा प्रधानहोम इति भाति। ग्रह-

पीठदेवतान्वाधानान्ते सूर्यम् उत्सूर्यो बृहदिति मन्त्रेण समिदाज्यचर्वाहुतिभिः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिः अग्निं रुद्रं च तैरेव द्रव्यैः प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्याहुतिभिरग्निं दूतमिति त्र्यम्बकमिति मन्त्राभ्यां मृत्युंजयमष्टोत्तरशततिलाहुतिभिः शेषेणेत्यादि। अभिषेकान्ते गोवस्त्रस्वर्णादि दत्त्वा शतं ब्राह्मणान्भोजयेत्। इति व्यतीपातसंक्रान्तिशान्तिः।

व्यतीपात और संक्रान्ति में उत्पन्न होने पर 'व्यतीपात संक्रान्ति शान्ति तंत्र से करूंगा' ऐसा संकल्प करके एक ही शान्ति करनी चाहिये। इसमें पूजा होम आदि की प्रसंग-सिद्धि या दूना प्रधान का होम, यह ठीक प्रतीत होता है। ग्रहपीठ देवता और अन्वाधान के अन्त में सूर्य का 'उत्सूर्यो बृहत्' इस मन्त्र से समिधा घृत चरु की आहुतियों से प्रतिद्रव्य १०८ संख्या से, अग्नि और रुद्र का उन्हीं द्रव्यों से प्रत्येक का २८ संख्या की आहुतियों से 'अग्निन्दूतं' और 'त्र्यम्बकं' इन दोनों मन्त्रोंसे और मृत्युञ्जय का १०८ तिलाहुतियों से होम करके शेष से स्विष्टकृत् होम करे। अभिषेक के अन्त में गौ, वस्त्र और सुवर्ण आदि देकर १०० ब्राह्मणों को भोजन करावे। व्यतीपात-संक्रान्ति-शान्ति समाप्त।

अथ वैधृतिशान्तौ विशेषः

पूर्ववद् व्रीहितण्डुलतिलराशौ स्थापितकुम्भे मध्ये त्र्यम्बकमिति मन्त्रेण रुद्रं दक्षिणतः उत्सूर्यं इति सूर्यमुत्तरतश्चाप्यायस्वेति सोममावाह्य पूजयेत्। अन्वाधाने रुद्रं समिच्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याहुतिभिः सूर्यसोमौ प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्यैस्तैरेव द्रव्यैर्मृत्युंजयमष्टोत्तरसहस्रशतान्यतरसंख्यतिलाहुतिभिः शेषेणेत्यादि। अन्यत्पूर्ववत्। संक्रान्तिदिने वैधृतिसत्त्वे देवताभेदाच्छान्तिद्वयं पृथक्कार्यम्। इति वैधृतिशान्तिः।

पहिले के समान व्रीहि चावल और तिल की राशि में स्थापित कलश के मध्य में 'त्र्यम्बकम्' इस मन्त्र से रुद्र का, दक्षिण में 'उत्सूर्यं' इस मन्त्र से सूर्य का, उत्तर में 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से सोम का आवाहन कर पूजन करे। अन्वाधान में रुद्र को समिधा चरु और घृत से प्रत्येक द्रव्य की एक सौ आठ आहुतियों से और सूर्य सोम प्रत्येक को अट्ठाइस आहुतियों से और उन्हीं द्रव्यों से मृत्युञ्जय को एक हजार आठ या एक सौ आठ तिल की आहुतियों से होम करके शेष द्रव्य से स्विष्टकृत् होम करे। अन्य कृत्य पूर्ववत् करे। संक्रान्ति के दिन वैधृति के योग में जन्म होने पर देवता-भेद से पृथक्पृथक् दोनों शान्ति करे। वैधृति-शान्ति समाप्त।

अथैकनक्षत्रजननशान्तिः

एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः।
प्रसूतिश्चेत्तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चितः॥

पितृनक्षत्रे मातृनक्षत्रे वा कन्याया पुत्रस्य वोत्पत्तौ गोमुखप्रसवं कृत्वा शान्तिः कार्या। सोदरभ्रातृभगिन्योर्नक्षत्रे भ्रातुर्भगिन्या वोत्पत्तौ गोप्रसवमकृत्वैव शान्तिमात्रं कार्यम्। संकल्पे पित्रैकनक्षत्रोत्पत्तिसूचितसर्वारिष्टेत्याद्यूहः।

एक ही नक्षत्र में भाई भाई का अथवा पितापुत्र का यदि जन्म हो तो एक का मरण निश्चित है। पिता के जन्म-नक्षत्र में अथवा माता के जन्म-नक्षत्रमें कन्या या पुत्र की उत्पत्ति हो तो गोमुखप्रसव करके शान्ति करनी चाहिए। सगे भाई बहिन के नक्षत्र में भाई या बहिन की उत्पत्ति होने पर गोप्रसव

बिना किये ही केवल शान्ति करनी चाहिए। संकल्प में 'पिता के नक्षत्र में उत्पन्न होने से सूचित अरिष्ट के निवृत्त्यर्थं' इत्यादि वाक्य की कल्पना कर ले।

कलशे रक्तवस्त्रे यस्मिन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्रप्रतिमां नक्षत्रदेवताप्रतिमां वा अग्निर्नः पातु कृत्तिका इत्यादि तैत्तिरीयमन्त्रैः पूजयेत्। अन्वाधाने इदं नक्षत्रम् अमुकां नक्षत्रदेवतां वा समिच्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यं शेषेणेत्यादि। अन्ते ययोरेकनक्षत्रे जन्म तयोरभिषेकः। अत्र ग्रहमखो नावश्यकः। क्वचित्संपूजितहरिहरप्रतिमादानमप्युक्तम्।

कलश में लाल कपड़े में जिस नक्षत्र में जन्म हो उस नक्षत्र की प्रतिमा अथवा उस नक्षत्र के देवता की प्रतिमा का 'अग्निर्नः' इत्यादि तैत्तिरीय-मन्त्रों से पूजा करे। अन्वाधान में इस नक्षत्र या अमुक नक्षत्र-देवता को समिधा चरु और घृत, इन प्रतिद्रव्य की एक सौ आठ संख्या की आहुति दे और शेष से स्विष्टकृत् होम करे। अन्त में जिन दोनों का एक नक्षत्र में जन्म हो उन दोनों का अभिषेक करे। इसमें ग्रहयज्ञ आवश्यक नही है। कहीं पर सम्यक् पूजा करके विष्णु शिव को प्रतिमा का दान भी कहा है।

अथ ग्रहणशान्तिः

ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते।
इत्थं संजायते यस्तु तस्य मृत्युर्न संशयः॥
व्याधिः पीडा च दारिद्र्यं शोकश्च कलहो भवेत्।

अत्र गोमुखप्रसवः कार्य इति भाति। ग्रहमखः कृताकृतः। संकल्पे सूर्यग्रहणकालिकप्रसूतिसूचितेत्याद्यूहः। ग्रहणकालिकनक्षत्रस्य नक्षत्रदेवताया वा हेमप्रतिमां सूर्यग्रहे सूर्यस्य हेमप्रतिमां चन्द्रग्रहे राजतं चन्द्रबिम्बं कृत्वोभयत्र सीसेन राहोर्नागाकृतिं कृत्वा गोमयोपलिप्ते शुचिदेशे श्वेतवस्त्रोपरि देवतात्रयपूजनम्। नात्र कलशस्थापनादि। तत्र मध्ये आकृष्णेनेति सूर्यं दक्षिणतः स्वर्भानोरध इति राहुमुत्तरतो नक्षत्रदेवतां च पूजयेत्।

यदि चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में प्रसव हो तो इस प्रकार के उत्पन्न बालक की मृत्यु में सन्देह नहीं है। व्याधि, पीड़ा, दरिद्रता, शोक और कलह होता है। इसमें गोमुखप्रसव करना चाहिये, ऐसा युक्त प्रतीत होता है। ग्रहयज्ञ करे या न करे। संकल्प में सूर्यग्रहणमें जन्म से सूचित इत्यादि की कल्पना करे। ग्रहण का नक्षत्र या नक्षत्रदेवताकी सुवर्ण-प्रतिमा सूर्यग्रहण में, और चन्द्रग्रहण में चान्दी का चन्द्रबिम्ब बनाकर दोनों में सीसा से राहु के सर्प की आकृति बनाकर गोबर से लिपे हुए पवित्र-स्थान में सफेद कपड़े पर पूर्वोक्त तीनों देवता की पूजा करे। इसमें कलश-स्थापन आदि नहीं करे। वहाँ 'आकृष्णेन' इत्यादि मन्त्र से बीच से दक्षिण भाग में सूर्य को और 'स्वर्भानोरध' इससे राहु को, उत्तर भाग में नक्षत्र-देवता की पूजा करे।

चन्द्रग्रहे तु आप्यायस्वेति मध्ये चन्द्रः पूज्यः। पार्श्वयो राहुनक्षत्रदेवते पूर्ववत्। अन्वाधाने सूर्यग्रहे सूर्यमर्कसमिदाज्यचरुतिलैः प्रत्येकमष्टोत्तरशतसंख्यया राहुं दूर्वाज्यचरुतिलैस्तावत्संख्यैर्नक्षत्रदेवतां जलवृक्षसमिदाज्यचरुतिलैस्तावत्संख्यया शेषेणेत्यादि। चन्द्रग्रहे च चन्द्रं पालाशसमिदाज्यचरुतिलैः। शेषं पूर्ववत्। अन्ते

ग्रहकलशोदकेन पञ्चगव्यपञ्चत्वक्पल्लवादियुतलौकिकोदकेन च लौकिकेनैव वाभि-षेकः । वेधकाले जन्मनि नैव शान्तिः । किंतु दुष्टकालत्वाद्रुद्राभिषेकः कार्यं इति भाति ।

चन्द्रग्रहण में तो 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से बीच में चन्द्रमा का पूजन करे। अगल बगल में राहु और नक्षत्र-देवता का पहिले की तरह। अन्वाधान में सूर्यग्रहण में सूर्य को अर्क की समिधा घृत चरु और तिल इन प्रत्येक की एक सौ आठ संख्या से राहु को दूब, घृत, चरु और तिल इन प्रत्येक की इतनी ही संख्या से, नक्षत्र-देवता को जलवृक्ष की समिधा घृत चरु और तिल की इतनी ही संख्या से, आहुति देकर शेष से स्विष्टकृत् होम करे। चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा को पलाश की लकड़ी, घी, चरु और तिल की आहुति देकर शेष पहिले के समान करे। अन्त में ग्रह-कलश के जल से पञ्चगव्य पांच छाल और पञ्चपल्लव आदि से युक्त लौकिक-जल से अभिषेक करे। ग्रहण के वेध समय में जन्म हो तो शान्ति न करे, किन्तु दुष्टकाल होने से रुद्राभिषेक करे ऐसा युक्त प्रतीत होता है।

अथ नक्षत्रगण्डान्तशान्तिः

रेवत्याश्लेषाज्येष्ठानक्षत्राणामन्त्यघटीद्वयमश्विनीमघामूलानामाद्यघटीद्वयमिति घटिकाचतुष्टयमितं त्रिविधं नक्षत्रगण्डान्तम् ।

अश्विनीमघामूलानां पूर्वार्धे बाध्यते पिता ।
पूषाहिशक्रपश्चार्धे जननी बाध्यते शिशोः ॥
सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ।
वर्जयेद्दर्शनं यावत्तस्य षाण्मासिकं भवेत् ॥
शान्तिर्वा पुष्कला कार्या सोममन्त्रेण भक्तिमान् ।

'अस्य शिशो रेवत्यश्विनीसंध्यात्मकगण्डान्तजननसूचितारिष्टनिरासार्थं नक्षत्रगण्डान्तशान्तिं करिष्ये' इत्यादिसंकल्पः ।

रेवती आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त की दो घड़ी और अश्विनी मघा तथा मूल की आदि की दो घड़ी इस प्रकार चार घड़ी के तीन प्रकार का नक्षत्र-गण्डान्त होता है। अश्विनी मघा और मूल के पूर्वार्ध में उत्पन्न बालक पिता का बाधक होता है। पुष्य आश्लेषा और धनिष्ठा के उत्तरार्ध में उत्पन्न शिशु माता का बाधक होता है। गण्ड में उत्पन्न होने वाले सभी बालकों का परित्याग श्रेयस्कर है। जबतक बालक छ मास का न हो जाय तब तक उसका मुँह नहीं देखना चाहिये। भक्तिमान् पुरुष बड़ी शान्ति सोम के मन्त्र से करे। 'रेवती अश्विनी के सन्धि-गण्डान्त में उत्पन्न होने वाले इस बालक के तज्जन्य अरिष्ट की निवृत्ति के लिये नक्षत्र-गण्डान्त शान्ति करूँगा' इत्यादि संकल्प करे।

गोमुखप्रसवं कृत्वा षोडशपलमष्टपलं वा चतुःपलं वा कांस्यपात्रं विधाय तस्मिन्पायसं पयो वा निक्षिप्य तत्र नवनीतपूर्णं शंखं निधाय तस्मिन् राजतं चन्द्रबिम्बं संस्थाप्य सोमोऽयमिति ध्यानपूर्वकं चन्द्रमाप्यायस्वेति पूजयेत् । पूजान्ते आप्यायस्वेति मन्त्रस्य सहस्रं जपः । ग्रहमखहोमः कार्यः । नात्र प्रधान-देवता होमः ।

गोमुखप्रसव करके सोलह पल, आठ पल या चार पल के कांसे का पात्र बनाकर उसमें खीर या दूध डाल कर उसमें मक्खन भरा शंख रखके उसमें चान्दी का चन्द्रबिम्ब स्थापित कर यह चन्द्रमा हैं ऐसा ध्यान कर 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से चन्द्रमा की पूजा करे। पूजा के अन्त में 'आप्यायस्व' इस मन्त्र का एक हजार जप करे और ग्रहयज्ञ का होम करे। इसमें प्रधान देवता का होम नहीं होता।

ग्रन्थान्तरे तु ताम्रकलशे राजतप्रतिमायां बृहस्पतिमन्त्रेण वागीश्वरं संपूज्य तदुत्तरे कुम्भचतुष्टये पञ्चपल्लवादिकं कुंकुमचन्दनकुष्ठगोरोचनानि क्षिप्त्वा वरुणं पूजयेदित्युक्तम्। आचार्याय सशङ्खसमौक्तिकचन्द्रदानम्। ग्रन्थान्तरपक्षे ताम्रपात्रसहितवागीश्वरदानम्। आयुर्वृद्ध्यर्थं सहस्राक्षेणेति मन्त्रजपः। दशावर-ब्राह्मणभोजनं चेति।

दूसरे ग्रन्थों में तो ताम्र-कलश में चान्दी की प्रतिमा में बृहस्पति के मन्त्र से बृहस्पति की पूजा कर उसके उत्तर वाले चारो कलश में पञ्चपल्लव आदि कुंकुम-चन्दन-कूट-गोरोचन छोड़कर वरुण की पूजा करे, ऐसा कहा है। आचार्य को शंख और मोती के साथ चन्द्रमा का दान देवे। दूसरे ग्रन्थों में आयुष्यबृद्धि के लिये ताम्रपात्रसहित बृहस्पति का दान करे और 'सहस्राक्षेण' इस मन्त्र का जप करे तथा दशावर ब्राह्मणभोजन भी करावे, ऐसा लिखा है।

अथ तिथिगण्डान्तलग्नगण्डान्तशान्तिः

पञ्चमीषष्ठ्योर्दशम्येकादश्योः पञ्चदशीप्रतिपदोः संधिभूतं घटीद्वयं तिथिग-ण्डान्तम्। कर्कसिंहयोर्वृश्चिकधनुषोर्मीनमेषयोश्च लग्नयोः संधिभूतैका घटिका लग्नगण्डान्तम्। तत्र तिथिगण्डान्ते पूर्वार्धे जन्मनि तत्काले स्नात्वा वृषभदानं तन्मूल्यदानं वा कृत्वा सूतकान्ते शान्तिः कार्या।

पञ्चमी षष्ठी की दशमी एकादशी की और पूर्णिमा प्रतिपदा की सन्धि की दो घड़ी को तिथि-गण्डान्त कहते हैं। कर्क सिंह वृश्चिक धनु और मीन मेष लग्न की सन्धि की एक घड़ी को लग्न-गण्डान्त कहते हैं। उसमें तिथिगण्डान्त के पूर्वार्ध में जन्म हो तो उसी समय स्नान कर वृषभ का या उसके मूल्य का दान कर सूतक के अन्त में शान्ति करे।

उत्तरार्धे जन्मनि शान्तिमात्रम्। लग्नगण्डान्तपूर्वार्धजन्मनि काञ्चनदान-मुत्तरार्धे शान्तिमात्रम्। कुम्भे हेमप्रतिमायां वरुणं संपूज्य वरुणोद्देशेन प्रतिद्र-व्यमष्टोत्तरशतसंख्यया समिच्चर्वाज्यतिलयवानां होमः कार्यः। यवव्रीहिमाषतिल-मुद्गानां दक्षिणात्वेन दानमिति।

उत्तरार्द्ध में जन्म हो तो केवल शान्ति करे। लग्न-गण्डान्त के पूर्वार्ध में जन्म हो तो सुवर्ण-दान करे और उत्तरार्ध में केवल शान्ति करनी चाहिये। कलश पर सुवर्ण की प्रतिमा में वरुण की पूजा कर वरुण के उद्देश से एक सौ आठ समिधा चरु घृत और तिल जव से होम करना चाहिये। दक्षिणा के रूप में जव व्रीहि उर्द तिल और मूंग का दान करे।

अथ दिनक्षयादिशान्तिः

दिनक्षये च भद्रायां प्रसूतिर्यदि जायते।
यमघण्टे दग्धयोगे मृत्युयोगे च दारुणे॥

दुष्टयोगतिथीनां च निषिद्धांशेषु चेत्तदा ।
अतिदोषकरी प्रोक्ता तस्मिन्पापयुते सति ॥

यमघण्टादयो[१] ज्योतिर्ग्रन्थे प्रसिद्धाः । दुर्योगतिथीनां निषिद्धभागास्तु—

विष्कंभवज्रयोस्तिस्रः षट् च गण्डातिगण्डयोः ।
परिघार्धं पञ्च शूले व्याघातेऽङ्कघटीस्त्यजेत् ॥
चतुःषडष्टनिध्यर्कभूततिथ्याद्यनाडिकाः ।
अष्टाङ्कमनुतत्त्वाशाबाणसंख्या विवर्जयेत् ॥ इत्युक्ता ज्ञेयाः ।

दिनक्षय में या भद्रा में यदि प्रसव होता है तथा यमघण्ट में दग्धयोग में अथवा दारुण मृत्युयोग में दुष्टतिथि और योग नें तथा निषिद्ध भाग में उत्पन्न होने और उसके पापयुक्त होने पर अत्यन्त दोष करने वाला कहा गया है। यमघण्ट आदि ज्यौतिष-शास्त्र के ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। दुर्योग तिथियों के निषिद्ध भाग तो—विष्कम्भ और वज्रयोग की तीन घड़ियाँ गण्ड और अतिगण्ड की छ घड़ियाँ परिघ की आधी घड़ी शूल की पांच घड़ी व्याघात की नौ घड़ी का त्याग करे। चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी तिथियों की आदि की क्रम से आठ, नौ, चौदह, पचीस, दस, पांच घड़ियों का वर्जन करे।

दिनक्षयादिदोषेष्वेकैकदोषदूषितकाले जनने शिवे रुद्रैकादशिन्यभिषेकः कार्यः । द्वित्रादिदोषसमुच्चये ग्रहयज्ञाश्वत्थप्रदक्षिणादिसमुच्चयः ।

दीपं शिवालये भक्त्या घृतेन परिदापयेत् ।
गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युञ्जयं शुभम् ॥
शान्तिजाप्यं रुद्रजाप्यं कृत्वा मृत्युंजयी भवेत् ।

इति वाक्याद् बहुदोषे उक्तजपादिसमुच्चयोऽपि ।

दिनक्षय आदि दोषों में एक एक दोष से दूषित समय में जन्म होने पर शिवजी का रुद्रैकादशिनी से अभिषेक करना चाहिये। इकट्ठे दो तीन दोषों में ग्रहयज्ञ और पीपल की परिक्रमा आदि सब करे। तथा शिवमन्दिर में घृत से भक्तिपूर्वक दीप दे। गणपतिसूक्त पुरुषसूक्त सूर्य के मन्त्र मृत्युञ्जय का शान्तिजप और रुद्रजप मृत्यु को जीतने वाला होता है। इस वचन से बहुत दोष के इकट्ठा होने पर कहे हुए जप आदि इकट्ठा करावे।

अथ विषघटीशान्तिः

तत्र कौस्तुभे तिथिवारनक्षत्राणां विषनाड्य उक्तास्तथापि ज्योतिर्ग्रन्थेषु [२]नक्ष-

---

१. आदिपदेन कालदण्डकण्टकाख्यदुर्योगौ ग्राह्यौ । यमघण्टः—'मघा विशाखा आर्द्रा च मूलवृक्षं च कृत्तिकाः । रोहिणी हस्त इत्येते यमघण्टाः क्रमाद्रवेः ॥' कालदण्डो रविभरणीयोगः । कंटकः—'अर्कारतमःसौम्यार्यमन्दा यद्येकराशिगाः । कण्टकाख्यो महादोषः सर्वकर्मविनाशकृत् ॥' अत्र तमो राहुः, आर्यो बृहस्पतिः, मन्दः शनि । विशेषः कौस्तुभे द्रष्टव्यः ।

२. नारदेन नक्षत्रविषनाड्य उक्ताः—'खमार्गणा[२०] वेदपक्षा[२४] खरामा[३०] व्योमसागराः[४०] । वार्धिचन्द्रा[१४] रूपदस्रा[२१] खरामा[१०] व्योमबाहवः[२०]॥ द्विरामा[३२] खाग्नयः[३०] शून्यदस्राः[२०] कुञ्जरभूमयः[१८]। रूपपक्षा[२१] व्योमदस्रा[२०] [१४]वेदचन्द्राश्चतुर्दश[१४] ॥ शून्यचन्द्रा[१०] वेदचन्द्राः[१४] षडक्षा[५६] वेदबाहवः[२४] । शून्यदस्राः[२०] शून्यचन्द्राः[१०] पूर्णचन्द्रा[१०] गजेन्दवः[१८] ॥ तर्कचन्द्रा[१६] वेदपक्षा[२४] खरामा[३०] अश्विनी-

त्रविषघटीनामेव महादोषत्वेनोक्तेर्नक्षत्रविषघटीष्वेव जनने उक्तशान्तिः कार्या। तिथ्यादिविषघटीनामुपदोषत्वाद्रुद्राभिषेकादिकं कार्यम्। विषघटीलक्षणं कौस्तुभादौ ज्ञेयम्।

कौस्तुभ में तिथि और नक्षत्रों की विष-घटी कही गई है। तब भी ज्यौतिष के ग्रन्थों में नक्षत्र-विषघटी को ही महादोषप्रद कहने से नक्षत्र-विषघटी में ही जन्म होने पर कही हुई शान्ति करे। तिथि आदि की विषघटी में दोष की न्यूनता से रुद्राभिषेक आदि करे। विषघटी का लक्षण कौस्तुभ आदि से जानना चाहिये।

विषनाडीषु संजातः पितृमातृधनात्मनाम्।
नाशकृद्विषशस्त्राद्यैः क्रूरे लग्नेंऽशकेऽपि च ॥

एतद्विषनाडीषु शिशुजननसूचितारिष्टेत्यादिसंकल्पः। एककुम्भे प्रतिमाचतुष्टये रुद्रयमाग्निमृत्युदेवताः कद्रुद्राय यमाय सोममग्निर्मूर्धा परंमृत्यो इति मन्त्रैः संपूजयेत्। ग्रहान्वाधानान्ते रुद्रयमाग्निमृत्यून् समिच्चरुघृततिलाहुतिभिः प्रतिदैवतं प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिः शेषेणेत्यादि। गृहसिद्धान्नस्य होमः।

विषघटी में उत्पन्न शिशु पिता माता धन और अपना भी नाशक होता है। क्रूरलग्न और लग्नांश में भी विष तथा शस्त्र आदि से नाश होता है। 'अमुक विषघटी में जन्म से सूचित अरिष्ट निवारण के लिये' इत्यादि संकल्प करे। एक कलश पर चार प्रतिमा में रुद्र, यम, अग्नि और मृत्यु देवता को 'कद्रुद्राय, यमाय, सोममग्निर्मूर्द्धा, परं मृत्यो, इन मन्त्रों से पूजा करे। ग्रहों के अन्वाधान के अन्त में रुद्र, यम, अग्नि और मृत्यु के समिधा, चरु, घृत और तिल की आहुतियों से प्रति देवता को प्रतिद्रव्य से एक सौ आठ संख्या से होम करके शेष से स्विष्टकृत्। गृह में बने अन्न से होम करे।

अथ यमलजननशान्तिः

तत्र श्रौताग्निमतः सोऽग्नये मरुत्वते त्रयोदशकपालं पुरोडाशं निर्वपेदिति ऋग्वेदब्राह्मणोक्तेष्टिः। यद्वा आश्वलायनसूत्रोक्तः केवलमारुतयागः। गृह्याग्निमत आश्वलायनस्य गृह्याग्नौ मारुतश्चरुः।

अथ यस्य वधूर्गौर्वा जनयेच्चेद्यमौ[1] ततः।
स मरुद्भिश्चरुं कुर्यात्पूर्णाहुतिमथापि वा ॥

क्रमात्। आभ्यः पराः स्युर्घटिकाश्चतस्रो विषसंज्ञिताः ॥' अत्रापि अश्विन्यां पञ्चाशद्घटिकोत्तरं चतस्रो भरण्यां चतुर्विंशतिघटिकोत्तरं चतस्रो घटिका विषनाड्य इत्येवं व्यवस्था संस्कारकौस्तुभादौ स्पष्टेति।

१. विधानमालायां काशीखण्डे स्मृत्युक्ता यमलजननशान्तिः—'त्रिविधा यमलोत्पत्तिर्जायते योषितामिह। सुतौ च सुतकन्ये च कन्ये एव तथा पुनः ॥ एकलिङ्गौ विनाशाय द्विलिङ्गौ मध्यमौ स्मृतौ। पित्रोर्विघ्नकरौ ज्ञेयौ तत्र शान्तिर्विधीयते ॥ हेममूर्तो विधातव्ये दस्रायोश्च द्विजोत्तम। पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥ ब्रह्मवृक्षस्य पट्टे च स्थापयेद्रक्तवाससी। स्वस्तिके तण्डुलानां च व्यस्ते पीठे द्विजोत्तम। पूजयेद्रक्तपुष्पैश्च चन्दनेनानुलेपयेत्। दशाङ्गेनैव धूपेन धूपयेत् प्रयतः पुमान् ॥ दीपैर्नीराजयेच्चैव नैवेद्यं परिकल्पयेत्। यस्मै त्वं सुकृते जातवेद इति मन्त्रेणाक्षतैरर्चयेत् ॥

अनेनैव तु मन्त्रेण होमं कुर्यादतन्द्रितः। अष्टोत्तरसहस्रं च पायसेन ससर्पिषा ॥ शान्तिपाठं जपेद् विद्वान् सूर्यसूक्तं जपेत्ततः। विष्णुसूक्तं तथा गाथां वैश्वदेवीं जपेद् बुधः ॥ अश्वदानं ततो

इति कारिकोक्तेः। गृह्याग्निशून्यबह्वृचः कात्यायनोक्तशान्तिं लौकिकाग्नौ कुर्यात्। 'मम भार्या यमलजननसूचितसर्वारिष्टपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं मारुतेष्ट्या यक्ष्ये' इति संकल्पः श्रौताग्निमतः। स्मार्ताग्निमतस्तु 'मारुतस्थालीपाकेन यक्ष्ये' इति संकल्पः।

इसमें श्रौताग्नि वाले को 'सोमाय मरुत्वते त्रयोदश कपालं पुरोडाशं निर्वपेत्' इस ऋग्वेद ब्राह्मण की कही इष्टि अथवा आश्वलायन सूत्र का कहा हुआ केवल मारुत-याग करे। गृह्याग्निवाले आश्वलायन गृह्याग्नि में मारुत चरु का होम करे। जिसकी स्त्री या गाय जोडुआ बच्चा उत्पन्न करे वह मरुत देवता का चरु पकावे और पूर्णाहुति दे, इस आशय की कारिका की उक्ति है। गृह्याग्निरहित बह्वृच कात्यायन की कही शान्ति लौकिकाग्नि में करे। इसमें 'मेरी स्त्री का यमल (जोडुआं) बच्चा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण अरिष्ट के परिहारद्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये मारुतेष्टि यज्ञ करूँगा' यह संकल्प श्रौताग्नि वाले के लिये है। स्मार्ताग्नि वाले को तो 'मारुत स्थालपाक से यज्ञ करूँगा' ऐसा संकल्प करना चाहिये।

निरग्निस्तु 'सग्रहमखां कात्यायनोक्तां शान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादि आचार्यवरणान्तं कुर्यात्। अष्टकलशान् विधिना संस्थाप्य उदकपूरणादिसर्वौषधीप्रक्षेपान्ते वरुणं पूजयेत्। अष्टकलशोदकैर्दम्पत्योरभिषेकः। आपोहिष्ठेति तिसृभिः कया न इति द्वे आनः स्तुत इति पञ्चेति सप्तभिरैन्द्रीभिर्मोषु वरुण इति पञ्चभिरिदमाप इत्येकया अप न इत्यष्टाभिराग्नेयीभिर्ऋग्भिः कार्यः।

निरग्नि को तो 'ग्रहयज्ञसहित कात्यायन की कही शान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्वस्तिवाचन आदि आचार्य वरण तक करे। आठ कलशों को आठों दिशा में विधि से स्थापित कर जल भरने से लेकर सर्वौषधि प्रक्षेप तक करके वरुण की पूजा करे। आठों कलशों के जल से पति-पत्नी का अभिषेक करे। 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से 'कया न' इन दो ऋचाओं से 'आनः स्तुत' इन पांच ऋचाओं से 'ऐन्द्रीभिः' इन सात ऋचाओं से 'मोषु वरुण' इन पांच ऋचाओं से 'इदमाप' इस एक ऋचा से और 'अप न' इन आठ आग्नेयी-ऋचाओं से अभिषेक करना चाहिये।

अभिषिक्तौ दम्पती धृतश्वेतवस्त्रचन्दनौ उदङ्मुखौ तिष्ठताम्। प्राङ्मुख आचार्योऽग्निग्रहस्थापनान्ते अपस्तिसृभिराज्याहुतिभिरिन्द्रं सप्तभिर्वरुणं पञ्चभिरप एकया-

---

दद्यादाचार्याय कुटुम्बिने। तयोर्मूर्ती प्रदातव्ये यजमानेन धीमता॥' दानमन्त्रः—'अश्वरूपौ महाबाहू अश्विनौ दिव्यचक्षुषौ। अनेन वाजिदानेन प्रीयेतां मे यशस्विनौ॥

मूर्तिदानमन्त्रः—'आचार्यः प्रथमो वेधा विष्णुस्तु सविता भगः। दस्रमूर्तिप्रदानेन प्रीयतामश्विनौ भगः॥ ततोऽभिषेचनं कार्यं दम्पत्योर्विधिवद् बुधैः। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत्॥ सालङ्कारैश्च वस्त्रैश्च प्रार्थयेद् वचनैः शुभैः। एवं कृते विधाने तु यमलोत्पत्तिशान्तिकम्॥ जायते नात्र संदेहः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥' इति।

यमलसन्तानों में जिसका पहले जन्म हो वह ज्येष्ठ और जिसका पीछे जन्म हो वह कनिष्ठ है—'जन्मजेष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्। यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता॥' देवलः—'यस्य जातस्य यमयोः पश्यन्ति प्रथमं मुखम्। सन्तानः पितरश्चैव तस्मिन् ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम्॥' भागवत में—'द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वंशविपर्ययात्' इस उक्ति से पीछे उत्पन्न हुये सन्तान को ही ज्येष्ठ कहा। इसमें देशाचारतः व्यवस्था मान्य है। पूर्व में उत्पन्न हुये को ज्येष्ठ मानना युक्त है।

ग्निमष्टाभिराज्याहुतिभिः पूर्वत्राभिषेकार्थमुक्तैश्चतुर्विंशतिमन्त्रैरग्निं सोमं पवमानं पावकं मारुतं मरुतः यममन्तकं मृत्युं चैकैकया चर्वाहुत्या नाममन्त्रैः शेषेणेत्यादि अन्वादध्यात्। षट्त्रिंशद्वारं तूष्णीं निर्वापप्रोक्षणे। अन्ते ग्रहकलशोदकादिनाऽभिषेकः। दासीमहिषीवडवागोहस्तिनीनां यमलजननेऽपीयं शान्तिः कार्या।

अभिषिक्त पति-पत्नी सफेद वस्त्र चन्दन धारण किये हुए दोनों उत्तरमुख बैठें। आचार्य पूर्वमुख बैठ अग्निस्थापन तथा ग्रहस्थापन के अनन्तर वरुण को इन तीन घृत की आहुतिओं से इन्द्र को सात, वरुण को पांच, जल को एक और अग्नि को आठ घृताहुति देकर और पहिले अभिषेक के लिये कहे चौबीस मन्त्रों से अग्नि, सोम, पवमान, पावक, मारुत, मरुत्, यम, अन्तक और मृत्यु को एक एक चरु की आहुति नाममन्त्र से देकर शेष से स्विष्टकृत् अन्वाधान करे। छत्तीसवार चुपचाप निर्वाप तथा प्रोक्षण करे। अन्त में ग्रहकलश के जल आदि से अभिषेक करे। नौकरानी, भैंस, घोड़ी, गाय और हथिनी के यमल (जोड़ुआं) बच्चा उत्पन्न होने पर यही शान्ति करनी चाहिये।

अथ उत्पातादिशान्तिः

इयं शान्तिर्ग्रहोत्पातेषु उलूककपोतगृध्रश्येनानां गृहप्रवेशे स्तम्भप्ररोहे वल्मीकप्ररोहे मधुजनने आसनशयनयानभङ्गे पल्लीपतने सरटारोहणे छत्रध्वजविनाशेषु अन्येषूत्पातेषु च कार्येति च [1]कात्यायनमतम्। सा च साग्निकैः कात्यायनैः स्वगृह्याग्नौ कार्या। निरग्निकैस्तैरन्यैश्च लौकिकाग्नौ। इति यमलजननादिशान्तिः।

यह शान्ति—ग्रहों के उत्पातों में, उल्लू, कबूतर, गीध और श्येन (बाज) के घर में प्रवेश करने पर और खम्भों पर चढ़ने, वल्मीक (बांवड़ी) बनाने, शहद का छत्ता लगाने, आसन खटिया सवारी के टूटने पर बिछतुइया के गिरने पर गिरगिट चढ़ने पर छत्र और ध्वज के नष्ट होने पर तथा अन्य उत्पातों में भी करनी चाहिये, ऐसा कात्यायन का मत है। यह शान्ति साग्निक कात्यायन अपनी गृह्य-अग्नि में करें। निरग्निक तथा अन्यजन लौकिकाग्नि में करें। यमलजनन शान्ति समाप्त।

अथ त्रिकप्रसवशान्तिः

सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्त्रये वा सुतो यदि।
मातापित्रोः कुलस्यापि तदानिष्टं महद्भवेत्॥
ज्येष्ठनाशो वित्तहानिर्दुःखं वा[2] सुमहद्भवेत्।

१. पारस्करगृह्यसूत्रस्य गदाधरकृतभाष्ये—'एतदेव ग्रहोत्पातनिमित्तेषूलूकः कङ्कः कपोतो गृध्रः श्येनो वा गृहं प्रविशेत् स्तम्भं प्ररोहेद् वल्मीकं मधुजालं वा भवेदुदकुम्भप्रज्वलनासनशयनयानभङ्गेषु गृहगोधिकाकृकलासशरीरसर्पणे छत्रध्वजविनाशे सार्पे नैर्ऋते गण्डयोगेष्वन्येष्वप्युत्पातेषु भूकम्पोल्कापातकाकसर्पसङ्गमप्रेक्षणादिष्वेतदेव प्रायश्चित्तं ग्रहशान्त्युक्तेन विधिना कृत्वा आचार्याय वरं दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वस्तिवाच्याशिषः प्रतिगृह्य शान्तिर्भवति शान्तिर्भवतीति।'

२. गर्गसंहिता में—'दुःखं चैषु महद्भवेत्' ऐसा पाठ है और इसके आगे के श्लोक हैं—'तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः। जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने। आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरस्सरम्॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः। पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि

गोप्रसवं कृत्वा मम सुतत्रयजन्मानन्तरं कन्याजननसूचितसर्वारिष्टेति वा कन्यात्रयजन्मानन्तरं पुत्रजननसूचितेति वा निमित्तानुसारेण संकल्पः।

स्थण्डिलपूर्वभागे ग्रहस्थापनान्ते तदुत्तरतः कलशपञ्चके स्वर्णप्रतिमासु ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्ररुद्रानावाह्य पूजयेत्। तत्र मन्त्राः—ब्रह्मजज्ञानं० इदं विष्णु० त्र्यंबकं० यत इन्द्र० कद्रुद्रायेति। ग्रहपीठदेवतान्वाधानान्ते ब्रह्माणं विष्णुं महेशम् इन्द्रं च प्रत्येकं समिदाज्यचरुतिलैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरसहस्राष्टोत्तरत्रिंशताष्टोत्तरशतान्यतमसंख्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि।

यदि तीन लड़कों के जन्म होने पर कन्या का जन्म हो अथवा तीन कन्या होने पर पुत्र का जन्म हो तो माता पिता तथा कुल का बहुत बड़ा अनिष्ट होता है। ज्येष्ठ का नाश धन की हानि या बहुत भारी दुःख होता है। गोप्रसव करके मेरे तीन पुत्र के जन्म के बाद कन्या की उत्पत्ति होने से ज्ञात सब अरिष्ट अथवा तीन कन्या के अनन्तर पुत्र होने से विदित सम्पूर्ण अरिष्ट के शान्त्यर्थ जो भी निमित्त हो तदनुसार संकल्प करे। स्थण्डिल के पूर्वभाग में ग्रहस्थापन के अनन्वर उत्तर से पांच कलश में सुवर्ण की प्रतिमा में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और रुद्र का आवाहन कर पूजन करे। उसमें ये मन्त्र हैं—'ब्रह्मजज्ञानं०' 'इदं विष्णु०' 'त्र्यम्बकं०' 'यत इन्द्रः०' 'कद्रुद्राय०'। ग्रहपीठ देवता के अन्वाधान के पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, और इन्द्र, प्रत्येक को समिधा, घृत, चरु और तिल से एक हजार आठ और एक सौ आठ इनमें किसी एक से आहुति देवे।

अथ दन्तजननशान्तिः

उपरि [1]प्रथमं यस्य जायन्तेऽथ शिशोर्द्विजाः।
दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम॥
द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा।
यदा दन्ताश्च जायन्ते मासे चैव महद्भयम्॥

शक्तितः॥ पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया। रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः॥ द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिसमाहितः। आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरून्॥ अष्टोत्तरसहस्रं षट्शतं त्रिशतं तु वा। देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरस्सरम्। ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्रं भजामहे। ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः॥ अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाऽऽचार्यं प्रपूजयेत्। हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा ततः॥ आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत्। प्रतिमां गुरवे दत्वा उपस्करसमन्विताः॥ ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत्। कृत्वैवं विधिना शान्तिं सर्वारिष्टाद्विमुच्यते॥' 'अष्टोत्तरसहस्रं तु षट्शतं' का निर्णयसिन्धु में 'अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा' यह पाठान्तर है।

१. रुद्रयामले—'प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरूर्ध्वं बालस्य चेद् भवेत्। क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता महर्षिभिः॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा। दध्योदनेन संपूर्तं पात्रं दद्याच्छिशोः करे॥ समन्त्रं भाजनं दत्वा स पश्येन्मातुलः शिशुम्। सालङ्कारं सवस्त्रं च शिशुमालिङ्गय सादरः॥'

तत्र मन्त्रः—'रक्ष मां भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलं कुलम्। गृहीत्वा भाजनं सान्नं प्रसन्नो भव मे सदा॥ निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नां च स्वमातरम्। मय्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरं जीव मया सह॥ ततोऽभिनन्दयेद्विद्वान् भगिनीं भगिनीपतिम्। होमं कृत्वा तिलाज्येन ब्राह्मणानपि पूजयेत्॥ एवं कृते विधाने तु विघ्नः कोऽपि न जायते॥' इति।

मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव च ॥
बालानामष्टमे मासि षष्ठे मासि ततः पुनः ॥
दन्ता यस्य च जायन्ते माता वा म्रियते पिता ।
बालकः पीडचते वात्र स्वयमेव न संशयः ॥

केचित्तु अष्टमे मासि दन्तजन्म शुभमाहुः ।

जिस बालक को पहले ऊपर के दांत निकलते हैं अथवा दांत के साथ बालक जन्म लेता है और दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें मास में दांत पैदा होते हैं तो यह बहुत बड़ा भय देता है। माता पिता अथवा अपने को भी खा लेता है। जिस बालक को छठे और आठवें मास में दांत उत्पन्न होता है उसके माता अथवा पिता की मृत्यु होती है। अथवा बालक स्वयं पीड़ित होता है। कोई तो आठवें मास में दांत का निकलना शुभ कहते हैं।

तत्रास्य शिशोः प्रथममूर्ध्वदन्तजननसूचितसर्वारिष्टेत्यादि सदन्तजननसूचितेत्यादि वा द्वितीयमासे दन्तजननसूचितेत्यादि वा संकल्पं यथानिमित्तं योजयेत्। स्थण्डिलोत्तरभागे नौकायां स्वर्णपीठे वा स्वस्तिकयुते बालमुपवेश्य सर्वौषध्यादियुक्तजलैः स्नापयित्वा स्थण्डिलपूर्वतः कलशे प्रतिमासु धातारं वह्निं सोमं वायुं पर्वतान् केशवं चेति षड् देवताः संपूज्य ग्रहान्वाधानान्ते धातारं सकृच्चरुणा वह्न्यादिपञ्चदेवता एकैकयाज्याहुत्या शेषेणेत्यादि अन्वादध्यात्।

इसमें इस बालक को पहिले ऊपर के दांत निकलने या दांत के साथ पैदा होने अथवा दूसरे आदि महीनों में दांत उत्पन्न होने से सब अरिष्ट आदि के निवृत्त्यर्थ संकल्प में निमित्त की योजना करे। स्थण्डिल के उत्तर भाग में नाव में या सोने के बने आसन पर जिसमें स्वस्तिक बना हो उसपर बालक को बैठाकर सर्वौषधि मिले जल से नहला कर स्थण्डिल के पूर्व की ओर कलश में प्रतिमाओं में धाता, अग्नि, सोम, वायु, पर्वतों और भगवान् केशव, इन छ देवताओं की पूजा कर ग्रहों के अन्वाधान के पश्चात् धाता को एकबार चरु से अग्नि आदि पांच देवताओं को एक एक घृत की आहुति देकर शेष से स्विष्टकृत् इत्यादि अन्वाधान करे।

धात्रे त्वा जुष्टं निर्वपामीत्यादिनिर्वापप्रोक्षणे। नाम्ना चरुहोमः। स्रुवेण वह्न्यादिभ्यः पञ्चाज्याहुतयोऽपि नाम्नैव। होमान्ते दक्षिणां दत्त्वा सप्ताहं यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत्। अष्टमदिने काञ्चनादि दत्त्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात्। षष्ठाष्टममासयोर्दन्तजनने तु एकस्या बृहस्पतिदेवतायाः पूजनम्। दधिमधुघृताक्तानामश्वत्थसमिधामष्टोत्तरशतं बृहस्पतिमन्त्रेण होमः। आज्येन स्विष्टकृदादि। इति दन्तजननशान्तिः।

'धात्रे त्वा जुष्टं निर्वपामि' इससे निर्वाप और प्रोक्षण करे। नाम से चरु का होम करे। स्रुवा से अग्नि आदि देवता को घृत की पांच आहुति नाम मन्त्र से दे। होम के अनन्तर दक्षिणा देकर सात दिनतक शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे। आठवें दिन सुवर्ण आदि देकर कर्म को ईश्वरार्पण करे। छठें और आठवें मास में दांत निकले तो एक बृहस्पति देवता का पूजन करे। दही, मधु और घृत पीपल की लकड़ी में मिलाकर एक सौ आठ आहुति बृहस्पति के मन्त्र से दे। घृत से स्विष्टकृत् आदि करे। दन्तजननशान्ति समाप्त।

अथ प्रसववैकृतशान्तिः

यत्र गर्भे विपर्यासो मानुषाणां गवामपि ।
अद्भुतानि [1]प्रसूयन्ते तत्र देशस्य विप्लवः ॥
मानुषामानुषाणां च गोऽजाश्वमृगपक्षिणाम् ।
जायन्ते जातिभेदाश्च सदन्ता विकृतास्तथा ॥
बहुशीर्षा अशीर्षा वा बहुकर्णा अकर्णकाः ।
एकशृङ्गा द्वित्रिशृङ्गास्तथैव त्रिचतुर्भुजाः ॥
दीर्घकर्णा महाकर्णा गजकर्णाश्च मानवाः ।
राजश्रेष्ठकुले नाशो धनस्य च कुलस्य च ॥
अष्टोत्तरसहस्राणि चरुं वै जुहुयाद्घृतम् ।
समिधां तु पलाशानां तर्पयेत्पूर्ववद् द्विजान् ॥
अशिरा जायते जन्तुस्तथा द्वित्रिशिरास्तथा ।
अत्र सूर्याद्भुते सूर्यं पूजयेज्जुहुयादपि ॥

जिस गर्भ में मनुष्यों और गायों का उलटफेर होता है तथा मनुष्य गौ आदि आश्चर्ययुक्त प्रसव करते हैं उस देश में विप्लव होता है। मनुष्य और मनुष्य भिन्न में गाय बकरा घोड़ा मृग और पक्षियों का स्वजाति से भिन्न जाति का पैदा होने लगता है। दांत के साथ विकृत रूप जन्म लेते हैं, बहुत सिर वाले, विना सिर वाले, अधिक कान वाले, विना कान के, एक सींग के, दो तीन सींग के और तीन भुजा चार भुजा के, लम्बे कान के, बड़े कान के, हाथी के समान कान वाले मनुष्य जन्म लेने लगते हैं, तब राजा का श्रेष्ठ कुल का और धन का नाश होता है। ऐसी स्थिति में एक हजार आठ चरु घृत से होम करे। पलाश की समिधा से होम और ब्राह्मणों को तृप्त करे। विना सिर का जीव पैदा ले, दो तीन सिर वाला जन्म ले तो इस स्थिति में सूर्य की पूजा और होम भी करे।

दध्याज्यमधुसंयुक्ताः समिधस्त्वर्कसंभवाः ।
मृगी जनयते सर्पान्मण्डूकांश्चैव मानुषान् ॥
अत्राद्भुते गीष्पतये पूजाहोमं च कारयेत् ।
औदुम्बरस्य समिधो दधिसर्पिःसमन्विताः ॥
स्त्रीगर्भपातो यमलं प्रसूयन्तेऽथवा स्त्रियः ।
सदन्ताश्चैव जायन्ते जातमात्रा हसन्ति च ॥
बुधाद्भुते बुधायात्र पूजाहोमौ समाचरेत् ।
संक्षेपेण यथाप्रज्ञमित्थं जननशान्तयः ॥
उक्ता जपाभिषेकार्थसूक्तादिबहुविस्तृताः ।

---

१. मत्स्यपुराणे—'अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा। हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः। विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ॥ निर्वासयेत्तां नगरात्ततः शान्तिं समाचरेत् ।' इति ।

प्रयोगाः कौस्तुभादौ च प्रसिद्धा बहुशः पराः ॥
अनेन प्रीयतां देवो भगवान् विट्ठलः प्रभुः ॥

आक की समिधा दही, मधु और घृत में मिलाकर होम करे। हरिणी सांप पैदा करे या मण्डूक (बेंग) मनुष्य उत्पन्न करे तो इस अद्भुत प्रसव में बृहस्पति की पूजा और होम करे और दही, घी के साथ उदुम्बर की समिधा की आहुति दे। जब स्त्रियों का अधिक संख्या में गर्भपात हो या यमल (जोडुआं) प्रसव हो, दांत के सहित बच्चे जन्म लें तथा पैदा होते ही हंसने लगें यह बुधाद्भुत है। इसमें बुध महाराज की पूजा और होम दोनों करे। इस प्रकार संक्षेप से अपनी बुद्धि के अनुसार जन्म की शान्तियां कही हैं। जप अभिषेक के लिये अतिविस्तृत सूक्त और प्रयोग कौस्तुभ में बहुत प्रसिद्ध हैं, इससे भगवान् विट्ठल प्रसन्न हों।

अथ नामकरणम्

तत्र जन्मदिने जातकर्मानन्तरं तत्कालः। क्वचिद् एकादशाहे वा विप्रस्य नामकर्म। दशमदिने आशौचसत्त्वेपि वचनान्नामकर्म[1] कार्यमिति केचित्। क्षत्रियाणां त्रयोदशे षोडशे वा दिने। वैश्यानां षोडशे विंशतितमे वा दिने। द्वाविंशे मासान्ते वा शूद्राणाम्। मासान्ते शततमे दिने वत्सरान्ते वेति विप्रादीनां गौणकालः। मुख्यकाले कुर्वन् विप्रादिः पुण्यतिथिनक्षत्रचन्द्रानुकूल्यादिगुणादरं न कुर्यात्।

इसमें जन्मदिन में जातकर्म के बाद नामकर्म का समय है। कहीं ग्यारहवें दिन अथवा बारहवें दिन ब्राह्मण का नामकर्म होना कहा है। वचन से दसवें दिन आशौच के रहते हुए भी नामकर्म करना चाहिए, यह भी कुछ लोग कहते हैं। क्षत्रियों को नामकर्म तेरहवें या सोलहवें दिन वैश्यों को सोलहवें या बीसवें दिन शूद्रों को बाईसवें दिन या मास के अन्त में करना चाहिये। ब्राह्मणों के नामकर्म का गौणकाल मासके अन्तमें या सौवें दिन अथवा वर्ष के अन्त में कहा है। मुख्यकाल में नामकर्म करने वाला ब्राह्मण आदि पुण्यतिथि, नक्षत्र और चन्द्रमा की अनुकूलता आदि गुणों का आदर न करे।

उक्तमुख्यकालातिक्रमे[2] शुभनक्षत्रादिकमावश्यकम्। वैधृतिव्यतीपातसंक्रान्तिग्रहणदिनामावास्याभद्रासु प्राप्तकालेऽपि नामकर्मादि शुभकर्म न कार्यम्। अत्र

---

१. मनुः—'नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥' विष्णुपुराणे—'शर्मवद् ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंयुतम्। गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ॥' यमः—'शर्मदेवश्च विप्रस्य वर्मत्राता च भूभुजः। भूतिर्दत्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत् ॥' इति। मदनरत्ने—'द्वादशे दशमे वाऽपि जन्मतोऽपि त्रयोदशे। षोडशे विंशतौ चैव द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात् ॥' याज्ञवल्क्यः—'अह्न्येकादशे नाम' इति। गृह्यपरिशिष्टे—'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम्' इति। व्युष्टे=अतीते। विष्णुः—'आशौचापगमे नामधेयम्' इति। वसिष्ठः—'उत्तरारेवतीहस्तमूलतिष्याः सवारुणाः। श्रवणादितिमैत्रे च स्वातीमृगशिरस्तथा ॥ प्राजापत्यं धनिष्ठा च प्रशस्ता नामकर्मणि। पक्षच्छिद्रां च नवमीं पञ्चमीं चैव वर्जयेत् ॥ शेषास्तु तिथयः सर्वाः प्रशस्ता नामकर्मणि।' इति।

२. कारिका—'मुख्यकाले यदा नामधेयं कर्तुं न शक्यते। उक्तानामन्यतमस्मिन् दिने स्यात्तु गुणान्विते ॥' गर्गः—'अमासंक्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत्।' इति।

मलमासगुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्तीत्युक्तम् । अपराह्णे रात्रौ च नामकर्म वर्ज्यम् ।

कहे हुए मुख्यकाल के बीतने पर शुभनक्षत्र आदि आवश्यक है। वैधृति, व्यतीपात, संक्रान्ति, ग्रहणदिन, अमावास्या और भद्रा में प्राप्त समय में भी नामकर्म आदि शुभकर्म न करे। इसमें मलमास, गुरुशुक्रास्तादि का दोष नहीं होता है, ऐसा कह चुके हैं। अपराह्न में तथा रात में नामकर्म वर्जित है।

अथोक्तकालातिक्रमेऽपेक्षितशुभतिथ्यादि—[1]चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीनवमीद्वादशीचतुर्दशीपञ्चदशीरहितास्तिथयः प्रशस्ताः । चन्द्रबुधगुरुशुक्रा वासराः । अश्विनीत्र्युत्तरारोहिणीमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तस्वात्यनूराधाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवतीनक्षत्राणि । वृषभसिंहवृश्चिकलग्नानि प्रशस्तानि ।

उक्त समय बीत जाने पर चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा से भिन्न तिथियां उत्तम हैं। सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार इसमें प्रशस्त हैं। अश्विनी, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती नक्षत्र तथा वृष सिंह और वृश्चिक लग्न उत्तम है।

अथ नामचतुष्टयनिर्णयः

तानि नामानि चतुर्विधानि—[2]देवतानाम-मासनाम-नक्षत्रनाम-व्यावहारिकनामेति । तत्रामुकदेवताभक्त इत्याकारकं देवतानाम प्रथमम् ।

चैत्रादिमासनामानि वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः ।
उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः ॥
योगीशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णोऽनन्तोऽच्युतस्तथा ।
चक्रीति द्वादशैतानि क्रमादाहुर्मनीषिणः ॥

इत्यनुसारेण मासनाम द्वितीयकम् । मासाश्चात्र चान्द्राः । ते च शुक्लादिकृष्णान्ता एव ।

वे नाम चार प्रकार के होते हैं—देवतानाम, मासनाम, नक्षत्रनाम और व्यावहारिकनाम। उसमें अमुक देवता का भक्त इस तरह देवतानाम पहिला, चैत्र आदि मास के नाम—वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, अनन्त, अच्युत और चक्री, इसप्रकार क्रम से बारह नाम विद्वान् लोग कहते हैं। इसके अनुसार मासनाम दूसरा है। इसमें मास चान्द्र है। वे शुक्लादि कृष्णान्त मास हैं।

---

१. श्रीधरः—'मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक्स्वातीधनिष्ठाच्युतप्राजेशाश्विशशाङ्कपौष्णदिनकृत्पुष्येषु राशौ स्थिरे। छिद्रां पञ्चदशीं विहाय नवमीं शुद्धेऽष्टमे भार्गवज्ञाचार्यामृतपादभागदिवसे नामानि कुर्याच्छिशोः ॥' इति ।

२. शंखः—'कुलदेवतानक्षत्राभिसम्बन्धं पिता नाम कुर्यादन्यो वा कुलवृद्धः' इति । मदनरत्न में नारदीय-वचन—'सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम् । नामपूर्वं तु मासस्य मङ्गलं सुसमाक्षरैः ॥' गार्ग्यः—'मासनाम गुरोर्नाम दद्याद् बालस्य वै पिता ।' स्मृतिसंग्रहे—'कृष्णोऽनन्तोऽच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः । उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः ॥ योगीशः पुण्डरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ।' यहाँ मार्गशीर्षादि या चैत्रादि मास-क्रम ग्राह्य है, ऐसा मदनरत्न में कहा है।

यस्मिन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्रवाचकशब्दात् 'तत्र जातः' इत्यधिकारविहिततद्धितप्रत्यये कृते निष्पन्नं नाक्षत्रं नाम तृतीयम्। तद्यथा—अश्वयुक् आपभरणः कार्तिकः रौहिणः मार्गशीर्षः आर्द्रकः पुनर्वसुः पुष्यः आश्लेषः माघः पूर्वाफाल्गुनः उत्तराफाल्गुनः हस्तः चैत्रः स्वातिः विशाखः अनूराधः ज्यैष्ठः मूलकः पूर्वाषाढः उत्तराषाढः आभिजितः श्रावणः श्रविष्ठः शतभिषक् पूर्वाप्रोष्ठपादः उत्तराप्रोष्ठपादः रैवतः इति।

जिस नक्षत्र में जन्म हो उस नक्षत्र वाचक शब्द से 'तत्र जातः' इससे विहित तद्धितप्रत्यय करने पर संपन्न नाक्षत्र नाम तीसरा। वह इसतरह—अश्वयुक् आपभरण कार्तिक रौहिण मार्गशीर्ष आर्द्रक पुनर्वसु पुष्य आश्लेष माघ पूर्वाफाल्गुन उत्तराफाल्गुन हस्त चैत्र स्वाति विशाख अनूराध ज्यैष्ठ मूलक पूर्वाषाढ उत्तराषाढ आभिजित श्रावण श्रविष्ठ शतभिषक् पूर्वाप्रोष्ठपाद उत्तराप्रोष्ठपाद और रैवत।

केचित्तु—चूचेचोलाश्विनी प्रोक्तेत्यादिज्योतिर्ग्रन्थोक्तावकहडाचक्रानुसारेणाश्विन्यादेश्चतुर्षु चरणेषु चूडामणिश्चेदीशश्चोलेशो लक्ष्मण इत्यादिकानि नाक्षत्रनामानि कुर्वन्ति, तन्न श्रौतग्रन्थादिबहुसम्मतम्। सांख्यायनास्तु कृत्तिकोत्पन्नस्याग्निशर्मेति नक्षत्रदेवतासंबद्धनाक्षत्रं नाम कुर्वन्ति। एवं कातीया अपि। नाक्षत्रनामैवाभिवादनीयं गुप्तं चामौञ्जीबन्धनान्मातापितरावेव जानीयाताम्।

कुछ लोग तो 'चू चे चो ला अश्विनी' इत्यादि ज्योतिषग्रन्थ में कहे 'अवकहडा चक्र' के अनुसार अश्विनी आदि के चारो चरणों में चूड़ामणि चेदीश चोलेश लक्ष्मण इत्यादिक नाक्षत्र नाम रखते हैं, ये नाम श्रौतग्रन्थ आदि से बहुसम्मत नहीं हैं। सांख्यायन तो कृत्तिका में उत्पन्न का अग्निशर्मा ऐसा नक्षत्रदेवता से संबद्ध नाक्षत्र-नाम रखते हैं। इसी प्रकार कातीय भी। अभिवादन के योग्य नाक्षत्र नाम ही है यज्ञोपवीत तक गुप्त रखना चाहिये केवल माता-पिता ही इस नामको जानें।

व्यावहारिकं नाम चतुर्थम्। तच्च कवर्गादिषु तृतीयचतुर्थपञ्चमवर्णहकारान्ततमवर्णाद्यावयवकं यरलवान्यतममध्यमवर्णयुतम् ऋलृवर्णरहितं विसर्गान्तं पित्रादिपुरुषत्रयान्यतमवाचकं शत्रुवाचकभिन्नं तद्धितप्रत्ययरहितं कृत्प्रत्ययान्तं युग्माक्षरं पुंसामयुग्माक्षरं स्त्रीणां कार्यम्। यथा देव इति हरिरिति।

व्यावहारिक नाम चौथा होता है। वह नाम कवर्ग आदि में से तीसरा चौथा पांचवा वर्ण और हकार में से कोई एक नाम का पहला वर्ण हो और मध्यम यरलव इनमें से कोई एक रहे इसमें ऋलृ वर्ण न रहे विसर्ग अन्तमें हो पिता आदि तीन पुरुषों में से किसी एक का वाचक हो शत्रु वाचक न हो तद्धितप्रत्ययान्त न हो, कृत्प्रत्ययान्त हो जोड़े अक्षर वाला पुरुष का नाम रखना चाहिये और स्त्रियों के नाम में विषम अक्षर हो, जैसे देव, हरि।

उक्तसर्वलक्षणाभावे समाक्षरं पुंसामयुग्माक्षरं स्त्रीणामित्येकलक्षणयुतमेव। यथा रुद्र इति राजेत्यादि। अक्षरमत्र स्वरः, व्यञ्जनेषु न संख्यानियमः।

कहे हुए सब लक्षण न हो तो सम अक्षर का नाम पुरुष का और विषम अक्षर वाला स्त्रियों का नाम करे। जैसे रुद्र अथवा राजा इत्यादि। अक्षर यहां स्वर को कहते हैं, व्यञ्जनों में संख्या का नियम नहीं है।

अत्र विशेषः—'द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः अन्त्यलकार-रेफं वर्जयेदिति। आपस्तंबहिरण्यकेशिसूत्रे तु प्रातिपदिकादिधात्वन्तं यथा हिरण्यदा इति उपसर्गयुतं वा सुश्रीरित्यादीति विशेष उक्तः। तच्च व्यावहारिकं नाम शर्मपदान्तं देवपदान्तं वा ब्राह्मणस्य। वर्मेति राजेति वा पदयुतं क्षत्रियस्य। गुप्तदत्तान्यतरान्तं वैश्यस्य। दासान्तं शूद्रस्य कार्यम्।

इसमें विशेष यह है—प्रतिष्ठा की इच्छा वाले दो अक्षर का और ब्रह्म-तेज की कामना से चार अक्षर का नाम करे। अन्त में रेफ और लकार को वर्जित कर दे। आपस्तम्ब हिरण्यकेशीय सूत्रमें तो आदि में प्रातिपदिक और अन्तमें धातु, जैसे–हिरण्यदा अथवा उपसर्गयुक्त अथवा सुश्री इत्यादि विशेष कहा है। वह व्यावहारिक नाम ब्राह्मण का शर्मा पद या देव पद अन्त में हो। क्षत्रिय का नाम वर्मा अथवा राजा ऐसा पद अन्त में रहे। वैश्य का गुप्त या दत्त पद में से कोई एक अन्त में रहना चाहिये। शूद्र का नाम अन्त में दास पद वाला करना चाहिये।

अथ देवालयादीनां नामविचारः

व्यावहारिकं नाम प्रासादादीनामपि कार्यम्।

देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापि कूपयोः।
सर्वापणानां पण्यानां चिह्नानां योषितां नृणाम्॥
काव्यादीनां कवीनां च पश्वादीनां विशेषतः।
राजप्रासादयज्ञानां नामकर्म यथोदितम्॥

व्यावहारिक नाम धनिकों के मकान आदि का भी करना चाहिये। क्योंकि यह वचन है कि देवालय हाथी घोड़ा वृक्ष बावली कुआँ बाजार चिह्न स्त्री मनुष्य काव्य कवि विशेषतः पशु आदि का राजमहल और यज्ञों का यथोक्त नाम करना चाहिये।

अथ प्रयोगे विशेषः

गर्भाधानादिसंस्कारलोपे प्रत्येकं पादकृच्छ्रं बुद्धिपूर्वमकरणे प्रत्येकमर्धकृच्छ्रं प्रायश्चित्तं जातकर्मणः कालातिपत्तिनिमित्तकाज्यहोमपूर्वकं कार्यम्। तद्यथा—'जातकर्मणः कालातिपत्तिनिमित्तकदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रायश्चित्त-होमं करिष्ये' इति संकल्प्याग्निस्थापनेध्माधानादिपाकयज्ञतन्त्रसहितं वह्निस्था-पनाज्यसंस्कारपात्रसंस्कारमात्रसहितं वा ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहेति समस्तव्याहृत्याज्यहोमं कुर्यात्।

गर्भाधान आदि संस्कार के न होने पर प्रत्येक संस्कार के निमित्त पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त, जान बूझ के उक्त संस्कार न करने पर प्रत्येक के निमित्त अर्धकृच्छ्र प्रायश्चित्त और जातकर्म-संस्कार का समय बीत जाने पर उसके लिये घृत से होम करके नामकर्म करे। वह इस प्रकार करे—'जातकर्म का समय समाप्त हो जाने पर उससे उत्पन्न दोष के निवारणार्थ श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता की कामना से प्रायश्चित्त होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्निस्थापन समिधा का आधान आदि पाकयज्ञ तन्त्र-सहित अथवा अग्निस्थापन घृतसंस्कार-पात्रसंस्कारमात्र-सहित 'ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस सम्पूर्ण व्याहृति से घृत से होम करे।

---

१. आश्वलायनः—'द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा, द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामः, चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः। युग्मानि त्वेव पुंसामयुजानि स्त्रीणाम्' इति।

होमं समाप्य 'गर्भाधानपुंसवनानवलोभनसीमन्तोन्नयनलोपजनितदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् एतावतः पादकृच्छ्रान् बुद्धिपूर्वकलोपेऽर्धकृच्छ्रांस्तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये' इति संकल्प्य द्रव्यं दद्यात् ।

होम समाप्त कर 'गर्भाधान पुंसवन अनवलोभन सीमन्तोन्नयन के न होने से उत्पन्न दोष को दूर करने के निमित्त तथा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ इतने पादकृच्छ्र ज्ञानपूर्वक न करने पर इतने अर्ध कृच्छ्र, इन सबके बदले में यथाशक्ति गौ का मूल्य चान्दी के दान से आचरण करूँगा' ऐसा संकल्प कर द्रव्य का दान करे ।

जातकर्मनाम्नोः सहचिकीर्षायां पूर्वोक्तजातकर्मसंकल्पवाक्यमुच्चार्य 'अस्य कुमारस्यायुरभिवृद्धिव्यवहारसिद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं नामकर्म च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादि कुर्यात् । तत्र जातकर्मनामकर्मणोः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्त्वित्युक्त्वा अस्य कुमारस्य जातकर्मणे एतन्नाम्ने अस्मै च स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्विति स्वस्तिपर्याये वदेत् । तदनुसारेणैव विप्रप्रतिवचनम् । केवलनामचिकीर्षायां नामकर्मणः पुण्याहमित्युक्त्वा स्वस्तिपर्याये अमुकनाम्ने अस्मै स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्विति वदेत् । विप्राश्चामुकनाम्ने अस्मै स्वस्तीति प्रतिब्रूयुः ।

जातकर्म नामकर्म साथ करने की इच्छा हो तो पहिले कहे हुए जातकर्म के संकल्प का उच्चारण कर 'इस बालक के आयुवृद्धि के लिये बीजगर्भ से उत्पन्न पाप के निवारणार्थ श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ नामकर्म तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्वस्तिवाचन आदि करे । जातकर्म और नामकर्म में 'पुण्याहम्' ऐसा आप लोग कहें ऐसा कहकर इस कुमार के जातकर्म के लिये इस बालक के 'स्वस्ति' ऐसा आप लोग कहें । तदनुसार ब्राह्मण 'स्वस्ति' कहें । केवल नामकर्म करने की इच्छा हो तो नामकर्म का 'पुण्याहम्' ऐसा कह स्वस्ति के लिये अमुक नामवाले इस कुमार का 'स्वस्ति' ऐसा आप लोग कहें । ब्राह्मण लोग भी अमुक नामवाले इस बालक के लिये 'स्वस्ति' ऐसा कहें ।

लेखनादौ नामत्रयं शर्मादिपदरहितं कृत्वा व्यावहारिकं नाम शर्माद्यन्तं कुर्यात् । अभिवादने नाक्षत्रनामापि शर्माद्यन्तं सर्वत्रोच्चारणीयम् । अवशिष्टः प्रयोगः प्रयोगग्रन्थेषु ।

लिखने आदि में तीन प्रकार के नाम शर्मा आदि पद से रहित करके व्यावहारिक नाम के अन्त में शर्मा आदि कहे । अभिवादन में नाक्षत्र नाम के अन्त में शर्मा आदि सब जगह उच्चारण करे । बाकी प्रयोग प्रयोग-ग्रन्थों से जानना चाहिये ।

अथ स्त्रीणां नामकर्म

संकल्पे अस्याः कुमार्या इति विशेषः । स्वस्तिवाचने एतन्नाम्न्यै अस्यै स्वस्तीत्यादि । भक्त्याबन्तं देवतानाम मासनाम सुचक्रिणी वैकुण्ठी वासुदेवीति त्रीणि ङीबन्तानि हरिरित्यविकृतम् अवशिष्टानि अष्टावाबन्तानि रोहिणी कृत्तिकेत्येवं यथायथं नाक्षत्रनामेति मातृदत्तमते । आश्वलायनैर्नाक्षत्रनाम स्त्रीणां न

कार्यम्। व्यावहारिकं[1] यज्ञदा शर्मेति पुंवत्। पूजादिकं वैदिकमन्त्ररहितं पुंवत्कार्यम्। पितुरसन्निधौ स्त्रीपुंसयोर्नाम पितामहादिः कुर्यात्। इति नामकरणम्।

संकल्प में इस कुमारी का इतना विशेष है। स्वस्तिवाचन में इस नामवाली इसके लिये स्वस्ति इत्यादि कहे। भक्ता ऐसा टाप्प्रत्ययान्त, देवतानाम, मासनाम, सुचक्रिणी, वैकुण्ठी, वासुदेवी, ऐसा तीन नाम ङीप्प्रत्ययान्त, हरि ऐसा ङीप्टाप से रहित नाम, शेष आठ टाप्प्रत्ययान्त नाम, रोहिणी कृत्तिका इस प्रकार जैसे का तैसा नाक्षत्र नाम, यह मातृदत्त के मत में है। आश्वलायनों का मत है कि स्त्रियों का नाक्षत्रनाम नहीं करना चाहिये। व्यावहारिक नाम यज्ञदा शर्मा इस प्रकार पुरुषों के जैसा करे। पूजन आदि वैदिक-मन्त्रों से रहित पुरुष के सदृश करना चाहिये। पिता समीप में न रहें तो पुरुष या स्त्री का नामकर्म पितामह आदि करे।

अथान्दोलारोहणम्

आन्दोलाशयने पुंसो [2]द्वादशो दिवसः शुभः।
त्रयोदशस्तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा॥
अन्यस्मिन्दिवसे चेत्स्याच्छुभकालं विचारयेत्।

उत्तरात्रयरोहिणीहस्ताश्विनीपुष्यरेवत्यनूराधामृगचित्रापुनर्वसुश्रवणस्वातीनक्षत्रेषु शुभवारे रिक्तातिरिक्ततिथौ चन्द्रताराबले कुलयोषिद्भिरान्दोलाशयनं कार्यम्।

पालने के शयनमें पुरुषके लिये बारहवाँ दिन शुभ है। कन्याका तेरहवाँ दिन शुभ है। इसमें नक्षत्र का विचार नहीं करे। इसके अतिरिक्त दिन में शुभ समय का विचार करना चाहिये। तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण और स्वाती नक्षत्रों में रिक्तारहित तिथियों में तथा चन्द्रमा तारा के बल में अपने कुल की स्त्रियों द्वारा पालन में शयन कराना उत्तम है।

अथ दुग्धपानम्

[3]एकत्रिंशे दिने द्वितीयजन्मर्क्षे वा दोलारोहोक्तनक्षत्रैर्वा पूर्वाह्णमध्याह्नयोः कुलदेवताविप्रयोः पूजां विधाय शङ्खेन गोदुग्धं पाययेत्। इति दुग्धपानम्।

---

१. मनुः—'स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम्। मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्॥' इति। पारस्करगृह्यसूत्रे—'अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै तद्धितम्'। अस्य भाष्ये—'अयुजानि विषमाणि त्र्यादीन्यक्षराणि यस्मिन्नाम्नि तत्, आकारान्तम् आकारोऽन्ते यस्य तत्, तद्धितं तद्धितप्रत्ययान्तं च स्त्रियै स्त्रिया नाम कुर्यादित्यर्थः।

२. बृहस्पति ने दोलारोह या खट्वारोह का समय बतलाया—'दोलारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेऽपि वा। षोडशे दिवसे वापि द्वाविंशे दिवसेऽपि वा॥' गृह्यसूत्र के भाष्यादि में—'दोलारोहस्तु' के स्थान पर 'खट्वारोहस्तु' पाठान्तर है। कहीं इसे 'पर्यङ्कारोहण' नाम से समय का निर्देश किया है।

३. नृसिंहः—'एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शङ्खेन पाययेत्। अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयराशिषु॥' राहु से वर्जित दिशा की ओर शिशु का मुख करके दूध पिलावे। कौस्तुभ में राहु का विचार है—'इन्द्रे वायौ यमे रौद्रे तोयाग्निशशिराक्षसे। यामार्धमुदयाद् राहुर्भ्रमत्येवं दिगष्टके॥' इति। निर्णयसिन्धु आदि में चण्डेश्वर के वचनानुसार दुग्धपानानन्तर ताम्बूल-भक्षण कराने की विधि—'सार्धमासद्वये दद्यात्ताम्बूलं प्रथमं शिशोः। कर्पूरादिकसंयुक्तं विलासाय हिताय च॥' मुहूर्तः—'मूलार्कचित्रकरतिष्य-

एकतीसवें दिन या दूसरे जन्मनक्षत्र में अथवा पालने में कहे नक्षत्रों में पूर्वाह्ण या मध्याह्न में कुलदेवता और ब्राह्मण की पूजा कर शङ्ख से गाय का दूध पिलावे।

अथ जलपूजनम्

सूत्या मासोत्तरं बुधसोमगुरुवारेषु रिक्तान्यतिथौ श्रवणपुष्यपुनर्वसुमृगहस्तमूलानूराधानक्षत्रेषु जलस्थानं गत्वा जलपूजा कार्या। अत्र गुरुशुक्रास्तचैत्रपौषमासाधिमासा वर्ज्याः। इति जलपूजनम्।

प्रसूति को एक मास के अनन्तर बुध सोम और गुरुवार को तथा रिक्ता-भिन्न-तिथि में श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, मूल और अनुराधा नक्षत्रों में जलस्थान में जाकर जलपूजन करना चाहिये। इसमें गुरु शुक्र का अस्त पौषमास और मलमास वर्जित है।

अथ सूर्यावलोकननिष्क्रमणे

तृतीये मासि सूर्यावलोकनं[1] चतुर्थे मासि अन्नप्राशनकाले वा निष्क्रमणम्। तत्र कालः—

शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना।
रिक्ता षष्ठ्यष्टमी दर्शो द्वादशी च विवर्जिता॥

गुरुशुक्रबुधवाराः अश्विनीरोहिणीमृगपुष्योत्तरात्रयहस्तधनिष्ठाश्रवणरेवतीपुनर्वस्वनूराधानक्षत्राणि च शस्तानि। इदं निष्क्रमणं नित्यं काम्यम्। सूर्यावलोकननिष्क्रमणयोर्नान्दीश्राद्धं कृताकृतम्। इति सूर्यावलोकननिष्क्रमणे।

तीसरे मास में सूर्य का देखना चौथे महीने अथवा अन्नप्राशन के समय में निष्क्रमण (घर से बाहर निकालना) होता है। उसका समय—शुक्लपक्ष शुभ है। कृष्णपक्ष भी अन्त के तीन दिनों को छोड़कर शुभ है। रिक्ता तिथि, षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या और द्वादशी वर्जित है। बृहस्पति, शुक्र और बुधवार, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, तीनों उत्तरा, धनिष्ठा, श्रवण, रेवती, पुनर्वसु और अनुराधा नक्षत्र प्रशस्त है। यह निष्क्रमण-कर्म नित्य और काम्य है। सूर्यावलोकन और निष्क्रमण में नान्दीश्राद्ध करना न करना तुल्य है। सूर्यावलोकन और निष्क्रमण समाप्त।

अथ भूम्युपवेशनकालः

पञ्चममासे निष्क्रमोक्ततिथ्यादौ भौमबले सति [2]भूम्युपवेशनं कार्यम्। इति भूम्युपवेशनम्।

हरीन्द्रभेषु पौष्णे तथा मृगशिरोऽदितिवासवेषु। अर्केन्दुजीवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलभक्षणविधिर्मुनिभिः प्रदिष्टः॥' इति।

१. शिशु को तीसरे मास में सूर्य और चौथे में चन्द्र का दर्शन कराना चाहिये। यमः—'ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम्। चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम्॥' इति। ज्योतिर्निबन्ध में तीसरे या चौथे मास में निष्क्रमण का निर्देश किया है—'तृतीये वा चतुर्थे वा मासि निष्क्रमणं भवेत्।' व्यास ने मुहूर्त बतलाया है—'मैत्रे पुष्यपुनर्वसुप्रथमभे पौष्णेऽनुकूले विधौ हस्ते चैव सुरेश्वरे च मृगभे तारासु शस्तासु च। कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोर्बुधगुरौ शुक्रे विरिक्ते तिथौ कन्याकुम्भतुलामृगारिभवने सौम्यग्रहालोकिते॥' इति।

२. प्रयोगपारिजाते—'पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत्। तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौ-

पंचममास में निष्क्रमण की कही हुई तिथियों में मंगल के बल रहते भूम्युपवेशन करना चाहिये। भूम्युपवेशन समाप्त।

अथान्नप्राशनकालः

षष्ठेऽष्टमे दशमे द्वादशे वा मासे पूर्णे वत्सरे वा पुंसोऽन्नप्राशनम्[1]। पञ्चमसप्तमनवममासेषु स्त्रीणाम्।

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा।
त्रयोदशी च दशमी प्राशने तिथयः शुभाः॥

बुधशुक्रगुरुवाराः शुभाः, रविचन्द्रवारौ क्वचित्। अश्विनीरोहिणीमृगपुनर्वसुपुष्योत्तरात्रयहस्तचित्रास्वात्यनूराधाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवत्यः शुभाः। जन्मनक्षत्रमशुभमिति केचित्। भद्रावैधृतिव्यतीपातगण्डातिगण्डवज्रशूलपरिघा वर्ज्याः।

छठे आठवें दसवें या बारहवें महीने में या पूरे वर्ष भर पर पुरुष (शिशु) का अन्नप्राशन होता है। लड़कियों का अन्नप्राशन पाचवें, सातवें और नवें महीने में करना चाहिये। द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, त्रयोदशी और दशमी तिथि अन्नप्राशन में शुभ है। बुध, बृहस्पति और शुक्रवार शुभ है। कहीं रविवार और सोमवार भी कहा है। अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष और रेवती नक्षत्र शुभ हैं। कोई जन्म-नक्षत्र को अशुभ कहते हैं। भद्रा, वैधृति, व्यतीपात, गण्ड, अतिगण्ड, वज्र, शूल और परिघ योग वर्जनीय हैं।

विष्णुशिवचन्द्रार्कदिक्पालभूमिदिशाब्राह्मणान् संपूज्य मात्रुत्सङ्गगतस्य शिशोः काञ्चने कांस्ये वा पात्रे स्थितं दधिमधुघृतमिश्रं पायसं सुवर्णयुतहस्तेन समन्त्रं प्राशयेत्। सूर्यावलोकनादीन्यन्नप्राशनान्तानि अन्नप्राशनकाले शिष्टाः सहैवानुतिष्ठन्ति। एतेषां सहप्रयोगसंकल्पादिकं कौस्तुभादौ ज्ञातव्यम्।

मोऽप्यत्र विशेषतः॥ उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम्। प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम्॥' भूम्युपवेशनविधि अन्यत्र देखें।

१. नारदः—'जन्मतो मासि षष्ठे स्यात् सौरेणान्नाशनं परम्। तदभावेऽष्टमे मासि नवमे दशमेऽपि वा॥ द्वादशे वाऽपि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम्। संवत्सरे वा सम्पूर्णे केचिदिच्छन्ति पण्डिताः॥' लौगाक्षिः—'षष्ठेऽन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा'। ज्योतिर्निबन्धे—'षष्ठे वाऽप्यष्टमे मासि पुंसां, स्त्रीणां तु पञ्चमे। सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम्॥ रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीममाम्। त्यक्त्वाऽन्यतिथयः प्रोक्ताः सितजीवज्ञवासराः॥ चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना॥ श्रीधरः—'आदित्यतिष्यवसुसौम्यकरानिलाश्विचित्राजविष्णुवरुणोत्तरपौष्णमित्राः। बालान्नभोजनविधौ दशमे विशुद्धौ छिद्रां विहाय नवमीं तिथयः शुभाः स्युः॥'

मार्कण्डेयः—'ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं चन्द्रार्कौ च दिगीश्वरान्। भुवं दिशश्च सम्पूज्य हुत्वा वह्नौ तथा चरुम्॥ देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्सङ्गगतस्य च। अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे सकाञ्चनम्॥ मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत् पायसं तु वा।' प्राशनमन्त्रः—'अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥' इति।

विष्णु, शिव, चन्द्रमा, सूर्य, दिक्पाल, भूमि, दिशा और ब्राह्मणों का पूजन करके माता के गोद में बैठे हुए बालक को सोने या कांसे के पात्र में रखा हुआ दही मधु-घी-मिलित पायस सुवर्णयुक्त हाथ से मन्त्र के साथ बालक को चटावे। कुछ शिष्ट सूर्यावलोकन से अन्नप्राशन पर्यन्त संस्कार अन्नप्राशन के समय में साथ ही कहते हैं। इन सबके सह-प्रयोग का संकल्पादि कौस्तुभादि से जानें।

अथ बालस्य जीविकापरीक्षा

अथान्नप्राशनान्ते कर्तव्यम्—

अग्रतोऽथ परिन्यस्य शिल्पवस्तूनि सर्वशः।
शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम्॥
प्रथमं यत्स्पृशेद्बालः पुस्तकादि स्वयं तदा।
जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति॥

अन्नप्राशनान्तसंस्कारेषु मलमासगुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्ति इत्युक्तं तच्छुद्धकालेष्वसंभवे ज्ञेयम्। तेन षष्ठादिमासे अस्तादिदोषसत्त्वेऽष्टमादिमासे कार्यम्। इति अन्नप्राशनम्।

बालक के आगे शिल्प-वस्तुओं और शस्त्र तथा वस्त्र को रख कर उसका लक्षण देखे। पुस्तक आदि में से बालक स्वयं पहिले जिस वस्तु का स्पर्श करे उसी से बालक की जीविका होगी, ऐसा जानना चाहिये। अन्नप्राशन पर्यन्त संस्कारों में मलमास-गुर्वस्त और शुक्रास्त दोष नहीं होता, यह कह चुके हैं। इसे शुद्ध-काल के न मिलने पर जानना चाहिये। इससे छठे आदि मासमें अस्त आदि के दोष रहते आठवें आदि महीनों में करे। अन्नप्राशन समाप्त।

अथ कर्णवेधः

दशमे द्वादशे वाऽह्नि षोडशे कर्णवेधनम्।
मासे षष्ठे सप्तमे वा अष्टमे दशमेपि वा॥
द्वादशे वा ततोऽब्दे च प्रथमे वा तृतीयके।
न कर्तव्यं समे वर्षे स्त्रीपुंसश्रुतिवेधनम्॥

तृतीयादिवत्सरे मासाः—

कार्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेपि वा।
शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तो जन्ममासो निषेधितः॥

दसवें, बारहवें या सोलहवें दिन अथवा छठे, सातवें या आठवें दसवें और बारहवें महीने में कर्णवेध करे। तदनन्तर पहिले और तीसरे वर्ष में कर्णवेध शुभ है। लड़की और लड़के का कर्णवेध सम वर्ष में नहीं करना चाहिये। तीसरे आदि वर्ष में कार्तिक, पौष अथवा चैत्र या फाल्गुन में भी करे। इनमें शुक्लपक्ष शुभ कहा है। जन्ममास का निषेध किया है।

भद्रायां विष्णुशयने कर्णवेधं विवर्जयेत्।

तेन कार्तिकमासविधिः शुक्लद्वादश्युत्तरं ज्ञेयः। केचिन्मीनस्थसूर्ये चैत्रं धनुःस्थे पौषं मासं वर्जयन्ति।

द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी।
द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने॥

चन्द्रबुधगुरुशुक्रवाराः [1]पुष्यपुनर्वसुमृगोत्तरात्रयहस्तचित्राश्विनीश्रवणरेवतीधनिष्ठाः शुभाः। विष्णुरुद्रब्रह्मसूर्यचन्द्रदिक्पालनासत्यसरस्वतीगोब्राह्मणगुरुपूजां कृत्वालक्तकरसाङ्कितं कर्णं पुंसः पूर्वं दक्षिणं विध्येत् पश्चाद्वामम्। स्त्रीणां पूर्वं वामम्।

सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः।
शूद्रस्य चायसी सूची बालकाष्टाङ्गुला मता॥
कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया [2]प्रविशेद्वर्धयेत्तथा।
अन्यथा दर्शने तस्य पूर्वपुण्यविनाशनम्॥ इति कर्णवेधः।

भद्रा और हरिशयन में कर्णवेध न करे। इससे कार्तिकमास को भी शुक्लद्वादशी के बाद जानना चाहिये। कुछ लोग मीन के सूर्य में चैत्र और धनु के सूर्य में पौष को भी वर्जित करते हैं। द्वितीया, दशमी, षष्ठी, सप्तमी, त्रयोदशी, द्वादशी, पंचमी और तृतीया तिथि कर्णवेध में प्रशस्त है। चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्रवार, तथा पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, अश्विनी, श्रवण, रेवती और धनिष्ठा नक्षत्र उत्तम है। विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा, दिक्पाल, अश्विनीकुमार, सरस्वती, गौ, ब्राह्मण और गुरु की पूजा करके महावर से कान को चिह्नित कर लड़के का पहिले दाहिना पीछे बायां और लड़कियों का पहिले बायां पीछे दाहिना कान छेदे। क्षत्रियबालक का कान सोने की आठ अंगुल की सूई से, ब्राह्मण और वैश्य बालक का उसी प्रमाण की चांदी की सूई से और शूद्र के बालक का आठ अंगुल के लोहे की सूई से छेदे। कान के छेद में सूर्य की छाया जितने में प्रवेश करे उतना बढ़ावे नहीं तो उसे देखने में पूर्व पुण्य का विनाश होता है। कर्णवेध समाप्त।

अथ बालस्य दृष्टिदोषादौ रक्षाविधिः

वासुदेवो जगन्नाथः पूतनातर्जनो हरिः।
रक्षतु त्वरितो बालं मुञ्च मुञ्च कुमारकम्॥
कृष्ण रक्ष शिशुं शङ्खमधुकैटभमर्दन।
प्रातःसङ्गवमध्याह्नसायाह्नेषु च संध्ययोः॥
महानिशि सदा रक्ष कंसारिष्टनिषूदन।
पद्गोरगपिशाचांश्च ग्रहान्मातृग्रहानपि॥
बालग्रहान् विशेषेण छिन्धि छिन्धि महाभयान्।
त्राहि त्राहि हरे नित्यं त्वद्रक्षाभूषितं शिशुम्॥

---

१. श्रीधरः—'हरिद्वयकरचित्रासौम्यपौष्णोत्तरार्यादितिवसुषु घटालीसिंहवर्ज्ये सुलग्ने। शशिगुरुबुधकाव्यानां दिने पर्वरिक्तारहिततिथिषु शुद्धे नैधने कर्णवेधः॥' कर्णवेधस्य संक्षिप्तविधिः—विहितसमये पूर्वाह्णे कुमारं स्नापयित्वा देशकालौ स्मृत्वा अस्य शिशोः कुमारस्य वा कर्णवेधं करिष्ये इति संकल्प्य प्रत्यङ्मुखोपविष्टाय कुमारस्य हस्ते मधुरं दत्त्वा भद्रं कर्णेभिरिति मन्त्रेण दक्षिणं, वक्ष्यन्ती वेदेति मन्त्रेण वामं च कर्णं यथास्थानं भिन्द्यात्। ततो ब्राह्मणभोजनम्।

२. विष्णुधर्मोक्ति के अनुसार कुण्डलादि आभरण-धारण के उपयुक्त छिद्रवर्धन करना चाहिये—'शिशोर्विवर्धनं कार्यं यावदाभरणक्षमम्' इति।

इति भस्माभिमन्त्र्यैव भूषयेत्तेन भस्मना।
शिरोल्लाटाद्यङ्गेषु रक्षां कुर्याद्यथाविधि ॥ इति।

वासुदेव जगन्नाथ पूतना को तर्जन करनेवाले हरि ! बालक की शीघ्र ही रक्षा करें। इस कुमार छोड़ें छोड़ें। शंखासुर और मधुकैटभ के मर्दन करने वाले भगवान् कृष्ण इस बालक की रक्षा करें। कंस और अरिष्टासुर के मारने वाले हे भगवन् ! प्रातः, संगव, मध्याह्न, सायाह्न, दोनों सन्ध्या एवं आधी रात में सदा रक्षा कीजिये। पादगामी सर्पादि, पिशाच, ग्रह, मातृग्रह और महाभयानक बालग्रहों को छेदन करें। हे हरे ! आपकी रक्षा से भूषित जो यह बालक है इसकी आप रक्षा करें। इस आशय के मन्त्र से भस्म को अभिमन्त्रित कर उस भस्म से सिर और ललाट आदि अंगों को भूषित कर यथाविधि रक्षा करे।

प्रयोगसागरे—

रक्ष रक्ष महादेव नीलग्रीव जटाधर।
ग्रहैस्तु सहितो रक्ष मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ॥

अमुं मन्त्रं भूर्जपत्रे विलिख्य तत्पत्रं भुजे बध्नीयात्।

प्रयोगसागर में लिखा है कि हे नीलकण्ठ जटाधारी महादेव ! ग्रहों के सहित इस बालक की रक्षा करें और छोड़ दें। इस आशय के मन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर उस पत्र को हाथ में बांध दे।

बालरोदनपरिहारार्थं यन्त्रमुक्तं मयूखे षडस्रमध्ये ह्रींकारस्तन्मध्ये शिशोर्नाम विलिख्य षट्कोणेषु ॐलुलुवस्वाहेति मन्त्रषडक्षराणि विलिख्य तद्बहिर्नेमिवद् वृत्तद्वयं विलिख्य तद्बहिरधोमुखैरर्धचन्द्रैरावेष्ट्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य बालहस्ते बध्नीयादिति। बालग्रहशान्त्यादिकं बालग्रहस्तवश्च शान्तिकमलाकर-शान्तिमयूखयोर्द्रष्टव्यम्।

बालक का रोदन हटाने के लिये मयूख में यंत्र कहा है। षट्कोण के बीच में 'ह्रीं' लिखे उसके बीच में बच्चे का नाम लिखकर कोणों में ॐ लुलुवस्वाहा इस मंत्र के छवों अक्षरों को लिखकर उसके बाहर बाहर नेमी की तरह दो गोल बनाकर उसके बाहर नीचे मुखवाले अर्धचन्द्रों से घेर कर उसकी पंचोपचार से पूजा कर बालक के हाथ में बांध दे। बालककी ग्रहशान्ति आदि और बालग्रहस्तव, शान्तिकमलाकर तथा शान्तिमयूख में देखें।

अथ वर्धापनविधिः

स च वर्षपर्यन्तं प्रतिमासं जन्मतिथौ कार्यः। वर्षोत्तरं प्रत्यब्दं [1]जन्मतिथौ कार्यः। तिथिद्वैधे यत्र जन्मर्क्षयोगः सा ग्राह्या। दिनद्वये जन्मनक्षत्रयोगसत्त्वयोरौदयिकी द्विमुहूर्ताधिका ग्राह्या। द्विमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा। जन्ममासस्य अधिमासत्वे शुद्धमासे प्रत्याब्दिकवर्धापनविधिर्न त्वधिके[2]।

---

१. संस्कारप्रकाश में ब्रह्मपुराण का वचन है—'सर्वैः स्वजन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलवारिभिः। गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः।' यहां जन्मदिवसशब्द से जन्मतिथि ग्राह्य है। दो दिन जन्मतिथि पड़ने पर देवीपुराण में बतलाया—'घस्रद्वये जन्मतिथिर्यदि स्यात् कुर्यात्तदा जन्मभसंयुतां च। असङ्गता तेन दिनद्वयेऽपि पूज्या परा या भवतीह यत्नात् ॥' इति।

२. मलमासस्य शुभकर्मानर्हत्वात्। तत्र यदि अधिकशुक्ले जन्म तदा न संशयः, शुक्लस्य गौणमुख्यचान्द्रयोरेकत्वात्। यदि अधिककृष्णे जन्म यथा वैशाखस्य आधिक्ये अधिकवैशाखकृष्णे जन्म

वर्धापनविधि जन्म से एक वर्ष तक प्रत्येक मास के जन्म-तिथि में करे। एक वर्ष के बाद प्रतिवर्ष जन्म-तिथि में करे। यदि दो तिथि हों तो जिसमें जन्म-तिथि और नक्षत्र का योग हो वही ग्राह्य है। दो दिन जन्म-तिथि और नक्षत्र के रहने और न रहने में, उदयकालीन दो मुहूर्त्त से अधिक रहने वाली जन्म-तिथि ग्राह्य है। दो मुहूर्त्त से कम होने पर पूर्वा लेनी चाहिये। जन्ममास के अधिमास होने पर शुद्ध मास में प्रतिवार्षिक वर्धापन-विधि करे, न कि अधिमास में।

अथ संक्षेपतः प्रयोगः

'आयुरभिवृद्ध्यर्थं वर्षवृद्धिकर्म करिष्ये' इति संकल्प्य तिलोद्वर्तनपूर्वकं तिलोदकेन स्नात्वा कृततिलकादिविधिर्गुरुं संपूज्याक्षतपुञ्जेषु देवताः पूजयेत्। तत्रादौ कुलदेवतायै नम इति कुलदेवतामावाह्य जन्मनक्षत्रं पितरौ प्रजापतिं भानुं विघ्नेशं मार्कण्डेयं व्यासं जामदग्न्यं रामम् अश्वत्थामानं कृपं बलिं प्रह्लादं हनूमन्तं विभीषणं षष्ठीं च नाम्नैवावाह्य पूजयेत्। षष्ठ्यै दधिभक्तनैवेद्यः। पूजान्ते प्रार्थना—

'आयुष्य की अभिवृद्धि के लिये वर्ष-विधि-कर्म करूँगा' ऐसा संकल्प करके तिल का उबटन लगाकर तिल जल से स्नान कर एवं तिलक आदि विधि करके गुरु का सम्यक् अर्चन कर अक्षत पुंज पर देवताओं का पूजन करे। उस अक्षत-पुंज पर पहले 'कुलदेवतायै नमः' इससे कुलदेवता का आवाहन कर जन्मनक्षत्र, पिता, माता, प्रजापति, सूर्य, गणेश, मार्कण्डेय, व्यास, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बलि; प्रह्लाद, हनुमान, विभीषण और षष्ठी देवी का नाम ही से आवाहन करके पूजन करे। षष्ठी देवी का नैवेद्य दही भात है। पूजा के अन्त में इस तरह प्रार्थना करे—

चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने।
रूपवान्वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा॥
मार्कण्डेय नमस्तेस्तु सप्तकल्पान्तजीवन।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन् मुने॥
चिरंजीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवरो द्विज।
कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम्॥
मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव॥ अथ षष्ठीप्रार्थना—

हे मार्कण्डेय मुने! जैसे आप चिरंजीवी हो वैसे मैं भी होऊँ। मैं सर्वदा सुन्दर रूप धन और लक्ष्मी से युक्त रहूं। सात कल्प पर्यन्त जीने वाले मार्कण्डेय जी आप को नमस्कार है। हे मुने! हे भगवन्! आयु और आरोग्य सिद्धि के लिये मुझपर आप प्रसन्न हों। जैसे मुनियों में श्रेष्ठ आप चिरंजीवी हैं, हे मुनिसिंह! वैसे मुझे भी चिरजीवी करें। सात कल्प तक जीने वाले हे मार्कण्डेय महाभाग! आयु और आरोग्य की सिद्धि के लिये आप हमें वर दें। पश्चात् षष्ठी की प्रार्थना करे—

तदा तस्याब्दिपूर्तिकृत्यं प्रतिवर्षं किं गौणचान्द्रवैशाखकृष्णे अर्थात् चैत्रपूर्णिमोत्तरकृष्णपक्षीयतिथौ कार्यम्?, अथवा मुख्यचान्द्रवैशाखकृष्णे अर्थात् वैशाखपूर्णिमोत्तरकृष्णपक्षीयतिथौ कार्यम्? इति संशये मुख्यचान्द्रवैशाखकृष्णपक्षीयतिथावेव कार्यमिति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः। विस्तरस्तु कृष्णभट्टकृतायां निर्णयसिन्धुटीकायां श्राद्धप्रकरणान्तर्गते आब्दिकश्राद्धप्रकरणे, वाचस्पतिमिश्रकृते द्वैतनिर्णये, नरहरिमिश्रकृते द्वैतनिर्णये, विनायकशास्त्र्यादिकृते चैत्रादिमासनिर्णये च द्रष्टव्यः।

जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि ।
प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठिदेवते ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥

ततस्तिलगुडमिश्रं पयः पिबेत् । तत्र मन्त्रः —

सतिलं गुडसंमिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः ।
मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये ॥

हे षष्ठी-देवि ! जगत् की माता जगत् को आनन्द देने वाली हमारा कल्याण करने वाली आप को नमस्कार है । आप मुझपर प्रसन्न हों तीनों लोक में जो चर अचर जीव हैं वे ब्रह्मा विष्णु और शिव के साथ मेरी रक्षा करें । तदनन्तर तिल गुड़ मिला हुआ दूध पीये । उसके मन्त्र का आशय यह है—तिल गुड़ मिला हुआ आधी अंजुली दूध को मार्कण्डेय जी से वर पाकर मैं अपनी आयु-वृद्धि के लिये पीता हूँ ।

क्वचित्पूजितषोडशदेवताभ्यो नाम्ना प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्यतिलहोम उक्तः । ततोः विप्रभोजनम् । तद्दिने नियमाः —

खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वागमौ तथा ।
आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥
मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।
अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥

कहीं पर पूजे हुए सोलह देवताओं के नाम से प्रत्येक के लिये अट्ठाइस अट्ठाइस तिल का होम कहा है । इसके बाद ब्राह्मणभोजन करावे । जन्म-दिन के नियम ये हैं—नख केशों का कर्तन, मैथुन, रास्ता चलना, मांस, झगड़ा और हिंसा जन्मदिन में छोड़ दे । मरण, जन्म, संक्रान्ति, श्राद्ध तथा जन्मदिन में और अस्पृश्य के स्पर्श करने में गर्म जल से स्नान करे ।

अथ चूडाकरणम्

जन्मतो गर्भतो वाऽब्दे प्रथमेऽथ द्वितीयके ।
तृतीये पञ्चमे वापि चौलकर्म[1] शस्यते ॥
यद्वा सहोपनीत्यात्र कुलाचाराद्व्यवस्थितिः ।
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठे मासि शुभं स्मृतम् ॥

---

१. प्रयोगपारिजातादि अनेक निबन्ध-ग्रन्थों में चूडाकरण संस्कार करने के लिये प्रथमवर्षादि उपनयन पर्यन्त कई वैकल्पिक काल का निर्देश है —'जाताधिकाराज्जन्मादितृतीयेऽब्दे तु चौलकम् । आद्येऽब्दे कुर्वते केचित् पञ्चमेऽब्दे द्वितीयके ॥ उपनीत्या सहैवेति विकल्पाः कुलधर्मतः ॥' नारद ने उत्तम मध्यम भेद से इस वैकल्पिककाल की व्यवस्था की है—'जन्मतस्तु तृतीयेऽब्दे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः । पञ्चमे सप्तमे वाऽपि जन्मतो मध्यमं भवेत् ॥ अधमं गर्भतः स्यात्तु नवमैकादशेऽपि वा ।' इति ।

फिर भी स्वकुलाचारानुसार जिसके कुल में जिस विकल्प-पक्ष का आश्रयण कर जिस काल में चूडाकरण-संस्कार होता है तदनुसार ही उसे उस काल में करना चाहिये ।

जन्ममासेऽधिमासे न ज्येष्ठ ज्येष्ठस्य नो भवेत् ।
शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना ॥
द्वितीयाथ तृतीया च पञ्चमी सप्तमी शुभा ।
दशम्येकादशी वापि त्रयोदश्यपि शस्यते ॥
रविभौमार्किशनयो वारा विप्रादिवर्णतः ।
गुरुशुक्रबुधाः शुक्ले सोमः सर्वशुभावहः ॥

अश्विनीमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तचित्रास्वातीज्येष्ठाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवत्यः शुभाः ।

क्षौरप्रयाणभैषज्ये जन्मर्क्षं वर्जयेत्सदा ।
[१]आयुःक्षयोनूराधाग्नित्र्युत्तरारोहिणीमघे ॥

जन्म से या गर्भ से पहिले, दूसरे, तीसरे और पाचवें में भी चौलकर्म प्रशस्त है । अथवा उपनयन के साथ, इसमें कुलाचार से व्यवस्था है । माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ मास में चौल शुभ है । जन्ममास और अधिमास में नहीं होता है और ज्येष्ठ बालक का ज्येष्ठमास में नहीं होता । शुक्लपक्ष शुभ है और अन्त का त्रिक (एकादशी से अमावास्या पर्यन्त) छोड़कर कृष्णपक्ष भी शुभप्रद है । तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी भी प्रशस्त है। ब्राह्मण का चौल रविवार को क्षत्रिय का मंगल को और वैश्य का शनिवार को करे । शुक्लपक्ष में गुरु-शुक्र-बुधवार और सोमवार भी शुभदायक है । नक्षत्रों में अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती शुभ है । क्षौर, यात्रा और औषधि सेवन में जन्मनक्षत्र का सदा परित्याग करे । अनुराधा, कृत्तिका, तीनों उत्तरा, रोहिणी और मघा में चौल से आयु का क्षय होता है ।

अथ सिंहस्थे गुरौ चौलादिनिषेधः

सिंहस्थे गुरौ चौलादिशुभकर्म न कार्यम् ।

सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् ।
पञ्चमाब्दात्प्रागूर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥
सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते ।

पृथक् चूडाकर्म पृथगुपनयनं च मातरि गर्भिण्यां न कार्यम् । उभयोः सहानुष्ठाने तु न दोषः । गर्भिण्यामपि पञ्चममासपर्यन्तं न दोषः । 'पञ्चममासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत्' इत्युक्तेः । ज्वरितस्य चौलादिमङ्गलं न कार्यम् ।

विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला ।
तस्याः शुद्धेः परं कार्यं मङ्गलं मनुरब्रवीत् ॥

---

१. ज्यौतिषे--'क्षौरकर्म न कदाचिदाचरेद्धातृमित्रपितृभार्यभाग्निभिः । नागरामशरवेदषण्मितावृत्तिभिस्तु मृतिरेकहायने ॥' अर्थात् रोहिणी अनुराधा मघा उत्तरा और कृत्तिका नक्षत्रों में क्षौरकर्म न करे, क्योंकि रोहिण्यादि इन नक्षत्रों में एक वर्ष में क्रमशः आठ तीन पांच चार और छ वार क्षौर कर्म की आवृत्ति से मरण होता है ।

सिंहस्थ गुरु में चौलादि शुभकर्म नहीं करे। बच्चे की मां गर्भिणी हो तो उसका चूड़ाकर्म न करावे। पांच वर्ष से अधिक का बालक हो तो माता के गर्भिणी रहने पर भी चौल कर्म करे। उपनयन के साथ यदि करे तो कोई दोष नहीं है। माता के गर्भावस्था में चूड़ाकर्म और उपनयन अलग अलग करना हो तो नहीं करे। दोनों एक साथ किये जायँ तो कोई दोष नहीं है। पांच महीने तक को गर्भ वाली माता के पुत्र का चौल में दोष नहीं है, क्योंकि ऐसा कहा है कि पांचवें महीने के पहिले करे, पांचवें महीने के बाद न करे। जिसको ज्वर हो उसका चौल आदि मंगल-कृत्य नहीं करे। यदि माता विवाह उपनयन और चूड़ा में रजस्वला होती है तब शुद्धि के बाद मंगल कार्य करे, ऐसा मनु कहते हैं।

नान्दीश्राद्धोत्तरं रजस्वलायां शान्तिं कृत्वा कार्यम्। केचित्तु मुहूर्तान्तराभावे प्रारम्भात्प्रागपि रजोदोषे श्रीपूजनादिविधिना शान्तिं कृत्वा कार्यमित्याहुः। मातुलपितृव्यादौ कर्तरि तत्पत्न्यां रजस्वलायामपि मङ्गलं नेति सिन्धुः। त्रिपुरुषात्मककुले षण्मासमध्ये मौञ्जीविवाहरूपमङ्गलोत्तरं मुण्डनाख्यं चूडाकर्मादि न कार्यम्। संकटे तु अब्दभेदे कार्यम्। चतुःपुरुषपर्यन्तं कुले सपिण्डीकरणमासिकश्राद्धान्तप्रेतकर्मसमाप्तेः प्राक् चूडाकर्मादिकमाभ्युदयिकं कर्म न कार्यम्।

एकमातृजयोरेकवत्सरेऽपत्ययोर्द्वयोः।
न संस्कारः समानः स्यान्मातृभेदे विधीयते॥

नान्दीश्राद्ध के बाद रजस्वला होने पर तो शान्ति करके करे। कुछ लोग तो दूसरे मुहूर्त के न होने पर प्रारम्भ से पहिले भी रजोदोष में श्रीपूजन आदि विधि से शान्ति करके मंगल-कार्य करे, ऐसा कहते हैं। मामा और चाचा आदि के कर्ता होने पर उनकी पत्नी के रजस्वला होने पर भी मंगल-कार्य नहीं करे, ऐसा सिन्धुकार का मत है। तीन पुश्त के भीतर कुल में छ महीने के भीतर उपनयन विवाह-रूप-मंगल के बाद मुण्डन नामक चूड़ाकर्म आदि न करे। संकट में तो वर्ष के भेद से करे। चार पुरुष पर्यन्त कुल में सपिण्डीकरण-मासिक श्राद्धान्त-प्रेतकर्म की समाप्ति के पहिले चूड़ाकर्म आदि आभ्युदयिक कर्म न करे। एक माता से उत्पन्न सहोदर दो संतानों का एक वर्ष में समान संस्कार न करे। माता के भेद से करे।

अथ प्रारम्भोत्तरं चौलादिनिर्णयः

प्रारम्भोत्तरं सूतकप्राप्तौ कूष्माण्डीभिर्ऋग्भिर्घृतं हुत्वा गां दत्त्वा चूडोपनयनोद्वाहादिकमाचरेत्। अत्र विशेषो विवाहप्रकरणे वक्ष्यते।

आरंभ करने के बाद सूतक लग जाने पर कूष्माण्डी ऋचाओं से घृत से होम तथा गोदान करके चौल, उपनयन और विवाहादिक करे। इसमें विशेष विवाह-प्रकरण में कहेंगे।

अथ शिखास्थापनविचारः

मध्ये मुख्या एका शिखा अन्याश्च पार्श्वादिभागेष्विति [1]यथाकुलाचारं प्रवरसंख्यया शिखाश्चूडासमये कार्याः। उपनयनकाले मध्यशिखेतरशिखानां

१. शिखा के स्थापन या उसके मुण्डन सम्बन्धी कुलाचार की व्यवस्था लौगाक्षिने गोत्र या शाखा के अनुसार स्वयं की है—'दक्षिणतः कम्बुजवसिष्ठानाम्, उभयतोऽत्रिकश्यपानां, मुण्डा भृगवः,

वपनं कृत्वा मध्यभागे एवोपनयनोत्तरं शिखा धार्या । चौलकर्मणि जातकर्मणि च भोजने सांतपनकृच्छ्रं प्रायश्चित्तम्। अन्येषु संस्कारेषु उपवासेन शुद्धिः।

बीच में मुख्य एक शिखा और अन्य शिखायें पार्श्व आदि भागों में रखे। कुलाचार के अनुसार प्रवर की संख्या से चूड़ा के समय में शिखा रखनी चाहिये। उपनयन के समय बीच की शिखा को छोड़कर अन्य शिखाओं का वपन करके मध्य भाग में ही उपनयन के अनन्तर शिखा-धारण करना चाहिये। चौलकर्म और जातकर्म में भी भोजन करने पर सान्तपनकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे। अन्य संस्कारों में भोजन करने पर उपवास से शुद्धि होती है।

अथ स्त्रीशूद्राणाममन्त्रकं चूडान्तं कर्म

चूडान्ताः सर्वे संस्काराः स्त्रीणाममन्त्रकाः कार्याः, होमस्तु समन्त्रकः। होमोऽप्यमन्त्रकः कार्यो न वा कार्य इति वृत्तिकृदादिमतम्। एवं शूद्रस्याप्यमन्त्रकं चौलम्। इदानीं शिष्टेषु स्त्रीणां चूडादिसंस्कारकरणं न दृश्यते। विवाहकाले चूडादि-लोपप्रायश्चित्तमात्रं कुर्वन्ति।

चूड़ापर्यन्त सभी संस्कार कन्याओं का मन्त्ररहित करे। होम तो मन्त्रसहित करना चाहिये। वृत्तिकार आदि का मत है कि होम भी मन्त्ररहित करे या न करे। इसी प्रकार शूद्र का भी मन्त्ररहित चौल होता है। इस समय शिष्टों के यहाँ कन्यायों का चूड़ा आदि संस्कार करना नहीं देखा जाता है। वे लोग विवाह के समय चूड़ा आदि के लोप का केवल प्रायश्चित्त कर देते हैं।

पञ्च चूडा आङ्गिरसः, वाजसनेयिनामेका मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्ये।' इति। कारिका—'कम्बुजानां वसिष्ठानां दक्षिणे कारयेच्छिखाम्। द्विभागेऽत्रिकश्यपानां मुण्डाश्च भृगवो मताः॥ पञ्च चूडा अङ्गिरस एका वाजसनेयिनाम्। मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्य उक्ता चूडाविधिः क्रमात्॥' इन वचनों से भृगुगोत्र वाले का ही शिखासहित सर्व मुण्डन विहित है। भृगुगोत्र से भिन्न गोत्र वाले का शिखासहित सर्वमुण्डन अविहित है।

यह चूडाकरण शिखास्थापन का कर्म है। आपस्तम्बगृह्यसूत्रे—'यथर्षि शिखा निदधाति'। पारस्करगृह्यसूत्रे—'यथामङ्गलं केशशेषकरणम्'। इसके हरिहरगदाधरादिभाष्य में लिखा—'केशानां शेषकरणं शिखास्थापनं यथाकुलाचारव्यवस्थापनम्' 'केशानां शेषकरणं शिखारक्षणं स्थापनं कर्तव्यम्' 'वपनं केशशेषरक्षणं करोति' 'यथामङ्गलं शिखास्थापनं नापितः करोति'। इन प्रमाणों से शिखा का स्थापन रक्षण ही शास्त्रसम्मत है, शिखा का समूलोन्मूलन वपन शास्त्रविरुद्ध है।

शिखा के विना अनुष्ठित सभी श्रौत-स्मार्त-कर्म विफल हो जाते हैं, जैसा लिखा है—'सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च। विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥' इति।

यह शिखाकर्म केवल स्मार्त ही कर्म नहीं किन्तु श्रुतिप्रतिपादित-श्रेयःसम्पादन के लिये शिखा का धारण आवश्यक है—'यशसे श्रियै शिखा'। शुक्लयजुर्वेद के—'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इस मन्त्र से भी शिखा की सत्ता प्रतिपादित होती है।

यहाँ भाष्यकारों के अनुसार 'विशिखा विविधशिखा विकीर्णशिखा वा' इस व्याख्या के अनुसार विशिख शब्द का शिखारहित अर्थ नहीं है।

संग्रह में शिखा के सर्ववपन का नहीं बल्कि अग्रभाग का ही छेदन कहा है—'उन्दनं केशमूले तु केशमध्ये विनीयनम्। छेदनं चैव केशाग्रे पाराशरवचो यथा॥' स्मृतियों में शिखाछेदन करने पर प्रायश्चित्त कहा है—'शिखां छिन्दन्ति ये मोहाद् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा। तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति त्रयो

अथ चौलोत्तरं निषिद्धानि

चौलोत्तरं मासत्रयपर्यन्तं सपिण्डैः पिण्डदानं तिलतर्पणं च न कार्यम्। महालये गयायां पित्रोः प्रत्यब्दश्राद्धे च पिण्डदानादि कार्यम्।

चूड़ाकरण के बाद तीन महीने तक सपिण्डों द्वारा पिण्डदान एवं तिलतर्पण भी नहीं करे। महालय और गया में तथा माता पिता के वार्षिक श्राद्ध में पिण्डदान करना चाहिये।

अथ विद्यारम्भः

पञ्चमे वर्षे [1]अक्षरलेखनारम्भ उत्तरायणे कार्यः। अत्र कुम्भस्थः सूर्यो वर्ज्यः। शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना। द्वितीयातृतीयापञ्चमीदशम्येकादशीद्वादशीत्रयोदश्यः श्रेष्ठाः। अश्विनीमृगार्द्रापुनर्वसुपुष्यहस्तचित्रास्वात्यनूराधाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवत्यो भौमशनिभिन्नवाराश्च शुभाः।

पांचवें वर्ष में अक्षर लिखने का आरंभ कुम्भस्थ सूर्य को छोड़कर उत्तरायण में करना चाहिये। शुक्लपक्ष श्रेष्ठ है, कृष्णपक्ष भी अन्त के त्रिक को छोड़कर उत्तम है। द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी तिथियां श्रेष्ठ हैं। अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष और रेवती नक्षत्र तथा मंगल, शनि से भिन्नवार भी शुभ हैं।

विघ्नेशं लक्ष्मीनारायणौ सरस्वतीं स्ववेदं सूत्रकारं च पूजयित्वा गुरुं ब्राह्मणान् धात्रीं च संपूज्य नत्वा सर्वांस्त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणवपूर्वकमक्षरमारभेत्। ततो गुरुं नत्वा देवता विसर्जयेत्। ततः अत्र भुवनमातः सर्ववाङ्मयरूपेणागच्छागच्छेति सरस्वत्यावाहनमन्त्रः। प्रणवेन षोडशोपचारार्पणम्।

गणेश, विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती, अपनावेद और सूत्रकार का पूजन करके गुरु, ब्राह्मण और

वर्णा द्विजातयः ॥' और सशिखवपन से शिखानाश होने पर काठकगृह्य में—'अथ चेत्प्रमादान्निःशिखं शिखां ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितां दक्षिणकर्णोपर्याशिखाबन्धाद्धत्तिष्ठेत्' इस प्रकार शिखा का प्रतिनिधि विधान से चौलप्रभृति यावज्जीवन शिखाधारण करना चाहिये, उसका सर्ववपन द्वारा समूलोन्मूलन वेदशास्त्र-विरुद्ध है।

१. नृसिंहः—'अक्षरस्वीकृतिं कुर्यात् प्राप्ते पञ्चमहायने। उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भमासं विवर्जयेत् ॥' श्रीधरः—'हस्तादित्यसमीरमित्रपुरजित्पौष्णाश्विचित्राच्युतेष्वाराक्यंशदिनोदयादिरहिते राशौ स्थिरे चोभये। पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं षष्ठीमष्टमशुद्धभाजि भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः। मार्कण्डेय ने उसका प्रकार बतलाया—'अभ्यङ्गस्नानपूर्वं तु गन्धाद्यैश्च विभूषितः। शुक्लवस्त्रं समास्तीर्य तण्डुलोपरि पूजयेत् ॥ पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं देवीं चैव सरस्वतीम्। स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वविद्याश्च विशेषतः ॥ एतेषामेव देवानां नाम्ना च जुहुयाद् घृतम्। दक्षिणाभिर्द्विजाग्र्याणां कर्तव्यं चात्र पूजनम् ॥ प्राङ्मुखो गुरुरासीनो वरुणाशामुखं शिशुम्।' इति।

तद्विधिः—अद्य अमुकोऽहं मम पुत्रस्य सकलविद्याविशारदत्वसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् अक्षरारम्भं विद्यारम्भं च करिष्ये इति संकल्प्य गणेशादीन् सम्पूज्य गुरुः सुवर्णशलाकया रौप्यशलाकया वा पट्टिकादौ ॐ नमः सिद्धमिति अकारादिक्षकारान्तान् वर्णांश्च विलिख्य सम्पूज्य प्राङ्मुखं कृत्वा अक्षराणि त्रिवारं वाचयित्वा विद्यारम्भं कारयेत्। गुरुं दक्षिणादिभिः सन्तोष्य भूयसीं दत्त्वा रक्षाबन्धनादिकं कृत्वा आवाहितदेवान् विसृज्य ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः।

धात्री की पूजा कर सबको नमस्कार कर तीन बार प्रदक्षिणा करके ॐ पूर्वक अक्षर का आरम्भ करे। तदनन्तर गुरु को नमस्कार करके देवता का विसर्जन करे। इसमें 'भुवन मातः सर्ववाङ्मयरूपेणागच्छागच्छ' यह सरस्वती के आवाहन का मन्त्र है। और प्रणव से सोलहों उपचारों का अर्पण करे।

अनुपनीतधर्माः

प्रागुपनयनात्कामचारकामवादकामभक्षाः। तेन मूत्रपुरीषोत्सर्गादावाचमनाद्याचारो नास्ति। लघुपातकहेतुलशुनपर्युषितोच्छिष्टादिभक्षणे दोषाभावः। एवमपेयपाने अनृतावाच्यभाषणेऽपि। महादोषहेतुमांसान्त्यजरजस्वलादिस्पृष्टान्नभक्षणे मद्यादिपाने च दोषोऽस्त्येव।

रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नानमेव कुमारके।
शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम्[1]॥

तत्र प्रागन्नप्राशनाच्छिशुसंज्ञा। तत ऊर्ध्वं प्राक्चौलात् त्रिवर्षाद्वा बालसंज्ञा। तत आमौञ्जीबन्धनात् कुमारसंज्ञा। अत्राचमनमिति त्रिरुदकपानमेव न तु ओष्ठमार्जनादिकल्प इति ज्ञेयम्। न चानुपनीतो वेदमुच्चारयेत्।

उपनयन से पहिले जहां चाहे वहां जाय, जो चाहे सो बोले जो चाहे सो खाय इससे मलमूत्र करने आदि में आचमन आदि का आचार नहीं है। छोटे पातक का कारण लहसुन, बासी और जूठा आदि खाने में दोष नहीं हैं। इस प्रकार अपेय के पीने में अवाच्य और असत्य भाषण में भी दोष नहीं है। महादोष के कारण मांस, अन्त्यज, रजस्वला आदि से छुए हुए अन्न के खाने और मद्य आदि के पीने में तो दोष है ही। रजस्वला आदि के स्पर्श में स्नानमात्र से शुद्धि होती है। यह कुमारावस्था के लिये है। शिशु का अभ्युक्षण और बालक का आचमन से शुद्धि करे। अन्नप्राशन के पहिले 'शिशु' इसके बाद चूडा के पहिले या तीनवर्ष पर्यन्त 'बालक' और इसके अनन्तर उपनयन से पहिले 'कुमार' कहलाता है। इसमें तीन बार जल पीने ही को आचमन कहते हैं न कि ओष्ठ आदि का मार्जन आदि कल्प को, ऐसा जाने। अनुपनीत वेद का उच्चारण न करे।

पित्रोरन्त्यक्रियायां त्वनुपनीतेनापि मन्त्रोच्चारः कार्यः। स च द्वित्रिवर्षयोः कृतचूडस्यैव। त्रिवर्षोर्ध्वं त्वकृतचूडस्यापि। एतच्चौरसपुत्रविषयम्।

पित्रोरनुपनीतोपि विदध्यादौरसः सुतः।
और्ध्वदेहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारकाः॥ इति स्कान्दात्।

बालानामपथ्यं पित्रादिभिर्निवारणीयम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बालानग्रे तु भोजयेत्। बालानां क्रीडनदाने स्वर्गसुखम्। तेषां भोज्यप्रदाने गोदानफलम्।

---

१. वृद्धशातातप के इस वचन के आगे का श्लोक है—'रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नानमेव कुमारके॥ प्राक् चूडाकरणाद् बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः। कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम्॥' स्मृत्यन्तरे—'ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च। चरेद् गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्धये॥ अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम्।' ब्रह्मपुराणे—'मातापित्रोरथोच्छिष्टं बालो भुञ्जन् भवेत् सुखी।' इति।

माता पिताकी अन्त्येष्टि में तो अनुपनीत को भी मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये और वह जिसका दो तीन वर्ष में चूड़ाकरण हो गया हो वही उच्चारण करे। तीन वर्ष के बाद जिसका चूड़ाकरण हुआ हो तब भी करे। यह औरस-पुत्र के सम्बन्ध का है। क्योंकि स्कन्दपुराण का वचन है कि औरस-पुत्र अनुपनीत भी हो तो माता पिता का और्ध्वदेहिक श्राद्ध करे। अन्य पुत्र तो संस्कृत ही श्राद्ध करे। बालकों का अपथ्य-निवारण पिता आदि का कर्तव्य है। इसलिये सभी प्रयत्न से सबसे आगे बालकों को खिला दिया जाय। बालकों को खिलौना देने में स्वर्ग का सुख और उनको खाने की चीज देने में गोदान का फल होता है।

अथोपनयनम्

उपनयनं[1] नाम आचार्यसमीपनयनाङ्गको गायत्र्युपदेशप्रधानकः कर्मविशेषः। उपनयनपदस्य योगरूढत्वात्। तत्राधिकारिणः—

पितैवोपनयनेत्पुत्रं तदभावे पितुः पिता।
तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सोदरः॥

तदभावे सगोत्रसपिण्डाः, तदभावे मातुलादयोऽसगोत्रसपिण्डाः, तदभावे असपिण्डसगोत्रजाः। एते च कुमारापेक्षया वयोज्येष्ठा विवक्षिताः, कनिष्ठकर्तृकोपनयनस्य निषिद्धत्वात्। सर्वाभावे श्रोत्रियः।

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
विद्वत्त्वाच्चापि विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते॥
कृच्छ्रत्रयं चोपनेता त्रीन् कृच्छ्रांश्च बटुश्चरेत्।

गायत्र्या द्वादशाधिकसहस्रजपश्चोपनेत्राऽधिकारसिद्ध्यर्थं कार्यः। केचिद् द्वादशसाहस्रीं जपन्ति।

आचार्य के समीप ले जाना गायत्री-उपदेश-प्रधान कर्म विशेष को उपनयन कहते हैं। क्योंकि उपनयन-पद योगरूढ़ है। उसका अधिकारी—पुत्र का उपनयन पिता ही करे। पिता के अभाव में पितामह, पितामह के अभाव में चाचा, उसके अभाव में सहोदर भाई, उसके अभाव में सगोत्र सपिण्ड, इन सबके अभाव में मामा आदि असमान गोत्र सपिण्ड, इनके अभाव में असपिण्ड सगोत्र करे। ये सब कुमार की अपेक्षा अवस्था में ज्येष्ठ ही विवक्षित हैं। क्योंकि कनिष्ठ द्वारा उपनयन करना निषिद्ध है। सबके अभाव में श्रोत्रिय करे। जन्म से ब्राह्मण जानना चाहिये। संस्कारों से द्विज और विद्वान् होने से विप्रसंज्ञा होती है। इन तीनों के एकत्र होने पर श्रोत्रिय कहलाता है। उपनयनकर्ता तीन कृच्छ्र और बटु भी तीन कृच्छ्र करे। अधिकार सिद्धि के लिये यज्ञोपवीत कर्ता एक हजार बारह बार गायत्री का जप करे। कोई बारह हजार गायत्री जपते हैं।

अथोपनयनकालः

[2]गर्भतो जन्मतो वा पञ्चमेऽष्टमे वा वर्षे ब्राह्मणस्योपनयनम्। एकादशे द्वादशे वा क्षत्रियस्य। द्वादशे षोडशे वा वैश्यस्य।

---

१. आचार्य के समीप नयनपूर्वक बटुक का गायत्री से सम्बन्ध स्थापित करना उपनयन शब्द का अर्थ है—'गृह्योक्तकर्मणा येन समीपं नीयते गुरोः। बालो वेदाय तद्योगाद् बालस्योपनयं विदुः॥' इति।

२. आश्वलायन ने गर्भ से अथवा जन्मकाल से अष्टम वर्ष का निर्देश किया 'गर्भाष्टमेऽष्टमे

षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य सप्तमे।
अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छतः ॥

केचित्तु विप्रस्य षष्ठं न मन्यन्ते। 'आषोडशादाद्वाविंशादाचतुर्विंशाच्च वर्षाद् ब्राह्मणादेर्गौणकालः।

ब्राह्मण का उपनयन गर्भ से या जन्म से पांचवें या आठवें वर्ष में होता है। ग्यारहवें या बारहवें में क्षत्रिय का और बारहवें या सोलहवें में वैश्य का होता है। धन चाहने वाले का छठे, विद्या चाहने वाले का सातवें, सम्पूर्ण कामनाओं को चाहने वाले का आठवें और कान्ति चाहने वाले का नवम में यज्ञोपवीत करना चाहिये। कोई तो ब्राह्मण का छठा वर्ष नहीं मानते। ब्राह्मण आदि के उपनयन का गौणकाल —क्रमसे सोलह, बाईस और चौबीस वर्ष है।

अत्र गर्भादिः संख्या। तथा च जन्मतः पञ्चदशवर्षपर्यन्तं विप्रस्य न विशेषतः प्रायश्चित्तम्। षोडशे वर्षे सशिखवपनमेकविंशतिरात्रं यावकाशनव्रतमन्ते सप्तब्राह्मणभोजनमिति प्रायश्चित्तम्। सप्तदशादिवर्षे कृच्छ्रत्रयादिप्रायश्चित्तपूर्वकमुपनयनं बोध्यम्। विप्रक्षत्रिययोरुत्तरायणे मौञ्जीबन्धः। वैश्यस्य दक्षिणायनेऽपि।

यहां गर्भ आदि की संख्या है। इससे जन्म से पन्द्रह वर्ष तक ब्राह्मण का विशेषतः प्रायश्चित्त नहीं है। सोलहवें वर्ष में शिखा के सहित मुण्डन इक्कीस रात तक जौ का भोजन, व्रत और अन्त में सात ब्राह्मणों का भोजन कराना यही प्रायश्चित्त है। सत्रहवें आदि वर्षों में तीन कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त करके उपनयन करना चाहिये। ब्राह्मण क्षत्रिय का उपनयन उत्तरायण में होता है। वैश्य का दक्षिणायन में भी होता है।

'वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यम्। माघादिशुक्रान्तकपञ्चमासाः साधारणा वा सकलद्विजानाम्' इति गर्गोक्तेर्वसन्तालाभे शिशिरग्रीष्मावपि ग्राह्यौ। वसन्तविधिनोत्तरायणादिविधेः संकोचायोगात्। एवं च माघादिमासपञ्चकनियमात् पौषाषाढयोः सत्यप्युत्तरायणे उपनयनं न कार्यम्। तत्रापि मीनार्कमारभ्य यावन्मिथुनप्रवेशं प्रशस्तः कालः। मीनमेषयोस्तु प्रशस्ततरः। "मकरकुम्भस्थेऽर्के मध्यमं मीनमेषस्थे उत्तमं वृषभमिथुनस्थेऽधममुपनयनम्'इत्यभिधानात्।

वसन्त में ब्राह्मण का, ग्रीष्म में क्षत्रिय का और शरद् ऋतु में वैश्य का उपनयन होता है। क्योंकि गर्ग की उक्ति है—'माघ से जेठ तक पांच महीने सब ब्राह्मणों के लिये साधारण है'। वसन्त न मिलने पर शिशिर और ग्रीष्म भी ग्राह्य है। वसन्त की विधि से उत्तरायण आदि विधि का संकोच नहीं करे। इसी प्रकार माघ आदि पांच महीनों के नियम से पूस और आषाढ़ में उत्तरायण

वाऽब्दे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा। द्विजत्वं प्राप्नुयाद् विप्रो वर्षे त्वेकादशे नृपः ॥' याज्ञवल्क्यः—'गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्। राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ॥' मनु ने केवल गर्भ से अष्टमवर्ष कहा है—'गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥' इति।

१. मनु ने गौणकाल का निर्देश किया—'आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते। आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥' इति।

के रहते हुए भी उपनयन नहीं करें। उसमें मीन के सूर्य से आरंभ कर मिथुन के प्रवेश तक प्रशस्त समय है। मीन और मेष में तो प्रशस्ततर है। क्योंकि कहा है कि 'मकर और कुम्भ के सूर्य में मध्यम और मीन मेष के सूर्य में उत्तम एवं वृष और मिथुन के सूर्य में उपनयन अधम होता है।'

[1]मीनार्कविशिष्टश्चैत्रोऽनिष्टबृहस्पत्यादिबहुविधदोषापवादकतया प्रशस्ततमः।

जीवभार्गवयोरस्ते सिंहस्थे देवतागुरौ।
चन्द्रसूर्ये दुर्बलेपि गोचरेऽनिष्टदे गुरौ ॥
मेखलाबन्धनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ। इत्यर्थकस्मृतेः।

अत्र गुरुशुक्रास्तदोषापवादोऽतिमहासंकटविषयत्वान्न कथनीयः। मीनार्क-चैत्रे जन्ममासनक्षत्रदोषो नास्ति।

मीनार्क-विशिष्ट-चैत्र—अनिष्टकारक बृहस्पति आदि अनेक प्रकार के दोषों के अपवादक होने से प्रशस्ततम है। क्योंकि स्मृति की उक्ति है कि 'बृहस्पति और शुक्र के अस्त में, सिंहस्थ बृहस्पति में, चन्द्र सूर्य के दुर्बल होने पर और गोचर में अनिष्टप्रद बृहस्पति के रहते हुए भी मीनार्क चैत्र में यज्ञोपवीत करे। इसमें गुरुशुक्रास्त-दोष का अपवाद बहुत बड़े संकट के होने से नहीं कहना चाहिये। मीनार्क चैत्र में जन्ममास और जन्मनक्षत्र का दोष नहीं है।

[2]जन्ममासजन्मनक्षत्रजन्मतिथिजन्मलग्नराशिलग्नेषु विप्राणामुपनयनं न दोषाय। क्षत्रियवैश्ययोरप्रथमगर्भे दोषो न। ज्येष्ठापत्यस्य ज्येष्ठमासे मङ्गलं न। 'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं[3] विना' इति गुरूक्तेः कृष्णपक्षे दशमी-पर्यन्तं संकटे कार्यम्। शिष्टास्तु संकटेपि कृष्णपक्षे पञ्चमीपर्यन्तमेव कुर्वन्ति।

---

१. गुरु की शुद्धि न हो या गुरु और शुक्र अस्त हों फिर भी ब्राह्मणों के लिये मीनार्कयुत चैत्र अत्यन्त प्रशस्त है। ग्रन्थान्तरे—'शुद्धिर्नैव गुरोर्यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि। चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम् ॥ जन्मभादष्टमे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ। मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवै।' संस्कारचन्द्रोदय में वसिष्ठ ने कहा है—'गुरावस्ते भृगौ वापि शिशुत्वे वा मलिम्लुचे। व्रतस्य बन्धनं कार्यं विप्राणां मीनगे रवौ ॥ संस्कारप्रदीप में देवल—'मीने स्थितेऽर्के द्विजपुङ्गवानां व्रतस्य बन्धः किल मासि चैत्रे। न शुक्रदोषो न गुरोश्च दोषो गलग्रहाब्दाध्ययनाद्यदोषः ॥' स्मृत्यन्तरे—'चैत्रे मासे भास्करे मीनसंस्थे कुर्यान्मौञ्जीबन्धनं ब्राह्मणानाम्। शुक्रस्यास्तं वाक्पतेर्न विलोक्यं नैव ग्राह्या चन्द्रगुर्वोश्च शुद्धिः ॥' इति।

२. जन्ममास का लक्षण—'आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत्। जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥' राजमार्तण्डे—'जन्ममासे तिथौ भे च विपरीतदले सति। कार्यं मङ्गलमित्याहुर्गर्ग-भार्गवशौनकाः ॥ जन्ममासनिषेधेऽपि दिनानि दश वर्जयेत्। आरभ्य जन्मदिवसाच्छुभाः स्युस्तिथयो-ऽपरे ॥' शौनकः—'जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि जन्मराशौ। व्रतेन विप्रो न बहुश्रु-तोऽपि प्रज्ञाविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ॥ गर्भाष्टमे गर्भपराशराद्यैः फलं यदुक्तं व्रतबन्धने तु। ततोऽ-धिकं जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि वाडवानाम् ॥' इति। वाडवानां=ब्राह्मणानाम्।

३. स्मृतिकौस्तुभ में स्मृत्यन्तर—'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णपक्षे त्रिधा कृते। अन्त्यभागं विना यौ द्वौ गणितौ मध्यमाधमौ ॥' अर्थात् उपनयन में शुक्लपक्ष शुभप्रद है। कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से पंचमी, षष्ठी से दसमी और एकादशी से अमावास्या, इस प्रकार तीन भाग करके पंचमीपर्यन्त मध्यम और दशमीपर्यन्त अधम है। किसी प्रकार की अशक्तता रहने पर इनमें यज्ञोपवीत करे। अन्त्यभाग (एकादशी से अमावास्या पर्यन्त) में नहीं करे।

ब्राह्मणों के लिए जन्ममास, जन्मनक्षत्र, जन्मतिथि, जन्मलग्न और जन्मराशि लग्नों में उपनयन करने में दोष नहीं है। क्षत्रिय वैश्य को प्रथम गर्भ से भिन्न में दोषकारक नहीं है। ज्येष्ठ सन्तान का ज्येष्ठमास में मंगल-कृत्य नहीं करे। 'शुक्लपक्ष शुभप्रद है। अन्त के तीन तिथि छोड़कर कृष्णपक्ष भी शुभप्रद है' गुरु के इस कथन से कृष्णपक्ष में दशमीपर्यन्त संकट में उपनयन करे। शिष्ट लोग तो संकट में भी कृष्णपक्ष में पंचमी तक ही उपनयन करते हैं।

अथ तिथिविचारः

द्वितीयातृतीयापञ्चमीषष्ठीदशम्येकादशीद्वादश्यः प्रशस्ताः। क्वचित्सप्तमी-त्रयोदशीकृष्णप्रतिपद्विधिः पुनरुपनयनमूकाद्युपनयनविषयः।

तिथौ सोपपदाख्यायामनध्याये गलग्रहे।
अपराह्णे[1] चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति॥
सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता।
चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः॥
अनध्यायाः पौर्णमासी चतुर्दश्यष्टमी अमा।
प्रतिपत्सूर्यसंक्रान्तिर्मन्वाद्याश्च युगादयः॥
कृष्णपक्षे द्वितीयाश्च कार्तिकाषाढफाल्गुने।

विषुवायनसंक्रान्त्योः पक्षिणी अनध्याय इति पूर्वपरिच्छेदे उक्तम्। सोपपदा-नामनध्यायतिथीनां च दिनद्वये सूर्योदयोत्तरं सूर्यास्तात्पूर्वं च त्रिमुहूर्तसत्त्वे दिन-द्वयमनध्यायः।

द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी तिथि प्रशस्त है। कहीं पर सप्तमी त्रयोदशी और कृष्ण प्रतिपदा की विधि पुनरुपनयन और गूंगे आदि के उपनयन के विषय में कहा है। सोपपदा नाम की तिथि, अनध्याय, गलग्रह और अपराह्ण में उपनयन किये हुए का पुनः उपनयन करना चाहिये। ज्येष्ठ में शुक्लपक्ष की द्वितीया, आश्विन में शुक्लपक्ष की दशमी और माघ की चतुर्थी तथा द्वादशी सोपपदा कहलाती है। पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, प्रतिपदा, सूर्य-संक्रान्ति, मन्वादि और युगादि तिथि, कार्तिक, आषाढ और फाल्गुन, कृष्णपक्ष की द्वितीया और अयन-संक्रान्ति में पक्षिणी का अनध्याय पूर्व परिच्छेद में कह चुके हैं। सोपपदा और अनध्याय-तिथियों के दो दिन में सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त से पहिले तीन मुहूर्त्त रहने पर दोनों दिन अनध्याय होता है।

शिष्टास्तु प्रतिपच्छेषघटिकादिमात्रेऽपि व्रतबन्धेऽनध्यायं वदन्ति। विषुवाय-नेतरसंक्रान्तिमन्वादियुगादिषु तु प्रथमद्वितीयपरिच्छेदोक्तरीत्या यत्र दिने संक्रा-न्तिपुण्यकालो युगमन्वादिश्राद्धकालश्च तद्दिनेऽनध्यायः, न तु तेषामस्तादौ मुहूर्त-त्रये सत्त्वमनध्यायहेतुः।

---

१. स्कन्दपुराणे—'ऊर्ध्वं सूर्योदयात् पूर्वं मुहूर्तानां तु पञ्चकम्। पूर्वाह्णः प्रथमः प्रोक्तो मध्याह्नस्तु ततः परम्। अपराह्णस्ततः प्रोक्तो मुहूर्तानां तु पञ्चकम्॥' इति।

त्रयोदश्यादिचत्वारि सप्तम्यादिदिनत्रयम् ।
चतुर्थी चैकतः प्रोक्ता अष्टावेते [१]गलग्रहाः ॥

अत्र चतुर्थीनवमी च व्रतकाले त्याज्येति भाति ।

शिष्ट तो प्रतिपदा का शेष एक घटी आदि मात्र में भी उपनयन में अनध्याय कहते हैं । विषुव और अयन-संक्रान्ति से भिन्न संक्रान्ति और मन्वादि युगादि में तो प्रथम-द्वितीय-परिच्छेद में कही हुई रीति से जिस दिन संक्रान्ति का पुण्यकाल और युगादि मन्वादि का श्राद्ध काल हो उस दिन अनध्याय है । उनके अस्तादि में तीन मुहूर्त्त का रहना अनध्याय का कारण नहीं है । त्रयोदशी से चार और सप्तमी से तीन तिथि तथा केवल चतुर्थी, ये आठ गलग्रह कहलाते हैं । यहाँ चतुर्थी और नवमी भी व्रत-काल में त्याज्य हैं, ऐसा ठीक मालूम होता है ।

केचिच्चतुर्थीशेषयुतपंचम्यां व्रतबन्धं न कुर्वन्ति । तत्र मूलं मृग्यम् । नवमीशेषयुतदशम्यां मौञ्जी न कार्येति मयूखे । अपराह्णस्त्रेधा विभक्तदिनतृतीयांशो व्रतबन्धे वर्ज्यः । दिनमध्यमभागो मध्यमः । प्रथमभागो मुख्यः । [२]मन्वादियुगादयो द्वितीयपरिच्छेदे दर्शिताः । तत्रोपनयने चैत्रशुक्लतृतीयायाः मन्वादेर्वैशाखशुक्लतृतीयाया युगादेश्च प्रसक्तिः । अन्येषां युगादिमन्वादितिथीनां प्रसक्तिर्नास्ति ।

कुछ लोग चतुर्थी-शेष-युक्त पंचमी में उपनयन नहीं करते हैं । उसका मूल अन्वेषणीय है । नवमी-शेष-युक्त दशमी में उपनयन नहीं करे, ऐसा मयूख में लिखा है । दिन का तीन भाग करने पर तृतीय भाग अपराह्ण उपनयन में वर्जित है । अन्य दिन का मध्यम भाग मध्यम है । प्रथम भाग मुख्य है । मन्वादि-युगादि-तिथियां द्वितीयपरिच्छेद में दिखाया है । उसमें उपनयन करने में चैत्रशुक्ल तृतीया का मन्वादि और वैशाखशुक्ल तृतीया का युगादि से सम्बन्ध है । अन्य युगादि-मन्वादि-तिथियों का सम्बन्ध नहीं है ।

अथ मन्वादियुगाद्योरपवादः

अनयोरपवादः सिन्धुकौस्तुभादौ स्मर्यते —
या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य ।
कृष्णे द्वितीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥ इति ।

अत्र माघसप्तम्या मन्वादेरपवादः पुनरुपनयनादिविषयः । फाल्गुनकृष्णद्वितीयायाश्चातुर्मास्यद्वितीयात्वेनानध्यायत्वं प्राप्तं तस्यापवादोयम् । यत्तु—

---

१. यह गुरु का वचन है । वसिष्ठ के—'कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादिदिनत्रयम् । त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः ॥' इस वचन में कृष्णपक्ष की चतुर्थी का ग्रहण दोषाधिक्य बोध के लिये है, न कि शुक्लपक्ष की चतुर्थी के ग्रहण के लिये । अन्यथा गुरु-वाक्य की वैयर्थ्यापत्ति होगी ।

२. मत्स्यपुराण में मन्वादिसंज्ञक-तिथियां—'अश्वयुक् शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिकस्य तु । चैत्रस्य तु तृतीया या तथा भाद्रपदस्य च ॥ फाल्गुनस्य अमावास्या पौषस्यैकादशी सिता । श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढस्य पूर्णिमा ॥ आषाढशुक्लदशमी माघशुक्लस्य सप्तमी । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा ॥ मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षय्यकारकाः ।'

भविष्यपुराण में युगादिसंज्ञक-तिथियां—'वैशाखस्य तृतीया या समा कृतयुगेन तु । नवमी कार्तिके या तु त्रेतायुगसमा स्मृता ॥ भाद्रे त्रयोदशी कृष्णा द्वापरेण समा तु सा ॥ एताश्चतस्रो राजेन्द्र युगानां प्रभवाः शुभाः । युगादयस्तु कथ्यन्ते तेनैताः पूर्वसूरिभिः ॥' इति ।

इन दोनों का अपवाद निर्णयसिन्धु और कौस्तुभ आदि में स्मरणीय है। जो चैत्र और वैशाख के शुक्लपक्ष की तृतीया, माघ और फाल्गुन की सप्तमी तथा कृष्णपक्ष की द्वितीया भरद्वाज आदि मुख्य-मुनीन्द्रों ने उपनयन में प्रशस्त कहा है। यहाँ माघ की सप्तमी का मन्वादि-अपवाद पुनरुपनयन आदि विषय का है। फाल्गुनकृष्ण द्वितीया का चातुर्मास्य-द्वितीया से जो अनध्याय प्राप्त है उसका यह अपवाद है। जो तो—

अनध्यायस्य पूर्वेद्युरनध्यायात्परेहनि।
व्रतारम्भं विसर्गं च विद्यारम्भं च वर्जयेत्॥

इति स्मृत्यन्तरम्, तद् द्वितीयाविध्यनुपपत्त्या गलग्रहत्वेन प्राप्तसप्तमीनवमी-त्रयोदशीनिषेधानुवादकमिति भाति। अप्राप्तनिषेधकत्वे मन्वादियुगादिसंक्रान्त्यादिप्रयुक्तानध्यायेभ्योपि पूर्वपरदिनयोर्निषेधापत्त्या चैत्रशुक्लद्वितीयादेरपि निषिद्धत्वापातान्न चेष्टापत्तिः। शिष्टाचारग्रन्थेषु चानुपलम्भात्।

अनध्याय के पहिले दिन और दूसरे दिन में व्रत का आरंभ और विसर्जन तथा विद्यारम्भ न करे यह दूसरी स्मृति का वचन है। वह द्वितीया विधि की अनुपपत्ति से गलग्रहत्व से प्राप्त सप्तमी, नवमी और त्रयोदशी के निषेध का अनुवादक है, ऐसा ठीक प्रतीत होता है। निषेध के नहीं प्राप्त होने पर मन्वादि-युगादि-संक्रान्त्यादि-प्रयुक्त अनध्यायों से पूर्व और पर दिन के निषेध की आपत्ति से चैत्रशुक्ल द्वितीयादि का भी निषेध पड़ने से इष्टापत्ति नहीं है। क्योंकि शिष्टाचार ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

मुहूर्तमार्तण्डोक्त्या माघे शुक्लद्वितीया कृष्णद्वितीया वैशाखकृष्णद्वितीया चेत्यनध्यायत्रयमुपनयनेऽधिकं प्राप्नोति। एतदपरे नाद्रियन्ते, बहुग्रन्थेषु मूलानुपलम्भात्। मौञ्जीप्रकरणे मुहूर्तचिन्तामण्यादिग्रन्थेषु क्वाप्यनुक्तेश्च। अतो मार्तण्डोक्तानामतिरिक्तानध्यायानामुपनिषत्पाठादिविषयत्वं, न तु मौञ्जीविषयत्वमिति युक्तं भाति।

मुहूर्त्तमार्तण्ड की उक्ति से माघ में शुक्ल-द्वितीया, कृष्ण-द्वितीया तथा वैशाखकृष्ण द्वितीया, ये तीन अनध्याय उपनयन में अधिक होते हैं। अन्य लोग इसका आदर नहीं करते, क्योंकि बहुत से ग्रन्थों में इसका मूल उपलब्ध नहीं है और मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि ग्रन्थों में उपनयन-प्रकरण में कहीं भी नहीं कहा है। अतः मार्तण्ड के कहे हुए अतिरिक्त अनध्यायों का उपनिषद् पाठ आदि का विषय है उपनयन विषयक नहीं है, ऐसा युक्त प्रतीत होता है।

तत्र तृतीयाषष्ठीद्वादशीषु प्रदोषसत्त्वे मौञ्जी न कार्या। रात्रेः प्रथमयामे चतुर्थी सार्धयामे सप्तमी यामद्वये त्रयोदशी चेत्तदा प्रदोषः[1]। दिनद्वये प्रथम-

१. पीयूषधारा में प्रदोष का विचार—'चतुर्थी प्रथमे यामे सार्धयामे च सप्तमी। यामद्वये त्रयोदश्यां प्रदोषः सर्वघातकः॥' गर्गः—'चतुर्थी याममेकं तु सार्धयामं तु सप्तमी। अर्धरात्रं त्रयोदश्यां प्रदोषो रजनीमुखम्॥ अत्र नाध्यापयेद् वेदवेदाङ्गानि च सर्वथा। अत्राध्ययनशीलस्य प्रदोषः सर्वघातकः॥' गोभिलने इस प्रकार कहा है—'षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका। प्रदोषमिह कुर्वीत तृतीया नवनाडिका॥' ब्रह्माण्डपुराणे—'रात्रौ यामद्वयादर्वाग् यदि पश्येत् त्रयोदशीम्। प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वस्वाध्यायवर्जितः॥ षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका। प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिका॥' हेमाद्रौ—'मेधाकामस्त्रयोदश्यां चतुर्थ्यां चैव सर्वदा। सप्तम्यां च प्रदोषे तु न स्मरेन्नापि कीर्तयेत्॥ चतुर्थ्याः पूर्वरात्रे तु नवनाडिषु दर्शने। नाध्येयं पूर्वरात्रे स्यात्सप्तमी च त्रयोदशी॥' इति।

यामादिषु चतुर्थ्यादि व्याप्तौ पूर्वदिने प्रदोषो नोत्तरदिने इति कौस्तुभे। प्रदोष-दिने मन्दवारे कृष्णपक्षान्त्यत्रिके[1] चोपनयने पुनरुपनयनमिति मयूखे। एते नित्यानध्यायाः।

उसमें तृतीया, षष्ठी और द्वादशी में प्रदोष रहने से उपनयन नहीं करे। रात्रि के प्रथम प्रहर में चतुर्थी, डेढ़ प्रहर में सप्तमी और दोपहर में त्रयोदशी हो तब प्रदोष होता है। दो दिन में प्रथम प्रहर आदि में चतुर्थी आदि के रहने से पहिले दिन प्रदोष होता है दूसरे दिन नहीं होता, ऐसा कौस्तुभ में कहा है। प्रदोष के दिन शनिवार हो कृष्णपक्ष के अन्त के तीन दिनों में भी उपनयन करने पर पुनः उपनयन करे, ऐसा मयूख में है। ये सब नित्य अनध्याय हैं।

अथ नैमित्तिकाः

विवाहप्रतिष्ठोद्यापनादिष्वासमाप्तेः सगोत्राणामनध्याय इति स्मृत्यर्थसारोक्तेस्त्रिपुरुषसपिण्डेषु ब्रह्मयज्ञादिवर्जनाद् मौञ्जीविवाहादिनिमित्तकमण्डपप्रतिष्ठाद्युत्सवसमाप्तिपर्यन्तमुपनयनं न कार्यमिति भाति। विवाहादिमङ्गलकरणे दोषो न। शोभनदिने चानध्याय इत्युक्तेर्गर्भाधानादिशुभकार्यदिने एककुले एकगृहे वा व्रतबन्धो न कार्य इति भाति।

विवाह प्रतिष्ठा और उद्यापन आदि में इनकी समाप्ति तक सगोत्रों का अनध्याय होता है, ऐसा स्मृत्यर्थसार में कहने से तीन पुस्त के सपिण्डों में ब्रह्मयज्ञ आदि के त्याग से उपनयन विवाह आदि नैमित्तिक, मण्डप-प्रतिष्ठा आदि के उत्सव की समाप्ति तक उपनयन नहीं करना चाहिये, ऐसा मुझे ठीक प्रतीत होता है। विवाह आदि मंगल-कृत्य करने में दोष नहीं है। अच्छे दिन में भी अनध्याय है इस कथन से गर्भाधान आदि शुभ कार्य के दिन में एक कुल में या एक घर में उपनयन नहीं करे, ऐसा ठीक है।

[2]भूकम्पे भूविदारणे वज्रपाते उल्कापाते धूमकेतूत्पत्तौ ग्रहणे च दशाहं सप्ताहं वा व्रतबन्धादि मङ्गलं न कार्यम्। केचित्संकटे त्रिदिनमनध्यायमाहुः। अकालवृष्टौ त्रिरात्रं पक्षिणी वाऽनध्यायः। पौषादिचैत्रान्तमकालवृष्टिः। केचिदा-

---

१. स्मृत्यन्तरे—'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णपक्षे त्रिधा कृते। अन्त्यभागं विना यौ द्वौ गणितौ मध्यमाधमौ ॥' गुरुः—'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना' इति।

२. गर्गः—'ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे। व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥' स्मृत्यन्तरे—'अरिष्टे त्रिविधोत्पाते सिंहिकासूनुदर्शने। सप्तरात्रं न कुर्वीत यज्ञोद्वाहादिमङ्गलम् ॥' चण्डेश्वरः—'दाहे दिशां चैव धराप्रकम्पे वज्रप्रपातेऽथ विदारणे च। केतौ तथोल्कांशुकणप्रपाते त्र्यहं न कुर्याद् व्रतमङ्गलानि ॥' स्मृत्यन्तरे—'यदाम्बुवृष्टिः कुलिशं पतत्यधो धराप्रकम्पोऽसुरकेतुदर्शनम्। तदा विवाहव्रतबन्धनेषु विवर्जयेत् सप्तदिनानि शास्त्रतः ॥' अम्बुवृष्टिः= निरन्तरदिनत्रयवृष्टिः। यदि निरन्तर तीन दिन वृष्टि नहीं हो एक या दो दिन वृष्टि हो तो स्मृति में विशेष वचन है—'एकेनैकदिनं त्याज्यं द्वितीयेन दिनत्रयम्। तृतीयेन तु सप्ताहं त्यजेदाकालवर्षणे ॥' पौष से चैत्रपर्यन्त की वृष्टि अकालवृष्टि है—'पौषादिचतुरो मासान् ज्ञेया वृष्टिरकालजा। व्रतयात्राविवाहादि वर्जयेत् सप्तवासरान् ॥' मुहूर्तचिन्तामणि में यात्रादि में अकालवृष्टि का दोषाभाव यावद्वसुधा बतलाया है—'यदि मास्सु चतुर्षु पौषमासादिषु वृष्टिर्हि भवेदकालवृष्टिः। पशुमर्त्यपदाङ्किता न स्यान्न हि तावदेव दोषः ॥' इति।

र्द्रादिज्येष्ठान्तसूर्यनक्षत्रादन्यत्राकालवृष्टिरित्याहुः। यस्मिन् देशे यो वर्षाकाल-स्ततोऽन्यत्राकालवृष्टिरिति सिद्धान्तः।

भूकम्प में, भूमि फटने पर, वज्रपात, उल्कापात, धूमकेतु की उत्पत्ति देखने पर और ग्रहण में भी दस दिन या सात दिन यज्ञोपवीत आदि मंगल नहीं करना चाहिये। कुछ लोग संकट काल में तीन दिन का अनध्याय कहते हैं। अकालवृष्टि में तीन दिन या पक्षिणी अनध्याय है। पौष से चैत्र तक अकालवृष्टि होती है। कुछ लोग आर्द्रा आदि से ज्येष्ठा तक के सूर्य-नक्षत्र से भिन्न-काल की वृष्टि को अकालवृष्टि कहते हैं। जिस देश में वर्षा का जो काल है उससे अन्य काल में वृष्टि का होना अकालवृष्टि कहलाती है, यह सिद्धान्त है।

अतिवृष्टौ करकावृष्टौ रुधिरवृष्टौ च त्र्यहम्। प्रातःसंध्यागर्जने त्वहोरात्रम्। गुरुशिष्यर्त्विङ्मरणे त्र्यहम्। पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैरन्तरागमनेऽहोरात्रम्। आरण्यमार्जारादिगमने त्रिरात्रम्। सृगालवानरैर्द्वादशरात्रम्। श्रवणद्वादशीयमद्वितीयामहाभरण्यादयोऽन्येप्यनध्याया नित्या नैमित्तिकाश्च बहवो ग्रन्थेषूक्तास्तेषामुपनयने प्रसक्त्यभावादत्र नोक्ताः।

अतिवृष्टि होने पर ओला पड़ने पर और रक्त-वृष्टि होने पर तीन दिन का अनध्याय है। प्रातःसन्ध्या में मेघ-गर्जन होने पर दिन रात का अनध्याय होता है। गुरु, शिष्य और ऋत्विक् के मरने पर तीन दिन का अनध्याय है। पशु, मण्डूक, नेवला, कुत्ता, सांप, बिल्ली और चूहे के बीच में जाने से अहोरात्र का अनध्याय है। जंगली बिल्ली आदि के जाने में तीन रात का, सियार और बानर के बीच में जाने पर बारह रात का अनध्याय है। श्रवण-द्वादशी, यम-द्वितीया और महाभरणी आदि अन्य नित्य और नैमित्तिक बहुत से अनध्याय ग्रन्थों में कहे हैं, उनका उपनयन में सम्बन्ध नहीं होने से यहां नहीं कहे गये हैं।

अथ नान्दीश्राद्धोत्तरं नैमित्तिकानध्याये

व्रतबन्धे नान्दीश्राद्धोत्तरं पूर्वोक्तप्रातर्गर्जितादिनैमित्तिकानध्यायप्राप्तौ ज्योतिर्निबन्धे—

नान्दीश्राद्धं कृतं चेत्स्यादनध्यायस्त्वकालिकः।
तदोपनयनं कार्यं वेदारम्भं न कारयेत्॥ इति।

'वेदारम्भं न कारयेत्' इति निषेधो याजुषादिविषयः। बह्वृचानामुपाकर्मण्येव वेदारम्भोक्त्या मौञ्जीदिने वेदारम्भाप्रसक्तेः। तदोपनयनं कार्यमिति बह्वृचादिसर्वसाधारणः। याजुषादिभिर्मौञ्ज्युत्तरमपि अनध्यायप्राप्तौ वेदारम्भो वर्ज्यः। नान्दीश्राद्धात्प्राक् नैमित्तिकानध्याये मुहूर्तान्तरे कार्यम्। मौञ्ज्युत्तरमनुप्रवचनीयात्प्राग्गर्जने वक्ष्यते। इति अनध्यायादिनिर्णयः।

व्रतबन्ध में नान्दीश्राद्ध के बाद पहिले कहे हुए प्रातर्गर्जन आदि नैमित्तिक-अनध्याय प्राप्त होने पर कहा है कि यदि नान्दीश्राद्ध कर लेने पर असामयिक अनध्याय हो तब उपनयन करे और वेदारंभ न करे। वेदारम्भ का निषेध यजुर्वेदियों के विषय का है। क्योंकि बह्वृचोंका उपाकर्म में ही वेदारम्भ के कहने से उपनयन-दिन में वेदारम्भ का प्रसंग नहीं है। 'तदोपनयनं कार्यं' यह बह्वृच् आदि सभी के लिये है। यजुर्वेदी आदि के लिये उपनयन के बाद भी अनध्याय होने से वेदारंभ

त्याज्य है। नान्दीश्राद्ध से पहिले नैमित्तिक-अनध्याय के होने से दूसरे मुहूर्त्त में उपनयन करे। मौंजी के बाद अनुप्रवचनीय से पहिले गर्जन में कहेंगे। अनध्यायादि-निर्णय समाप्तः।

अथ वारविचारः

इत्थं तिथिं तत्प्रसङ्गप्राप्तमनध्यायादिकं च विचार्य [1]वारादि चिन्त्यते—गुरुशुक्रबुधवाराः श्रेष्ठाः, सूर्यवारो मध्यमः, भौममन्दवारौ निषिद्धौ। सामवेदिनां क्षत्रियाणां च भौमवारः प्रशस्तः।

इस प्रकार तिथि और उसके प्रसंग से अनध्यायादि का विचार करके वार आदि के सम्बन्ध में कहते हैं। बृहस्पति, शुक्र और बुधवार श्रेष्ठ है। सूर्यवार मध्यम और चन्द्रवार अधम है। मंगल और शनिवार निषिद्ध है। सामवेदी और क्षत्रियों का मंगलवार प्रशस्त है।

अथ वेदाधिपगुरुचन्द्रादिबलविचारः

शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं तथा।
शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते॥
गुरुशुक्रौ भौमबुधावृग्वेदाद्यधिपाः स्मृताः।
पती सितेज्यौ विप्राणां नृपाणां कुजभास्करौ॥
वैश्यानां शशभृत्सौम्याविति वर्णाधिपाः स्मृताः।
पितुः सूर्यबलं श्रेष्ठं शाखावर्णेशयोर्बटोः॥
पितुर्बटोश्च सर्वेषां बलं वाक्पतिचन्द्रयोः।

बटुतत्पित्रोरुभयोर्गुरुचन्द्रबलालाभे बटोरुभयबलमावश्यकम्। तत्र चन्द्रबलं गर्भाधानप्रसङ्गे उक्तम्।

शाखाधिप का वार तथा शाखाधिप का बल एवं शाखाधिपति का लग्न ये तीनों उपनयन में दुर्लभ होते हैं। बृहस्पति, शुक्र और मंगल बुध ऋग्वेद आदि के अधिपति कहे गये हैं। बृहस्पति, शुक्र ब्राह्मणों के अधिपति हैं और क्षत्रियों के मंगल सूर्य तथा वैश्यों के चन्द्रमा और बुध, ये वर्णपरक अधिपति कहे गये हैं। पिता का सूर्य-बल और बटु के शाखा वर्णेश का बल श्रेष्ठ है। पिता और बटु सबका बृहस्पति और चन्द्रमा का बल श्रेष्ठ है। बटु और उसके माता पिता दोनों का गुरुबल और चन्द्रबल न मिलने पर बटु को दोनों का बल आवश्यक है। उसमें चन्द्रबल गर्भाधान के प्रसंग में कहा है।

द्विपञ्चसप्तनवैकादशस्थो गुरुः शुभफलप्रदः। जन्मतृतीयषष्ठदशमस्थानेषु पूजाहोमात्मकशान्त्या शुभः। चतुर्थाष्टमद्वादशस्थानेषु दुष्टफलः। कर्कधनुर्मीनराशिषु चतुर्थादिस्थानेपि न दोषः। अतिसंकटे चतुर्थद्वादशस्थो द्विगुणपूजाहोमादिना शुभः। अष्टमस्तु त्रिगुणपूजादिना शुभः।

---

१. नारदः—'सर्वेषां जीवशुक्रज्ञवाराः प्रोक्ता व्रते शुभाः। चन्द्रार्कौ मध्यमौ ज्ञेयौ सामबाहुजयोः कुजः॥' रत्नसंग्रह में शाखाधिपति का विवेचन—'ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः। जीवसितौ विप्राणां, क्षत्रियस्य चोष्णगुर्विशां चन्द्रः॥' राजमार्तण्ड में ब्राह्मण के लिये पुनर्वसु का निषेध है—'ताराचन्द्रानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि। पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति॥' इति।

केचिदनिष्टो[1]वामवेधेन शुभ इत्याहुस्तन्नेति राजमार्तण्डः । अष्टमवर्षादि-मुख्यकाले गुरुबलाभावेऽपि मीनगतरवियुतचैत्रे वा शान्त्या वा व्रतबन्धः कार्यो न तु मुख्यकालातिक्रमः, नित्यकालस्य बलीयस्त्वात् ।

दो, पांच, सात, नव और एकादश में गुरु शुभफल देने वाले हैं। जन्म-लग्न से तृतीय षष्ठ और दशम स्थान में पूजा तथा होम की शान्ति से शुभकारक होते हैं। चौथे, आठवें, बारहवें स्थान में दुष्ट-फल देते हैं। कर्क, धनु और मीन राशिमें चौथे आदि स्थानों में भी दोष नहीं होता। अतिसंकट में चौथे बारहवें स्थान में स्थित दूनी पूजा होम आदि से शुभप्रद होते हैं। आठवें स्थान का तो तिगुनी पूजा आदि से शुभकारक हैं। कुछ लोग कहते हैं कि -अनिष्ट-ग्रह वामवेध से शुभ होता है, उसे राजमार्तण्ड कहता है कि नहीं। अष्टम वर्ष आदि मुख्यकाल में गुरुबल के न होने पर भी मीनार्क चैत्र में अथवा शान्ति करके व्रतबन्ध कर देना चाहिये। नित्य-काल के बली होने से मुख्यकाल का अतिक्रमण नहीं करे।

अथ नक्षत्राणि

[2]पूर्वात्रयहस्तचित्रास्वातीमूलाश्लेषार्द्राश्रवणेषु ऋग्वेदिनां मौञ्जी शस्ता । रोहिणीमृगपुष्यपुनर्वसुत्र्युत्तराहस्तानूराधाचित्रारेवतीषु याजुषाणाम् । अश्विनी-पुष्योत्तरात्रयार्द्राहस्तधनिष्ठाश्रवणेषु सामगानाम् । अश्विनीमृगानूराधाहस्त-धनिष्ठापुनर्वसुरेवतीषु अथर्ववेदिनाम् ।

तीनों पूर्वा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, और श्रवण नक्षत्रों में ऋग्वेदियों का व्रतबन्ध उत्तम है। रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, हस्त, अनुराधा, चित्रा और रेवती नक्षत्रों में यजुर्वेदियों का उपनयन प्रशस्त है। अश्विनी, पुष्य, तीनों उत्तरा, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा और श्रवण नक्षत्रों में सामवेदियों का तथा अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा, हस्त, धनिष्ठा पुनर्वसु और रेवती नक्षत्रों में अथर्ववेदियों का उपनयन प्रशस्त है।

एषां नक्षत्राणामसंभवे भरणीकृत्तिकामघाविशाखाज्येष्ठाशततारका वर्जयित्वा सर्वाणि सर्वेषां ग्राह्याणि । रातमार्तण्डे पुनर्वसुनिषेधो[3] निर्मूल इति बहवः ।

---

१. मुहूर्तमार्तण्ड में गुरु का वामवेध—'द्वीष्वायागाङ्कसंस्थो व्ययजलनिधनत्र्यभ्रगैश्चेन्न विद्धः । शस्तोऽनिष्टोऽपि वामं शुभ इह खचरैर्वेधितो नोऽष्टमस्थः ॥' अर्थात् गुरु द्वितीय पंचम एका-दश सप्तम नवम स्थान में स्थित हों और द्वादश चतुर्थ अष्टम तृतीय तथा दशम स्थान स्थित ग्रहों से विद्ध न हों तो शुभप्रद और विद्ध हों तो अशुभप्रद हैं।

अनिष्टकारकस्थान (१२, ४, ८, ३, १०) में स्थित गुरु वामविद्ध-(२, ५, ११, ७, ९ स्थान स्थित ग्रहों से विद्ध) हों तो व्रतबन्ध या विवाह में शुभकारक हैं। अष्टमस्थ विद्ध हों तो शुभदायक नहीं है। यहां तो त्रिगुण पूजा से शुभप्रद हैं, जैसा बृहस्पति ने कहा है—'रजस्वला यदा कन्या गुरुशुद्धि न चिन्तयेत् । अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् ॥' ग्रन्थान्तरे—'व्रते जन्म-त्रिखारिस्थो जीवोऽपीष्टोऽर्चनात् सकृत् । शुभोऽतिकाले तुर्याष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात् ॥' इति ।

२. ज्योतिर्निबन्धे—'पूर्वाहस्तत्रये सार्पश्रुतिमूलेषु बह्वृचाम् । यजुषां पौष्णमैत्रार्कादित्यपुष्य-मृदुध्रुवैः ॥ सामगानां हरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः । धनिष्ठादितिमैत्रार्केष्विन्दुपौष्णेष्वथर्वणाम् ॥' इति ।

३. बृहस्पति ने पुनर्वसुनक्षत्र को विहित कहा है—'त्रिषूत्तरेषु रोहिण्यां हस्ते मैत्रे च वासवे । त्वाष्ट्रे सौम्यपुनर्वस्वोरुत्तमं ह्युपनायनम् ॥' इति । इसलिये राजमार्तण्ड का निषेध निर्मूल है।

केचिदृक्सामवेदविषयः पुनर्वसुनिषेध इत्याहुः । व्यतीपातवैधृतिपरिघार्धेषु विष्कम्भादीनां निषिद्धनाडीषु भद्रायां ग्रहणे च मौञ्जी वर्ज्या ।

इन नक्षत्रों के सम्भव न होने पर भरणी, कृत्तिका, मघा, विशाखा, ज्येष्ठा और शतभिषा को छोड़कर सबके लिये सभी नक्षत्र ग्राह्य हैं। राजमार्तण्ड में पुनर्वसु का निषेध निर्मूल है, ऐसा बहुत लोग कहते हैं। कोई पुनर्वसु का निषेध ऋग्वेदी सामवेदियों के लिये कहते हैं। व्यतीपात, वैधृति और परिघ के आधे में विष्कुंभ आदि के निषिद्ध घड़ियों में, भद्रा तथा ग्रहण में मौञ्जी त्याज्य है।

अथ लग्ने ग्रहबलम्

व्रते ग्राह्या द्वादशाष्टषड्वर्ज्याः शुभखेचराः ।
खलास्त्र्यायारिगाश्चन्द्रः शुक्ले गोकर्कगस्तनौ ॥
क्वचित्सूर्यस्तनौ श्रेष्ठोऽष्टमे वर्ज्योऽखिलो ग्रहः ।
लग्नेश. शुक्रचन्द्रौ च षष्ठे वर्ज्याः सितोऽन्त्यगः ॥
लग्ने चन्द्रखलाश्चैवेन्दुर्वर्ज्यो द्वादशाष्टमे ।
पञ्चेष्टग्रहहीनं च लग्नं सर्वत्र वर्जयेत् ॥
तुलामिथुनकन्याख्या धनुर्वृषझषाह्वयाः ।
नवमांशाः शुभाः प्रोक्ताः कर्कांशं वर्जयेद् व्रते ॥

षड्वर्गशुद्ध्यादिकमिष्टकालसाधनादिविचारश्च ज्योतिर्ग्रन्थेभ्यो ज्ञातव्यः ।

उपनयन में बारहवें, आठवें और छठे को छोड़कर शुभग्रह ग्राह्य है। पापग्रह तृतीया, एकादश षष्ठ स्थान में हों और शुक्लपक्ष में चन्द्रमा कर्क राशि अथवा लग्न में हों तो उत्तम है। कहीं सूर्य भी लग्न का श्रेष्ठ होता है। सभी ग्रह अष्टम में वर्जनीय हैं। लग्न का स्वामी शुक्लपक्ष का चन्द्रमा षष्ठ स्थान में वर्जनीय है। एवं शुक्र द्वादश स्थान का' चन्द्रमा और पापग्रह लग्न का एवं द्वादश तथा अष्टम स्थान का चन्द्रमा त्याज्य है। लग्न पांच शुभ-ग्रहों से हीन हो तो उसका सर्वत्र त्याग करे। तुला, मिथुन, कन्या, धनु, वृष और मीन का नवांश उत्तम होता है। तथा कर्क के नवांश को यज्ञोपवीत में सदैव त्याग करे। षड्वर्ग की शुद्धि आदि और इष्टकाल साधन आ.द का विचार ज्योतिष के ग्रन्थों से जानना चाहिये।

अथ उपनयनकर्तुः पत्नीरजसि विचारः

मातरि रजस्वलायां मातुलज्येष्ठभ्रात्रादीनां पित्रसान्निध्यात् कर्तॄणां पत्न्यां [1]रजस्वलायां च मौञ्जीविवाहादि न कार्यम्। नान्दीश्राद्धोत्तरं मातृरजसि भ्रात्रादिकर्त्रन्तरसत्त्वेपि सन्निहितमुहूर्तान्तरालाभे शान्ति कृत्वा कार्यम्, अन्यथा मुहूर्तान्तरे एव नान्दीश्राद्धोत्तरं मातुलादिकर्तॄणां पत्नीरजोदोषे आरब्धत्वाच्छान्तिं विनैव कार्यम्। मौञ्जीविवाहोत्तरं मण्डपोद्वासनात्प्राक्

१. वृद्धमनुः—'विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला। तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः ॥' गर्गः—'यस्योद्वाहादिमाङ्गल्ये माता यदि रजस्वला। तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः ॥' इति।

मातृरजोदोषेऽपि शान्तिः कार्या मङ्गलस्यासमाप्तत्वादिति मुहूर्तचिन्तामणिटीकायाम्। प्रारम्भात्प्रागपि रजोदोषे मुहूर्तान्तरालाभे शान्तिं कृत्वाऽतिसंकटे व्रतबन्धादिकं कार्यमिति कौस्तुभे।

माता के रजस्वला होने पर मामा, जेठे भाई आदि तथा पिताके निकट न होने पर और उपनयनकर्ता की स्त्री के रजस्वला होने पर भी उपनयन विवाह आदि नहीं करना चाहिये। नान्दीश्राद्ध के बाद माता के रजस्वला होने में भाई आदि उपनयन करने वाले के रहते भी समीप में दूसरे मुहूर्त्त के नहीं मिलने पर शान्ति करके उपनयन करे नहीं तो दूसरे ही मुहूर्त्त में करे। नान्दीश्राद्ध के बाद मामा आदि उपनयन करने वालों की पत्नी के रजस्वला होने पर आरम्भ होने के कारण विना शान्ति के ही उपनयन करे। उपनयन और विवाह के बाद तथा मण्डपोद्वासन से पहिले माता के रजोदोष होने पर भी मंगल-समाप्त न होने के कारण शान्ति करे, ऐसा मुहूर्त्तचिन्तामणि की टीका में कहा है। प्रारंभ से पहिले भी रजोदोष होने और दूसरे मुहूर्त्त के नहीं मिलने पर अत्यन्त संकट में शान्ति करके उपनयन आदि कार्य करे, ऐसा कौस्तुभ में कहा है।

अथ संक्षिप्तरजोदोषशान्तिः

[1]शान्तिप्रकारश्च 'ममामुकमङ्गले संस्कार्यजननीरजोदोषजनिताशुभफलनिरासार्थं शुभफलावाप्त्यर्थं श्रीपूजनादिशान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्य माषसुवर्णनिर्मितां लक्ष्मीं श्रीसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य स्वगृह्योक्तविधिना श्रीसूक्तेन प्रत्यृचं पायसं हुत्वा कलशोदकेनाभिषिच्य विष्णुं स्मृत्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यादिति। प्रारम्भोत्तरं सूतकप्राप्तौ एकोदरयोः समानसंस्कारे प्रेतकर्मासमाप्तौ च चौलप्रकरणे उक्तम्। विशेषस्तु वक्ष्यते।

शान्ति का प्रकार यह है—'मेरे अमुक मंगल में संस्कार्य की माता के रजोदोष से उत्पन्न अशुभ फल को हटाने एवं शुभ-फल की प्राप्ति के लिये श्रीपूजन आदि शान्ति करूंगा' ऐसा संकल्प कर एक माशे सोने की बनी लक्ष्मी को श्रीसूक्त से षोडशोपचार से पूजा करके अपने गृह्य की कही हुई विधि से श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा से खीर का होम करके कलश के जल से अभिषेक तथा विष्णु का स्मरण कर कर्म को ईश्वरार्पण करे। प्रारम्भ के बाद सूतक लगने पर सहोदर दो भाइयों का समान-संस्कार करने और प्रेतकर्म के समाप्त नहीं होने में चौल-प्रकरण में कहा है। विशेष तो आगे कहेंगे।

अथ पदार्थसंपादनम्

[2]कौपीनं प्रावारं च कार्पासजमहतं संपाद्य ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं वस्त्रमहतं संज्ञं [3]प्रावारार्थमजिनं वा। तच्च त्र्यङ्गुलं चतुरङ्गुलं वा बहिर्लोमाखण्डं त्रिखण्डं

१. कपर्दिकारिका में शान्ति-विधि का वचन है—'अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे तु सङ्गते। श्रियं सम्पूज्य तत्कुर्यात् पाणिग्राहादिमङ्गलम्॥ हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनाऽर्चयेत्॥ प्रत्यृचं पायसं हुत्वा अभिषेकं समाचरेत्॥' इति।

२. स्मृत्यर्थसारे—'कौपीनं कटिसूत्रं च यतेः स्याद् ब्रह्मचारिणः। ग्राह्यं नैव गृहस्थस्य श्रौते स्मार्ते च कर्मणि॥' इति।

३. प्रावारार्थम्=आच्छादनार्थम्। मूल में 'अजिनं वा' इस उक्ति से आच्छादन के लिये वस्त्र और अजिन का विकल्प है, जैसा गौतन ने कहाहै—'कार्पासं वाऽविकृतम्' इति। मनुः—'कार्ष्ण-

वाऽष्टचत्वारिंशदङ्गुलं धार्यम्। त्रिखण्डपक्षे चतुर्विंशत्यङ्गुलाष्टाङ्गुलषोडशाङ्गुलाः क्रमेण त्रयः खण्डाः।

कपास का बिना फटा हुआ कौपीन और प्रावार सम्पादन करे। थोड़ा धोया हुआ नया सफेद किनारी के सहित वस्त्र को 'अहत' कहते हैं। या दुपट्टे के लिये अजिन वह तीन अंगुल या चार अंगुल का बाहर रोयें लगा हुआ या तीन खण्ड या अड़तालिस अंगुल का धारण करना चाहिये। तीन खण्ड के पक्ष में चौबीस अंगुल, आठ अंगुल और सोलह अंगुल का क्रम से तीन खण्ड का हो।

अथ यज्ञोपवीतनिर्णयः

कार्पासं [1]यज्ञोपवीतम्। तन्निर्माणप्रकारः—ब्राह्मणेन ब्राह्मणस्त्रीभिर्विधवादिभिश्च निर्मितं सूत्रं ग्राह्यम्। संहतचतुरङ्गुलिमूलेषु षण्णवत्या सूत्रमावेष्ट्य तत् त्रिगुणीकृत्योर्ध्ववृत्तं वलितं कृत्वा पुनरधोवृत्तरीत्या त्रिगुणीकृतं तत्सूत्रं नवतन्तुकं संपद्यते। तत् त्रिरावेष्ट्य दृढग्रन्थिं कुर्यात्।

स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथंचन।
विच्छिन्नं वाप्यधोयातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत्॥

कपास का यज्ञोपवीत होना चाहिये। उसके बनाने का प्रकार यह है—ब्राह्मण या ब्राह्मणी से या विधवा आदि से काता हुआ सूत ले ले। सटी हुई चार अंगुली के मूल में छियानबे बार लपेट कर उसे तिगुना करके ऊपर से नीचे की ओर बट के फिर नीचे से ऊपर की ओर बट के तिगुना किया हुआ सूत नौ तागे का होता है। उसे तीन बार आवेष्टन करके दृढ़-ग्रन्थिका बनावे। ऐसा यज्ञोपवीत जो स्तन से ऊपर और नाभि से नीचे न हो, धारण करना चाहिये। टूटा हुआ, नाभि से नीचे लटका हुआ और भोजन करके बनाये हुए यज्ञोपवीत का त्याग करे।

रौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः। वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च॥' यहां 'वसीरन्' वस आच्छादने धातु से सिद्ध हुआ है। आच्छादन योग्य उत्तरीय अजिन के अलाभमें यज्ञोपवीतवत् धारण करना चाहिये—'तद् द्व्यङ्गुलं त्र्यङ्गुलं वा धार्यं यज्ञोपवीतवत्।' 'अखण्डं वा त्रिखण्डं वाऽष्टाचत्वारिंशदङ्गुलम्। चतुरङ्गुलविस्तीर्णं धारयेदजिनं सदा॥ त्र्यङ्गुलं तु बहिर्लोम यद्वा स्याच्चतुरङ्गुलम्। अजिनं धारयेद्द्विप्रश्चतुर्विंशाष्टषोडशैः॥' इति। उपर्युक्त मृगचर्म के अभाव में वस्त्र को उत्तरीय बनावे। ऐसी स्थिति में माणवक मन्त्र को न पढ़े या मन्त्र में अजिन-पद को छोड़ कर पढ़े।

१. मनुः—'कार्पासमुपवीतं स्याद् विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्। शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम्॥' कात्यायनः—'पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम्। तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम्॥' वामस्कन्धे धृते नाभिहृत्पृष्ठवंशयोर्धृतं यथा कटिपर्यन्तं प्राप्नोति तावत्परिमाणं कर्तव्यमित्यर्थः। 'स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथंचन। ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि च॥' देवलः—'शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहताङ्गुलिमूलके। आवृत्य षण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥ उपवीतं वटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते।' छन्दोगपरिशिष्टे—'त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम्। त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते॥' वामावर्तं त्रिगुणं कृत्वा प्रदक्षिणावृत्तं नवगुणं विधाय तदेव त्रिसरं कृत्वा ग्रन्थिमेकं विदध्यात्।

यज्ञोपवीत में गांठ देने के लिये निबन्ध-ग्रन्थों में 'तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते' इस वचन के अतिरिक्त एक से इतर ग्रन्थियों के संबन्ध में वचन नहीं मिलते। किन्तु वृद्धाचार से प्रवरसंख्यानुसार ग्रन्थि देने की प्रथा अविच्छिन्नरूप से प्रचलित है। निबन्धकारों ने वृद्धाचार को स्मृतितुल्य बतलाया है। अतः निबन्धों में प्रत्यक्ष वचन न मिलने पर भी यहां एक शब्द प्रवर-संख्या का उपलक्षण है।

'सिद्धे मन्त्राः प्रयोक्तव्याः' इति न्यायेन सिद्धं यज्ञोपवीतं त्रिगुणीकरणादिमन्त्रै-रभिमन्त्र्य यज्ञोपवीतं परममिति मन्त्रेण धारयेत्। तद्यथा—गायत्र्या त्रिगुणी-कृत्यापोहिष्ठेति तिसृभिः प्रक्षाल्य पुनर्गायत्र्या त्रिगुणीकृत्य ग्रन्थौ विष्णुब्रह्मरुद्रान्न-मेत्। केचिन्नवतन्तुषु नवदेवतान्यासमाहुः। ततो गायत्र्या दशवारमभिमन्त्रिता-भिरद्भिर्यज्ञोपवीतं प्रक्षाल्योदुत्यमिति। त्यृचेन सूर्याय प्रदर्श्य यज्ञोपवीतमिति मन्त्रेण प्रथमं दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य पश्चात्कण्ठे धारयेदिति।

उपवीतं ब्रह्मसूत्रं प्रोद्धृते दक्षिणे करे।
प्राचीनावीतमन्यस्मिन्निवीतं कण्ठलम्बितम्॥

'सिद्ध होने पर मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये' इस न्याय से बने हुए यज्ञोपवीत को तिगुना करना आदि, मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर 'यज्ञोपवीतं परमं' इस मन्त्र से उसे धारण करे। वह इस प्रकार है—गायत्री से तिगुना करके 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से प्रक्षालन करके फिर गायत्री से त्रिगुण करके ग्रन्थि में विष्णु, ब्रह्मा और शंकर को नमस्कार करे। कोई नौ तागों में नौ देवता का का न्यास कहते हैं। तदनन्तर दस बार गायत्री से अभिमन्त्रित जल से यज्ञोपवीत का प्रक्षालन कर 'उदुत्यं' इन तीन ऋचाओं से सूर्य को दिखाकर 'यज्ञोपवीतं' इस मन्त्र से पहिले दाहिने बाहु को उठाकर पीछे कण्ठ में धारण करे। यज्ञोपवीत में दाहिना हाथ निकले रहने पर 'उपवीत' बायां हाथ निकले रहने पर 'प्राचीनावीत' और केवल गले में रहने से 'निवीत' कहलाता है।

चितिकाष्ठचितिधूमचण्डालरजस्वलाशवसूतिकास्पर्शे स्नात्वा यज्ञोपवीत-त्यागः। कण्ठलम्बितत्वाद्यकृत्वा मलमूत्रोत्सर्गे च तत्त्यागः। मासचतुष्टयोत्तरं च यज्ञोपवीतत्यागः। केचिज्जननशावाशौचयोरन्तेपि तत्त्यागमाहुः।

चिता की लकड़ी, चिता का धुआँ, चाण्डाल, रजस्वला, मुर्दा और प्रसूति के स्पर्श होने पर स्नान करके यज्ञोपवीत का त्याग करे। कण्ठलंबित आदि न करके मलमूत्र करने में भी उसका त्याग करे। चार महीने के बाद यज्ञोपवीत का त्याग किया करे। कोई जननमरणाशौच के अन्त में भी यज्ञोपवीत का त्याग कहते हैं।

अथ जीर्णयज्ञोपवीतत्यागमन्त्रः

समुद्रं गच्छ स्वाहेति मन्त्रेण सप्रणवव्याहृतिभिर्वा जीर्णयज्ञोपवीतत्यागः।

'समुद्रं गच्छ स्वाहा' इस मंत्र से या प्रणवसहित व्याहृतियों से पुराने यज्ञोपवीत का त्याग करे।

उपलक्षण का लक्षण है-'स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वम्' अर्थात् अपना बोध कराते हुये अपने से भिन्न का भी जो बोध करावे।

'तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते' में एक-शब्द नानात्व-ग्रन्थियों का निषेधक नहीं, अपि तु प्रवर-संख्या का उपलक्षण ही है अतः 'एको ग्रन्थि' का 'प्रवरसंख्याको ग्रन्थिः' यह अर्थ करना चाहिये। अर्थात् जिसके जितने प्रवर हैं, एक-शब्द प्रवरसंख्यानुसार उतनी ग्रन्थियों का बोधक है। जैसे भाष्यकारों ने 'तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पंच वा सप्त वा पुनः' इस वचन से मेखला में प्रवरसंख्यानुसार ग्रन्थि बतलायी है वैसे यज्ञोपवीत में भी प्रवरसंख्यानुसार ग्रन्थि देनी चाहिये। आगे मेखला-विचार की सुधा-विवृति में उद्धृत गदाधरभाष्य देखें।

अथ यज्ञोपवीताभावे प्रायश्चित्तादि

यज्ञोपवीतं प्रमादाद् गतं चेत्तूष्णीं लौकिकं धृत्वा मनोज्योतिरिति अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतां १ वायो व्रतपते० २ आदित्य व्रतपते० ३ व्रतानां व्रतपते व्र० ४ इत्यादिमन्त्रचतुष्टयेन चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा विधिवन्नूतनं धारयेत्।

यज्ञोपवीत प्रमाद से यदि नष्ट हो जाय तो मौन होकर लौकिक यज्ञोपवीत धारण करके 'मनो ज्योतिः' 'अग्ने व्रतपते०' 'आदित्य व्रतपते०' 'व्रतानां व्रतपते०' इत्यादि चार मन्त्रों से चार घृताहुतियों का होम कर विधिपूर्वक नया यज्ञोपवीत धारण करे।

अथवा 'यज्ञोपवीतनाशजन्यदोषनिरासार्थं प्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्य आचार्यवरणाग्निप्रतिष्ठाद्याज्यभागान्ते सवितारं गायत्र्या तिलैराज्येन चाष्टोत्तरं शतं सहस्रं वा जुहुयात्। नूतनं धृत्वाऽतिक्रान्तं संध्याद्याचरेदिति। यज्ञोपवीतहीनः क्षणं तिष्ठेच्चेच्छतगायत्रीजपः। यज्ञोपवीतं विना[1] भोजने विण्मूत्रकरणे वा गायत्र्यष्टसहस्रं जपः। वामस्कन्धात्कूर्परे मणिबन्धान्ते वा पतिते यथास्थानं धृत्वा त्रीन् षड् वा यथाक्रमं प्राणायामान्कृत्वा नवं धारयेत्।

अथवा 'यज्ञोपवीत-नाशजन्य-दोष हटाने के लिये प्रायश्चित्त करूँगा' ऐसा संकल्प करके आचार्य का वरण अग्निस्थापन आदि आज्यभागपर्यन्त कर्म करके गायत्रीमन्त्र से तिल और घी से एक सौ आठ या एक हजार बार सूर्य का होम करे। नया यज्ञोपवीत धारण करके व्यतीत सन्ध्या आदि करे। यज्ञोपवीतरहित क्षण भर रहे तो सौ बार गायत्री जप करे। यज्ञोपवीत के बिना भोजन करने पर आठ हजार गायत्री का जप करे। बायें कन्धे से नीचे मणिबन्ध तक यदि गिर जाय तो यज्ञोपवीत को यथास्थान धारण कर क्रमसे तीन या छ प्राणायाम करके नया उपवीत धारण करे।

कोपादिना स्वयं यज्ञोपवीतत्यागे पूर्ववल्लौकिकं धृत्वा प्रायश्चित्तान्ते नवं धारयेत्। ब्रह्मचारिण एकं यज्ञोपवीतं स्नातकस्य द्वे। [2]उत्तरीयाभावे तृतीयकम्।

क्रोध आदि से स्वयं यज्ञोपवीत का त्याग करे तो पूर्ववत् लौकिक यज्ञोपवीत धारण करके प्रायश्चित्त के अन्त में नया धारण करे। ब्रह्मचारी का एक और स्नातक का दो यज्ञोपवीत होता है। दुपट्टा न रहने पर तीन यज्ञोपवीत धारण करे।

जीवत्पितृकेण जीवज्ज्येष्ठभ्रातृकेण चोत्तरीयं तत्स्थाने तृतीयं यज्ञोपवीतं न धार्यम्। आयुष्कामस्य त्र्यधिकानि बहूनि यज्ञोपवीतानि।

> अभ्यङ्गे चोदधिस्नाने मातापित्रोर्मृतेऽहनि।
> तैत्तिरीयाः कठाः कण्वाश्चरका वाजसनेयिनः॥
> कण्ठादुतार्य सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः।

अन्यथा याजुषैर्बह्वृचैः सामगैश्च कण्ठादुत्तारणे तत्त्यक्त्वा नवं धार्यम्।

---

१. मरीचिः—'ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विण्मूत्रे कुरुतेऽथवा। गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति॥' इति।

२. हेमाद्रिः—'यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते॥' इति।

जिसके पिता जीते हों और जेठा भाई जीता हो वह उत्तरीय या उसके स्थान पर तीसरा यज्ञोपवीत न धारण करे। आयुष्य की कामना से तीन से अधिक यज्ञोपवीत धारण करे। तैलपूर्वक स्नान में, समुद्र-स्नान में, माता पिता के मृताह में, तैत्तिरीय, कठ, कण्व, चरक और वाजसनेयी शाखा वाले कण्ठ से उतार कर यज्ञोपवीत का क्षालन करें। यजुर्वेदी, बह्वृच और सामवेदी कण्ठ से यज्ञोपवीत उतारें तो उसका त्याग कर नया धारण करें।

अथ मेखलाविचारः

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य [1]मेखला।
त्रिवृत्ता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा॥
मुञ्जाभावे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः।

ब्राह्मण की मेखला मूंज की तिगुनी की हुई बराबर और चिकनी बनानी चाहिये। उसमें एक गांठ या तीन गांठ या पांच गांठ डाले। मूंज के अभाव में कुश, अश्मन्तक औ बल्व का बनावे।

अथ दण्डवेद्यादिसंपादनम्

ब्राह्मणस्य भवेद्दण्डः[2] पालाशः केशसंमितः।
सर्वेषां यज्ञियो वा स्यादूर्ध्वनासाग्रसंमितः॥

बटुहस्तेन चतुर्हस्ता हस्तोच्छ्रिता चतुरस्रा सोपानाङ्किता प्रागुदक्प्रवणा कदलीस्तम्भाद्यलंकृता [3]वेदिः संपाद्या। अथोपनयनान्तर्गतपदार्थेषु विशेष उच्यते— वासःपरिधानोत्तरं लौकिकमाचमनम्। यज्ञोपवीतधारणोत्तरं तु यथाविधि आचमनविधिर्वक्ष्यते। एवमाज्यपात्रादुत्तरभागे बटुमाचमय्य प्रणीतापश्चिमदेशरूपतीर्थेन

---

१. मिह्यते सिच्यते वीर्यादिकमनेनेति मेहनमानन्देन्द्रियं तस्योपरि नाभेरधो भागेयत् खं तस्य मालेत्यर्थ इति भाष्यम्। बौधायनगृह्ये —'अथैनं मौञ्जीं मेखलां त्रिः प्रदक्षिण परिव्ययन् नाभिदेशे बध्नाति' 'त्रिर्मेखलां प्रदक्षिणं त्रिः परिवेष्ट्य ग्रन्थिरेकस्त्रयोऽपि वा पञ्च वेति।' रेणुकारिका—'त्रिवृता मेखला कार्या त्रिवारं स्यात्समावृता। तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पञ्च वा सप्त वा पुनः॥' निर्णयामृते— 'मेखला त्रिगुणीकृत्य कर्तव्या साम्प्रदायिकैः॥ मेखला सप्तहस्ता स्यादजिनं तु द्विहस्तकम्॥' इति।

आचार्य वटु के कटिप्रदेश में त्रिगुण-मेखला को प्रदक्षिण-क्रम से तीन बार वेष्टित करे और तृतीय वेष्टन में प्रवर-संख्या के अनुसार तीन पांच या सात ग्रन्थि दे। गदाधरभाष्ये—'अत्र प्रवर-संख्यया नियमः। त्र्यार्षेयस्य ग्रन्थित्रयं पञ्चार्षेयस्य पञ्च सप्तार्षेयस्य सप्तेति गर्गपद्धतौ। वृद्धाचारोऽप्येवमेव' इति। 'त्रिवृता' 'त्रिगुणीकृत्य' 'त्रिगुणां' इस कथन से नवगुण मेखला का निर्माण भ्रान्तिपूर्ण है। मेखला-मन्त्र का पाठ आचार्य का ही है। कारिकायाम्—'बध्नीयात्त्रिगुणां श्लक्ष्णामियं दुरुक्तमुच्चरन्। आचार्यस्यैव मन्त्रोऽयं न वटोरात्मनेपदात्॥' इति।

२. मनुः—'ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ। पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः॥' गौतम ने इसके अभाव में कहा—'यज्ञियो वा सर्वेषां मूर्धललाटनासाग्रप्रमाणः।' यज्ञियवृक्ष ये हैं—'अश्वत्थोदुम्बरौ बिल्वश्चन्दनः सरलस्तथा। शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः॥' इति।

३. संस्काररत्नमाला—'बटुहस्तमिता वेदिः' मण्डप का निर्माण तो आचार्य के हस्तमान से ही विहित है—'आचार्यहस्तमानेन मण्डपे निर्मिते शुभे। मध्ये वेदिः प्रकर्तव्या चतुरस्रा समन्ततः॥' इति।

प्रवेश्याचार्याग्न्योर्मध्येन नीत्वाचार्यदक्षिणत उपवेशयेत्। ततो [1]बर्हिरास्तरणादि स्रुवसंमार्गान्ते यज्ञोपवीतदानाद्याचमनान्तम्।

ब्राह्मण का दण्ड पलाश का सिर के बालों तक हो या सबका यज्ञिय-वृक्ष का ऊँचा नासाग्र प्रमाण का हो। बटु के हाथ से चार हाथ की ऊँची चौकोन सीढ़ी युक्त पूरब उत्तर की ओर ढालू और केले के खम्भे आदि से अलंकृत वेदी बनानी चाहिये। उपनयनान्तर्गत पदार्थों में विशेष कहते हैं। वस्त्र पहिनने के बाद लौकिक आचमन करे। यज्ञोपवीत धारण के बाद तो यथाविधि आचमन-विधि कहेंगे। एवं घृतपात्र से उत्तर भाग में बटु को आचमन कराके प्रणीता के पश्चिम-रूप तीर्थ से प्रवेश कराके आचार्य और अग्नि के मध्य से ले जाकर आचार्य के दक्षिण ओर बैठावे। तदनन्तर कुश का आस्तरण आदि स्रुव का सम्मार्जनपर्यन्त, यज्ञोपवीत का दान आदि आचमनान्त कृत्य करे।

ततः शिष्याञ्जलौ जलावक्षारणादि समिदाधानान्तं गायत्र्युपदेशाङ्गं बटोः शुचित्वसिद्धये अग्नये समिधमिति मन्त्र एकश्रुत्या प्रयोक्तव्यः। ततः परिदानाभिवादनान्ते आचारप्राप्तं गायत्रीपूजनं कृत्वाग्नेरुत्तरदेशे[2] गायत्र्युपदेशः कार्यः। अवक्षारणमप्युत्तरदेशे उक्तम्। प्राङ्मुख आचार्यः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टाय बटवे गायत्रीमुपदिशेत्।

पश्चात् शिष्य की अञ्जली में गायत्री के उपदेश का अङ्ग जलावक्षारण आदि समिधाधान पर्यन्त बटु की पवित्रत्व सिद्धि के लिये 'अग्नये समिधं' इस मन्त्र का एकश्रुति से प्रयोग करे। उसके बाद परिदान और अभिवादन के आचार-प्राप्त गायत्रीपूजन करके अग्नि के उत्तरप्रदेश में गायत्री का उपदेश करे। जलका अवक्षारण भी उत्तरप्रदेश में कहा है। पूर्वाभिमुख आचार्य पश्चिमाभिमुख बैठे बटु को गायत्री का उपदेश करे।

अथोपसंग्रहणप्रकारः

उपसंग्रहणं नाम—अमुकप्रवरान्वितामुकगोत्रोमुकशर्माहं भो अभिवादये इत्युक्त्वा दक्षिणोत्तरकर्णौ वामदक्षिणपाणिभ्यां स्पृष्ट्वा दक्षिणहस्तेन [3]गुरोर्दक्षिणपादं

१. प्रयोगचिन्तामणौ—'बह्नितस्तु परित्यज्य द्वादशाङ्गुलतो बहिः। परिस्तरणदर्भास्तु षोडश द्वादशापि वा॥' अपि च—'ईशानकोणमारभ्य पुनरीशानकोणगा। कुशैस्त्रिभिस्त्रिभिः कुर्यात् सव्येनाग्नेः परिस्तृतिः॥' इति।

२. उत्तरदेशे = उत्तरस्यां दिशि। पारस्करगृह्यसूत्रे—'अथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टायोपसन्नाय समीक्षमाणाय समीक्षिताय। दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके॥' इति। कारिका—'ॐ भूर्भुवः स्वः पूर्वां तु सावित्रीं वाचयेदथ। पादं पादं च सावित्र्याः स्वयमुक्त्वाऽथ वाचयेत्॥ ततस्त्वर्धर्चमर्द्धर्चं सर्वां तामथ वाचयेत्। एवं वक्तुमशक्तं तु तं यथाशक्ति वाचयेत्॥'इति।

३. लिङ्गपुराणे—'जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति। श्वशुरश्चाग्रजो भ्राता पञ्चैते गुरवः स्मृताः॥' 'मन्त्रोपदेष्टा वेदानां तथा धर्मनिबोधकः। सन्मार्गदायी बुद्धीनामाचार्यो व्रतबन्धने॥ पुराणसंहितां वक्ता नित्यं शास्त्रोपदेशकृत्॥' इत्यादयो गुरवो बोध्याः। हाथों को उत्तान करके अपने दक्षिण हाथ से गुरु के दक्षिण चरण और वाम हाथ से वाम चरण का स्पर्शपूर्वक अभिवादन करे, जैसा मनु ने कहा है—'व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः। सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः॥' 'वामेन वामं संस्पृश्य दक्षिणेन तु दक्षिणम्। हस्तेन हस्तकर्णाभ्यां गुरूणामभिवादनम्॥' इति।

वामेन वामं स्पृष्ट्वा शिरोऽवनमनमिति । एवं गुरुषु मातापित्रादिषु च अभिवादन-पूर्वकपादस्पर्शात्मकमुपसंग्रहणम् । वृद्धतरेषु त्वभिवादनमात्रम् । वृद्धेषु नमस्कारः ।

उपसंग्रहण का प्रकार—अमुक प्रवरयुक्त अमुक गोत्र अमुक शर्मा मैं आप को प्रणाम करता हूँ, ऐसा कहके दाहिना और बायां कान बायें दाहिने हाथ से स्पर्श करके दाहिने हाथ से गुरु के दाहिना पैर और बायें से बायां पैर स्पर्श करके सिर का नवाना उपसंग्रहण कहलाता है । इसी प्रकार गुरु माता पिता आदि का भी अभिवादन-पूर्वक चरण-स्पर्श उपसंग्रहण कहलाता है । अत्यन्त वृद्धों का तो अभिवादन मात्र ही किया जाता है । वृद्धों को नमस्कार किया जाता है ।

अथ अभिवादननिषेधः

अशुचिं वमन्तमभ्यक्तं स्नानं कुर्वन्तं जपादिरतं पुष्पजलभैक्षादिभारवाहं न[1] नमेत् । तन्नमने उपवासः । शूद्रनतौ त्रिरात्रम् । अन्त्यजे कृच्छ्रम् । देवतागुरुयतिन-मनाकरणे उपवासः ।

अशुचि, वमन करते हुए, तैल-स्नान करते हुए, जपादि में लगे हुए और पुष्प-जल-भिक्षा आदि के भार को ढोते हुए को नमस्कार न करे । उसको प्रणाम करने पर उपवास करे । शूद्र को प्रणाम करने पर त्रिरात्र उपवास करे । अन्त्यज को प्रणाम करने पर कृच्छ्रव्रत करे । देवता, गुरु और यति को प्रणाम न करने पर उपवास करे ।

अथ प्रत्यभिवादनम्

[2]तत्रान्त्यस्वरः प्लुतः कार्यः । तद्यथा—आयुष्मान् भव सौम्य देवदत्ता ३ । एकारौकारान्ते नाम्नि हरा ३ इ शम्भा ३ उ इति संध्यक्षरविश्लेषेण पूर्वभागा-कारः प्लुत इति । अनुप्रवचनीयार्थभिक्षायां भिक्षां भवान्ददातु भिक्षां भवती ददात्विति वा [3]भवच्छब्दमध्यकभिक्षावाक्यप्रयोगः । अन्यभिक्षायामादावन्ते वा भवच्छब्द इति ।

इसमें अन्त्य-स्वर प्लुत करना चाहिये । जैसे–'आयुष्मान् भव सौम्य देवदत्ता ३ । एकार और औकार के अन्त में नाम के 'हरा ३ इ शम्भा ३ उ' इस प्रकार सन्धि के अक्षरों को अलग करने से पूर्वभाग का अकार प्लुत होता है । अनुप्रवचनीय के लिये भिक्षा में 'भिक्षां भवान् ददातु' । या 'भिक्षां भवती ददातु' इस प्रकार मध्य में भवत् शब्द युक्त भिक्षा वाक्य का प्रयोग करे । अन्य भिक्षा में आदि या अन्त में 'भवति' शब्द का प्रयोग करे ।

---

१. आपस्तम्बः—'समित्पुष्पकुशाज्याम्बुमृदन्नाक्षतपाणिकम् । जपं होमं च कुर्वाणं नाभि-वादेत वै द्विजम् ॥' इति ।

२. तत्र=प्रत्यभिवादने, अभिवादक के प्रति आशीर्वचन में मनु ने कहा है—'आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने । अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥' भविष्यपुराणे—'ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति स्मृतिः ।' इति ।

३. मनुः—'भवत्पूर्वं चरेद् भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः । भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदु-त्तरम् ॥' अर्थात् ब्राह्मण ब्रह्मचारी—'भवति भिक्षां देहि' क्षत्रिय—'भिक्षां भवति देहि' और वैश्य—'भिक्षां देहि भवति' ऐसा कहकर भिक्षा की याचना करे ।

अथ विनायकशान्तिविचारः

अथोपनयनविवाहादौ निर्विघ्नफलप्राप्त्यर्थमुपसर्गनिरासाय वा सपिण्डमरणादिनिमित्तकप्रतिकूलनिवृत्त्यर्थं वा विनायकशान्तिः कार्या। तत्र कालः—शुक्लपक्षचतुर्थीगुरुवारः पुष्यश्रवणोत्तरारोहिणीहस्ताश्विनीमृगनक्षत्राणि शस्तानि। उपनयनादौ तु प्रधानकालानुरोधेन यथासंभवकालो ग्राह्यः। तत्रामुककर्मणो निर्विघ्नफलसिद्ध्यर्थमिति वा उपसर्गनिवृत्त्यर्थमिति वाऽमुकसपिण्डमरणनिमित्तकाशुचित्वप्रातिकूल्यनिरासार्थमिति वा संकल्प ऊह्यः। अवशिष्टप्रयोगोऽन्यत्र ज्ञेयः।

उपनयन और विवाह आदि में निर्विघ्नफलकी प्राप्तिके लिये या उपसर्ग हटाने के लिये अथवा सपिण्ड-मरण आदि निमित्त के प्रतिकूल की निवृत्ति के लिये विनायक शान्ति करनी चाहिये। उसका समय शुक्लपक्ष की चतुर्थी, गुरुवार और पुष्य, श्रवण, उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी और मृगशिरा नक्षत्र प्रशस्त है। उपनयन आदि में तो प्रधान काल के अनुरोध से यथासंभव काल का ग्रहण है। उसमें अमुक कर्म के निर्विघ्न फल की सिद्धि के लिये ऐसा या उपसर्गों की निवृत्ति के लिये या अमुक सपिण्डमरण-निमित्तक-अशुचित्व-प्रातिकूल्य के हटाने के लिये, ऐसा संकल्प की कल्पना कर लेनी चाहिये। उपनयन का शेष प्रयोग अन्य ग्रन्थों से ज्ञातव्य है।

अथ ग्रहयज्ञविचारः

विवाहोपनयनादिष्वाभ्युदयकर्मस्वादौ ग्रहयज्ञं कुर्यात्। श्राद्धातिरिक्तेष्वनाभ्युदयिकेष्वपि शान्त्यादिकर्मसु ग्रहानुकूल्यकामो ग्रहयज्ञं कुर्यात्। अरिष्टनिरासार्थमुत्पातेषु शान्तिस्थानेष्वप्रधानोऽपि ग्रहमख उक्तः। प्रधानकर्मणः पूर्वमव्यवहिते व्यवहिते वा काले कुर्यात्। व्यवहितपक्षे सप्तदिनाधिकव्यवधानं न कार्यम्।

विवाह उपनयन आदि आभ्युदयिक कर्मों के आदि में ग्रहयज्ञ करे। श्राद्ध के अतिरिक्त आभ्युदयिक-भिन्न कर्मों में भी शान्ति आदि कर्मों में ग्रहों को अनुकूल करने की इच्छा से ग्रहयज्ञ करे। अरिष्ट के लिये, उत्पातों में, शान्ति के स्थानों में, अप्रधान भी ग्रहयज्ञ कहा है। प्रधान-कर्म के पहिले व्यवधानरहित या व्यवधानयुक्त काल में करे। व्यवहित-पक्ष में सात दिन से अधिक का व्यवधान न करे।

अथ ऋत्विक्संख्याविचारः

प्रतिग्रहं दशावरप्रधानाहुतिसंख्यायामेक एव ऋत्विक्। दशाधिकपञ्चाशत्पर्यन्तसंख्यायां चत्वार ऋत्विजः। तत ऊर्ध्वं शतावरहोमेऽष्टौ ऋत्विजो नवम आचार्यः। तत्राचार्य आचार्यकर्म कृत्वा आदित्याय जुहुयात्। अष्टभ्यः सोमादिभ्योऽष्टौ ऋत्विजो जुहुयुः। ऋत्विक्चतुष्टयपक्षे द्वाभ्यां ग्रहाभ्यामेकैको जुहुयात्, आचार्योऽर्काय। ताम्रादिमयीषु प्रतिमासु सर्वासु सौवर्णीषु वा फलेष्वक्षतपुञ्जेषु वा आदित्यादिपूजनम्।

प्रत्येक ग्रह की दस से कम प्रधानाहुति की संख्या में एक ही ऋत्विज् होना चाहिये। दस से अधिक पचास तक की संख्या में चार ऋत्विज्, इसके आगे सौ से कम के होम में आठ ऋत्विज्

और नवम आचार्य होता है। इसमें आचार्य, आचार्य-कर्म करके सूर्य के लिये होम करे। सोम आदि आठ के लिये आठ ऋत्विज् होम करे। चार ऋत्विज् के पक्ष में दोनों ग्रहों के लिये एक ऋत्विज् होम करे और आचार्य सूर्य के लिये। तामे आदि की प्रतिमा में या सोने की सभी प्रतिमाओं में या फलों में या अक्षत-पुंज पर सूर्यादि का पूजन करे।

अथ कुण्डस्थण्डिलनिर्णयः

होमसंख्यानुसारेण [1]कुण्डस्य [2]स्थण्डिलस्य वा ग्रहवेदेश्च हस्तादिमानम्। तत्र प्रधानाङ्गाहुतीनां पञ्चाशदवरसंख्यत्वे रत्निमितं कुण्डम्। शतावरत्वे अरत्निमि-

---

१. देवप्रतिष्ठा आदि वेदीप्रधान यागों में मण्डप के मध्य में मण्डप के नवांश से वेदी और वेदी के अग्निकोण या उत्तर में कुण्ड का निर्माण और महारुद्रादि होमप्रधान यागों में मण्डप के मध्य में वेदी का निर्माण करना चाहिये।

कुण्ड का खात, विस्तार के समान हो। कुण्ड का हस्तमान (दीर्घ विस्तार) होमानुसार मूल में अङ्कित है। कण्ठ को छोड़कर चतुर्विंशांश मेखलात्रय का निर्माण करे। अधोमेखला का उत्सेध विस्तार दो अंगुल उसके ऊपर (बीच) का तीन अंगुल और उसके ऊपर का चार अंगुल होना चाहिये। इस प्रकार इसके उत्सेध और विस्तार में नवांश सम्पन्न होंगे। यहाँ कुण्ड-निर्माण में कुण्डव्यास का चतुर्विंशांश और वेदीनिर्माण में हस्त का चतुर्विंशांश अंगुल का प्रमाण मान्य है। मेखला के विषय में कुण्डार्क में 'नन्दाङ्गन्त्र्युच्चवेदत्रिकरविततयः' ऐसा मतान्तर है।

योनि की रचना कुण्ड के पश्चिम भाग में भूमि से आरम्भ करे। वह पश्चिम मेखला के ऊपर मध्य भाग में लम्बाई में कुण्डविस्तार के आधी और चौड़ाई में कुण्डविस्तार के तृतीयांश पीपलपत्र की आकृतिवाली या गज के ओष्ठ सदृश हो। उसका अग्रभाग कुण्ड के मध्य में प्रविष्ट पश्चिम से उन्नत मेखला के ऊपर का भाग चतुर्विंशांश उत्सेध और दो मृत्पिण्डों से युक्त हो। उसमें मध्य मेखला में चारो ओर से वेणीरूप उपयमन कुशा के परिस्तरणार्थ छिद्र बनावे। भूमि में स्थूलता की अपेक्षा ऊपर के भाग की स्थूलता कुछ कम हो।

कुण्ड के मध्य में नाभि नीचे दो अंश से उच्च और चार अंश से विस्तृत बनावे। कुण्डार्क में मतान्तर से एक अंश से उच्च और दो अंश से विस्तृत बनाना लिखा है।

प्रधान वेदी एक हाथ ऊँची तीन वप्रसे युक्त और कुण्ड के समान विस्तृत हो। ग्रहादि-की अन्य वेदियां एक हाथ ऊँची, एक हाथ विस्तृत और तीन वप्रों से युक्त हों। प्रथम वप्र का उच्छ्राय और विस्तार दो अङ्गुल, द्वितीय तृतीय वप्र का उच्छ्राय तीन तीन अङ्गुल और विस्तार दो दो अङ्गुल का हो। कुण्ड और वेदी का अन्तर सवा हाथ और मतान्तर से तेरह अङ्गुल का हो।

सौन्दर्य के लिये पहले कुण्ड को चूना से पोतकर मध्य मेखला, योनि और नाभि को लाल रंग से तथा नीचे की मेखला को काला रंग से रंगे। इसी तरह सभी वेदियों को रक्तवर्णादि से रंग कर उन्हें सुन्दर बनावे।

२. सूतसंहिता में स्थण्डिल का निर्माण प्रकार—'स्थण्डिले मेखलाः कार्याः कुण्डोक्तस्थण्डिला-कृतिः। योनिस्तत्र प्रकर्तव्या कुण्डवत्तत्र वेदिभिः॥ समेखलं स्थण्डिलं तु प्रशस्ते होमकर्मणि। कण्ठं तु वर्जयेत्तत्र खाते कण्ठः प्रकीर्तितः॥' तन्त्रान्तरे—'मृदा सुवर्णया वापि सूक्ष्मबालुकयाऽपि वा। अङ्गु-लोच्चं तथा वेदाङ्गुलोच्चं स्थण्डिलं विदुः॥ चतुष्कोणमुदक्प्राचीप्लवमल्पाहुतौ शुभम्। पंचा-ङ्गुलोच्चमथवा वस्वङ्गुलसमुन्नतम्॥' इति। विशेष जानकारी के लिये कुण्डार्क-कुण्डरत्नावली-प्रभृति ग्रन्थों को देखें।

तम्। सहस्रावरत्वे हस्तमितम्। अयुतादिहोमे हस्तद्वयम्। लक्षहोमे चतुर्हस्तम्। तत्र कृतमुष्टिः करो रत्निः। मुक्तकनिष्ठिकः करः अरत्निः। चतुर्विंशत्यङ्गुलो हस्तः। यवोनचतुर्स्त्रिंशदङ्गुलानि हस्तद्वयम्। अष्टचत्वारिंशदङ्गुलानि हस्तचतुष्टयम्। कुण्डे मेखलायोनिनाभिखातादिमानं ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयम्। इदं कुण्डादिमानं सर्वत्र ज्ञेयम्।

होम की संख्या के अनुसार कुण्ड या स्थण्डिल का और ग्रहवेदी का हस्त आदि मान होता है। उसमें प्रधान की अंगाहुतियों का पचास से कम संख्या होने पर रत्निमित और सौ से कम होने पर अरत्निमित कुण्ड होता है। हजार से कम में हस्त-मित और दस हजार आदि के होम में दो हाथ का और लक्ष होम में चार हाथ का कुण्ड होता है। उसमें मुट्ठी बांधे हुए हाथ को 'रत्नि' और खुली कनिष्ठिका के हाथ को 'अरत्नि' कहते हैं। हाथ चौबीस अंगुली का होता है। जौ भर कम चौबीस अंगुली के दो हाथ होते हैं। अड़तालिस अंगुलियों के चार हाथ होते हैं। कुण्ड में मेखला, योनि, नाभि और खात आदि का मान दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिये। यह कुण्ड आदि का मान सर्वत्र ज्ञातव्य है।

अथ होमद्रव्याणि

समिच्चर्वाज्यं द्रव्यम्।

अर्कः पलाशः खदिरश्चापामार्गोऽथ पिप्पलः।
औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशोऽर्कादेः क्रमात्समित्[1] ॥

केचित्तिलानप्याहुः। अर्कादिप्रधानहोमसंख्यादशांशेनाधिदेवताप्रत्यधिदेवतानां होमः। अधिदेवताद्यर्धसंख्यया क्रतुसंरक्षकक्रतुसाद्गुण्यदेवतानां शान्त्यङ्गभूते ग्रहयज्ञे बलिदानं कुर्वन्ति। अन्यत्र ग्रहमखे बलिदानं न कुर्वन्ति। प्रधानभूताया एकाहुतेरेकविप्रभोजनं श्रेष्ठम्। शताहुतेरेकविप्रभोजनं मध्यमम्। सहस्राहुतेरेकविप्रभोजनं जघन्यम्। सुविस्तरप्रयोगादिकमन्यत्र। इति ग्रहयज्ञः।

समिधा, चरु और घृत, द्रव्य कहलाता है। सूर्य आदिकी समिधा क्रम से ये हैं—अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश। कुछ लोग तिलों को भी कहते हैं। सूर्यादि प्रधान होम की संख्या के दशांश से अधिदेवता प्रत्यधिदेवता का होम होता है। शान्ति का अङ्गभूत ग्रहयज्ञ में अधिदेवता की आधी संख्या से यज्ञ-संरक्षक और यज्ञ-साद्गुण्य-देवताओं बलिदान करते हैं। अन्यत्र ग्रहयज्ञ में बलिदान नहीं करते। प्रधानभूत एक आहुति का एक ब्राह्मणभोजन श्रेष्ठ है। सौ आहुति का एक ब्राह्मणभोजन मध्यम है। हजार आहुति का एक ब्राह्मणभोजन अधम है। इससे विस्तृत प्रयोग दूसरे ग्रन्थों में है। ग्रहयज्ञ समाप्त।

अथ बृहस्पतिशान्तिप्रयोगः

कुमारस्योपनयनकाले कन्याया विवाहे वा बृहस्पत्यानुकूल्याभावे शौन-

---

१. अन्यत्र—'समिदर्कमयी भानोः पालाशी शशिनस्तथा। खादिरी भूमिपुत्रस्य अपामार्गी बुधस्य च ॥ शमीजा तु शनेः प्रोक्ता राहोर्दूर्वामयी तथा।' सर्वेषामभावे पालाशीर्वा। होम में ईश्वर-संहितोक्त तिल और आज्य का महत्त्व—'सर्वथा होमकर्मार्थे तिलमाज्यं न लोपयेत्। तिलाज्ययोरभावे तु हवनं स्यान्निरर्थकम् ॥' इति।

काद्युक्ता शान्तिः कार्या। 'अस्य कुमारस्योपनयने अस्याः कन्यकाया विवाहे वा बृहस्पत्यानुकूल्यसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं बृहस्पतिशान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्याचार्यं वृणुयात्। स्थण्डिले ईशान्यां यथाविधि स्थापिते श्वेतकलशे पञ्चगव्यकुशोदकविष्णुक्रान्ताशतावरीप्रमुखौषधिप्रक्षेपपूर्णपात्रनिधानान्ते हरिताक्षतनिर्मितदीर्घचतुरस्रपीठे हैमीं गुरुप्रतिमां प्रतिष्ठाप्य स्थण्डिलेऽग्निस्थापनादि।

कुमार के उपनयन या कन्या के विवाह काल में बृहस्पति के अनुकूल न रहने पर शौनक आदि की कही हुई शान्ति आदि करनी चाहिये। 'इस कुमार के उपनयन में अथवा इस कन्या के विवाह में बृहस्पति की अनुकूलता-सिद्धि द्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये बृहस्पति की शान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प कर आचार्य का वरण करे। स्थण्डिल में ईशान दिशा में यथाविधि स्थापित श्वेत कलश में पंचगव्य, कुशोदक, विष्णुक्रान्ता और शतावरी, प्रमुख औषधि का प्रक्षेप करके पूर्णपात्र रखने के अन्त में हरित अक्षत से बनाये बड़े चौकोने आसन पर सोने की बृहस्पति की प्रतिमा को स्थापित कर स्थण्डिल में अग्नि-स्थापनादि करे।

अन्वाधाने बृहस्पतिमश्वत्थसमिदाज्यसर्पिर्मिश्रपायसैः साज्येन मिश्रितयवव्रीहितिलेन[1] च प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशताहुतिभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। आज्यभागान्ते प्रतिमायां षोडशोपचारैर्गुरुपूजा। तत्र पीतवस्त्रयुग्मपीतयज्ञोपवीतपीतचन्दनपीताक्षतपीतपुष्पघृतदीपदध्योदननैवेद्यार्पणान्ते माणिक्यं सुवर्णं वा दक्षिणां दत्त्वा ग्रहमखोक्तरीत्या कुम्भानुमन्त्रणान्ते बृहस्पतिमन्त्रेण दधिमध्वक्तसमिदाज्यगृहसिद्धपायसमिश्रितयवाद्यैर्यथान्वाधानं होमः। होमशेषं समाप्य गन्धादिभिर्बृहस्पतिं संपूज्य पीतगन्धाक्षतपुष्पयुतताम्रपात्रस्थजलेनार्घ्यं[2] दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

अन्वाधान में पीपल की समिधा घृत और घी मिले हुए पायस से घृतमिश्रित जव व्रीहि और तिल से प्रत्येक द्रव्य की एक सौ आठ आहुतियों से बृहस्पति का होम करे शेष से स्विष्टकृत् इत्यादि। आज्यभाग के अन्त में प्रतिमा में सोलहो उपचार से बृहस्पति की पूजा करे। उसमें पीला जोड़ा वस्त्र, पीत यज्ञोपवीत, पीत चन्दन, पीत अक्षत, पीत पुष्प, घी का दिया, दही भात और नैवेद्य अर्पण करने के बाद माणिक या सुवर्ण की यज्ञदक्षिणा देकर ग्रह में कही रीति से कुम्भ के अनुमन्त्रण के बाद बृहस्पति के मन्त्र से दही मधु में भिगोई समिधा और घृत तथा घर के बने पायस-मिश्रित जव आदि से अन्वाधान होम करे। होम शेष को समाप्त कर गन्ध आदि से बृहस्पति की पूजा करके पीला गन्ध, अक्षत-पुष्प-युक्त-तामे के पात्र में स्थित जल से अर्घ्य दे। उसके मन्त्र का यह आशय है—

गम्भीरदृढरूपाङ्ग देवेज्य सुमते प्रभो।
नमस्ते वाक्पते शान्त गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते॥ प्रार्थयेत्—

---

१. यवादि का मान—'यवार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं तिलाः स्मृताः। तिलार्धं शर्कराः प्रोक्ता आज्यं भागचतुष्टयम्॥' आनन्दरामायण में मतान्तर—'तिलार्धं तण्डुला देयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा। यवार्धं शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्धं च घृतं स्मृतम्॥' इति।

२. अर्घ में प्रक्षेप की वस्तु—'आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधिदूर्वाऽक्षतास्तथा। फलं सिद्धार्थकश्चैव अर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः॥' 'अर्घो मूर्ध्नि प्रदातव्यः' इस वचन से अर्घ शिर पर ही देना चाहिये।

भक्त्या यत्ते सुराचार्य होमपूजादिसत्कृतम् ।
तत्त्वं गृहाण शान्त्यर्थं बृहस्पते नमो नमः ॥
जीवो बृहस्पतिः सूरिराचार्यो गुरुरङ्गिराः ।
वाचस्पतिर्देवमन्त्री शुभं कुर्यात्सदा मम ॥ इति ।

विसर्जनप्रतिमादानान्ते कुमारादियुतयजमानाभिषेकः । तत्र मन्त्राः — आपोहिष्ठेति तिस्रः ३ । तत्त्वायामि० १ । स्वादिष्ठया० ४ । समुद्रज्येष्ठाः० ४ । इदमापः प्रवह० १ । तामग्निवर्णां० १ । या ओषधीः० १ । अश्वावतीर्गोमतीर्न० १ यद्देवा देवहेडनमित्याद्याः कूश्माण्डमन्त्राः पुनर्मनः पुनरायुरित्यन्तास्तैत्तिरीयशाखायां प्रसिद्धाः कौस्तुभादौ लिखिता एतैरभिषिच्य विप्रान्भोजयेदिति । इति बृहस्पतिशान्तिः ।

हे प्रभो ! हे सुबुद्धे ! गंभीर और दृढ़-श्रृंग वाले हे देवेज्य ! हे बृहस्पते ! आप को नमस्कार है । हे शान्त ! हमारे अर्घ्य को ग्रहण करें, आपको नमस्कार है । प्रार्थना करे—हे सुराचार्य ! भक्तिपूर्वक मैंने जो आप का होम पूजा आदि से सत्कार किया है उसे आप शान्ति के लिये ग्रहण करें, आप को नमस्कार है । जीव, बृहस्पति, सूरि, आचार्य, गुरु अंगिरा, वाचस्पति और देवमन्त्री मेरा सदा शुभ करें । विसर्जन और प्रतिमादान के बाद कुमार आदि से युक्त यजमान का अभिषेक करे । उसमें मन्त्र ये हैं—'आपोहिष्ठा' ये तीन 'तत्वायामि१' 'स्वादिष्ठया'०४ 'समुद्रज्येष्ठा'०४ 'इदमापः प्रवह०१' 'तामग्निवर्णां'०१ 'या ओषधी०१' 'अश्वावतीर्गोमतीर्न०१' 'यद्देवा देवहेडनं' इत्यादि कूष्माण्ड-मन्त्र 'पुनर्मनः पुनरायुः' इतने तैत्तिरीय शाखा में प्रसिद्ध और कौस्तुभ आदि में लिखित इन मन्त्रों से अभिषेक करके ब्राह्मणों को भोजन करावे । बृहस्पतिशान्ति समाप्त ।

अथोपनयनादौ संकल्पाः

तत्रोपनयनात्पूर्वेद्युराचार्यो 'ममोपनेतृत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं कृच्छ्रत्रयं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाऽहमाचरिष्ये, तथा द्वादशाधिकसहस्रगायत्रीजपमुपनेतृत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं करिष्ये' इति संकल्पयेत् ।

इसमें उपनयन के पूर्व दिन आचार्य 'मेरे उपनेतृत्व की योग्यता-सिद्धि के लिये तीन कृच्छ्र या उसके बदले में गोनिष्क्रयीभूत यथाशक्ति रजत-द्रव्य के दान से करूँगा और एक हजार बारह गायत्री जप उपनयन की योग्यता-सिद्धि के लिये करूँगा' ऐसा संकल्प करे ।

अथ संस्कारलोपे प्रायश्चित्तम्

यदि पूर्वसंस्कारा अतीतास्तदा 'अस्य कुमारस्य पुंसवनादीनामथवा जातकर्मादीनां चौलान्तानां संस्काराणां कालातिपत्तिजनितप्रत्यवायपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रतिसंस्कारमेकैकां ॐ भूर्भुवः स्वःस्वाहेति समस्तव्याहृत्याज्याहुतिं होष्यामि' इति संकल्प्याग्निस्थापनेध्माधानादिपाकयज्ञतन्त्रसहिता वह्निस्थापनाज्यसंस्कारपात्रसंमार्गमात्रसहिता वाऽतीतसंस्कारसमसंख्यया समस्तव्याहृत्याज्याहुतीर्जुहुयात् ।

यदि इसके पहिले के संस्कार बीत गये हों तब 'इस कुमार का पुंसवन आदि का अथवा जातकर्म आदि चौलपर्यन्त संस्कारों का कालातिपत्ति से उत्पन्न पाप का परिहारपूर्वक भगवान्

की प्रसन्नता के लिये प्रत्येक संस्कार के लिये एक एक घृताहुति 'ॐभूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस समस्त व्याहृति से करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्निस्थापन समिदाधान आदि पाकयज्ञ तन्त्रसहित अग्निस्थापन घृतसंस्कार पात्रसंमार्जनमात्र सहित या बीते हुए संस्कार के समान संख्या से समस्त व्याहृतियों से घृत का होम करे।

ततः 'अस्य कुमारस्य पुंसवनानवलोभनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकर्मसूर्यावलोकननिष्क्रमणोपवेशनाऽन्नप्राशनचौलसंस्काराणां लोपनिमित्तप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारं 'पादकृच्छ्रं प्रायश्चित्तं चौलस्यार्धकृच्छ्रं, बुद्धिपूर्वकलोपे प्रतिसंस्कारमर्द्धकृच्छ्रं चूडायाः कृच्छ्रं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये।' चौलस्योपनीत्या सह करणस्य कुलधर्मप्राप्तत्वे कालातिपत्तिहोमं चौललोपप्रायश्चित्तं च न कार्यम्। केचित्संस्कारलोपप्रायश्चित्तं बटुना कारयन्ति। ततो बटुः 'मम कामचारकामवादकामभक्षादिदोषपरिहारद्वारोपनेयत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं कृच्छ्रत्रयप्रायश्चित्तं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतदानद्वारा आचरिष्ये' इति संकल्पयेत्।

इसके बाद 'इस कुमार के पुंसवन, अनवलोभन, सोमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, सूर्यावलोकन, निष्क्रमण, उपवेशन, अन्नप्राशन और चौल संस्कारों का लोप-निमित्त-प्रत्यवाय-परिहार के लिये, प्रत्येक संस्कार का पादकृच्छ्र प्रायश्चित चौल का अर्धकृच्छ्र, बुद्धिपूर्वक लोप होने पर प्रत्येक संस्कार का अर्धकृच्छ्र, चौल का कृच्छ्र, उसके बदले में गोनिष्क्रयीभूत यथाशक्ति रजतद्रव्य के दान से करूँगा।' जनेऊ के साथ चूड़ाकर्म करना कुलधर्म हो तो कालातिपत्ति होम और चौललोप का प्रायश्चित्त न करे। कुछ लोग संस्कारलोप का प्रायश्चित्त बटु से कराते हैं। तब बटु—'मेरे कामचार कामबाद और कामभक्षणादि दोष के परिहारद्वारा उपनेयत्व की योग्यता-सिद्धि के लिये तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त उसके बदले में गोनिष्क्रयीभूत यथाशक्ति रजतदान के द्वारा करूँगा' ऐसा संकल्प करे।

निष्कं निष्कार्धं निष्कपादं निष्कपादार्धं वा रजतं [2]गोमूल्यं देयं, न तु न्यूनम्। अष्टगुञ्जमाषरीत्या चत्वारिंशन्माषो निष्क इत्युक्तम्। ततः—

प्रायश्चित्ते कृते पश्चादतीतमपि कर्म वै।
कार्यमित्येक आचार्या नेत्यन्ये तु विपश्चितः॥

इति वचनाज्जातकर्मादिसंस्काराः कार्या न कार्या इति [3]पक्षद्वयम्। तत्र

---

१. शौनकः—'आरभ्याधानमाचौलात्कालेऽतीते तु कर्मणाम्। व्याहृत्याग्निं तु संस्कृत्य हुत्वा कर्म यथाक्रमम्॥ एतेष्वेकैकलोपे तु पादकृच्छ्रं समाचरेत्॥ चूडायामर्धकृच्छ्रं स्यादापदि त्वेवमीरितम्। अनापदि तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत्॥' कृच्छ्र का प्रत्याम्नाय-'कृच्छ्रो देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम्।' इत्यादि जानना चाहिये।

२. स्मृतिः—'धेनुः पञ्चभिराढ्यानां मध्यानां त्रिपुराणिका। कार्षापणैकमूल्या हि दरिद्राणां प्रकीर्तिता॥ इति।

३. कात्यायनः—'लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते। प्रायश्चित्ते कृते पश्चाल्लुप्तं कर्म समाचरेत्॥' कारिका-'प्रायश्चित्ते कृतेऽतीते लुप्तं कर्म कृताकृतम्॥' इति।

प्रायश्चित्तेन प्रत्यवायपरिहारेऽपि संस्कारजन्यापूर्वोत्पत्त्यर्थं संस्कारानुष्ठानपक्षे संकल्पः ।

एक निष्क, आधा निष्क, चौथाई निष्क या चौथाई निष्क के आधा रजत का गोमूल्य देना चाहिये, न कि कम । आठ गुंजा का एक माशा होता है इस रीति से चालिस माशे का एक निष्क होता है, यह कह चुके हैं । एक आचार्य का मत है कि प्रायश्चित्त करने के पश्चात् बीते हुए कर्म को भी करे, अन्य विद्वान् कहते हैं नहीं । इस आशय के वचन से जातकर्म आदि संस्कार करे या नहीं करे ये दो पक्ष हैं । उसमें प्रायश्चित्त से प्रत्यवाय का परिहार होने पर भी संस्कार करने से अपूर्व की उत्पत्ति के लिये संस्कार करने के पक्ष में यह संकल्प है —

पत्न्या कुमारेण च सहोपविश्य देशकालौ संकीर्त्य 'अस्य कुमारस्य गर्भाम्बुपानजनितदोषनिबर्हणायुर्मेधाभिवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् अतिक्रान्तं जातकर्म तथा बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणायुरभिवृद्धिव्यवहारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं नामकर्म आयुरभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सूर्यावलोकनम् आयुःश्रीवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपर० निष्क्रमणम् आयुरभिवृद्धिद्वारा श्रीपर० उपवेशनं मातृगर्भमलप्राशनशुद्धयन्नाद्यब्रह्मवर्चसतेजइन्द्रियायुरभिवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमे० अन्नप्राशनं चाद्य करिष्ये,

पत्नी और कुमार के साथ बैठ देश काल को कह कर 'कुमार का गर्भ के जलपान-जन्य-दोष हटाने के लिये और आयु मेधा के अभिवृद्ध्यर्थ तथा बीजगर्भ-जनित-पाप-निवृत्तिपूर्वक श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये बीते हुये जातकर्म को तथा बीजगर्भ-जात-पाप-निवृत्त्यर्थ और आयुष्य की अभिवृद्धि व्यवहार-सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं नामकर्म-आयु-अभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये सूर्यावलोकन आयु और श्रीवृद्धि एवं बीजगर्भ-उत्पन्न-पाप निबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ निष्क्रमण तथा आयुवृद्धिद्वारा भगवत्प्रीत्यर्थ उपवेशन माता के गर्भ में मलप्राशन की शुद्धि, अन्नाद्य ब्रह्मवर्चस तेज, इन्द्रिय और आयु की अभिवृद्धि एवं बीजगर्भ-जन्य-पाप के निबर्हणद्वारा भगवत्प्रीत्यर्थ अन्नप्राशन आज करूँगा,

बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणबलायुर्वर्चोभिवृद्धिद्वारा श्रीपर० चूडाकर्म द्विजत्वसिद्ध्या वेदाध्ययनाधिकारार्थम् उपनयनं च श्वः करिष्ये, जातादिसर्वसंस्काराङ्गत्वेन पुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं करिष्ये, उपनयनाङ्गत्वेन मण्डपदेवतास्थापनं कुलदेवतास्थापनं च करिष्ये ।' इति स्वस्वगृह्यग्रन्थानुसारेण संकल्प्य नान्दीश्राद्धान्तं 'तन्त्रेण कृत्वा मण्डपदेवतास्थापनादिकं बटुपितृभ्यां सुहृत्कृतवस्त्रदानान्तं कृत्वाऽन्नप्राशनान्ताः संस्कारा यथागृह्यं पूर्वदिने कार्याः । चौलोपनयने परदिने कार्ये ।

बीजगर्भ-जन्य-पाप-निबर्हण-पूर्वक आयु और तेज को अभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं चूड़ाकर्म और द्विजत्व सिद्धि से वेदाध्ययन के अधिकार के लिये कल उपनयन करूँगा, जात आदि

१. 'कर्मणां युगपद्भावस्तन्त्रम्' अर्थात् अनेक कर्मों के एक समय में एक साथ अनुष्ठान करना तन्त्र कहलाता है ।

सम्पूर्ण संस्कार का अंग होने से पुण्याहवाचन, मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध करूँगा, जातकर्मादि सम्पूर्ण संस्कार का अङ्ग होने से पुण्याहवाचन, मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध करूँगा उपनयनाङ्गत्वेन मण्डपदेवता-स्थापन और कुलदेवता का स्थापना भी करूँगा।' अपने गृह्य-ग्रन्थों के अनुसार संकल्प करके नान्दीश्राद्धपर्यन्त तन्त्र से करके मण्डपदेवता-स्थापनादि बटु के माता पिता और मित्र वस्त्रदान करके अन्त में अन्नप्राशनपर्यन्त संस्कार अपने गृह्य के अनुसार पहले दिन करे। चौल और उपनयन दोनों दूसरे दिन करे।

सर्वेषां सद्यःकरणे पूर्वोक्तसर्वसंकल्पवाक्यान्ते 'उपनयनं चाद्य करिष्ये' इति संकल्पः। संस्काराणामकरणपक्षे चूडाकर्मोपनयने संकल्प्य 'उभयाङ्गत्वेन पुण्याहवाचनं नान्दीश्राद्धम् उपनयनाङ्गत्वेन मण्डपदेवतास्थापनं च करिष्ये' इति संकल्पः। नान्दीश्राद्धान्ते पूर्वपूजितमातृकासहितमण्डपदेवतास्थापनम्। ततः पूर्वोक्तरीत्या वेदिनिर्माणम्। इति पूर्वदिनकृत्यम्।

सब संस्कारों को सद्यः करने के पक्ष में पहिले कहे हुए सब संकल्पों के वाक्य के अन्त में 'उपनयन आज करूँगा' ऐसा संकल्प है। संस्कारों के न करने के पक्ष में चूड़ाकर्म और उपनयन में संकल्प कर 'दोनों के अंगभूत पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, उपनयनांग-मण्डपदेवता-स्थापन और कुलदेवता-स्थापन करूँगा' ऐसा संकल्प करे। नान्दीश्राद्ध के अन्त में पूर्व में पूजित मातृकासहित मण्डपदेवता का स्थापन करे। तदनन्तर पहिले कही हुई रीति से वेदी बनावे। पूर्वदिनकृत्य समाप्त।

अथ उपनयनदिने कृत्यम्

ततः परदिनेऽतिक्रान्तं चौलं कृत्वा पूर्वं जातचौलं त्वभ्यङ्गस्नानेन स्नापयित्वा मात्रा सह भोजयेत्। तदा ब्रह्मचारिभ्यो भोजनं देयमित्याचारः। ततो देशकालौ संकीर्त्य 'अस्य कुमारस्य द्विजत्वसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गायत्र्युपदेशं कर्तुं तत्प्राच्याङ्गभूतं वापनादि करिष्ये' इति संकल्प्य वापनादि कुर्यात्। मुख्यशिखाऽन्यशिखानां चौले धृतानामत्र वापनम्।

तदनन्तर दूसरे दिन नहीं किये हुए चौल को करके पहिले जिसका चौल हो गया है उसको तो अभ्यंग-स्नान से नहलाकर माता के साथ भोजन करावे। उस समय ब्रह्मचारियों को भोजन देने का आचार है। इसके पश्चात् देशकाल को कहकर 'इस कुमार की द्विजत्व-सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थ गायत्री उपदेश करने के लिये उसके पहिले के अंगभूत वपन आदि करूँगा' ऐसा संकल्प कर मुंडन आदि करे। चूड़ाकर्म में रखी गई मुख्य शिखा से अन्य शिखा का यहां वापन करे।

ततः स्नातमहतवस्त्रं[1] बद्धशिखं कृतमङ्गलतिलकं बटुं कुर्युः। मौहूर्तिकं संपूज्य तदुक्ते सुमुहूर्ते आचार्यो वेद्यां प्राङ्मुख उपविष्टोऽन्तःपटमपसार्य[2] बटुमुखमीक्षेत कृतनमस्कारं तं स्वाङ्के कुर्वीत। ततो विप्रा यथाचारं मन्त्रैरुभयोः

---

१. अहत-वस्त्र का कश्यपोक्त लक्षण है—'अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयम्भुवा। मांगल्येषु प्रशस्तं तत् तावत्कालं न सर्वदा॥' अन्यत्र—'ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्। अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम्॥' ईषद्धौतमित्यत्र सकृद्धौतमिति पाठान्तरम्।

२. अन्यत्र तु—'उपदेशे तु गायत्र्या वाससाऽऽच्छादयेद् बटुम्।' अर्थात् गायत्री-उपदेश के समय में वस्त्र से बटुको ढांक दे।

शिरस्यक्षतान् क्षिपेयुः। एवं यथागृह्यमुपनयनप्रयोगं ज्ञात्वानुष्ठेयम्। सर्वत्र बटुना गायत्र्यादिमन्त्रान्वाचयन् संधिकृतं वर्णविकारं नान्यथा कुर्यात्। प्रयोगशेषं समाप्य द्वे शते शतं यथाशक्ति वा ब्राह्मणभोजनं संकल्प्य विप्रेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दद्यात्।

तदनन्तर बटु का स्नान, अहत वस्त्र का धारण, शिखाबन्धन एवं मंगलतिलक करे। ज्योतिषी की पूजा कर उसके कहे सुन्दर मुहूर्त में आचार्य पूर्वाभिमुख वेदी पर बैठे। अन्तःपट को हटाकर बटु के मुख को देखे। बटुद्वारा नमस्कार करने पर बटु को अपने गोदी में कर ले। तदनन्तर ब्राह्मण लोग आचारानुसार मन्त्रों से दोनों के सिर पर अक्षत छिड़के एवं गृह्य के अनुसार जानकर उपनयन प्रयोग को करे। सब जगह बटु के द्वारा गायत्री आदि मन्त्रों को कहलाते हुए सन्धिकृत वर्णविकार को अन्यथा न करे। शेष प्रयोग को समाप्त करके दो सौ या एक सौ यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन का संकल्प कर ब्राह्मणों को भूयसीदक्षिणा दे।

ततो ब्रह्मचारी नूतनभिक्षाभाजने मातरं मातृष्वस्रादिकां वा [1]'भिक्षां भवती ददात्विति अनुप्रवचनीयार्थं तण्डुलान्याचेत। पितरं भिक्षां भवान् ददात्विति याचेत। भैक्ष्यमाचार्याय निवेद्य मध्याह्नसंध्यामुपास्य गुरुसन्निधावहःशेषं नयेत्। तद्दिने मध्याह्नसंध्या विकल्पितेत्यन्ये। ब्रह्मयज्ञस्तु द्वितीयदिनमारभ्य [2]गायत्र्या कार्यः।

इसके बाद ब्रह्मचारी नये भिक्षा-पात्र में माता या मौसी आदि से 'आप भिक्षा दें' ऐसा अनुप्रवचनीय के लिये तण्डुलों को मांगे। पिता से 'आप भिक्षा दें' ऐसी याचना करे। आचार्य को मांगी गई भिक्षा देकर मध्याह्न का सन्ध्योपासन करके गुरु की सन्निधि में शेष दिन बितावे। उस दिन मध्याह्न सन्ध्या विकल्पित है, ऐसा अन्य कहते हैं। ब्रह्मयज्ञ तो दूसरे दिन से गायत्री से करे।

अथ गर्जितादिशान्तिः

अनुप्रवचनीयहोमारम्भात्पूर्वं गर्जितवृष्ट्यादिसंभावनायां दिवैव चरुश्रपणान्तं कृत्वाऽस्तमिते जुहुयात्। पाकाभावे गर्जितादिनिमित्ते तु [3]शान्तिं कृत्वा पाकः कार्यः।

---

१. अत्रिः—'हस्तदत्ता तु या भिक्षा लवणव्यञ्जनानि च। भुक्त्वा ह्यशुचितां याति दाता स्वर्गं न गच्छति ॥' मनुः—'मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्। भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ॥ 'भवत्पूर्वं चरेद् भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः। भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥' याज्ञवल्क्यः—'कृताग्निकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया। आपोशानक्रियापूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ॥' अन्न के अतिरिक्त संभव हो तो भिक्षा में ब्रह्मचारी को सुवर्णादि भी दे जैसा वसिष्ठ ने कहा है—'सुवर्णं रजतं रत्नं सा पात्रेऽस्य निवेदयेत् ॥' इति।

२. जैमिनिः—'अनुपाकृतवेदस्य कर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः। वेदस्थाने तु सावित्री गृह्यते तत्समायतः ॥' इति।

३. नृसिंहप्रसादे—'ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं यदि। तदा विघ्नकरं ज्ञेयं बटोरध्ययनस्य यत् ॥ तस्य शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः। प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियजौ भवेत् ॥ सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान् पठेत् प्रज्ञाविवृद्धये। गायत्री चैव मन्त्रः स्यात् प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा ॥ धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम्। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत् ॥' इति।

अनुप्रवचनीय होम के प्रारम्भ से पहिले गर्जित वर्षा आदि की सम्भावना में दिन में ही चरु-श्रपणान्त करके अस्त होने के बाद होम करे। पाक न करने पर गर्जित आदि निमित्त में तो शान्ति करके पाक करे।

अथ शान्तिप्रयोगः

ब्रह्मौदनपाकात्पूर्वं 'गर्जितेन सूचितस्य ब्रह्मचारिकर्तृकाध्ययनविघ्नस्य निरासद्वारा श्रीपर० शान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनाचार्यवरणे कृते आचार्योऽग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते सवितारमष्टोत्तरशतसंख्यसाज्यपायसाहुतिभिर्गायत्रीमन्त्रेण शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। प्रायश्चित्तहोमान्ते गायत्र्या सवितारमाज्येनेत्यन्वाधाय गृहसिद्धपायसहोमान्ते बृहस्पतिसूक्तजपः। अन्ते आचार्याय धेनुं दत्त्वा 'शतं यथाशक्ति वा विप्रान् भोजयिष्ये' इति संकल्पयेत्।

ब्रह्मौदन पाक से पहिले 'गर्जन से सूचित ब्रह्मचारिकर्तृक अध्ययन के विघ्न-निराकरणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ शान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्वस्तिवाचन और आचार्यवरण करने के बाद आचार्य अग्नि की स्थापना करके 'चक्षुषी आज्येन' इसके बाद गायत्री-मन्त्र से सूर्य भगवान् को १०७ घृतसहित पायस की आहुति दे। शेष से स्विष्टकृत् होम इत्यादि करे। प्रायश्चित्त-होम के अन्त में गायत्री से सूर्य नारायण को 'आज्येन' इससे अन्वाधान कर घर में बने हुए पायस से होम के बाद बृहस्पति-सूक्त का जप करे। अन्त में आचार्य को धेनु देकर 'सौ या यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगा' ऐसा संकल्प करे।

अथ अग्निनाशे निर्णयः

मेधाजननात्पूर्वकालिकाग्निकार्यं यावत् उपनयनाग्निनाशे उपनयनाहुतिभिः कटिसूत्रधारणादिमाणवकसंस्कारावक्षारणाग्निकार्यगायत्र्युपदेशरहिताभिः पूर्वोत्तरतन्त्रसहिताभिरग्निमुत्पाद्य तत्रानुप्रवचनीयपूर्वंभाव्यग्निकार्यं कृत्वाऽनुप्रवचनीयहोमं कृत्वा मेधाजननात्प्राक्तनान्यग्निकार्याणि कृत्वा मेधाननं कार्यमिति कौस्तुभे उपपादितम्। नष्टस्योपनयनाग्नेः पुनरुत्पत्तिहोमे विनियोग इति विशेष इति चोक्तम्। मम तु उपनयनाहुतिभिरग्निमुत्पाद्य तत्र मेधाजननं कार्यम्। अनुप्रवचनपूर्वभाव्यग्निकार्यमनुप्रवचनीयहोमश्च न कार्यं इति भाति।

कौस्तुभ में प्रतिपादन किया है कि मेधाजनन से पूर्व अग्निनाशपर्यन्त उपनयन की अग्नि के नष्ट होने पर कटिसूत्र-धारण आदि माणवकसंस्कार, अवक्षारण, अग्निकार्य गायत्री का उपदेशरहित पूर्वोत्तर तन्त्रसहित उपनयन की आहुतियों से अग्नि का उत्पादन कर उसमें अनुप्रवचनीय से पूर्व होने वाले अग्निकार्य को करके अनुप्रवचनीय होम करके मेधाजनन से पहिले के अग्निकार्य करके मेधाजनन करे। इसमें 'नष्ट हुये उपनयन-अग्नि के पुनरुत्पत्ति होम में विनियोग है' यह भी वहाँ विशेष कहा है। मुझे तो उपनयन की आहुतियों से अग्नि का उत्पादन कर उसमें मेधाजनन के पूर्व भावी अग्निकार्यों को करके मेधाजनन करे अनुप्रवचन से पूर्व होनेवाला अग्निकार्य और अनुप्रवचनीय होम नहीं करे, यह अच्छा लगता है।

गायत्र्युपदेशानुप्रवचनीयमेधाजननानां त्रयाणां समप्रधानभावेनाध्ययनाङ्गत्वादग्नेस्त्रितयाङ्गत्वात् कौस्तुभोक्तरीत्या गायत्र्युपदेशतत्पूर्वाग्निकार्यावृत्त्यभाव-

वदनुप्रवचनीयतत्पूर्वाग्निकार्ययोरावृत्त्यभावौचित्यात्, न ह्यग्निष्टोमाङ्गपशुत्रयस्याङ्गे यूपे पशुद्वयानुष्ठानानन्तरं नष्टे तृतीयपश्वर्थं यूपोत्पादने द्वितीयपश्वनुष्ठानमप्यावर्तते। अत्र सदसत्सद्भिर्विचार्यानुष्ठेयम्। सायं सन्ध्याग्निकार्ये कृतेऽनुप्रवचनीयहोमं ब्रह्मचारी कुर्यात्। बटोरशक्तौ चरुश्रपणान्तमन्यः कुर्यात् होममात्रं बटुः कुर्यात्। हुतचरुशेषेण त्र्यवरब्राह्मणभोजनम्।

गायत्री का उपदेश, अनुप्रवचनीय और मेधाजनन, ये तीनों समान प्रधानभाव से वेदाध्ययनांग हैं और अग्नि इन तीनों का अंग है इससे जैसे कौस्तुभ की कही हुई रीति से गायत्री का उपदेश और इसके पूर्व होनेवाला अग्निकार्य नहीं होता उसी प्रकार अनुप्रवचनीय और तत्पूर्व अग्निकार्य की आवृत्ति के अभाव का औचित्य है। क्योंकि अग्निष्टोमांग पशुत्रय के अङ्गीभूत-यूप में दो पशु के अनुष्ठान के बाद अग्निनाश होने पर तीसरे पशु के लिये यूप के उत्पादन में उन दोनों पशुओं के अनुष्ठान की आवृत्ति नहीं होती वैसे ही उपनयनाग्नि में अनुप्रवचनीय और इसका होम कर लेने पर अग्नि का नाश हो जाय तो अग्नि का प्रकटन करके पूर्वकृत कर्म की आवृत्ति युक्त नहीं है। इसमें उचित अनुचित का विचार कर सज्जनो को अनुष्ठान करना चाहिये। सायं सन्ध्या और अग्निकार्य करने के बाद अनुप्रवचनीय होम ब्रह्मचारी करे। बटु के असमर्थ होने पर चरुश्रपणान्त कृत्य दूसरा करे बटु केवल होम करे। बचे हुए चरु से कम से कम तीन ब्राह्मणों को भोजन करावे।

अथ बटुव्रतम्

क्षारादिवर्जमश्नीयाद् ब्रह्मचारी दिनत्रयम्।
शयीताधश्चतुर्थेऽह्नि मेधाजननमाचरेत्॥
यद्वा द्वादशरात्रं स्यादब्दव्रतमथापि वा।

मेधाजननविधिरन्यत्र।

ब्रह्मचारी तीन दिन तक क्षारादि को छोड़कर भोजन करे और जमीनपर सोवे। चौथे दिन मेधाजनन करे। अथवा बारह दिन या सालभर का व्रत करे। मेधाजनन-विधि दूसरी जगह से जानना चाहिये।

अथ मण्डपदेवतोत्थापनम्

तच्च स्थापनदिनात्समदिवसे पञ्चमसप्तमदिनयोश्च शुभम्। [1]षष्ठदिने विषमदिने चाशुभम्।

वह मंडपदेवता का उत्थापन स्थापन-दिन से समदिन में और पांचवें सातवें दिन में भी शुभप्रद होता है। छठे दिन या विषम दिन में अशुभ होता है।

अथ मण्डपोद्वासनपर्यन्तं निषेधाः

नान्दीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम्।
दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च॥

---

१. नारदः—'समे तु दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः। षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ॥' इति। समेषु षष्ठं विषमेषु च पंचमसप्तमव्यतिरिक्तं दिनं नेष्टमित्यर्थः।

अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च।
ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमाऽतिलङ्घनम् ॥
उपवासव्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च।
नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि ॥

अत्र स्वधाकारग्रहणं तत्सहचरितवैश्वदेवनिषेधार्थम्। अत्र सपिण्डास्त्रिपुरुषपर्यन्ता इति पुरुषार्थचिन्तामणौ।

अभ्यङ्गे सूतके चैव विवाहे पुत्रजन्मनि।
माङ्गल्येषु च सर्वेषु न धार्यं गोपिचन्दनम् ॥

एतेषु भस्मधारणमपि न कुर्वन्ति। जननाशौचे भस्मगोपीचन्दने निषिद्धे। मृतके भस्म धार्यम्।

नान्दीश्राद्ध करने के बाद मातृविसर्जनपर्यन्त सपिण्ड वाले दर्शश्राद्ध, क्षयश्राद्ध, ठंडे जल से स्नान, अपसव्य, स्वधाकरण, नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ, वेदाध्ययन, नदी और सीमा का उल्लंघन, उपवासव्रत तथा श्राद्धभोजन, ये कार्य मण्डपोद्वासनतक नहीं करें। इसमें स्वधाकार का ग्रहण तत्सहचरितवैश्वदेव के निषेध के लिये है। यहां सपिण्ड तीन पुरुषपर्यन्त का ग्रहण है, ऐसा पुरुषार्थचिन्तामणि में कहा है। अभ्यंग, सूतक, विवाह, पुत्रजन्म और सभी मांगल्य कार्यों में गोपीचन्दन का धारण नहीं करे। इन सब कार्यों में भस्म का धारण भी नहीं करते हैं। जननाशौच में भस्म और गोपीचन्दन भी निषिद्ध है। मरणाशौच में भस्म धारण करना चाहिये।

अथ विकलाङ्गोपनयनादिविचारः

[1]षण्ढान्धबधिरमूकपङ्गुकुब्जवामनादयः संस्कार्याः। मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्यावित्येके। पातित्यं तु नास्ति कर्माऽनधिकारात्। तदपत्यं संस्कार्यम्, ब्राह्मण्यां ब्राह्मणादुत्पन्नो ब्राह्मण एवेति श्रुतेः। अन्ये तु मत्तोन्मत्तावपि संस्कार्यावित्याहुः। अत्र होममाचार्यः करोति।

नपुंसक, बहिरा, गूंगा, अन्धा, पादविकल, कुबड़ा और बौना आदि संस्कार-योग्य होते हैं। एक आचार्य का मत है कि मत्त और उन्मत्त संस्कार योग्य नहीं होते। कर्म में अनधिकार होने से पातित्य तो नहीं होता। इनके सन्तान संस्कार्य होते हैं, क्योंकि श्रुति है कि ब्राह्मणी में ब्राह्मण से उत्पन्न ब्राह्मण ही होता है। अन्य आचार्य तो कहते हैं कि मत्त और उन्मत्त भी संस्कार-योग्य हैं। इसमें होम आचार्य करते हैं।

उपनयनं चाचार्यसमीपनयनमग्निसमीपनयनं वा गायत्रीवाचनं वा विकलाङ्गविषये प्रधानम्। एतत्त्रयान्यतममात्रं विकलाङ्गे संपाद्यम्। अन्यदङ्गं यथा-

१. ब्रह्मपुराणे—'ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स इति श्रुतिः। तस्माच्च षण्डबधिरं कुब्जवामनपङ्गुषु ॥ जडगद्गदरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु। मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये ॥ ध्वस्तपुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम्। मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्याविति केचित् प्रचक्षते। कर्मस्वनधिकाराच्च पातित्यं नास्ति चैतयोः। तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा ॥ संस्कारमन्त्रहोमादीन् करोत्याचार्य एव तु। उपनेयाश्च विधिवदाचार्यस्य समीपतः ॥ आनीयाग्निसमीपं वा सावित्रीं स्पृश्य वा जपेत्। कन्यास्वीकरणादन्यत् सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥ एवमेव द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्डगोलकौ।' इति।

संभवं कार्यम्। मूकबधिरादेः सावित्रीवाचनासंभवे स्पृष्ट्वा सावित्रीजपः कार्यः। संस्कारमन्त्रावासः परिधानमन्त्राश्चाचार्येण वाच्याः। केचित्तूष्णीं वासः परिधानादिकमित्याहुः। एवं विवाहेऽपि, 'कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कारयेत्' इत्यादिवचनात्। इति विकलाङ्गोपनयनादिविचारः।

उपनयन में आचार्य या अग्नि के समीप ले जाना या गायत्रीवाचन विकलांगों के विषय में प्रधान है। इन तीनों में से कोई एक विकलांग का सम्पादनीय है। अन्य अंग को यथा सम्भव करना चाहिये। गूंगा और बहिरा आदि का सावित्रीवाचन के असम्भव में स्पर्श करके सावित्री जपे। संस्कार और वस्त्र पहिनने के मन्त्र आचार्य को कहना चाहिये। कोई आचार्य चुपचाप वस्त्र पहिनना आदि कहते हैं। इसी प्रकार विवाह में भी करे, क्योंकि वचन है कि कन्या स्वीकार से अन्य सब कार्य ब्राह्मण से करावे। विकलांगों का उपनयन आदि का विचार समाप्त।

अथ कुण्डगोलककनिष्ठसंस्कारनिषेधः

अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः। एतयोः कुण्डगोलकयोः संस्कार्यत्ववचनं युगान्तरविषयम्। तस्य क्षेत्रजपुत्रविषयत्वात्। कलियुगे दत्तौरसातिरिक्तपुत्राणा निषेधात्।

ज्येष्ठे त्वकृतसंस्कारे गर्भाधानादिकर्मभिः।
कनिष्ठो नैव संस्कार्य इति शातातपोऽब्रवीत्॥

इदं चौलोपनयनान्तसंस्कारविषयम्। विवाहविषये तु विकलाङ्गेषु नायं नियमः। कन्यास्वपि ज्येष्ठाविवाहानन्तरमेव कनिष्ठाया विवाहः। ज्येष्ठपुत्रविवाहाभावेऽपि कनिष्ठा कन्या संस्कार्या। ज्येष्ठस्योपनयनाभावे कनिष्ठा न विवाह्या।

पति के जीवितावस्था में पत्नी दूसरे पुरुष से जो सन्तान पैदा करती है वह कुण्ड और पति के मरने पर उत्पन्न गोलक कहलाती है। इन दोनों के संस्कार्यत्व का वचन अन्य युगसम्बन्धी है, क्योंकि वह वचन क्षेत्रजपुत्र-विषयक है। कलियुग में दत्तक तथा औरस-पुत्र के अतिरिक्त पुत्रों का निषेध है। शातातप का कथन है कि ज्येष्ठ पुत्र का यदि गर्भाधान आदि संस्कार नहीं किया गया हो तो कनिष्ठ का संस्कार नहीं करे। यह चौल उपनयनपर्यन्त संस्कार-विषयक है। विवाह के विषय में तो विकलांगों का यह नियम नहीं है। कन्याओं में भी ज्येष्ठा कन्या के विवाह के बाद ही कनिष्ठा का विवाह करे। ज्येष्ठपुत्र के विवाह नहीं करने पर भी कनिष्ठ कन्या का संस्कार करे। ज्येष्ठ पुत्र के उपनयन न होने पर कनिष्ठ कन्या का विवाह नहीं करना चाहिये।

अथ पुनरुपनयनम्

तच्च त्रिविधम्—प्रत्यवायनिमित्तकं प्रायश्चित्तभूतं पुनरुपनयनमाद्यम्। तच्च जातकर्मादिसहितं तद्रहितं प्रायश्चितान्तरसहितं केवलं चेत्यनेकविधम्। कृतस्योपनयनस्योक्तकालाद्यङ्गवैगुण्येन वैफल्यापत्तावपरम्। वेदान्तराध्ययनार्थं तृतीयम्। तत्र प्रथमं यथा अमत्या औषधान्तरा नाश्यरोगनाशार्थं पैष्ट्याः सुरायाः पाने त्रिमासं कृच्छ्राचरणं पुनरुपनयनं च। मत्या पैष्ट्यन्यसुराया औषधार्थंपाने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ पुनरुपनयनं च।

वह तीन प्रकार का होता है—किसी प्रत्यवाय की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्तस्वरूप पुनः उपनयन पहिला है। यह जातकर्म आदि के सहित तथा जातकर्मादिरहित और दूसरे प्रायश्चित्त के सहित और केवल भी, इस तरह अनेक प्रकार का है। किये हुए उपनयन के कहे हुए काल आदि अङ्ग की विगुणता से वैफल्य की आपत्ति होने पर दूसरा पुनः उपनयन है। दूसरे वेद के पढ़ने के लिये तीसरा पुनः उपनयन है। उसमें पहिला—जैसे बिना जाने दूसरी औषध से नाश्य-रोग के नाश के लिये पैष्टी-सुरा के पीने से तो तीन महीने तक कृच्छ्राचरण और पुनः उपनयन भी करे। जानकर औषधि के लिये लिये पैष्टी से भिन्न सुरा का पान करने पर कृच्छ्र और पुनः उपनयन करे।

पैष्टीपाने द्वादशाब्दम्। अज्ञानाद्वारुणी गौडो माध्वी सुरा पीता चेत्पुनरुपनयनं तप्तकृच्छ्रं च। अज्ञानाद्रेतोविण्मूत्राणामशने 'सुरासंसृष्टान्नजलादिभक्षणे च पुनः-संस्कारस्तप्तकृच्छ्रं च। ज्ञात्वा विण्मूत्राद्यशने चान्द्रायणपुनःसंस्कारौ।[2] लशुनपलाण्डु-गृञ्जनविड्वराहग्रामकुक्कुटनरगोमांसभक्षणे द्विजातीनां तत्तत्प्रायश्चित्तान्ते पुनरुपनयनम्। अविखरोष्ट्रमानुषीक्षीरपाने हस्तिनीवडवाक्षीरपाने च तप्तकृच्छ्रं पुनः-संस्कारश्च। रासभोष्ट्राद्यारोहणे कृच्छ्रः पुनःसंस्कारश्च। इदं हेमाद्रिमतमिति सिन्धौ।

पैष्टी-सुरा के पीने में बारह वर्ष। अज्ञान से वारुणी, गौड़ी और माध्वी सुरा यदि पी ले तो पुनः उपनयन और तप्तकृच्छ्र व्रत करे। अज्ञान से वीर्य, विष्ठा और मूत्र के खा लेने और सुरा मिले हुए अन्न जलादि के खा लेने में भी पुनः उपनयन और तप्तकृच्छ्र करे। जानबूझ कर विष्ठा मूत्र आदि के खाने में चान्द्रायण और पुनःसंस्कार दोनों करे। लशुन, प्याज, गृंजन, विड्वराह, ग्राम कुक्कुट, मनुष्य तथा गौ का मांस खाने में द्विजातियों को उन-उन के प्रायश्चित्तों के अन्त में पुनः उपनयन करे। भेड़, गदहा, ऊँट और मनुष्य-स्त्री के दूध पीने में तथा हथिनी और घोड़ी के दूध पीने में तप्त-कृच्छ्र और पुनः उपनयन करे। गदहा ऊँट आदि पर चढ़ने में कृच्छ्र और पुनःसंस्कार करे। यह हेमाद्रि का मत है, ऐसा निर्णयसिन्धु में कहा है।

क्वचित् मिताक्षरास्मृत्यर्थसारादिमते रासभोष्ट्रारोहे उपवासत्रयादिमात्रं, न तु तु पुनःसंस्कारः। कौस्तुभाशयोप्येवम्। वृषभारोहणे अमत्या कृच्छ्रं मत्या कृच्छ्रत्रयादि। केचिद् वृषारोहे पुनःसंस्कारं कुर्वन्ति तत्र मूलं मृग्यम्। एवमज-बस्तमहिषारोहेऽपि। मांसभक्षकपशोर्विट्भक्षणे पुनरुपनयनमात्रम्। केचिन्मानुष-मलभक्षणेऽपि पुनःसंस्कारमात्रमाहुः। प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनःसंस्कारमर्हति।

कहीं मिताक्षरा स्मृत्यर्थसार आदि के मत में गदहा और ऊँट पर चढ़ने में केवल तीन उपवास कहा है पुनःसंस्कार नहीं कहा है। कौस्तुभ का भी यही आशय है। बैल पर चढ़ने में अज्ञान से कृच्छ्र और ज्ञान से तीन कृच्छ्र आदि करे। कुछ लोग कहते हैं कि बैल पर चढ़ने में पुनःसंस्कार करे, उसमें मूल अन्वेषणीय है। इसी प्रकार बकरा बकरी और भैंसे पर चढ़ने में भी। मांस खाने वाले पशु के विष्ठा खाने में केवल पुनः उपनयन करे। कुछ लोग मनुष्य के मलमात्र-भक्षण में भी केवल पुनः उपनयन कहते हैं। प्रेतशय्या लेने वाला पुनःसंस्कार के योग्य होता है।

---

१. मनुः—'अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंसृष्टमेव च। पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥' इति।

२. शातातपः—'लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा शुनः। उष्ट्रमानुषकेभाश्वरासभीक्षीरभोजनात्॥ उपायनं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः।' इति।

जीवतो मृतवार्तां श्रुत्वाऽन्त्यकर्मकरणे—तं घृतकुम्भे निमज्ज्योद्धृत्य स्नापयित्वा जातकर्माद्युपनयनान्तसंस्कारान् कृत्वा त्रिरात्रव्रतान्ते पूर्वभार्यया तस्यां मृतायामन्यभार्यया वा विवाहः कार्यः। आहिताग्निश्चेत्पुनराधानायुष्मदिष्ट्यादि।

जीते हुए के मरने की वार्ता सुनकर अन्त्य-कर्म करने में उसको घृत-कलश में डुबाकर निकाल कर स्नान कराके जातकर्म से लेकर उपनयन तक संस्कारों को करके तीन रात के व्रत के अन्त में पहिली स्त्री से, उसके मरने पर अन्य स्त्री से विवाह करे। यदि आहिताग्नि हो तो पुनः आधान और आयुष्मत् इष्टि आदि करे।

तीर्थयात्रां विना [1]कलिङ्गाङ्गवङ्गान्ध्रसिन्धुसौवीरप्रत्यन्तवासिदेशगमने पुनः-संस्कारः। चाण्डालान्नभक्षणे चान्द्रायणम्। बुद्धिपूर्वं भक्षणे कृच्छ्राब्दम्। उभयत्र पुनःसंस्कारः।

अजिनं मेखला दण्डो भैक्ष्यचर्या व्रतानि च।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि॥

वपनं मेखलेति स्मृत्यन्तरे पाठः। ब्रह्मचारिणो मधुमांसाशने पुनरुपनयनं प्राजापत्यं त्रिरात्रोपवासो वा। मत्या भक्षणे पराकः। अभ्यासे द्विगुणं पुनः-संस्कारश्च। पितृमातृगुरुभ्यो भिन्नस्य प्रेतस्यान्त्यकर्मकरणे ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयनम्। हस्तमथितदधिभक्षणे बहिर्वेदिपुरोडाशाशनेऽभ्यासे कृच्छ्रः पुनः-संस्कारश्च।

तीर्थयात्रा के विना कलिंग, अंग, वंग, आन्ध्र, सिन्धु, सौवीर और म्लेच्छ देश में जाने पर पुनःसंस्कार करे। चाण्डाल का अन्न खाने में चान्द्रायण-व्रत करे। ज्ञानपूर्वक खाने में वर्षपर्यन्त कृच्छ्रव्रत करे। दोनों में पुनःसंस्कार करे। द्विजातियों के पुनःसंस्कार करने में मृगचर्म, मेखला-धारण, दण्ड और भैक्षचर्याव्रत नहीं होते। दूसरी स्मृति में 'अजिनं मेखला' के स्थान में 'वपनं मेखला' ऐसा पाठ है। ब्रह्मचारी को मधु और मांस खाने में पुनः उपनयन, प्राजापत्यव्रत या तीन रात का उपवास है। ज्ञानपूर्वक खाने में पराकव्रत करे। अभ्यास में द्विगुण पराक और पुनःसंस्कार भी होता है। पिता माता और गुरु से भिन्न के मरे हुए का अन्त्य-कर्म करने में ब्रह्मचारी का पुनः उपनयन है। हाथ से मथा हुआ दही के खाने तथा वेदी के बाहर पुरोडाश के भक्षण और इसके अभ्यास में कृच्छ्रव्रत और पुनःउपनयन करना चाहिये।

यः संन्यासं गृहीत्वा ततो निवृत्त्य [2]गार्हस्थ्यं चिकीर्षति स षण्मासं कृच्छ्रान्

---

१. बौधायनः—'सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यन्तवासिनः। अङ्गवंगकलिङ्गान्ध्रान् गत्वा संस्कारमर्हन्ति॥' प्रत्यन्तवासी=म्लेच्छदेशः। 'अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च। तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनःसंस्कारमर्हति॥'इति।

२. पराशरः—'यः प्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्यातो विनिर्गतः। अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेच्चिकीर्षति॥ स चरेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च। जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात्॥' इति।

कृत्वा जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृतः शुद्धो गार्हस्थ्यं कुर्यात् । एवमनशनं मरणार्थं संकल्प्य निवृत्तोऽपि कुर्यात् ।

कर्मनाशाजलस्पर्शात्करतोयाविलंघनात् ।
गण्डकीबाहुतरणात्पुनःसंस्कारमर्हति ॥

जो संन्यास ग्रहण करके उससे निवृत्त होकर गार्हस्थ्य करना चाहता है वह छ महीने तक कृच्छ्र-व्रत करके जातकर्म आदि संस्कारों से संस्कृत होकर शुद्ध होने पर गार्हस्थ्य करे। इसी प्रकार मरने के लिये अनशन का संकल्प करके अनशन से निवृत्त हुआ व्यक्ति भी करे। कर्मनाशा नदी के जल-स्पर्श, करतोया-नदी के लंघन और गण्डकी-नदी के तैरने से पुनःसंस्कार के योग्य होता है।

अथ मुहूर्तादिवैगुण्ये द्वितीयं पुनरुपनयनम्

प्रदोषे निश्यनध्याये मन्दे कृष्णे गलग्रहे ।
अपराह्णे चोपनीतः पुनःसंस्कारमर्हति ॥

अत्र [1]प्रदोषः प्रदोषदिनं कृष्णः कृष्णपक्ष एकादश्यादिरन्त्यत्रिकरूपः अपराह्णश्च दिनतृतीयभागरूप इत्युक्तम्। अनध्याया अपि नित्या एव पौर्णिमाप्रतिपदादयः पुनरुपनयननिमित्तम् , न तु नैमित्तिका अकालवृष्ट्यादिनिमित्तकत्रिरात्रादयः। नैमित्तिकेषु प्रातर्गर्जितनिमित्तानध्याय एव पुनःसंस्कारनिमित्तम् । अत्र विस्तरः कौस्तुभे । अंसाभिमर्शनपूर्वकं बटोः समीपमानयनं प्रधानकर्म । तस्य विस्मरणे पुनरुपनयनम् । एवं गायत्र्युपदेशविस्मरणेऽपि ।

प्रदोष, रात, अनध्याय, शनिवार, कृष्णपक्ष, गलग्रह और अपराह्ण में उपनयन हो तो पुनःउपनयन करना चाहिये। यहाँ प्रदोष शब्द से प्रदोष-दिन, कृष्ण से कृष्णपक्ष की एकादशी आदि अन्त के तीन दिन और अपराह्ण दिन का तृतीय भाग, यह कह चुके हैं। अनध्याय भी पूर्णिमा, प्रतिपदा आदि नित्य पुनरुपनयन के निमित्त हैं, न कि नैमित्तिक अकालवृष्टि आदि निमित्तक त्रिरात्र आदि। नैमित्तिकों में प्रातर्गर्जित-निमित्त-अनध्याय ही पुनःसंस्कार का निमित्त है। इसमें विस्तार से विचार कौस्तुभ में है। कन्धे का स्पर्शपूर्वक बटु को समीप लाना प्रधान कर्म है। उसके भूलने में पुनरुपनयन होता है। इसी प्रकार गायत्री उपदेश के भूलने में भी।

अथ तृतीयः पुनरुपनयननिमित्तप्रकारः

एकं वेदमधीत्य वेदान्तराध्ययनचिकीर्षायां प्रतिवेदं[2] पुनरुपनयनमित्येके। अन्यवेदिनामृग्वेदाध्ययनार्थमुपनयनमित्यपरे। अन्ये तु एकेन वोपनयनेन वेदत्रया-

---

१. प्रजापति ने प्रदोष का स्पष्टीकरण किया है—'षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका। प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिका ॥' गर्ग का विचार—'रात्रौ यामद्वयादर्वाक् सप्तमी वा त्रयोदशी। प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते। प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥' अन्त्यत्रिकरूपः = कृष्णपक्ष का तीन विभाग करके अन्त्य का पंचदिनात्मक तृतीयभाग। कौस्तुभ में स्मृत्यन्तर—'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णपक्षे त्रिधाकृते। अन्त्यभागं विना यौ द्वौ गणितौ मध्यमाधमौ ॥' इति।

२. हरदत्त ने कहा है—'य एकं वेदमधीत्यान्यं वेदमध्येतुमिच्छति तस्य पुनरुपनयनम् ; तेन प्रतिवेदमुपनयनं कर्तव्यम्।' दूसरे लोग आपस्तम्ब की—'सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यः सावित्र्यनूच्यते' इस उक्ति

ध्ययनाधिकारः, अथर्ववेदाध्ययनार्थं द्वितीयमुपनयनमित्याहुः । तेन ऋगादिवेदत्रयाध्यायिनो मुण्डमाण्डूक्याद्याथर्वणोपनिषदो विना पुनःसंस्कारं पठन्ति ते चिन्त्याः ।

कोई आचार्य कहते हैं कि एक वेद के पढ़ लेने पर दूसरे वेद को पढ़ने की इच्छा में प्रतिवेद पुनःउपनयन करे। दूसरे आचार्य कहते हैं कि दूसरे वेद वालों का ऋग्वेद पढ़ने के लिए फिर उपनयन है। अन्य आचार्य कहते हैं कि एक ही उपनयन से तीनों वेद के पढ़ने का अधिकार होता है, अथर्ववेद पढ़ने के लिए द्वितीय उपनयन करे। इससे ऋक् आदि तीनों वेद के पढ़ने वाले मुण्ड माण्डूक्य आदि अथर्ववेद के उपनिषदों को पुनःसंस्कार के विना पढ़ते हैं, वे चिन्ता के पात्र हैं।

युगपदनेकवेदारम्भे नोपनयनावृत्त्यपेक्षेति सकृदुपनीत्या युगपत्सकलवेदारम्भः सिद्ध्यतीति परे। तत्र एकवेदाध्ययनानन्तरं यद्वेदाध्ययनचिकीर्षा तद्वेदेतिकर्तव्यताकं पुनरुपनयनम्। तत्र वपनं ब्रह्मौदनं मेधाजननं दीक्षा च कृताकृता। परिदानान्ता क्रिया भवति। अनध्यायादिके द्वितीये पुनरुपनयननिमित्ते सर्वमविकृतं यथोक्तकाले उपनयनम्।

दूसरे आचार्य कहते हैं एक काल में अनेक वेदों के आरम्भ में उपनयन की आवृत्ति की अपेक्षा नहीं है। अतः एक बार के उपनयन से एक काल में सम्पूर्ण वेदों का आरम्भ सिद्ध होता है। उसमें एक वेद के पढ़ने के बाद जिस वेद को पढ़ने की इच्छा हो उस वेद का पुनरुपनयन करे, यही कर्त्तव्यता है। उसमें वपन, ब्रह्मौदन, मेधाजनन और दीक्षा कृताकृत है। परिदान (गायत्र्युपदेश) पर्यन्त क्रिया होती है। अनध्याय आदि में दूसरे पुनरुपनयन-निमित्त में यथोक्त काल में सब अविकृत उपनयन करे।

अथ प्रायश्चित्तार्थे व्रतबन्धे विशेषः

तत्र निमित्तानन्तरमेव करणे उदगयनपुण्यनक्षत्राद्युक्तकालो नापेक्ष्यते। अन्यथा तु यथोक्तकालापेक्षा। तत्र कर्ता पिता। तदभावे पितृव्यादिः सपिण्डः तदभावेऽन्यः कश्चित्। यत्र पुनरुपनयनं प्रायश्चित्तत्वेनोक्तं तत्र पर्षदुपदिष्टविधिना तदेव कार्यम्। यत्र तु प्रायश्चित्तान्तरसहितं विहितं तत्रोक्तविधिना प्रायश्चित्तं संस्कार्येण कारयित्वाऽऽचार्येण तस्योपनयनं कार्यम्। यत्र जातकर्मादिसंस्कारसहितमुपनयनं विहितं तत्र जातादिचौलान्तसंस्कारान्कृत्वा कार्यम्।

उसमें निमित्त के बाद ही प्रायश्चित्त करने में उत्तरायण पुण्य नक्षत्र आदि के उक्त काल की अपेक्षा नहीं की जाती। अन्यथा यथोक्त काल की अपेक्षा की जाती है। उसमें कर्ता पिता है। उसके अभाव में पितृव्य सपिण्ड, उसके अभाव में अन्य कोई। जिसमें पुनः उपनयन प्रायश्चित्त रूप में कहा है उसमें धर्म सभा की उपदिष्ट-विधि से वही करे। जिसमें तो दूसरे प्रायश्चित्त के सहित विधि है उसमें उक्त विधि से जिसका संस्कार करना है उसके द्वारा कराकर आचार्य से उसका उपनयन

से इसे नहीं मानते। क्योंकि मनु के—'त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्। तदित्यृचोऽस्याः साविञ्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥' इस कथन से गायत्री सभी वेदों से निकाली गई है और उपनयन में उस गायत्री के उपदेश से तीनों वेद गतार्थ हैं। गायत्री तीन ही वेद से निकली है इसलिये अथर्ववेदाध्ययन के लिये द्वितीय उपनयन कर्तव्य हैं, ऐसा कहते हैं।

कराना चाहिये। जिसमें जातकर्म आदि संस्कार से उपनयन कहा है उसमें जातकर्मादि चौलपर्यन्त संस्कारों को करके उपनयन करे।

पुनरुपनयने तत्सवितुर्वृणीमह इत्यस्या उपदेशाचार्येणास्या एव ऋचो द्वादशोत्तरसहस्रजपः कृच्छ्रत्रयं चोपनेतृत्वाधिकारार्थं कार्यम्। तत्र 'अस्य कृतौर्ध्वदेहिकस्य पुनःसंस्कारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं जातकर्माद्युपनयनान्तसंस्कारान् करिष्ये।' एवं निमित्तान्तरेपि संकल्प ऊह्यः। सर्वसंस्कारोद्देशेन तन्त्रेण नान्दीश्राद्धादि श्मश्रुवपनानन्तरं चौलकेशवपनम्। मनुष्यादिक्षीरपानादिनिमित्तान्तरे तु संस्कार्यः 'अमुकदोषपरिहारार्थं पर्षदुपदिष्टममुकप्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्य तत्कुर्यात्। आचार्यस्तु 'अस्यामुकदोषपरिहारार्थं पुनःसंस्कारसिद्धिद्वारा श्री० पुनरुपनयनं करिष्ये' इति संकल्प्योपनयनमात्रं कुर्यात्।

पुनः उपनयन में गायत्री की जगह 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इस ऋचा का उपदेश होने से आचार्य को इसी ऋचा का एक हजार बारह बार जप और उपनेतृत्व के अधिकार के लिये तीन कृच्छ्र भी करना चाहिये। उसमें 'और्ध्वदेहिक किये हुये का पुनः संस्कार के द्वारा श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ जातकर्म आदि उपनयनपर्यन्त संस्कारों को करूंगा' इसी प्रकार दूसरे निमित्त में भी संकल्प की कल्पना करे। सब संस्कारों के उद्देश्य से तन्त्र से नान्दीश्राद्ध आदि होता है। दाढ़ी बनाने के बाद चूड़ा के केश का वपन करे। स्त्री आदि के क्षीरपान आदि दूसरे निमित्तों में तो संस्कार्य 'अमुक दोष परिहार के लिये सभाद्वारा उपदिष्ट अमुक प्रायश्चित्त करूंगा' ऐसा संकल्प करके उसे करे। आचार्य तो 'इसके अमुक दोष हटाने के लिये पुनःसंस्कार-सिद्धि-द्वारा श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ पुनः उपनयन करूंगा' ऐसा संकल्प करके केवल उपनयन करे।

यत्रोपनयनमात्रोक्तिस्तत्र संस्कार्यस्य न संकल्पः, किंत्वाचार्यस्यैव। पुनरुपनयनं ग्रामाद्बहिः प्राच्यामुदीच्यां वा गत्वा कार्यम्। नान्दीश्राद्धान्ते मण्डपदेवतास्थापनम्। [1]कृतमङ्गलस्नानं संस्कार्यं भोजयित्वा वपनपक्षे वपनस्नाने कारयित्वा 'अस्य प्रायश्चित्तार्थंपुनरुपनयनहोमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये' अस्मिन्नन्वाहितेसावित्यादिनित्यवत्। ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयने समन्त्रकं वासोधारणं नित्यम्, अन्यस्य वैकल्पिकम्। ब्रह्मसूत्रधारणादिसूर्येक्षणान्तं नित्यवत्। ततो युवा-सुवासा इत्येतन्मन्त्रकं प्रदक्षिणमावर्तनादि वासोबद्धाञ्जलिग्रहणान्ते प्रणवव्याहृतीनां ऋष्यादि स्मृत्वा तत्सवितुर्वृणीमह इत्यस्य श्यावाश्वः सविताऽनुष्टुप् पुनरुपनयने उपदेशे विनियोगः। पादशोऽर्धर्चशः सर्वामिति त्रिर्वाचयेत्।

जहां केवल उपनयन कहा है उसमें संस्कार्य का संकल्प नहीं है किन्तु आचार्य ही का है। पुनः उपनयन गांव से बाहर पूरब या उत्तर दिशा में जाकर करे। नान्दीश्राद्ध के बाद मण्डप देवता का स्थापन करे। मंगलस्नान किये हुए उपनयनयोग्य व्यक्ति को भोजन कराकर वपन के पक्ष में वपन और स्नान कराकर 'इसके प्रायश्चित्त के लिये पुनः उपनयन के होम में देवता-परिग्रह

---

१. परशुरामः—'पातादिवर्जिते प्रातर्नित्यं कर्म समाचरेत्। नद्यां वाऽथ तडागे वा देवखाते ह्रदेऽथवा॥ सूत्रोक्तविधिना शौचपूर्वं स्नानं समाचरेत्। ततः स्वगृहमागत्य मङ्गलस्नानमाचरेत्॥ सर्वौषधीगन्धचूर्णयुतैः कृष्णातिलामलैः। उद्वर्त्याङ्गानि तैलेन चम्पकादिसुगन्धिना॥' इति।

के लिये अन्वाधान करूंगा।' इस अन्वाहित-अग्नि में इत्यादि नित्यवत् करे। ब्रह्मचारी के पुनः उपनयन में मन्त्रसहित वस्त्र का धारण नित्य और दूसरे का विकल्प से है। ब्रह्मसूत्रधारण आदि सूर्य दर्शनपर्यन्त कृत्य नित्य के समान हैं। तदनन्तर 'युवासुवासा' इस मन्त्र से प्रदक्षिण, आवर्तन आदि तथा बद्धाञ्जलि वस्त्रग्रहणपर्यन्त प्रणव आदि व्याहृतियों के ऋषि आदि का स्मरण करके 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इस मन्त्र का श्यावाश्व सविता ऋषि और अनुष्टुप् छन्द पुनः उपनयन में विनियोग है। पहिले एक पाद, बाद में आधी ऋचा, अन्त में सम्पूर्ण ऋचा को इस प्रकार तीन बार कहलावे।

ब्रह्मचारिणो मेखलादानादि नित्यवत्। ब्रह्मचर्योपदेशान्तम् अन्यस्य मेखलाजिनदण्डधारणं पाक्षिकम्। ब्रह्मचर्योपदेशो दिवा मा स्वाप्सीरित्यन्तः। वेदमधीष्वेत्यादिकं न। ततः स्विष्टकृदादि। मेधाजननपक्षे तत्पर्यन्ताग्निधारणं भिक्षापूर्वकानुप्रवचनीयः। गायत्र्याः स्थाने तत्सवितुर्वृणीमह इति होमः। त्रिरात्रव्रतान्ते यस्मिन्नाश्रमे पुनरुपनयनं तदाश्रमधर्मान्कुर्यात्। यत्र पुनरुपनयनान्ते पुनर्विवाहः कृतौर्ध्वदेहिकादेः श्रूयते तत्र मेखलादिधारणपूर्वकं कतिचिद्दिनानि ब्रह्मचर्यं कृत्वोचितकाले समाप्य पूर्वभार्ययाऽन्यया वा विवाहं कुर्यात्। इति ऋग्वेदिनां पुनःसंस्कारः।

ब्रह्मचारी का मेखलादान आदि ब्रह्मचर्योपदेशपर्यन्त नित्य के समान है। दूसरों का मेखला मृगचर्म और दण्डधारण पाक्षिक है। ब्रह्मचर्य का उपदेश 'दिन में मत सोवो' यहाँ तक है। वेद को पढ़ो इत्यादि नहीं है। पश्चात् स्विष्टकृत् आदि है। मेधाजनन के पक्ष में मेधाजनन तक अग्निधारण, भिक्षापूर्वक अनुप्रवचनीय है। गायत्री के स्थान में 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इससे होम करे। त्रिरात्र व्रत के अनन्तर जिस आश्रम में पुनः उपनयन हुआ है उस आश्रम के धर्मों को करे। जहां पुनः उपनयन के अन्त में और्ध्वदेहिक क्रिया है जिसमें उसका पुनर्विवाह सुनते हैं उसमें मेखला आदि के धारणपूर्वक कुछ दिनों तक ब्रह्मचर्य करके उचित समय में समाप्त कर पहिली स्त्री से या दूसरी स्त्री से विवाह करे। ऋग्वेदियों का पुनःसंस्कार समाप्त।

अथ यजुर्वेदिनां पुनरुपनयनम्

तत्र बौधायनो ब्रह्मचारिणः पितृज्येष्ठाभ्यामन्योच्छिष्टभक्षणे स्त्रिया सह भोजने मधुमांसश्राद्धसूतकान्नगणान्नगणिकान्नाशने पुनरुपनयनमित्यादि उक्त्वा अग्निमुखं कृत्वाज्याक्तपालाशसमिधमादाय वाचयति ओं पुनस्त्वादित्या० कामाः स्वाहेति ओं यन्म आत्मनो मिंदाभूदग्निः० ओं पुनरग्निश्चक्षुरदादिति द्वाभ्यां हुत्वा चरुं पक्त्वा जुहोति ओं सप्त ते अग्ने० घृतेन स्वाहेति। ततो येन देवाः पवित्रेणेति तिसृभिरुपहोमस्ततः स्विष्टकृत्प्रभृतिसिद्धमाधेनुवरप्रदानात्।

उसमें बौधायन ने कहा है कि ब्रह्मचारी के पिता और जेठा भाई के द्वारा दूसरे के जूठा खाने और स्त्री के साथ भोजन करने में मधु, मांस, श्राद्धान्न, सूतकान्न, गणान्न और वेश्या का अन्न खाने में पुनः उपनयन करे इत्यादि कह कर अग्नि के सामने करके घृताक्त पलाश समिधा को लेकर 'ॐ पुनस्त्वादित्या' कामाः स्वाहा' इन दो मन्त्रों को कहलावे फिर ॐ 'यन्म आत्मनो मिन्दाभूदग्निः' 'ॐ पुनरग्निश्चक्षुरदात्' इन दो मन्त्रों से होम करके चरु पका कर 'ॐ सप्तते अग्ने० घृतेन स्वाहा'

इससे होम करे। तदनन्तर 'येन देवाः पवित्रेण' इन तीन ऋचाओं से उपहोम करे। तदनन्तर स्विष्टकृत् आदि धेनु-दक्षिणा-प्रदान करे।

अथापरमापरिदानात्कृत्वा पालाशीं समिधमादाय व्रात्यप्रायश्चित्तं जुहोति व्याहृतीर्जुहोति। अथापरो ब्राह्मणवचनात् सावित्र्या शतकृत्वोऽभिमन्त्रितं घृतं प्राश्य कृतप्रायश्चितो भवतीत्यादिकमवदत्। अत्रोक्तपक्षाणां शक्ताशक्तभेदेन व्यवस्था। इदं कौस्तुभे द्रष्टव्यम्। एवं शाखान्तरेष्वपि वपनमेखलाजिनदण्डभैक्ष्यचर्याव्रतादिकं वैकल्पिकं व्यवस्थयाऽनुष्ठाय स्वस्वशाखोक्तोपनयनं कार्यम्।

इसके बाद दूसरे परिदानपर्यन्त करके पलाश की समिधा लेकर व्रात्य-प्रायश्चित्त का और व्याहृति का होम करे। दूसरे आचार्य कहते हैं कि ब्राह्मण के वचन से सावित्री से सौ बार अभिमन्त्रित किया घृत का प्राशन करके प्रायश्चित्त किया हुआ होता है इत्यादि। यहां कहे हुए पक्षों में समर्थ असमर्थ के भेद से व्यवस्था है। इसे कौस्तुभ में देखना चाहिये। इस प्रकार अन्य शाखाओं में भी वपन, मेखला, मृगचर्म, दण्ड और भिक्षाचरण-व्रतादिक वैकल्पिक-व्यवस्था से करके अपनी अपनी शाखा में कहे हुए उपनयन को करे।

अथ ब्रह्मचारिधर्माः

तत्र संध्यात्रयमग्निपरिचरणं भैक्षं च नित्यम्। तत्राग्निकार्यं प्रातः सायं च। सायमेव सकृद्वा। तत्र [1]पलाशखदिराश्वत्थशमीसमिधः श्रेष्ठास्तदलाभेऽर्कवेतसानाम्। भवच्छब्दपूर्विकाभिक्षा विप्राणाम्। सा च विप्रगृहेष्वेव। आपदि शूद्रगृहेषु आमान्नं गृह्णीयात्। हव्ये श्राद्धभिन्नकव्ये चाभ्यर्थितो भुञ्जीत। अस्य ब्रह्मयज्ञोऽपि नित्यः। स चोपाकरणात्पूर्वं गायत्र्या कार्यः। गुरूच्छिष्टं मध्वादिकं निषिद्धमपि तदन्यापहार्यरोगनिवृत्त्यर्थं भक्षणीयम्।

तीनों सन्ध्या, अग्निसेवा और भिक्षाचरण नित्य है। उसमें प्रातः सायं अग्निकार्य या एक बार सायंकाल ही में करे। उसमें पलाश, खैर, पीपल और शमी की समिधा श्रेष्ठ है उसके न मिलने पर अर्क और वेतस की। ब्राह्मणों की भिक्षा भवत्-शब्द-पूर्विका होती है, वह ब्राह्मणों के घरों में ही। आपत्ति-काल में शूद्र के घर में कच्चा अन्न ग्रहण करे। हव्य में या श्राद्ध-भिन्न कव्य में प्रार्थना करने पर भोजन करे। ब्रह्मचारी का यज्ञ भी नित्य है। वह उपाकर्म से पहिले गायत्री से करे। गुरु का जूठा दूसरी औषधि से नहीं छूटने वाले रोग की निवृत्ति के लिये मधु आदि निषिद्ध को भी खाना चाहिये।

निषिद्धान्यद् गुरूच्छिष्टं त्वनौषधमपि भक्ष्यम्। एवं ज्येष्ठभ्रातुः पितुश्चोच्छिष्टेषु ज्ञेयम्। दिवास्वापो नेत्रे [2]कज्जलमुपानहौ छत्रं मञ्चादौ शयनं च वर्ज्यम्।

---

१. स्मृतिः—'पालाश्यः समिधः कार्याः खादिर्यस्तदभावतः। शमीरोहितकाश्वत्थास्तदभावेऽर्कवेतसौ॥ नाङ्गुष्ठादधिका कार्या समित् स्थूलतया क्वचित्। न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥ प्रादेशान्नाधिका नोना तथा नैव द्विशाखिका। न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु च विजानता॥ विकर्णा विदला रम्या वक्राः ससुषिराः कृशाः। दीर्घाः स्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशिकाः॥' इति।

२. याज्ञवल्क्यः—'मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम्। भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत्॥' मनुः—'अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्॥' वर्जयेदिति प्रकृतम्। कूर्म-

ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥

मधुमांससूतकान्नश्राद्धान्नादेर्निषेधाः । पुनःसंस्कारप्रकरणोक्ता अनुसन्धेयाः ।

निषिद्ध से भिन्न गुरु का उच्छिष्ट तो औषध से भिन्न भी भक्ष्य है । इसी प्रकार ज्येष्ठ भाई और पिता के उच्छिष्ट में भी जानना चाहिये । दिन का सोना, आँख में काजल, जूता, छाता और खटिया आदि पर सोना भी वर्जित है । ताम्बूल, अभ्यंगस्नान और कांसे के पात्र में भोजन, यति ब्रह्मचारी और विधवा का भी त्याज्य है । मधु, मांस, सूतक का अन्न और श्राद्धान्न आदि का निषेध पुनःसंस्कार-प्रकरण में कहे हुए का अनुसन्धेय है ।

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः ।
कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी विधारयेत् ॥

मेखलोपवीतादौ त्रुटिते [1]जले प्रास्यान्यद्धारयेत् । यज्ञोपवीतनाशे मनोज्योतिरित्यनेन व्रातपतिभिश्चेति चतस्र[2] आज्याहुतीर्जुहुयादित्युक्तम् । अस्य गुरुपरिचर्याप्रकारोऽन्यत्र ज्ञेयः ।

मेखला, मृगचर्म, दंड, उपवीत, कौपीन तथा कटिसूत्र को ब्रह्मचारी नित्य धारण करे । मेखला और उपवीत आदि के टूटने पर उसे जल में फेंक कर दूसरा धारण करे । यज्ञोपवीत के नष्ट होने पर 'मनोज्योति' और 'व्रातपतिभिश्च' इस मन्त्र से घृत की चार आहुति से होम करे, ऐसा कहा है । ब्रह्मचारी का गुरु-परिचर्या-प्रकार दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिये ।

अथ ब्रह्मचारिव्रतलोपे प्रायश्चित्तम्

संध्याग्निकार्यलोपेऽष्टसहस्रगायत्रीजपः[3] । क्वचित्सकृल्लोपे मानस्तोक इति मन्त्रस्य शतं जप उक्तः । भिक्षालोपेऽष्टशतमभ्यासे द्विगुणं पुनःसंस्कारश्च । मधुमांसाद्यशने उक्तम् । स्त्रीसंगे गर्दभपशुः । एकानेकव्रतलोपसाधारणमृग्विधाने ।

तं वोधिया जपेन्मन्त्रं लक्षं चैव शिवालये ।
ब्रह्मचारी स्वधर्मेषु न्यूनं चेत्पूर्णमेति तत् ॥

पुराणे—'नादर्शं चैव वीक्षेत नाचरेद्दन्तधावनम् । गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत, न कामतः ॥' वसिष्ठः—'स चेद् व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषजार्थं सर्वं प्राश्नीयात् ॥' इति ।

१. मनुः—'मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥' इति ।

२. चतसृणामाहुतीनामेते चत्वारो मन्त्राः—अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि० १, वायो व्रतपते० २, आदित्य व्रतपते० ३, व्रतानां व्रतपते० ४ इति ।

३. अपरार्क में संवर्त का वचन है—'यः सन्ध्यां चैव नोपास्ते अग्निकार्यं यथाविधि । गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत् स्नात्वा समाहितः ॥' ऋग्विधान में एकबार के लोप में—'मानस्तोके जपेन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालये । अग्निकार्यं विना भुक्तौ न पापं ब्रह्मचारिणः ॥' स्त्रीसंग में मनु ने कहा है—'अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे । स्थालीपाकविधानेन यजेद्वै निर्ऋतिं निशि ॥' बिना यज्ञोपवीत के भोजन एवं विण्मूत्र करने पर मरीचि ने कहा—'ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विण्मूत्रे कुरुतेऽथवा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्धयति ॥' इति । विस्तृत जानकारी मिताक्षरादि ग्रन्थों से करें ।

उपाकर्म कृत्वा प्रागुक्तविद्यारम्भकालेऽक्षरारम्भोक्तविष्ण्वादिपूजाप्रकारेण वेदारम्भः कार्यः। द्विजस्त्रीणां युगान्तरे मौञ्जीबन्धो वेदाध्ययनं चासीत्। कलियुगे तु नैतद्द्वयम्। अतः स्त्रीणां वेदोच्चारादौ दोषः।

ब्रह्मचारी सन्ध्या और अग्निकार्य के लोप होने पर आठ हजार गायत्री का जप करे। कहीं एक बार लोप होने पर 'मानस्तोक' इस मन्त्र का सौ बार जप कहा है। भिक्षा का लोप होने पर आठ सौ गायत्री जपे। अभ्यास में दुगुना जप और पुनःसंस्कार भी करे। मधु और मांस के खाने में कह चुके हैं। स्त्री-प्रसंग में गर्दभपशुयज्ञ करे। ऋग्विधान में एक या अनेक व्रत लोप साधारण कहा है 'तं वोधिया' इस मन्त्र को शिवालय में लाख बार जपे। इससे अपने धर्मों में जो कमी हो वह पूर्ण हो जाता है। उपाकर्म करके पहिले कहे हुए विद्यारम्भ के समय तथा अक्षरारम्भ में कहे विष्णु आदि की पूजा के प्रकार से वेद का आरम्भ करना चाहिये। द्विजों की स्त्रियों को दूसरे युगों में उपनयन और वेदाध्ययन भी था। कलियुग में तो ये दोनों नहीं होते। इसलिये स्त्रियों को वेद के उच्चारण आदि में दोष होता है।

अथानध्यायाः

ते च नित्या नैमित्तिकाश्च प्रायेण मौञ्जीप्रकरणे उक्ताः। ततोऽन्येपि उभयविधाऽनध्याया बहवो निबन्धेषूक्तास्तेऽत्र न प्रपञ्च्यन्ते। कलिकालेऽस्मिंस्तावदनध्यायपालनस्य दुर्मेधसामशक्यत्वात्। तथा च हेमाद्रौ स्मृतिः—

चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपत्स्वेव सर्वदा।
दुर्मेधसामनध्यायास्त्वन्तरागमनेषु च॥ इति।

अतः कलौ [१]प्रतिपद्द्वयमष्टमीद्वयं चतुर्दशीद्वयं पूर्णिमादर्शोऽयनसंक्रान्तिरित्येतावत एवानध्यायांस्त्यक्त्वा वेदशास्त्रादिकमध्येतव्यम्। पुंसां प्रायोल्पप्रज्ञत्वात्। शिष्टाचारोऽप्येवमेव। पूर्वदिने सायं परत्र प्रातश्च त्रिमुहूर्तानध्यायतिथिसत्त्वे उदयेऽस्तमये वाऽपीत्यनेन दिनद्वयेऽनध्यायप्राप्तौ वचनान्तरं केचिदाहुः।

नित्य और नैमित्तिक अनध्याय प्रायः उपनयन प्रकरण में कह चुके हैं। उससे भिन्न भी दोनों प्रकार के अनध्याय बहुत से निबन्धों में कहा है। उनका प्रपंच यहां नहीं करते हैं, क्योंकि इस कलिकाल में अनध्याय का पालन दुर्बुद्धियों की शक्ति के बाहर है। ऐसा हेमाद्रि में स्मृति की उक्ति है कि दुर्बुद्धियों का चतुर्दशी, अष्टमी, पर्व और प्रतिपदा में ही सर्वदा अनध्याय है और अन्तरागमन में भी। इसलिये कलियुग में दो प्रतिपदा, दो अष्टमी, दो चतुर्दशी तथा पूर्णिमा, अमावास्या, अयनसंक्रान्ति बस इतने ही अनध्यायों को छोड़कर वेद और शास्त्र आदि का अध्ययन करे। क्योंकि पुरुष प्रायः अल्पबुद्धि के होते हैं। शिष्टाचार भी ऐसा ही है। पहिले दिन सायंकाल दूसरे दिन प्रातःकाल तीन मुहूर्त अनध्याय तिथि के रहने पर 'उदयेऽस्तमये वापि' इस वचन से दोनों दिन अनध्याय प्राप्त होने पर कोई दूसरा वचन कहते हैं।

---

१. रामायण में श्रीहनुमान ने राम से कहा है—'सा स्वभावेन तन्वङ्गी त्वद्वियोगाच्च कर्शिता। प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता॥' यमः—'अष्टमी हन्त्युपाध्यायं शिष्यं हन्ति चतुर्दशी। हन्ति पञ्चदशी मेधां तस्मात्सर्वाणि वर्जयेत्॥' स्मृत्यन्तरम्—'अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी। ब्रह्माष्टमी पौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत्॥' हेमाद्रिः—'अष्टमी हन्त्युपाध्यायं शिष्यं हन्ति चतुर्दशी। अमावास्योभयं हन्ति प्रतिपत्पाठनाशिनी॥' इति।

क्वचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिकाः । तावदेव त्वनध्यायो न तन्मिश्रे दिनान्तर इति । इदमप्यल्पप्रज्ञविषयम् । चतुर्थीसप्तम्यादौ प्रदोषनिर्णय उक्तः । प्रदोषेषु न स्मरेन्न च कीर्तयेदित्युक्तेरितरानध्यायतो दोषाधिक्यम् ।

अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ।
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत् ॥
नित्ये जपे च काम्ये च क्रतौ पारायणेऽपि च ।
नानध्यायोऽस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः ॥

किसी देश में उस दिन की जितनी घड़ियां अनध्याय की हों तब तक ही अनध्याय है। दूसरे दिन में उससे मिश्र होने पर नहीं होता। यह भी अल्पबुद्धि वाले के लिये अनध्याय है। चतुर्थी और सप्तमी आदि में प्रदोषनिर्णय कह चुके हैं। 'प्रदोषों में न स्मरण करे और न कहे' इस उक्ति से अनध्यायों से प्रदोष में अधिक दोष है। अनध्याय तो वेदांग, इतिहास, पुराण और अन्य धर्मशास्त्रों में नहीं है। पर्व में ही अध्ययन का त्याग करे। नित्य और काम्य जप में, यज्ञ में, पारायण में भी पढ़ने पढ़ाने में वेदों का अनध्याय नहीं है।

अथाध्ययनधर्माः

वेदारम्भेऽवसाने गुरोः पादोपसंग्रहणम्[1] । आदौ प्रणवमुच्चार्य वेदमधीत्यान्ते प्रणवमुच्चार्य भूमिं स्पृष्ट्वा विरमेत् । रात्रेः प्रथमयामे चरमयामे च वेदाध्ययनम् । यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते । [2]गुरुं पितरं मातरं च मन्येत कदापि न द्रुह्येत ।

---

१. मनूक्त गुरु के अभिवादन की विधि—'व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः। सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥' अर्थात् अपने हाथों को हेरफेर करके दाहिने हाथ से गुरु का दाहिना पैर और बायें हाथ से गुरु का बायाँ पैर स्पर्श करे। गुरु के चरण-स्पर्श करते समय हाथों को उत्तान (चित्त) रखे, जैसा पैठीनसि ने बतलाया है—'उत्तानाभ्यां हस्ताभ्यां दक्षिणेन दक्षिणं सव्येन सव्यं पादावभिवादयेत् ।' हाथों को हेरफेर करते समय दाहिने हाथ को ऊपर और उसके नीचे बायें हाथ को रखे।

अध्यापन की विधि—'वेदारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा। प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम् ॥ सावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदान् समारभेत् ।' ओंकारं प्रथमं कृत्वा ततो ब्रह्म प्रवर्तयेत् ॥ ओङ्कारं च पुनः कृत्वा भूमिं स्पृष्ट्वा समापयेत् । शाट्यायनः—'दानयज्ञतपःस्वाध्याय-ध्यान-सन्ध्योपासन-प्राणायाम-होम-दैवपित्र्य-मन्त्रोच्चारण-ब्रह्मारम्भादीनि प्रणवमुच्चार्य प्रवर्तयेदिति । अतश्च मन्त्रमात्रोच्चारणे आदावोङ्कारः कार्यः ।' पहले अपने वेद का ही अध्ययनारम्भ करे, जैसा वसिष्ठ ने कहा है—'यच्छाखीयैस्तु संस्कारैः संस्कृतो ब्राह्मणो भवेत् । तच्छाखाऽध्ययनं कार्यमन्यथा पतितो भवेत् ॥ ...... तच्छाखं कर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययनं तथा। एवमध्ययनं कुर्वन् ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ अधीत्य शाखामात्मीयां परशाखां ततः पठेत् ।' इति ।

२. मनुः—'वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते । न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ॥' चिदम्बररहस्ये—'गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः । शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥' इति ।

अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते शिष्या वाचा मनसा कर्मणा वा ।
यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् ॥
इत्यध्ययनधर्माः ।

वेद पढ़ने के आरम्भ और समाप्ति में गुरु के चरणों का उपसंग्रहण करे । आदि में प्रणव का उच्चारण करके वेद पढ़ लेने के अनन्तर प्रणव का उच्चारण कर भूमिस्पर्श करके विराम करे । रात्रि के पहले पहर में और रात के अन्तिम पहर में वेद का अध्ययन करे । दो प्रहरमात्र सोने वाला ब्रह्मचारी तो ब्रह्म ही होता है । गुरु, माता और पिता को माने और उनसे द्रोह कदापि न करे । पढ़ाये हुए छात्र जो मन से वचन से और कर्म से गुरु का आदर नहीं करते तो जैसे वे गुरु के काम में नहीं आते वैसे शास्त्र भी उनका सफल नहीं होता । अध्ययनधर्म समाप्त ।

अथ व्रतानि

तानि [1]महानाम्नीव्रतमहाव्रतोपनिषद्व्रतगोदानव्रताख्यानि चत्वारि क्रमेण जन्मतस्त्रयोदशादिषु वर्षेषूत्तरायणे चौलोक्ततिथिनक्षत्रवारादिषु कार्याणि । अत्र विस्तृतप्रयोगाः कौस्तुभादौ स्वस्वगृह्येषु च द्रष्टव्याः । एतेषां लोपे प्रत्येकमेकैककृच्छ्रं चरित्वा गायत्र्या शताहुतीर्जुहुयात् । त्रीन् षड् द्वादश वा कृच्छ्रान्कुर्यादित्यन्यत्र ।

महानाम्नीव्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत और गोदानव्रत इस प्रकार चार व्रत होते हैं । ये क्रम से जन्म से तेरहवें आदि वर्षों में तथा उत्तरायण में चौल में कहे गये तिथि, नक्षत्र और वार आदि में करना चाहिये । इनके विस्तृत-प्रयोग कौस्तुभ आदि में तथा अपने अपने गृह्य-ग्रन्थों में देखना चाहिये । इन व्रतों के लुप्त होने पर प्रत्येक व्रत के लिये एक एक कृच्छ्र करके गायत्री से सौ आहुति का होम करे । अन्यत्र तो तीन छ या बारह कृच्छ्र व्रत करे, ऐसा कहा है ।

अथ समावर्तनम्

गुरवे क्षेत्राद्यन्यतमं दत्त्वा तदनुज्ञया स्नायात् । स्नानं नाम [2]समावर्तनम् ।

---

१. यथा आह आश्वलायनः—'प्रथमं स्यान्महानाम्नी द्वितीयं च महाव्रतम् । तृतीयं स्यादुपनिषद् गोदानं च ततः परम् ॥' अत्र गोदानस्य महानाम्न्यादिव्रतपूर्वकत्वात् तानि प्रागनुष्ठाय ततो गोदानं विधेयम् । अतो जन्मतस्त्रयोदशे वर्षे महानाम्नी, चतुर्दशे महाव्रतं, पञ्चदशे उपनिषद्व्रतम्, षोडशे गोदानमित्युक्तम् । एवं क्षत्रियविशोरपि उक्तं गोदानात् प्राक् वर्षचतुष्टयं क्रमेण महानाम्न्यादि भवति । अत्रापि चौलवदेव मुहूर्तविचारः । तदुक्तं श्रीधरीये—'तिथिनक्षत्रवाराश्च वर्गोदयनिरीक्षणम् । चौलवत् सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च ॥' यदि दैवादतीतकालानि महानाम्न्यादिव्रतानि स्युस्तदा समावर्तनेन सह कार्याणि इति ।

२. यद्यपि समावर्तन-संस्कार का समय विद्याध्ययन के अनन्तर ही है तथापि 'अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः' इस प्रत्यवाय की अपेक्षा ब्रह्मचर्यव्रत-लोप-जन्य-प्रत्यवाय-परिहार प्रायश्चित्त के गुरुतर होने से संस्कारभास्करोक्त—'सावित्री ग्रहणादूर्ध्वं तद्दिने वा चतुर्थके । तृतीये द्वादशे वाऽपि वत्सरे व्रतमुत्सृजेत् ॥' इस वचन से कालापकर्ष करके उपनयन के दिन ही वेदारम्भ-पूर्वक समावर्तन-संस्कार कर लेना श्रेयस्कर है । क्योंकि अध्ययनकालपर्यन्त ब्रह्मचर्य की रक्षा करना कठिन है और ब्रह्मचर्य के भंग होने पर प्रायश्चित्त है । ब्रह्मचर्य-निवर्तक-कर्म का नाम समावर्तन है । सुरेश्वरोक्त समावर्तनकाल—'भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते । ताराचन्द्रविशुद्धौ च स्यात्समावर्तनक्रिया ॥' इति ।

तानि च क्षेत्रं हेमगौरश्वश्छत्रमुपानहौ धान्यं वस्त्रत्रयं शाकमित्येतानि। एषु यद्गुरोः प्रियं तद्देयम्। दानं विनैव गुरुप्रीतौ तदनुज्ञयैव स्नायात्। क्षेत्रादिनापि न विद्यानिष्क्रयः।

एकैकमक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं यद्दत्त्वा त्वनृणी भवेत्॥ इत्युक्तेः।

गुरु को क्षेत्र आदि में से कोई एक देकर उनकी अनुज्ञा से स्नान करे। स्नान समावर्तन को कहते हैं। गुरु-दक्षिणा की वस्तु—खेत, सोना, गौ, घोड़ा, छाता, जूता, धान्य, तीन वस्त्र और शाक हैं। इनमें से गुरु को जो प्रिय हो वह देना चाहिये। दान के बिना ही गुरु के प्रसन्न होने पर उनकी अनुज्ञा से ही समावर्तन करे। खेत आदि से भी विद्या का निष्क्रय नहीं होता, क्योंकि कहा है—जो गुरु एक एक अक्षर शिष्य को देता है पृथिवी में वह द्रव्य नहीं है जिसे देकर शिष्य ऋण रहित हो।

अथ स्नातकस्य त्रैविध्यम्

स च स्नातकस्त्रिविधः—[१]विद्यास्नातको व्रतस्नातक उभयस्नातक इति। तत्रैकं द्वौ त्रींश्चतुरो वा वेदान्वेदैकदेशं वाऽधीत्य तदर्थं च ज्ञात्वा द्वादशवर्षादिब्रह्मचर्यकालावधेः प्रागेव स्नाति स विद्यास्नातकः। उपनयनव्रतसावित्रीव्रतवेदव्रतान्यनुष्ठाय वेदसमाप्तेः पूर्वमेव स्नातो व्रतस्नातकः। द्वादशवर्षादिब्रह्मचर्यसमाप्त्या वेदं समाप्य स्नातो विद्याव्रतोभयस्नातकः। तत्रोपनयनोत्तरं मेधाजननपर्यन्तं त्रिरात्रद्वादशरात्रादिव्रतमुपनयनव्रतम्। मेधाजननोत्तरमुपाकर्मान्तं ब्रह्मचारिधर्मानुष्ठानं सावित्रीव्रतम्। तदुत्तरं वेदाध्ययनार्थं द्वादशवर्षादिकालावच्छिन्नं व्रतं वेदव्रतम्।

वह स्नातक तीन प्रकार का होता है—विद्यास्नातक, व्रतस्नातक और उभयस्नातक। उनमें विद्यास्नातक वह है जो एक दो तीन या चारो वेदों को अथवा वेदके एकदेश को पढ़कर और उसके अर्थ को जानकर बारह वर्ष आदि ब्रह्मचर्य-काल की अवधि से पहिले ही समावृत्त होता है। व्रतस्नातक वह है जो उयनयनव्रत, सावित्रीव्रत और वेदव्रतों का अनुष्ठान कर वेद के समाप्त होने से पहिले ही समावर्तन करता है। विद्या-व्रत-उभयस्नातक वह है जो बारह वर्ष आदि ब्रह्मचर्य की समाप्ति से वेद समाप्त कर समावृत्त होता है। उसमें उपनयन के बाद मेधाजनन तक त्रिरात्र द्वादशरात्र आदि व्रत को उपनयनव्रत कहते हैं। मेधाजनन के अनन्तर उपाकर्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य का जो अनुष्ठान करता है वह सावित्रीव्रत है। तत् पश्चात् वेदाध्ययन के लिये बारह वर्ष आदि काल के व्रत को वेद-व्रत कहते हैं।

'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इति विधेरर्थज्ञानपर्यन्तत्वाद्वेदार्थज्ञानं विना वेदाध्ययनमात्रेण समावर्तनेऽधिकारो नेति पूर्वमीमांसकाः। वेदग्रहणमेव विधिफलं पूर्वका-

---

१. तदुक्तं स्मृत्यन्तरे—'समाप्य वेदमसमाप्य व्रतं यः समावर्तते स विद्यास्नातकः। समाप्य व्रतमसमाप्य वेदं यः समावर्तते स व्रतस्नातकः। उभयं समाप्य यः समावर्तते स विद्याव्रतस्नातकः।' इति।

ण्डार्थज्ञानं कर्मानुष्ठानाक्षिप्तम्। उत्तरकाण्डार्थज्ञानं काम्यश्रोतव्यविधिप्राप्तमित्युत्तरमीमांसकाः। तत्र संहिता ब्राह्मणं च मिलित्वैको वेदः। आरण्यकाण्डं ब्राह्मणान्तर्गतमेव। संपूर्णैकवेदाध्ययनेष्वशक्तो वेदैकदेशं पठेत्। अत्यशक्तेन संहितायाः प्रथमचरमसूक्तेः कतिपयसूक्तानां प्रथमा ऋचः सर्वसूक्तानां प्रथमा ऋचो वाऽध्येतव्याः।

'वेद को पढ़ना चाहिये' इस विधि-वचन के वेदार्थज्ञान-पर्यन्त होने से वेद के अर्थज्ञान के विना केवल वेद के पढ़ने मात्र से समावर्तन में अधिकार नहीं होता, ऐसा पूर्वमीमांसक कहते हैं। वेद का ग्रहण ही विधि का फल है, पूर्व काण्ड का अर्थज्ञान कर्म के अनुष्ठान से आक्षिप्त है और उत्तरकाण्ड का अर्थज्ञान काम्य और श्रोतव्य-विधि से प्राप्त है, ऐसा उत्तर मीमांसकों का मत है। उसमें संहिता और ब्राह्मण मिलकर एक वेद होता है। आरण्यकाण्ड ब्राह्मणग्रन्थ के अन्तर्गत ही है। सम्पूर्ण एक वेद को पढ़ने में असमर्थ-व्यक्ति वेद के एकदेश को पढ़े। अत्यन्त अशक्त के लिये संहिता का प्रथम और अंत के सूक्त को पढ़ना चाहिये अथवा कई सूक्तों की पहिली ऋचायें या सब सूक्तों की पहिली ऋचायें पढ़नी चाहिये।

एवं वेदैकदेशाध्ययनोत्तरं समावृत्तो विवाहितो वा ब्रह्मचर्योक्तनियमेन वेदाध्ययनं कुर्यात्। तत्र ऋतौ भार्यागमनं[1] कार्यम्। ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तं कृच्छ्रत्रयं कृत्वा महाव्याहृतिहोमं च कृत्वा समावर्तनं कार्यम्। एतच्च संध्याऽग्निकार्यभिक्षालोपशूद्रादिस्पर्शकटिसूत्रमेखलाऽजिनत्यागदिवास्वापाञ्जनपर्युषितभोजनादिव्रतभङ्गेषु अल्पकालमल्पव्रतभङ्गे ज्ञेयम्। बहुधर्मलोपे तु तं वोधियानव्यस्या शविष्ठमिति मन्त्रस्य लक्षजपः शिवालये इत्युक्तम्। एवं च महानाम्न्यादिव्रतलोपस्य ब्रह्मचर्यव्रतलोपस्य च प्रायश्चित्तोत्तरं समावर्तनाधिकारः।

इस तरह वेद के एकदेश का अध्ययन करने के बाद समावृत्त अथवा विवाहित ब्रह्मचर्य के उक्त नियम से वेदाध्ययन करे। उसमें ऋतु में स्त्री-प्रसंग करे। ब्रह्मचारी के व्रतलोप का प्रायश्चित्त तीन कृच्छ्र और महाव्याहृति से होम करके समावर्तन करे। इसे सन्ध्या, अग्निकार्य, भिक्षालोप, शूद्र आदि का स्पर्श, कटिसूत्र, मेखला और मृगचर्म का त्याग, दिवाशयन, उपांजन तथा बासी भोजन आदि व्रतभंग में और अल्पकाल में अल्प-व्रतभंग में जानना चाहिये। अधिक धर्मलोप में तो 'तंवोधियान व्यस्या शविष्ठं' इस मन्त्र का शिवमन्दिर में एक लाख जप करे, यह कह चुके हैं। इसी प्रकार महानाम्नी आदि व्रतलोप और ब्रह्मचर्यव्रत-लोप का प्रायश्चित्त के पश्चात् समावर्तन का अधिकार है।

अथ समावर्तनकालः

तत्रोपनयनोक्तकाले समावर्तनमिति बहवो ज्योतिर्ग्रन्थाः। तेनानध्याये प्रदोषदिने भौमशनिवारयोः पौषाषाढयोर्दक्षिणायने च न भवति। मार्गशीर्षे विवाहप्रसक्तौ दक्षिणायनेऽपि भवति। अन्यथा 'अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः' इति निषेधातिक्रमापत्तेः। अन्ये तु मौञ्ज्युक्तकालोपादाने मूलाभावात्

---

१. अगमने दोषश्रवणात्, यथा—'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः॥' इति।

रिक्तात्रयपूर्णिमामावास्याष्टमीप्रतिपद्भिन्नतिथिषु शुक्लेऽन्त्यत्रिकभिन्नकृष्णे च गुरुशुक्रास्तादिदिनक्षयभद्राव्यतीपातादिदोषशून्ये शुभवारे समावर्तनं कार्यम्। नात्र प्रदोषसोपपदादितिथिवर्जनमावश्यकमित्याहुः। पुष्यपुनर्वसुमृगरेवतीहस्तानूराधोत्तरात्रयरोहिणीश्रवणविशाखाचित्राः श्रेष्ठाः। एतदलाभे मौञ्ज्युक्तभानि। क्वचिद्भौमशनिवारौ सिन्धावुक्तौ।

उसमें बहुत से ज्योतिषग्रन्थ में लिखा है कि उपनयन में कहे हुये समय में समावर्तन करे। इससे अनध्याय, प्रदोष के दिन, मंगल, शनिवार, पौष, आषाढ़ मास तथा दक्षिणायन में समावर्तन नहीं करे। अगहन में विवाह का प्रसंग हो तो दक्षिणायन में भी होता है। अन्यथा 'द्विज विना आश्रम के एक दिन भी न रहे' इस निषेध का अतिक्रमण होगा। अन्य आचार्य कहते हैं कि उपनयन काल के ग्रहण करने में प्रमाण के अभाव से तीनों रिक्ता, पूर्णिमा, अमावास्या, अष्टमी और प्रतिपदा से भिन्न तिथियों में, शुक्लपक्ष में, अन्त के तीन दिन से भिन्न कृष्णपक्ष में और गुरु शुक्र के अस्त आदि, दिनक्षय, भद्रा और व्यतीपात आदि दोष से रहित शुभवार में समावर्तन करना चाहिये। इसमें प्रदोष तथा सोपपदा आदि तिथि का त्याग आवश्यक नहीं है। पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, हस्त, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, विशाखा और चित्रा नक्षत्र श्रेष्ठ हैं। इसके नहीं मिलने पर उपनयन में कहे हुए नक्षत्र में करे। कहीं मंगल और शनिवार समावर्तन में ग्राह्य है, यह निर्णय सिन्धु में कहा है।

अथ 'मणिकुण्डलवस्त्रयुगच्छत्रोपानद्युगदण्डस्रगुन्मर्दनानुलेपाञ्जनोष्णीषाणि आत्मने आचार्याय च संपाद्यालाभे आचार्यायैव वा संपादयेत्[1]। देशकालौ संकीर्त्य 'मम ब्रह्मचर्यनियमलोपजनितसंभावितदोषपरिहारेण समावर्तनाधिकारसंपादनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमाज्यहोमपूर्वकं कृच्छ्रत्रयं महानाम्न्यादिव्रतचतुष्टयलोपजनितप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारमेकैकं कृच्छ्रं[2] च गायत्र्याज्यहोमपूर्वकं तन्त्रेणाहमाचरिष्ये' इति संकल्प्याग्निप्रतिष्ठादि।

मणि, कुण्डल, जोड़ा वस्त्र, छाता, जोड़ा जूता, दण्ड, माला, उन्मर्दन, अनुलेप, अंजन और पगड़ी अपने और आचार्य के लिये भी सम्पादन कर, नहीं मिलने पर आचार्य ही के लिये सम्पादन करे। देशकाल को कहकर 'मेरे ब्रह्मचर्य-नियम का लोप-जन्य-सम्भावित-दोष के परिहार तथा समावर्तन के अधिकार सम्पादनद्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिये घृतहोमपूर्वक तीन कृच्छ्र और महानाम्नी आदि चार व्रत के लोप से उत्पन्न प्रत्यवाय-परिहार के लिये प्रत्येक संस्कार के लिये गायत्री से घृतहोमपूर्वक एक-एक कृच्छ्र तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्नि की स्थापना आदि करे।

---

१. आश्वलायनः—'अथोपकल्पयीत समावर्त्स्यमानो मणिकुण्डले वस्त्रयुग्मं छत्रमुपानद्युगं दण्डं स्रगुद्वर्तनमनुलेपनमञ्जनमुष्णीषमित्यात्मने चाचार्याय च यद्युभयोर्न विन्देदाचार्याय वा।' याज्ञवल्क्यः—'गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया।' वरं= आचार्यस्य अभिलषितद्रव्यम्।

२. शौनक ने इसके लोप होने पर कहा है—'व्रतानि विधिना कृत्वा स्वशाखाध्ययनं चरेत्। अकृत्वाऽभ्यस्यते येन स पापी विधिघातकः॥ प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाऽऽज्याहुतीः शतम्। हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादित्याह शौनकः॥' स्मृत्यर्थसार में अधिक कृच्छ्र का निर्देश किया है—'त्रीन् षड् द्वादश वा कृच्छ्रान् कृत्वा पुनर्व्रतं चरेत्।' इति।

चक्षुषी आज्येनात्र प्रधानम् अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च चतसृभिराज्याहुतिभिः, अग्निं पृथ्वीं महान्तमेकयाज्याहुत्या वायुमन्तरिक्षं महान्तमेकया०, आदित्यं दिवं महान्तमेकया०, चन्द्रमसं नक्षत्राणि दिशो महान्तमेकया०, अग्निं द्विः विभावसुं शतक्रतुम् अग्निम् अग्निम् अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चेत्यष्टावेकैकयाज्याहुत्या । शेषेणेत्यादि ।

'चक्षुषी आज्येन' इससे प्रधान अग्नि वायु सूर्य और प्रजापति को भी चार घृताहुतियों से, अग्नि पृथिवी और महान को एक घृत की आहुति से, वायु अन्तरिक्ष और महान् को एक घृत की आहुति से, सूर्य दिव और महान् को, चन्द्रमा नक्षत्रगण और दिशाओं को तथा महान् को एक एक घृत की आहुति से, अग्नि को दो आहुति से, सूर्य इन्द्र तीनों अग्नि वायु सूर्य और प्रजापति, इन आठों को एक एक घृताहुति से होम करे । शेष से स्विष्टकृत् होम करे ।

आज्यभागान्ते व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा ओं भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा । अग्नये पृथिव्यै महत इदमित्यादि यथान्वाधानं त्यागः । ओं भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा । ओं सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा । ओं भूर्भुवः सुवश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा । चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महत इदं पाहिनो अग्न एनसे स्वाहा । ओं पाहि नो अग्न एनसे स्वाहा । ओं पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा । ओं यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा । ओं सर्वं पाहिशतक्रतो स्वाहा । ओं पुनरूर्जानिवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः स्वाहा । ओं सहरय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्वधारया । विश्वप्स्नियाविश्वतस्परि स्वाहा ।

आज्यभाग के अन्त में व्यस्त तथा समस्त व्याहृतियों से होम करके 'ॐभूरग्नये च पृथिव्यै' इससे अग्नि, पृथ्वी और महान् को इदमित्यादि कहकर अन्वाधानपूर्वक त्याग करे । 'ॐभुवो वायवे' 'ॐसुवरादित्याय' 'ॐ भूर्भुवः सुवश्चन्द्रमसे' 'ॐ पाहि नो अग्न' 'ॐ पाहि नो विश्व' 'ॐयज्ञं पाहि' 'ॐसर्वं पाहि' 'ॐपुनरूर्जा निवर्तस्व' 'ॐसहरय्या निवर्तस्वाग्ने, इत्यादि मन्त्र मूल में देखें ।

पुनर्व्यस्तसमस्तव्याहृतिचतुष्टयम् । ततः व्रतचतुष्टयार्थं गायत्र्याज्यहोमः । कृच्छ्रत्रयगोनिष्क्रयं दत्त्वा होमशेषं समापयेत् । महानाम्न्यादिलोपे प्रत्येकमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा गायत्र्याऽऽज्याहुतीर्हुत्वा एकैकं कृच्छ्रं चरेत् । इति प्रायश्चित्तप्रयोगः ।

व्यस्त और समस्त व्याहृतियों से चार आहुति पुनः दे । तदनन्तर चार व्रतों के लिये गायत्री से घृत का होम करे । तीन कृच्छ्र के लिये गोनिष्क्रय देकर होम-शेष को समाप्त करे । महानाम्नी आदि के लोप में प्रत्येक के लिये एक सौ आठ या अट्ठाईस या आठ घृत की आहुति गायत्री से देकर एक एक कृच्छ्र करे । प्रायश्चित्तप्रयोग समाप्त ।

अथ समावर्तनसंकल्पादि

'मम गृहस्थाश्रमार्हतासिद्धिद्वारा श्रीपर० समावर्तनं करिष्ये' इति संकल्प्य नान्दीश्राद्धान्तं बटुरेव कुर्यात् । ब्रह्मचारी जीवत्पितृकश्चेत्पितुर्मात्राद्युद्देशः । ब्रह्म-

चार्यशक्तश्चेत्पित्रादिस्तत्प्रतिनिधित्वेन नान्दीश्राद्धं कुर्यात्। समावर्तन उपनयनादाविव पित्रादिरेव नान्दीश्राद्धकर्तेति मतान्तरेण प्रागुक्तम्। अवशिष्टप्रयोगः स्वस्वगृह्यानुसारेण। दश त्रीन् वा विप्रान् भोजयेत्। दास्यन्ति मधुपर्कं ये तत्रैतां रजनीं वसेत्। ततो व्रतानि संकल्पयेत्। तानि च स्वसूत्रोक्तानि स्मृत्युक्तानि चेति द्विविधानि। सर्वाण्यपि पुरुषार्थान्येव न तु समावर्तनाङ्गानि। तत्राशक्तः सूत्रोक्तान्येव व्रतानि कुर्यात्। शक्तस्तु स्मृत्युक्तान्यपि।

'मेरे गृहस्थ आश्रम की योग्यतासिद्धिद्वारा परमात्मप्रीत्यर्थ समावर्तन करूंगा' ऐसा संकल्प करके नान्दीश्राद्धपर्यन्त कर्म ब्रह्मचारी ही करे। ब्रह्मचारी यदि जीवत्पितृक हो तो पिता की माता आदि के उद्देश्य से नान्दीश्राद्ध करे। ब्रह्मचारी यदि अशक्त हो तो उसके पिता आदि ब्रह्मचारी के प्रातिनिध्य से नान्दीश्राद्ध करे। दूसरे मतों से समावर्तन और उपनयन आदि की तरह पिता आदि ही नान्दीश्राद्ध के कर्त्ता होते हैं, यह पहिले कह चुके हैं। बाकी प्रयोग अपने अपने गृह्य के अनुसार करे। दस अथवा तीन ब्राह्मणों को भोजन करावे और जो मधुपर्क दे, वहीं वहां उस रात में बास करे। तदनन्तर व्रतों का संकल्प करे। वे व्रत अपने अपने सूत्र के कहे और स्मृति के कहे हुए, इस तरह दो प्रकार के होते हैं। सभी पुरुषार्थ ही हैं, समावर्तन के अंग नहीं हैं। उसमें असमर्थ पुरुष सूत्रों में कहे हुए ही व्रतों को करे। समर्थ तो स्मृति में कहे हुए भी स्नातकव्रत को करे।

अथ स्नातकव्रतानि

तानि यथा—निमित्तं विना न नक्तं स्नास्यामि। न नग्नः स्नास्यामि। न नग्नः शयिष्ये। न नग्नां स्त्रियमीक्षिष्येऽन्यत्र मैथुनात्। वर्षति न धाविष्ये। न वृक्षमारोहिष्ये। न कूपमवरोहिष्ये। न बाहुभ्यां नदीं तरिष्यामि। न प्राणसंशयमभ्यापत्स्ये। इति सूत्रोक्तानि।

वे जैसे—विना निमित्त के रात में स्नान नहीं करूंगा। न नंगा होकर स्नान करूंगा। नंगे होकर नहीं शयन करूंगा। मैथुन से अन्यत्र नंगी स्त्री को नहीं देखूंगा। वर्षा होने में नहीं दौड़ूंगा। न पेड़ पर चढ़ूंगा। न कुएं में उतरूंगा। बाहु से नदी नहीं तैरूंगा। प्राणसंशय का कार्य नहीं करूंगा। ये सूत्र के कहे व्रत हैं।

अथ स्मृत्युक्तानि

नित्यं [1]यज्ञोपवीतद्वयं धारयिष्ये। सोदककमण्डलुं छत्रमुष्णीषं पादुके उपा-

१. व्यासः—'यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम्। छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ॥ रौक्मे च कुण्डले वेदः कृत्तकेशनखः शुचिः।' मनुः—'सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः। यथा तथाऽध्यापयंस्तु स ह्यस्य कृतकृत्यता॥ बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च। नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्॥ क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः। स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च॥ नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत्। न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे॥ न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते। न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन॥ नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत्। न चैव प्रलिखेद् भूमिं नात्मनोऽपहरेत् स्रजम्॥ उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्। उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च॥' इत्यादयो नियमा मन्वादिस्मृतिषु द्रष्टव्याः।

नहौ सुवर्णकुण्डले दर्भमुष्टिं च धारयिष्ये। कर्तनेन ह्रस्वीकृतकेशश्मश्रुनखः स्याम्। निमित्तं विना मुण्डनं न करिष्ये इत्यर्थः। न समावृत्ता मुण्डेरन्निति निषेधात्। नित्यमध्ययनरतः स्याम्। स्वशरीरादुद्धृतं स्वनिर्माल्यं पुष्पचन्दनादि पुनर्न धारयिष्ये। शुक्लाम्बरधरः स्याम्। सुगन्धीप्रियदर्शनः स्याम्।

स्मृत्युक्त व्रत—नित्य दो यज्ञोपवीत धारण करूंगा। सजल-कमण्डल, छाता, पगड़ी, खड़ाऊँ, जूता, सोने के कुण्डल और मुट्ठी भर कुश धारण करूँगा। कैंची से काटकर केश, दाढ़ी और नख को छोटा बनाकर रहूँगा। बिना किसी निमित्त के मुण्डन नहीं करूँगा। क्योंकि समावृत्त मुण्डन नहीं करे ऐसा निषेध है। नित्य अध्ययन में लगा रहूँगा। अपने शरीर से उतारा हुआ अपना निर्माल्य पुष्प चन्दन आदि दुबारा नहीं धारण करूँगा। शुक्ल वस्त्र धारण करूँगा। सुगन्धयुक्त और प्रियदर्शी रहूँगा।

विभवे सति जीर्णवासा मलवद्वासाश्च न स्याम्। रक्तं वासः शरीरपीडावहं वा वस्त्रं न धारयिष्ये। गुरुं विनान्यैर्धृतं वस्त्रमलंकारं स्रजं च न धारयिष्ये। अशक्तस्तु अन्यधृतमपि वस्त्रादि प्रक्षाल्य धारयेत्। अन्यधृतोपवीतमुपानहौ च न धारये। कन्थां न धारयिष्ये। न स्वरूपमुदके निरीक्षिष्ये। न भार्यया साकमेकपात्रे एककाले वाऽश्नीयाम्। एतद्विवाहभिन्नविषयम्।

धन रहने पर पुराना या मैला वस्त्रधारी नहीं रहूँगा। लालवस्त्र या शरीर को पीड़ा देनेवाला वस्त्र नहीं धारण करूंगा। गुरु के अतिरिक्त दूसरों का धारण किया हुआ वस्त्र, आभूषण और माला नहीं धारण करूँगा। असमर्थ तो दूसरे के धारण किये हुए वस्त्र आदि को पानी से धोकर धारण करे। दूसरे का धारण किया हुआ यज्ञोपवीत और जूते भी नहीं धारण करूँगा। कथरी नहीं धारण करूँगा। अपने रूप को पानी में नहीं देखूँगा। अपनी स्त्री के साथ एक बर्तन में या एक समय में भोजन नहीं करूँगा। यह विवाह से भिन्न विषय का है।

शूद्राय धर्मज्ञानं नीतिज्ञानं व्रतकल्पं च नोपदिशामि। एतत्साक्षादुपदेशपरम्। 'कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः' इति ब्राह्मणद्वारकोपदेशे दोषाभावात्। गृहमेधिशूद्राय स्वोच्छिष्टं न दास्ये। शूद्राय होमशेषं न दास्ये। उद्धृतोदकेन तिष्ठन्नाचमनं न करिष्ये। जानुमात्रे तदधिके वा जले तिष्ठदाचमने दोषाभावात्। अशुचिना एकहस्तेन वा आनीतजलैर्नाचमिष्ये।

धर्म और नीति का ज्ञान तथा व्रतकल्प का उपदेश शूद्र को नहीं दूँगा। यह साक्षात् उपदेश-विषयक है। 'कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः' इस वचन से ब्राह्मण के द्वारा उपदेश देने में दोष नहीं है। गृहस्थ-शूद्र को अपना जूठा नहीं दूंगा। होम-शेष शूद्र को नहीं दूँगा। कुएँ से निकाले हुए जल से खड़े होकर आचमन नहीं करूंगा। ठेहुने भर या उससे अधिक जल में खड़े होकर आचमन करने में दोष नहीं है। अपवित्र या एक हाथवाले व्यक्तिद्वारा लाये हुए जल से आचमन नहीं करूंगा।

पादेन पादधावनं न करिष्ये। अकल्पां स्त्रियं न गमिष्यामि। न प्रावृतमस्तकोऽहनि पर्यटिष्यामि। रात्रौ मलमूत्रोत्सर्गे च प्रावृतशिराः स्याम्। सोपानत्कोऽशनाभिवादननमस्कारान्न करिष्ये। पादेनासनं नापकर्षिष्यामि। एवमन्यान्यपि

स्मृत्युक्तानि ज्ञेयानि। एतेषु व्रतेषु यानि कर्तुं शक्नुयात्तावन्त्येव संकल्पयेत्। अत्र संकल्पितव्रतोल्लङ्घने मत्या कृते त्र्यहमभोजनम्। अमत्या कृते एकरात्रमभोजनं प्रायश्चित्तम्। अशक्तस्त्रीनेकं वा विप्रं भोजयेत्। इति स्नातकव्रतानि।

पैर से पैर नहीं धोऊंगा। अयोग्य स्त्री से गमन नहीं करूंगा। दिन में सिर ढककर नहीं घूमूंगा। रात और मलमूत्र करने में सिर ढके रहूँगा। जूता पहिन कर भोजन, अभिवादन और नमस्कार नहीं करूंगा। पैर से आसन नहीं खीचूंगा। इस प्रकार स्मृत्युक्त अन्यान्य व्रत को जानना चाहिये। इन व्रतों में जितने को कर सके उतने ही का संकल्प करे। इसमें संकल्प किये हुए व्रतों के उल्लंघन में ज्ञानपूर्वक उल्लंघन करने पर तीन दिन का उपवास और अज्ञान से करने पर एक दिन का उपवास प्रायश्चित्त है। असमर्थ तीन या एक ब्राह्मण को भोजन करावे। स्नातकव्रत समाप्त।

अथ आतुरसमावर्तनम्

आतुरदशायां यथोक्तसमावर्तनासंभवे संक्षेपतस्तत्कार्यम्। तत्प्रयोगः—संकल्प्य ब्रह्मचारिलिङ्गानि मेखलादीनि त्यक्त्वा वपनं कृत्वा तीर्थे स्नात्वा वासःपरिधानाचमनतिलकधारणानि कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य तत्र प्रजापतिं मनसा ध्यायंस्तूष्णीं समिधमादध्यात्। अन्यदपि अविरोधि तूष्णीमेव कर्तव्यमिति। इति समावर्तनानुकल्पः।

बीमारी की दशा में जैसा समावर्तन में कहा है उसके न करने पर संक्षेप से उसे करे। उसका प्रयोग—संकल्प करके ब्रह्मचारी के चिह्न मेखला आदि का त्याग और मुण्डन करके तीर्थ में नहाकर वस्त्र परिधान, आचमन, तिलकधारण और अग्निस्थापन करके उसमें प्रजापति का मन से ध्यान करते हुए चुपचाप समिधा का आधान करे। अन्य भी अविरोधी कर्त्तव्य चुपचाप करे। समावर्तन का अनुकल्प समाप्त।

अथ ब्रह्मचारिण आशौचनिर्णयः

ब्रह्मचर्यदशायां दशाहाशौचहेतुसपिण्डमरणे समावर्तनोत्तरमुदकदानपूर्वकं त्रिरात्रमतिक्रान्ताशौचं कार्यम्। अनुपनीतसपिण्डे मातुलादौ च मृतेऽतिक्रान्ताशौचं न। एवं जननाशौचेऽप्यतिक्रान्ताशौचं न। ततश्च दशाहाशौचापादकसपिण्डमृतौ समावर्तनोत्तरं त्रिरात्रमध्ये विवाहो न कार्यः। कस्यचिन्मरणाभावे तु न विवाहे दोषः।

इत्थं व्रतान्तकर्माण्यनन्तोपाध्यायसूनुना।
निर्णीय श्रीविट्ठलाङ्घ्रचोर्वाग्विलासः समर्पितः॥

ब्रह्मचर्यावस्था में दशाहाशौच वाले सपिण्ड के मरने में समावर्तन के अनन्तर उनका जलदान कर त्रिरात्राशौच करे। जिसका उपनयन नहीं हुआ हो ऐसे सपिण्ड के मरने और मातुल आदि के मरने में बीते हुए अशौच को न करे। इसी तरह जननाशौच में भी बीते हुये आशौच को न करे। इसके बाद दशाह अशौच वाले सपिण्ड की मृत्यु में समावर्तन के बाद तीन दिन के बीच में विवाह न करे। कोई मरा न हो तो विवाह में दोष नहीं है। इस प्रकार व्रतपर्यन्त कर्मों का निर्णय कर श्री अनन्तोपाध्याय के पुत्र ने श्री विट्ठल भगवान् के चरणों में इस वाग्विलास का समर्पण किया।

अथ विवाहविवेचनम्

अथ श्रीभगवत्पादौ पुण्डरीकवरप्रदौ ।
श्रीगुरून्पितरौ नत्वा विवाहं वक्तुमुद्यतः ॥
उद्वहेत्तु द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणैर्युताम् ।
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं मृद्वङ्गीं च मनोहराम् ॥

भाविशुभाशुभज्ञानहेतुलक्षणविचारोऽष्टौ पिण्डान् कृत्वेत्यादिरूप [1]आश्वलायनसूत्रे उक्तः । ज्योतिःशास्त्रोक्तः राशिनक्षत्रादिघटितविचारोऽपि शुभादिज्ञानहेतुः । स च [2]संक्षेपेणोच्यते ।

श्री भगवान् के वर देने वाले चरण-कमलों तथा माता पिता के चरणों को प्रणाम करके विवाह के सम्बन्ध में कहना प्रारम्भ कर रहा हूँ । द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अपने वर्ण की, लक्षणों से युक्त, सुन्दर अंगों वाली, शुभ नाम वाली, कोमलांगी और मन को हरण करने वाली भार्या से विवाह करे । होने वाले शुभ और अशुभ के ज्ञान के लिये 'आठ पिण्ड बनाकर' इत्यादि लक्षण का विचार आश्वलायन सूत्र में कहा है । ज्योतिषशास्त्र में कहे हुए राशि नक्षत्र आदि के द्वारा जो विचार है वह भी शुभाशुभ-ज्ञान का कारण है । उसको संक्षेप से कह रहा हूँ ।

अथ विवाहे घटितविचारः

तत्र मेषादिराशिस्वामिनः—

भौमः शुक्रो बुधश्चन्द्रः सूर्यः सौम्यो भृगुः कुजः ।
गुरुः शनैश्चरो मन्दः सुरेज्यो राशिपाः स्मृताः ॥

उसमें मेष आदि बारह राशियों के स्वामी–मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनैश्चर, शनैश्चर और बृहस्पति, ये क्रम से हैं । जैसे—मेष का स्वामी मंगल, वृषका शुक्र, मिथुन का बुध इत्यादि ।

---

१. आभ्यन्तर लक्षणों की जानकारी के लिये आश्वलायन ने इस प्रकार बतलाया है—'दुर्विज्ञेयानि लक्षणान्यष्टौ पिण्डान् कृत्वा 'ऋतमग्रे प्रथमं जज्ञे ऋते सत्यं प्रतिष्ठितं यदियं कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यतां यत्सत्यं तद् दृश्यताम्' इति पिण्डानभिमन्त्र्य कुमारीं ब्रूयादेषामेकं गृहाणेति । क्षेत्राच्चेदुभयतः सस्याद् गृह्णीयाद् अन्नवत्यस्याः प्रजा भविष्यति इति विद्यात्, गोष्ठात् पशुमती, वेदि-पुरीषात् ब्रह्मवर्चस्विनी, अविदासिनो ह्रदात्सर्वसम्पन्ना, देवनात् कितविनी चतुष्पथाद्विप्रव्राजिनी, ईरिणादधन्या श्मशानात् पतिघ्नी ।' इति । उभयतः सस्यक्षेत्र का अर्थ है–वर्ष में दो बार होने वाला क्षेत्र, वेदिपुरीषात्=अपकर्म के लिये बनाई हुई वेदी से, अविदासिनो ह्रदात्=सर्वदा जलयुक्त तालाब से, देवनात्=जुआ खेलने के स्थान से, चतुष्पथाद्विप्रव्राजिनी=चौराहे से अनेक पुरुषों से संपर्क करने वाली, ईरिणात्=ऊसर से ।

२. मुहूर्तचिन्तामणि के सर्वदेशप्रसिद्ध—'वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् । ग्रहमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः ॥' इन आठ कूटों में जिनके अधिक गुण और जो विवाह-विघटक हैं उन्हीं का ग्रन्थकार संक्षिप्त-विचार दिखा रहे हैं । दैवज्ञमनोहर में आठ कूटों का गुणभेद—'नाडीभेदे गुणा अष्टौ सप्त सद्राशिकूटके । षड्गुणा ग्रहमैत्र्यां च सौहार्दे पंच खेटयोः । योनिमैत्र्यां च चत्वारस्त्रयस्ताराबले गुणाः । वश्यत्वे द्वौ गुणौ प्रोक्तौ वर्ण एकः प्रकीर्तितः ॥' इति ।

अथ ग्रहमैत्री

अथ ग्रहाणां [1]शत्रुमित्रादि—रवेर्गुरुभौमचन्द्रा मित्राणि, शनिशुक्रौ शत्रू, बुधः समः। इन्दोः सूर्यबुधौ मित्रे, भौमगुरुशुक्रशनयः समाः, अस्य शत्रुर्न। कुजस्य बुधो रिपुः, सूर्यगुरुचन्द्रा मित्राणि, शनिशुक्रौ समौ। बुधस्यार्कशुक्रौ मित्रे, चन्द्रोऽरिः, शनिभौमगुरवः समाः। गुरोः सूर्यभौमचन्द्रा मित्राणि, शुक्रबुधौ शत्रू, शनिः समः। शुक्रस्य शनिबुधौ मित्रे, सूर्यचन्द्रावरी, भौमगुरू समौ। शनेः शुक्रबुधौ मित्रे, कुजसूर्यचन्द्रा अरयः, गुरुः समः।

ग्रहों के शत्रु मित्रादि इस प्रकार हैं—सूर्य के बृहस्पति, मंगल और चन्द्रमा मित्र हैं, शनि और शुक्र शत्रु हैं, बुध सम हैं। चन्द्रमा के सूर्य और बुध मित्र हैं, मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि सम हैं, चन्द्रमा का शत्रु नहीं है। मंगल के बुध शत्रु हैं, सूर्य बृहस्पति और चन्द्रमा मित्र हैं, शनि और शुक्र सम हैं। बुध के सूर्य और शुक्र मित्र हैं, चन्द्रमा शत्रु हैं, शनि मंगल और बृहस्पति सम हैं। बृहस्पति के सूर्य मंगल और चन्द्रमा मित्र हैं, शुक्र और बुध शत्रु हैं, शनि सम हैं। शुक्र के शनि और बुध मित्र हैं, सूर्य और चन्द्रमा शत्रु हैं, मंगल बृहस्पति सम हैं। शनि के शुक्र और बुध मित्र हैं, मंगल सूर्य और चन्द्रमा शत्रु हैं, बृहस्पति सम हैं।

अथ गुणविचारः

राश्योरेकाधिपत्ये राशिपत्योर्मित्रत्वे च पञ्च गुणाः। राशिपत्योः समत्वशत्रुत्वेऽर्धो गुणः। समत्वमित्रत्वे चत्वारः। शत्रुत्वमित्रत्वे एकः। द्वयोः समत्वे त्रयः। द्वयोः शत्रुत्वे गुणाभावः।

वरवधू की राशियों का स्वामी एक हो या उनके स्वामियों की मित्रता हो तो पांच गुण होते हैं। दो राशि स्वामियों के परस्पर समत्व और शत्रुत्व में आधा गुण होता है। समत्व और मित्रत्व दोनों का हो तो चार गुण होते हैं। शत्रुत्व और मित्रत्व में एक गुण होता है। दोनों के समत्व में तीन गुण होते हैं। दोनों के शत्रुत्व में गुण नहीं होता।

अथ गणविचारः

पूर्वात्रयोत्तरात्रयभरणीरोहिण्यार्द्रामनुष्यगणः। हस्तरेवतीपुनर्वसुपुष्यस्वातीमृगश्रवणाश्विन्यनूराधादेवगणः। कृत्तिकाश्लेषामघाचित्राविशाखाज्येष्ठामूलधनिष्ठाशततारकाराक्षसगणः। [2]गणैक्ये शुभम्। देवमनुष्ययोर्मध्यमम्। देवरक्षसोर्वैरम्। राक्षसमनुष्ययोर्मरणम् अतो मनुष्यराक्षसयोर्विवाहो न कार्यः।

---

१. ग्रहमैत्री में वसिष्ठोक्त शत्रुमित्रादि का फल—'अन्योन्यमित्रं शस्तं स्यात् सममित्रं तु मध्यमम्। उदासीनं कनिष्ठं स्यान्मृतिदं शात्रवं स्मृतम्॥ शत्रुमित्रं च विज्ञेयं दम्पत्योः कलहप्रदम्। अन्योन्यसमशत्रुत्वं दम्पत्योर्विरहप्रदम्॥' इति।

२. गणकूट का नारदोक्त फल—'दम्पत्योर्जन्मभे चैकगणे प्रीतिरनेकधा। मध्यमा देवमर्त्यानां राक्षसानां तयोर्मृतिः॥' कश्यपः—स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमाऽमरमर्त्ययोः। मर्त्यराक्षसयोर्वैरमसुरासुरयोरपि॥' 'राक्षसी यदि वा नारी नरो भवति मानुषः। मृत्युस्तत्र न संदेहो विपरीतः शुभावहः॥' 'रक्षोगणः पुमान् स्याच्चेत्कन्या भवति मानवी। केऽपीच्छन्ति तदोद्वाहं व्यस्तं कोऽपीह नेच्छति॥' यह विचार देवराक्षस में भी तुल्य न्याय से करना चाहिये।

अत्र गुणाः—गणैक्ये षड्गुणाः। वरो देवो नृगणा कन्याऽत्रापि षट्। वैपरीत्ये राक्षसः कन्या देवगणा अत्रैकः। वैपरीत्ये गुणाभावः। मनुष्यराक्षसत्वेऽपि गुणाभावः।

तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, भरणी, रोहिणी और आर्द्रा मनुष्यगण हैं। हस्त, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाती, मृगशिरा, श्रवण, अश्विनी और अनुराधा देवगण हैं। कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा और शतभिषा राक्षसगण हैं। एक गण होने में शुभ होता है। देवता और मनुष्य में मध्यम होता है। देवता और राक्षस में वैरभाव होता है। राक्षस और मनुष्य में मरण होता है इसलिये मनुष्य और राक्षस में विवाह नहीं करना चाहिये। इसमें गुणों को कहते हैं—एक गण होने में छ गुण होते हैं। वर देवगण का हो और मनुष्यगण की कन्या हो तो इसमें भी छ गुण होते हैं। कन्या देवगण हो और वर मनुष्यगण हो तो पांच गुण होते हैं। वर राक्षसगण कन्या देवगण हो तो इसमें एक गुण होता है। वर देवगण और कन्या राक्षसगण हो तो गुण नहीं होता। वर मनुष्यगण और कन्या राक्षसगण हो तब भी गुण नहीं होता।

अथ राशिकूटम्

द्विर्द्वादशके निर्धनत्वम्। नवपञ्चमत्वे निःपुत्रता। षट्काष्टके मरणं विपत्तिर्वा। उभयसप्तमे तृतीयैकादशे चतुर्थदशमे च शुभम्। नक्षत्रैक्ये चरणभेदे शुभम्। अत्र राश्यैक्ये अतिशुभम्। राशिभेदेऽपि कूटदोषो न। नक्षत्रभेदे च शुभम्। अत्र नाडीगणादिदोषो न। चरणैक्यं 'षट्काष्टकं च वर्ज्यम्। द्विर्द्वादशके नवपञ्चमे च मध्यमम्। शेषे शुभम्। अत्र गुणाः—सत्कूटे सप्त दुःकूटे ग्रहमैत्रीसत्त्वे चत्वारः, अन्यथा एकः। चरणैक्ये गुणाभावः।

वधू वर की राशि दूसरी या बारहवीं हो तो निर्धन होता है। नवीं पांचवीं राशि हो तो पुत्र का अभाव, छठी आठवीं राशि हो तो मरण या विपत्ति होती है। दोनों की सातवीं, तीसरी, ग्यारहवीं, चौथी और दसवीं राशि शुभप्रद है। नक्षत्र एक हो पाद में भेद हो तो शुभ होता है। इसमें राशि एक हो तो अति शुभ है। राशिभेद में कूटदोष नहीं होता। नक्षत्रभेद में और राशि के ऐक्य में भी शुभ होता है। इसमें नाड़ी और गण आदि का दोष नहीं होता। छठे आठवें में चरणैक्य वर्जित है। दूसरे, बारहवें नवें और पांचवें में भी मध्यम है। शेष में शुभ है। सत्कूट में सात गुण, दुष्कूटमें ग्रहमैत्री होनेपर चार गुण और नहीं तो एक गुण। चरणैक्य में गुण नहीं होता।

---

१. वर कन्या के परस्पर षडष्टक आदि राशि के होने पर नारद का कहा फल—'षष्ठाष्टके मृतिर्नन्दनवमे त्वनपत्यता। नैःस्वं द्विर्द्वादशेऽन्येषु दम्पत्योः प्रीतिरुत्तमा॥' ज्योतिःप्रकाश में विशेषोक्ति—'पुंसो ग्रहात्सुतगृहे सुतहा च कन्या धर्मे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च। द्विर्द्वादशे धनगृहे धनहा च कन्या रिष्फे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च॥' वचनान्तरम्—'मृगः कुलीरेण घटेन सिंहो वैरप्रदः स्यात् समसप्तकोऽयम्। तुला वृषेणाथ वृषेण सिंहो मेषेण कीटो मिथुनेन मीनः॥ चापेन कन्या घटमेन चालिर्दौर्भाग्यदैन्ये दशतुर्यकेऽस्मिन्॥'

वसिष्ठकश्यपोक्त दुष्टराशिकूट का परिहार—'द्विर्द्वादशं शुभं प्रोक्तं मीनादौ युग्मराशिषु। मेषादौ युग्मराशौ तु निर्धनत्वं न संशयः॥ आयुष्यसम्पत्सुतभोगसम्पत्पुत्रार्थसम्पत्पतिसौख्यसम्पत्। सौभाग्यसम्पद्धनधान्यसम्पज्झषादियुग्मे क्रमतः फलानि। अजादियुग्मे क्रमतः फलानि वैधव्यमृत्युर्वधबन्धनानि। वियोगसन्तापमतीव दुःखं वसिष्ठगर्गप्रमुखैः स्मृतानि॥' इति। परिहार के विशेष वचन मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा में देखें।

अथ नाडीविचारः

अश्विन्यार्द्रापुनर्वसूत्तराफल्गुनीहस्तज्येष्ठामूलशततारकापूर्वाभाद्रपदेति प्रथमनाडी। भरणीमृगपुष्यपूर्वाफल्गुनीचित्रानूराधापूर्वाषाढाधनिष्ठोत्तराभाद्रपदेति मध्यमनाडी। कृत्तिकारोहिण्याश्लेषामघास्वातीविशाखोत्तराषाढाश्रवणरेवतीति चरमनाडी। अत्र नाड्यैक्ये मृत्युः। नाडीभेदेऽष्टौ गुणाः। नाड्यैक्यं[1] सर्वथा वर्ज्यम्। शूद्रादौ पार्श्वैकनाडीद्वयं संकटे शुभम्। अत्र [2]वर्णवश्यभकूटयोनिकूटानामल्पगुणत्वाद् विवाहविघटकत्वाभावाच्च स्वरूपं नोक्तम्।

अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, ज्येष्ठा, मूल, शतभिष और पूर्वाभाद्रपदा, ये प्रथम नाड़ी हैं। भरणी, मृगशिर, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढा धनिष्ठा और उत्तराभाद्रपदा, ये मध्यम नाड़ी हैं। कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, स्वाती, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण और रेवती, ये अन्त्य नाड़ी हैं। नाड़ी एक होने से मृत्यु होती है। नाड़ी-भेद में आठ गुण होते हैं। नाड़ी का एक होना सर्वथा वर्जित है। शूद्र आदि में पार्श्व की एक नाड़ी में दो (अश्विनी रोहिणी) संकट में शुभ हैं। इसमें वर्ण, वश्य, भकूट और योनिकूटों के अल्पगुण होने से विवाह-विघटन के अभाव से स्वरूप नहीं कहा है।

---

१. जगन्मोहन में नारद ने कहा है—'एका नाडी विवाहश्च गुणैः सर्वैः समन्वितः। वर्जनीयः प्रयत्नेन दम्पत्योर्निधनं यतः॥' गोदावरी नदी के दक्षिण में सभी वर्णों के लिये पार्श्वैकनाडी शुभावह है—'गोदादक्षिणतः क्वचिन्नृपमुखे पार्श्वैकनाडी हिता' इति। विवाह आवश्यक होने पर गुरु ने नाडी दोष में जपादि का निर्देश किया है—'दोषापनुत्तये नाड्या मृत्युञ्जयजपादिकम्। विधाय ब्राह्मणांश्चैव तर्पयेत् काञ्चनादिना॥ हिरण्मयीं दक्षिणां च दद्याद् वर्णादिकूटके। गावोऽन्नं वसनं हेम सर्वदोषापहारकम्॥' इति। विशेष पीयूषधारा में देखें।

२. अवशिष्ट वर्णादि-चतुष्टय का संक्षिप्त विचार दैवज्ञमनोहर में है। सर्वप्रथम वर्ण का गुण-विभाग—'एको गुणः सदृग्वर्णे तथा वर्णोत्तमे वरे। हीनवर्णे वरे शून्यं केऽप्याहुः सदृशे दलम्॥' यहां दल का आधा अर्थ है। वश्य का गुण-विभाग—'सख्यं वैरं च भक्ष्यं च वश्यमाहुस्त्रिधा बुधः। वैरे भक्ष्यगुणाभावो द्वयोः सख्ये गुणद्वयम्। वश्यवैरे गुणस्त्वेको वश्यभक्ष्ये गुणोऽधिकः।' इति।

ताराकूट—'कन्यर्क्षाद् वरभं यावत् कन्याभं वरभादपि। गणयेन्नवहृच्छेषे त्रीष्वभद्रिमसत् स्मृतम्॥' अर्थात् कन्या के जन्मनक्षत्र से वर के जन्मनक्षत्र और वर के जन्मनक्षत्र से कन्या के जन्मनक्षत्र पर्यन्त गिने, जो संख्या हो उसको नव से भाग दें ३, ५, ७ के शेष होने पर अशुभ और २, ४, ६, ८, ९ के शेष होने पर शुभ है।

ताराकूट का गुण-विभाग—'एकतो लभ्यते तारा शुभा चैवाशुभान्यतः। तदा सार्द्धो गुणश्चैव ताराशुद्ध्या मिथः स्त्रियः॥ उभयोर्न शुभा तारा तदा शून्यं समादिशेत्।' इति। अश्विनी आदि के क्रम से वसिष्ठोक्त योनिकूट—'अश्वेभमेषभुजगद्वयकुक्कुरौ तु मेषौ तु मूषकमयोन्दुरुगोतुलायाः। शार्दूलमाहिषगवारिमृगद्वयं श्वा कीशोऽथ बभ्रुयुगकीशगवाश्वसिंहाः॥'

योनिदोष का अपवादसहित फल—'एकयोनिषु सम्पत्यै दम्पत्योः सङ्गमः सदा। भिन्नयोनिषु मध्या स्यादरिभावो न चेत्तयोः॥ योनेरभावे नोद्वाहः स तु कार्यो वियोगदः। राशिवश्यं च यद्यस्ति कारयेन्न तु दोषभाक्॥'

योनिकूट का गुणविभाग—'अष्टाविंशतितारांणां योनयस्तु चतुर्दश। मैत्रं चैवातिमैत्रं च विवाहे नरयोषितोः॥ महद्वैरे च वैरे च स्वभावे च यथाक्रमम्। मैत्रे चैवातिमैत्रे च खेन्दुद्वित्रिचतुर्गुणाः॥' इति।

अत्र सर्वगुणमेलनेन विंशतिगुणसंभवे मध्यमम् । विंशत्यधिकगुणत्वेऽतिशुभम् । विंशत्यूनत्वे त्वशुभम् । इति नक्षत्रादिघटितविचारः ।

इसमें सब गुणों के मिलाने से बीस गुण हो तो मध्यम होता है । बीस से अधिक गुण होने पर अत्यन्त शुभ है । बीस से कम होने पर अशुभ है । नक्षत्रादिघटितविचार समाप्त ।

कन्याया अनन्यपूर्विकात्वम्

[1]अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ।
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ॥

इति याज्ञवल्क्याद्युक्तकन्याविशेषणेषु कान्तत्वनीरोगत्वभ्रातृमत्त्वभिन्नविशेषणानामभावे इह परत्र पातित्यात्तानि प्रपञ्च्यन्ते ।

कन्या अनन्यपूर्विका (पहले कोई अन्यपतिवाली नहीं), सुन्दरी हो, सपिण्ड की न हो, अवस्था और नाप में भी छोटी हो, असाध्य व्याधि वाली न हो, भाई वाली हो तथा समान-प्रवर-गोत्र की न हो, याज्ञवल्क्य आदि के कहे हुए इन सात विशेषणों में कान्तत्व नीरोगत्व भ्रातृमत्त्व से भिन्न विशेषणों के न रहने पर इस लोक और परलोक में पातित्य होने से उन विशेषणों का विस्तारपूर्वक निर्णय कहते हैं ।

तत्रान्यपूर्विका—पुरुषान्तरपूर्विका मनोदत्ता वाचा दत्ताऽग्निं परिगता सप्तमं पदं नीता भुक्ता गृहीतगर्भा प्रसूतेति सप्तविधपुनर्भूस्तद्भिन्नामनन्यपूर्विकाम् । सप्तपदीविधेः पूर्वमाद्यानां तिसृणां संकटेऽन्येन विवाहो भवति । सप्तपदीविधौ जाते बलाद्विवाहितापि नान्यत्र देया ।

उनमें अन्यपूर्विका जिसका दूसरा पुरुष पहिले हो, मन से दी हुई, वाणी से दी हुई, अग्नि के पास गई, सप्तपदी में सप्तपद तक गई हुई, भोग की हुई, गर्भवाली और प्रसव की हुई, ये सात प्रकार की पुनर्भू होती हैं इससे भिन्न को अनन्यपूर्विका कहते हैं । सप्तपदीविधि के पहिले पहिली तीन (मन से वाणी से दी हुई और अग्नि के पास गई) कन्याओं का संकट में दूसरे से विवाह होता है । सप्तपदीविधि हो जाने पर बल से कोई विवाह कर ले तब भी अन्य किसी को नहीं दे ।

अथ विवाहोपयोगिसापिण्ड्यनिर्णयः

असपिण्डां—समानः एकः पिण्डः पिण्डदानक्रिया मूलपुरुषशरीरं वा यस्याः सा सपिण्डा तद्भिन्नाम्[2] । तत्र—

---

१. अनन्यपूर्विकां = दानेन उपभोगेन वा पुरुषान्तरापरिगृहीताम् , कान्तां = कमनीयां वोढुर्मनोनयनानन्दकारिणीम् । 'यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः' इत्यापस्तम्बस्मरणात् । असमानार्षगोत्रजाम्—ऋषेरिदमार्षं नाम प्रवर इत्यर्थः । गोत्रं वंशपरम्पराप्रसिद्धम् । आर्षं च गोत्रं च आर्षगोत्रे, समाने आर्षगोत्रे यस्यासौ समानार्षगोत्रस्तस्माज्जाता समानार्षगोत्रजा, न समानार्षगोत्रजा असमानार्षगोत्रजा ताम् । अर्थात् समानप्रवर और समानगोत्र की जो नहीं हो । विष्णुपुराण में अविवाह्य कन्या का अन्यान्य-लक्षण हैं—'न श्मश्रुव्यञ्जनवतीं न चैव पुरुषाकृतिम् । नातिबद्धेक्षणां तद्वत्कृशाङ्गीं नोद्वहेत् स्त्रियम् । यस्यातिरोमशे जङ्घे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ । गण्डयोः कूपको यस्या हसन्त्याश्चैव जायते । नोद्वहेत्तादृशीं कन्यां प्राज्ञः कार्यविचक्षणः ।' इति ।

२. मनुः—'असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥' इति । देवलः—'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतः क्रमात् । सपिण्डता निवर्तेत सर्ववर्णे-

लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः ।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥

इति मात्स्योक्तेरेकस्यां पिण्डदानक्रियायां दातृत्वपिण्डभाक्त्वलेपभाक्त्वान्यतमसंबन्धेन प्रवेशो निर्वाप्यसापिण्ड्यमिति केषांचिन्मतम्। अत्र स्त्रीणामपि पतिभिः सह कर्तृत्वात्सापिण्ड्यसिद्धिः ।

जिसका एक साथ पिण्डदान हो अथवा मूलपुरुष एक हो वह सपिण्डा कहलाती है, उससे भिन्न असपिण्डा हुई। चौथे पुरुष आदि लेपभागी होते हैं। पिण्डभागी पिता आदि होते हैं। उनमें सप्तम, पिण्ड देने वाला होता है। अतः साप्तपौरुष सापिण्ड्य होता है। इस मत्स्यपुराण के वचन से एक पिण्डदान क्रिया में पिण्डदातृत्व, पिण्डभाक्त्व और लेपभाक्त्व में से किसी एक के सम्बन्ध से प्रवेश को निर्वाप्य-सापिण्ड्य कहते हैं, यह किसी का मत है। इसमें स्त्रियों को भी पतियों के साथ कर्तृत्व होने से सापिण्ड्य की सिद्धि होती है।

मूलपुरुषैकशरीरावयवान्वयेनावयवसापिण्ड्यमित्यपरं मतम्। यद्यपि भ्रातृपत्नीनां परस्परं नैतत्संभवति तथाप्याधारत्वेनैकशरीरान्वयः । एकमूलपुरुषावयवानां पुत्रद्वारा तास्वाधानादिति ज्ञेयम् ।

दूसरा मत यह है कि मूलपुरुष के एक शरीरावयव से अन्वय होने पर अवयव-सापिण्ड्य होता है। यद्यपि भाईकी स्त्रियों का आपस में यह सापिण्ड्य सम्भव नहीं है, फिर भी आधारत्व से एक शरीर का अन्वय होता है। क्योंकि उनके मूलपुरुष पृथक् पृथक् हैं फिर भी मूलपुरुषों के अवयवों का पुत्र द्वारा उन स्त्रियों में आधान होता है।

उभयत्रापि गयादौ मित्रादेरपि पिण्डभाक्त्वादेकशरीरान्वयस्य सप्तमात्परेषु परश्शतेष्वपि सत्त्वाच्चातिप्रसङ्गप्राप्तेः ।

वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः ।
पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिंड्यं निवर्तते ॥

इत्यादिवचनैर्निरासः। मातृत्वपितृत्वादिसंबन्धे सत्येव पञ्चमसप्तमपर्यन्तमेवेत्युभयनियमस्वीकारात्। तथा च पितृद्वारकसापिंड्यविचारे सप्तमादूर्ध्वं सापिण्ड्यनिवृत्तिः। मातृद्वारकसापिण्ड्यविचारे तु पञ्चमादूर्ध्वं तन्निवृत्तिरिति निर्णयः।

व्यं विधिः।' हारलता में शङ्खलिखितोक्तसापिण्ड्य—'सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी। पिण्डश्चोदकदानं च आशौचं च तदानुगम् ॥' ब्रह्मपुराणे—'सर्वेषामेव वर्णानां विज्ञेया साप्तपौरुषी। सपिण्डता, ततः पश्चात् समानोदकधर्मता ॥' नारदः—'आसप्तमात्पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः पितृमातृतः। अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा ॥' याज्ञवल्क्यः—'पञ्चमात् सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा।' अर्थात् माता के संतान में पंचम से आगे और पिता के सन्तान में सप्तम से आगे सापिण्ड्य नहीं रहता। माता से आरम्भ करके माता और माता के पितृपितामहादि की गणना करने पर पंचम संतान माता से पांचवीं हुई। इसीतरह पिता से आरम्भ करके पिता और पिता के पितृपितामहादि की गणना करने पर सप्तम सन्तान पिता से सातवीं हुई। सभी स्मृतियों की एकवाक्यता के लिये पैठीनसिका—'त्रीनतीत्य मातृतः पञ्चातीत्य च पितृतः' यह वचन उसके पूर्व का निषेध के लिये है, न कि विधान के लिये। अतः सभी स्मृति-वचनों का पर्यालोचन से यह सिद्ध है कि माता से पांच और पिता से सात पीढ़ी छोड़कर विवाह करना चाहिये।

दोनों जगह गया आदि में मित्र आदि को भी पिण्ड दिया जाता है इससे एक शरीरान्वय का सप्तम पुरुष के बाद सैकड़ों में सपिण्ड होने के अतिप्रसंग की प्राप्ति में कहते हैं—वधू या वर का पिता कूटस्थ-पुरुष से यदि सातवां है और वधू वर की माता पांचवों है तो उसका सापिण्ड्य-निवृत्त हो जाता है, इत्यादि वचनों से सप्तम पुरुष के बाद वाले सैकड़ों की अतिप्रसक्ति का निराकरण होता है, क्योंकि इन दोनों नियमों के स्वीकार से मातृत्व पितृत्व आदि सम्बन्ध के रहने पर ही पंचम सप्तम तक ही सापिण्ड्य होता है। इससे सिद्ध हुआ कि पितृद्वारक सापिण्ड्य के विचार में सप्तम के बाद सापिण्ड्यकी निवृत्ति होती है। मातृद्वारक सापिण्ड्य के विचार में तो पांचवें के बाद सापिण्ड्य की निवृत्ति होती है, यह निर्णय है।

अत्रोदाहरणानि

विष्णुर्मूलभूतः	विष्णुर्मूलभूतः	विष्णुर्मूलभूतः	विष्णुर्मूलभूतः
कान्तिः २ गौरी २	दत्तः २ चैत्रः २	दत्तः २ चैत्रः २	दत्तः २ चैत्रः २
सुधीः ३ हरः ३	सोमः ३ मैत्रः ३	सोमः ३ मैत्रः ३	सोमः ३ मैत्रः ३
बुधः ४ मैत्रः ४	सुधीः ४ बुधः ४	सुधीः ४ बुधः ४	सुधीः ४ बुधः ४
चैत्रः ५ शिवः ५	श्यामा ५ रतिः ५	श्यामा ५ नर्मदा ५	श्यामा ५ शिवः ५
गणः ६ भूपः ६	शिवः ६ गौरी ६	शिवः ६ कामः ६	कान्तिः ६ हरः ६
मृडः ७ अच्युतः ७		रमा ७ कविः ७	
रतिः ८ कामः ८			
अत्र रतिकामयोरष्टमयोर्विवाहः पितृद्वारकत्वात्।	अत्र गौरीशिवयोः षष्ठयोर्विवाहः मातृद्वारकत्वात्।	अत्र रमाकव्योर्न विवाहः मण्डूकप्लुत्या सापिण्ड्यानुवृत्तेः।	अत्र कान्तिहरयोर्न विवाहः एकतो निवृत्तावपि अन्यतोऽनुवृत्तेः।

मूलपुरुष-विष्णु	मूलपुरुष-विष्णु	मूलपुरुष-विष्णु	मूलपुरुष-विष्णु
कान्ति २ गौरी २	दत्त २ चैत्र २	दत्त २ चैत्र २	दत्त २ चैत्र २
सुधी ३ हर ३	सोम ३ मैत्र ३	सोम ३ मैत्र ३	सोम ३ मैत्र ३
बुध ४ मैत्र ४	सुधी ४ बुध ४	सुधी ४ बुध ४	सुधी ४ बुध ४
चैत्र ५ शिव ५	श्यामा ५ रति ५	श्यामा ५ नर्मदा ५	श्यामा ५ शिव ५
गण ६ भूपः ६	शिव ६ गौरी ६	शिव ६ काम ६	कान्ति ६ हर ६
मृड ७ अच्युत ७		रमा ७ कवि ७	
रति ८ काम ८			
इनमें रति और काम आठवीं पीढ़ी का विवाह होता है क्योंकि यहां पिता के द्वारा सपिंड की निवृत्ति हो गयी है।	इनमें गौरी और शिव छठे का विवाह होता है क्योंकि माता के द्वारा सापिण्ड्य निवृत्त हो गया है।	इनमें रमा और कवि का विवाह नहीं होता क्योंकि यहां मण्डूकप्लुति से सापिण्ड्य का अनुवर्तन होता है।	इनमें कान्ति हर का विवाह नहीं होता क्योंकि एक ओर से सापिण्ड्य की निवृत्ति होने पर भी दूसरी ओर से सापिण्ड्य का अनुवर्तन होता है।

विष्णोर्मूलात्कान्तिगौर्यौ जातौ ताभ्यां सुधीहरौ ।
बुधमैत्रौ चैत्रशिवौ गणभूपौ मृडाच्युतौ ॥
तज्जातयोरष्टमयोर्विवाहो रतिकामयोः ।

मूलपुरुष विष्णु से कान्ति और गौरी पैदा हुईं। कान्ति से सुधी और गौरी से हर उत्पन्न हुए। सुधी से बुध हुए और बुध से चैत्र और मैत्र से शिव उत्पन्न हुए। चैत्र से गण और शिव से भूप हुए। एवं गण से मृड और भूप से अच्युत हुए तथा मृड से रति और अच्युत से काम उत्पन्न हुए। इनमें आठवें काम और रति का विवाह होता है, क्योंकि वहां पिता के द्वारा साविण्ड्य निवृत्त है।

विष्णोर्मूलाद्दत्तचैत्रौ सोममैत्रौ सुधीबुधौ ॥
ताभ्यां श्यामारती तज्जशिवगौर्योः करग्रहः ।

विष्णु से दत्त और चैत्र उत्पन्न हुए। दत्त से सोम और चैत्र से मैत्र हुए। सोम से सुधी और मैत्र से बुध उत्पन्न हुए। सुधी से श्यामा और बुध से रति हुईं। श्यामा से शिव और रति से गौरी उत्पन्न हुईं। इनमें छठे गौरी-शिव से विवाह होगा, क्योंकि माता के द्वारा साविण्ड्य निवृत्त हो गया है।

विष्णोर्मूलाद्दत्तचैत्रौ सोममैत्रौ सुधीबुधौ ॥
ताभ्यां श्यामा नर्मदा च शिवकामौ रमाकवी ।
मण्डूकप्लुतिसापिण्ड्यं रमाकव्योर्विवाहहृत् ॥

मूलपुरुष विष्णु से दत्त-चैत्र-सोम-मैत्र, इनसे सुधी बुध, इनसे श्यामा और नर्मदा, फिर इनसे शिव-काम, फिर उनसे रमा और कवि, ये पुत्री और पुत्र हुये। इनमें रमा और कवि का विवाह नहीं होगा, क्योंकि यहाँ मंडूकप्लुति से सापिण्ड्य की अनुवृत्ति होती है। यद्यपि माता का सापिण्ड्य निवृत्त हो चुका है फिर भी पिता के छठी पीढ़ी पर होने से पिता के द्वारा सापिण्ड्य है।

विष्णोर्मूलाद्दत्तचैत्रौ सोममैत्रौ सुधीबुधौ ।
श्यामाशिवौ कान्तिहरौ हरकान्ती न दम्पती ॥
निवृत्तमप्येकतस्तदन्यतस्त्वनुवर्तते ।
दिङ्मात्रेणोदाहृतात्र सेयं सापिण्ड्यपद्धतिः ॥

मूलपुरुष विष्णु उनसे दत्त और चैत्र उत्पन्न हुए। दत्त से सोम और चैत्र से मैत्र हुए। सोम से सुधी और मैत्र से बुध उत्पन्न हुए। एवं सुधी से श्यामा और बुध से शिव हुये तथा श्यामा से कान्ति और शिव से हर उत्पन्न हुए। इनमें कान्ति हर का विवाह नहीं हो सकता। क्योंकि एक पक्ष से सापिण्ड्य की निवृत्ति होने पर भी दूसरे से सापिण्ड्य की अनुवृत्ति होती है। यहां दिङ्मात्र से सापिण्ड्य-पद्धति का उदाहरण दिखलाया है।

अथ मण्डूकप्लुतिसापिण्ड्यम्

कूटस्थात्पंचम्योः कन्ययोः संततौ मातृद्वारकत्वात्सापिण्ड्यनिवृत्तिः। पंचम्योः कन्ययोर्यौ पुत्रौ तयोः संततौ पितृद्वारकत्वात्सापिण्ड्यमनुवर्तते इतीदं मण्डूकप्लुति-सापिण्ड्यम्। पंचम्याः कन्यायाः पुत्रस्य षष्ठस्य कूटस्थात् पञ्चमादिः सपिण्डो न भवति तथापि द्वितीयसंततिपंक्तौ पञ्चमषष्ठादेः पितृद्वारकत्वादिना सापिण्ड्यसत्त्वा-

देकतो निवृत्तावप्यन्यतोनुवृत्त्या पञ्चमषष्ठादिना पञ्चम्याः कन्यायाः संततिर्न विवाह्या। एवं कूटस्थमारभ्याष्टमादेः कूटस्थमारभ्य द्वितीयादेश्चैकतो निवृत्तिपरतोऽनुवृत्त्योः सत्त्वमूह्यम्। एवमाशौचविषयकसापिण्डयेऽपि एकतोऽनुवृत्त्यादिकं यथासंभवं सर्वमूह्यम्।

मूलपुरुष से पांचवीं कन्याओं की सन्तति में मातृद्वारक होने से सापिण्डय की निवृति होती है। पांचवीं कन्याओं के जो दो पुत्र हैं उनकी सन्तति में पितृद्वारक होने से सापिण्डय की अनुवृत्ति होती है। इसी को मण्डूकप्लुति सापिण्डय कहते हैं। पांचवी कन्या का छठे पुत्र का मूलपुरुष से पांचवीं आदि सन्तति सपिण्ड नहीं होती तब भी दूसरी सन्तति की पक्ति में पांचवें छठे आदि के पितृद्वारकत्व आदि होने से सापिण्ड्य रहने के कारण एक ओर से सापिण्ड्य की निवृत्ति होने पर भी दूसरी ओर से सापिण्ड्य की अनुवृत्ति होने से पांचवें छठे आदि से पांचवीं कन्या की सन्तान विवाहयोग्य नहीं होती। इसी प्रकार कूटस्थ पुरुष से आरंभ कर आठवीं आदि सन्तति का और कूटस्थ से आरंभ कर दूसरी आदि सन्तति का एक तरफ से निवृत्ति और दूसरी तरफ से अनुवृत्ति का होना कल्प्य है। तथा आशौच-विषयक-सापिण्ड्य में भी एक तरफ से अनुवृत्ति आदि यथासम्भव सब कल्पनीय है।

एवं पितृद्वारकसापिण्डयं सप्तमादूर्ध्वं निवर्तते। मातृद्वारकं तु पञ्चमादूर्ध्वमिति मुख्यकल्पेन वर्जनीयानां कन्यानां संख्या चेत्थं संपद्यते— पितृकुले षोडशाधिकद्विसाहस्री २०१६ मातृकुले पञ्चोत्तरशतम् १०५ कुलद्वये मेलनेनैकविंशत्युत्तरशताधिकसहस्रद्वयसंख्या २१२१ कन्या वर्ज्याः संपद्यन्ते। अत्र गणनाप्रकारस्तत्र मूलश्लोकास्तद्व्याख्या च कौस्तुभे स्पष्टा बालानां दुर्बोधतया नेहोच्यते।

इस प्रकार पितृद्वारक सापिण्डय सातवें के बाद निवृत्त होता है और मातृद्वारक सापिण्डय तो पांचवें के बाद निवृत्त होता है इस मुख्य कल्प से अविवाह्य कन्याओं की संख्या इस प्रकार से सम्पन्न होती है—पितृकुल में दो हजार सोलह, मातृकुल में एक सौ पांच, दोनों कुल में मिलाने से दो हजार एक सौ इक्कीस वर्ज्य कन्या होती हैं। इसमें गणना का प्रकार और मूल श्लोक और उसकी व्याख्या भी कौस्तुभ में स्पष्ट है, अल्पज्ञ बालकों के दुर्बोध होने से यह नहीं कहता हूँ।

तथा च मुख्यकल्पेन कुलद्वये एतावत्यो वर्जनीया एव न त्वनुकल्पानुसरणेन सप्तमात्पञ्चमादर्वाग्विवाहः कार्यः,

पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया।
क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः॥
सप्तमात्पञ्चमाद्धीमान्यः कन्यामुद्वहेद् द्विजः।
गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैवमुद्वहन्॥ इत्यादिस्मृतिभ्यः।

यानि तु—

चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमो वरः।
तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि॥

इत्यादिवचनानि तेषु कानिचिन्निर्मूलानि कानिचिद्दत्तकसापत्न्यादिसंबन्धविषयतया विप्राणां क्षत्रियादिषु सापिण्डयविषयतया वा नेयानीति निर्णयसिन्धुमतम्।

इससे यह सिद्ध हुआ कि मुख्य कल्प से दोनों कुल में इतनी संख्या की कन्या वर्जनीय ही हैं न कि कल्प का अनुसरण करके, सप्तम और पंचम से पहले विवाह करना चाहिये। स्मृतियों के अनुसार—पांचवें सातवें में जिनकी विवाह-क्रिया होती है क्रियानिष्ठ भी वे पतित हैं और शूद्रता के पात्र हैं। जो बुद्धिमान् द्विज सातवीं पाचवीं और सगोत्रा कन्या से विवाह करते हैं उन्हें गुरुपत्नीगमन करने वाला जानना चाहिये। सातवें और पांचवें से पहिले विवाह नहीं करे। जो वचन—चौथा और पांचवां वर का तीसरी और चौथी कन्या से दोनों पक्षों में विवाह करने को कहते हैं, इन वचनों में कुछ तो निर्मूल हैं और कुछ दत्तक सापत्न्यादि सम्बन्ध से ब्राह्मणों के क्षत्रियादि साषिण्ड्य-विषयक लगाने चाहिये, यह निर्णयसिन्धु का मत है।

अथ साषिण्ड्यसंकोचविचारः

कौस्तुभे तु—

उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम्।
पञ्चमीं तदभावे तु पितृपक्षेऽप्ययं विधिः॥
सप्तमीं च तथा षष्ठीं पञ्चमीं च तथैव च।
एवमुद्वाहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः॥
तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि।
विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्यो यमोऽङ्गिराः॥
यस्तु देशानुरूप्येण कुलमार्गेण चोद्वहेत्।
नित्यं स व्यवहार्यः स्याद् वेदाच्चैतत्प्रतीयते॥

इत्यादिवचनानां चतुर्विंशतिमतषट्त्रिंशन्मतादिषूपलभ्यमानत्वात् साषिण्ड्यसंकोचेन विवाहस्य बहुदेशेषु दर्शनाच्च।

कौस्तुभ में तो सप्तम के बाद विवाह करे, उसके अभाव में सातवीं, उसके अभाव में पांचवीं से भी विवाह करे यह पितृपक्ष की विधि है। सातवीं, छठी और पांचवीं कन्या से विवाह करने में दोष नहीं है, ऐसा शाकटायन का वचन है। दोनों पक्ष में तीसरी या चौथी कन्या का विवाह करे, ऐसा मनु, व्यास, यम और अंगिरा कहते हैं। जो देश-धर्मानुसार और कुल परम्परा के अनुसार ऐसा विवाह करता है वह व्यवहार्य होता है वेद से भी यह बात जानी जाती है। क्योंकि ये वचन चतुर्विंशतिस्मृति और षट्त्रिंशत्स्मृति आदि में उपलब्ध होते हैं और साषिण्ड्य संकोच से बहुत देशों में विवाह देखे जाते हैं।

येषां कुले देशे चानुकल्पत्वेन साषिण्ड्यसंकोचः परंपरया समागतस्तेषां साषिण्ड्यसंकोचेन विवाहो न दोषाय। स्वकुलदेशविरुद्धेन साषिण्ड्यसंकोचेन विवाहे दोषो भवत्येव। जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान्विवाहे प्रतीयात्।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति॥

इत्यादिवाक्यैः स्वकुलदेशाचाराविरुद्धस्यैव शास्त्रस्य विवाहेऽनुसर्तव्यत्वात्।

जिनके कुल या देश में अनुकल्पत्व से साषिण्ड्य-संकोच से विवाह करने में दोष नहीं है। अपने कुल और देश के विरुद्ध साषिण्ड्य-संकोच से विवाह करने में तो दोष होता ही है। जनपदधर्म

और ग्रामधर्म विवाह में मानना चाहिए। क्योंकि जिस मार्ग से पिता और पितामह चले उन सज्जनों के मार्ग से चलने में दोष नहीं होता, इत्यादि वाक्य से विवाह में कुलाचार और देशाचार के अविरुद्ध ही शास्त्र अनुसरणीय होता है।

एवं मातुलकन्यापरिणयनेऽपि 'तृप्तां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामि वा' इति 'मन्त्रलिङ्गैः—

मातुलस्य सुतामूढ्वामातृगोत्रां तथैव च।
समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

इत्यादिस्मृतीनां बाधाद् येषां कुले मातुलकन्यापरिणयः परंपराप्राप्तस्तैः स कार्यः। 'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा'इति मातुलकन्याविवाहस्य कलिवर्ज्यत्ववचनमपि येषां कुले देशे मातुलकन्याविवाहो नास्ति तत्परम्। मातुलकन्यापरिणयनस्यानेकश्रुतिस्मृतिसिद्धत्वात्।

इसी प्रकार मामा की कन्या से विवाह करने में भी जानना चाहिये। क्योंकि 'तृप्तां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामि वा' इस मन्त्र के प्रमाण से मामा की लड़की से तथा मातृ-गोत्रा से और एक प्रवर की कन्या से विवाह करके उसका त्याग कर चान्द्रायण-प्रायश्चित्त करे इत्यादि स्मृतियों का बाध होता है। जिनके कुल में मामा की कन्या से विवाह परम्परा से होता आया है उनको वह करना चाहिये। 'माता के गोत्र की कन्या और सपिण्ड कन्या से विवाह तथा गोवध' यह मामा की कन्या से कलि वर्ज्यत्व का स्मृति-वचन जिनके कुल और देश में मामा की कन्या से विवाह नहीं होता उन्हीं के लिये है। क्योंकि मामा की कन्यासे विवाह अनेक श्रुति-स्मृतियों से सिद्ध है।

अत एव मातुलकन्योद्वाहिनां श्राद्धे निमन्त्रणनिषेधोऽपि स्वकुलाचारादिविरोधेन तदुद्वाहिपरः। उक्तविधसापिण्ड्यसंकोचेन विवाहं कुर्वतां शिष्टैः श्राद्धादौ भोजनाद्याचारादित्यादिबहूपपादितम्। परं तु सापिंड्यसंकोचस्वीकारेपि कतिथी कन्या कतिथेन पुरुषेण विवाह्या कतिथेन न विवाह्येति व्यवस्था नोपपादिता।

इसलिये मामा की कन्या से विवाह करने वालों का श्राद्ध में निमन्त्रण का निषेध भी अपने कुलाचार आदि के विरोध से उससे विवाह करने वालों के लिये है। कहे हुए प्रकार से साण्डिण्ड्यका का संकोच कर विवाह करने वालों का श्राद्ध आदि में भोजन आदि का आचार शिष्ट लोगों के यहां भी है इत्यादि बहुत उपपादन किया है। सापिण्ड्यसंकोच के स्वीकार में भी किस कन्याको किस पुरुष से विवाह करना चाहिये और किस से नहीं करना चाहिए, इस व्यवस्था का उपपादन नहीं किया है।

---

१. और 'गर्भे नु नौ जनिता दम्पतीकः' इस मन्त्र से तथा शातातप के—'मातृष्वसृसुतां केचित् पितृष्वसृसुतां तथा। विवहन्ति क्वचिद्देशे संकोच्यापि सपिण्डताम्।' इस वचन से कोई मातृष्वसृसुता (मौसी की लड़की) और पितृष्वसृसुता (फूआ की लड़की) से विवाह करते हैं वह दूषित है। तृप्तां जुहुरित्यादिमन्त्रस्यार्थः—'हे इन्द्र! ईडितैः प्रशस्तैः पथिभिर्मार्गैर्नोऽस्माकं यज्ञमायाहि आगत्य च तृप्तामाज्यप्लुतां वपां भागधेयं जुषस्व सेवस्व। तत्र दृष्टान्तद्वयम्—मातुलस्य जुहुः अपत्यं योषा स्त्री भागिनेयस्य भाग इव, पैतृष्वसेयी च मातुलपुत्रस्य भाग इव चेति।

अथ सापिण्ड्यसंकोचव्यवस्था

सापिण्ड्यदीपिकाकारादयोऽर्वाचीनास्तु—

चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमो वरः ।
पराशरमते षष्ठीं पञ्चमो न तु पञ्चमीम् ॥

इत्यादिवचनानां समूलत्वं निश्चित्य अशक्तैः संकटे समाश्रयणीयस्य सापिण्ड्यसंकोचस्य व्यवस्थामूचुः । तथा हि—चतुर्थी कन्या पितृपक्षे मातृपक्षे च चतुर्थेन पञ्चमेन वा पुंसा विवाह्या । द्वितीयतृतीयषष्ठाद्यैश्चतुर्थी नोद्वाह्या ।

सापिण्ड्यदीपिका की रचना करने वाले आजकल के लोग तो पराशर के मतमें चौथा और पांचवां वर चौथी कन्या से विवाह करे और पांचवां छठी से, पंचम वर पांचवीं कन्या से न करे इत्यादि वचनों के समूलत्व का निश्चय करके संकट में सापिण्ड्य-संकोच का आश्रयण कर अशक्त लोगों के लिये ऐसी व्यवस्था कहते हैं । वह इस प्रकार है—पितृपक्ष में चौथी कन्या मातृपक्ष के चौथे या पांचवें पुरुष से विवाह-योग्या होती है । दूसरे तीसरे और छठे आदि पुरुष से चौथी का विवाह न करे ।

पराशरमते पञ्चमः षष्ठीमुद्वहेत् । द्वितीयतृतीयचतुर्थादिः षष्ठीं नोद्वहेत् । पञ्चमः पञ्चमीं नोद्वहेत् । 'मातृतः पितृतश्चापि षष्ठः षष्ठीं समुद्वहेत्' इति वचनान्तरात् षष्ठेनापि षष्ठी विवाह्या । पञ्चमषष्ठभिन्नैः षष्ठी न विवाह्येति पर्यवसन्नम् । तथा पितृपक्षे सप्तमी मातृपक्षे पञ्चमी च तृतीयाद्यैः सर्वैः परिणेया । पितृपक्षाच्च सप्तमीं मातृपक्षात्तु पञ्चमीमिति व्यासवचनात् ।

उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम् ।
पञ्चमीं तदभावे तु पितृपक्षेऽप्ययं विधिः ॥

इति चतुर्विंशतिमतोक्तेश्च ।

पराशर के मत में पंचम वर छठी कन्या से विवाह करे । दूसरा, तीसरा और चौथा आदि पुरुष छठी कन्या से विवाह न करे । पांचवां पांचवीं से विवाह न करे । माता और पिता से छठा पुरुष छठी कन्या से विवाह करे इस दूसरे वचन से छठा भी छठी कन्या से विवाह करे । इससे सिद्ध हुआ कि पांचवें छठे से भिन्न पुरुष छठी कन्या विवाह-योग्या नहीं है । एवं पितृपक्ष में सातवीं, मातृपक्ष में पांचवीं तृतीय आदि सबसे विवाह-योग्या है । क्योंकि व्यास का वचन है—पितृपक्ष से सातवीं मातृपक्ष से तो पांचवीं विवाह-योग्या है और चतुर्विंशतिमत की उक्ति है—सातवें के बाद विवाह करना चाहिये इसके अभाव में तो सातवीं से, इसके अभाव में भी पांचवीं से करे । पितृपक्ष में भी यह विधि है ।

पितृपक्षेऽपि पञ्चमी तृतीयाद्यैः परिणेया । तत्रापि मातृपक्षे पितृपक्षेऽपि पञ्चमेन पञ्चमी नोद्वाह्या । पञ्चमो न तु पञ्चमीति सर्वत्र निषेधात् । तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपीति वचनात्तु तृतीया विवाह्या प्राप्नोति ।

पितृपक्ष में भी पांचवीं कन्या तीसरे आदि से विवाह-योग्या है । उसमें भी मातृपक्ष और पितृपक्ष में भी पांचवें वर से पांचवीं कन्या विवाह-योग्या नहीं है । क्योंकि इसका निषेध सर्वत्र है—

पाचवां पांचवीं से विवाह न करे। तीसरी या चौथी से दोनों पक्षों में, इस वचन से तो तीसरी भी विवाह-योग्या हो जाती है।

तत्र व्यवस्थोच्यते—मातृपक्षे तावत्तृतीया मातुलकन्या मातृष्वसृकन्या वा संभवति। पितृपक्षे तु तृतीया पितृव्यकन्या पितृष्वसृकन्या वा। तत्र पितृव्यकन्या सगोत्रत्वात्त्याज्या—

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च।
एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत बुद्धिमान्॥ इति मनूक्तेः।

पितृष्वसृमातृष्वसृकन्ये अपि त्याज्ये। पितृष्वसृकन्यां मातुर्भगिनीं मातृष्वसारं मातुःस्वस्रीयां मातृष्वसृकन्यामेतास्तिस्रो नोद्वहेदिति तदर्थात्।

उसमें व्यवस्था कहते हैं—मातृपक्षमें तीसरी मामा की लड़की या मौसी की लड़की हो सकती है। पितृपक्ष में तो तीसरी चाचा की कन्या या बुआ की कन्या उसमें चाचा की कन्या सगोत्र होने से त्याज्य है। मनु के—बुआ की कन्या बहिन होती है और मौसी की कन्या भी, इन तीनों को स्त्री बनाने के लिये बुद्धिमान् ग्रहण न करे। इस आशय के वचन से मौसी और बुआ की लड़की भी त्याज्य है। क्योंकि बुआ की लड़की मौसी और मौसी की लड़की ये ही तीनों विवाह में वर्ज्य हैं, यही इसका अर्थ है।

अथ सापिंडचसंकोचसंग्रहः

मातुलकन्यैव तृतीया पूर्वोक्तरीत्या कुलपरंपरागतत्वे परिणेया। एवं च तृतीयापि तृतीयेनैव मातुलकन्यैव परिणेया, न चतुर्थादिना केनापि। केचित्संकटे पितृष्वसृकन्यापरिणयनमाहुः। तत्र [1]देशकुलाचाराद्व्यवस्था ज्ञातव्या।

मामा की कन्या ही तीसरी है, पूर्वोक्त रीति से कुलपरम्परागत है तो विवाह-योग्या है। इसी प्रकार तीसरी भी तीसरे ही पुरुष से मामा की कन्या की तरह विवाह-योग्या है, किसी चतुर्थादि से नहीं। कुछ लोग संकट में बुआ की कन्या से विवाह करने को कहते हैं। उसमें देशाचार और कुलाचार से व्यवस्था जाननी चाहिये।

अत्रायं सापिण्डचदीपिकादिसिद्धार्थसंग्रहः—तृतीया मातुलकन्यैवोद्वाह्या। चतुर्थी चतुर्थपञ्चमाभ्यामेव, पञ्चमी पञ्चमभिन्नैस्तृतीयाद्यैः सप्तमान्तैः, षष्ठी पञ्चमषष्ठाभ्यामेव, सप्तमी तृतीयाद्यैः सप्तमान्तैरिति। अयं सापिंडचसंकोचेन विवाहः संकटेष्वशक्तेन कार्यः। कन्यान्तरलाभे शक्तैर्न कार्यः, गुरुतल्पादिदोषस्मृतेः। सापिंडचसंकोचवाक्यानामशक्तविषयत्वस्य स्पष्टत्वात्। 'प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते। स नाप्नोति फलं चेह' इति शक्तैरनुकल्पस्वीकारे दोषोक्तेः। दत्तकसापिंडचं दत्तकनिर्णये प्रागेवोक्तम्।

यहाँ सापिण्डचदीपिका आदि से सिद्ध अर्थ का संग्रह है—तीसरी मामा की कन्या ही विवाह-योग्या है। चौथी चौथे और पांचवें वर से, पांचवी पांचवें से भिन्न तीसरे आदि से सातवें तक और छठी पांचवें छठे ही से और सातवीं तीसरे आदि से सातवें तक सापिण्डच-संकोच से विवाह्य है।

---

१. संस्कारकौस्तुभे—'कलावपि येषां कुले देशे अनुकल्पत्वेन सापिण्डचसंकोचः परम्परया समागतः, तेषां तादृशसङ्कोचेन विवाहे न दोषः। अस्ति च भार्यात्वोपपत्तिः। अन्येषां तैः सह व्यवहारे नैव दोषः।' इति।

यह विवाह अशक्त-पुरुष द्वारा संकटों में करणीय है। दूसरी कन्या के मिलने पर समर्थ को नहीं करना चाहिये। क्योंकि गुरुतल्प आदि दोष की स्मृति है और सापिण्डय-संकोच के वाक्यों का असमर्थ विषयत्व की स्पष्टता है। क्योंकि प्रथमकल्प को जो कर सकता है वह यदि अनुकल्प से व्यवहार करता है तो इस लोक में फल नहीं पाता। इससे समर्थों के लिये अनुकल्प के स्वीकार में दोष कहा है। दत्तक का साण्डिय दत्तक के निर्णय में पहिले ही कह चुके हैं।

अथ सापत्नमातृसापिण्डयविचारः

अथ सापत्नमातृकुले सापिण्ड्यप्रकारं सुमंतुराह—'पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलाः तद्भगिन्यो मातृष्वसारः तद्दुहितरश्च भगिन्यः तदपत्यानि भागिनेयानि अन्यथा संकरकारिणः स्यु:'रति। अत्र लक्षणया सापत्नमातृकुले चतुःपुरुषसापिण्ड्यं विवाहनिषेधाय विधीयत इति केचित्।

सौतेले मातृकुल में साण्डिय का प्रकार सुमन्तु ने कहा है—पिता की सभी पत्नियां माता हैं। माताओं के भाई मामा हैं। उनकी मां की बहिनें मौसी हैं। मौसी की लड़कियां बहिनें हैं। बहिनों के सन्तान भानजे भानजी हैं। इन्हें सपिण्ड नहीं मानने पर ये संकर करने वाले होंगे। कोई कहते हैं कि इसमें लक्षणा से सापत्न मातृकुल में चार पुरत का साण्डिय विवाह-निषेध के लिये विहित है।

अपरे तु विवाहमात्रविषयत्वे मानाभावादाशौचादिविषयकत्वस्यापि संभवाद् यावद्वाचनिकं प्रमाणमिति न्यायेन परिगणितेष्वेव सापिण्ड्यमिति वदन्ति। तथा च [1]सुमन्तुवाक्ये वाक्यभेदाश्रयणेनैवं वाक्यार्थाः पर्यवस्यन्ति। पितृपत्न्यः सर्वा मातर इति प्रथमवाक्ये सापत्नमातरि मुख्यमातृवत् संमाननं तद्वधे मातृवधप्रायश्चित्तं तद्गमने मातृगमनप्रायश्चित्तादिकं चातिदिश्यते। नात्रातिक्रान्तविषये दशाहाशौचातिदेशः, त्रिरात्रविधिना बाधात्। तद्भ्रातरो मातुला इत्यत्र मातुलत्वप्रयुक्तमाशौचादिकं मातुलस्य स्वभगिनीसपत्न्याः कन्योद्वाहनिषेधश्च।

दूसरे कहते हैं कि केवल विवाह के लिये है इसमें प्रमाण के अभाव से आशौचादि विषय भी सम्भव है 'जितना वाचनिक है वही प्रमाण है' इस न्याय से परिगणितों ही में साण्डिय होता है, इसी तरह सुमंतु-वाक्य में वाक्यभेद के आश्रयण से इस प्रकार वाक्यार्थ सिद्ध होते हैं। पिता की पत्नियां सभी माता हैं इस पहिले वाक्य में सौतेली माता में मुख्य माता के समान सम्मान है। उसके मारने में मातृवध का प्रायश्चित्त है। उससे गमन करने में मातृगमन प्रायश्चित्त आदि का भी अतिदेश है। इसमें अतिक्रान्त-आशौच के विषय में दशाहाशौच का अतिदेश नहीं करते, क्योंकि उसका त्रिरात्रविधि से बाध होता है। उसके भाई मामा होते हैं इसमें मातुलत्व-प्रयुक्त आशौच आदि का और मामा की अपनी बहिन की सौत की कन्या के विवाह का निषेध होता है।

अत्र मातुलत्वातिदेशेऽपि न तत्पुत्रादिषु मातुलपुत्रत्वाद्यतिदेशः। तेन बन्धुत्रयत्वप्रयुक्तमाशौचं न मातुलकन्यादौ विवाहविधिनिषेधावपि न। एवं मातुल-

---

१. सुमन्तुवाक्यम्—'मातृपितृसम्बद्धा आसप्तमादविवाह्या भवन्ति। आपञ्चमादन्येषां, पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तद्भगिन्यो मातृष्वसारस्तद्दुहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि। अन्यथा संकरकारिणः स्युस्तथाऽध्यापयितुरेतदेव।' इति।

कन्यादौ पितुर्भगिनीत्वातिदेशाभावेन तत्पुत्रं प्रत्यपि पितृष्वसृत्वाद्यतिदेशो न भवति । तद्भगिन्यो मातृष्वसार इत्यत्राशौचं विवाहनिषेधश्च मातृष्वसृपुत्रे बन्धुत्रयत्वं च न । सापत्नमातृष्वसृकन्याविवाहनिषेधस्तु विरुद्धसंबन्धत्वादेव वक्ष्यते ।

इसमें मातुलत्व के अतिदेश में मामा के पुत्र आदि में मातुल-पुत्रत्व का अतिदेश नहीं होता । इसलिये बन्धुत्रय प्रयुक्त आशौच नहीं होता और मामा की कन्या आदि में विवाह की विधि और निषेध भी नहीं होता । इसी प्रकार मामा की कन्या आदि में पिता के भगिनीत्व के अतिदेश के अभाव से उसके पुत्र के प्रति भी पितृष्वसृत्व आदि का अतिदेश नहीं होता । उसकी बहिनें मौसी हैं, इसमें आशौच और विवाह का निषेध एवं मौसी के लड़के में बन्धुत्रयत्व भी नहीं होता । सौतेली मौसी की लड़की से विवाह का निषेध तो विरुद्ध-सम्बन्धत्व से ही नहीं होता, यह आगे कहेंगे ।

तद्दुहितरश्च भगिन्य इत्यत्राशौचं संमाननादिकं च । नात्र विवाहप्रसक्तिः सगोत्रत्वात् । अत्र सापत्नमातुलसापत्नभ्रातृसापत्नमातृष्वसृसापत्नभगिनीनां स्वमातुलसोदरभ्रात्राद्यनन्तरं तर्पणं महालयादावुद्देशोऽप्यत एव वचनादावश्यक इति भाति । तदपत्यानि भागिनेयानि इत्यत्राशौचं विवाहनिषेधश्च । भागिनेयीत्वातिदेशेऽपि तत्कन्यासु भागिनेयीकन्यात्वातिदेशो न यावदुक्तं प्रमाणमिति न्यायादिति दिक् । क्वचित्सापिण्ड्याभावेऽपि वचनादविवाहः ।

मौसी की लड़किया बहिनें होती हैं इसमें आशौच और सम्मान आदि भी होता है । सगोत्र होने से इसमें विवाह की प्रसक्ति नहीं होती । इसमें सौतेले मामा, सौतेले भाई, सौतेली मौसी और सौतेली बहिनों का अपने मामा और सहोदर भाई आदि के बाद महालय आदि के उद्देश्य से तर्पण इसलिए वचन से आवश्यक प्रतीत होता है । उसकी सन्तान भानजे भानजी होते हैं । इसमें आशौच और विवाह का निषेध है । भागिनेयीत्व के अतिदेश में भी उसकी कन्याओं में भागिनेयी कन्यात्व का अतिदेश नहीं होता । क्योंकि 'यावदुक्तं प्रमाणं' यह न्याय है । अर्थात् जितना कहा है वही प्रमाण है । कहीं सापिण्डय न होने में भी वचन-बल से विवाह नहीं होता ।

अथ विरुद्धसम्बन्धनिषेधः

अविरुद्धसम्बन्धामुपयच्छेत दम्पत्योर्मिथः पितृमातृसाम्ये विरुद्धसंबन्धः । यथा भार्या स्वसुर्दुहिता पितृव्यपत्नी स्वसा चेति परिशिष्टोक्तेः । बौधायनः—

मातुः सपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् ।
पितृव्यपत्नीभगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् ॥

केचिज्ज्येष्ठभ्राता पितुः सम इत्युक्तेर्ज्येष्ठभ्रातृपत्न्या भगिनी मातृष्वसृतुल्यत्वान्न विवाह्येत्याहुः ।

जिसके साथ विरुद्ध-सम्बन्ध न हो उसके साथ विवाह करे । पति पत्नी का आपस में पिता-माता के साम्य होने पर विरुद्ध-सम्बन्ध होता है । जैसे परिशिष्ट में कहा कि स्त्री की बहिन की लड़की पुत्री के समान और चाचा की पत्नी की बहिन, इन दोनों का संबन्ध एक पक्ष में स्त्रीका पति पिता तुल्य और दूसरे पक्ष में स्त्री का पति पुत्र सदृश होता है । यही विरुद्ध संबन्ध है । बौधायन ने कहा है कि माता की सौत की बहिन और उसकी लड़की का भी त्याग उचित है । यह विरुद्ध-सम्बन्ध है ।

कुछ लोग कहते हैं कि ज्येष्ठ भाई पिता के समान है, इस आशय के वचन से जेठे भाई की स्त्री की बहिन मौसी के तुल्य होने से विवाह के योग्य नहीं है ।

अथ विवाह्यकन्याविचारः

यवीयसीं स्वापेक्षया वयसा वपुषा च न्यूनामुद्वहेत् । 'असमानार्षगोत्रजाम्' आर्षं प्रवरः स्वसमाने आर्षगोत्रे यस्य तज्जा न भवति या ताम् असमानगोत्रामसमानप्रवरां चोद्वहेदित्यर्थः ।

'यवीयसीं' का अभिप्राय है अपनी अपेक्षा उमर और शरीर से न्यून कन्या से विवाह करे । 'असमानार्षगोत्रजा' का तात्पर्य है आर्ष प्रवर को कहते हैं अपने से जो समान गोत्र और प्रवर वाली न हो उस कन्या से विवाह करे । इससे यह सिद्ध हुआ जिस कन्या का अपने समान गोत्र और प्रवर न हो ऐसी कन्या से विवाह करे ।

अथ संक्षेपतो गोत्रप्रवरनिर्णयः

तत्र गोत्रलक्षणम्—

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्तऋषयः ॥

सप्तानामृषीणामागस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रमित्याचक्षते । यद्यपि केवलभार्गवेष्वार्ष्टिषेणादिषु केवलाङ्गिरसेषु हारीतादिषु च नैतल्लक्षणं भृग्वङ्गिरसोरष्टऋषिष्वनन्तर्गतत्वात् । तथाप्यत्र प्रवरैक्यादेवाविवाहः[2] । यद्यपि गोत्राणि अनन्तानि 'गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च' इत्युक्तेस्तथापि [3]ऊनपञ्चाशदेव गोत्रभेदाः, व्यावर्तकप्रवरभेदानां तावतामेव दर्शनात् ।

उसमें गोत्र का लक्षण कहते हैं—विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ और कश्यप ये सातों ऋषि हैं । इन सातों ऋषियों और आठवें अगस्त्य के जो अपत्य हैं उन्हीं को आचार्य लोग गोत्र कहते हैं । यद्यपि केवल भार्गवमें आर्ष्टिषेण आदि में और केवल आंगिरसों में तथा हारीत अदि में ये लक्षण नहीं घटते, क्योंकि भृगु और अंगिरा ये दोनों आठ ऋषियों के अन्तर्गत नहीं होते । फिर भी प्रवर एक होने से ही विवाह नहीं होता । यद्यपि उक्ति है कि गोत्र अनन्त हैं, गोत्रों के तो हजारों लाखों और अरबों भेद हैं । तथापि गोत्र के भेद ऊनचास ही हैं, क्योंकि व्यावर्तक प्रवर के भेद उतने ही है ।

---

१. ऋषेरिदमार्षं नाम प्रवर इत्यर्थः । गोत्रं वंशपरम्पराप्रसिद्धम् । आर्षं च गोत्रं च आर्षगोत्रे, समाने आर्षगोत्रे यस्यासौ समानार्षगोत्रः, तस्माज्जाता समानार्षगोत्रजा, न समानार्षगोत्रजा असमानार्षगोत्रजा ताम् असमानार्षगोत्रजाम् । असमानप्रवरामसमानगोत्रामित्यर्थः । मनुः—'असपिण्डा च या मातुरसपिण्डा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥' इति ।

२. उक्तः स्मृत्यर्थसारे इति शेषः । 'यद्यपि वसिष्ठादीनां न गोत्रत्वं युक्तम्, तेषां सप्तर्षित्वे तदपत्यत्वाभावात्, तथाऽपि तत्पूर्वभाविवासिष्ठाद्यपत्यत्वेन गोत्रत्वं युक्तम् । अत एव पूर्वेषां परेषां चैतद् गोत्रम् ।' इति ।

३. अयं बौधायनोक्तस्य—'गोत्राणां तु सहस्राणि' इत्यादेर्वचनस्य उत्तरार्द्धस्य पाठांशः—'ऊनपञ्चाशदेवेषां प्रवरा ऋषिदर्शनात् ।' इति ।

प्रवरलक्षणं तु—गोत्रवंशप्रवर्तकर्षीणां[1] व्यावर्तका ऋषिविशेषाः प्रवरा इत्येव संक्षेपतो ज्ञेयम्। समानगोत्रत्वं समानप्रवरत्वं च पृथक् पृथक् विवाह-प्रतिबन्धकम्।

प्रवर का लक्षण तो यह है कि गोत्र और वंश के प्रवर्तक ऋषियों के व्यावर्तक ऋषि-विशेष को प्रवर कहते हैं। इतना ही संक्षेप से प्रवर का लक्षण जानना चाहिये। समान गोत्रत्व और समान प्रवरत्व भी अलग अलग विवाह के प्रतिबन्धक हैं।

तत्र प्रवरसाम्यं द्विविधम्—एकप्रवरसाम्यं द्वित्रिप्रवरसाम्यं च। तत्र भृग्वङ्गिरोगणेतरेषु एकप्रवरसाम्यमपि विवाहप्रतिबन्धकं केवलभृगुगणेषु केवलाङ्गिरोगणेषु चैकप्रवरसाम्यं न विवाहबाधकम्, किंतु त्रिप्रवरेषु द्विप्रवरसाम्यमेव पञ्चप्रवरेषु त्रिप्रवरसाम्यमेव च विवाहबाधकम्[2]।

पञ्चानां त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः।
भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोऽपि वारयेत्॥ इत्यादिवचनात्।

जामदग्न्यभृगुगणेषु गौतमाङ्गिरसेषु भारद्वाजाङ्गिरसेषु चैकप्रवरसाम्येऽपि क्वचित् प्रवरसाम्याभावेऽपि च सगोत्रत्वादेवाविवाहः।

उसमें प्रवर-साम्य दो प्रकार का होता है—एक प्रवर से समानता या दो तीन प्रवर से समानता, उसमें भृगु और अंगिरा के गण से भिन्न में एक प्रवर का साम्य भी विवाह का प्रतिबन्धक है। केवल भृगुगणों में और केवल अंगिरागणों में एक प्रवर की समता का विवाह बाधिका नहीं है किन्तु तीन प्रवरों में दो प्रवरका साम्य ही और पांच प्रवरोंमें तीन प्रवर का साम्य ही विवाह की बाधिका है, क्योंकि वचन है कि पांच प्रवरों में तीन के साम्य होने से और तीन प्रवरों में दो की समता से विवाह नहीं होता। यह भृगु और अगिरागण ही में है। इससे भिन्न में तो एक प्रवर-साम्य भी बिवाह में बाधक है। जमदग्नि-भृगु-गणों में और गौतम-अंगिरस-गणों में तथा भारद्वाज-आंगिरसों में तो एक प्रवर की समता में भी, कहीं प्रवर की समता न होने पर भी सगोत्र होने से विवाह नहीं होता।

अथ गोत्रगणना

गोत्राणां प्रवराणां च गणना प्रोच्यतेऽधुना।
संक्षेपात्सुखबोधाय भगवत्प्रीतयेऽपि च॥

अब संक्षेप से सुखपूर्वक ज्ञान के लिये और भगवत्-प्रीत्यर्थ गोत्रों और प्रवरों की गणना कहता हूँ।

भृगुगणाः—सप्त भृगवः, सप्तदशाङ्गिरसः, चत्वारोऽत्रयः, दश विश्वामित्राः, त्रयः कश्यपाः, चत्वारो वसिष्ठाः, चत्वारोऽगस्तयः। इत्येकोनपञ्चाशद्गणास्तथापि सर्वग्रन्थमतसंग्रहेणाधिकास्तत्र तत्र वक्ष्यन्ते। तत्र सप्त भृगुगणाः—वत्साः विदाः एतौ जामदग्न्यौ। आर्ष्टिषेणाः यस्काः मित्रयवः वैन्याः

---

१. गोत्रप्रवर्तकानां विश्वामित्रादीनां वंशप्रवर्तकानां भृग्वादीनामृषीणामित्यर्थः।

२. भृग्वङ्गिरसावधिकृत्य बौधायनेनोक्तम्—'द्व्यार्षेयसन्निपातेऽविवाहस्त्रार्षेयाणां, त्र्यार्षेयसन्निपातेऽविवाहः पञ्चार्षेयाणाम्।' भृग्वङ्गिरोगणेष्वपि जमदग्निगौतमभरद्वाजेष्वेकप्रवरसाम्ये सर्वेषामप्यसाम्ये वा सगोत्रत्वादविवाहः' इति।

शुनकाः एते च पञ्च केवलभृगवः एवं सप्त[1]। तत्र वत्साः मार्कण्डेयाः माण्डूकेयाः इत्यादयः शतद्वयाधिका वत्सगोत्रभेदाः। एतेषां पञ्चप्रवराः—भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति। भार्गवौर्वजामदग्न्येति त्रयो वा। भार्गवच्यावनाप्नवानेति त्रयो वा। विदाः शैलाः अवटाः इत्यादयो विंशत्यधिका बिदास्तेषां पञ्चप्रवराः—भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वबैदेति। भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा। आर्ष्टिषेणाः नैर्ऋतयः याम्यायणाः इत्यादयो विंशत्यधिका आर्ष्टिषेणाः। एषां भार्गवच्यावनाप्नवानार्ष्टिषेणानूपेति पञ्च। भार्गवार्ष्टिषेणानूपेति त्रयो वा।

भृगुगण—७ भृगुगण, १७ आंगिरस, ४ अत्रि, १० विश्वामित्र, ३ कश्यप, ४ वशिष्ठ और ४ अगस्त्य। यह ऊनचास गण हैं तथापि सब ग्रन्थों के मत-संग्रह से इससे अधिकों को वहां वहां कहेंगे। उसमें सात भृगुगण ये हैं—वत्स, बिद ये दोनों जामदग्नि-गण हैं। आर्ष्टिषेण, यस्क, मित्रयु, वैन्य और शुनक ये पांच केवल भृगु हैं, इस प्रकार सात हैं। उनमें वत्स मार्कण्डेय और माण्डूकेय इत्यादि दो सौ से अधिक वत्सगोत्र के भेद हैं। इन लोगों के प्रवर—भार्गव, च्यावन, आप्नवान, और्व और जामदग्न्य ये पांच हैं। अथवा भार्गव, और्व और जामदग्न्य इस प्रकार तीन प्रवर हैं। या भार्गव, च्यावन और आप्नवान इस प्रकार तीन प्रवर हैं। बिद, शैल और अवट इत्यादि बीस से अधिक बिदगोत्र हैं इनके पांच प्रवर—भार्गव, च्यावन, आप्नवान, और्व और बैद इस प्रकार हैं। या भार्गव, और्व और जामदग्न्य इस प्रकार तीन प्रवर हैं। आर्ष्टिषेण, नैर्ऋति और याम्यायण इत्यादि

---

१. भृगुगण में—वत्सा विदा आर्ष्टिषेणा यस्का मित्रयुवो वैन्याः शुनकाः ये सात गोत्र हैं। सरलता से जानकारी के लिये इनके प्रवरों के नाम और प्रवरसंख्या निम्नांकित हैं। इनमें यस्कादिका अपने गण को छोड़कर सबके साथ विवाह होता है। स्मृत्यर्थसारे—'यस्का मित्रयुवो वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः। स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वे विवहेयुः परावरैः ॥' इति।

१ वत्साः—इनके भार्गव-च्यावन–आप्नवान–और्व–जामदग्न्य नाम के ये पांच या भार्गव-और्व-जामदग्न्य नाम के तीन या भार्गव-च्यावन–आप्नवान नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ बिदाः—इनके भार्गव-च्यावन-आप्नवान-और्व-बैद नाम के ये पांच या भार्गव-और्व-जामदग्न्य नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ आर्ष्टिषेणाः—इनके भार्गव-च्यावन-आप्नवान-आर्ष्टिषेण-अनूप नाम के ये पांच या भार्गव आर्ष्टिषेण-अनूप नाम के ये तीन प्रवर हैं।

वात्स्याः—इनके भार्गव-च्यावन-आप्नवान नाम के ये तीन प्रवर हैं।

वत्सपुरोधसौ—इन दोनों के भार्गव-च्यावन-आप्नवान-वात्स्य-पौरोधस नाम के पांच प्रवर हैं।

बैजमथितौ—इन दोनों के भार्गव-च्यावन-आप्नवान-बैज-मथित नाम के पांच प्रवर हैं।

४ यस्काः—इनके भार्गव-वैतहव्य-सावेतस नामक ये तीन प्रवर हैं।

५ मित्रयवः—इनके भार्गव-वाध्य्यश्व-दैवोदास नाम के तीन या भार्गव-च्यावन-दैवोदास नाम के तीन या वाध्य्यश्व नाम के एक प्रवर है।

६ वैन्याः—इनके भार्गव-वैन्य-पार्थ नाम के तीन प्रवर हैं।

७ शुनकाः—इनके शौनक नाम के एक या गार्त्समद नाम के एक या भार्गव-गार्त्समद नाम के दो या भार्गव-शौनहोत्र-गार्त्समद नामके ये तीन प्रवर हैं।

कहीं ये दो गण अधिक हैं—

वेदविश्वज्योतिषः—इनके भार्गव-वेदवैश्व-ज्योतिष नाम के ये तीन प्रवर हैं।

शाठरमाठराः—इनके भार्गव-शाठर-माठर नाम के ये तीन प्रवर हैं।

बीस से अधिक आर्ष्टिषेण हैं। इनका—भार्गव, च्यावन, आप्नवान, आर्ष्टिषेण और अनूप इसप्रकार पांच प्रवर हैं। या भार्गव, आर्ष्टिषेण और अनूप ये तीन प्रवर हैं।

एतेषां त्रयाणां वत्सबिदार्ष्टिषेणानां परस्परमविवाहः, द्वित्रिप्रवरसाम्यात् आद्ययोर्जामदग्न्यत्वेन सगोत्रत्वाच्च। यद्यपि त्रिप्रवरार्ष्टिषेणानां वत्सबिदैः सह न द्विप्रवरसाम्यं नापि सगोत्रत्वं जामदग्न्यत्वाभावात्। तथापि पञ्चप्रवरपक्षगतमपि त्रिप्रवरसाम्यं विवाहबाधकम्। एवमग्रेऽपि ज्ञेयम्। वात्स्यानां भार्गवच्यावनाप्नवानेति त्रयः। वत्सपुरोधसोर्भार्गवच्यावनाप्नवानवत्सपौरोधसेति पंच। बैजमथितयोर्भार्गवच्यावनाप्नवानवैजमथितेति पञ्च। एते त्रयः क्वचित्।

वत्स, विद और आर्ष्टिषेण इन तीनों का दो तीन प्रवरों की समानता और आदि के दोनों का जामदग्न्यत्व और सगोत्रत्व से परस्पर विवाह नहीं होता। यद्यपि जामदग्न्यत्व के अभाव से तीन प्रवर वाले आर्ष्टिषेणों का वत्स और विदों के साथ न दो प्रवर का साम्य है और न सगोत्रत्व है तथापि पंच प्रवर पक्षगत भी तीन प्रवर की समता विवाह की बाधिका है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। वात्स्यों का भार्गव, च्यावन और आप्नवान ये तीन प्रवर हैं। वत्स और पुरोधा का भार्गव, च्यावन, आप्नवान, वत्स और पुरोधा इस प्रकार पांच प्रवर हैं। बैज और मथित का भार्गव, च्यावन, आप्नवान, वैज और मथित, इस प्रकार पांच प्रवर हैं। कहीं पर तीन प्रवर भी हैं।

एतेषां परस्परं पूर्वोक्तैश्च त्रिभिर्न विवाहः, त्रिप्रवरसाम्यात्। यस्काः मौनाः मूकाः इत्यादयस्त्रिपञ्चाशदधिका यस्काः। एषां भार्गववैतहव्यसावेतसेति त्रयः। मित्रयवः रौष्ट्यायनाः सापिण्डिनाः इत्यादयस्त्रिंशदधिका मित्रयवः। तेषां भार्गववाध्र्यश्वदैवोदासेति त्रयः। भार्गवच्यावनदैवोदासेति वा। वाध्र्यश्वेत्येको वा। वैन्याः पार्थाः बाष्कलाः श्येता इत्येते वैन्याः। एषां भार्गववैन्यपार्थेति त्रयः। शुनकाः गार्त्समदाः यज्ञपतयः इत्यादयः सप्तदशाधिकाः शुनकाः। एषां शौनकेत्येकः। गार्त्समदेति वा। भार्गवगार्त्समदेति द्वौ वा। भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेति त्रयो वा।

इन सब का परस्पर और पहिले कहे हुए तीन प्रवर के साम्य होने से विवाह नहीं होता। यस्क, मौन और मूक इत्यादि तिरपन से अधिक यस्क हैं। इनका भार्गव, वैतहव्य और सावेतस इस प्रकार तीन प्रवर हैं। मित्रयु, रौष्ट्यायन और सापिण्डिन इत्यादि तीस से अधिक मित्रयु हैं। इनका भार्गव वाध्र्यश्व और दैवोदास इस तरह तीन प्रवर हैं। अथवा भार्गव, च्यावन और दैवोदास तीन प्रवर। या वाध्र्यश्व इस प्रकार एक प्रवर हैं। वैन्य, पार्थ, बाष्कल और श्येत ये वैन्य हैं। इनका भार्गव, वैन्य और पार्थ ये तीन प्रवर हैं। शुनक, गार्त्समद और यज्ञपति आदि सत्रह से अधिक शुनक हैं। इनका शौनक मात्र एक प्रवर है। अथवा गार्त्समद है। या भार्गव, गार्त्समद इस प्रकार दो प्रवर हैं। तथा भार्गव, शौनहोत्र और गार्त्समद इस प्रकार तीन प्रवर हैं।

यस्कादीनां चतुर्णां स्वस्वगणं हित्वा परस्परं पूर्वैर्जामदग्न्यवत्सादिभिश्च सह विवाहो भवति। एकप्रवरसाम्येऽपि द्वित्रिप्रवरसाम्याभावात्। भृगुगणेषु एकप्रवरसाम्यस्य दूषकत्वाभावात्। अजामदग्न्यत्वेनासगोत्रत्वात्। मित्रयूनां

पाक्षिकद्विप्रवरसाम्यात् त्रिप्रवरैर्वत्सादिभिः सह न विवाह इति केचित्। तत्प्रवरपक्षग्राहिणामविवाहः। पक्षान्तरग्राहिणां मित्रयूनां विवाह एवेत्यन्ये। क्वचिदधिकं गणद्वयमुक्तम्। वेदविश्वज्योतिषां भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति त्रयः। शाठरमाठराणां भार्गवशाठरमाठरेति त्रयः। अनयोः परस्परं पूर्वैश्च सर्वैर्विवाहः। इति भृगुगणाः।

यस्क आदि चार का अपने-अपने गण को छोड़कर परस्पर जामदग्न्य, वत्स आदि पहिले वालों के साथ विवाह होता है, क्योंकि एक प्रवर की समता में भी दो तीन प्रवर की समता और भृगुगणों में एक प्रवर की समानता का दोषाभाव तथा जामदग्न्य से भिन्न होने से असगोत्रता है। कोई कहते हैं मित्रयु का पाक्षिक दो प्रवर की समानता से तीन प्रवर वाले वत्सादिकों के साथ विवाह नहीं होता। उस प्रवरपक्ष के ग्रहण करने वालों का नहीं होता। अन्य कहते हैं कि दूसरे पक्ष के ग्रहण करने वाले मित्रयु का ही विवाह होता है। कहीं दो गण अधिक कहे हैं। वेद और विश्वज्योति का भार्गव, वेद और वैश्वज्योति ये तीन प्रवर हैं। शाठर और माठरों का भार्गव, शाठर और माठर इस प्रकार तीन प्रवर हैं। इन दोनों का आपस में और पहिले के सभी से विवाह होता है। भृगुगण समाप्त।

अथाङ्गिरसः

ते त्रिविधाः—गौतमाः भरद्वाजाः केवलाश्चेति। तत्र गौतमाङ्गिरसो दश[१]—आयास्याः शारद्वताः कौमण्डाः दीर्घतमसः करेणुपालयः वामदेवाः औशनसाः राहूगणाः सोमराजकाः बृहदुक्थाश्चेति।

---

१. गौतमाङ्गिरस गण में दस हैं। सरलता से जानकारीके लिये इनके प्रवरों के नाम और प्रवर संख्या निम्नांकित हैं। सगोत्र और प्रायः द्वित्रि प्रवर के साम्य से सभी गौतम परस्पर में अविवाह्य हैं।

१ आयस्याः—इनके आङ्गिरस-आयास्य-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ शारद्वताः—इनके आङ्गिरस-गौतम शारद्वत नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ कौमण्डाः—इनके आङ्गिरस-औतथ्य-काक्षीवत-गौतम-कौमण्ड नाम के ये पांच या आंगिरस-औतथ्य गौतम-औशिज-काक्षीवत नाम के ये पांच या आंगिरस-आयास्य औशिज-गौतम-काक्षीवत नाम के ये पांच या आंगिरस-औशिज-काक्षीवत नाम के ये तीन या आंगिरस-औतथ्य-काक्षीवत नाम के ये तीन या औतथ्य-गौतम-कौमण्ड नाम के ये तीन प्रवर हैं।

४ दीर्घतमसः—इनके आङ्गिरस-औतथ्य-काक्षीवत-गौतम-दैर्घतमस नाम के ये पांच या आंगिरस औतथ्य-दैर्घतमस नाम के ये तीन प्रवर हैं।

५ करेणुपालयः—इनके आंगिरस-गौतम-कारेणुपाल नाम के ये तीन प्रवर हैं।

६ वामदेवाः—इनके आङ्गिरस-वामदेव्य-गौतम नाम के ये तीन या आङ्गिरस-वामदेव्य-बार्हदुक्थ नाम के ये तीन प्रवर हैं।

७ औशनसाः—इनके आङ्गिरस-गौतम-औशनस नाम के ये तीन प्रवर हैं।

८ रहूगणाः—इनके आङ्गिरस-राहूगण-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

९ सोमराजकाः—इनके आङ्गिरस-सौमराज्य-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

१० बृहदुक्थाः—इनके आङ्गिरस-बार्हदुक्थ-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

कहीं दो गण अधिक हैं—

उतथ्याः—इनके आङ्गिरस-औतथ्य-गौतम नाम के तीन प्रवर हैं।

राघुवाः—इनके आङ्गिरस-राघुव-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

अंगिरस तीन प्रकार के हैं—गौतम, भरद्वाज और केवल। उनमें गौतम अंगिरस दस हैं—आयास्य १, शारद्वत २, कौमण्ड ३, दीर्घतमा ४, करेणुपालि ५, वामदेव ६, औशनस ७, राहूगण ८, सोमराजक ९, और बृहदुक्थ १०।

तत्र आयास्याः श्रोणिवेधाः मूढरथा इत्यादयोऽष्टादशाधिका आयास्याः। तेषामाङ्गिरसायास्यगौतमेति त्रयः। शारद्वताः आभिजिताः रौहिण्यः इत्यादयः सप्तत्यधिकाः शारद्वतास्तेषामाङ्गिरसगौतमशारद्वतेति त्रयः। कौमण्डाः मामन्थरेषणाः भासुराक्षा इत्यादयो दशाधिकाः कौमण्डास्तेषामाङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमकौमण्डेति पञ्च। आङ्गिरसौतथ्यगौतमौशिजकाक्षीवतेति वा। आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति वा। आङ्गिरसौशिजकाक्षीवतेति त्रयो वा। आङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतेति वा। औतथ्यगौतमकौमण्डेति वा। अथ दीर्घतमसो गौतमास्तेषामाङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति पञ्च। आङ्गिरसौतथ्यदैर्घतमसेति त्रयो वा।

उनमें आयास्य, श्रोणिवेधा और मूढरथ इत्यादि अठारह से अधिक आयास्य हैं। इनमें आंगिरस आयास्य और गौतम तीन हैं। शारद्वत आभिजित और रौहिण्य इत्यादि सत्तर से अधिक शारद्वत हैं उनका आंगिरस, गौतम और शारद्वत ये तीन प्रवर हैं। कौमण्ड मामंथरेषण और भासुराक्ष इत्यादि दस से अधिक कौमण्ड हैं इनका आंगिरस, उतथ्य, काक्षीवत, गौतम और कौमण्ड इस प्रकार पांच प्रकार हैं। या आंगिरस, औतथ्य, गौतम, औशिज और काक्षीवत। अथवा आंगिरस आयास्य औशिज, गौतम और काक्षीवत। अथवा आंगिरस, औशिज और काक्षीवत ये तीन प्रवर हैं। या आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत किंवा औतथ्य, गौतम और कौमण्ड हैं। दीर्घतमा के गौतम, उनका आंगिरस, औतथ्य काक्षीवत, गौतम और दैर्घतमस ये पांच प्रवर हैं। या आंगिरस, औतथ्य दैर्घ्यतमस ये तीन प्रवर हैं।

करेणुपालयः वास्तव्याः श्वेतीया इत्यादयः सप्ताधिका करेणुपालयस्तेषामाङ्गिरसगौतमकारेणुपालेति त्रयः। वामदेवानामाङ्गिरसवामदेव्यगौतमेति त्रयः। आङ्गिरसवामदेव्यबार्हदुक्थेति वा। औशनसाः दिश्याः प्रशस्ताः इत्यादिका नवाधिका औशनसास्तेषामाङ्गिरसगौतमौशनसेति त्रयः। रहूगणानामाङ्गिरसराहूगणगौतमेति त्रयः। सोमराजकानामाङ्गिरससौमराज्यगौतमेति त्रयः। बृहदुक्थानामाङ्गिरसबार्हदुक्थगौतमेति त्रयः॥ १०॥

करेणुपालि, वास्तव्य और श्वेतीय इत्यादि सात से अधिक करेणुपालि हैं। इनका आंगिरस गौतम, कारेणुपाल ये तीन प्रवर हैं। वामदेवों का आंगिरस, वामदेव्य और गौतम ये तीन प्रवर हैं। अथवा आंगिरस, वामदेव्य और बार्हदुक्थ हैं। औशनस, दिश्य और प्रशस्त इत्यादि नव से अधिक औशनस हैं उनका आंगिरस, गौतम और औशनस ये तीन प्रवर हैं। रहूगणों का आंगिरस, राहूगण और गौतम ये तीन प्रवर हैं। सोमराजकों का आंगिरस, सौमराज्य और गौतम ये तीन प्रवर हैं। बृहदुक्थों का आंगिरस, बार्हदुक्थ और गौतम ये तीन प्रवर हैं।

क्वचिद् गणद्वयमधिकमुक्तम्। उतथ्यानामाङ्गिरसौतथ्यगौतमेति। राघुवानामाङ्गिरसराघुवगौतमेति। गौतमानां सर्वेषां परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात्प्रायेण द्वित्रिप्रवरसाम्याच्च।

कहीं पर दो गण अधिक हैं। उतथ्यों का आंगिरस औतथ्य और गौतम। राहुवों का आंगिरस, राहुव और गौतम ये तीन प्रवर हैं। सब गौतमों का सगोत्रत्व एवं प्रायः दो तीन प्रवरों की समता से परस्पर विवाह नहीं होता।

अथ भारद्वाजाङ्गिरसः

ते [1]चत्वारः—भरद्वाजाः गर्गाः ऋक्षाः कपयश्चेति। भरद्वाजाः क्षाम्यायणाः देवाश्वा इत्यादयः षष्ट्युत्तरशताधिका भरद्वाजास्तेषामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्रयः। गर्गाः सांभरायणाः सखीनय इत्यादयः पञ्चाशदधिका गर्गास्तेषामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजशैन्यगार्ग्येति पञ्च। आङ्गिरसशैन्यगार्ग्येति त्रयो वा। अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा। भारद्वाजगार्ग्यशैन्येति वा। गर्गभेदानामाङ्गिरसतैत्तिरिकापिभुवेति।

वे भरद्वाज चार हैं—भरद्वाज, गर्ग, ऋक्ष और कपि। भरद्वाज, क्षाम्यायण, देवाश्व, इत्यादि एक सौ साठ से अधिक भारद्वाज हैं। उनका आंगिरस, बार्हस्पत्य और भारद्वाज इस प्रकार तीन प्रवर हैं। गर्ग, साम्भरायण और सखीनय इत्यादि पचास से अधिक गर्ग हैं उनका आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, शैन्य और गार्ग्य इस प्रकार पांच प्रवर हैं। अथवा आंगिरस, शैन्य, गार्ग्य, इस तरह तीन प्रवर हैं। या अन्त के दो का व्यत्यय है। या भारद्वाज, गार्ग्य और शैन्य। गर्ग के भेदों का आंगिरस, तैत्तिरि और कापिभुव।

ऋक्षाः रौक्षायणाः कपिलाः इत्यादयो नवाधिका ऋक्षास्तेषामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजवान्दनमातवचसेति पञ्च। आङ्गिरसवान्दनमातवचसेति त्रयो वा। कपयः स्वस्तितरयः दण्डिन इत्यादयः पञ्चविंशत्यधिकाः कपयस्तेषामाङ्गिरसामहय्यौरुक्षय्येति त्रयः। आङ्गिरसामहीयवौरुक्षयसेत्याश्वलायनपाठः। आत्मभुवामाङ्गिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यवरात्मभुवेति पञ्च। अयं गणः क्वचित्।

ऋक्ष, रौक्षायण और कपिल इत्यादि नव से अधिक ऋक्ष हैं उनका आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, वांदन और मातवचस ये पांच प्रवर हैं। या आंगिरस, वांदन और मातवचस ये तीन प्रवर हैं। कपि, स्वस्तितरि और दण्डी इत्यादि पचीस से अधिक कपि हैं उनका आंगिरस, आम-

---

१. भरद्वाजाङ्गिरसगण में चार हैं—सरलता से जानकारी के लिये इनके प्रवरों के नाम और प्रवर संख्या निम्नांकित हैं। गोत्र और दो तीन प्रवर के साम्य से सभी भारद्वाज परस्पर अविवाह्य हैं। ऋक्षान्तर्गत कपिलों का विश्वामित्र के साथ विवाह उचित नहीं है।

१ भरद्वाजाः—इनके आङ्गिरस-बार्हस्पत्य-भारद्वाज नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ गर्गाः—इनके आंगिरस-बार्हस्पत्य-भरद्वाज-शैन्य-गार्ग्य नाम के ये पांच या आंगिरस-शैन्य-गार्ग्य नाम के ये तीन या आङ्गिरस-गार्ग्य-शैन्य नाम के ये तीन या भारद्वाज गार्ग्य-शैन्य नाम के ये तीन प्रवर हैं। 'सैन्य' यह दन्त्यादि पाठ भी हैं।

३ ऋक्षाः—इनके आङ्गिरस-बार्हस्पत्य-भारद्वाज-वान्दन-मातवचस नाम के ये पांच या आङ्गिरस वान्दन-मातवचस नाम के ये तीन प्रवर हैं।

४ कपयः—इनके आङ्गिरस-सामहय्य-औरुक्षय्य नाम के ये तीन या आङ्गिरस-आमहय्य-औरुक्षय्य नाम के ये तीन प्रवर हैं। आश्वलायन में 'आङ्गिरसामहीय वौरुक्षयस' ऐसा पाठ है।

आत्मभुवः—इनके आङ्गिरस-भारद्वाज-बार्हस्पत्य-वर-आत्मभुव नाम के ये पांच प्रवर हैं।

हव्य और उरुक्षय ये तीन प्रवर हैं। आश्वलायन का पाठ आंगिरस, आमहीयव और उरुक्षयस ऐसा है। आत्मभुवों का आंगिरस, भारद्वाज, बार्हस्पत्य वर और आत्मभुव यह पांच प्रवर हैं। यह गण कहीं पर है।

भरद्वाजानां सर्वेषां परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात् प्रायेण द्वित्रिप्रवर-साम्याच्च। ऋक्षान्तर्गतानां कपिलानां विश्वामित्रैरप्यविवाहः। इति भार-द्वाजाङ्गिरसः।

सब भरद्वाजों का सगोत्र होने से और प्रायः दो तीन प्रवर के साम्य से परस्पर विवाह नहीं होता। ऋक्षान्तर्गत कपिलों का विश्वामित्रों से भी विवाह नहीं होता। भरद्वाजांगिरस समाप्त।

अथ केवलाङ्गिरसः

ते च षट्[1]—हरिताः कुत्साः कण्वाः रथीतराः विष्णुवृद्धाः मुद्गलाश्चेति। हरिताः सौभगाः नैथ्यगवा इत्यादयो द्वात्रिंशदधिका हरितास्तेषामाङ्गिरसांबरी-षयौवनाश्वेति। आद्यो मान्धाता वा। कुत्सानामाङ्गिरसमांधात्रकौत्सेति त्रयः। कण्वाः औपमर्कटाः बाष्कलायना इत्यादय एकविंशत्यधिकाः कण्वास्तेषामाङ्गि-रसाजमीढकण्वेति त्रयः। आङ्गिरसघौरकाण्वेति वा।

वे केवलांगिरस छ हैं—हरित, कुत्स, कण्व, रथीतर, विष्णुवृद्ध और मुद्गल। हरित, सौभग, नैथ्यगव इत्यादि बत्तीस से अधिक हरित हैं उनका आंगिरस, अम्बरीष और यौवनाश्व ये तीन प्रवर हैं। या पहिला मान्धाता है। कुत्सों का आंगिरस, मान्धात्र और कौत्स ये तीन प्रवर हैं। कण्व, औपमर्कट और बाष्कलायन इत्यादि इक्कीस से अधिक कण्व हैं उनके प्रवर—-आंगिरस, आजमीढ और कण्व ये तीन हैं। अथवा आंगिरस घौर और काण्व।

रथीतराः हस्तिदाः नैतिरक्षयः इत्यादयश्चतुर्दशाधिका रथीतरास्तेषामाङ्गि-रसवैरूपरथीतरेति त्रयः। आङ्गिरसवैरूपपार्षदश्वेति वा। अष्टादंष्ट्रवैरूपपार्षद-श्वेति वा। अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा। विष्णुवृद्धाः शठाः मरणा इत्यादयः पञ्च-

---

१. केवल आङ्गिरस छ हैं। सरलता से जानकारी के लिये इनके प्रवरों के नाम और प्रवर संख्या निम्नाङ्कित हैं। इन छ केवल आंगिरसों का अपने गण को छोड़कर पूर्व सभी के साथ परस्पर विवाह होता है। पाक्षिक प्रवरद्वय के साम्य से हरित और कुत्स परस्पर में अविवाह्य हैं।

१ हरिताः—इनके आङ्गिरस-अम्बरीष-यौवनाश्व नाम के ये तीन प्रवर हैं। या आंगिरस के स्थान में मान्धाता है।

२ कुत्साः—इनके आङ्गिरस-मान्धातृ-कौत्स नाम के तीन प्रवर हैं।

३ कण्वाः—इनके आङ्गिरस-आजमीढ-काण्व नाम के ये तीन या आंगिरस-घौर-काण्व नाम के तीन प्रवर हैं।

४ रथीतराः—इनके आङ्गिरस-वैरूप-राथीतर नाम के ये तीन या आङ्गिरस-वैरूप-पार्षदश्व नाम के ये तीन या अष्टादंष्ट्र-वैरूप-पार्षदश्व नाम के ये तीन या अष्टादंष्ट्र-पार्षदश्व-वैरूप नाम के ये तीन प्रवर हैं।

५ विष्णुवृद्धाः—इनके आङ्गिरस-पौरुकुत्स्य-त्रासदस्यव नाम के ये तीन प्रवर हैं।

६ मुद्गलाः—इनके आङ्गिरस-भार्म्यश्व-मौद्गल्य नाम के ये तीन या आङ्गिरस के स्थान में तार्क्ष्य या आंगिरस-तार्क्ष्य-मौद्गल्य नाम के ये तीन प्रवर हैं।

विंशत्यधिका विष्णुवृद्धास्तेषामाङ्गिरसपौरुकुत्स्यत्रासदस्यवेति त्रयः । मुद्गलाः सात्यमुग्रियः हिरण्यस्तम्बयः इत्यादिका अष्टादशाधिकास्तेषामाङ्गिरसभार्म्याश्वि-मौद्गल्येति त्रयः । आद्यस्तार्क्ष्यो वा । आङ्गिरसतार्क्ष्यमौद्गल्येति वा ।

रथीतर, हस्तिद और नैतिरक्षय इत्यादि चौदह से अधिक रथीतर हैं। उनके प्रवर आंगिरस, वैरूप और रथीतर ये तीन हैं। यद्वा आंगिरस, वैरूप और पार्श्वदश्व हैं। अथवा अष्टादंष्ट्र, वैरूप और पार्श्वदश्व हैं। या अन्तके दोनों का व्यत्यय है। विष्णुवृद्ध, शठ और मरण इत्यादि पच्चीस से अधिक विष्णुवृद्ध गोत्र हैं उनके प्रवर—आंगिरस, पौरुकुत्स्य और त्रासदस्यव ये तीन हैं। मुद्गल, सात्यमुग्रिय, हिरण्यस्तम्बय इत्यादि अठारह से अधिक हैं उनके आंगिरस, भार्म्याश्व और मौद्गल्य ये तीन प्रवर हैं। या पहिला तार्क्ष्य है। आंगिरस, तार्क्ष्य और मौद्गल्य इस प्रकार भी तीन प्रवर हैं।

एषां षण्णां केवलाङ्गिरसानां स्वस्वगणं हित्वा परस्परं पूर्वैश्च सर्वैर्विवाहो भवति, अङ्गिरसोऽगस्त्याष्टमसप्तर्षिभिन्नत्वेन तदपत्यानां सगोत्रत्वाभावात् द्वित्रिप्रवरसाम्याभावाच्च । हरितकुत्सयोस्तु न विवाहः, पाक्षिकद्विप्रवरसाम्यात् ।

इन छ केवलांगिरसों का अपने-अपने गणों को छोड़कर पहिले के सबसे परस्पर विवाह होता है, क्योंकि अंगिरा का अगस्त्याष्टम सप्तर्षि से भिन्न होने के कारण उनकी सन्तानों का सगोत्रत्व का अभाव है और दो तीन प्रवरों की समानता भी नहीं है। पाक्षिक दो प्रवर की समता से हरित और कुत्स का परस्पर विवाह नहीं होता।

अथात्रयः

ते [१]चत्वारः— अत्रयः गविष्ठिराः वाद्भूतकाः मुद्गलाश्चेति । अत्रयो भूरयः छान्दय इत्यादयश्चतुर्नवत्यधिका अत्रयस्तेषामात्रेयार्चनानसश्यावाश्वेति त्रयः । गविष्ठिराः दक्षयः भलन्दना इत्यादयश्चतुर्विंशत्यधिका गविष्ठिरास्तेषामात्रेया-र्चनानसगाविष्ठिरेति त्रयः । आत्रेयगाविष्ठिरपौर्वातिथेति वा । वाद्भुतकानामात्रे-

---

१. अत्रि चार हैं—इनके प्रवरों के नाम तथा प्रवरसंख्या निम्नाङ्कित है। गोत्र और प्रवर के साम्य से अत्रियों का परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। 'चत्वारोऽत्रय आद्यत्रिवाद्भूतकगवि-ष्ठिराः। मुद्गलाश्चेति गोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्च नान्वियुः ॥' अत्रि के वामरथ्यादि पुत्रिकापुत्रों का वासिष्ठ विश्वामित्रों के साथ विवाह नहीं होता।

१ अत्रयः—इनके आत्रेय-आर्चनानस-श्यावाश्व नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ गविष्ठिराः—इनके आत्रेय-आर्चनानस-गाविष्ठिर नाम के ये तीन या आत्रेय गाविष्ठिर-पौर्वातिथ नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ वाद्भुतकाः—इनके आत्रेय आर्चनानस-सवाद्भुतक नाम के ये तीन प्रवर हैं।

४ मुद्गलाः—इनके आत्रेय-आर्चनानस-पौर्वातिथ नाम के ये तीन प्रवर हैं।

कहीं निम्नांकित ये गण अधिक हैं—

अतिथय —इनके आत्रेय-आर्चनानस-आतिथ नाम के ये तीन या आत्रेय-आर्चनानस-गाविष्ठिर नाम के ये तीन प्रवर हैं।

वामरथ्याः—इनके उपर्युक्त प्रवर हैं।

यार्चनानसवाद्भुतकेति त्रयः । मुद्गलाः शालिसंधयः अर्णवाः इत्यादयो दशावरा मुद्गलास्तेषामात्रेयार्चनानसपौर्वातिथेति त्रयः ।

वे अत्रि चार हैं—अत्रि, गविष्ठिर, वाद्भुतक और मुद्गल । अत्रि, भूरि और छान्दि इत्यादि चौरानबे से अधिक अत्रि हैं उनका प्रवर—आत्रेय, अर्चनानस और श्यावाश्व ये तीन हैं। गविष्ठिर, दक्षि और भलन्दन इत्यादि चौबीस से अधिक गविष्ठिर हैं। उनका आत्रेय, अर्चनानस और गविष्ठिर ये तीन प्रवर हैं। अथवा आत्रेय, गविष्ठिर और पौर्वातिथि हैं। वाद्भुतकों का आत्रेय, अर्चनानस और वाद्भुतक ये तीन प्रवर हैं मुद्गल, शालिसन्धि और अर्णव इत्यादि कम से कम दस मुद्गल हैं उनका आत्रेय, अर्चनानस और पौर्वातिथ ये तीन प्रवर हैं ।

क्वचिद् अतिथयो वामरथ्याः सुमङ्गला बीजवापा धनञ्जयाश्चेति पञ्च गणा अधिकाः । तत्राद्यचतुर्णामात्रेयार्चनानसातिथेति त्रयः । आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति वा । सुमङ्गलानामत्रिसुमङ्गलश्यावाश्वेति वा । धनञ्जयानामात्रेयार्चनानसधानञ्जयेति । वालेयाः कौन्द्रेयाः शौभ्रेयाः वामरथ्या इत्यादय अत्रेः पुत्रिकापुत्रास्तेषामात्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति त्रयः ।

कहीं पर अतिथि, वामरथ्य, सुमंगल, बीजवाप और धनंजय ये पांच गण अधिक हैं। उनमें पहिले चार का आत्रेय, आर्चनानस और आतिथ ये तीन प्रवर हैं। या आत्रेय, आर्चनानस और गविष्ठिर हैं। या सुमंगलों का अत्रि, सुमंगल और श्यावाश्व। धनंजयों का आत्रेय, आर्चनानस और धानंजय हैं। बालेय, कौंद्रेय शौभ्रेय और वामरथ्य इत्यादि अत्रि के पुत्रिकापुत्र हैं उनके आत्रेय, वामरथ्य और पौत्रिक ये तीन प्रवर हैं।

अत्रीणां सर्वेषामविवाहः, सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च । अत्रेः पुत्रिकापुत्राणां वामरथ्यादीनां च वसिष्ठविश्वामित्राभ्यामप्यविवाहः । इत्यत्रयः ।

अत्रियों का सब के समान गोत्र और समान प्रवर होने से विवाह नहीं होता। अत्रि का पुत्रिकापुत्र-वामरथ्य आदि का वसिष्ठ और विश्वामित्र गोत्रों से विवाह नहीं होता। अत्रिगोत्र समाप्त।

अथ विश्वामित्राः

ते दश[1]—कुशिकाः लोहिताः रौक्षका कामकायनाः अजाः कताः धनञ्जयाः अघमर्षणाः पूरणा इन्द्रकौशिकाश्चेति । कुशिकाः पर्णजङ्घाः वारक्या इत्यादयः

सुमङ्गलाः—इनके भी उपर्युक्त प्रवर हैं। या अत्रि-सुमंगल-श्यावाश्व नामके ये तीन प्रवर हैं।

बीजवापाः—इनके आत्रेय-आर्चनानस-आतिथ नाम के ये तीन या आत्रेय-आर्चनानस-गविष्ठिर नाम के ये तीन प्रवर हैं।

धनंजयाः—इसके आत्रेय-आर्चनानस-धानंजय नाम के ये तीन प्रवर हैं।

बालेयादि—अत्रि के पुत्रिकापुत्रों के आत्रेय-वामरथ्य-पौत्रिक नाम के ये तीन प्रवर हैं।

१. विश्वामित्र गण में दस हैं। सरलता से जानकारी के लिये इनके प्रवरों के नाम तथा प्रवर संख्या निम्नांकित हैं। विश्वामित्रों का परस्पर विवाह नहीं होता।

१ कुशिकाः—इनके वैश्वामित्र देवरात औदल नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ लोहिताः—इनके वैश्वामित्र-आष्टक-लौहित नाम के ये तीन या वैश्वामित्र-लौहित-आष्टक नाम के तीन या वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-आष्टक नाम के ये तीन या विश्वामित्र-आष्टक नाम के ये दो प्रवर हैं। कहीं रोहिताः पाठ है।

सप्तत्यधिकाः कुशिकास्तेषां वैश्वामित्रदेवरातौदलेति त्रयः १ । लोहिताः कुडक्या-श्चाक्रवर्णायना इत्यादयः पञ्चाधिका लोहिताः । रोहिता इति केचित् । तेषां वैश्वा-मित्राष्टकलौहितेति त्रयः । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाष्टकेति वा । विश्वामित्राष्टकेति द्वौ वा २ । रौक्षकाणां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति त्रयः । वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेति वा । एते रेवणा वा ३ । कामकायनाः देवश्रवसः देवतरसा इत्यादयः पञ्चावराः कामकायनाः । श्रौमता वा । तेषां वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतर-सेति त्रयः ४ । अजानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाजेति त्रयः ५ ।

ये दश हैं—कुशिक, लोहित, रौक्षक, कामकायन, अज, कत, धनंजय, अघमर्षण, पूरण और इन्द्रकौशिक । कुशिक, पर्णजंघ, वारक्य इत्यादि सत्तर से अधिक कुशिक हैं। उनके वैश्वा-मित्र, देवरात और औदल ये तीन प्रवर हैं। लोहित, कुडक्य और चाक्रवर्णायन इत्यादि पांचसे अधिक लोहित हैं। कोई लोहित को रोहित भी कहते हैं। उनका प्रवर—वैश्वामित्र, अष्टक और लोहित ये तीन हैं। या अन्त के दोनों का व्यत्यय है। अथवा वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और अष्टक हैं। यद्वा विश्वामित्र और अष्टक ये दो प्रवर हैं। रौक्षकों का वैश्वामित्र, गाथिन और रैवण ये तीन प्रवर हैं। या वैश्वामित्र, रौक्षक और रैवण हैं। या ये रेवण भी हैं। कामकायन, देवश्रवस और देवतरस इत्यादि कम से कम पांच कामकायन हैं। या श्रौमत हैं। इनके प्रवर—वैश्वामित्र, देवश्रवस और दैवतरस ये तीन हैं। अजों का प्रवर वैश्वामित्र माधुच्छन्दस और आज ये तीन हैं।

---

३ रौक्षकाः—इनके विश्वामित्र-गाथिन-रैवण नाम के ये तीन या वैश्वामित्र-रौक्षक-रैवण नाम के ये तीन प्रवर हैं।

४ कामकायनाः—इनके वैश्वामित्र-देवश्रवस-दैवतरस नाम के ये तीन प्रवर हैं।

५ अजाः—इनके वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-आज नाम के ये तीन प्रवर हैं।

६ कताः—इनके वैश्वामित्र-कात्य-आत्कील नाम के ये तीन प्रवर हैं।

७ धनंजयाः—इनके वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-धानंजय नाम के ये तीन या वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-आघमर्षण नाम के ये तीन प्रवर हैं।

८ अघमर्षणाः—इनके वैश्वामित्र-आघमर्षण-कौशिक नाम के ये तीन प्रवर हैं।

९ पूरणाः—इनके वैश्वामित्र-पूरण नाम के ये दो या वैश्वामित्र-देवरात-पौरण नाम के ये तीन प्रवर हैं।

१० इन्द्रकौशिकाः—इनके वैश्वामित्र-इन्द्रकौशिक नाम के ये दो प्रवर हैं।

कहीं निम्नाङ्कित ग्यारह भेद हैं—

आश्मरथ्याः—इनके वैश्वामित्र-आश्मरथ्य-वाधुल नाम के ये तीन प्रवर हैं।

साहुलाः—इनके वैश्वामित्र-साहुल-माहुल नाम के ये तीन प्रवर हैं।

गाथिनाः—इनके वैश्वामित्र-गाथिन-रैणव नाम के ये तीन प्रवर हैं।

वैणवाः—इनके वैश्वामित्र-गाथिन-वैणव नाम के ये तीन प्रवर हैं।

हिरण्यरेतसः—इनके वैश्वामित्र-हैरण्यरेतस नाम के ये दो प्रवर हैं।

सुवर्णरेतसः—इनके वैश्वामित्र-सौवर्णरेतस नाम के ये दो प्रवर हैं।

कपोतरेतसः—इनके वैश्वामित्र-कापोतरेतस नाम के ये दो प्रवर हैं।

शालङ्कायनाः—इनके वैश्वामित्र-शालङ्कायन-कौशिक नाम के ये तीन प्रवर हैं।

घृतकौशिकाः—इनके वैश्वामित्र-घृतकौशिक नाम के ये दो प्रवर हैं।

कथकाः—इनके वैश्वामित्र-काथक नाम के ये दो प्रवर हैं।

रौहिणाः—इनके वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-रौहिण नाम के ये तीन प्रवर हैं।

कताः औदुम्बरयः शैशिरयः इत्यादयो विंशत्यधिकाः कतास्तेषां वैश्वामित्रकात्यात्कीलेति त्रयः ६। धनञ्जयाः पार्थिवाः बन्धुला इत्यादयः सप्तावरा धनञ्जयास्तेषां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसधानञ्जयेति त्रयः। वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाघमर्षणेति वा ७। अघमर्षणानां वैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति त्रयः ८। पूरणानां वैश्वामित्रपूरणेति द्वौ। वैश्वामित्रदेवरातपारणेति वा ९। इन्द्रकौशिकानां वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति द्वौ १०।

कत, औदुम्बरि, शैशिरि इत्यादि बीस से अधिक कत हैं उनके वैश्वामित्र, कात्य और आत्कील ये तीन प्रवर हैं। धनंजय पार्थिव और बन्धुल इत्यादि कम से कम सात धनंजय हैं उनके प्रवर—वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और धानंजय ये तीन हैं। या वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और अघमर्षण। अघमर्षणों के वैश्वामित्र, आघमर्षण और कौशिक ये तीन प्रवर हैं। पूरणों के वैश्वामित्र और पूरण ये दो प्रवर हैं। अथवा वैश्वामित्र, देवरात और पारण। इन्द्रकौशिकों का वैश्वामित्र और इन्द्रकौशिक ये दो प्रवर हैं।

क्वचिदन्येप्येकादशोक्ताः—आश्मरथ्याः साहुलाः गाथिनाः वैणवाः हिरण्यरेतसः सुवर्णरेसतः कपोतरेतसः शालङ्कायनाः घृतकौशिकाः कथकाः रौहिणा इति। आश्मरथ्यानां वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधुलेति त्रयः १। साहुलानां वैश्वामित्रसाहुलमाहुलेति त्रयः २। गाथिनानां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति त्रयः ३। वैणुवेति क्वचित्पाठः। एते एव रेणव इति उदवेणव इति चोच्यन्ते ३। वैणवानां वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति ४।

कहीं और भी ग्यारह गोत्र कहे हैं—आश्मरथ्य, साहुल, गाथिन, वैणव, हिरण्यरेता, सुवर्णरेता, कपोतरेता, शालंकायन, घृतकौशिक, कथक, और रौहिण। आश्मरथ्यों के वैश्वामित्र, आश्मरथ्य और वाधुल ये तीन प्रवर हैं। साहुलों के वैश्वामित्र, साहुल और माहुल ये तीन प्रवर हैं। गाथिनों के वैश्वामित्र, गाथिन और रैवण ये तीन प्रवर हैं। कहीं पर रैणव के स्थान में वैणुव पाठ है। ये ही रेणव और उदवेणव भी कहे जाते हैं। वैणवों के वैश्वामित्र गाथिन और वैणव ये तीन प्रवर हैं।

हिरण्यरेतसां वैश्वामित्रहैरण्यरेतसेति द्वौ ५। सुवर्णरेतसां वैश्वामित्रसौवर्णरेतसेति द्वौ ६। कपोतरेतसां वैश्वामित्रकपोतरेतसेति द्वौ ७। शालङ्कायनानां वैश्वामित्रशालङ्कायनकौशिकेति त्रयः। एते एव कौशिका इति जह्नुव इति चोच्यन्ते ८। घृतकौशिकानां वैश्वामित्रघृतकौशिकेति द्वौ ९। कथकानां वैश्वामित्रकाथकेति १०। रौहिणानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसरौहिणेति त्रयः ११।

हिरण्यरेतसों के वैश्वामित्र और हैरण्यरेतस ये दो प्रवर हैं। सुवर्णरेतसों के वैश्वामित्र और सौवर्णरेतस ये दो प्रवर हैं। कपोतरेतसों के वैश्वामित्र और कपोतरेतस ये दो प्रवर हैं। शालंकायनों के वैश्वामित्र, शालंकायन और कौशिक ये तीन प्रवर हैं। ये ही कौशिक और जह्नुव भी कहे जाते हैं। घृतकौशिकों के वैश्वामित्र और घृतकौशिक ये दो प्रवर है। कथकों के वैश्वामित्र और काथक ये दो प्रवर हैं। रौहिणों के वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और रौहिण ये तीन प्रवर हैं।

विश्वामित्रगणानां सर्वेषां परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च।

कुशिकानां देवरातप्रवरसाम्येन देवराताद्भेदानिर्णयाद्वक्ष्यमाणदेवरातवदेव जामदग्न्यैरप्यविवाह इति भाति । धनञ्जयानां विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः । कतानां भरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः, द्विगोत्रत्वात् । इति विश्वामित्राः ।

सभी विश्वामित्र-गणोंका परस्पर विवाह नहीं होता, क्योंकि इनका एक गोत्र और एक प्रवर है। कुशिकों का देवरात से एक प्रवर होने के कारण देवरात से भेद का निर्णय न होने से आगे कहे जाने वाले देवरात के समान ही जामदग्न्यों से भी विवाह नहीं होता, ऐसा मुझे ठीक लगता है। धनंजय गोत्र वालों का विश्वामित्र और अत्रिगोत्रवालों से विवाह नहीं होता। द्विगोत्र होने से कतों का भरद्वाज और विश्वामित्र गोत्र वालों से भी विवाह नहीं होता। विश्वामित्रगोत्र समाप्त।

अथ कश्यपाः

ते [१]त्रयः—निध्रुवाः रेभाः शण्डिलाश्चेति । तत्र निध्रुवाः कश्यपाः अष्टाङ्गिरसः इत्यादयश्चत्वारिंशदधिकशतावरा निध्रुवास्तेषां काश्यपावत्सारनैध्रुवेति त्रयः । निर्णयसिन्धौ तु निध्रुवगणोत्तरं कश्यपगणमुक्त्वा कश्यपानां काश्यपावत्सारासितेति प्रवरत्रयमुक्तम् । अत्र शिष्टाचारोपि दृश्यते १ । रेभाणां काश्यपावत्साररैभ्येति त्रयः २ ।

वे तीन हैं—निध्रुव, रेभ और शण्डिल। उनमें निध्रुव, कश्यप और अष्टांगिरस इत्यादि चालीस से अधिक सौ से कम निध्रुव हैं उनके काश्यप, अवत्सार और नैध्रुव ये तीन प्रवर हैं। निर्णय सिन्धु में तो निध्रुव गण के बाद कश्यप गण कहकर कश्यपों के काश्यप, अवत्सार और असित ये ही तीन प्रवर कहे हैं। ऐसा शिष्टाचार भी देखा जाता है। रेभों के काश्यप, अवत्सार और रैभ्य ये तीन प्रवर हैं।

शण्डिलाः कोहलाः उदमेधा इत्यादयः षष्ट्यवराः शण्डिलास्तेषां काश्यपावत्सारशाण्डिल्येति त्रयः । अन्त्यस्थाने देवलो वा असितो वा ३ । काश्यपासितदेवलेति वा । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । देवलासितेति द्वौ वा ३ । एषां कश्यपानां परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च ।

शण्डिल, कोहल और उदमेधा साठ से कम शण्डिल हैं उनके काश्यप, अवत्सार और शाण्डिल्य ये तीन प्रवर हैं। या अन्त के स्थान में देवल या असित हैं। अथवा काश्यप, असित और देवल, इस प्रकार तीन प्रवर हैं। या अन्त्य दो का व्यत्यय है। या देवल और असित ये दो प्रवर हैं। एक गोत्र और एक प्रवर होने से इन कश्यपों का परस्पर विवाह नहीं होता।

---

१. आश्वलायनसूत्र और निर्णयसिन्धु में कश्यपगण पृथक् निर्दिष्ट है तदनुसार ही यहां निर्देश किया गया है। कश्यप तीन है। इनके नाम और प्रवर संख्या नीचे निर्दिष्ट है। गोत्र और प्रवर के साम्य से कश्यपों का परस्पर विवाह नहीं होता। निर्णयसिन्धु में कश्यप के पांच गण लिखे हैं।

१ निध्रुवाः—इनके काश्यप-अवत्सार-नैध्रुव नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ रेभाः—इनके काश्यप-अवत्सार-रैभ्य नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ शण्डिलाः—इनके काश्यप-अवत्सार-शाण्डिल्य नाम के ये तीन या काश्यप-असित-देवल ये तीन प्रवर हैं। नामों का व्यत्यय मूल में देखें।

अथ वसिष्ठाः

ते [1]चत्वारः—वसिष्ठा कुण्डिनाः उपमन्यवः पराशराश्च । वसिष्ठाः वैतालकवयः रकय इत्यादयः षष्ट्यधिकाः वसिष्ठास्तेषां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति त्रयः । वासिष्ठेत्येको वा १ । कुण्डिनाः लोहितायनाः गुग्गुलयः इत्यादयः पञ्चविंशत्यवराः कुण्डिनास्तेषां वासिष्ठमैत्रावरुणकौण्डिन्येति त्रयः २ ।

ये चार हैं—वसिष्ठ, कुण्डिन, उपमन्यु और पराशर। वसिष्ठ, वैतालकवि, रकय इत्यादि साठ से अधिक वशिष्ठ हैं उनके वासिष्ठ, इन्द्रप्रमद और आभरद्वसु ये तीन प्रवर हैं। अथवा वाशिष्ठ यह एक प्रवर है। कुण्डिन लोहितायन और गुग्गुलि इत्यादि कम से कम पच्चीस कुण्डिन हैं उनके वाशिष्ठ मैत्रावरुण और कौण्डिन्य ये तीन प्रवर हैं।

उपमन्यवः औदलयः माण्डलेखय इत्यादयः सप्तत्यवरा उपमन्यवस्तेषां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति त्रयः। आभरद्वसव्येति पाठान्तरम्। वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेति वा। आद्ययोर्व्यत्ययो वा ३ । पराशराः काण्डूशयाः वाजय इत्यादयः सप्तचत्वारिंशदवराः पराशरास्तेषां वासिष्ठशाक्त्यपाराशर्येति त्रयः ४ । एषां वसिष्ठानां परस्परमविवाहः । इति वसिष्ठाः ।

उपमन्यु, औदलि और माण्डलेखि इत्यादि सत्तर से कम उपमन्यु हैं उनके वासिष्ठ, इन्द्रप्रमद और आभरद्वसु ये तीन प्रवर हैं। आभरद्वसव्य यह कहीं पाठ है। या वासिष्ठ, आभरद्वसु और इन्द्रप्रमद ये तीन प्रवर हैं। आदि के दो व्यत्यय हैं। पराशर, काण्डूशय और वाजि इत्यादि सैंतालिस से कम पराशर हैं उनके वासिष्ठ, शाक्त्य और पाराशर्य ये तीन प्रवर हैं। इन वसिष्ठ गोत्र वालों का परस्पर विवाह नहीं होता। वसिष्ठगोत्र समाप्त।

अथागस्त्याः

ते [2]दश—इध्मवाहाः साम्भवाहाः सोमवाहाः यज्ञवाहाः दर्भवाहाः सारवाहाः अगस्तयः पूर्णमासाः हिमोदकाः पाणिकाश्चेति । इध्मवाहाः विशा-

---

१. वसिष्ठ चार हैं। इनके नाम और प्रवर संख्या निम्नाङ्कित हैं। सभी वसिष्ठ परस्पर अविवाह्य हैं। निर्णयसिन्धु में वसिष्ठ पांच हैं।

१ वसिष्ठाः—इनके वसिष्ठ-इन्द्रप्रमद-आभरद्वसु नाम के तीन या वासिष्ठ यह एक ही प्रवर है।

२ कुण्डिनाः—इनके वासिष्ठ मैत्रावरुण-कौण्डिन्य नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ उपमन्यवः—इनके वासिष्ठ-इन्द्रप्रमद-आभरद्वसु नाम के ये तीन प्रवर या वासिष्ठ-आभरद्वसु-इन्द्रप्रमद नाम के ये तीन प्रवर हैं। यहां आदि में दो का व्यत्यय है। आभरद्वसु का आभरद्वसव्य यह पाठान्तर है।

४ पराशराः—इनके वासिष्ठ-शाक्त्य-पाराशर्य नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२. अगस्त्य गण में दस हैं। इनके नाम और प्रवरसंख्या निम्नाङ्कित हैं। गोत्र और प्रवर के साम्य होने से इनका परस्पर विवाह अविहित है।

१ इध्मवाहाः—इनके आगस्त्य-दाढर्यच्युत-इध्मवाह नाम के ये तीन या आगस्त्य नाम का एक प्रवर है।

२ साम्भवाहाः—इनके आगस्त्य-दाढर्यच्युत-साम्भवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ सोमवाहाः—इनके आगस्त्य-दाढर्यच्युत-सोमवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं।

लाद्याः स्फालायनाः इत्यादयः पञ्चाशदधिका इध्मवाहास्तेषामागस्त्यदाढर्च्युतेध्मवाहेति त्रयः। आगस्त्येत्येको वा १। साम्भवाहानामागस्त्यदाढर्च्युतसाम्भवाहेति त्रयः २। सोमवाहानां सोमवाहोन्त्यः आद्यौ पूर्वोक्तावेव ३।

ये दस हैं—इध्मवाह, सांभवाह, यज्ञवाह, दर्भवाह, सारवाह, अगस्ति, पूर्णमास, हिमोदक और पाणिक। इध्मवाह, विशालाद्य और स्फालायन इत्यादि पचास से अधिक इध्मवाह हैं उनके आगस्त्य, दाढर्च्युत और इध्मवाह ये तीन प्रवर हैं। अथवा आगस्त्य एक प्रवर है। साम्भवाहों के अगस्त्य दाढर्च्युत और साम्भवाह ये तीन प्रवर हैं। सोमवाहों के अन्तिम सोमवाह हैं और पूर्वोक्त आदि के दो हैं।

एवं यज्ञवाहानां यज्ञवाहोऽन्त्यः ४। दर्भवाहानां दर्भवाहोऽन्त्यः ५। सारवाहानां सारवाहोऽन्त्यः ६। अगस्तीनामागस्त्यमाहेन्द्रमायोभुवेति ७। पूर्णमासानामागस्त्यपौर्णमासपारणेति त्रयः ८। हिमोदकानामागस्त्यहैमवर्चिहैमोदकेति त्रयः ९। पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति त्रयः १०। अगस्तीनां सर्वेषामविवाहः सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च। इत्यगस्तयः।

इसी प्रकार यज्ञवाहों के यज्ञवाह ही अन्त्य हैं। दर्भवाहों के दर्भवाह ही अन्त्य हैं। सारवाहों के सारवाह अन्त्य हैं। अगस्ति के आगस्त्य, माहेन्द्र और मायोभुव ये तीन प्रवर हैं। पूर्णमासों के आगस्त्य, पौर्णमास और पारण ये तीन प्रवर हैं। हिमोदकों के आगस्त्य, हैमवर्चि और हैमोदक ये तीन प्रवर है। पाणिकों के आगस्त्य, पैनायक और पाणिक ये तीन प्रवर हैं। समान गोत्र और समान प्रवर होने से सब अगस्ति गोत्र वालों का परस्पर विवाह नहीं होता। अगस्त्यगोत्र समाप्त।

अथ द्विगोत्राः

तत्र भारद्वाजाच्छुङ्गाद् वैश्वामित्रस्य शैशिरेः क्षेत्रे जातः 'शौङ्गशैशिरि-

---

४ यज्ञवाहाः—इनके आगस्त्य-दाढर्च्युत-यज्ञवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं।
५ दर्भवाहाः—इनके आगस्त्य-दाढर्च्युत-दर्भवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं।
६ सारवाहाः—इनके आगस्त्य-दाढर्च्युत-सारवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं।
७ अगस्तयः—इनके आगस्त्य-माहेन्द्र-मायोभव नाम के ये तीन प्रवर हैं।
८ पूर्णमासाः—इनके आगस्त्य पौर्णमास-पारण नाम के ये तीन प्रवर हैं।
९ हिमोदकाः—इनके आगस्त्य-हैमवर्चि-हैमोदक नाम के ये तीन प्रवर हैं।
१० पाणिकाः—इनके आगस्त्य-पैनायक-पाणिक नाम के ये तीन प्रवर हैं।

१. दो गोत्र वाले तीन हैं। इनके नाम और प्रवर संख्या अधोनिर्दिष्ट हैं। विवाह-विषयक विचार मूल में देखें।

शौंगशैशिरयः—इनके आंगिरस-बार्हस्पत्य-भारद्वाज-शौंग-शैशिर नाम के ये पांच या आंगिरस-बार्हस्पत्य-भारद्वाज-कात्य-आत्कील नाम के पांच या आंगिरस-कात्य-आत्कील नाम के ये तीन या भारद्वाज-कात्य-आत्कील नाम के ये तीन प्रवर हैं।

संकृतयः—इनके आंगिरस-गौरिवीति-सांकृत्य नाम के ये तीन या शाक्त्य-गौरिवीति-सांकृत्य नाम के ये तीन या शाक्त्य-गौरिवीति-सांकृत्य नाम के ये तीन प्रवर हैं। अन्त्य में दोनों का व्यत्यय है।

लौगाक्षयः—इनके काश्यप-अवत्सार-वासिष्ठ नाम के ये तीन या काश्यप-अवत्सार-असित नामक ये तीन प्रवर हैं।

न चैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥

अत्रापवादः—सोदरयोः सोदरकन्यके वत्सरादिकालव्यवधाने महानद्यादिव्यवधाने वा देये। पूर्वकन्याया दत्तायाः मृतौ तस्यैव वरस्य द्वितीया कन्या देया। प्रत्युद्वाहो दारिद्र्यादिसंकटे कार्यः ।

अपनी कन्या जिसके पुत्र को दी उसकी कन्या का अपने पुत्र से विवाह करने को प्रत्युद्वाह कहते हैं। ऐसे विवाह का निषेध है वा एक वर को दो लड़की नहीं दे और न एक से उत्पन्न दो लड़कों से एक से पैदा दो लड़कियों का विवाह करे। इसका अपवाद यह है—एक पेट के दो लड़कों से एक पेट की दो लड़कियों का एक वर्ष आदि के व्यवधान में या महानदी आदि के व्यवधान में विवाह करे। पहले जो कन्या दी गई हो उसके मरने पर उसी वर को दूसरी कन्या देना। प्रत्युद्वाह दरिद्रता आदि संकट में करे।

सोदराणां तुल्यसंस्कारो वर्षमध्ये निषिद्धः। गृहनिर्माणविवाहो वर्षान्तर्न कार्यौ। गृहप्रवेशस्य निषेधाभावाद्गृहप्रवेशोत्तरं विवाहः कार्यः। सोदरयोः पुत्रयोः कन्यापुत्रयोर्वा कन्ययोर्वा विवाहो षण्मासाभ्यन्तरे [1]विशेषतो निषिद्धौ पुरुषत्रयात्मककुले विवाहान्मौञ्जीबन्धः षण्मासे निषिद्धः।

सहोदर भाइओं का समान संस्कार साल भीतर निषिद्ध है। मकान का बनाना और विवाह वर्ष के मध्य में न करे। गृहप्रवेश के निषेध न होने से गृहप्रवेश के बाद विवाह करना चाहिये। सहोदर दो पुत्रों का या कन्या और पुत्र का अथवा दो लड़कियों का विवाह छ महीने के भीतर विशेषतः निषेध है। कुल में तीन पुस्त के भीतर विवाह से उपनयन छ महीने में निषिद्ध है।

षण्मासे शुभकार्यत्रयं न कार्यम्। अत्र शुभकार्यपदेन मौञ्जीविवाहावेव। तेन गर्भाधाननामकर्मादिसंस्काराणां न त्रित्वनिषेधः। न वा गर्भाधानादिना चतुष्ट्वादिसंपादनम्। नाग्निकार्य्यत्रयं भवेदित्यनेनैकवाक्यतालाघवादितिभाति। भिन्नोदराणामग्निकार्यत्रयं न दोषायेति कश्चित्।

छ महीने के भीतर तीन शुभ कार्य न करे। यहाँ शुभ कार्य पद से उपनयन और विवाह ही ग्राह्य है। इससे गर्भाधान, नामकरण आदि संस्कार के तीन होने का निषेध नहीं है। और न

---

१. वृद्धमनुः—'एकमातृजयोरेकवासरे पुरुषस्त्रियोः। न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥' वराहः—'विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि। असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ॥' वसिष्ठ का अपवादवचन—ऋतुत्रयस्य मध्ये चेदन्याब्दस्य प्रवेशनम्। तदा ह्येकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्यते ॥' मदनरत्न में वशिष्ठ—एकोदरप्रसूतानां नाग्निकार्यत्रयं भवेत्। भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोऽब्रवीत् ॥' स्मृतिसारावल्याम्—भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा। एकस्मिन् मण्डपे चैव न कुर्यान्मण्डनद्वयम् ॥' गार्ग्यः—भ्रातृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे स्वसृयुगे तथा। न कुर्यान्मङ्गलं किञ्चिदेकस्मिन् मण्डपेऽहनि ॥'

कात्यायनः—'कुले ऋतुत्रयादर्वाङ् मण्डनान्न तु मुण्डनम्। प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मंगलत्रयम् ॥ कुर्वन्ति मुनयः केचिदन्यस्मिन् वत्सरे लघु। लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु यत् ॥ पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः। मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मंगलम् ॥ चौलमुण्डनमेवोक्तं वर्जयेन्मण्डनात्परम्। मौञ्जी चोभयतः कार्या यतो मौञ्जी न मुण्डनम् ॥ अभिन्नवत्सरेऽपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयेत्। अभेदे तु विनाशः स्यान्न कुर्यादेकमण्डपे ॥' इति।

गर्भाधान आदि से चार शुभ सम्पादन करे। तीन अग्निकार्य नहीं होते अर्थात् तीन उपनयन और तीन विवाह न करे। भिन्न उदर से उत्पन्नों का तीन अग्निकार्य में दोष नहीं होता ऐसा कोई कहते हैं।

केचिन्न कुर्यान्मङ्गलत्रयमित्यस्य भिन्नार्थत्वं [1]स्वीकृत्य यत्किंचिच्छुभकार्याणामपि त्रित्वं न शुभमित्याहुः। पुरुषोद्वाहात् स्त्र्युद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरे निषिद्धः ज्येष्ठमङ्गलाल्लघुमंगलं न कार्यम्। बहिर्मण्डपे विहितं ज्येष्ठमंगलम्। तद्भिन्नं लघु गर्भाधानादिकस्य प्राप्तकालस्य न निषेधः।

कोई 'तीन मङ्गल कार्य न करे' इसका दूसरा अर्थ स्वीकार कर कोई भी शुभ कार्यों का तीन होना शुभ नहीं होता' ऐसा कहते हैं। लड़के के विवाह से छ महीने के भीतर लड़की का विवाह निषिद्ध है। बड़े मंगल के बाद छोटा मंगल न करे। मण्डप के बाहर विहित ज्येष्ठ मंगल है उससे भिन्न लघु मंगल है। प्रातःकाल गर्भाधान आदि का निषेध नहीं है।

एवं शान्त्यादेरपि नैमित्तिकस्य प्राप्तकालस्य न निषेधः। अतिपन्नस्य त्वयं निषेधः। एवं व्रतोद्यापनादीनां वास्तुप्रवेशादीनां च लघुत्वादेव विवाहाद्युत्तरं निषेधः। इदं निषेधचतुष्टयं त्रिपुरुषात्मककुले षण्मासाभ्यन्तर एव। एवं मुण्डनद्वयनिषेधं व्रतबन्धाच्चौलनिषेधं च केचिदाहुः।

इसी प्रकार प्रातःकाल नैमित्तिक शान्ति आदि का भी निषेध नहीं है। बीते हुए का तो निषेध है। इसी तरह व्रत और उद्यापन आदि का और वास्तुप्रवेश आदि का लघुमंगल होने से ही विवाह आदि बाद निषेध है। यह चार निषेध तीन पुरुत के कुल में छ महीने के भीतर ही है एवं मुण्डनद्वय का निषेध और उपनयन से चूड़ाकरण का निषेध कोई कहते हैं।

अथ विवाहादौ निषेधापवादः

अथैषामपवादाः—सोदराणामपि समानसंस्कारौ विवाहौ च संकटे [2]अब्द-

१. कश्यपः—'मौञ्जीबन्धस्तथोद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरेऽपि वा। पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत, विभक्तानां न दोषकृत् ॥' वसिष्ठः—'न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेऽपि विवाहकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात्। न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः ॥ वराहमिहिरः—'उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात् पुत्र्यन्तरस्योद्वहनं कदाचित्। यावच्चतुर्थं दिनमत्र पूर्वं समाप्य चान्योद्वहनं विदध्यात् ॥' ज्योतिर्विदाभरणे—'ऊर्ध्वं विवाहाच्छुभदो नरस्य नारीविवाहो न ऋतुत्रयं स्यात्। नारीविवाहात्तदहेऽपि शस्तं नरस्य पाणिग्रहमाहुरार्याः ॥' इति।

२. सारावल्याम्—'फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने। भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलङ्घनम् ॥' वसिष्ठः—'द्विशोभनं त्वेकगृहेऽपि नेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु। आवश्यकं शोभनमुत्सवो वा द्वारेऽथवाचार्यविभेदतो वा ॥

भट्टकारिका में यमलद्वय का समान संस्कार एक काल और एक मण्डप में करने का वचन—'एकस्मिन् वत्सरे चैकवासरे मण्डपे तथा। कर्तव्यं मंगलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः ॥' पराशरः—'एकस्मिन् वत्सरे प्राप्ते कुर्याद्यमलजातयोः। क्षौरं चैव विवाहं च मौञ्जीबन्धनमेव च ॥'

यमलों का संस्कार मनु ने ज्येष्ठ-क्रम से प्रतिपादित किया है—'जन्मज्येष्ठे न चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्। यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता ॥' देवल ने भी कहा है—'यस्य जातस्य यमयोः पश्यति प्रथमं मुखम्। सन्तानः प्रथमश्चैव तस्मिञ्ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम् ॥' इति।

इसी प्रकार मेधातिथि ने मातृभेदमें समान संस्कार एक काल और एक मण्डपमें विहित कहा है—'पृथङ्मातृजयोः कार्यो विवाहस्त्वेकवासरे। एकस्मिन् मण्डपे कार्यः पृथग्वेदिकयोस्तथा ॥' इति।

भेदात्कार्यौ चतुर्दिनव्यवधानादेकदिनव्यवधानाद्वा कार्यौ। अतिसंकटे एकदिने कर्तृभेदेन मण्डपभेदेन वा कार्यौ। द्वाभ्यां कर्तृभ्यां एकस्मिन्नपि लग्ने एकस्मिन्नपि गृहे भिन्नोदरयोर्विवाहः कार्यः। एवं पूर्वोक्तनिषेधचतुष्टयेऽपि वर्षभेदे दोषाभावः।

सहोदरों का भी समान संस्कार और विवाह भी संकट में वर्षभेद से करना चाहिये। अथवा चार दिन या एक दिन के व्यवधान से करना चाहिये। अत्यन्त संकट में एक दिन में कर्ता के भेद से या मण्डपभेद से करना चाहिये। दो कर्ताओं के द्वारा एक लग्न में भी और एक घर में भी भिन्नोदर दो का विवाह करना चाहिये। इसी प्रकार पहले कहे हुए चार निषेधों में भी वर्षभेद से दोष नहीं होता।

यमलयोरेककाले एकमण्डपे वा समानसंस्काराणां न दोषः। एवं मातृभेदेऽपि षण्मासाभ्यन्तरे समानसंस्कारे दोषो न। मातृभेदे एकजातकन्ययोरेकदिने एक-मण्डपेऽपि वेदीभेदेन विवाहो न दोषायेति केचित्।

जोड़ुआं (यमल) बच्चों का एक समय में और एक मण्डप में भी समान संस्कार में दोष नहीं है। इसी प्रकार मातृभेद में भी छ महीने के भीतर समान संस्कार करने में दोष नहीं है। कोई कहते हैं कि मातृभेद से एक के द्वारा उत्पन्न दो लड़कियों का एक दिन में एक मण्डप में भी वेदीभेद से विवाह करने में दोष नहीं है।

अथ मण्डनमुण्डननिर्णयः

पुरुषत्रयात्मककुले मंगलकार्योत्तरं षण्मासाभ्यन्तरे मुण्डनयुक्तं कर्म न कार्यम्। अत्र सर्वत्र पुरुषत्रयगणनाप्रकारः प्रतिकूलविचारे स्पष्टीकरिष्यते।

तीन पुश्त के कुल में मंगलकृत्य के बाद छ महीने के भीतर मुण्डन वाला कर्म नहीं करना चाहिये। यहाँ सब जगह तीन पुश्त के गिनने का प्रकार प्रतिकूल के विचार के समय स्पष्ट करेंगे।

अथ मुण्डनोदाहरणम्

मुण्डनकर्म तु चौलं नागसंस्कारादिकमाधानादिकमभ्युदयार्थमैच्छिकसर्व-प्रायश्चित्तादिकं क्षौरप्रापकतीर्थयात्रादिकं चोह्यम्। व्रतबन्धस्तु कात्यायनमते मङ्गलरूपत्वाद्विवाहाद्युत्तरं कार्यः। अन्येषां मते मुण्डनरूपत्वान्न कार्यः। पित्रो-रन्त्यक्रियादिप्राप्तमुण्डनमाकस्मिकप्राप्तप्रायश्चित्तमुण्डनमासन्नमरणेन सर्वप्राय-श्चित्तीयमुण्डनं च कर्तव्यमेव। नित्यत्वाद्दर्शपूर्णमासचातुर्मास्यादिमुण्डनेपि न दोषः।

मुण्डन कर्म तो चूडाकरण, नाम संस्कार आदि, आधान आदि, अभ्युदय के लिये सब काम्य प्रायश्चित्त आदि और जिनमें मुण्डन प्राप्त हैं ऐसे तीर्थयात्रा आदि की कल्पना करनी चाहिये। उपनयन तो कात्यायन के मत से मंगल रूप होने से विवाह आदि के बाद करना चाहिये। दूसरों के मत से मुण्डन रूप होने से नहीं करना चाहिये। पिता-माता की अन्त्येष्टि क्रिया आदि से प्राप्त मुण्डन, अकस्मात्प्राप्त प्रायश्चित्त का मुण्डन और मरने के समय सर्वप्रायश्चित्तीय मुण्डन भी करणीय ही है। दर्श और पूर्णमास तथा चातुर्मास्य आदि के मुण्डन भी नित्य होने से कोई दोष नहीं है।

न च मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मङ्गलमिति वचसा मण्डन-मुण्डनयोः परिगणनादाधानादीनां न दोष इति वाच्यम्। वाक्यस्योदाहरणार्थ-

त्वात्। अन्यथा व्रतोद्वाहान्न चौलकमित्येव वक्तव्ये मण्डनान्न तु मुण्डनमिति सामान्येन वचनरचनानर्थक्यापातात्। तस्माद् गर्भाधानादिलघुमङ्गलादुद्वाहादिज्येष्ठमङ्गलाच्चाधानादिमुण्डनमपि वर्ज्यमिति भाति।

यह कहो कि मुण्डन चूड़ा को कहते हैं। उपनयन और विवाह तो मंगल है, इस आशय के वचन से, मण्डन और मुण्डन में गणना होने से आधान आदि में दोष नहीं है तो ऐसा नहीं कहना चाहिये क्योंकि वाक्य उदाहरण के लिये है, नहीं तो उपनयन और विवाह के बाद चौल कर्म न करे, इतने ही से कार्य हो जाता पुनः मण्डन के बाद मुण्डन नहीं करना यह सामान्य वचन की रचना व्यर्थ हो जायगी। अतः गर्भाधान आदि छोटे मंगल से और विवाह आदि बड़े मंगल से भी आधान आदि का मुण्डन भी वर्जनीय है ऐसा प्रतीत होता है।

एवं सति कुले बहुकर्मोपरोधः स्यादिति चेत्। विवाहव्रतचूडोत्तरमङ्गलेषु पिण्डदानादौ मासाद्यल्पकालप्रतिबन्धवत्पित्राद्यन्यमरणेऽल्पकालप्रतिकूलनिर्णयवच्च लघुमङ्गलोत्तरं मासाद्यल्पकालमुण्डननिषेधकल्पनं युक्तिबलादाश्रयणीयमिति भाति। अत्र विषये प्राचीननिबन्धेषु विशेषो न दृश्यते। तथापि धार्ष्ट्येन मयोक्तो विशेषो युक्तश्चेद् ग्राह्यः। इति मण्डनमुण्डननिर्णयः।

ऐसा होने से कुल में बहुत से कर्मों की रुकावट हो जायगी, यदि ऐसा है तो विवाह उपनयन और चौल के बाद वाले मङ्गलों में और पिण्डदान आदि में मासादि थोड़े काल के प्रतिबन्ध के समान पिता आदि से भिन्न के मरने में अल्पकाल के प्रतिकूल निर्णय के समान भी छोटे मङ्गल के बाद मासादि अल्पकालिक मुण्डन के निषेध की कल्पना युक्तिबल से आश्रयणीय है ऐसा ठीक प्रतीत होता है। इस विषय में प्राचीन निबन्धों में विशेष कुछ नहीं दिखाई देता फिर भी ढिठाई से मेरा कहा विशेष यदि ठीक है तो ग्रहण योग्य है। मण्डन और मुण्डन का निर्णय समाप्त।

अथ प्रतिकूलविचारः

विवाहनिश्चयोत्तरं वरस्य कन्याया वा[१]सगोत्रत्रिपुरुषात्मककुले कस्यचिन्मरणे प्रतिकूलदोषः। विवाहनिश्चयश्च वैदिको लौकिको वा ग्राह्यः। तत्र वैदिको वाग्दानाख्यविधिना कृतो मुख्यः। लौकिको लग्नतिथिनिश्चयादिर्वरवध्वोः शुल्कभाषाबन्धपूगीफलदानादिश्च। सगोत्रत्रिपुरुषेत्युक्त्या मातामहकुलादिव्यावृत्तिः।

विवाह के ठीक हो जाने पर वर या कन्या के सगोत्र तीन पुस्तवाले कुल में मृत्यु होने पर प्रतिकूल का दोष होता है। विवाह का निश्चय वैदिक अथवा लौकिक ग्राह्य है। उसमें वैदिक, वाग्दान नामक विधि से किया हुआ मुख्य है और लौकिक लग्न और तिथि का निश्चय तथा वर-वधू का शुल्क (दहेज) का निश्चय या लग्नपत्रिका का लेख तथा नारियल सुपारी फल का देना आदि कहलाता है। सगोत्र त्रिपुरुषों के कहने से मातामह (नाना) आदि के कुल की निवृत्ति होती है।

---

१. मेधातिथिः—'पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं स्वगोत्रिणाम्। प्रवेशान्निर्गमस्तद्वत्तथा मण्डनमुण्डने॥ प्रेतकर्मण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयिक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्॥' विवाह-निश्चय के अनन्तर किसी की मृत्यु होने पर गर्ग—'कृते तु निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति कस्यचित्। तदा न मङ्गलं कुर्यात् कृते वैधव्यमाप्नुयात्॥' स्मृतिचन्द्रिका—'कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति गोत्रिणः। तदा न मङ्गलं कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम्॥' भृगुः—'वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः। तदोद्वाहो नैव कार्यः स्ववंशक्षयदोषतः॥'

तथा च वरस्तत्पूर्वपत्नी वरमातापितरौ वरपितामहपितामह्यावनूढा पितृष्वसा चेति पूर्वत्रिपुरुषी । वरस्तस्य भ्राता पत्नीपुत्रानूढकन्यासहितो वरस्यानूढाभगिनी वरस्य स्नुषापुत्रौ अनूढा कन्या च पौत्रस्तद्भार्या चानूढा पौत्री चेति परत्रिपुरुषी । पितृव्यतत्पत्न्यौ पितृव्यपुत्रतत्पत्न्यावनूढा पितृव्यकन्या चेति संतानभेदे त्रिपुरुषी चेति सगोत्रत्रिपुरुषी पुरुषपरिगणना । एतेषामन्यतममरणे प्रतिकूलमिति पर्यवसितोऽर्थः । अत्र भ्राता पुत्रपौत्रादिश्चानुपनीतोऽपि त्रिवर्षाधिकवया ग्राह्यः । एवमनूढभगिन्यादेरपि त्रिवर्षाधिकत्वं युक्तं भाति । एवं वधूकुलेऽप्यूह्यम् ।

सगोत्र त्रिपुरुष की गणना का प्रकार यह है– वर और उसकी पहली स्त्री, वर की माता तथा पिता, वर की पितामही (दादी) और पितामह (दादा) तथा बिना व्याही फूआ (बुआ) ये पहिली तीन पीढ़ी है, । वर उसका भाई, स्त्री, पुत्र, अविवाहिता कन्या के सहित वर की बिना व्याही बहिन और वर की पतोहू तथा पुत्र, अविवाहिता कन्या भी और पौत्र, पौत्र की स्त्री, और विवाहरहिता पौत्री भी ये परत्रिपुरुषी हैं । चाचा और चाचा की स्त्री तथा चाचा का पुत्र और पुत्र की स्त्री अविवाहिता चाचा की लड़की ये सन्तानभेद में त्रिपुरुषी भी यह सगोत्र त्रिपुरुषी पुरुष गणना का प्रकार है । इनमें से किसी के मरने में प्रतिकूल होता है यह निष्कर्ष हुआ । इसमें भाई, पुत्र और पौत्र आदि उपनयनरहित भी तीन वर्ष से अधिक अवस्था का लेना चाहिये । इसी प्रकार अविवाहिता बहिन आदि का भी तीन वर्ष से अधिक वय का ग्राह्यत्व युक्त प्रतीत होता है । इसी तरह वधूकुल में भी कल्पना करनी चाहिये ।

एवमेव मण्डनमुण्डनादावपि त्रिपुरुषगणनोह्या । अत्र विशेषः पिता माता पितामहः पितामही पितृव्यः पूर्वपत्नी पूर्वस्त्रियाः पुत्रो भ्रातानूढा भगिनी चैतेषां मरणे विशेषतः [1]प्रतिकूलदोषान्नैव कर्तव्यो विवाहः । एतदन्यत्रिपुरुषसपिण्डमरणे शान्त्यादिना दोषं परिहृत्य विवाहः कार्यः ।

इसी तरह ही मण्डन-मुण्डन आदि में भी त्रिपुरुषी-गणना की कल्पना करनी चाहिये । इसमें विशेष है– पिता, माता, पितामह, पितामही, पितृव्य (चाचा), पहली स्त्री, पहिली स्त्री का पुत्र, भाई, और अविवाहिता बहिनके मरने में विशेष प्रतिकूल दोष होने से विवाह नहीं करना चाहिये । इससे भिन्न त्रिपुरुष सपिण्ड के मरने में शान्ति आदि से दोष हटाकर विवाह करना चाहिये ।

संकटे तु पित्रादिमरणेऽपि कालप्रतीक्षाशान्तिभ्यां दोषं निर्हृत्य विवाहः कार्यः । तत्र व्यवस्था निश्चयोत्तरं मातापित्रोर्द्वयोरपि मरणे कालप्रतीक्षाशान्ति-

---

१. शौनकः—'वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः । एतेषां प्रतिकूलं च महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥ पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही । पितृव्यः स्त्रीसुतौ भ्राता भगिनी चाविवाहिता ॥ एभिरत्र विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम् । अन्यैरपि विपन्नैस्तु केचिदूचुर्न तद्भवेत् ॥' ज्योतिःप्रकाशे—'प्रतिकूलेपि कर्तव्यो विवाहो मासतः परम् । शान्तिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेत् पुनः ॥' मेधातिथिः—'सङ्कटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना । शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत् ॥' इति ।

भ्यामपि दोषशान्त्यभावान्न कार्यो विवाहः। मातापित्रोरेकैकमरणे तु शान्त्यादिना विवाहः। तत्र—

पितुरब्दमिहाशौचं तदर्धं मातुरेव च।
मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः॥
अन्येषां तु सपिण्डानामाशौचं माससंमितम्।
तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते॥
प्रतिकूले न कर्तव्यं लग्नं यावदृतुत्रयम्।
प्रतिकूले सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत्॥

इत्यादिवाक्याश्रयेण व्यवस्थोच्यते।

संकट में तो पिता आदि के मरने में भी समय की प्रतीक्षा और शान्ति से दोषपरिहरण करके विवाह करना चाहिये। इसमें व्यवस्था यह है—विवाह-निश्चय के बाद, माता और पिता के या दोनों के भी मरने में काल की प्रतीक्षा और शान्ति से भी दोषशान्ति न होने से विवाह नहीं करे। माता और पिता इनमें किसी एक के मरने में तो शान्ति आदि से विवाह होता है। इसमें पिता का आशौच एक वर्ष, माता का छ महीने, स्त्री का तीन मास, डेढ़ महीना भाई और पुत्र का, इनसे भिन्न सपिण्डों का तो एक महीने का आशौच कहा है। इसके अन्त में शान्ति करके तब लग्न का विधान करे। प्रतिकूल में छ महीने तक लग्न न करे। प्रतिकूल में सपिण्डों को एक महीने समय त्याग कर विवाह करे इत्यादि वाक्य के आश्रय से व्यवस्था कहते हैं—

अत्राशौचपदेन प्रतिकूलकृतं विवाहानधिकारमात्रं कालप्रतीक्षार्थमुच्यते। अतः पितृमरणे [1]वर्षोत्तरं विनायकशान्तिं कृत्वा संकटे विवाहः कार्यः। अतिसंकटे षण्मासोत्तरं विनायकशान्तिं श्रीपूजनादिशान्तिं च कृत्वा विवाहः। ततोऽप्यतिसंकटे मासोत्तरं शान्तिद्वयान्ते विवाह इति संकटतारतम्येन पक्षत्रयम्। मातुर्मरणे षण्मासान्ते विनायकशान्त्या विवाहः। अतिसंकटे मासान्ते शान्तिद्वयं कृत्वोद्वाहः। यत्तु—

यहां आशौच पद से प्रतिकूलकृत विवाह का अधिकाराभावमात्र [1]कालप्रतीक्षा के लिये कहते हैं इसलिये पिता के मरने में वर्ष के बाद विनायक-शान्ति करके संकट में विवाह करना चाहिये। अत्यन्त संकट में छ महीने के बाद विनायक-शान्ति और लक्ष्मीपूजन आदि शान्ति भी करके विवाह करे। इससे भी अधिक संकट में महीने भर बाद दोनों शान्ति के अन्त में विवाह करे। इस प्रकार संकट के तारतम्य से तीन पक्ष हैं। माता के मरने में छ महीने के बाद विनायक-शान्ति से विवाह करे। अति संकट में महीने भर के बाद दोनों शान्ति करके विवाह किया जाय। जो तो—

१. माता और पिता का मरणाशौच वर्षपर्यन्त रहता है—'पित्रोरब्दमशौचं स्यात् षण्मासं मातुरेव च। त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः॥' यहाँ 'मातुः षण्मासं' से सौतेली माता के छ मास का आशौच जानना चाहिये। वर्ष के पूर्व अपकर्ष करके सपिण्डन कर लेने पर भी वर्षान्त में ही पितृत्व की प्राप्ति होती है, जैसा कि विष्णुधर्म की उक्ति है—'कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम्। प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते॥' अग्निपुराणे—'अर्वाक् संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत्। प्रेतत्वमिह तस्यापि विज्ञेयं वत्सरं नृप॥' इसलिये वृद्धि, दैव और पितृकर्म में अधिकार नहीं होता।

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याऽशुचिर्भवेत् ।
न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥

इति पित्रोर्मृतौ वर्षपर्यन्तं सर्वशुभकर्मनिषेधवचनं तत्प्राङ्निश्चयात्पित्रोर्मृतौ संकटाभावे वा ज्ञेयम्। भार्यामरणे मासत्रयान्ते मासान्ते वा श्रीपूजनादिशान्तिः। भ्रातृमरणे सार्धमासान्ते मासान्ते वा विनायकशान्तिः। पुत्रमृतौ सार्धमासं मासं वा प्रतीक्ष्य श्रीपूजनादिशान्तिः। पितृव्यमरणे मासान्ते विनायकशान्तिः। पितामह्या अनूढभगिन्याश्च मरणे मासान्ते श्रीपूजनादिशान्तिः। एतदन्यत्रिपुरुषसपिण्डमरणे मासान्ते श्रीपूजनादिशान्तिः। ततो विवाहः। गुणवत्तरमातुर्मृतौ षण्मासेन मनःखेदानपगमे वर्षप्रतीक्षा। एवं गुणवत्तरभार्यायाः षण्मासपर्यन्तं प्रतीक्षा।

'जिसके माता-पिता मर गये हों उसका शरीर अपवित्र हो जाता है जब तक वर्ष पूरा बीत न जाय' इस आशय के वचन से उसे दैव वा पित्र्य कर्म नहीं करना चाहिये इससे वर्ष पर्यन्त सभी शुभ कर्मों का निषेध कहा है, उसे पहिले निश्चय हो जाने से या माता-पिता के मरने से संकट के न होने पर जानना चाहिये। स्त्री के मरने पर तीन मास के बाद अथवा महीने भर के पश्चात् श्रीपूजन आदि शान्ति से विवाह करे। भाई के मरने में डेढ़ महीने के अनन्तर या महीने के बाद विनायक-शान्ति से विवाह कर्तव्य है। पुत्र के मरने पर डेढ़ महीना या महीना भर प्रतीक्षा करके श्रीपूजन आदि शान्ति करे। चाचा के मरने पर मास के अन्त में विनायक शान्ति करे। पितामही (दादी) और अविवाहिता भगिनी के भी मरने में मास के अन्त में श्रीपूजन आदि शान्ति करे। इससे भिन्न तीन पीढ़ी सपिण्ड के मरने पर मास के अन्त में श्रीपूजन आदि शान्ति इसके अनन्तर विवाह करे। अतिशय गुणवती माता के मरने में छ महीने से मन का दुःख न हटने पर वर्ष तक प्रतीक्षा करे। इसी प्रकार अति गुणवती स्त्री की मृत्यु में छ महीना पर्यन्त प्रतीक्षा करे।

अथ प्रतिकूलापवादः

ज्योतिःप्रकाशे तु—अतिसंकटवशेन मात्रादिमरणे मासाधिकप्रतीक्षाया असंभवे मासमध्येपि दशाहोत्तरं कंचित्कालं प्रतीक्ष्योक्तव्यवस्थया विनायकशान्ति श्रीपूजनादिशान्ति च कृत्वा गां दत्त्वा पुनर्वाग्दानादि चरेदित्युक्तम्। सर्वोऽप्ययमपवादः संकटेषु तारतम्येन बुधैर्योज्यः। अल्पसंकटविषये महासंकटविषयकविधिकथने वक्तुः कर्तुश्च दोष एव। दुर्भिक्षराष्ट्रभङ्गादिभये पित्रोर्मरणाशङ्कायां च न प्रतिकूलम्। दीर्घरोगिदूरदेशस्थविरक्तानां कन्यायाः प्रौढत्वे[१] च प्रतिकूलदोषो नेत्यपवादः।

ज्योतिःप्रकाश में तो अतिसंकटावस्था में माता आदि के मरने में मास आदि की प्रतीक्षा सम्भव न हो तो महीने के भीतर भी दस दिन के बाद कुछ समय प्रतीक्षा करके कथित व्यवस्था से विनायक-शान्ति और श्रीपूजन आदि शान्ति भी करके गाय देकर पुनः वाग्दान आदि करे। सभी

१. ज्योतिःसागरे—'दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये। प्रौढायामपि कन्यायां नानुकूल्यं प्रतीक्ष्यते ॥' इति।

यह अपवाद संकट में तारतम्य बैठाकर पण्डितों को ठीक करना चाहिये। थोड़े संकट में महासंकट की विधि कहने पर वक्ता और कर्ता दोनों को दोष ही है। दुर्भिक्ष और राज्यविप्लव आदि की भीति में पिता-माता के मरने की आशङ्का में भी प्रतिकूल नहीं होता। दीर्घरोग वाले, दूर देश में रहनेवाले तथा विरक्तों को एवं कन्या की प्रौढावस्था में भी प्रतिकूल का दोष नहीं होता। यह अपवाद है।

अथ श्रीपूजनादिशान्तिः

श्रीपूजनादिशान्तिश्च श्रिये जात इति श्रियं इदंविष्णुरिति विष्णुं गौरीर्मिमायेति गौरीत्र्यम्बकमिति रुद्रं परंमृत्यो इति यमं च संपूज्याऽष्टोत्तरशतं तिलाज्यं जुहुयात्। ॐभूः स्वाहा मृत्युर्नश्यतां स्नुषायै सुखं वर्धतां स्वाहेति। ततो होमं समाप्याथ गोद्वयं दक्षिणा भवेदिति कौस्तुभे द्रष्टव्या। इति प्रतिकूलविचारः।

श्रीपूजन आदि शान्ति भी "श्रिये जात" इससे श्री को, "इदं विष्णुः" इससे विष्णु को, "गौरीर्मिमाय" इससे गौरी को, "त्र्यम्बकं" इस मन्त्र से त्र्यम्बक रुद्र को, "परंमृत्यो" इससे यमराज को पूजकर एक सौ आठ तिल-घृत से होम करे। "ओं भूः स्वाहा मृत्युर्नश्यताम् स्नुषायै सुखं वर्धताम् स्वाहा" इसके बाद होम समाप्तकर दो गौ की दक्षिणा होती है ऐसा कौस्तुभ में देखना चाहिये। प्रतिकूल का विचार समाप्त।

अथान्त्यकर्माभावप्रतिबन्धनिर्णयः

प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्।
आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्॥

अत्र प्रेतकर्मपदेन सपिण्डीकरणात्पूर्वभाविकर्माणि सपिण्डीकरणं च सपिण्डीकरणोत्तरं पार्वणविधिनोक्तानि मासिकानि चोच्यन्ते।

सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि।
पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात्॥

'इत्यनुमासिकानामप्यपकर्षोक्तेः[1]। अभ्युदयपदेन नान्दीश्राद्धयुक्तं कर्ममात्रं ग्राह्यम्।

चौथी पीढ़ी तक प्रेतकर्म सम्पन्न न होने पर किसी प्रकार का आभ्युदयिक कृत्य न करे। इसके बाद पांचवीं पीढ़ी में शुभ कर्म करने का अधिकार है। यहां प्रेतकर्म पद से सपिण्डीकरण से पहिले होने वाले कर्म और सपिण्डीकरण भी तथा सपिण्डीकरण के अनन्तर पार्वण विधि से कहे गये मासिक भी कहे जाते हैं। सपिण्डीकरण से पूर्व अपकर्ष करके किये गये भी वृद्धि के बाद निषेध के कारण पुनः अपकर्ष किया जाता है। क्योंकि यह अनुमासिकों के भी अपकर्ष करने की उक्ति है। अभ्युदय पद से नान्दीश्राद्धयुक्त कर्ममात्र ग्राह्य है।

कैश्चिद्विवाहाद्येव ग्राह्यमित्युक्तम्। आचतुर्थमिति नान्दीश्राद्धकर्तारं पुरुषमारभ्य जनकचतुःपुरुषी जन्यचतुःपुरुषी सन्तानभेदे च चतुःपुरुषी सगोत्रा गृह्यते तथाच नान्दीश्राद्धकर्तुः पितृपितामहप्रपितामहाः पत्नीसहिताः। कर्तुर्भार्यापुत्र-

---

१. सपिण्डीकरण के अनन्तर प्रतिमास किये जाने वाले मासिक श्राद्ध को 'अनुमासिक' कहते हैं।

पौत्रप्रपौत्रास्तद्भार्याश्च भ्राता तत्पुत्रपौत्रास्तद्भार्याः पितृव्यतत्पुत्रपौत्रास्तद्भार्याश्च प्रपितामहस्य पुत्रपौत्रप्रपौत्रास्तद्भार्याश्चैतेषां मृतानामनुमासिकान्तप्रेतकर्माकरणे मङ्गलं न कार्यमित्यर्थः ।

कुछ लोग विवाह आदि ही ग्राह्य है ऐसा कहते हैं । आचतुर्थं इससे नान्दीश्राद्ध करनेवाले पुरुष से लेकर जनक की चौथी पीढ़ी तथा जन्य सन्तानकी चौथी पीढ़ी सन्तानभेदमें भी चार पीढ़ी सगोत्री ली जाती है । इससे नान्दीश्राद्ध करनेवालेके पिता, पितामह और प्रपितामह सपत्नीक, करनेवालेकी स्त्र पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र सपत्नीक, भाई, भाई का पुत्र और पौत्र और इनकी पत्नियां, पितृव्य (चाचा) इनके पुत्र और पौत्र पत्नीसहित, प्रपितामह के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र पत्नीसहित, इन मरे हुए के अनुमासिक पर्यन्त प्रेतकर्म के अभाव में मङ्गल नहीं करना करना चाहिये, यह अर्थ है ।

नान्दीश्राद्धकर्ताऽत्र मुख्य एव ग्राह्यो न तु मातुलादिर्गौणः । मृतपितृकस्योपनयनादौ संस्कार्यमारभ्यैव चतुःपुरुषीगणना । मातामहादेर्भिन्नगोत्रत्वेऽपि नान्दीश्राद्धदेवतात्वात् प्रेतकर्माभावे मङ्गलं न भवति । मातामह्यादेः स्वातन्त्र्येण देवतात्वाभावात् दशाहान्त्यकर्माभावेऽपि मङ्गलप्रतिबन्धो नास्ति । इत्यन्त्यकर्माभावनिमित्तकमङ्गलप्रतिबन्धनिर्णयः ।

इसमें नान्दीश्राद्ध करनेवाला मुख्य लिया ज ता है न कि मामा आदि गौण जिसका पिता मर गया है उसके यज्ञोपवीत आदि में जिसका संस्कार किया जाता है उससे ही चार पुश्त की गिनती की जाती है । नाना आदि के अन्यगोत्र होने से भी नान्दीश्राद्ध के देवता होने से प्रेतकर्म न होने से मङ्गल नहीं होता । नानी आदि के स्वतन्त्र देवता न होने से दशाह अन्त्य कर्म न होने पर भी मङ्गल कर्म करने में कोई रुकावट नहीं है । अन्त्यक-र्माभावनिमित्तक मङ्गलकार्य प्रतिबन्धा निर्णय समाप्त ।

अथ चतुर्थीकर्ममध्ये दर्शादिनिर्णयः

मौञ्जीविवाहयोर्नान्दीश्राद्धमारभ्य मण्डपोद्वासनपर्यन्तं मध्ये दर्शदिनं यथा न पतेत्तथा कार्यम् । दर्शान्यत्पित्रोः क्षयाहादिश्राद्धदिनं यदि ज्ञानादज्ञानाद्वा पतति तदा त्रिपुरुषसपिण्डैर्विवाहादिमङ्गलसमाप्त्युत्तरं श्राद्धं कार्यम् । एवं च दर्शान्यश्राद्धस्यैव स्वरूपतो विवाहमध्ये निषेधः । नतु दर्शवच्छ्राद्धरहितस्यापि श्राद्धतिथिमात्रस्य वृत्ते विवाहे परतस्तु कुर्याच्छ्राद्धमित्याद्युक्तेः ।

उपनयन और विवाह-निमित्त नान्दीश्राद्ध से लेकर मण्डप के हटाने तक के बीच में जिस प्रकार दर्शश्राद्ध दिन न पड़े वैसा करे । दर्श के अतिरिक्त माता-पिता के क्षयाह आदि श्राद्ध दिन जाने या विना जाने पड़ जाय तब तीन पीढ़ी के सपिण्डों को विवाह आदि मङ्गलकृत्य के समाप्ति के अनन्तर श्राद्ध करना चाहिये । इससे दर्श से भिन्न श्राद्ध का ही स्वरूपतः विवाह के बीच में निषेध है न कि दर्श की तरह श्राद्धरहित का भी श्राद्धतिथि मात्र का निषेध है विवाह समाप्त हो जाने के बाद श्राद्ध करे इत्यादि कथन से ।

एतेन संक्रान्तिमन्वाद्यष्टकादिदिनानां श्राद्धदिनत्वाद्दर्शवन्मध्ये पातो निषिद्ध इति शङ्का निरस्ता । तेन षण्णवतिश्राद्धकर्तृभिः सपिण्डैर्मध्यपतितमन्वादेः प्रायश्चित्तादिना संपत्तिः संपाद्या । इति चतुर्थीकर्ममध्ये दर्शादिनिर्णयः ।

इससे संक्रान्ति, मन्वादि और अष्टका आदि दिनका श्राद्धतिथि होने से दर्श की तरह विवाह के बीच में पड़ना निषिद्ध है यह शङ्का भी दूर हो गई। इससे छानने श्राद्ध करने वाले सपिण्डों को बीच में पड़े मन्वादि का प्रायश्चित्त आदि से संपत्ति का सम्पादन करे। चतुर्थी कर्म के मध्य में दर्श आदि का निर्णय समाप्त।

अथ विवाहादौ रजोदोषसूतकनिर्णयः

[1]प्रारम्भात्प्रागारम्भोत्तरं वा मातुः पितृव्यादेः कर्त्रन्तरस्य पत्न्या वा रजोदोषे यद्वक्तव्यं तद्व्रतबन्धप्रकरणे विस्तरेणोक्तं तत एव ज्ञेयम्। रजोदोष-जननाशौचादिसंभावनायां नान्दीश्राद्धस्यापकृष्यानुष्ठाने दिनावधिः।

एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः।
त्रिषट्चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते॥

दशदिनाद्यतिक्रमे पुनर्नान्दीश्राद्धमित्यर्थात्सिद्धम्। नान्दीश्राद्धोत्तरं सूतक-मृतकयोः प्राप्तौ न विवाहादिप्रतिबन्धः।

मङ्गल के आरम्भ से पहिले या बाद में माता या दूसरे मङ्गलकृत्य करने वाले चाचा आदि की पत्नी को रजोदोष होने पर जो कहना था वह ग्रन्थकार ने उपनयन प्रकरण में विस्तार पूर्वक कह दिया है, वहीं से जानना चाहिये। रजोदोष और आशौच आदि की सम्भावना में नान्दी-श्राद्ध का अपकर्ष कर करने में दिन की अवधि कहते हैं—यज्ञ में एकईस दिन, विवाह में दस, चौल में तीन और उपनयन में छ दिन में नान्दीश्राद्ध किया जाता है। दश दिन आदि के बीत जाने पर पुनः नान्दीश्राद्ध अर्थात् सिद्ध है। नान्दीश्राद्ध के बाद जनन-मरण के प्राप्त होने पर विवाह आदि में रुकावट नहीं होती।

विवाहव्रतयज्ञेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥
प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः।
नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥ इत्युक्तेः।

विवाह, व्रत, यज्ञ, श्राद्ध, होम, पूजन और जप के आरम्भ हो जाने पर सूतक नहीं होता, अनारब्ध में सूतक होता है। यज्ञ में वरण से, व्रत और सत्र में संकल्प से विवाह आदि में नान्दीमुख से, श्राद्ध में पाक से प्रारम्भ होना माना जाता है, इस आशय की उक्ति है।

इदं सन्निहितमुहूर्तान्तराभावादिसंकटे एव ज्ञेयम्। संकटाभावे तु नान्दी-श्राद्धे जातेऽपि सूतकान्ते मुहूर्तान्तरे एव मङ्गलम्। सर्वोऽप्याशौचापवादोऽनन्य-

---

१. प्रारम्भात्—नान्दी-श्राद्धात् 'नान्दीमुखं विवाहादौ' इत्यादिना तस्यैव प्रारम्भोक्तेः। माधवीये—'प्रारम्भात् प्राग्विवाहस्य माता यदि रजस्वला। निवृत्तिस्तस्य कर्तव्या सहत्वश्रुतिचोदनात्॥' मेधातिथिः—'चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि। भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम्॥ वधूवरान्यतमयोर्जननी चेद्रजस्वला। तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनुरब्रवीत्॥' वृद्धमनुः—'विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला। तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः॥' इति।

गतिकत्वे आर्तौ च ज्ञेय इति सिन्धूक्तेः। तेन व्रते संकल्पोत्तरमाशौचेऽपि विप्रद्वारैव पूजादि ।

इसे समीप में दूसरे मुहूर्त नहीं मिलने आदि संकट में ही जानना चाहिये। संकट न होने पर तो नान्दीश्राद्ध होने पर भी सूतक समाप्त होने पर दूसरे मुहूर्त में ही मङ्गल कर्म करना चाहिये। सभी आशौचों के अपवाद जिसकी कोई गति न हो और कष्ट में ही जानना चाहिये ऐसी निर्णयसिन्धु की उक्ति है। इससे व्रत में संकल्प के बाद भी आशौच होने पर भी ब्राह्मण द्वारा ही पूजा आदि किया जाता है।

यज्ञादौ मधुपर्कविधिना वरणोत्तरमपि ऋत्विगन्तरालाभादिकेऽनन्यगतौ संकटे एव च मधुपर्कविधिना वृतस्याशौचाभावः। एवं जपहोमादावप्यूहृयम्। श्राद्धे पाकपरिक्रिया पाकप्रोक्षणम् एतदप्यार्तिसत्त्वे ।

यज्ञ आदि में मधुपर्क विधि से वरण होने के बाद भी दूसरे ऋत्विक् के नहीं मिलने आदि संकट में ही अन्य गति न होने पर मधुपर्क विधि से वरण किये हुए के आशौच का अभाव होता है। इसी प्रकार की कल्पना जप-होम आदि में भी करनी चाहिये। श्राद्ध में पाकपरिक्रिया का तात्पर्य पाक के प्रोक्षण से है। यह भी कष्ट की सम्भावना में ही।

महासंकटे[1] प्रारम्भात्प्रागपि सूतकप्राप्तौ कूष्माण्डमन्त्रैर्घृतहोमं कृत्वा पयस्विनीं गां दत्त्वा पञ्चगव्यं प्राश्य शुद्धश्चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत्। उपकल्पितबहुसंभारस्य सन्निहितलग्नान्तराभावेन नाशाद्यापत्तावप्येवं शुद्धिः। इदं जननाशौचमात्रविषयमिति [1]मार्तण्डादौ ।

महासंकट में प्रारम्भ से पहिले भी सूतक पड़ने पर कूष्माण्ड मन्त्रों से घृत से होम करके दूध देने वाली गाय का दान कर और पञ्चगव्य के प्राशन से शुद्ध होकर चौल, उपनयन, विवाह और प्रतिष्ठा आदि को करे। दूसरे लग्न के समीप में न होने से इकट्ठी की हुई बहुत सी सामग्री के खराब होने की आपत्ति में भी इसी प्रकार शुद्धि करे। यह शुद्धि जननाशौचमात्र में है ऐसा मार्तण्ड आदि में है।

अथ सूतक्यन्नभोजने दोषाभावविचारः

कूष्माण्डहोमादिना शुद्धिपूर्वकं सूतकमृतकयोर्मध्ये आरब्धे विवाहादौ [1]विप्राणां पूर्वसंकल्पितान्नभोजने दोषो न। पाकपरिवेषणादिकमपि सूतकिभिः कार्यं होमादिविधिना शुद्धिसंपादनादिति कौस्तुभे स्थितम्। नैतद्युक्तं लोकविद्विष्टत्वात्। अतः परगोत्रैरेवान्नदानं [2]युक्तं भाति ।

---

१. संग्रह में प्रायश्चित्त—सङ्कटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते। कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात् पयस्विनीम्॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत्। तदैव सूतकप्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रिया॥' विष्णुरपि—'अनारब्धविशुद्ध्यर्थं कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम्। गां दद्यात् पञ्चगव्याशी ततः शुद्ध्यति सूतकी॥' कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा—'यद्देवादेवहेडनम्, इत्यादि कूष्माण्डसंज्ञक मंत्रों से घृतहोम करके।

२. षट्त्रिंशन्मते—'विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके। परैरन्नं प्रदातव्यं, भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः॥' बृहस्पतिः—'विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके। पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः॥' इति।

कूष्माण्ड होम आदि से शुद्धि कर जनन-मरण के बीच में आरम्भ विवाह आदि में पहिले से संकल्प किये हुए अन्न खाने में ब्राह्मणों को दोष नहीं है। कौस्तुभ में लिखा है कि अन्न परोसने आदि का भी काम सूतकवाले करें। होम आदि विधि से शुद्धि हो जाने से, किन्तु लोकविरुद्ध होने से यह ठीक नहीं इसलिये दूसरे गोत्रवालों से परोसने का कार्य करवायें यह ठीक लगता है।

नान्दीश्राद्धोत्तरं सूतकमृतकयोः प्राप्तौ पूर्वमन्नसंकल्पाभावेऽपि विवाहोत्तरकालसंकल्पितान्न भोजनं विप्रैः कार्यम्। अत्रापि परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैरिति सर्वसंमतम्। परैरसगोत्रैरिति सिन्धुमयूखादौ व्याख्यानात्। पूर्वसंकल्पितान्नस्यापि भोजनसमये सूतकप्राप्तौ भोक्तृभिर्भुक्तशेषं त्यक्त्वा परगृहोदकेनाचान्ततादि विधेयम्। पाकशेषः सूतकिभिर्भोक्तव्यः।

भुञ्जानेषु च विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके।
अन्यगेहोदकाचान्ता इति स्मृतेः।

नान्दीश्राद्ध के बाद जनन-मरण आशौच पड़ने पर पहले अन्न संकल्प न होने पर भी विवाह के बाद संकल्पित अन्न ब्राह्मणों को खाना चाहिये इसमें भी दूसरे गोत्रवाले परोसें और ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिये क्योंकि परैः पद का, निर्णयसिन्धुकार और मयूखकार ने असमान गोत्र वाले ऐसी व्याख्या की है। पहिले संकल्प किये हुए अन्न के भोजन के समय में भी सूतक पड़ने पर भोजन करने वाले भोजन से बचे हुए अन्न का त्याग करके दूसरे के घरके जल से मुख-शुद्धि आदि करें। बने अन्न का ब्राह्मणभोजन से बचे हुए का सूतकवाले भोजन करें। ब्राह्मणों के भोजन के मध्य में यदि जनन-मरण आशौच हो जाय तो दूसरे के घर के जल से कुल्ला आदि करें, ऐसे स्मृति-वचन से।

नान्दीश्राद्धोत्तरं भोजनादन्यकाले सूतकप्राप्तौ सूतकिगृहे भोक्तव्यम्। भुञ्जानेषु सूतकप्राप्तौ भोक्तृभिः पात्रस्थमप्यन्नं त्याज्यमिति वाचनिक एव विशेषः। नहि वचनस्यातिभार इति न्यायात्। मम तु भुञ्जानेष्विति वाक्यमारब्धानारब्धसर्वकर्मसु असंकल्पितान्नविषयमिति भाति। इति विवाहादौ रजोदोषसूतकप्राप्तिनिर्णयः।

नान्दीश्राद्ध के बाद भोजन विधान से, दूसरे समयमें सूतक पड़ने पर सूतकवाले के घर भोजन करना चाहिये। खाते हुए ब्राह्मणों के यदि सूतक की प्राप्ति हो तो भोजन करनेवाले पात्र स्थित अन्नत्याग दें यह वाचनिक ही विशेष है। वचन का अतिशय भार नहीं इस न्याय से। मुझे तो "भोजन करते हुए ब्राह्मणों में" इस आशय के वाक्य आरम्भ किये हुए और नहीं आरम्भ किये हुए सभी कर्मोंमें, नहीं संकल्प किये हुए अन्न के विषय में हैं ऐसा ठीक मालूम होता है। विवाह आदि में रजोदोष के सूतक का निर्णय समाप्त।

अथ कन्यारजोदोषनिर्णयः

विवाहात्पूर्वं कन्याया रजोदर्शने मातापितृभ्रातृणां [1]नरकपातः। कन्याया

---

१. अपरार्क में संवर्त—'माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥' हारीतः—'पितुर्गेहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता। सा कन्या वृषली ज्ञेया, तत्पतिर्वृषलीपतिः॥' यमः—'कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद् गृहे। भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत् स्वयम्॥ एवं चोपनतां पत्नीं नावमन्येत् कदाचन। न तु तां बन्धकीं विद्यान्मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥' इति।

वृषलीत्वं तद्भर्तुर्वृषलीपतित्वम् । अत्र शुद्धिप्रकारः कन्यादाता ऋतुसंख्यया गोदानानि[1] एकं वा गोदानं यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं वा कृत्वा कन्यादाने योग्यो भवेत् । कन्या तूपवासत्रयान्ते गव्यपयःपानं कृत्वा विप्रकुमार्यै सरत्नभूषणं दत्त्वोद्वाहयोग्या भवति । वरश्च कूष्माण्डहोमपूर्वकं तामुद्वहन्न दोषी स्यादिति ।

विवाह से पहिले कन्या के रजोदर्शन होने में माता-पिता का नरकपात होता है । कन्या को शूद्रात्व और उसके पतिको शूद्रापतित्व होता है । इसमें शुद्धिका प्रकार कहते हैं । कन्यादान करनेवाला ऋतु की गिनती से गोदानों को करके अथवा एक गोदान करके या यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराने से कन्यादान के योग्य होता है । कन्या तो तीन उपवास के अन्त में गाय का दूध पीकर ब्राह्मण-कन्या को रत्न सहित आभूषण देकर विवाह योग्य होती है । वर भी कूष्माण्ड होमपूर्वक उससे विवाह करे तो दोष नहीं है ।

विवाहहोमकाले रजोदोषे तां स्नापयित्वा युञ्जान इति तैत्तिरीयमन्त्रेण प्रायश्चित्तं हुत्वा होमतन्त्रं समापयेत् । यदा तु दात्रभावाद्रजोदर्शनं तदा कन्या वर्षत्रयं प्रतीक्ष्य स्वयं वरं वृणुयात् । नात्र वरस्यापि दोषः । इति कन्यारजोदोषनिर्णयः ।

विवाह-होम के समय रजोदोष होने पर उसको नहलाकर "युञ्जान" इस तैत्तिरीय मन्त्र से प्रायश्चित्त होम करके होम तन्त्र समाप्त करे । जब कि कन्यादाता के अभावसे रजोदर्शन हो जाय तब कन्या तीन वर्ष दाता की प्रतीक्षा करके स्वयं वर का वरण करे । इसमें वरको दोष नहीं होता । कन्या रजोदर्शन का निर्णय समाप्त ।

अथ क्षयपक्षादिविचारः

पक्षमध्ये तिथिद्वयस्य क्षयेण यस्त्रयोदशदिनात्मकः पक्षः स[2] क्षयपक्षः । तदा बहुप्रजासंहारो राजसंहारो वा । क्षयपक्षे चौलोपनयनोद्वाहादिवास्तुकर्मादिशुभं

---

१. आश्वलायनोक्त प्रायश्चित्त—'कन्यामृतुमतीं शुद्धां कृत्वा निष्कृतिमात्मनः । शुचिं च कारयित्वा तामुद्वहेदानृशंस्यधीः ॥ पिता ऋतून् स्वपुत्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः । दानावधि गृहे यत्नात् पालयेच्च रजोवतीम् ॥ दद्यात्तदृतुसंख्या गाः शक्तः कन्यापिता यदि । दातव्यैकापि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधि ॥ दद्याद्वा ब्राह्मणेष्वन्नमतिनिःस्वः सदक्षिणम् । तस्यातीतर्तुसंख्येषु वराय प्रतिपादयेत् ॥ उपोष्य त्रिदिनं कन्या रात्रौ पीत्वा गवां पयः । अदृष्टरजसे दद्यात् कन्यायै रत्नभूषणम् ॥ तामुद्वहन् वरश्चापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद् द्विजः ।' मदनपारिजात में यज्ञपार्श्व—'विवाहे वितते तन्त्रे होमकाल उपस्थिते । कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि ॥ युञ्जानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ।' इति ।

२. जिस पक्ष में दो तिथियों का ह्रास हो वह तेरह दिन का पक्ष है और वह अतिनिन्दित हैं । ज्योतिर्निबन्ध में बतलाया गया है—'पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद् रौरवकालयोगः । पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टमित्याहुराचार्यवराः समस्ताः ॥' तथा—'त्रयोदशदिने पक्षे तदा संहरते जगत् । अपि वर्षसहस्रेण कालयोगः प्रकीर्तितः ॥' इसमें सभी शुभ कर्म त्याज्य हैं, जैसा कि व्यवहारचण्डेश्वर में निर्दिष्ट है—'त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत् । गर्गादिमुनयः प्राहुः कृते मृत्युस्तदा भवेत् ॥' ज्योतिर्निबन्धेऽपि—'उपनयनं परिणयनं वेश्मारम्भादि कर्माणि । यात्रां द्विक्षयपक्षे कुर्यान्न जिजीविषुः पुरुषः ॥' इति ।

न कार्यम् । क्षयमासाधिमासगुरुशुक्रास्तादौ विवाहनिषेधः प्रथमपरिच्छेदे । एवं सिंहस्थगुरुनिषेधनिर्णयोऽपि प्रथमपरिच्छेदे द्रष्टव्यः ।

पक्ष के बीच में दो तिथियों के क्षयसे जो तेरह दिन का पक्ष होता है उसे क्षयपक्ष कहते हैं। तब बहुत सी प्रजा या राजा का संहार होता है। क्षयपक्ष में चौल, उपनयन और विवाह आदि तथा वास्तुकर्म आदि शुभ कर्म नहीं करना चाहिये। क्षयमास, अधिमास, गुर्वस्त तथा शुक्रास्त आदि में विवाह का निषेध इसी प्रकार सिंहस्थ गुरु का निषेध भी प्रथम परिच्छेद में देखना चाहिये।

[1]क्षयसंवत्सरोऽपि निषिद्धः। शीघ्रगत्या पूर्वराशिशेषमतिक्रम्य राश्यन्तर-संचारोऽतिचारस्तं प्राप्तो गुरुः पुनः पूर्वराशिं वक्रगत्या यदि नायाति तदा स क्षयसंवत्सरः सर्वकर्मसु वर्ज्यः। तत्र मेषवृषभवृश्चिककुम्भमीनराशिषु न दोषः। केचिद् गोदादक्षिणदेशे कोऽप्यतिचारादिगुरुदोषो नेत्याहुः। इति क्षयपक्षादि-विचारः।

क्षयवर्ष भी निषिद्ध है। शीघ्र गति से पहली राशि के शेष को अतिक्रमण करके दूसरी राशि पर सञ्चारण करने से अतिचार होता है उसपर बृहस्पति प्राप्त होते हैं, तत्पश्चात् फिर पहिली राशि पर वक्रगति से यदि नहीं आते हैं तब वह क्षय संवत्सर सब कर्मों में वर्जनीय है। उसमें मेष, वृष, वृश्चिक, कुम्भ और मीन राशि में दोष नहीं है। कुछ लोग गोदा नदी के दक्षिण देश में कोई भी अतिचार आदि गुरुदोष नहीं होता ऐसा कहते हैं। क्षयपक्षका विचार समाप्त।

अथ वधूवरयोर्गुरुरविबलविचारः

मुख्यं गुरुबलं[2] वध्वा वरस्येष्टं रवेर्बलम्। द्विपञ्चसप्तनवैकादशस्थो गुरुः कन्यायाः शुभः। जन्मतृतीयषष्ठदशमस्थानेषु पूजा होमात्मकशान्त्या शुभः।

---

१. लल्लः—अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैव चेत्पुनः। लुप्तः संवत्सरो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः॥ इति। ज्योतिःसागर में सिंहराशिस्थितादि गुरु का निषेध—'बाले शुक्रे वृद्धे शुक्रे वृद्धे जीवे नष्टे जीवे। बाले जीवे जीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये॥ तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येऽतिचारगे। वापीकूप-विवाहादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत्॥ सिंहस्थं मकरस्थं च गुरुं यत्नेन वर्जयेत्।'

पराशरोक्त सिंहस्थ गुरु का अपवाद—'गोदाभागीरथीमध्ये नोद्वाहः सिंहगे गुरौ। मघास्थे सर्वदेशेषु तथा मीनगते रवौ॥' वसिष्ठ ने भी कहा है—'विवाहो दक्षिणे कूले गौतम्यां नेतरत्र तु। भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा। विवाहो व्रतबन्धश्च सिंहस्थेज्ये न दुष्यति॥' इति।

शौनकोक्त बृहस्पतिशान्ति—'कन्यकोद्वाहकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते। ब्राह्मणस्योपनयने गुरोर्विधिरुदाहृतः॥ सुवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतवस्त्रेण वेष्टयेत्। ईशान्यां धवलं कुम्भं धान्योपरि निधाय च॥ दमनं मधुपुष्पं च पलाशं चैव सर्षपान्। मांसी गुडूच्यपामार्गौ विडङ्गी शङ्खिनी वचा। सहदेवी हरिक्रान्ता सर्वौषधिशतावरी। बला च सहदेवी च निशाद्वितयमेव च॥ कृत्वाज्यभाग-पर्यन्तं स्वशाखोक्तविधानतः। ग्रहोक्तमण्डलेऽभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः॥ देवपूजोत्तरे काले ततः कुम्भानुमन्त्रणम्। अश्वत्थसमिधश्चाज्यं पायसं सर्पिषा युतम्॥ यवव्रीहितिलाः साज्या मन्त्रेणैव बृहस्पतेः। अष्टोत्तरशतं सर्वं होमशेषं समापयेत्॥ पुत्रदारसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत्। कुम्भाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रतः॥ प्रतिमां कुम्भवस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत्। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाच्छुभदः स्यान्न संशयः॥' इति।

२. गर्गः—'स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम्। तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठमिति गर्गेण भाषितम्॥ जन्मत्रिदशमारिस्थः पूजया शुभदो गुरुः। विवाहेऽथ चतुर्थाष्टद्वादशस्थो मृतिप्रदः॥'

चतुर्थाष्टमद्वादशस्थानेषु दुष्टफलः । कर्कधनुर्मीनगश्चतुर्थादिस्थानेऽपि न दुष्टः । संकटे चतुर्थद्वादशस्थो द्विवारमष्टमस्त्रिवारं होमादिरूपपूजयाऽर्चितः शुभः । वरराशेस्त्रिषड्दशैकादशस्थानेषु रविः शुभः । अन्यत्र ग्रहमखोक्तपूजया शुभः । गुरुपूजाप्रकार उपनयनप्रकरणे उक्तः ।

वधू का गुरु-बल मुख्य है और वर को सूर्य का बल इष्ट है । कन्या का बृहस्पति दूसरे पांचवें, सातवें और ग्यारहवें स्थान में शुभदायक हैं । जन्म से तीसरे, छठे और दसवें स्थान में पूजा और होमात्मक शान्ति से शुभ होते हैं । चौथे, आठवें और बारहवें स्थान में दुष्ट फल देते हैं । कर्क धनु और मीन का गुरु चौथे आदि स्थानमें दुष्ट नहीं है । सकट में चौथा और बारहवां दो बार तथा आठवां तीन वार होम आदि रूप पूजा से पूजित होने पर शुभप्रद हैं । वरकी राशि से तीसरे, छठे, दसवें और ग्यारहवें स्थान में सूर्य शुभ हैं । इससे भिन्न में ग्रहयज्ञ की कही पूजा से शुभ होते हैं । गुरुपूजा का प्रकार उपनयन प्रकरण में कह चुके हैं ।

अथ कन्याविवाहकालः

जन्मतो गर्भतो वा पञ्चमवर्षप्रभृति अष्टमवर्षपर्यन्तं कन्याविवाहे उचितः कालः । षड्वर्षोत्तरं वर्षद्वयं प्रशस्ततरः ।

षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्षद्वयं यतः ।
सोमो भुङ्क्ते ततस्तद्वद्गन्धर्वश्च ततोऽनलः ॥ इत्युक्तेः ।

नवमदशमयोर्मध्यमः । एकादशवर्षेऽधमः । [1]द्वादशादौ प्रायश्चित्तावहः ।

मुहूर्तचिन्तामणौ—'वटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः । श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयाऽन्यत्र निन्दितः । अर्थात् वटुकन्याके जन्मराशि से नवम-पंचम-एकादश-द्वितीय-सप्तमस्थान में स्थित गुरु श्रेष्ठ, दशम-षट्-तृतीय-प्रथमस्थान में स्थित पूज्य और चतुर्थ-द्वादश-अष्टम स्थानमें स्थित निन्द्य हैं ।

वसिष्ठ की विशेषोक्ति—'बन्धौ तृतीये रिपुराशिसंस्थे वाञ्छन्ति पूजां दशमे सुरेज्ये । नेच्छन्ति पूजां जनिगे व्ययस्थे पुरातना अष्टमगेऽपि राशौ ॥' बृहस्पतिः—'झषचापकुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचरः । अतिशोभनतां दद्याद् विवाहोपनयादिषु ॥' लल्लः—'सर्वत्रापि शुभं दद्याद् द्वादशाब्दात् परं गुरुः । पञ्चषष्ठाब्दयोरेव शुभगोचरता मता ॥ सप्तमात् पञ्चवर्षेषु स्वोच्चस्वर्क्षगतो यदि । अशुभोऽपि शुभं दद्याच्छुभर्क्षस्तेषु किं पुनः ॥

रजस्वलायाः कन्याया गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत् । अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् । अर्कगुर्वोर्बलं गौर्या रोहिण्यर्कबला स्मृता । कन्या चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतो बला ॥ अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥' इति ।

राजमार्तण्ड में वर के लिये रवि की शुद्धि—'रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहौ । क्षौरं ताराशुद्धौ शेषं चन्द्राश्रितं कर्म ॥' वर के राशि से रवि का श्रेष्ठ स्थान—'तृतीयः षष्ठगश्चैव दशमैकादशस्थितः । रविः शुद्धो निगदितो वरस्यैव करग्रहे ॥' पूज्य-स्थान—'जन्मस्थे च द्वितीयस्थे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा । नवमे भास्करे पूजां कुर्यात्पाणिग्रहोत्सवे ॥' निन्द्य-स्थान—'चतुर्थे वाऽष्टमे चैव द्वादशे भास्करे स्थिते । वरः पञ्चत्वमाप्नोति कृते पाणिग्रहोत्सवे ॥' इति ।

१. मनुः—'त्रिंशद्वर्षो वहेद् भार्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् । त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ महाभारते—'त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्यां विन्देत नग्निकाम् । द्व्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां

जन्म से या गर्भ से पांचवें से आठवें वर्ष तक कन्या के विवाह में उचित समय है। छ वर्ष के बाद दो वर्ष तक अतिशय प्रशस्त है। छ वर्ष के मध्य में-कन्या विवाह-योग्य नहीं होती, क्योंकि दो वर्ष सोम भोग करते हैं। इसी तरह गन्धर्व और अग्नि भोगते हैं, यह वचन है। नवम और दशम वर्ष में विवाह मध्यम श्रेणी का है। ग्यारहवें में अधम और बारहवें आदि में प्रायश्चित्त योग्य है।

अथ विवाहभेदाः

ब्राह्मो दैव आर्षः प्राजापत्य आसुरो गान्धर्वो राक्षसः पैशाच इत्यष्टौ[१] विवाहाः। योग्यवरमाहूयालंकृत्य कन्यादानविधिना तस्मै दानं ब्राह्मो विवाहः। यज्ञे ऋत्विक्कर्मकुर्वतेऽलंकृत्य कन्यार्पणं दैवः। वरादेकं गोमिथुनं द्वे वा गृहीत्वा तस्मै कन्याऽर्पणमार्षः। इदं गोमिथुनग्रहणं न निन्दितम्, तस्य कुमारीपूजनार्थत्वेन कन्याविक्रयाभावात्। त्वयैतयैव सह गृहधर्म आचरणीय एतस्या जीवनपर्यन्तं विवाहानन्तरं चतुर्थाश्रमो वा न कार्य इत्याभाष्य कन्यादानं प्राजापत्यः। ज्ञातिभ्यो यथेच्छं धनं दत्त्वा विवाह आसुरः। वरवध्वोरिच्छयान्योन्यसंयोगो गान्धर्वः। युद्धादिना बलाद्धरणं राक्षसः। चौर्येण कन्याहरणं पैशाचः।

वा धर्मे सीदति सत्वरः॥ अतो प्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात् पिता सकृत्।' यहां नग्निका का गृह्यसंग्रहोक्त-लक्षण है—'नग्निकां तु वदेत् कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्। ऋतुमती त्वनग्निका तां प्रयच्छेत्तु नग्निकाम्॥ अप्राप्ता रजसो गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी। अव्यञ्जिता भवेत् कन्या कुचहीना च नग्निका॥'

रजोदर्शन के पहले विवाह का कारण गृह्यसंग्रह में ही बतलाया गया है—'व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्यकाम्। पयोधरैस्तु गन्धर्वा रजसाऽग्निः प्रकीर्तितः॥ तस्माद्व्यञ्जनोपेतामरजसामपयोधराम्। अभुक्तां चैव सोमाद्यैः कन्यकां तु प्रशस्यते॥' यमः—'कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद् गृहे। ब्रह्महत्या पितुस्तस्या सा कन्या वरयेत्स्वयम्॥'

आयुर्वेदीय दृष्टि से सुश्रुत में धन्वन्तरि—'अथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत्। पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति।' इन वचनों से रजोदर्शन के पूर्व कन्या का विवाहकाल सिद्ध होता है। धर्मशास्त्रों में रजोदर्शन के अनन्तर कन्या का विवाह निन्द्य बतलाया गया है—'प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति। मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणितम्॥' इत्यादि।

वर्तमान समय में कन्याओं के विवाह का समय श्रुति की—'ब्रह्मचर्येण तपसा युवानं बिन्दते पतिम्।' इस उक्ति के अनुसार उपयुक्त प्रतीत होता है।

१. मनुः—'ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः। गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ आठों विवाहों के याज्ञवल्क्योक्त लक्षण—'ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता। तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम्॥ यज्ञस्थ ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम्। चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट्॥ इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह वा दीयतेऽर्थिने। स कायः पावयेत्तज्जः षट् षड् वंश्यान् सहात्मना॥ आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः। राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात्॥'

नारद ने ब्राह्म आदि चार विवाहों में ही काल का नियम बतलाया है—'प्राजापत्यब्राह्मदैवविवाहा ऋषिसंज्ञकाः। उक्तकालेषु कर्तव्याश्चत्वारः फलदायकाः॥ गान्धर्वासुरपैशाच्यराक्षसाख्याश्च सर्वदा।' गृह्यपरिशिष्ट में भी कहा है—'धर्म्येषु विवाहेषु कालपरीक्षणं नाधर्म्येषु' इसलिये गृह्यकार

अथात्र प्रायश्चित्तम्

अज्ञानतः पित्रादिदत्तोद्वाहे भ्रात्रोः परिवेत्तृपरिवित्तिसंज्ञयोः कृच्छ्रद्वयं कन्यायाः कृच्छ्रं दातुरतिकृच्छ्रं याजकस्य चांद्रायणम्। ज्ञानतः पित्राद्यदत्तोद्वाहे सर्वेषां वत्सरं कृच्छ्राचरणम्। कामतः पित्रादिदत्तोद्वाहे त्रैमासिकम्। अज्ञानेनादत्तोद्वाहे चान्द्रायणादि। [1]दिधिष्वादिपतेरतिकृच्छ्रकृच्छ्रौ।

इसमें प्रायश्चित्त निम्नलिखित है—अज्ञान से पिता आदि द्वारा विवाह करने पर परिवेत्ता और परिवित्ति नामक दोनों भाइयों का दो कृच्छ्र तथा कन्या का एक कृच्छ्र दाता का अतिकृच्छ्र और यज्ञ कराने वाले का चान्द्रायण प्रायश्चित्त होता है। जानकर पिता आदि द्वारा विवाह न करने पर सबको वर्ष पर्यन्त कृच्छ्र व्रत करना चाहिये। इच्छानुसार पिता आदि से किये गये विवाह में तीन मास का कृच्छ्र व्रत करे। अज्ञान से पिता आदि के द्वारा विवाह न करने पर स्वयं करने पर चान्द्रायण आदि करे। दिधिषु आदि के पति को अतिकृच्छ्र और कृच्छ्र ज्ञान-अज्ञान के भेद से करे।

अत्रापवादः—सापत्ने दत्तके वा ज्येष्ठे कनिष्ठस्य दाराग्निहोत्रग्रहणे दोषो न। सोदरेपि क्लीबे मूकबधिरवामनभग्नपादत्वादिदोषयुते [2]देशान्तरस्थे वेश्यासक्ते पतिते महारोगिण्यतिवृद्धे कृषिसक्ते धनवृद्धिराजसेवादिव्यापारासक्ते चौर्यासक्ते उन्मत्ते विवाहाग्निहोत्रेच्छानिवृत्ते च ज्येष्ठे कनिष्ठस्य दाराग्निहोत्रग्रहणे दोषो न।

इसमें अपवाद यह है—सौतेले या दत्तक पुत्र जेठे के रहते छोटे का विवाह या अग्निहोत्र करने में दोष नहीं है। सहोदर जेठे के भी नपुंसक, गूंगा, बहिरा, बौना, पैर टूटने आदि दोष से युक्त होने, दूसरे देश में रहने, वेश्या में आसक्त होने, पतित होने, महारोगयुक्त होने, अत्यन्त वृद्ध होने, खेती में लगे रहने धनवृद्धि के लिये राजसेवा आदि व्यापार में लगे रहने, चोरी में लगे रहने, पागल होने, विवाह तथा अग्निहोत्र करने की इच्छा से निवृत्त होने पर छोटे का विवाह और अग्निहोत्र करने में दोष नहीं है।

देशान्तरगतं ज्येष्ठमष्टौ द्वादश वा वर्षाणि कनिष्ठः प्रतीक्षेत्। एवं कन्याया अपि ज्येष्ठाया भिन्नमातृजत्वे कनिष्ठाया विवाहे दोषो न। एवं मूकत्वादिदोषयुतायां ज्येष्ठायामूह्यम्। इति परिवेत्रादिनिर्णयः।

दूसरे देश में जेठे को जाने पर छोटा भाई आठ या बारह वर्ष की प्रतीक्षा करे। इसी प्रकार कन्या का भी दूसरी माता से उत्पन्न जेठी के रहते छोटी के विवाह में दोष नहीं है। इसी तरह गूंगेपन, बहिरेपन आदि दोष युक्त जेठी लड़की में भी कल्पना करनी चाहिये। परिवेत्ता आदि का निर्णय समाप्त।

---

१. दिधिषूपति का लक्षण मनु ने बतलाया है—'भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः। धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः॥' अर्थात् दिधिषूपति वह पुरुष है जो धर्म से नियुक्त अपने भाई की विधवा से कामवश अनुरक्त (मैथुन में प्रवृत्त) हुआ हो।

२. बृहस्पति ने देशान्तर का लक्षण बतलाया है—'महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः। वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते॥ देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतम्। चत्वारिंशद् वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च॥' इति।

अथ कन्यादातृक्रमः

[1]'पिता पितामहो भ्राता पितृकुलस्थः पितृव्यादिर्मातृकुलस्थो मातामहमातुलादिः । सर्वाभावे जननीत्येवं पूर्वाभावे परः परः । भ्रातॄणामुपनीतानामेवाधिकारः । अनुपनीतभ्रातुर्मात्रादेश्च सत्त्वे मात्रादेरेवाधिकारो न त्वनुपनीतभ्रातुः ।

पिता, पितामह, भाई, पितृकुल में स्थित पितृव्य आदि, मातृकुल में स्थित मातामह मातुल आदि, सबके अभाव में माता इस प्रकार पूर्व के अभाव में पर पर कन्यादाता का क्रम है। भाइयों में उपनीत भाई का ही अधिकार है। अनुपनीत भाई और माता आदि के रहते माता आदि का ही अधिकार है न कि अनुपनीत भाई का।

अथ सर्वाभावे कन्यावरयोर्नान्दीमुखाधिकारः

सर्वाभावे कन्या स्वयं वरं वृणुयात्। कन्या स्वयंवरे मातुर्दातृत्वे च ताभ्यामेव नान्दीश्राद्धं कार्यम्। तत्र माता कन्या वा स्वयं प्रधानसंकल्पमात्रं कृत्वाऽन्यद्ब्राह्मणद्वारा कारयेत्। वरस्तु संस्कृतभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यान्न माता। उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वाद् द्वितीयादिविवाहे वरः स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात्।

इन सब के न रहने पर कन्या स्वयं वर का वरण करे। कन्या के स्वयं वर-वरण में और माता के कन्यादान करने में इन्हीं दोनों को नान्दीश्राद्ध करना चाहिये। इसमें माता या कन्या स्वयं प्रधान संकल्पमात्र करके और पूजनादि कार्य ब्राह्मण द्वारा करावे। वर तो उपनीत भाई आदि के न होने पर स्वयं ही नान्दीश्राद्ध करे न कि माता। क्योंकि उपनयन से कार्य का अधिकार उत्पन्न हो जाता है। दूसरे आदि विवाह में वर स्वयं नान्दीश्राद्ध करे।

अथ परकीयकन्यादाने विशेषः

आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम्।
धर्मेण विधिना दानमसगोत्रेऽपि युज्यते ॥

इति दातृनिर्णये वरवध्वोरपि नान्दीश्राद्धकर्तृत्वनिर्णयः।

दूसरे की कन्या के दान में विशेष है—दूसरे की कन्या को सुवर्ण से अपनी बनाकर धर्मविधि से दान परकीय गोत्रा का भी युक्त होता है। कन्यादाता के निर्णय में वर-वधू का नान्दीश्राद्ध के कर्तृत्व का निर्णय समाप्त।

---

१. याज्ञवल्क्यः—'पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा। कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥' अपरार्क में नारद—'पिता दद्यात् स्वयं कन्यां भ्राता वाऽनुमते पितुः। मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवस्तथा ॥ माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते। तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः ॥ सकुल्यः पितृपक्षीयो बान्धवो मातृवंशजः।'

कात्यायन का अपवाद-वचन—'दीर्घप्रवासयुक्तेषु पौगण्डेषु च बन्धुषु। माता तु समये दद्यादौरसीमपि कन्यकाम् ॥' किसी के न रहने पर मनु ने कहा है—'यदा तु नैव कश्चित्स्यात् कन्या राजानमाव्रजेत् ॥' इति।

अथ वधूवरयोर्मूलजत्वादिगुणदोषाः

'मूलनक्षत्राद्यपादत्रयजातौ वधूवरौ स्वस्वश्वशुरं नाशयतः। आश्लेषान्त्यपादत्रयजातौ श्वश्रून्। ज्येष्ठान्त्यपादजातावन्योऽन्यज्येष्ठभ्रातरम्। विशाखान्त्यपादजातावन्योन्यकनिष्ठभ्रातरम्। मघाप्रथमपादे मूलवत्फलं केचिदाहुः।

मूल नक्षत्र के पहिले तीन चरणों में उत्पन्न वधू और वर अपने-अपने श्वशुर का नाश करते हैं। आश्लेषा के अन्तवाले तीन चरणों में उत्पन्न वधू-वर अपनी-अपनी सास का नाश करते हैं। ज्येष्ठा के अन्त्य चरण में उत्पन्न परस्पर ज्येष्ठ भाई का, विशाखा के अन्त्य चरण उत्पन्न अन्योन्य छोटे भाई का नाश करते हैं। मघा के प्रथम पाद में मूल के समान फल कुछ लोग कहते हैं।

केचिदुपनयनस्य द्वितीयजन्मरूपत्वात्तेन च द्वितीयजन्मना पूर्वजन्मसंभवमूलादिदोषस्य निरस्तत्वाद्वरस्य श्वशुरघातित्वादिदोषो नेत्यपवादं संकटे वदन्ति। श्वशुराद्यभावे वध्वा अपि न दोषः।

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम्॥ उद्वहेदिति।

कुछ लोग, उपनयन को द्वितीय जन्मरूप होने से और उस द्वितीय जन्म से पूर्वजन्म से उत्पन्न मूल आदि के दोषों के निकल जाने से वर को श्वशुरहननत्व आदि दोष नहीं होता ऐसा अपवाद संकट में कहते हैं। श्वशुर आदि के अभाव में वधू को भी दोष नहीं। पक्षी के नाम वाली, नक्षत्र, वृक्ष और नदी के नाम वाली और अन्त्य तथा पर्वत के नाम वाली एवं सर्प तथा प्रेष्य (चपरासी) के नाम वाली और न भयङ्कर नाम वाली कन्या से विवाह न करे।

वराय पुंस्त्वं परीक्ष्य कन्या देया 'यस्याप्सु प्लवते बीजं ह्लादि मूत्रं च फेनिलम्' इत्यादि पुंस्त्वपरीक्षा[२]।

कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतां च।
एतान्गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥

इति वधूवरयोर्मूलजातत्वादिगुणदोषनिर्णयः।

---

१. कश्यपः—'मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः। मातरं स्वां तृतीयोऽर्थान् शुभदस्तु तुरीयजः॥ फलं तदेव सार्पर्क्षेष्वप्रतीपं त्वन्त्यपादतः।' वसिष्ठः—'ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम्। अभुक्तमूलमित्याहुर्जातं तत्र विवर्जयेत्॥'

वसिष्ठसंहिता में दिन-रात्रि के भेद से मूलजात का दोषपरिहार—'मूलाद्यपादो दिवसे यदि स्यात्तज्जः पितुर्नाशनकारणं स्यात्। द्वितीयभागो यदि रात्रिभागे तदुद्भवो मातृविनाशकः स्यात्॥ मूलाद्यभागो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पुनर्विनाशः। द्वितीयभागो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः॥' नारदसंहिता—'दिवाजातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति ततो गण्डं विवर्जयेत्॥' इति।

२. पुंस्त्वपरीक्षा का उपाय नारद ने यह बतलाया है—'यस्याप्सु प्लवते बीजं ह्लादि मूत्रं च फेनिलम्। पुमान् स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतैस्तु षण्डकः॥ ह्लादिफेनिलमूत्रश्च गुरुशुक्रर्षभस्वरः। पुमान् स्यादन्यथा पाण्डुदुश्चिकित्स्यो मुखेभगः॥ शुभबीजवति क्षेत्रे पुत्राः सन्तानवर्धनाः। निष्ठा विवाहमन्त्राणां तासां स्यात्सप्तमे पदे॥' इति।

वर को पुंस्त्व की परीक्षा करके कन्या देनी चाहिये। जिसका वीर्य जल में तैरने लगे और मूत्र शब्द एवं फेन युक्त हो इत्यादि पुंस्त्वपरीक्षा है। कुल, शील, शरीर, अवस्था, विद्या, धन और संरक्षक इन सात गुणों की परीक्षा कर पण्डित कन्या को दे, अन्य सब बातों का विचार नहीं करना चाहिए। वधूवर के मूल में उत्पन्न होने आदि गुण और दोष का निर्णय समाप्त।

अथ विवाहे मासादिनिर्णयः

[1]माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः।
मार्गशीर्षो मध्यमः स्यात्कचिदाषाढकार्तिकौ॥

अत्र मिथुनेऽर्के आषाढो वृश्चिके कार्तिकश्च देशाचारानुरोधेन ग्राह्यौ न सर्वदेशे। एवं मकरस्थपौषो मेषस्थचैत्रोऽपि।

विवाह में माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ मास शुभ देने वाले हैं। अगहन मास मध्यम है। कहीं आषाढ़ और कार्तिक में भी विवाह होता है। इसमें मिथुन के सूर्य में कार्तिक देशाचार के अनुरोध से ग्रहणयोग्य हैं न कि सब देश में। इसी प्रकार मकर के सूर्य में पौष मास और मेष के सूर्य में चैत्र मास में भी।

अथ ज्येष्ठस्य ज्येष्ठमासनिषेधस्तदपवादश्च

ज्येष्ठयोर्वधूवरयोर्ज्येष्ठे मासि विवाहो न शुभः। मासान्तरे मध्यमः।

न ज्येष्ठयोर्विवाहः स्याज्ज्येष्ठे [2]मासि विशेषतः।
द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं ज्यैष्ठ्यं सुखावहम्॥
ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम्॥ इत्युक्तेः।

तथा च ज्येष्ठमासो ज्येष्ठगर्भस्य मङ्गले मध्यमः। [3]जन्ममासजन्मनक्षत्रादिकं ज्येष्ठापत्यस्य निषिद्धम्। सार्वकालमेके विवाहमिति त्वासुराद्यधर्मविवाहविषयम्[4]।

---

१. नारदः—'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः। कार्तिको मार्गशीर्षश्च मध्यमौ निन्दिताः परे॥' वसिष्ठः—'पौषेऽपि कुर्यान्मकरस्थितेऽर्के चैत्रे भवेन्मेषगतो यदा स्यात्। प्रशस्तमाषाढकृतं विवाहं वदन्ति गर्गा मिथुनस्थितेऽर्के॥' ज्योतिर्गर्ग और राजमार्तण्ड में विवाह के दस मास की प्रशस्ति के—'माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च। दशमासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः॥' आपस्तम्ब के—'सर्वऋतवो विवाहस्य शैशिरौ मासौ परिहाप्योत्तमं च नैदाघम्' तथा बौधायनसूत्र के—'सर्वे मासा विवाहस्य शुचिस्तपस्तपस्यवर्जम्' इन वचनों की व्यवस्था देशाचारानुसार करनी चाहिये।

२. पराशरः—'अज्येष्ठा कन्यका यत्र ज्येष्ठपुत्रो वरो यदि। व्यत्ययो वा तयोस्तत्र ज्येष्ठमासः शुभप्रदः॥' चण्डेश्वरः—'कृत्तिकास्थं रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठपुत्रस्य कारयेत्। उत्सवादिषु कार्येषु दिनानि दश वर्जयेत्॥' कृत्तिका-स्थित सूर्य को छोड़कर ज्येष्ठमास का विधान मुहूर्तमाला में आपत्तिकालिक बतलाया गया है—'न ज्येष्ठयोर्विवाहः स्यान्मिथो ज्येष्ठे विशेषतः। ज्येष्ठेऽप्यन्यतमस्य स्यात्कृत्तिकार्कं विनाऽऽपदि॥' इति।

३. वृद्धगार्ग्य ने जन्म-मास का यह लक्षण बतलाया है—'आरभ्य जन्मदिवसाद्यावत् त्रिंशद्दिनं भवेत्। जन्ममासः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः॥' रत्नकोशे—'जन्मर्क्षे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत्। ज्येष्ठे मास्याद्यगर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि॥' इति।

४. अथवा कन्या के अत्यासन्न ऋतुकाल विषयक 'सार्वकालमेके विवाहम्' यह वचन है।

ज्येष्ठमास का निषेध और उसका परिहार है—जेठे वर-वधू का ज्येष्ठ मास में विवाह शुभप्रद नहीं है। दूसरे महीने में मध्यम है। जेठे वरवधू का विवाह नहीं होता, विशेष कर ज्येष्ठ मास में। दो ज्येष्ठ मध्यम कहे गये हैं, एक ज्येष्ठ सुखद है। तीन ज्येष्ठ का विवाह न करे यह सर्वसंमत है इस उक्ति से। इस प्रकार जेठे गर्भ के मङ्गल-कृत्य में ज्येष्ठ मास मध्यम होता है। जन्म का महीना और जन्मनक्षत्र आदि ज्येष्ठ सन्तान के लिए निषिद्ध है। विवाह सब काल में होता है यह किसी का मत तो आसुर आदि अधर्म-विवाह-विषय का है।

अथ आर्द्राप्रवेशविचारः

मयूखे आर्द्रादिदशनक्षत्रेषु सूर्याधिष्ठितेषु विवाहमौञ्ज्यादिकं वसिष्ठादिभिर्निषिद्धमित्युक्तम्। नैतत्कौस्तुभसिन्ध्वादिग्रन्थे मार्तण्डादिज्योतिर्ग्रन्थेऽपीति बहवः शिष्टा आर्द्रादिप्रवेशदोषं न मन्यन्ते।

मयूख में आर्द्रा आदि दस नक्षत्रों के सूर्य में विवाह, उपनयन आदि वसिष्ठ आदि ऋषियों ने निषेध किया है, ऐसा कहा है। किन्तु यह बात कौस्तुभ और निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थों में तथा मार्तण्ड आदि ज्यौतिष के ग्रन्थों में भी नहीं है इससे बहुत से शिष्ट लोग आर्द्रा आदि प्रवेश दोष को नहीं मानते।

अथ तिथिनक्षत्रनिर्णयः

अमावास्या निषिद्धा। रिक्ताष्टमीषष्ठ्योऽल्पफलाः। अन्यास्तिथयो बहुफलाः। शुक्लपक्षः श्रेष्ठः। कृष्णस्त्रयोदशीपर्यन्तो मध्यमः। सोमबुधगुरुशुक्रवाराः शुभाः। अन्ये मध्यमाः। रोहिणीमृगमघास्तिस्र उत्तराहस्तस्वातीमूलानुराधारेवत्यः सर्वसंमतनक्षत्राणि।

अमावास्या का निषेध है। रिक्ता-तिथि अष्टमी और षष्ठी अल्प फल देने वाली है। अन्य तिथियां बहुफलद हैं। शुक्लपक्ष श्रेष्ठ है। कृष्णपक्ष त्रयोदशीतक मध्यम है। सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार शुभ हैं। शेष वार मध्यम हैं। रोहिणी, मृगशिर, मघा, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, मूल, अनुराधा और रेवती विवाह में सर्वसम्मत नक्षत्र हैं।

अथ ज्योतिःशास्त्रातिरिक्तचित्रादिनक्षत्राणि

[1]हरदत्तमते चित्राश्रवणधनिष्ठाश्विन्य इत्यधिकानि चत्वारि। तत्रापि खलग्रहयुतं नक्षत्रं वर्ज्यम्। चन्द्रताराबलं कन्यावरयोरुभयोरपि। अन्यतरस्य चन्द्रबलाभावे रजतादिदानं कार्यम्।

हरदत्त के मत में चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा और अश्विनी ये चार नक्षत्र अधिक हैं। इनमें भी खल-ग्रह से युक्त नक्षत्र वर्जित हैं। चन्द्रमा और तारा का बल वर और वधू दोनों को होना चाहिये। दोनों में से किसी एक के चन्द्रबल न होने पर चाँदी आदि का दान करना चाहिये।

---

१. पारस्करगृह्यसूत्रेऽपि—'त्रिषु त्रिषूत्तरादिषु' अत्र गदाधरभाष्यम्—'उत्तरा आदिर्येषां तान्युत्तरादीनि तेषु तेषु त्रिषु। अयमर्थः—उत्तराफल्गुन्यां हस्ते चित्रायां च, एवमुत्तराषाढायां श्रवणे धनिष्ठायां च, एवमुत्तराप्रोष्ठपदि रेवत्यामश्विन्यां च···विवाहो भवतीत्यर्थ' इति।

अथ घातचन्द्रविचारः

मेषः कन्या घटः सिंहो नक्रं युग्मं धनुर्वृषः ।
मीनः सिंहो धनुः कुम्भोऽजादीनां घातचन्द्रमाः ॥
यात्रायां युद्धकार्येषु घातचन्द्रं विवर्जयेत् ।
विवाहे सर्वमाङ्गल्ये चौलादौ व्रतबन्धने ॥
घातचन्द्रो नैव चिन्त्यो यज्ञे सीमन्तजातयोः ।

मेष आदि राशिवालों का घात चन्द्रमा इस प्रकार होता है—मेष, कन्या, कुम्भ, सिंह, मकर, मिथुन, धनु, वृष, मीन, सिंह, धनु और कुम्भ के चन्द्रमा घातक होते हैं, जैसे—मेषराशि वाले को मेष का, वृषराशिवाले को कन्या का और मिथुन राशिवाले को कुम्भ का इत्यादि रीति से घात चन्द्र करें। घात चन्द्रमा, यात्रा और युद्ध कार्य में वर्जित है। विवाह में सम्पूर्ण मङ्गल कृत्य चौल आदि और उपनयन में घात चन्द्रमा का विचार वर्जित है। यज्ञ में सीमन्त और जातकर्म में घात चन्द्र का विचार नहीं होता।

अथ विवाहादौ वर्ज्याः

मृत्युयोगे परिघार्धे भद्रायां पातवैधृतौ ।
विष्कम्भादेर्दुष्टभागे तिथिवृद्धिक्षयेऽपि च ॥
यामार्धकुलिकादौ च गण्डान्ते रविसंक्रमे ।
केतूद्गमे भूमिकम्पे विवाहाद्यं विवर्जयेत् ॥

मृत्युयोग में, परिघ के आधे अंश में, भद्रा में, व्यतीपात में, वैधृति में, विष्कम्भ आदि के दुष्ट अंश में, तिथिवृद्धि और तिथिक्षय में, यामार्द्ध कुलिक आदि में, गण्डान्त में, सूर्यसंक्रान्ति में, केतु के निकलने में और भूकम्प में, विवाह आदि शुभ कृत्य का त्याग करे।

ग्रहणे पादादिग्रासे त्रिचतुःषडष्टदिवसाः प्रागर्धिता[1] वर्ज्याः । भूकम्पे उल्कापाते च त्रिदिनं वज्रपाते चैकं दिनं वर्ज्यम् । यावत्केतूद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत् ।

ग्रहण के पादग्रास में तीन दिन, आधे ग्रहण में चार दिन, तीन भाग ग्रहण में छ दिन और सम्पूर्ण ग्रहण में आठ दिन ग्रहण के बाद शुभ कर्म का वर्जन करे। ग्रहण के पहिले एक पाद में ९० घड़ियाँ, आधे ग्रहण में दो दिन, तीन पाद ग्रहण में तीन दिन और सम्पूर्ण ग्रहण में चार दिन ग्रहण के पहिले त्याज्य हैं। भूकम्प और उल्कापात में तीन दिन, वज्रपात में एक-दिन वर्जनीय है। जब तक केतु का उदय रहे तबतक अशुभ समय होता है।

---

१. ग्रहण के अनन्तर पादग्रास में तीन, अर्धग्रास में चार, त्रिपादग्रास में छ तथा सर्वग्रास में आठ दिन त्याज्य है और ग्रहण के पूर्व इनके अर्धित (आधा) त्याज्य है (अर्थात् एक पाद-ग्रास में नब्बे घड़ी, अर्धग्रास में दो दिन, त्रिपादग्रास में तीन दिन और सर्वग्रास में चार दिन ग्रहण के पूर्व में वर्जित हैं।) गर्गः—'दिग्दाहे दिनमेकं च ग्रहे सप्तदिनानि तु । भूकम्पे च समुत्पन्ने त्र्यहमेव तु वर्जयेत् ॥ उल्कापाते त्रिदिवसं धूमे पञ्च दिनानि च । वज्रपाते चैकदिनं वर्जयेत् सर्व-कर्मसु । दर्शनादर्शनाद् राहुकेत्वोः सप्तदिनं त्यजेत् ॥ यावत्केतूद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत् ।' इसका अपवाद अद्भुतसागर में है—'अथ दिवसत्रयमध्ये मृदु पानीयं यदा भवति । उत्पातदोषशमनं तदैव सम्प्राहुराचार्याः ॥' सम्बन्धतत्त्वे—'भूकम्पादेर्न दोषोऽस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति ।' इति ।

अस्यापवादः—भूकम्पादेर्न दोषोऽस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति । दिवाविवाहः प्रशस्तः । रात्रावपि कन्यादानं हेमाद्र्यादिमते प्रशस्तं भवति ।

इसका परिहार यह है—नान्दीश्राद्ध करने पर भूकम्प आदि का दोष नहीं होता । दिन में विवाह उत्तम होता है । रात में भी कन्यादान हेमाद्रि आदि के मत में प्रशस्त होता है ।

अथ मुहूर्तविचारः

तत्र लग्ने ग्रहबलम्—

त्रिषष्ठाऽष्टस्वर्कस्त्रिजलधनगोऽब्जः क्षितिसुत-
स्त्रिषष्ठस्थो ज्ञेज्यौ व्ययनिधनवर्ज्यौ भृगुसुतः ।
द्वितीयाब्धीष्वङ्काभ्रतनुषु रिपुत्र्यष्टसुशनि-
स्तमः केतुश्चाये भवति सुखहेतुश्च सकलः ।

लग्न से तीसरे छठे आठवें स्थान में सूर्य, तीसरे चौथे और दूसरे स्थान में चन्द्रमा, तीसरे छठे स्थान में मङ्गल, द्वादश और आठवें स्थान को छोड़ दूसरे स्थान में बुध तथा बृहस्पति, दूसरे चौथे पाचवें नवें दसवें और प्रथम में शुक्र, छठे आठवें स्थान में शनि तथा एकादश स्थान में राहु और केतु हों तो समस्त सुख देने वाले हैं ।

अथ लग्ने वर्ज्यग्रहाः

रविर्लग्ने चन्द्रस्तनुरिपुमृतिस्थः क्षितिसुतोऽ-
ष्टलग्नाभ्रे ज्ञेज्यौ निधन उशनास्त्र्यष्टरिपुषु ।
शनिः शेषौ लग्ने तनुपतिरथार्यष्टमगृहे
विवाहे स्युः सर्वे मदनसदनेनैव शुभदाः ॥ शेषौ राहुकेतू ।
अन्ये द्वादशगं चन्द्रं दृक्केशनवमांशपौ ।
षष्ठाष्टगौ बुधं चाभ्रे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥
मेषान्नक्रात्तुलात्कर्कात्त्रिर्गण्या नवमांशकाः ।
शस्ता वृषनृयुक्कर्ककन्यातुलधनुर्झषाः ॥

लग्न में सूर्य, प्रथम षष्ठ और अष्टम में चन्द्रमा, अष्टम प्रथम और दशम में मङ्गल, अष्टम बुध और बृहस्पति, तृतीय अष्टम और षष्ठ में शुक्र और शनि, राहु तथा केतु लग्न में हों, लग्न के स्वामी षष्ठ अष्टम गृह में हों, कोई भी ग्रह सप्तम में हों तो वर्ज्य है । दूसरे पण्डित लोग द्वादश स्थान में चन्द्रमा को तथा द्रेष्काण और नवमांश के स्वामी, षष्ठ और अष्टम स्थान में एवं दशम स्थान में बुध हों तो अनेक निषेध कहते हैं । मेष, मकर, तुला, कर्क, इनसे तीन बार गिनने से मेष आदि का नवमांश निकलता है । इनमें वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धन और मीन का नवमांश हो तो प्रशस्त है ।

अथैकविंशतिमहादोषाः

दुःपञ्चाङ्गचष्टमोऽसृक्सविधुखलतनुः षण्मृतीन्दुः सितोरौ
संक्रान्तिर्गण्डदोषः[1] सखलभदिनजौ चक्रचक्रार्धपातौ ।

---

१. गण्डान्त सन्धिविशेष है । वह नक्षत्रसन्धि-तिथिसन्धि-लग्नसन्धि-योगसन्धि-करणसन्धि वर्षसन्धि-अयनसन्धि-ऋतुसन्धि-माससन्धि-पक्षसन्धि-दिनसन्धि-रात्रिसन्धि-मध्याह्नसन्धि-प्रातःसन्धि-सायं

रन्ध्रे लग्नं कुवर्गोऽस्तगखल उदयास्ताशुचिः क्रूरवेधः
कर्तर्येकार्गलांघ्रिर्ग्रहणभकुलवौ दुःक्षणोत्पातभे च ॥

दुष्ट तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण ये विवाह में त्याज्य हैं। लग्न से अष्टम में मङ्गल हो और लग्न चन्द्रमा तथा पाप ग्रह से संयुत हो एवं चन्द्रमा लग्न से षष्ठ अष्टम में हो, शुक्र लग्न से षष्ठ में एवं सूर्य संक्रान्ति का दिन, लग्नगण्डान्त, तिथिगण्डान्त और नक्षत्रगण्डान्त हो, नक्षत्र पापग्रहयुक्त हो, वारज, कुलिक तथा अर्द्धयामादि दोष, एवं वैधृति व्यतीपात नामक चन्द्रमा और सूर्य का क्रान्तिसाम्य, जन्मराशि एवं जन्मलग्न से अष्टम लग्न, षड्वर्गों में पापग्रहों का आधिक्य हो, पापग्रह लग्न से सप्तम स्थान में हो, लग्न एवं नवांश अपने-अपने अधिप से युक्त तथा दृष्ट हों, उदयशुद्धि तथा लग्नांश से सप्तम लग्न और नवांश स्व स्व पतियुक्त या दृष्ट हों, अस्तशुद्धि के सदृश उदयास्त शुद्धि नहीं हो, नक्षत्र पापग्रहविद्ध हो, चन्द्रमा या लग्न से पापग्रह दूसरे एवं बारहवें में हो, विष्कम्भ, अतिगण्ड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात, परिघ, वैधृति, शूल और गण्ड ये दुर्योग, दिनके नक्षत्र से अभिजित् के सहित गणना करने पर विषम नक्षत्र पर सूर्य न होने से एकार्गल योग होता है उससे विद्ध नक्षत्र चरण हो, जिस नक्षत्र पर ग्रहण हो वह नक्षत्र जो नहीं कहा हुआ वह नवांश, दुर्मुहूर्त में हुआ हो, एवं शुक्र तथा सोमवार को नवम मुहूर्त गुरुवार को बारहवां मुहूर्त, शनिवार को प्रथम मुहूर्त दिनमें होने वाले और मङ्गलवार को सप्तम मुहूर्त इस प्रकार ये इक्कीस महादोष हैं जो शुभ में त्याज्य हैं।

अथ संकटे गोधूलम्

गोधूलं पदजातके शुभकरं पञ्चाङ्गशुद्धौ रवे-
रर्धास्तात्परपूर्वतोऽर्धघटिकं तत्रेन्दुमष्टारिगम्।
सोग्राङ्गं कुजमष्टमं गुरुयमाहःपातमर्कक्रमं
जह्याद्विप्रमुखेऽतिसंकट इदं सद्यौवनाढ्ये क्वचित् ॥

शूद्र आदि में गोधूलि लग्न शुभ होता है। पञ्चाङ्गशुद्ध गोधूलि लग्न हो तो सूर्य के आधे अस्त से परे और पहले आधी घड़ी में षष्ठ और अष्टम में चन्द्रमा नहीं हो और षष्ठ स्थान में क्रूर ग्रह न हो, एवं अष्टम में मङ्गल न हो और बृहस्पति तथा शनि का पात, सूर्यसंक्रान्ति, इन सबका गोधूलि लग्न में त्याग करे। ब्राह्मणादि वर्णों में तो अतिशय संकट में ही गोधूलि लग्न रक्खे। कहीं यौवन दशा में इसका प्रयोग कहा है।

सन्धि-निशीथसन्धि भेद से अनेकविध है। इनमें तिथि, नक्षत्र और लग्न की सन्धि नियतकाल है। इसलिये इन्हीं तीनों का दिग्दर्शन समुचित है। जैसे—

तिथियों का—पंचमी-दशमी-पंचदशी के अन्त की एक घड़ी, प्रतिपदा-षष्ठी-एकादशी के आदि की एक घड़ी अर्थात् पंचमी षष्ठी, दशमी-एकादशी, पंचदशी-प्रतिपदा इन दो-दो तिथियों के अन्तरालवर्ती सन्धिभूत दो घड़ी तिथि-गण्डान्त अशुभ है।

नक्षत्रों का—आश्लेषा-ज्येष्ठा-रेवती नक्षत्र के अंत की दो घड़ी तदुत्तर नक्षत्र मघा-मूल-अश्विनीके आदि की दो घड़ी अर्थात् रेवती-अश्विनी, आश्लेषा-मघा, ज्येष्ठा-मूल इन दो दो नक्षत्रों के अन्तरालवर्ती सन्धिभूत चार घड़ी नक्षत्र-गण्डान्त है और यह अशुभप्रद है।

लग्नों का—कर्क-वृश्चिक-मीन लग्नों के अन्त की आधी घड़ी, सिंह-धनु-मेष लग्न के आदि की आधी घड़ी अर्थात् कर्क-सिंह, वृश्चिक-धनु, मीन-मेष इन दो-दो लग्नों के अन्तरालवर्ती सन्धिभूत एक-एक घड़ी लग्न-गण्डान्त अशुभ है। अन्यान्य दोषों का विचार ज्योतिष ग्रन्थों में देखें।

अथ यथोक्तचन्द्रताराद्यभावे दानानि

चन्द्रे च शंखं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तण्डुलांश्च ।
धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे कनकं च देयम् ॥

षड्वर्गशुद्ध्यादिविचारः कालसाधनादिप्रकारः कुलिकादिस्वरूपाणि च ज्योतिर्ग्रन्थेभ्यो ज्ञातव्यानि विस्तरभयान्नेहोच्यन्ते । इति मुहूर्तविचारसंक्षेपः ।

उक्त चन्द्रतारा आदि के न होने पर दान—चन्द्रमा अनुकूल न हो तो शंख, तारा के प्रातिकूल्य में लवण, तिथि की प्रतिकूलता में चावल, करण तथा वार की प्रतिकूलता में अन्न एवं योग के अनुकूल न होने पर सुवर्ण दान किया जाय। षड्वर्गशुद्धि आदि का विचार काल साधन आदि का प्रकार और कुलिक आदि का स्वरूप ज्यौतिष के ग्रन्थों से ज्ञेय है विस्तार के डर से यहां नहीं कहे गये हैं। संक्षिप्त मुहूर्तविचार समाप्त ।

अथ विवाहाङ्गमण्डपादिविचारः

मण्डपनिर्माणाद्यङ्गजातमङ्गिनो विवाहादेरुक्तनक्षत्रादौ कार्यम् ।
कण्डनदलनयवारकमण्डपमृद्वेदिवर्णकाद्यखिलम् ।
तत्संबन्धिगतागतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात् ॥ इत्युक्तेः ।

यवारकं चिकसा इति भाषायाम्। एवं हरिद्रादिष्वङ्गेषु चन्द्रबलं नापेक्ष्यम् । विवाहाङ्गं विवाहात्प्राक् तृतीयषष्ठनवमदिनेषु [1]न कार्यम्।

मण्डप का निर्माण आदि विवाह के अङ्गसमूह अंगी-विवाह आदि के हुए नक्षत्र आदि में करना चाहिये, कूटना, पीसना, मण्डप की मिट्टी की वेदी रंगना, आदि विवाह सम्बन्धी सभी कार्य विवाह के नक्षत्रों में करे। इसी प्रकार हरदी आदि विवाह के अंगों में चन्द्रबल की अपेक्षा नहीं है। विवाह के पहिले तीसरे, छठे, नवें दिनों में विवाह के अङ्ग न करे ।

तत्र मण्डपः—षोडशद्वादशदशाष्टान्यतमसंख्यहस्तश्चतुर्द्वारः कार्यः। मण्डपे चतुर्वरकरां पञ्चवधूकरां वा वेदीं[2] चतुरस्रां सोपानयुतां प्राक्प्रवणां रम्भास्तंभादिभिः सर्वतः सुशोभितां गृहनिर्गमाद्वामभागे कुर्यात् ।

---

१. शार्ङ्गीय में विवाह के पूर्व तृतीय-षष्ठानवमदिन में वर्ज्य—'दलनकण्डनमण्डपवेदिकागृहसुमार्जनवारकमण्डपाः । करतलग्रहमध्यगतागतं तदखिलं विदधीत विवाहभे ॥ विवाहकृत्यं निखिलं विवाहभे विलोकयेन्नात्र बलं हिमद्युतेः । नवत्रिषष्ठेऽह्नि विवाहपूर्वतो नवर्णको मण्डपतैलमङ्गलम् ॥' दैवज्ञमनोहर में निषिद्ध-नक्षत्र—'चित्रा विशाखा शततारकाऽश्विनी ज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् । हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकं कण्डनमण्डपादिकम् ॥' इति ।

२. नारदोक्त वेदीनिर्माण का प्रमाण—'हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समन्ततः । स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णैर्वामभागे स्वसद्मनः । समण्डपां चतुर्दिक्षु सोपानैरुपशोभिताम् । प्रागुदक्प्रवणारम्भांस्तम्भैर्हंसशुकादिभिः । विचित्रितां चित्रकुम्भैर्विचित्रैस्तोरणाङ्कुरैः । एवंविधां समारोहेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम् ॥'

विवाहपटल में मण्डपनिर्माण का प्रमाण—'मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः । कार्यः षोडशहस्तो वा द्विषड्हस्तो दशावधि । स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता । शोभिता चित्रिता कुम्भैरासमन्ताच्चतुर्दिशम् ॥' इति ।

उसमें मण्डप इस प्रकार करे। सोलह, बारह, दस और आठ इनमें से किसी एक संख्या के हस्त प्रमाण से ४ दरवाजे वाला मण्डप बनाना चाहिये। मण्डप में वर के हाथ से ४ हाथ की या वधू के हाथ से ५ हाथ की चौकोर सीढ़ी से युक्त पूरब की तरफ द्वारवाली केले के खम्भे आदि से सुशोभित वेदी घर से निकलने के स्थान से बाईं ओर बनावे।

अथ कन्यावैधव्यहर-मूर्तिदानम्

अथ कन्याया जन्मकालीनग्रहादियोगसूचितवैधव्यपरिहारोपायः। तत्र 'मूर्तिदानम्—कन्यादेशकालौ संकीर्त्य 'वैधव्यहरं श्रीविष्णुप्रतिमादानं करिष्ये' इति संकल्प्य पलतदर्धतदर्धान्यतमप्रमाणहेमनिर्मितां विष्णुप्रतिमां चतुर्भुजां सायुधां वृतेनाचार्येणाग्न्युत्तारणादिपूर्वकं षोडशोपचारैः पूजयेत्। वस्त्रार्पणकाले पीतवस्त्रे पुष्पार्पणकाले कुमुदोत्पलमालां च दद्यात्। पूजान्ते कन्या देवं प्रणम्य मन्त्रेण दद्यात्—

कन्या के जन्मकालीन ग्रह आदि के योग से ज्ञात वैधव्य के परिहार का उपाय। उसमें मूर्त्ति का दान इस प्रकार करे। कन्या देशकाल को कह करके 'वैधव्य हरण करने वाला विष्णु प्रतिमा का दान करूँगी' ऐसा संकल्प करके एक पल या आधा पल या चौथाई पल तौल की सोने की बनाई हुई विष्णु की ४ बाहुवाली आयुधवाली प्रतिमा कीवरण किये हुए आचार्य के द्वारा अग्न्युत्तारण आदि पूर्वक षोडशोपचार से पूजा करे। वस्त्र चढ़ाने के समय पीले दो वस्त्र और पुष्प अर्पण के समय में कमल की माला दे। पूजा के अन्त में कन्या भगवान् को प्रणाम कर मन्त्र द्वारा दान करे।

यन्मया प्राचि जनुषि घ्नन्त्या पतिसमागमम्।
विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वापि विरक्तया॥
प्राप्यमाणं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम्।
वैधव्याद्यतिदुःखौघं तन्नाशय सुखाप्तये॥
बहुसौभाग्यवृद्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम्।
सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज॥ इति।

ततो यथाशक्ति हेमदक्षिणां दत्त्वा अनघाद्याहमस्मीति त्रिर्वदेत्। एवमस्त्विति विप्रोऽपि त्रिः। ततो विप्रभोजनम्।

संस्काररत्नमाला के—'आचार्यहस्तमानेन मण्डपे निर्मिते शुभे। मध्ये वेदिः प्रकर्तव्या चतुरस्रा समन्ततः॥' 'वटुहस्तमिता वेदिः' इन वचनों से व्रतबन्ध में वटु के हाथ से और विवाह में कन्या के हाथ से वेदीनिर्माण उपयुक्त है। मण्डप का निर्माण तो 'पितुरेवाचार्यत्वं नेतरस्य' इस कर्कभाष्य के अनुसार आचार्य (पिता)के हाथ से होना शास्त्रसम्मत है, वटु या कन्या के हाथ से नहीं।

२. 'विष्णुप्रतिमया सौवर्ण्या सह विवाहे विधाय प्रतिमादानं विधेयमिति पीयूषधारा। मार्कण्डेयपुराण में प्रतिमादानविधि—'शुभे मासि सिते पक्षे सानुकूलग्रहे दिने। ब्राह्मणं साधुमामन्त्र्य सम्पूज्य विविधार्हणैः। तस्मै दद्याद् विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम्॥ शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याऽथवा पुनः। निर्मितां रुचिरां शङ्खगदाचक्राब्जसंयुताम्। दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम्। सदक्षिणां च तां दद्यान्मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥' इति।

मैंने पहले जन्म में पति से समागम का हनन किया अथवा पति से विरक्त होकर उन्हें विष और शस्त्र आदि से मार डाला, उससे यश, सुख और धन का अपहरण करने वाला वैधव्य आदि अत्यन्त दुःख-समूह को प्राप्त किया है, सुख और अधिक सौभाग्यवृद्धि के लिये उसका नाश कीजिये। और सोने की बनाई हुई इस महाविष्णु की प्रतिमा आपको देती हूँ। तदनन्तर यथाशक्ति सुवर्ण दक्षिणा देकर आज मैं पापरहित हो गई, ऐसा तीन बार कहे। ब्राह्मण ऐसा ही हो तीन बार कहे। उसके बाद ब्राह्मण-भोजन कराये।

अथ वैधव्यहरः कुम्भविवाहः

विवाहकर्ता पित्रादिः 'कन्यावैधव्यहरं[1] कुम्भविवाहं करिष्ये' इति संकल्प्य नान्दीश्राद्धान्तं कृत्वा महीद्यौरित्यादिना कुम्भस्थापनान्ते तत्र वरुणप्रतिमायां वरुणं संपूज्य तत्र कलशमध्ये विष्णुप्रतिमायां विष्णुं षोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत्—

वरुणाङ्गस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय।
पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु॥
देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः। इति।

विवाह करने वाला पिता आदि 'कन्या का वैधव्य हरण करने वाला कुम्भ विवाह करूँगा' ऐसा संकल्प कर नान्दीश्राद्ध करके 'महीद्यौः' इत्यादि मन्त्र से कलशस्थापन के अन्त में उसमें वरुण की प्रतिमा में वरुण को पूजकर कलश के मध्य में विष्णुप्रतिमा में षोडशोपचार से विष्णु की पूजा कर प्रार्थना करे वरुण के अंगस्वरूप जीवन के आधार मेरी कन्या के पति को बहुत काल तक जीवन और पुत्रसुख दीजिये। हे विष्णु भगवान्! यह वर दीजिये और कन्या की दुःख से रक्षा कीजिये।

---

१. मार्कण्डेयपुराणे—'बालवैधव्ययोगे तु कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः। कृत्वा लग्नं रहः पश्चात् कन्योद्वाहयेति चापरे॥' विधानखण्ड में—'स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी। तया सह विवाहे तु पुनर्भूत्वं न जायते॥' इस वचन से पुनर्भूत्व दोष का अभाव प्रतिपादन किया है।

सूर्यारुणसंवाद में कुम्भविवाह का प्रकार—'विवाहात् पूर्वकाले च चन्द्रताराबलान्विते। विवाहोक्ते च तां कन्यां कुम्भेन सह चोद्वहेत्। सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतन्तुविधानतः। कुङ्कुमालङ्कृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे। ततः कुम्भं च निस्सार्य प्रभज्य सलिलाशये। ततोऽभिषेचनं कुर्यात् पञ्चपल्लववारिभिः॥' इति। कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः में पीयूषधाराकार ने लिखा है—'कुम्भ इत्युपलक्षणम्। तेन मन्थन्यपि ग्राह्या' इति।

सूर्यारुणसंवाद में बालवैधव्यहर अश्वत्थविवाह का प्रकार—'सुहृद्द्विजगुरून्नारीं मङ्गलोच्चारणैः समम्। आहूयोद्वाहकाले च रम्यभूमौ सुमण्डपे। गत्वा प्रणम्य गौरीं च गणनाथं च भूरुहम्। भवानीं चैव मन्थानीं पिता मन्त्रमुदीरयेत्। उद्वाहयिष्ये विधिवदश्वत्थेन मनोहराम्। कन्यां सौभाग्यसौख्यार्थहेतवेऽहं द्विजोत्तम। नमस्ते विष्णुरूपाय जगदानन्दहेतवे। पितृदेवमनुष्याणामाश्रमाय नमो नमः। वनानां पतये तुभ्यं विष्णुरूपाय भूरुह॥ नमो निखिलपापौघनाशनाय नमो नमः। पूर्वजन्मकृतं पापं बालवैधव्यकारकम्। नाशयाशु सुखं देहि कन्याया मम भूरुह।' इत्यश्वत्थेन सह विवाहसंकल्पप्रार्थने। विवाहस्तु कुम्भविवाहवद् विधेयः।

ततो विष्णुरूपिणे कुम्भायेमां कन्यां श्रीरूपिणीं समर्पयामीति समर्प्य परित्वे- त्यादिमन्त्रैरधस्तादुपरि च कुम्भं कन्यां च मन्त्रावृत्त्या परिवेष्ट्य ततः कुम्भं निःसार्य जलाशये प्रभज्य शुद्धजलेन समुद्रज्येष्ठा इत्यादिमन्त्रैः पञ्चपल्लवैः कन्यामभिषिच्य विप्रान् भोजयेदिति । इति कुम्भविवाहः ।

तदनन्तर विष्णु रूपी कलश को लक्ष्मीरूपिणी इस कन्या को समर्पण करता हूँ । इस तरह समर्पण करके 'परित्वा' इत्यादि मन्त्रों से नीचे से ऊपर तक कलश और कन्या को मन्त्र की आवृत्ति से परिवेष्टन करके उससे कलश को निकाल कर किसी जलाशय में फोड़कर शुद्ध जल से 'समुद्र- ज्येष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से पंचपल्लव द्वारा कन्या का अभिषेक कर ब्राह्मणभोजन करावे । कुम्भ- विवाह समाप्त ।

अथ वरस्य मृतभार्यात्वपरिहारोपायः

तत्र 'परिवेत्तृत्वपापान्मृतभार्यात्वं तत्पापपरिहाराय प्राजापत्यत्रयं चान्द्रा- यणत्रयं कृत्वा असकृन्मृतभार्यात्वयोगे तदुभयत्रयमावृत्त्या कृत्वा 'मृतभार्यात्व- निरासद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् अयुतसंख्यचर्वाज्यहोमं करिष्ये' इति संकल्प्या- ग्निस्थापनान्तेऽन्वाधानम् । दुर्गाग्निविष्णून् अष्टाधिकायुतसंख्याभिश्चर्वाज्याहुतिभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि ।

इसमें परिवेत्ता के पाप से स्त्री मरती है । इस पाप के परिहार के लिये तीन प्राजापत्य और तीन चान्द्रायण करके बार-बार स्त्री के मरने के योग में दोनों में प्राजापत्य और चान्द्रायण की आवृत्ति करके 'मृतभार्यात्व दोष हटाने और परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये दस हजार चरु और आज्य का होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्निस्थापन के बाद अन्वाधान करे । दुर्गा, अग्नि और विष्णु को दस हजार आठ चरु और घृत की आहुति दे । शेष से स्विष्टकृत् इत्यादि करे ।

प्रतिदैवतं तूष्णीं निरूप्य प्रोक्ष्य च त्यागकाले अष्टोत्तरायुतसंख्याहुति- पर्याप्तं चर्वाज्यद्रव्यं यथामन्त्रलिङ्गं दुर्गायै अग्नये विष्णवे च न ममेति त्यजेत् । जातवेदसे इत्यनुवाकस्य उपनिषद ऋषयः दुर्गाग्निविष्णवो देवताः त्रिष्टुप्छन्दः चर्वाज्यहोमे विनियोगः । अनुवाकानुवृत्त्या प्रत्यृचं होमः । तत्र प्रथमं चतुरधिक- पञ्चसहस्रसंख्यश्चरुहोमस्ततश्चतुरधिकपञ्चसहस्राज्यहोम इत्येवमयुतहोमः । होम- शेषं समाप्य दशविप्रान् भोजयेदिति । अथवा कस्यचिद् ब्राह्मणस्य विवाहं कुर्यात् ।

१. परिवेत्ता का मनूक्त लक्षण—'दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ।' अर्थात् बड़े भाई के अविवाहित रहने और अग्निहोत्र नहीं लेने पर जो छोटा भाई अपना विवाह और अग्निहोत्र का ग्रहण कर लेता है वह छोटा भाई परिवेत्ता और बड़ा भाई परिवित्ति कहलाता है । मनु ने परिवेत्ता आदि को नरकगामी बतलाया है—'परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥' अर्थात् परिवेत्ता, परिवित्ति, जिस कन्या से विवाह होता है वह कन्या, कन्यादाता और विवाह में होमादि कराने वाला, ये पांचों नरक जाते हैं ।

प्रत्येक देवता को चुपचाप निरूपण और प्रोक्षण करके त्याग के समय दस हजार आठ आहुति के लिये पर्याप्त चरु घृत द्रव्य उन उनके मन्त्रों से दुर्गा, अग्नि और विष्णु के लिये है मेरा नहीं, ऐसा कहकर त्याग करे। 'जातवेदसे' इत्यादि मूलोक्त विनियोग करे। अनुवाक की प्रत्येक ऋचा से हवन करे। उसमें पहले ५००४ संख्या से चरु का तदनन्तर ५००४ बार घृत का, इस प्रकार दस हजार होम करे। होम शेष को समाप्त कर दस ब्राह्मणों का भोजन करावे। अथवा किसी ब्राह्मण का विवाह करावे।

अथ मृतपुत्रत्वदोषपरिहारोपायः

अथ मृतपुत्रत्वदोषे – ब्राह्मणोद्वाहनं हरिवंशश्रवणं महारुद्रजपश्चेति त्रीणि व्यस्तानि समस्तानि वा शक्त्यपेक्षया कुर्यात्। रुद्रजपे दशांशेनाज्याक्तदूर्वाहोमः। हरिवंशश्रवणविधिरन्येऽपि विधयो विस्तरेण प्रागुक्ताः[१]।

ब्राह्मण का विवाह कराना, हरिवंश का श्रवण करना और महारुद्र का जप; ये तीन अलग अलग या सबको एक साथ अपनी शक्ति के अनुसार करे। रुद्र जप में दशांश से घी में मिले हुए दूब से होम करे। हरिवंश-श्रवण की विधि और भी अनेक विधियां पहिले विस्तारपूर्वक कह चुके हैं।

अथ कन्यादानप्रशंसा

यथाशक्तिभूषणालंकृतकन्याप्रदाताऽश्वमेधयाजी भयेषु प्राणदाता चेति त्रयः समपुण्याः।

श्रुत्वा कन्याप्रदातारं पितरः सपितामहाः।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥

इति कन्यादानप्रशंसा।

यथाशक्ति भूषणों से अलंकृत कन्या का देने वाला, अश्वमेध यज्ञ करने वाला और भय से प्राण बचाने वाला इस प्रकार ये तीनों समान पुण्य वाले हैं। पितामहों के सहित पितर लोग कन्या दान देने वाले से अपने वंश को सुनकर सब पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को जाते हैं। यह कन्या-दान की प्रशंसा है।

अथ कन्यागृहे स्त्रिया सह च भोजननिषेधः

विष्णुं जामातरं मत्वा तस्य कोपं न कारयेत्।
अप्रजायां तु कन्यायां नाश्नीयात्तस्य वै गृहे ॥

इति कन्यागृहे पित्रोर्भोजननिषेधः। विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेऽपि न दोषः। अन्यदा पत्न्या सह भोजने चान्द्रायणं प्रायश्चित्तम्।

अपने दामाद को विष्णु जानकर उसको क्रुद्ध न करे। कन्या को सन्तान न हुई हो तो उसके घर भोजन न करे। इस वाक्य से कन्या के घर में माता पिता के भोजन का निषेध है। विवाह में स्त्री के साथ भोजन में भी दोष नहीं है। अन्य समय में स्त्री के साथ भोजन करने पर चान्द्रायण प्रायश्चित्त करना चाहिये।

---

१. पुत्रोत्पत्ति न होने पर पहले गर्भाधान प्रकरण में कहा गया कर्मविपाक ग्रन्थ का विधान द्रष्टव्य है।

अथ वाग्दानादिविचारः

विवाहनक्षत्रादियुते सुदिने वरस्य पित्रादिः कन्यागृहं गत्वा 'कन्यापूजनं करिष्ये, तदङ्गत्वेन गणपतिपूजनं वरुणपूजनं च करिष्ये, इति संकल्पयेत्। कन्यापिता तु 'करिष्यमाणकन्यादानाङ्गभूतं वाग्दानं करिष्ये, तदङ्गं गणपति-पूजनं वरुणपूजनं च करिष्ये' इति सङ्कल्पयेत्। अवशिष्टः प्रयोगोऽन्यत्र ज्ञेयः।

विवाह नक्षत्र आदि से युक्त शुभदिन में वर का पिता आदि कन्या के घर जाकर 'कन्या का पूजन करूँगा, उसके अंग होने से गणेशपूजन और वरुणपूजन करूंगा' ऐसा संकल्प करे। कन्या का पिता तो 'किये जाने वाले कन्यादान के अंग वाग्दान करूँगा और उसके अंग गणपतिपूजन और वरुण पूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करे। शेष प्रयोग दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिये।

अथ विवाहसंकल्पादि

अथ विवाहदिने तत्पूर्वदिने[1] वा वध्वा हरिद्रातैलादिना मङ्गलस्नानं कारयित्वा तच्छेषहरिद्रादिना वरस्य मङ्गलस्नानं कारणीयमित्याचारः। एवं वरस्य पित्रादिः पत्न्या संस्कार्येण च सहकृताभ्यङ्गस्नानोऽहतवासाः[2] प्राङ्मुख उपविश्य स्वदक्षिणे पत्नीं तद्दक्षिणे संस्कार्यमुपवेश्य देशकालौ संकीर्त्य 'ममास्य पुत्रस्य दैवपित्र्यऋणापाकरणहेतुधर्मप्रजोत्पादनसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्री-त्यर्थं विवाहाख्यं संस्कारकर्म करिष्ये, तदङ्गत्वेन स्वस्तिवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं नन्दिन्यादिमण्डपदेवतास्थापनं च करिष्ये' तदादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजां करिष्ये' इति पुत्रविवाहे संकल्पः।

अब विवाह के दिन या विवाह से पहिले दिन वधू को हरदी तेल आदि से मंगलस्नान कराके

---

१. निर्णयसिन्धौ ज्योतिर्निबन्धे नारदः—'कर्तव्यं मङ्गलेष्वादौ मङ्गलायाङ्कुरार्पणम्। नवमे सप्तमे वाऽपि पञ्चमे दिवसेऽपि वा॥ तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये। सम्यग्गृहाण्यलङ्कृत्य वितानध्वजतोरणैः॥ सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम्। तत्र मृत्सिकतां श्लक्ष्णां गृहीत्वा पुनरागतः॥ मृन्मयेष्वथवा वैणवेषु पात्रेषु योजयेत्। अनेकबीजसंयुक्तां तोयपुष्पोपशोभिताम्॥' शौनकः—'आधानं गर्भसंस्कारं जातकर्म च नाम च। हित्वाऽन्यत्र विधातव्यं मङ्गलेऽङ्कुरवापनम्॥' बृहस्पतिः—'आत्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योऽङ्कुरार्पणम्।' तत्रैव वाग्दानं हरिद्रावन्दनं च कार्यम्।' इति विशेषः।

२. अहत का कश्यपोक्त लक्षण—'अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयंभुवा। शस्तं तन्मा-ङ्गलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा॥' गृह्यपरिशिष्टे—'सकृद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्। अहतं तद् विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम्॥' इति।

दक्षिण भाग में पत्नी का उपवेशन करे—'व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थीसहभोजने करे। व्रते दाने मखेश्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे॥ सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः शुभा। अभिषेके विप्रपादक्षालने चैव वामतः॥' धर्मप्रवृत्तौ—'जातके नामके चैव ह्यन्नप्राशनकर्मणि। तथा निष्क्रमणे चैव पत्नी पुत्रश्च दक्षिणे॥ गर्भाधाने पुंसवने सीमन्तोन्नयने तथा। वधूप्रवेशने चैव पुनः-सन्धान एव च॥ प्रदाने मधुपर्कस्य कन्यादाने तथैव च। कर्मस्वेतेषु भार्या वै दक्षिणे तूपवेशयेत्॥' इति। यहाँ 'पत्नी पुत्रश्च दक्षिणे' में पुत्र शब्द के उपलक्षण होने से वह कन्या का भी बोधक है।

बचे हुए हलदी आदि से वर का मंगलस्नान करावे, यह आचार है। इसी प्रकार वर के पिता आदि पत्नी का और जिसके साथ विवाह संस्कार करते हैं उस वर का साथ ही अभ्यंग स्नान कराके नया वस्त्र पहिन पूरब मुख बैठकर अपने दक्षिण ओर पत्नी और उसके दक्षिण तरफ जिसका संस्कार करना है ऐसे वर को बैठा देशकाल को कहकर 'मेरे इस पुत्र का दैव और पितृ ऋण हटाने के लिये तथा धर्म-प्रजोत्पादनसिद्धि के द्वारा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये विवाह नामक संस्कार करूँगा, उसके अंग स्वस्तिवाचन, मातृकापूजन, नान्दीश्राद्ध और नन्दिनी आदि मण्डप देवता का स्थापना करूंगा, उसके पहले निर्विघ्नता के लिये गणेश की पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प पुत्रविवाह में करे।

कन्याविवाहे तु जातकर्मादिलोपे 'ममास्याः कन्यायाः जातकर्मनामकर्मसूर्यावलोकननिष्क्रमणोपवेशनान्नप्राशनचौलसंस्काराणां बुद्धिपूर्वकलोपजन्यप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारमर्धकृच्छ्रं चूडायाः कृच्छ्रं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतदानेनाहमाचरिष्ये।' गर्भाधानसीमन्तयोर्लोपे तयोरप्यूहः। ततो 'ममास्याः कन्यायाः भर्त्रा सह धर्मप्रजोत्पादनद्रव्यपरिग्रहधर्माचरणेष्वधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विवाहाख्यं संस्कारं करिष्ये, इति विशेषः। शेषं पूर्ववत्।

कन्या के विवाह में तो जातकर्म आदि संस्कार न होने पर 'मेरी इस कन्या के जातकर्म, नामकर्म, सूर्यावलोकन, निष्क्रमण, उपवेशन, अन्नप्राशन और चौल संस्कारों के जानबूझकर न करने से उस पाप को हटाने के लिये प्रत्येक संस्कार के लिये अर्द्धकृच्छ्र, चूड़ा के लिए एक कृच्छ्र या इसके बदले में उसका मूल्य यथाशक्ति चांदी के दान से मैं करूँगा।' गर्भाधान और सीमन्त के न होने पर इन दोनों की भी संकल्प में योजना करे। तदनन्तर 'मेरी इस कन्या का पति के साथ धर्म-प्रजोत्पादन, द्रव्य का परिग्रहण, धर्माचरणों में अधिकारसिद्धि के द्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थ विवाह नामक संस्कार करूँगा' इतना विशेष है। शेष पूर्ववत्।

भ्राता मम भ्रातुरिति भगिन्या इति वा। पितृव्यादिः कर्ता मम भ्रातृसुतस्य भ्रातृकन्याया इति वा संकल्पोहं कुर्यात्। वरवध्वोः स्वयंकर्तृत्वे मम दैवपित्र्यऋणेत्यादि मम भर्त्रा सहेत्यादि च संकल्पः।

अपने भाई की कन्या का संस्कार यदि भाई करता है तो 'मम भ्रातुः' ऐसी संकल्प में योजना करे। भाई यदि बहिन का संस्कार करता है तो 'मम भगिन्याः' ऐसा संकल्प करे। चाचा आदि भतीजा या भतीजी का संस्कार करता है तो 'मम भ्रातृसुतस्य' या 'भ्रातृकन्यायाः' ऐसी संकल्प की कल्पना करे। वर वधू यदि स्वयं अपना विवाह करे तो 'मम दैवपित्र्यऋणापाकरणाय' इत्यादि और 'भर्त्रा सह' इत्यादि संकल्प करे।

केचित्स्वस्तिवाचनकाले कन्यादानादिकाले वा प्रधानविवाहसंस्कारसंकल्पं न कुर्वन्ति स प्रमाद इति बहवः। अन्ये तु कन्यादानविवाहहोमादिसंकल्प एव प्रधानसंकल्पस्तदतिरिक्तविवाहपदार्थाभावादित्याहुः।

कुछ लोग स्वस्तिवाचन के समय या कन्यादान आदि काल में प्रधान विवाहसंस्कार का संकल्प नहीं करते हैं, यह उनकी गलती है, ऐसा बहुत से कहते हैं। अन्य लोग तो कन्यादान, विवाह-होम आदि का संकल्प ही प्रधान संकल्प है, क्योंकि उसके अतिरिक्त विवाह-पदार्थ ही कोई नहीं है, ऐसा कहते हैं।

अथ नान्दीश्राद्धे देवताविचारः

[1]मातृकापूजान्ते मृतपितृमातृमातामहो वरवध्वोः पिता स्वपित्राद्युद्देश्यक-पार्वणत्रययुतं नान्दीश्राद्धं कुर्यादित्यसंदिग्धम् ।

मातृकापूजा के अन्त में वर वधू के पिता जिनके पिता, माता और नाना मर गये हैं वे अपने पिता आदि के उद्देश्य से तीन पार्वण से युक्त नान्दीश्राद्ध करें, इसमें सन्देह नहीं है ।

अथ जीवत्पित्रादीनां नान्दीश्राद्धे निर्णयः

मातर्येव जीवन्त्यां तत्पार्वणलोपः । मातामहमात्रजीवने तत्पार्वणमात्रलोपः । तथा चोभयत्र पार्वणद्वयेनैव नान्दीश्राद्धसिद्धिः । मातृमातामहयोर्जीवने पितृपार्व-

---

१. शातातपः—'अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत् । तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः ॥' कूर्मपुराणे—'पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि । पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः ॥' छन्दोगपरिशिष्टे—'कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः । पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥ प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु । अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ।' रेणुकारिकायाम्—'उक्तकाले विवाहाङ्गं कुर्यान्नान्दीमुखं पिता । देशान्तरे विवाहश्चेत्तत्र भवेदिदम् ॥'

ब्रह्मपुराण में नान्दीश्राद्ध के निमित्त—'जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च । पितॄन्नान्दीमुखान्नाम तर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥ वेदव्रतेषु चाधानयज्ञपुंसवनेषु च । नवान्नभोजने स्नाने ऊढायाः प्रथमार्तवे ॥ देवारामतडागादिप्रतिष्ठासूत्सवेषु च । राजाभिषेके बालान्नभोजने वृद्धिसंज्ञकान् ॥ वनस्थाद्याश्रमं गच्छन् पूर्वेद्युः सद्य एव वा ॥ पितॄन् पूर्वोक्तविधिना तर्पयेत् कर्मसिद्धये ॥' शातातपः-'मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितॄणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥' निर्णयसिन्धु में नान्दीश्राद्ध करने का दिन-निर्देश—'एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः । त्रिषट् चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते ॥'

नान्दीश्राद्ध का गार्ग्योक्त काल—'मातृश्राद्धं तु पूर्वेद्युः कर्माहनि तु पैतृकम् । मातामहं चोत्तरेद्युर्वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥' अशक्ति में वृद्धशातातपोक्त काल—'पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धं मध्याह्ने पैतृकं तथा । ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥' इसमें भी अशक्तता हो तो गार्ग्यने कहा है—'पृथग् दिनेष्वशक्तश्चेदेकस्मिन् पूर्ववासरे । श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम् ॥' वृद्धमनुः—'अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः । पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम् ॥'

सांकल्पिक नान्दीश्राद्ध में गोत्रनामाद्युच्चारण का भविष्योक्त निषेध वचन है—'शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेत् । अनस्मद्‌शब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम् ॥ अनाम्नामतिलाद्यैश्च नान्दीश्राद्धं च सव्यवत् ॥'

एक ही दिन अनेक पुत्रों के संस्कार करने में एक स्थान, काल और कर्ता के ऐक्य से नान्दीश्राद्ध एक तन्त्र से एक ही बार करने का छन्दोगपरिशिष्ट में विधान है—'गणशः क्रियमाणानां मातृभ्यः पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥' भविष्यपुराण के—'पिण्डनिर्वपणं कुर्यान्नवा कुर्याद्विचक्षणः । वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु ॥' इस वचन से पाक्षिक सपिण्डक नान्दीश्राद्ध में गोत्रनामाद्युच्चारण का छन्दोगपरिशिष्टोक्त विधान है—'गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत् । नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते ॥' वसिष्ठः—'प्राङ्मुखो दैवतीर्थेन प्राक्कूलेषु कुशेषु च । दत्त्वा पिण्डान्न कुर्वीत पिण्डपात्रमधो मुखम् ॥' इति । गर्भाधान प्रकरण में नान्दीश्राद्ध सम्बन्धी अवशिष्ट वचन सुधाविवृति में देखें ।

णेनैव तत्सिद्धिः । पितृप्रपितामहमृतौ पितामहजीवने च पितृप्रपितामहतत्पितॄनुद्दिश्य पितृपार्वणम् । तथा च पितृप्रपितामहतत्पितरो नान्दीमुखा इदं वः पाद्यमित्यादिप्रयोगः । प्रपितामहमात्रजीवने पितृपितामहतत्पितामहा इत्युद्देशः । पितृमृतौ पितामहप्रपितामहजीवने पितुः पितामहस्य पितामहप्रपितामहौ च नान्दीमुखा इत्युच्चारः ।

माता के जीते रहने पर उनका पार्वण नहीं होगा । केवल नाना के जीवित रहने पर उनका केवल पार्वण न होगा । इस प्रकार दोनों जगह दो पार्वण से ही नान्दीश्राद्ध की सिद्धि होती है । माता और नाना दोनों के जीवित रहने पर पिता के पार्वण से ही नान्दीश्राद्धकी सिद्धि होती है । पिता और प्रपितामह के मरने पर और पितामह के जीते हुए भी पिता, प्रपितामह और उनके पिता के उद्देश्य से पितृपार्वण होता है । इस प्रकार पिता पितामह और उनके पितृगण नान्दीमुख यह आप सब का पाद्य है इत्यादि प्रयोग होता है । प्रपितामह केवल जीते रहें तो पिता पितामह और उनके पितामह इस उद्देश्य से पार्वण करे । पिता मर गये हों, पितामह और प्रपितामह जीते हों तो पिता के पितामह का और पितामह; प्रपितामह का 'नान्दीमुखा' ऐसा उच्चारण करना चाहिये ।

एवं मातृमरणे पितामहीमात्रजीवने मातुः पितुः पितामह्योप्रपितामह्यौ च नान्दीमुख्य इत्युच्चारः । प्रपितामहीमात्रजीवने मातृपितामह्यौ पितुः प्रपितामही च नान्दीमुख्य इत्युच्चारः । पितामहीप्रपितामह्योर्जीवने मातुः पितामहस्य पितामहीप्रपितामह्यौ चेत्युच्चारः । मुख्यमातृजीवने सापत्नमातृमरणेऽपि न मातृपार्वणम् ।

इसी तरह माता के मरने पर केवल पितामही के जीते रहने पर 'मातुः पितुः पितामहीप्रपितामह्यौ च नान्दीमुख्यः' ऐसा उच्चारण करे । केवल प्रपितामही के जीते रहने पर 'मातृपितामह्यौ पितुः प्रपितामही च नान्दीमुख्यः' ऐसा उच्चारण करे । पितामही प्रपितामही के जीते रहने पर 'मातः पितामहस्य पितामहीप्रपितामह्यौ च' ऐसा उच्चारण करे । मुख्य माता के जीते रहने पर सौतेली माता के मरने पर भी मातृपार्वण नहीं होता ।

एवं मुख्यपितामहीजीवने पितामह्याः सपत्नीमृतावपि तया सह न मातृपार्वणं, किंतु पूर्वोक्त एवोच्चारः । एवं प्रपितामहीसपत्नीविषयेऽपि । एवं मुख्यमातामहीजीवने तत्सपत्न्यादिमरणेऽपि न मातामहादीनां सपत्नीकत्वेनोच्चारः, किंतु केवलानामेव । दर्शादौ मातृजीवने सापत्नमातुर्मृतौ केवलानामेव पित्रादीनामुद्देश इति सिद्धान्तात् ।

इसी प्रकार मुख्य पितामही के जीते रहने पर पितामही की सौत के मरने पर भी उसके साथ पार्वण नहीं होता, किन्तु पहले कहे हुए के अनुसार उच्चारण करे । इसी तरह प्रपितामही की सौत के विषय में भी । एवं मुख्य मातामही की जीते हुए उसकी सौत के मरने पर भी मातामह आदि का सपत्नीकत्व से उच्चारण नहीं होगा, किन्तु केवल मातामह आदि का उच्चारण होगा । कारण कि दर्शादि श्राद्ध में माता के जीवित रहने और सौतेली माँ के मरने पर केवल पिता आदि के ही उच्चारण करने का सिद्धान्त है ।

अथ मातामहमृतौ मातुः पितामहजीवने मातामहतत्पितामहप्रपितामहा इत्युच्चारः। मातुः प्रपितामहमात्रजीवने मातामहमातृपितामहौ मातामहस्य प्रपितामहश्च नान्दीमुखा इत्युच्चारः। द्वयोर्जीवने मातामहमातुः पितामहस्य पितामहप्रपितामहौ च नान्दीमुखा इत्युच्चारः।

मातामह (नाना) के मरने और माता के पितामह के जीवित रहने पर मातामह उसके पितामह प्रपितामह नान्दीमुख का उच्चारण करे। माता के केवल प्रपितामह के जीते रहने पर मातामह और माता का पितामह और मातामह का प्रपितामह नान्दीमुख ऐसा उच्चारण करे। दोनों के जीवित रहने पर मातामह और माता का पितामह प्रपितामह नान्दीमुख का उच्चारण करे।

अथ जीवत्पितृकादिदेवताविचारः

अथ जीवत्पितृको मृतमातृमातामहश्च विवाहोपनयनजातकर्मादिषु पुत्रसंस्कारेषु मातृमातामहपार्वणद्वयमेव कुर्यात्। मातर्यपि जीवत्यां [1]मातामहपार्वणमेव। मातामहजीवने मातृमरणे जीवत्पितृकः सुतसंस्कारे मातृपार्वणमेव देवरहितं कुर्यात्। त्रिष्वपि जीवत्सु सुतसंस्कारे पितुः पित्रादीनुद्दिश्य पार्वणत्रयं कुर्यात्। त्रिष्वपि जीवत्सु सुतसंस्कारे नान्दीश्राद्धलोप एवेति पक्षान्तरं ग्रन्थारम्भे उक्तम्।

जिसके पिता जीते हों, माता और नाना मर गये हों तो विवाह, उपनयन और जातकर्म आदि पुत्र-संस्कारों में माता और मातामह का दो पार्वण ही करे। माता यदि जीवित हो तो मातामह का पार्वण ही करे। मातामह के जीते रहने और माता के मर जाने पर जीवत्पितृक अपने पुत्र-संस्कार में देवरहित मातृपार्वण ही करे। तीनों के जीते रहने पर अपने पुत्र के संस्कार में पिता के पिता आदि तीन के उद्देश्य से तीन पार्वण करे। तीनों के जीते रहने पर अपने पुत्र के संस्कार में नान्दीश्राद्ध का लोप ही होता है, इस दूसरे पक्ष को ग्रन्थ के आरंभ ही में कहा है।

द्वितीयविवाहसमावर्तनाधानादिषु स्वसंस्कारेषु नान्दीश्राद्धं कुर्वन् जीवत्पितृकः पितुः पित्रादीनुद्दिश्य पार्वणत्रयं कुर्यात्। पितुर्मातृपितामहीप्रपितामह्यः पितुः पितृपितामहप्रपितामहाः पितुर्मातामहमातुः पितामहमातुः प्रपितामहा नान्दीमुखा इति तत्रोच्चारः। अत्र पितुर्मात्रादिजीवने तत्पार्वणलोपः। मृतपितृकस्तु स्वपित्रादीनुद्दिश्येति त्वसंदिग्धम्। पितृपितामहयोर्जीवने पितामहस्य मात्रादिपार्वणत्रयोद्देशः। त्रयाणां जीवने पितृपार्वणलोपः। तत्र सुतसंस्कार इव स्वसंस्कारे मातृमातामहयोः पार्वणाभ्यामेव नान्दीश्राद्धसिद्धिः। पित्रादित्रयजीवने मातृमातामहयोश्च जीवने प्रपितामहस्य पित्रादिपार्वणत्रयोद्देशेन नान्दीश्राद्धम्।

द्वितीय विवाह, समावर्तन और आधान आदि अपने संस्कारों में नान्दीश्राद्ध करता हुआ जीवत्पितृक अपने पिता के पिता आदि तीन के उद्देश्य से तीन पार्वण करे। पिता की माता, पितामही

---

१. गृह्यपरिशिष्टे—'जीवत्पितृकः सुतसंस्कारेषु मातृमातामहयोः कुर्यात्तस्यां जीवन्त्यां मातामहस्यैव कुर्यात्' इति।

और प्रपितामही, पिता के पिता पितामह और प्रपितामह, पिता के मातामह, माता के पितामह, माता के प्रपितामह ऐसा नान्दीमुखमें उच्चारण करे। इसमें पिता की माता आदि के जीते रहने पर उनके पार्वण का लोप होता है। मृतपितृक तो अपने पिता आदि तीन के उद्देश्य से नान्दीश्राद्ध करे, इसमें सन्देह नहीं है। पिता पितामह के जीते रहने पर पितामह की माता आदि का तीन पार्वण के उद्देश्य से उच्चारण करे। तीनों के जीते रहने पर पितृपार्वण का लोप होता है। उसमें पुत्रसंस्कार की तरह अपने संस्कार में माता और मातामह के दो पार्वण ही से नान्दीश्राद्ध की सिद्धि होती है। पिता आदि तीनों के जीते रहने और माता तथा मातामह के जीते रहने पर प्रपितामह के पिता आदि तीन के उद्देश्य से नान्दीश्राद्ध होता है।

एवं प्रथमविवाहेऽपि कर्त्रन्तराभावाद्वर एव नान्दीश्राद्धं कुर्वन् मृतपितृकः स्वपित्रादीनुद्दिश्य' 'जीवत्पितृकस्तु पितुः पित्रादीनुद्दिश्य कुर्यात्। जीवत्पितृपितामहस्तु पितामहस्य पित्रादिपार्वणत्रयोद्देशेन, प्रपितामहस्यापि जीवने प्रपितामहस्य पित्रादिपार्वणत्रयोद्देशेन वा पितृपार्वणलोपेन वा नान्दीश्राद्धम्। अत्र सर्वत्र पितुः पितामहादेर्वा पित्रादिपार्वणोद्देशपक्षे स्वमातृमातामहयोर्मरणेऽपि न स्वमातृमातामहयोः पार्वणं, किंतु पित्रादेर्मातृमातामहयोरेवेति ज्ञेयम्। इति जीवत्पितृकनान्दीश्राद्धप्रयोगः।

इसी प्रकार प्रथम विवाह में भी दूसरे करने वाले के अभाव से वर ही नान्दीश्राद्ध करता हुआ मृतपितृक अपने पिता आदि तीन के उद्देश्य से उच्चारण करे। जीवत्पितृक तो अपने पिता के पिता आदि के उद्देश्य से करे। जिसके पिता पितामह दोनों जीते हों वह तो पितामह के पिता आदि तीन के उद्देश्य से करे। प्रपितामह के भी जीते रहने पर प्रपितामह के पिता आदि तीन का तीन पार्वण के उद्देश्य से अथवा पितृपार्वण के लोप करके नान्दीश्राद्ध करे। यहाँ सर्वत्र पिता और पितामह आदि के पिता आदि के पार्वण के उद्देश्य पक्ष में अपनी माता और मातामह के मरने पर भी अपनी माता और मातामह का पार्वण न करे, किन्तु पिता आदि की माता और मातामह ही का करे, यह जानना चाहिये। जीवत्पितृक नान्दीश्राद्ध का प्रयोग समाप्त।

अथ पित्रन्यकर्तृकनान्दीश्राद्धम्

यदा तु कन्याविवाहं पुत्रस्योपनयनं प्रथमविवाहं च पितृव्यमातुलादिः करोति तदा संस्कार्यस्य मृतपितृकत्वे अस्य संस्कार्यस्य पितृपितामहप्रपितामहा

१. हेमाद्रि में विष्णु का वचन है—'पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां, पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः, पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात्। यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय प्रपितामहात्पराभ्यां दद्यात्। यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामहप्रपितामहाय दद्यात्।' 'मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद् विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्॥'

यज्ञपार्श्वे—'जीवेत् पितामहो यस्य पिता चान्तरितो भवेत्। पितुरेकस्य दातव्यमेवमाहुर्मनीषिणः॥' जीवित पितामह के विषय में सत्यव्रत ने कहा है—'पितामहे स्थिते यस्य पिता यदि विपद्यते। द्वौ पिण्डावेकनामानावेकश्च प्रपितामहे॥ द्वौ पिण्डौ पितृनाम्नैव दद्याज्जीवत्पितामहः। प्रपितामहस्य चैवेकं पितुः प्रत्याब्दिकादिषु॥' इति।

इत्यादिप्रयोगं कुर्यात् । सोदरभ्रातुर्नोच्चारे विशेषः, भ्रातुः पित्रादीनां संस्कार्यपित्रादीनां चैक्यात् । सापत्नभ्राता तु संस्कार्यस्य मातृपितामहीप्रपितामह्य इत्याद्युच्चारयेत् । संस्कार्यमातृजीवने तत्पार्वणलोपः ।

जब कन्या का विवाह, पुत्र का उपनयन और प्रथम विवाह चाचा या मामा इत्यादि करते हों तब जिसका संस्कार किया जा रहा हो उसके पिता मर गये हों तो ऐसी स्थिति में इस संस्कार्य का पिता-पितामह-प्रपितामह ऐसा प्रयोग करे। सहोदर भाई कर्ता हो तो उच्चारण में कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि भाई और संस्कार्य के पिता आदि का ऐक्य है। सौतेला भाई तो जिसका संस्कार किया जा रहा है उसकी माता, पितामही, प्रपितामही इत्यादि उच्चारण करे। संस्कार वाले की माता के जीते रहने पर उसके पार्वण का लोप होता है।

संस्कार्यस्य जीवत्पितृकत्वे मातुलादिः कर्ता संस्कार्यपितुः मातृपितामहीप्रपितामह्यः संस्कार्यपितुः पितृपितामहप्रपितामहा इत्याद्युच्चार्य तत्पितुः पित्रादिपार्वणत्रयं कुर्यात् । संस्कार्यस्य पितृपितामहयोर्जीवने मातुलादिः संस्कार्यस्य पितुर्मात्रादीन् मातामहादींश्चोद्दिश्य पार्वणद्वयं कुर्यात् । पितुर्वर्गद्वयाद्यजीवने एकैकवर्गपार्वणम् । पितुर्वर्गत्रयाद्यजीवने मातुलादिः पितामहस्य मात्रादिपार्वणत्रयोद्देशं कुर्यात् ।

संस्कार्य के पिता जीते हों और संस्कार करने वाला मामा आदि हो तो संस्कार्य के पिता की माता, पितामही, प्रपितामही तथा संस्कार्य के पिता के पिता, पितामह, प्रपितामह इत्यादि उच्चारण करके उसके पिता के पिता आदि का तीन पार्वण करे। संस्कार्य के पिता, पितामह के जीते रहने पर मामा आदि सस्कार वाले के पिता माता आदि और मातामहादि के उद्देश्य से दो पार्वण करे। पिता के वर्गद्वय के नहीं जीते रहने पर एक एक वर्ग का पार्वण करे। पिता के तीनों वर्ग आदि के नहीं जीते रहने पर मातुल आदि—पितामह की माता आदि का तीन पार्वण के उद्देश्य से करे।

पितामहस्य मात्रादिजीवने तत्पार्वणलोपः पूर्ववत् । पितृव्ये जीवत्पितृकसंस्कारकर्तरि नोच्चारे विशेषः, संस्कार्यपितुः पित्रादीनां पितृव्यस्य पित्रादीनां चैक्यात् । पितामहस्य संस्कर्तृत्वे संस्कार्यपितृमरणे संस्कार्यस्य पितः मम पितृपितामहौ च नान्दीमुखाः संस्कार्यस्य मात्रादयो मातामहादयश्चेत्याद्युच्चारः । संस्कार्यपितृजीवने पितामहः कर्ता स्वमातृपितृमातामहपार्वणानि ममेति पदरहितानि तत्सहितानि वोच्चारयेत् । एवं प्रपितामहे कर्तर्यपि योज्यम् ।

पितामह की माता आदि के जीते रहने पर उसके पार्वण का लोप पहले की तरह होगा। जीवत्पितृक का संस्कार यदि चाचा करता हो तो उसके उच्चारण में कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि संस्कार किये जाने वाले के पिता के पिता आदि का और चाचा के पिता आदि का ऐक्य है। जिसका संस्कार किया जा रहा है उसके पिता के मरने पर पितामह संस्कार करने वाला हो तो संस्कार्य का मेरे पिता पितामह नान्दीमुख हैं संस्कार वाले के माता आदि और मातामह आदि, ऐसा उच्चारण करे। संस्कार वाले के पिता के जीते रहने पर पितामह कर्ता हों तो अपने माता पिता और नाना के पार्वण में 'मम' इस पद से रहित या सहित का उच्चारण करे। इस प्रकार प्रपितामह के कर्ता होने पर भी योजना कर ले।

दातुमशक्नुवता कन्यादानाधिकारिणा त्वं कन्यादानं कुर्विति [1]प्रार्थितो यः परकीयकन्यां दातुमिच्छति यश्च सुवर्णेनात्मीयां कृत्वा अनाथां ज्ञात्वा वाऽन्यकन्यां दातुमिच्छति सोऽपि संस्कार्यायाः कन्यायाः पित्रादीनुच्चारयेत्। तस्याः पितृजीवने तदीयमात्रादीन् तस्या वर्गत्रयाद्यजीवने पितुः पित्रादीनिति यथासंभवमूह्यम्। इति पित्रन्यकर्तृकनान्दीश्राद्धप्रयोगः।

कन्यादान का अधिकारी दान करने में असमर्थ होकर किसी अन्य से प्रार्थना करता है कि तुम कन्यादान करो तो वह प्रार्थित-व्यक्ति जो दूसरे की कन्या का दान करना चाहता है और जो सोना देकर अपनी कन्या बनाकर अथवा अनाथ जानकर अन्य कन्या का दान करना चाहता है वह भी संस्कार्य कन्या के पिता आदि का उच्चारण करे। उस कन्या के पिता के जीते रहने पर उसकी माता आदि का उसके तीनों वर्ग के पुरुष के नहीं जीते रहने पर पिता के पिता आदि की जैसा उचित हो कल्पना कर ले। पिता से भिन्न कर्ता के नान्दीश्राद्ध का प्रयोग समाप्त।

अथ दत्तककर्तृत्वे व्यवस्था

दत्तकन्याया विवाहं कुर्वन् प्रतिग्रहीता पिता स्वपित्रादीनुद्दिश्यैव कुर्यात्। दत्तकस्तु पुत्रो यदि अधिकार्यन्तराभावाल्लब्धजनकपितृधनस्तदा जनकपित्रादीन् प्रतिग्रहीतृपित्रादींश्च पितरौ पितामहौ प्रपितामहौ च नान्दीमुखा इत्येवमुच्चार्य श्राद्धं कुर्यात्। एवं मातृपार्वणे मातामहपार्वणे च द्विवचनप्रयोग ऊह्यः।

दत्त कन्या का विवाह करने वाला प्रतिग्रहीता पिता अपने पिता आदि के उद्देश्य से ही करे। दत्तक पुत्र तो दूसरे अधिकारी के न होने से पिता से यदि धन प्राप्त किया हो तो वह अपने पैदा करने वाले पिता आदि का और प्रतिग्रहीता के पिता आदि का 'पितरौ पितामहौ प्रपितामहौ च नान्दीमुखाः' ऐसे ही उच्चारण करके श्राद्ध करे। ऐसे ही मातृपार्वण और नाना के पार्वण में द्विवचन का प्रयोग कल्पनीय है।

यदि तु जनकधनग्रहणेऽधिकार्यन्तरसत्त्वादलब्धजनकधनस्तदा प्रतिग्रहीतृपित्रादीनेवोद्दिश्य कुर्यान्न पितृद्वयोद्देशेन। अत्र सर्वत्र संभ्रमेण क्वचित्क्वचिन्मातृपार्वणपितृपार्वणयोः क्रमवैपरीत्यपातेऽपि स क्रमो न विवक्षितः।

यदि पिता के धन लेने में दूसरा कोई अधिकारी हो इस कारण पिता का धन नहीं प्राप्त किया हो तब प्रतिग्रहीता के पिता आदि के उद्देश्य से श्राद्ध करे, दोनों पिताओं के उद्देश्य से न करे। यहाँ सर्वत्र कहीं-कहीं मातृपार्वण और पितृपार्वण में भ्रम से विपरीत क्रम हो गया हो वह क्रम विवक्षित नहीं है।

अथ पार्वणक्रमादिकम्

सर्वत्र नादीश्राद्धेषु [2]पूर्वं मातृपार्वणं ततः पितुः पार्वणं ततो मातामह-

---

१. प्रार्थित व्यक्ति यदि वह असगोत्र भी हो तो धर्मबुद्धि से उस परकीय-कन्या का दान करे जैसा मदनरत्न में स्कन्द का वचन है—'आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम्। धर्मेण विधिना दानमसगोत्रेऽपि युज्यते॥' इति।

२. नान्दीश्राद्ध में शातातपोक्त मातृपूर्वक श्राद्ध का निर्देश है—'मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितृणां तदनन्तरम्। ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥' इति।

स्येति क्रमस्य निश्चितत्वात्। बह्वृचकात्यायनैर्मातृपितामहीप्रपितामह्य इत्यादिनाऽऽनुलोम्येन पार्वणत्रयेऽप्युच्चारः। तैत्तिरीयादिभिस्तु प्रपितामहपितामहपितर इत्येवमादिना व्युत्क्रमेणोच्चारः कार्यः।

सब नान्दीश्राद्धों में पहले मातृपार्वण, उसके बाद पितृपार्वण, उसके बाद नाना का पार्वण, इस क्रम का निश्चय है। बह्वृच कात्यायन वाले माता-पितामही-प्रपितामही इत्यादि आनुलोम्य से तीनों पार्वण में उच्चारण करें। तैत्तिरीय आदि वाले तो प्रपितामह, पितामह और पिता इस प्रकार विपरीत से उच्चारण करें।

एकसंस्कार्यस्यानेकसंस्काराणां सहानुष्ठाने नान्दीश्राद्धं सकृदेव। एवं यमलयोर्द्वयोः पुत्रयोः कन्ययोर्वा विवाहोपनयनादिसंस्काराणां सहैवानुष्ठानेऽपि नान्दीश्राद्धं सकृदेव। यमलयोः संस्काराणामेकमण्डपे एककाले एकेन कर्त्रा सहकरणे दोषो[1] नेत्युक्तम्।

एक संस्कार वाले के स्थान में अनेक संस्कारों को साथ करने में एक ही बार नान्दीश्राद्ध होता है। इसीतरह यमल (जोडुवां) पुत्र और यमल कन्या के विवाह आदि संस्कारों को साथ ही करने पर नान्दीश्राद्ध एक ही बार करे। जोडुवां के संस्कारों को एक मण्डप में एक समय और एक ही कर्ता द्वारा साथ करने में दोष नहीं है, ऐसा कह चुके हैं।

अथ नान्दीश्राद्धेऽन्नाद्यनुकल्पाः

नान्दीश्राद्धे अन्नाभावे[2] आममामाभावे हिरण्यं दद्यात्। हिरण्याभावे युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तान्ननिष्क्रयीभूतं यथाशक्ति किंचिद् द्रव्यं स्वाहा न ममेति वदेत्। अन्यः सर्वोऽपि विशेषो गर्भाधानप्रकरणे विस्तरेणोक्तस्तत एवानुसन्धेयः। इति नान्दीश्राद्धम्।

नान्दीश्राद्ध में अन्न के अभाव में कच्चा अन्न, कच्चा अन्न के अभाव में सुवर्ण दे। सुवर्ण के न होने पर 'युग्म-ब्राह्मणभोजन-पर्याप्तामान्न-निष्क्रयीभूतं यथाशक्ति किञ्चिद् द्रव्यं स्वाहा न मम' ऐसा कहे। अन्य सब विशेषताएं गर्भाधान प्रकरण में विस्तार से कहा है वहीं से जानना चाहिये। नान्दीश्राद्ध समाप्त।

ततो मण्डपदेवतास्थापनं ग्रहयज्ञश्च स्वस्तिवाचनात्पूर्वं नान्दीश्राद्धोत्तरं वा कार्यः।

इसके बाद मण्डप देवता का स्थापन और ग्रहयज्ञ स्वस्तिवाचन के पहिले या नान्दी-श्राद्ध के बाद करे।

अथ सीमान्तपूजनम्

अथ कन्यादाता वरगृहं गतः 'करिष्यमाणकन्याविवाहाङ्गत्वेन वरस्य सीमान्तपूजां करिष्ये' इति संकल्प्य गणेशवरुणौ संपूज्य वरं पादप्रक्षालनवस्त्रगन्ध-

---

१. पराशरः—'एकस्मिन् वत्सरे प्राप्ते कुर्याद् यमलजातयोः। क्षौरं चैव विवाहं च मौञ्जीबन्धनमेव च॥' भट्टकारिकायाम्—'एकस्मिन् वत्सरे चैव वासरे मण्डपे तथा। कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः॥' इति।

२. विशेष मूलवचन गर्भाधान प्रकरण की सुधाविवृति में देखें।

पुष्पनीराजनैः संपूज्य यथाचारं दुग्धादि प्राशयेत्। ततो वरो 'मङ्गलघोषैर्वाहनारूढो वधूगृहं गच्छेत्। वरपिता वधूं वस्त्रादिना पूजयेदिति यथाचारम्।

कन्या देने वाला वर के घर जाकर 'किये जाने वाले कन्या-विवाह के अंग होने से वर की सीमान्तपूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करके गणेश वरुण को पूजकर वर का पादप्रक्षालन, वस्त्र, गन्ध, पुष्प और नीराजन से पूजा कर आचार के अनुसार दूध आदि का प्राशन करावे। उसके बाद वर मंगल शब्दों से सवारी पर चढ़कर वधू के घर जाय। वर का पिता बहू की पूजा वस्त्रादि से जैसा कुलाचार हो करे।

लग्नदिने कन्यापिता कन्या वा अन्योन्यालिङ्गितगौरीहरयोः प्रतिमां सुवर्णरौप्यादिनिर्मितां कात्यायनीमहालक्ष्मीशचीभिः सह पूजयेत्। तत्र कोणचतुष्टयस्थापितकलशश्रेणीनां मध्ये उपलयुतदृषदि वस्त्रे वा तण्डुलपूर्णे गौरीहरौ मन्त्रेण पूजयेत्। तत्र—

सिंहासनस्थां देवेशीं सर्वालंकारसंयुताम्।
पीतांबरधरं देवं चन्द्रार्धकृतशेखरम्॥
करेणाधः सुधापूर्णं कलशं दक्षिणेन तु।
वरदं चाभयं वामेनाश्लिष्य च तनुप्रियाम्॥ इति ध्यानमन्त्रः।
गौरीहर महेशान सर्वमङ्गलदायक।
पूजां गृहाण देवेश सर्वदा मङ्गलं कुरु॥ इति पूजामन्त्रः।

कन्यादेहप्रमाणेन सप्तविंशतितन्तुभिः कृतया वर्तिकया दीपं प्रज्वाल्य सुवासिनीब्राह्मणान् भोजयेत्। इति गौरहरपूजा।

लग्न के दिन कन्या का पिता अथवा कन्या परस्पर आलिंगन करती हुई पार्वती-शंकर की प्रतिमा को जो सुवर्ण और चान्दी आदि से निर्मित हो, कात्यायनी-महालक्ष्मी-सती के साथ पूजा करे। वहां चारो कोने में स्थापित चारो कलशों के बीच में लोढ़ा और सिलवट पर या तण्डुलपूर्ण वस्त्र में गौरी और हर की मन्त्र से पूजा करे। उसमें सब अलंकारों से युक्त सिंहासन पर बैठी हुई देवेशी को पीताम्बर धारण करने वाले देवता अर्धचन्द्र को सिर में लगाने वाले शंकर भगवान् को दहिने हाथ से अमृत भरा कलश लिये हुए अभय और वर देने वाले तथा बाएं हाथ से पार्वती का आलिंगन करते हुए शंकर का ध्यान करे। हे गौरीहर! महेशान! सम्पूर्ण मंगलों को देने वाले हे देवेश! मेरी पूजा को ग्रहण करें। कन्या के शरीर के नाप से २७ गुना डोरे का दीप जलाकर सौभाग्यवती और ब्राह्मणों को भोजन करावे। गौरीहरपूजा समाप्त।

अथ विष्टरलक्षणम्

पञ्चविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रग्रन्थिसंयुतो लम्बाग्रो विष्टरः संपाद्यः।

---

१. मङ्गलघोषैः = वाद्यस्त्रीगीतादिमङ्गलघोषैरित्यर्थः। मात्स्ये—'मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं च गीतकम्। ऋद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वानमङ्गलविनाशनम्॥ बलिकर्मणि यात्रायां प्रवेशे नववेश्मनः। महोत्सवे च मङ्गल्ये तत्र स्त्रीणां शुभध्वनिः॥' वधूगृहं = कन्यागृहम्। तदुक्तं वैखानसगृह्ये—'कन्यागृहं सह बान्धवैर्गत्वा' इति।

२. स्मृतिः—'पञ्चविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रे ग्रन्थिभूषिता। विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम्॥' परिशिष्ट में विष्टर का लक्षण है—'पञ्चाशद्भिर्भवेद् ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः। ऊर्ध्वकेशो

पच्चीस कुशों की वेणी बनाकर आगे गांठ देकर अग्रभाग लम्बा बनावे, उसी को विष्टर कहते हैं।

अथ मधुपर्कविचारः

वरस्य या भवेच्छाखा[1] तच्छाखागृह्यचोदितः।
मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेऽपि दातरि ॥

दधिमधुमिश्रं मधुपर्कः। तत्र दध्यलाभे पयो जलं वा, मध्वलाभे सर्पिर्गुडो वा प्रतिनिधिः। [2]'गृहागतं स्नातकं वरं मधुपर्केणार्हयिष्ये' इति संकल्पः। वरस्य द्वितीयोद्वाहे तु स्नातकमिति पदलोपः। ततो यथागृह्यं मधुपर्कप्रयोगो ज्ञातव्यः। एवं गुरुः श्रेष्ठविप्राः राजा चेति गृहागता यज्ञे वृता ऋत्विजश्च मधुपर्केण पूजनीयाः। ऋत्विगादीनामपि अर्च्यशाखयैव मधुपर्को न तु दातृशाखया।

वर की जो शाखा हो उस शाखा और गृह्य से प्रेरित होकर अन्य-शाखीय-दाता के रहने पर भी मधुपर्क देना चाहिये। दही और मधु मिला हुआ मधुपर्क होता है। उसमें दही न मिलने पर दूध या जल डाले। मधु के न मिलने पर घी या गुड़ डाले। 'घर में आये हुए स्नातक वर को मधुपर्क से मैं पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करे। वर के दूसरे विवाह में तो स्नातक इस पद को हटा दे। उसके बाद जैसा गृह्य में मधुपर्क का प्रयोग हो वह करे। इसी प्रकार घर में आने पर गुरु, श्रेष्ठ-ब्राह्मणों और राजा की तथा यज्ञ में वृत होने पर ऋत्विक् की मधुपर्क से पूजा करनी चाहिये। ऋत्विक् आदि का भी पूजनीय की शाखा से ही मधुपर्क करे, दाता की शाखा से नहीं।

जयन्तस्तु—सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्क इत्याह। अत्र गन्धपुष्पधूपदीपपूजान्ते उपहारो माषविकारसहितो भोजनार्थं देयः। एवं मधुपर्के तत्पूर्वं वा कृतभोजनायैव वरायोपोषितो दाता कन्यां दद्यात्।

जयन्त तो—सब जगह यजमान की शाखा से ही मधुपर्क दे, ऐसा कहे हैं। इसमें गन्ध, पुष्प, धूप और दीप से पूजा करने के बाद भोजन के लिये उर्द के विकार के सहित दे। इसी प्रकार मधुपर्क में या उसके पूर्व मे भोजन किए हुए ही वर को उपवास किया हुआ दाता कन्या को दे।

भवेद् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः॥ दक्षिणावर्तब्रह्मा च वामावर्तस्तु विष्टरः।' 'विष्टरस्त्रिवृदरत्निमात्रः कौशो रज्जुविशेषः' इति भर्तृयज्ञः। 'प्रादेशमात्रं त्रिवृतं कौशं वा काशनिर्मितम्' इति रेणुकः। 'पञ्चविंशतिदर्भतरुणमयं कूर्चम्' इति हरिहरः। स्मृत्यन्तर में कुशसंख्या का नियम नहीं कहा है—'यज्ञवास्तुनि मुष्टौ च स्तम्बे दर्भवटौ तथा। दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥' इति।

१ गृह्यपरिशिष्ट में वर की शाखा से ही मधुपर्क का निर्देश है—'वरस्य या भवेच्छाखा तच्छाखा गृह्यचोदितः। मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेऽपि दातरि। 'यः स्वशाखां परित्यज्य परशाखां समाश्रयेत्। दुर्मेधाः स तु विज्ञेयो मोघं तत्तस्य चेष्टितम् ॥' अत्र उच्छिष्टस्यैव मन्त्रोच्चारणं युक्तम्, तदाह स्मृतिः—'ताम्बूलेक्षुफले चैव भुक्तस्नेहानुलेपने। मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥' इति।

२. विष्णुधर्मोत्तरे—'दध्यलाभे पयः कार्यं मध्वलाभे तथा गुडः। घृतप्रतिनिधिं कुर्यात् पयो वा दधि वा नृप ॥' इति।

अथ लग्नघटीस्थापनम्

दशपलमितताम्रघटितं षडङ्गुलोन्नतं द्वादशाङ्गुलविस्तृतं घटीयन्त्रं कुर्यादिति सिन्धुः ।

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ।
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥

इति तु श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे उक्तम् । अस्यार्थः अशीतिगुञ्जात्मकः कर्षः, अस्यैव सुवर्णसंज्ञा । कर्षचतुष्टयं पलम् । तथा च षट्पलताम्रविरचितं पात्रं विंशतिगुञ्जोन्मितसुवर्णनिर्मितचतुरङ्गुलदीर्घशलाकया मूले कृतच्छिद्रं कुर्यात् । तेन छिद्रेण यावत्प्रस्थपरिमितं जलं प्रविशति तेन च प्रस्थजलपूरणेन तत्पात्रं जले मग्नं भवति तत्पात्रं घटीकालप्रमाणम् । तत्र प्रस्थमानं तु षोडशपलात्मकम्,

पलं सुवर्णाश्चत्वारः कुडवः प्रस्थमाढकम् ।
द्रोणं च खारिका चेति पूर्वपूर्वचतुर्गुणम् ॥ इत्युक्तेः ।

दस पल ताम्बे का बनाया हुआ छ अंगुल ऊंचा, बारह अंगुल चौड़ा घटी-यन्त्र बनावे, यह निर्णयसिन्धु में है । तृतीयस्कन्ध भागवत में कहा है कि ८० गुंजा का कर्ष होता है । इसी का सुवर्ण नाम है । ४कर्ष का एक पल होता है । इससे ६ पलके ताम्बे का बनाया हुआ पात्र बीस गुंजा परिमित सुवर्णनिर्मित चार अंगुल की लम्बी शलाका से बीच में छेद करे । उस छेद से जब तक सेर भर जल उस पात्र में प्रवेश करता है और उससे सेर भर जल भरने से वह पात्र जल में डूब जाता है, वही पात्र घटी काल का प्रमाण है । प्रस्थ का मान तो षोडश पल का होता है क्योंकि चार सुवर्ण का पल होता है । कुड़व, प्रस्थ, आढ़क, द्रोण और खारिका, ये पूर्व-पूर्व से चौगुने होते हैं । इस प्रकार छ पल का ऊँचा पात्र चार अंगुल लम्बी स्वर्ण-शलाका से छेद करने पर जितने समय में सेर भर जल से भर जाय वही घटी काल का प्रमाण है ।

ग्रन्थान्तरे चतुर्मुष्टिः कुडवश्चत्वारः कुडवाः प्रस्थ इति । केचित्षष्टिसंख्याकगुरुवर्णोच्चारे पलसंज्ञः कालः, षष्टिपलकाला नाडिकेत्याहुः । एवं प्रमाणीकृतं घटीयन्त्रं सूर्यमण्डलस्यार्धोदयेऽर्धास्ते वा जलपूर्णे ताम्रपात्रे मृत्पात्रे वा क्षिपेत् । तत्र मन्त्रः—

मुख्यं त्वमसि यन्त्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
भव भावाय दम्पत्योः कालसाधनकारणम् ॥

दूसरे ग्रन्थों में ४ मुट्ठी का एक कुड़व होता है, ४ कुड़व का एक प्रस्थ होता है । कुछ लोग तो ६० दीर्घ वर्ण के उच्चारण में पल नामक काल होता है, ६० पल की एक घटी होती है, ऐसा कहते हैं । इस प्रकार प्रमाणीकृत घटी-यन्त्र सूर्यमण्डल के आधा उदय लेने पर अथवा आधा अस्त होने पर जलपूर्ण ताम्रपात्र या मिट्टीपात्र में छोड़े । उसके मन्त्र का आशय है—यन्त्रों में मुख्य यन्त्र आप हैं आपको ब्रह्मा ने बनाया है । आप पति-पत्नी के काल-साधन के कारण बनें ।

अनेन मन्त्रेण गणेशवरुणपूजनपूर्वकं घटीयन्त्रं स्थापयेत् । एवं स्थापिता घटी आग्नेययाम्यनैर्ऋतवायव्यदिग्गता न शुभा । मध्यस्थिताऽन्यदिग्गता च शुभा । एवमाग्नेयादिपञ्चदिक्षु पूर्णा न शुभा । इति घटीविचारः ।

इस मन्त्र से गणेश और वरुण का पूजनपूर्वक घटीयन्त्र की स्थापना करे। इस प्रकार स्थापित की हुई घटी आग्नेय, याम्य, नैर्ऋत और वायव्य दिशा में जाती है तो शुभ नहीं है। बीच में रहती है या अन्य दिशा में जाती है तो शुभ है। इसी प्रकार आग्नेय आदि पांच दिशाओं में भर कर नीचे चली जाती है तो शुभ नहीं है। घटीविचार समाप्त।

अथ अन्तःपटधारणविधिः

अथ ज्योतिर्विदादिष्टे शुभकाले हस्तान्तराले तन्दुलराशी पूर्वापरौ कृत्वा पूर्वराशौ प्रत्यङ्मुखं वरमपरस्मिन्प्राङ्मुखीं कन्यामवस्थाप्य तयोर्मध्ये कुङ्कुमादिकृतस्वस्तिकाङ्कितमन्तःपटमुदग्दशं धारयेयुः । कन्यावरयोः पित्रादिर्ज्योतिर्विदं संपूज्य तद्दत्ताक्षतान् फलयुतान् कन्यावरयोरञ्जलौ दद्यात् ।

ज्योतिषी के कहे हुए शुभ समय में हाथ भर के अन्तराल में चावल की राशि दो जगह रख कर पहिली राशि में पश्चिम मुख वर दूसरे चावल की राशि पर पूर्वमुखी कन्या को बैठाकर कन्या वर के बीच में कुंकुम आदि से स्वस्तिक से चिह्नित अन्तःपट को जिसकी किनारी उत्तर तरफ की हो धारण करे। कन्या और वर का पिता आदि ज्योतिषी की पूजा करके उसके दिये हुए फलसहित अक्षतों को कन्या और वर की अंजुली में दें।

कन्यावरौ साक्षतहस्तौ स्वस्तिकालोकनपरौ अमुकदेवतायै नम इति स्वस्वकुलदेवतां ध्यायन्तौ तिष्ठतः । ज्योतिर्विदा मङ्गलपद्याष्टकपाठान्ते स्वोक्तकाले तदेव लग्नमिति पठित्वा सुमुहूर्तमस्तु ॐ प्रतिष्ठेत्युक्ते अन्तःपटमुत्तरतोऽपसारयेयुः ।

कन्या और वर हाथ में अक्षत लिये हुए अन्तःपट में चिह्नित स्वस्तिक को देखते हुए अपने-अपने कुलदेवता को प्रणामपूर्वक ध्यान करते हुए बैठे रहें। ज्योतिषी के द्वारा ८ मंगलश्लोकों को पढ़ने के बाद उक्त समय में 'तदेव लग्नं' इसे पढ़ कर 'सुमुहूर्तमस्तु ॐ प्रतिष्ठा' ऐसा कहने के अनन्तर अन्तःपट को उत्तर दिशा में हटा दे।

ततः कन्यावरौ परस्परशिरसोरक्षतप्रक्षेपं परस्परेक्षणं च कुर्याताम् । वरो वध्वा भ्रूमध्ये दर्भाग्रेण ॐभूर्भुवःस्वरिति परिमृज्य दर्भं निरस्यापः स्पृशेत् । वैदिकैः पठ्यमानब्राह्मणखण्डवाक्यान्ते कन्यापूर्वकं ताभ्यामक्षतारोपणं प्रतिवाक्यं कार्यम् ।

इसके बाद कन्या और वर परस्पर सिर में अक्षत का प्रक्षेप और परस्पर देखें। वर वधू के भौंह के बीच में कुश के अग्रभाग से 'ॐ भूर्भुव स्वः' इससे परिमार्जन करके कुश को हटा कर जल का स्पर्श करे। वैदिकों द्वारा पढ़े हुए ब्राह्मण खण्ड वाक्य के अन्त में वे दोनों प्रतिवाक्य में कन्यापूर्वक अक्षतारोपण करें।

अथ कन्यादानप्रयोगः

ततः प्राङ्मुखं वरं प्रत्यङ्मुखीं कन्यां कृत्वा दाता दक्षिणे सपत्नीक उपविश्य

१. कन्यादान के समय दाता का पश्चिमाभिमुख और वर का पूर्वाभिमुख रहने का गृह्यपरि-

वरदत्तालंकारादिरहितामहतवस्त्रस्वदेयालंकारमात्रयुतां कनकयुक्ताञ्जलिं वरपूजावशिष्टगन्धलिप्तहस्तपादां कन्यामेवं दद्यात् ।

पूर्वाभिमुख वर और पश्चिमाभिमुखी कन्या को करके दाता दाहिनी तरफ पत्नीसहित बैठ कर वर के दिये हुए आभूषण आदि से रहित नवीन वस्त्र और अपने दिये जाने वाले केवल अलंकार से युक्त, सुवर्णयुक्त अंजुली में वर की पूजा से बचे हुए गन्ध से लिप्त हाथ पैर वाली कन्या को इस प्रकार देवे ।

कुशहस्तो देशकालौ संकीर्त्य 'अमुकप्रवरामुकगोत्रोऽमुकशर्माहं मम समस्तपितॄणां निरतिशयानन्दब्रह्मलोकावाप्त्यादिकन्यादानकल्पोक्तफलावाप्तये अनेन वरेणास्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाणसन्तत्या द्वादशावरान्द्वादशपरान् पुरुषांश्च पवित्रीकर्तुमात्मनश्च श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये ब्राह्मविवाहविधिना कन्यादानं करिष्ये' इति कुशाक्षतजलेन संकल्प्य 'उत्थाय कन्यां संप्रगृह्य—

> कन्यां कनकसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम् ।
> दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया ॥
> विश्वंभरः सर्वभूतः साक्षिण्यः सर्वदेवताः ।
> इमां कन्यां प्रदास्यामि पितॄणां तारणाय च ॥

हाथ में कुश लेकर देशकाल को कह कर 'अमुकप्रवर अमुकगोत्र अमुकशर्मा मैं मेरे सम्पूर्ण पितरों की निरतिशयानन्द ब्रह्मलोक प्राप्ति आदि कन्यादान-कल्प'के कहे हुए फल-प्राप्ति के लिये इस वर से इस कन्या में उत्पन्न होने वाली संतति से १२ अवर और १२ पर पुरुषों और अपने को पवित्र करने के लिये तथा श्रीलक्ष्मीनारायण की प्रसन्नता के लिये विवाहविधि से कन्यादान करूँगा' इस प्रकार कुश अक्षत जल से संकल्प करके उठकर कन्या को पकड़ के सुवर्ण से सम्पन्न स्वर्णाभरणों से युक्त कन्या को ब्रह्मलोक जीतने को इच्छा से आप विष्णु को देता हूँ । इसके साक्षी सब देवता, सब जीव और विश्वंभर हैं । पितरों के तारने के लिये इस कन्या को देता हूँ ।

इत्युक्त्वा कांस्यपात्रस्थकन्याऽञ्जलेरुपरि वराञ्जलिं निधाय दक्षिणस्थितपत्न्या सन्ततां क्रियमाणां शुद्धोदकधारां सहिरण्ये वरहस्ते निक्षिपेत् । कन्या तारयतु पुण्यं वर्धयतु शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु इत्यादिवाक्य-

---

शिष्टोक्त वचन है—'कन्यां वरयमाणानामेष धर्मो विधीयते । प्रत्यङ्मुखा वरयन्ति प्रतिगृह्णन्ति प्राङ्मुखाः ॥' हिरण्यकेशीयगृह्ये—'प्राङ्मुखः प्रत्यङ्मुख्या हस्तं गृह्णीयात् , प्रत्यङ्मुखः प्रत्यङ्मुख्यां वा' । अपि च—'तिष्ठेदुदङ्मुखो दाता प्राङ्मुखोऽपि वरो भवेत् ।' ऋष्यशृङ्गः—'वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद् विद्वान् कन्यायाश्चैवमेव हि ॥ तिष्ठेत्पूर्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् । मधुपर्कार्चितायैनां तस्मै दद्यात् सदक्षिणाम् ॥ उदपात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत् ।' मत्स्यपुराणे—'तुलापुरुषदाने च हाटकस्याचले तथा । कन्यादाने तथोत्सर्गे कीर्तयेत्प्रवरादिकम् ॥' इति ।

१. वर के हाथ में कन्या के हाथ का अर्पण उठ कर करे—'कन्यादानं च गोदानमुत्तराधारमेव च । प्रातःसन्ध्याजपं चैव तिष्ठन्नेव हि कारयेत् ॥' विधानपारिजात में बृहस्पति ने कहा है—'चतुष्पादं गृहं कन्यां दासीं छत्रं रथं तरुम् । तिष्ठन्नेतां द्विजो दद्याद् भूम्यादीनुपविश्य च ॥' यहाँ आदि पद से सुवर्णादि का ग्रहण है ।

चतुष्टयान्ते अमुकप्रवरामुकगोत्रोमुकशर्माहं मम समस्तेत्यादिप्रीतये इत्यन्तमुक्त्वा 'अमुकप्रवरोपेतामुकगोत्रायामुकशर्मणः प्रपौत्रायामुकशर्मणः पौत्रायामुकशर्मणः पुत्रायामुकशर्मणे श्रीधररूपिणे वराय अमुकप्रवरामुकगोत्राममुकशर्मणः प्रपौत्रीम् अमुकशर्मणः पौत्रीम् अमुकशर्मणः मम पुत्रीम् अमुकनाम्नीं कन्यां श्रीरूपिणीं प्रजापतिदैवत्यां प्रजोत्पादनार्थं तुभ्यमहं संप्रददे' इति सहिरण्यहस्ते साक्षतजलं क्षिपेत्। प्रजापतिः प्रीयतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवानिति वदेत्।

यह कह कर कांसे के पात्र में रखे कन्या की अंजली के ऊपर वर की अंजली रख कर दक्षिण स्थित पत्नी के द्वारा सुवर्णसहित वर के हाथ में निरंतर शुद्ध जल की धारा गिराते हुए छोड़ दे। 'कन्या तारयतु पुण्यं वर्धयतु शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु' इत्यादि चार वाक्य के बाद 'अमुकप्रवर अमुकगोत्र अमुकशर्मा मम समस्तेत्यादि प्रीतये' यहां तक कह कर 'अमुकप्रवरोपेताय अमुकगोत्राय' इत्यादि मूलोक्त संकल्प कह कर हिरण्यसहित हाथ में अक्षतसहित जल छोड़े। 'प्रजापतिः प्रीयतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान्' ऐसा कहे।

एवं त्रिवारं कन्या तारयत्वित्यादिना कन्यादानं कार्यम्। वरः ॐ स्वस्ति इत्युक्त्वा कन्यादक्षिणांसं स्पृष्ट्वा ॐ क इदं कस्मा अदात्० पृथिवी प्रतिगृह्णात्विति त्रिरुक्त्वा धर्मप्रजासिद्ध्यर्थं प्रतिगृह्णामीति वदेत्। दाता—

गौरीकन्यामिमां विप्र यथाशक्तिविभूषिताम्।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय॥
कन्ये ममाग्रतो भूयाः कन्ये मे देवि पार्श्वयोः।
कन्ये मे पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानान्मोक्षमाप्नुयाम्॥
मम वंशकुले जाता पालिता वत्सराष्टकम्॥
तुभ्यं विप्र मया दत्ता पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी॥

धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या त्वयेयम्। वरो नातिचरामीति। दाता उपविश्य[1] कन्यादानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थम् इदं सुवर्णमग्निदैवत्यं दक्षिणात्वेन संप्रददे ॐ स्वस्तीति वरः। ततो भोजनपात्रजलपात्रादिदानानि।

इस प्रकार तीन बार 'कन्या तारयतु' इत्यादि से कन्यादान करे। वर—'ॐ स्वस्ति' यह कह कर कन्या के दाहिने कन्धे को स्पर्श करके 'ॐ क इदं कस्मा अदात्० पृथिवी प्रतिगृह्णातु' इसे तीन बार कह कर धर्मप्रजा-सिद्धि के लिए प्रतिग्रहण करता हूँ, ऐसा कहे। दाता कहे कि हे विप्र! यथाशक्ति भूषणों से अलंकृत इस गौरी-रूप-कन्या को अमुकगोत्र अमुकशर्मा तुझे देता हूँ, तू इसे ग्रहण करो। हे कन्ये! तू मेरे आगे हो, हे कन्ये देवि! तू मेरे अगल बगल में रहो, हे कन्ये! तू मेरे पीछे हो, तेरे दान से मैं मोक्षप्राप्त करूँ। हे विप्र! यह मेरे वंश में उत्पन्न हुई और आठ वर्ष तक पाली गयी और यह पुत्रपौत्र को बढ़ाने वाली है, इसे तुझे मैंने दिया। धर्म, अर्थ और काम में इसका त्याग नहीं करना। वर कहे—'नातिचरामि'। दाता बैठकर 'कन्यादान की प्रतिष्ठासिद्धि के लिये अग्निदैवत

१. सुवर्णादि का दान तो बैठकर ही करना चाहिये, जैसा इसके पूर्व सुधाविवृति में बृहस्पति के वचन में 'भूम्यादीनुपविश्य च' कहा है। भूम्यादीन् में आदि पद से सुवर्णादि का ग्रहण है।

यह सुवर्णदक्षिणा देता हूँ।' 'ॐ स्वस्ति' ऐसा वर कहे। इसके बाद भोजनपात्र जलपात्र आदि का दान करे।

पितामहो दानकर्ता चेत्पौत्रीमित्यतः पूर्वं ममेति वदेत्। पुत्रीमित्यतः पूर्वं न वदेत्। भ्रात्रादिः पुरुषत्रयकीर्तनमेव कुर्यात् क्वापि ममेति न वदेत्। प्रपितामहः प्रपौत्रीमित्यत्र ममेति वदेत्। मातुलादिरन्यो वा दाता स्वगोत्रं स्वविशेषणत्वेनोक्त्वाऽमुकशर्मणः समस्त पितृणामिति कन्यापितृनाम षष्ठ्यन्तमुक्त्वा कन्याविशेषणत्वेन तद्गोत्रादि वदेत्। मम वंशकुले जातेत्यत्र ममेति स्थाने कन्यापितृनाम वदेत्। दत्तकन्यादाने मम वंशकुले दत्तेति ऊहः।

दान करने वाला यदि पितामह हो तो 'पौत्री' इसके पहले 'मम' ऐसा कहे। इससे पहले 'पुत्री' न कहे। भाई आदि दानकर्ता तीन पुस्त ही का नाम ले कहीं भी 'मम' ऐसा न कहे। प्रपितामह प्रपौत्री इस स्थान में 'मम' ऐसा कहे। मामा आदि या अन्य कोई दाता अपने विशेषण से अपने गोत्र को कह कर अमुकशर्मा के समस्त पितरों की ऐसा पिता का नाम षष्ठ्यन्त से कहकर कन्या विशेषणत्व से उस गोत्र आदि को कहे। 'मम वंशकुले जाता' यहां पर 'मम' के स्थान में कन्या के पिता का नाम कहे। दत्त-कन्या के दान में 'मम वंश कुले जाता' की जगह पर 'मम' वंश कुले दत्ता' ऐसी कल्पना करे।

अथ कन्यादानाङ्गत्वेन गवादिदाने मन्त्राः

यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघौघनाशिनी।
विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा॥ इति गोः।
हिरण्यगर्भसम्भूतं सौवर्णं चाङ्गुलीयकम्।
सर्वप्रदं प्रयच्छामि प्रीणातु कमलापतिः॥ इत्यङ्गुलीयस्य।
क्षीरोदमथने पूर्वमुद्भूतं कुण्डलद्वयम्।
श्रिया सह समुद्भूतं ददे श्रीः प्रीयतामिति॥ इति कुण्डलयोः।
काञ्चनं हस्तवलयं रूपकान्तिसुखप्रदम्।
विभूषणं प्रदास्यामि विभूषयतु मे सदा॥ इति वलययोः।
परापवादपैशुन्यादभक्ष्यस्य च भक्षणात्।
उत्पन्नपापं दानेन ताम्रपात्रस्य नश्यतु॥ इति ताम्रजलपात्रस्य।
यानि पापानि काम्यानि काम्योत्थानि कृतानि च।
कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा॥
इति भोजनार्थकांस्यपात्रस्य।

यज्ञ के होमादि का साधनभूत और संसार के पापों को नाश करने वाली इस गौ के दान से विश्वरूपधारी विष्णु प्रसन्न हों। यह गोदान का मन्त्राशय है। हिरण्यगर्भ से उत्पन्न सुवर्ण की अंगूठी जो सब कुछ देने वाली है इसे देता हूँ, विष्णु प्रसन्न हों। यह अंगूठी देने के मन्त्रका आशय है। पहले क्षीरमथन के समय लक्ष्मी के साथ दो कुण्डल उत्पन्न हुये, इन्हें देता हूँ इससे लक्ष्मी प्रसन्न हों। यह कुण्डलदान के मन्त्र का आशय है। रूप, कान्ति और सुख का प्रदायक इस सुवर्ण

के हस्त-वलय को देता हूँ, यह मुझे भूषित करे। यह हाथ के कंकण के दान का मन्त्राशय है। दूसरे की निन्दा या चुगुली और अभक्ष्यभक्षण से जो पाप हुये हैं वे इस ताम्रपात्र के दान से नष्ट हों। यह तामे के जलपात्रदान का मन्त्राशय है। जो पाप मैंने इच्छा से या प्रमादवश किये हैं वे कांस्यपात्र के दान से नष्ट हों। यह भोजन के लिये कांस्यपात्र के दान का मन्त्राशय है।

अगम्यागमनं चैव परदाराभिमर्शनम्।
रौप्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा॥

इति जलार्थस्य भोजनार्थस्य च रौप्यपात्रस्य।

पूरितं पूगपूगेन नागवल्लीदलान्वितम्।
पूर्णेन चूर्णपात्रेण कर्पूरपिष्टकेन च।
सपूगखण्डनं दिव्यं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम्।
ददे देव निरातङ्कं त्वत्प्रसादात्कुरुष्व माम॥ इति ताम्बूलस्य।

मैंने गमन के अयोग्य स्त्री में गमन और दूसरे की स्त्री से संपर्क किया हो वह चान्दी के पात्र के दान से नष्ट हों। यह जल या भोजन के लिये चांदी के पात्र के दान का मन्त्राशय है। सुपारी के चूर्ण, पान के दल और कपूर के पिष्ट से युक्त गन्धर्व और अप्सराओं के प्रिय तांबूल को मैं देता हूँ, हे देव! अपनी प्रसन्नता से मुझे निर्भय करें। यह ताम्बूल देने के मन्त्र का आशय है।

एवं दासीमहिषीगजाश्वभूमिस्वर्णपात्रपुस्तकशय्यागृहरजतवृषभानां दान-मन्त्राः कौस्तुभे द्रष्टव्याः।

इस प्रकार दासी, भैंस, गज, घोड़ा, भूमि, सोने के पात्र, पुस्तक, शय्या, घर, चांदी और बैलों के दान के मन्त्र कौस्तुभ में देखें।

अथ ऋग्वेदिनामनुष्ठानक्रमः

अन्तःपटधारणादिकन्यादानान्तं केचिदग्निप्रतिष्ठापनोत्तरं कुर्वन्ति। केचित्पूर्वाङ्गहोमोत्तरं केचिदाज्यसंस्कारोत्तरमित्यनेके पक्षास्तत्र स्वस्वगृह्यानुसारेणाचारानुसारेण च व्यवस्था। ततो वधूवराभिषेकः।

कोई अन्तःपट का धारण आदि कन्यादान तक अग्निप्रतिष्ठा के बाद करते हैं। कोई पूर्वांग होम के बाद, कोई घृत संस्कार के बाद, इस प्रकार अनेक पक्ष हैं। उसमें अपने-अपने गृह्य और आचार के अनुसार व्यवस्था है। इसके अनन्तर वधू वर का अभिषेक करे।

अथ कंकणबंधनादिकम्

ततः कङ्कणबन्धनम्। अथाक्षतारोपणम्। वधूवराभ्यामन्योन्यतिलककरणम्। मालाबन्धनम्। अष्टपुत्रीकञ्चुकीमाङ्गल्यतन्त्वादिदानम्। गणेशपूजा। लड्डुकबन्धनम्। उत्तरीयवस्त्रान्तग्रन्थियोजनम्। लक्ष्म्यादिपूजादि। इति कन्यादानानुक्रमः प्रायो बह्वृचानामन्येषां च यथागृह्यं ज्ञेयः।

तदनन्तर कंकणबंधन, अक्षतारोपण, वधूवर को परस्पर तिलक करना, मालाबन्धन, अष्टपुत्री (पेटारी), कंचुकी और मांगल्य सूत्र आदि का दान, गणेशपूजा, लड्डू आदि का बांधना, दुपट्टे से गांठ जोड़ना, लक्ष्मी आदि की पूजा आदि करे। यह कन्यादान का अनुक्रम प्रायः बह्वृचों और दूसरों को गृह्य के अनुसार जानना चाहिये।

अथ विवाहहोमः

वधूवरौ पूर्वोक्तलक्षणां वेदीं मन्त्रघोषेणारुह्य वरः स्वासने उपविश्य वधूं दक्षिणत[1] उपवेश्य देशकालौ संकीर्त्य 'प्रतिगृहीतायामस्यां वध्वां भार्यात्वसिद्धये विवाहहोमं करिष्ये' इति संकल्प्य यथागृह्यं विवाहहोमं कुर्यात्। एतदादिविवाहाग्निं रक्षेत्। रक्षितोऽग्निश्चतुर्थीकर्मपर्यन्तं गृहप्रवेशनीयहोमात्पूर्वमनुगतश्चेद्विवाहहोमः पुनः कार्यः। गृहप्रवेशनीयोत्तरं गतौ होमद्वयमपि पुनः कार्यम्। केचित्तु द्वादशरात्रपर्यन्तं वृत्त्युक्तायाश्चेत्याज्याहुतेः सार्वत्रिकत्वमाश्रित्यात्रापि अयाश्चेत्याहुतिमेवाहुः।

वधू और वर पहले कहे हुए लक्षण वाली वेदी पर मन्त्रघोष से चढ़ कर वर अपने आसन पर बैठ कर वधू को अपने दक्षिण तरफ बैठाकर देश काल को कहकर 'प्रतिग्रह की गई इस वधू में भार्यात्वसिद्धि के लिये विवाहहोम करूंगा' ऐसा संकल्प कर गृह्य के अनुसार विवाहहोम करे। यहाँ तक विवाहाग्नि की रक्षा करे। रक्षित अग्नि चतुर्थीकर्मपर्यन्त गृहप्रवेशनीय होम से पहले अग्नि नष्ट हो जाय तो विवाहहोम पुनः करे। गृहप्रवेशनीय के बाद भी अग्नि नहीं रहे तो दो होम फिर करे। कुछ लोग तो १२ रात्रि तक वृत्ति में कही गई 'अयाश्च' इस घृताहुति को सार्वत्रिक मान कर यहाँ भी 'अयाश्च' इससे आहुति ही कहते हैं।

अथ गृहप्रवेशनीयहोमः

स च वध्वा सह स्वगृहं गतस्य विहितस्तथापि शिष्टाः श्वशुरगृहे एव कुर्वन्ति। तत्रार्धरात्रोत्तरं विवाहहोमे परेद्युः [2]प्रातस्तिथ्यादि संकीर्त्य 'ममाग्नेर्गृह्याग्नित्वसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गृहप्रवेशनीयाख्यं होमं करिष्ये' इति संकल्प्य कार्यः। अर्धरात्रात्पूर्वं विवाहहोमे तदैव होमोत्तरं पुनस्तिथ्यादि संकीर्त्य संकल्पपूर्वकं रात्रावपि गृहप्रवेशनीयहोमकरणे दोषो न।

यह तो बधू के साथ अपने घर जाने वाले वर के लिये कहा है तब भी शिष्टजन ससुर के घर में ही करते हैं। उसमें आधी रात के बाद विवाहहोम करने पर दूसरे दिन प्रातःकाल तिथि आदि कह कर 'मेरी अग्नि को गृह्याग्नित्व-सिद्धि के द्वारा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये गृहप्रवेशनीय नामक होम करूँगा' ऐसा संकल्प करे। अर्धरात्रि के पहले विवाहहोम होने पर उसी समय होम के बाद फिर तिथि आदि कहकर संकल्पपूर्वक रात में भी गृहप्रवेशनीय होम करने में दोष नहीं है।

---

१. स्मृत्यन्तरे—'व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थ्यां सह भोजने। व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे॥ सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः शुभा। अभिषेके विप्रपादक्षालने चैव वामतः॥' धर्मप्रवृत्तौ—'जातके नामके चैव ह्यन्नप्राशनकर्मणि। तथा निष्क्रमणे चैव पत्नी पुत्रश्च दक्षिणे॥ गर्भाधाने पुंसवने सीमन्तोन्नयने तथा। वधूप्रवेशने चैव पुनःसन्धान एव च॥ प्रदाने मधुपर्कस्य कन्यादाने तथैव च। कर्मस्वेतेषु भार्यां वै दक्षिणे तूपवेशयेत्॥' अपि च—'संस्कार्यः पुरुषो वाऽपि स्त्री वा दक्षिणतः सदा। संस्कारकर्ता सर्वत्र तिष्ठेदुत्तरतः सदा॥' इति।

२. आश्वलायनः—'अर्धरात्र्यतीते तु परेद्युः प्रातरेव हि। गृहप्रवेशनीयः स्यादिति यज्ञविदो विदुः॥' इति।

यत्तु विवाहहोमगृहप्रवेशनीयहोमयोरेकतन्त्रेणानुष्ठानं कुर्वन्ति तन्न युक्तम्। विवाहाग्नेरेव गृहप्रवेशनीयहोमोत्तरं गृह्यत्वसिद्धिराश्वलायनतैत्तिरीयादीनां भवति। तैत्तिरीयकात्यायनादीनां पुनराधाने प्रकारान्तरमस्ति।

जो विवाहहोम और गृहप्रवेशनीय होम को एक तन्त्र से अनुष्ठान करते हैं, यह ठीक नहीं है। विवाहाग्नि का ही गृहप्रवेशनीय होम के बाद गृह्यत्वसिद्धि आश्वलायन और तैत्तिरीय आदि के यहाँ होती है। तैत्तिरीय और कात्यायन आदि का तो पुनः आधान में दूसरा प्रकार है।

अथ औपासनहोमः

यदि रात्रौ षट्घटीमध्येऽग्न्युत्पत्तिस्तदा गृहप्रवेशनीयाभावेऽपि व्यतीपातादिसंभवेऽपि तदैवोपासनहोमारम्भः। तदुत्तरं चेत्परदिने 'सायमौपासनारम्भः। स चेत्थम्—सायं संध्यामुपास्य विवाहाग्निं प्रज्वाल्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य 'अस्मिन्विवाहाग्नौ यथोक्तकाले श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं यावज्जीवमुपासनं करिष्ये' इति संकल्प्य पुनर्देशकालौ संकीर्त्य 'श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायं प्रातरौपासनहोमौ करिष्ये, तत्रेदानीं सायमौपासनहोमं करिष्ये'। प्रातस्तु 'पूर्वसंकल्पितं प्रातरौपासहोमं करिष्ये' इति संकल्प्य होमः कार्यः। अथ त्रिरात्रं वधूवरौ ब्रह्मचारिणावलंकुर्वाणावधःशायिनावक्षारालवणाशिनौ तिष्ठताम्।

यदि रात में ६ घड़ी के बीच अग्नि की उत्पत्ति हो तो गृहप्रवेशनीय अग्नि के अभाव में भी व्यतीपात आदि के रहने पर भी उसी समय औपासन होम का आरंभ करे। उसके बाद यदि दूसरे दिन सायंकाल में औपासन का आरंभ हो तो वह इस प्रकार से करे। सायं सन्ध्या करके विवाह की अग्नि को प्रज्वलित तथा प्राणायाम कर देश काल को कहकर 'इस विवाहाग्नि में कहे हुए समय में श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिये जीवनपर्यन्त औपासन करूंगा' ऐसा संकल्प कर पुनः देश काल को कहकर 'परमेश्वर की प्रीति के लिये सायं और प्रातः औपासन होम करूंगा'। उसमें 'इस समय सायं औपासन होम करूंगा'। प्रातःकाल तो 'पूर्व संकल्पित प्रातः औपासन होम करूंगा' ऐसा संकल्प कर होम करे। पश्चात् वधूवर तीन रात तक ब्रह्मचर्य से रहें, जमीन पर सोवें, नमक न खायं।

अथ चतुर्थदिवसे ऐरिणीदानम्

तच्च वधूपितृभ्यामुपोषिताभ्यामुपोषितायै वरमात्रे कार्यम्। वरमातृ रजोदोषे तस्याः शुद्धिप्रतीक्षाकरणासंभवे मनसा पात्रमुद्दिश्येति रीत्या तां मनसोद्दिश्यैरिणीदानम्।

वह वधू के उपवास किये हुए माता पिता उपवास की हुई वर की माता को ऐरिणीदान करें। वर की माता रजस्वला हो और उसकी ५ दिन शुद्धि की प्रतीक्षा करना असंभव हो तो 'मनसा पात्रमुद्दिश्य' इस रीति से मन से उद्देश्य करके ऐरिणीदान करे।

---

१. शौनकः—'यदि रात्रौ विवाहाग्निरुत्पन्नः स्यात्तथा सति। उपक्रम्योत्तरस्याह्नः सायं परिचरेदमुम्॥' इति। सुदर्शनभाष्ये उक्तम्—'यदि रात्रौ नवनाडीमध्येऽग्न्युत्पत्तिस्तदा तदैव होमारम्भः, तदुत्तरं चेत्परदिने सायमारम्भः' इति। तदुक्तम्—'प्रातर्होमे सङ्गवान्तःकाले त्वनुदितेऽथवा। सायमस्तमिते होमः कालस्तु नवनाडिकाः॥' इति। संगव = प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय जो दिन के पांच भागों में से दूसरा है।

अथ विवाहोत्तरं मात्रादे रजोदोषे विधिः

वधूवरमात्रोर्विवाहोत्तरं देवकोत्थापनात्प्राग् रजोदोषे पूर्वोक्तां शान्तिं कृत्वा शुद्धचन्ते संकटे शुद्धः प्रागपि देवकोत्थापनं[1] कार्यम्। मातुलादेः कर्त्रन्तरस्य पत्न्या रजसि मौञ्जीप्रकरणे उक्तम्।

वधू और वर की माता विवाह के बाद देवता के उठाने के पहिले रजस्वला हो तो पहले कही हुई शान्ति करके शुद्धि के अन्त में संकट में शुद्धि के पहले भी देवकोत्थापन करे। मामा आदि दूसरे करने वाले की पत्नी रजस्वला हो तो उसके लिये उपनयन के प्रकरण में कह चुके हैं।

अथ रजोदोषाशौचादिप्राप्तौ निर्णयः

एवं विवाहोत्तरमाशौचपाते चतुर्थीकर्मपर्यन्तं प्राप्तकर्मकरणे दातुर्वरस्य कन्यायाश्च नाशौचम्। आशौचान्ते देवकोत्थापनम्[1]। असंभवे आशौचमध्ये एव देवकोत्थापनं कृत्वा आशौचं कार्यम्। विवाहात्पूर्वमाशौचरजोदोषयोस्तु प्रागुक्तम्। चतुर्थीकर्महोमः कौस्तुभे उक्तः। एनं केचित् ऋक्शाखिनो न कुर्वन्ति।

एवं विवाह के बाद आशौच पड़ने पर चतुर्थीकर्म तक प्राप्त कर्म करने में रजोदोष और आशौच प्राप्त होने पर दाता, वर तथा कन्या को आशौच नहीं होता। आशौच के अन्त में देवकोत्थापन करे। ऐसा न हो सकने पर आशौच में ही देवकोत्थापन करके आशौच करे। विवाह के पहले आशौच और रजोदोष में तो पहले कह चुके हैं। चतुर्थीकर्म का होम कौस्तुभ में कहा है। इसको कुछ ऋक्शाखा वाले नहीं करते।

अथ मण्डपोद्वासनादि

मण्डपोद्वासनदिननिर्णयो मण्डपोद्वासनपर्यन्तं[2]कर्तव्याकर्तव्यनिर्णयश्चोपनयन-प्रकरणे उक्तस्तत्रैव द्रष्टव्यः।

मण्डपोद्वासन दिन का निर्णय और मण्डपोद्वासन तक कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय उपनयन प्रकरण में कहा है वहीं देखें।

अथ मण्डपोद्वासनोत्तरं कार्याकार्यविचारः

न स्नायादुत्सवेऽतीते मङ्गलं विनिवर्त्य च।
अनुव्रज्य सुहृद्बन्धूनर्चयित्वेष्टदेवताम्॥
स्नानं सचैलं तिलमिश्रकर्मप्रेतानुयानं कलशप्रदानम्।
अपूर्वतीर्थामरदर्शनं च विवर्जयेन्मङ्गलतोऽब्दमेकम्॥

---

१. देवकोत्थापनं=मण्डपोद्वासनमित्यर्थः। नारदः—'समे तु दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः। षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ॥' इति।

२. निर्णयदीपे गार्ग्यः—'नान्दीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम्। दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च। अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च॥ ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमातिलङ्घनम्। उपवासं व्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च॥ नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि।' बृहस्पतिः—तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे। नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति॥' इति।

मासषट्कं विवाहादौ व्रतप्रारम्भणेऽपि च।
जीर्णभाण्डादि न त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा॥
ऊर्ध्वं विवाहात्पुत्रस्य तथा च व्रतबन्धनात्।
आत्मनो मुण्डनं नैव वर्षं वर्षार्धमेव च॥
मासमन्यत्र संस्कारे त्रिमासं चौलकर्मणि।
पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥

उत्सव समाप्त होने पर, मंगलकृत्य को विना निवृत्त किये, मित्र बन्धुओं को बिदा कर, इष्ट-देवता की पूजा कर स्नान न करे। वस्त्रसहित स्नान, तिलमिश्रित कर्म, शवानुगमन, कलश-प्रदान, अपूर्व तीर्थ और देवता का दर्शन, मंगल कार्य से वर्षपर्यन्त वर्जन करे। विवाह के प्रारंभ और उपनयन के प्रारंभ से भी ६ महीने तक फूटे बर्तनों और घर के झाड़ू लगाने का त्याग न करे। पुत्र के विवाह तथा उपनयन के बाद अपना मुण्डन वर्ष या ६ महीने तक न करे। अन्य संस्कारों में एक महीना, चूड़ाकर्म में तीन माह तक पिण्डदान, मिट्टी से स्नान और तिल से तर्पण न करे।

अयं विवाहव्रतबन्धचौलोत्तरं वर्षषण्मासत्रिमासेषु अन्यवृद्धिश्राद्धयुतमङ्गलोत्तरं च मासमेकं पिण्डदानतिलतर्पणनिषेधस्त्रिपुरुषसपिण्डानामेव। एवं मुण्डननिषेधोऽपि व्रतोद्वाहौ तु मङ्गलमिति पक्षे मौञ्ज्युत्तरं मुण्डननिषेधः। व्रतबन्धस्य मुण्डनरूपत्वपक्षे तु न निषेधः। आत्मनो मुण्डनमिति कर्माङ्गतया प्राप्तं रागप्राप्तं च मुण्डनं निषिद्धयते। अत्रापवादः—

विवाह, उपनयन और चूड़ाकरण के बाद एक वर्ष, छ महीना, तीन महीना में दूसरे वृद्धिश्राद्धयुक्त मंगल के बाद एक महीने तक पिण्डदान और तिलतर्पण का जो यह निषेध है वह तीन पुरुष तक सपिण्डों ही के लिये है। इसी प्रकार मुण्डन-निषेध भी 'उपनयन और विवाह तो मंगल है' इस पक्ष में उपनयन के बाद मुण्डन का निषेध है। 'उपनयन मुण्डनरूप है' इस पक्ष में तो निषेध नहीं है। किसी कर्म के अग से अपना मुण्डन प्राप्त होने पर तथा रागप्राप्त मुण्डन का निषेध किया है। इसका अपवाद है—

गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृताहनि।
आधाने सोमयागादौ दर्शादौ क्षौरमिष्यते॥
महालये गयाश्राद्धे पित्रोः प्रत्याब्दिके तथा।
सपिण्डयन्तप्रेतकर्मश्राद्धषोडशकेष्वपि॥
कृतोद्वाहादिकः कुर्यात् पिण्डदानं च तर्पणम्।
केचिद् भ्रातृपितृव्यादेराब्दिकेऽप्येवमूचिरे।

एवं पिण्डपितृयज्ञे अष्टकाऽन्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धेषु न पिण्डदाननिषेधः। दर्शश्राद्धं त्वपिण्डकमेव। तेन बह्वृचानां व्यतिषङ्गो न। इति मण्डपोद्वासनोत्तरं कार्याकार्यनिर्णयः।

गंगा में, भास्करक्षेत्र में, माता पिता के मरण-दिवस में, सोमयाग आदि के आधान में तथा दर्श आदि में मुण्डन विहित है। महालय, गयाश्राद्ध, मातापिता के वार्षिक श्राद्ध, सपिण्डीपर्यन्त प्रेतकर्म और सोलह श्राद्धों में भी विवाहित पुरुष तर्पण और पिण्डदान करे। कोई तो भाई और चाचा आदि के वार्षिक श्राद्ध में भी ऐसा ही कहते हैं। इसी प्रकार पिण्डपितृयज्ञ, अष्टका, अन्वष्टका और पूर्वेद्युःश्राद्ध में पिण्डदान का निषेध नहीं है। दर्शश्राद्ध तो विना पिण्ड का होता ही है। इससे बहृचों का व्यतिषंग नहीं है। मण्डपोद्वासन के बाद कार्याकार्य का निर्णय समाप्त।

अथ वधूप्रवेशः

विवाहात्षोडशदिनान्तःसमदिनेषु पञ्चमसप्तमनवमदिनेषु च रात्रौ स्थिर-लग्ने नूतनभिन्नगृहे [1]वधूप्रवेशः शुभः। प्रथमदिनेऽपि क्वचित्। षष्ठदिननिषेधः प्रयोगरत्नोक्तो निर्मूलः। षोडशदिनमध्ये पूर्वोक्तदिनेषु प्रवेशोक्तनक्षत्रतिथिवारगोचर-स्थचन्द्रबलाद्यभावेऽपि गुरुशुक्रास्तादावपि न दोषः।

व्यतीपाते क्षयतिथौ ग्रहणे वैधृतौ तथा।
अमासंक्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत्॥

विवाह से सोलह दिन के भीतर समदिनों में, पांचवें, सातवें और नवें दिन में, रात में, स्थिर लग्न और पुराने घर में वधूप्रवेश शुभ है। कहीं पर पहले दिन भी होता है। प्रयोगरत्न में कहा हुआ छठे दिन का निषेध निर्मूल है। सोलह दिन के भीतर पहले कहे हुए दिनों में प्रवेश में कहे हुए नक्षत्र, तिथि, वार और गोचर के चन्द्रबल आदि के अभाव तथा गुरु शुक्र के अस्त में भी दोष नहीं है। व्यतीपात, क्षयतिथि, ग्रहण, वैधृति, अमावास्या, संक्रान्ति और भद्रा आदि में समय रहते भी प्रवेश न करे।

---

१. वधूप्रवेशो नाम नूतनपरिणीतायाः कन्यायाः प्रथमतः करिष्यमाणो भर्तृगृहप्रवेशो वधूप्रवेशशब्दवाच्य इति पीयूषधारा। ज्योतिर्निबन्धे—'वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे सप्तमे दिने। नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बले॥' संग्रहे—'विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे दिने षोडशवासरान्ताः। ऊर्ध्वं ततोऽब्देऽयुजि पञ्चमान्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति॥'

नारद ने सम दिन का निर्देश किया है—'आरम्भोद्वाहदिवसात्षष्ठे वाऽप्यष्टमे दिने। वधूप्रवेशः सम्पत्त्यै दशमेऽथ समे दिने॥' वृद्ध वसिष्ठ ने भी सम दिन का निर्देश किया—'षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः। पञ्चाङ्गसंशुद्धदिनं विनाऽपि विधावसद्गोचरगेऽपि कार्यः॥' लल्लः—'स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विप्लवे तथोद्वाहे। नववध्वा गृहगमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति॥' माण्डव्यः—'नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशनान्तेषु सप्तसु। वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः॥'

सोलह दिन के भीतर वधूप्रवेश नहीं हो सके तो विलम्बित वधूप्रवेश में विषम मास और विषम वर्ष का निर्देश विवाहपटल में किया है—'वधूप्रवेशः प्रथमेऽत्र वर्षे तथा तृतीयेऽप्यथ पञ्चमे वा। सूर्येन्दुदेवेज्यबलेन कुर्यात् पुंसो मुनिर्गौतम आह सत्यम्॥' सम मास या सम वर्ष में करने पर दोष बतलाया है—'समे वर्षे समे मासे यदि नारी गृहं व्रजेत्। आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत्॥'

ज्योतिःसारसंग्रहे—'विवाहे मासि प्रथमं वध्वा नागमनं यदि। तदा सर्वमिदं चिन्त्यं युग्माब्दं विचक्षणैः॥ नखप्रक्षालने कार्ये विषमे वत्सरे शुभे। पत्या सह समावेशे युग्माब्दं हि शुभं स्मृतम्॥' जगन्मोहनः—'प्रथमाब्दे कृतं यस्या नखरञ्जनकं स्त्रियाः। तस्याः समाब्दे यात्रायां वर्षदोषो न विद्यते॥' स्मृत्यर्थसारे—'राजप्रवेशो न निशि प्रशस्तो वधूप्रवेशो न दिवा प्रशस्तः। दिवा च रात्रौ च गृहप्रवेशः सुकीर्तिदः स्यात् त्रिविधः प्रवेशः॥' इति।

प्रथमनववधूप्रवेशे विवाहार्थगमने च प्रतिशुक्रदोषो नास्ति । द्विरागमने एव संमुखशुक्रदोषः । षोडशदिनोत्तरं मासपर्यन्तं विषमदिनेषु मासोत्तरं विषमासेषु वर्षोत्तरं वधूप्रवेशः शुभः । समेष्वेतेषु वैधव्यादिदोषः ।

प्रथम नववधू के प्रवेश में और विवाह के लिये जाने में प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता । द्विरागमन में ही सम्मुख शुक्र का दोष होता है । सोलह दिन के बाद महीने भर तक विषम दिनों में, महीने के बाद विषम मासों में, वर्ष के बाद विषम वर्षों में वधूप्रवेश शुभ है । इन सबों के सम होने में वैधव्य आदि दोष होता है ।

पञ्चमवर्षोत्तरं समविषमविचारो नास्ति । षोडशदिनोत्तरं वधूप्रवेशे नक्षत्राणि अश्विनीरोहिणीमृगपुष्यमघोत्तरात्रयहस्तचित्रास्वात्यनूराधामूलश्रवणधनिष्ठारेवत्यः शुभाः । मासोत्तरं मार्गशीर्षमाघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभाः । चतुर्थीनवमीचतुर्दशीपञ्चदशीभिन्नतिथयो रविभौमेतरवाराश्च शुभाः ।' इति नववधूप्रवेशः ।

पांच वर्ष के बाद समविषम का विचार नहीं होता । सोलह दिन के बाद वधूप्रवेश करने में अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, मघा, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती नक्षत्र शुभ हैं । महीने भर के बाद अगहन, माघ, फागुन, वैशाख और ज्येष्ठ महीना शुभ हैं । चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा से भिन्न तिथियां, रविवार और मंगलवार से भिन्न वार भी शुभ हैं । नववधूप्रवेश समाप्त ।

अथ द्विरागमनम्

तत्र माघफाल्गुनवैशाखाः शुक्लपक्षश्च शुभाः । अश्विनीरोहिणीपुनर्वसुपुष्योत्तरात्रयानूराधाज्येष्ठाहस्तस्वातीचित्राश्रवणशततारकानक्षत्रेषु चन्द्रबुधगुरुशुक्रवारेषु गुरुशुक्रास्तादिरहिते स्थिरलग्नादिशुभकाले द्वितीयवधूप्रवेशः[१] शुभः ।

---

१. द्वितीयवधूप्रवेशः = पुनर्वधूप्रवेशः, द्विरागमनमित्यर्थः । पूर्वं नववधूप्रवेशे जाते तदनन्तरं परावृत्त्यापि पितृगृहप्राप्ताया अपि वध्वा यथेष्टवर्षाणि स्थितायाः पुनर्भर्तृगृहप्रवेशो द्विरागमशब्दवाच्य इति पीयूषधारा । नारायणपद्धतौ—'वृत्ते पाणिग्रहे गेहात् पितुः पतिगृहं प्रति । पुनरागमनं वध्वास्तद् द्विरागमनं विदुः ॥' संग्रहे—'उद्वाहिता समायाता स्वीयोद्वाहाङ्गसिद्धये । कृत्वा कृत्यान्यशेषाणि भर्तृगेहाद्भवान्यपि ॥ परावृत्य पितुर्गेहे समागत्य नवाङ्गना । तत्कालावर्तनतया नवोढा नाम भूषिता ॥ स्थित्वा यथेष्टवर्षाणि पितृवेश्मनि सा वधूः । पुनर्भर्तृगृहावेशो द्विरागमनसंज्ञकः ॥' ऋक्षोच्चये—'माघफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने । गुर्वादित्यविशुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः ॥'

द्विरागमन के समय शुक्र के अस्त या दक्षिण सम्मुख रहने पर बादरायणोक्त दोष है—'अस्तं गते भृगोः पुत्रे तथा सम्मुखमागते । नष्टे जीवे निरंशे वा नैव सञ्चालयेद् वधूम् ॥ गर्भिण्या बालकेनापि नववध्वा द्विरागमे । पदमेकं न गन्तव्यं शुक्रे दक्षिणसम्मुखे ॥ गुर्विणी स्रवते गर्भं बालो वा मरणं व्रजेत् । न वा वधूर्भवेद् बन्ध्या शुक्रे सम्मुखदक्षिणे ॥' संग्रहे—'पूर्वस्थे भार्गवे यायान्नवोढा राक्षसेऽनले । पश्चिमस्थे भृगौ यायात्तद्वदीशानवातयोः ॥'

मुहूर्तचिन्तामणि में प्रतिशुक्र का अपवाद है—'नगरप्रवेशविषयाद्युपद्रवे करपीडने विबुधतीर्थयात्रयोः । नृपपीडने नववधूप्रवेशने प्रतिभार्गवो भवति दोषकृन्न हि ॥' चण्डेश्वरः—'पित्रागारे कुचकुसुमयोः सम्भवो वै यदा स्यात्पत्युः शुद्धिर्न भवति रवेः सम्मुखो वाऽपि शुक्रः । तूले लग्ने गुणवति

इसमें माघ, फागुन, वैशाख और शुक्लपक्ष भी शुभ हैं। अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, अनुराधा, ज्येष्ठा, हस्त, स्वाती, चित्रा, श्रवण और शतभिषा नक्षत्रों में सोम, बुध, गुरु और शुक्रवार में, गुरुशुक्रास्त से रहित स्थिर लग्न आदि शुभ काल में द्वितीय वधूप्रवेश शुभ है।

अथ द्विरागमने वर्ज्यानि तदपवादश्च

द्विरागमनेऽधिमासविष्णुशयनमासाः समवत्सराः प्रतिशुक्रादिदोषाश्च वर्ज्याः। द्विरागमोऽपि यदि विवाहमारभ्य षोडशदिनमध्ये क्रियते तदा प्रतिशुक्रादिदोषश्च नास्ति।

द्विरागमन में अधिमास, विष्णुशयन के महीने, सम वर्ष और प्रतिशुक्रादि का दोष भी वर्जनीय है। द्विरागमन यदि विवाह से सोलह दिन के बीच में किया जाय तो प्रतिशुक्रादि का दोष और अस्त आदि का दोष नहीं होता।

द्विरागमे षोडशवासरान्तरे एकादशाहे समवासरेषु।
न चात्र ऋक्षं न तिथिर्न योगो न वारशुद्धयादि विचारणीयम्॥

केवलाङ्गिरसकेवलभृगुभरद्वाजवसिष्ठकश्यपात्रिवत्सगोत्राणां प्रतिशुक्रदोषो न। रेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकाद्यचरणेषु चन्द्रे सति शुक्रस्यान्धत्वात्प्रतिशुक्रदोषो न। दुर्भिक्षे देवविप्लवे विवाहे तीर्थगमने एकनगरग्रामयोश्च प्रतिशुक्रदोषो न। इति द्विरागमः।

तिथौ चन्द्रताराविशुद्धौ स्त्रीणां यात्रा भवति सफला सेवितुं स्वामिसद्म ॥' बादरायणः—'कश्यपेषु वसिष्ठेषु चात्रिभृग्वङ्गिरःसु च। भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रो न दुष्यति ॥' संग्रहे—'विलम्बिता समायाता भर्तुर्गेहे भृगोर्बलात्। तस्या द्विरागमे शुक्रप्रातिकूल्यं पुनर्न हि ॥'

नवोढागमन ग्रन्थ में अब्ददोष का परिहार—'समाब्ददोषो न हि विद्यते तदा ग्रन्थेर्निबन्धं हि भवेन्नराणाम्। विन्ध्योत्तरे चैव वदन्ति विज्ञास्तद्दक्षिणे चाब्दसमं न शस्तम् ॥' अन्यच्च—'ग्रन्थिर्निबन्धनादूर्ध्वमब्ददोषो न विद्यते। विन्ध्यस्योत्तरभागे तु दक्षिणे परिवर्जयेत् ॥' नवोढागमन में सिद्धान्त-प्रतिपादन—'विलम्बिते वधूवेशे नवोढाया द्विरागमे। विलम्बिता गता प्रौढा तस्या नैव द्विरागमे ॥ सानुकूल्यं भृगोश्चिन्त्यं राहोरत्र प्रकल्पनम्।' इति।

राहु का विचार—'प्रथमे गुरुशुद्धिः स्याच्छुक्रशुद्धिर्द्विरागमे। त्रिगमे राहुशुद्धिश्च चन्द्रशुद्धिश्चतुर्गमे ॥' इस उक्ति से वधू के पिता के घर से पति के घर तृतीय वार के आगमन में करना चाहिये। 'पुनः सपूर्वयात्रायां प्रातिकूल्यं भृगोर्न हि। यथा भृगुस्तथा राहुः सदाचारे व्यवस्थितः ॥' संग्रहे—'यथा भृगुर्दक्षिणसम्मुखस्थो मृगीदृशीनामशुभो गमे सदा। तथैव राहुः परिकल्पनीयो द्व्यङ्गेन कार्यं भृगुजाद् विलोमम् ॥'

गंगा के उत्तरदेश में ही राहु का विचार है—'जह्नुजायाम्यकूले कुरङ्गीदृशां दक्षपृष्ठस्थितः सैंहिकेयः शुभः। सम्मुखे वामभागे भवेच्चाशुभो त्वन्यदेशे न सद्दक्षिणे सम्मुखे ॥' राहु का दिग्ज्ञान—वृश्चिकादिं समारभ्य त्रित्रिभस्थे दिवाकरे। द्व्यङ्गे त्रैमासिको राहुः पूर्वयाम्यपरोत्तरे ॥ प्राचीने संग्रहे चैवं त्ववर्चीनेप्यजात् क्रमात्। त्रिभ्रमान्मासिको राहुः पूर्वादिष्वर्कसंक्रमात् ॥ यथा भृगोस्तथा राहोः सानुकूल्यावलोकनम्। शिष्टाचरणमत्रास्ति न निबन्धे पुरातने ॥' इति।

द्विरागमन में सोलह दिन के बीच में ग्यारहवें दिन सम वारों में प्रवेश करे। इसमें नक्षत्र-तिथि-योग-वार की शुद्धि आदिका विचार नहीं करे। केवल आंगिरस, केवल भृगु, भारद्वाज, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि और वत्स गोत्र वालों को प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता। रेवती, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका के प्रथम चरण में चन्द्रमा रहने पर शुक्र के अन्धा होने से प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता। दुर्भिक्ष, देश के उपद्रव, विवाह, तीर्थयात्रा और एक शहर या एक गांव में प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता। द्विरागमन समाप्त।

अथ वध्वाः प्रथमाब्दे निवासः

उद्वाहात्प्रथमे[1] शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका
हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिं ज्येष्ठकम्।
पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये
तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत्॥

इति वध्वाः प्रथमाब्दे निवासविचारः।

विवाह से पहिले आषाढ़ में यदि पतिगृह में बहू रहे तो अपनी सास को मारती है। क्षय मास में अपने शरीर का, ज्येष्ठमास में पति के जेठे भाई का, पूस में श्वशुर का, मलमास चैत्र में पतिका और इन महीनों में अपने नैहर रहती हुई पिता का नाश करती है। इन सबों के न रहने पर कोई भय नहीं है। वधू के प्रथम वर्ष में निवास का विचार समाप्त।

अथ पुनर्विवाहः

दुष्टलग्ने यथोक्तग्रहताराद्यभावेऽन्यत्रापि दुष्टयोगाद्यशुभकाले कूष्माण्डीघृत-होमादि यथोक्तविधिं विना सूतकादौ च विवाहे जाते तयोरेव दम्पत्योः सुमुहूर्ते पुनर्विवाहः[2] कर्तव्यः।

दुष्ट लग्न में जैसा कहा गया है, वैसे तारादि के न होने पर अन्यत्र भी दुष्ट योग आदि अशुभ समय में कुष्माण्डी-घृत-होम आदि कही हुई विधि के विना सूतक आदि में भी विवाह हो जाने पर उन्हीं पति-पत्नी को अच्छे मुहूर्त में फिर विवाह करना चाहिये।

अथ पुनर्विवाहनिमित्तानि

सुरापी व्याधिता धूर्ता वंध्याऽर्थघ्न्यप्रियंवदा।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा॥

अधिवेदनं भार्यान्तरकरणम्।

अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत्।
मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम्॥

---

१. यह ज्योतिर्निबन्ध का वचन है। निबन्ध में—'विवाहात् प्रथमे पौषे आषाढे चाधिमासके। न सा भर्तृगृहे तिष्ठेच्चैत्रे पितृगृहे तथा॥' इति।

२. श्रीधरीये—'पुनर्विवाहं वक्ष्यामि दम्पत्योः शुभवृद्धिदम्। लग्नेन्दुलग्नयोर्दोषे ग्रहतारादिसम्भवे॥ अन्येष्वशुभकालेषु दुष्टयोगादिसम्भवे। विवाहे चापि दम्पत्योराशौचादिसमुद्भवे॥ तस्य दोषस्य शान्त्यर्थं पुनर्वैवाह्यमिष्यते।' इति।

अत्राप्रियवादो व्यभिचारः । प्रतिकूलभाषणरूपस्य तस्य प्रायः कलौ सार्वत्रिकत्वात् ।

जो स्त्री मद्य पीने वाली, व्याधिग्रस्ता, धूर्ता, वन्ध्या, पैसे को नष्ट करनेवाली, अप्रिय बोलनेवाली, कन्या पैदा करने वाली, पति से द्वेष करने वाली हो, ऐसी स्थिति में पति दूसरी स्त्री से विवाह कर ले । जिसको सन्तान न हो ऐसी स्त्री को दसवें वर्ष में, कन्यासन्तान वाली को बारहवें वर्ष में, जिसके संतान न जीते हों उसे पन्द्रहवें वर्ष में त्याग दे । अप्रियवादिनी को तुरन्त त्याग दे । यहाँ अप्रिय बोलना व्यभिचार से तात्पर्य है । प्रतिकूल भाषण रूप तो कलियुग में सार्वत्रिक है ।

[1]'आज्ञासम्पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीं पत्नीं त्यक्त्वा भोगार्थमन्योद्वाही पूर्वभार्यायै स्वधनस्य तृतीयांशं दद्याद् निर्धनश्चेत्तां पोषयेत् । मनुः—

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात् ।
सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥

आज्ञा करने वाली, गृहकार्य में दक्ष, पुत्रप्रसव करने वाली, प्रियभाषिणी पत्नी को छोड़कर भोग के लिये दूसरी स्त्री से विवाह करने वाला पहिली स्त्री को अपने धन का तृतीय भाग दे । यदि निर्धन हो तो उसका पोषण पालन करे । मनु कहते हैं कि जो दूसरी स्त्री कुपित होकर घर से निकल जाय उसको तुरन्त रोक दे अथवा कुल के सन्निधि में त्याग करे ।

अथ धर्मकार्ये ज्येष्ठकनिष्ठस्त्रीव्यवस्था

अग्निशुश्रूषादिधर्माचरणं ज्येष्ठया सह कार्यं न तु कनिष्ठया । इदं ज्येष्ठाया आज्ञासंपादिनीत्वे । यदि तु रोषादिशीलेन समनन्तरोक्तमनुवाक्याज्ज्येष्ठा कुलसन्निधौ त्यागार्हा गृहान्तरे निरोधार्हा वा तर्हि कनिष्ठयापि सह धर्मं चरेदन्यथा धर्मभ्रंशापातात् ।

तथा वीरसुता या स्यादाज्ञासंपादिनी च या ।
दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥ इति माधवीयस्मृतेश्च ।

अग्निशुश्रूषा आदि धर्माचरण ज्येष्ठा स्त्री के साथ करे छोटी के साथ न करे । यह ज्येष्ठा स्त्री आज्ञा करने वाली हो तब करे । यदि क्रोध आदि वाली हो तो अभी कहे हुए मनुवचन से कुल के सन्निधि में त्याग के योग्य हो या दूसरे घर में निरोध के योग्य हो तब तो छोटी के भी साथ धर्माचरण करे नहीं तो धर्मभ्रंश हो सकता है । वैसे ही पुत्र पैदा करने वाली, आज्ञा करने वाली, प्रिय बोलने वाली और गृहकार्य में चतुर जो शुद्ध स्त्री हो उसे अग्निसेवा आदि धर्माचरण में लगावे, ऐसा माधवीय स्मृति में कहा है ।

अथ द्वितीयविवाहे अग्निविचारः

द्वितीयविवाहहोमः पूर्वविवाहसंबन्धिगृह्याग्नावेव[2] कार्यः । तदसंभवे लौकि-

---

१. यह याज्ञवल्क्य का वचन है और इसके आगे का पाठ है—'त्यजन् दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ।' भरणं = शरीरपोषणार्थमन्नवस्त्रादि । समर्थ के लिए तो—'एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यां लब्धुं य इच्छति । समर्थस्तोषयित्वाऽर्थैः पूर्वोढामपरां व्रजेत् ॥' इति ।

२. कात्यायनः—'सदारोऽन्यान् पुनर्दारानुद्वोढुं कारणान्तरात् । यदीच्छेदग्निमान् कर्तुं क्व होमोऽस्य विधीयते ॥ स्वेग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन । त्रिकाण्डमण्डन ने भी कहा है—'आद्यायां विद्यमानायां द्वितीयामुद्वहेद्यदि । तदा वैवाहिकं कर्म कुर्यादावसथेऽग्निमान् ॥ इसके सुदर्शन-

कार्यौ कार्यः । लौकिकाग्नौ करणपक्षे द्वितीयविवाहहोमादिनोत्पन्नाग्नेर्गृह्याग्नित्वाद् द्वयोर्गृह्याग्न्योः संसर्गः कार्यः ।

दूसरे विवाह का होम पहले विवाह सम्बन्धी गृह्य अग्नि में ही करे। ऐसा सम्भव न होने से लौकिक अग्नि में करे। लौकिकाग्नि में करने के पक्ष में द्वितीय विवाह के होम आदि से उत्पन्न अग्नि का गृह्याग्नि होने से दोनों गृह्याग्नियों का संसर्ग करे।

अथाग्निद्वयसंसर्गप्रयोगः

देशकालौ संकीर्त्य 'मम द्वाभ्यां भार्याभ्यां सह निष्पन्नगृह्याग्न्योस्ताभ्यां सहाधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं संसर्गं करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनं कृत्वा उदगपवर्गे स्थण्डिले कृत्वा दक्षिणे स्थण्डिले ज्येष्ठाया गृह्याग्निमुत्तरे कनिष्ठाया गृह्याग्निं प्रतिष्ठाप्य प्रथमाग्नौ ज्येष्ठपत्न्यान्वारब्धोऽन्वाधानं कुर्यात् । 'अग्निद्वयसंसर्गार्थे प्रथमाग्निहोमकर्मणि देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये' चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते अग्निं नवभिराज्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि अग्निमीडे इति नवानां मधुच्छन्दा अग्निर्गायत्री अग्निद्वयसंसर्गार्थं प्रथमाग्नौ प्रधानाज्यहोमे वि० । अग्नमीडे इत्यादि नवभिर्ऋग्भिः प्रत्यृचं स्रुवेण नवाज्याहुतीर्जुहुयात् । अग्नय इदमिति सर्वत्र त्यागः ।

देश काल कह कर 'मेरी दो पत्नियों के साथ दो गृह्याग्नियों के सम्पन्न होने पर उन दोनों अग्नियों के साथ अधिकार-सिद्धि-द्वारा परमात्मा की प्रीति के लिये संसर्ग करूंगा' ऐसा संकल्प और स्वस्तिवाचन करके उत्तर की ओर दले दो स्थण्डिल बनाकर दक्षिण स्थण्डिल में ज्येष्ठा पत्नी की और उत्तर स्थण्डिल में कनिष्ठा पत्नी की गृह्याग्नि की प्रतिष्ठा कर पहली अग्नि में ज्येष्ठा स्त्री के साथ अन्वाधान करे।

संकल्प करे—'दो अग्नि के संसर्ग के लिये प्रथम अग्नि के होमकर्म में देवता-परिग्रह के लिये अन्वाधान करूंगा'। चक्षुषी आज्येन इसके अन्त में अग्नि में नव घृताहुतियों से, शेषेण इत्यादि से होम करके 'अग्निमीडे' इन नव मन्त्रों का मधुच्छन्दा अग्नि ऋषि गायत्रीच्छन्द दो अग्नियों के संसर्ग के लिये प्रथम अग्नि में प्रधान घृत होम में विनियोग है। 'अग्निमीडे' इत्यादि नव ऋचाओं से प्रत्येक ऋचा कहकर स्रुवा से नव घृत की आहुति से होम करे। यह अग्नि के लिये है, ऐसा कहकर सर्वत्र त्याग करना चाहिये।

होमशेषं समाप्य अयं ते योनिरिति मन्त्रेण ज्येष्ठाग्निं समिधि समारोप्य प्रत्यवरोहेति मन्त्रेण तं द्वितीयाग्नौ प्रत्यवरोह्य ध्यात्वा पत्नीद्वयान्वारब्धोऽन्वाधानं कुर्यात् । 'अग्निद्वयसंसर्गार्थे प्रथमसंसृष्टद्वितीयाग्नौ विहितहोमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये' ।

होमशेष समाप्त करके 'अयं ते योनिः' इस मन्त्र से ज्येष्ठा स्त्री की अग्नि को समिधा में रख कर 'प्रत्यवरोह' इस मन्त्र से उस अग्नि को दूसरी अग्नि में प्रत्यवरोह करके ध्यान कर दोनों

भाष्य में कहा है—'द्वितीयविवाहहोमो लौकिक एव न पूर्वौपासने'। परन्तु इसे औपासन के असम्भव में जानना चाहिये।

पत्नियों के साथ अन्वाधान करे। 'दोनों अग्नियों के संसर्ग के लिये प्रथम मिली हुई दूसरी अग्नि में विहित होम में देवतापरिग्रह के लिये अन्वाधान करूंगा'।

आज्यभागान्ते अग्नि प्रधानं षड्वारमाज्येन शेषेणेत्यादि। प्रोक्षणीं कुशान् दर्वीस्रुवौ प्रणीताज्यपात्रे इध्माबर्हिषी इत्यष्टौ पात्राणि स्रुचि चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा पत्नीद्वयान्वारब्धो जुहुयात्। अग्नावग्निरित्यस्य हिरण्यगर्भोग्निरृषिः अग्निद्वयसंसगर्थि संसृष्टाग्नौ प्रधानाज्यहोमे विनि०। ॐ अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः। तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन मा देवानां मोमुहद्भागधेयं स्वाहा अग्नय इदं०।

आज्यभाग के अन्त में प्रधान अग्नि को छ बार घृत की आहुति दे शेष से होम करे। प्रोक्षणी कुशा, दर्वी, स्रुवा, प्रणीता, घृतपात्र, इध्मा, बर्हिषी इस प्रकार ८ पात्र होते हैं। स्रुवा में ४ बार घृत को ग्रहण कर दोनों पत्नियों के साथ आहुति दे। ओं अग्नावग्निः इस मन्त्र का हिरण्यगर्भ अग्नि दो अग्नि के संसर्ग के लिये मिली हुई अग्नि में प्रधान घृतहोम का विनियोग है। ॐ अग्नावग्निश्चरति इत्यादि मूलोक्त मंत्र से होम करे।

एवमग्रेऽपि आज्यस्य स्रुचि चतुर्ग्रहणं विनियोगस्त्यागश्च। अग्निनाग्निर्मेधातिथिः काण्वोऽग्निर्गायत्री। ॐ अग्निनाग्निः समिध्यते०। अस्तीदमिति तिसृणां विश्वामित्रोग्निरनुष्टुप् अन्त्ये त्रिष्टुभौ। ॐ अस्तीदमधि०। ॐ अरण्यो०। ॐ उत्तानायाम०। पाहि नो अग्न इत्यस्य भर्गः प्रगाथोऽग्निर्बृहती। ॐ पाहि नो० भिर्वसोस्वाहा। होमशेषं समाप्याहिताग्नये गोयुग्मं दत्त्वा विप्रान् भोजयेत्। इत्यग्निद्वयसंसर्गप्रयोगः।

इसी प्रकार आगे भी घृत को स्रुवा में चार बार ग्रहण विनियोग और त्याग करे। अग्निना अग्निः इन ऋचाओं के मेधातिथि काण्व अग्नि ऋषि, गायत्री छन्द दोनों अग्नियों के आज्यहोम का विनियोग है। ॐ अग्निना अग्निः समिध्यते० 'अस्तीदम्' इन तीन ऋचाओं के विश्वामित्र अग्नि ऋषि अनुष्टुप् छन्द और अन्त की दो त्रिष्टुभ। ॐ 'अस्तीदमधि०'। 'ॐ अरण्यो०'। 'ॐ उत्तानायाम०। पाहि नो अग्न इसका भर्ग प्रगाथ अग्नि ऋषि बृहती छन्द और आज्यहोम का विनियोग है। पश्चात् ॐ पाहि नो० भिर्वसु स्वाहा यह कहकर आहुति दे। होमशेष समाप्त करके अग्निहोत्री को दो गाय देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे। अग्निद्वय संसर्गप्रयोग समाप्त।

पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्वा तेनैव तां पुनः।
आदधीतान्यया सार्धमाधानविधिना गृही॥

दो पत्नियों में से एक यदि मर गई हो तो उसको उसी अग्नि से जलाकर उसको पुनः दूसरी के साथ आधान विधि से गृहस्थ आधान करे।

अथ द्वितीयादिविवाहकालः

प्रमदामृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च।
विषमे परिवत्सरे शुभो युगले चापि मृतिप्रदो भवेत्॥

संकटे महारुद्राभिषेकं मृत्युंजयमन्त्रजपं वा कृत्वा विवाहः कार्यं इति भाति।

तृतीया मानुषी कन्या [1]नोद्वाह्या म्रियते हि सा।
विधवा वा भवेत्तस्मात्तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत् ॥

स्त्री के मरने के दिन से वर की पुनर्विवाह-विधि विषम वर्ष में शुभ है। सम वर्ष में मरणप्रद होता है। संकट में महारुद्राभिषेक या मृत्युञ्जय जप करके विवाह करे, यह ठीक मालूम होता है। तीसरी मनुष्य की कन्या से विवाह न करे, क्योंकि वह मर जाती है या विधवा हो जाती है। इस लिये तीसरे विवाह में अर्क से विवाह करे।

अथार्कविवाहः

रविशन्योर्वारे हस्तर्क्षे वान्यत्र शुभदिने वा पुष्पफलयुतमर्कं गत्वा अर्ककन्यादातारमाचार्यं कृत्वा रक्तगन्धादिभूषितो देशकालौ स्मृत्वा 'मम तृतीयमानुषीविवाहजन्यदोषपरिहारार्थं तृतीयमर्कविवाहं करिष्ये'। आचार्यं वृत्वा नान्दीश्राद्धान्तं कुर्यात्। दाता मधुपर्कयज्ञोपवीतवस्त्रगन्धमाल्यादिभिर्वरं पूजयेत्। अर्कस्य पुरतः स्थित्वा—

त्रिलोकवासिन् सप्ताश्वच्छायया सहितो रवे।
तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ॥ इति प्रार्थ्य,

रवि-शनि के दिन में हस्त नक्षत्र में या दूसरे शुभ दिन में पुष्प-फल-युक्त अर्क के पास जाकर अर्क कन्या दाता आचार्य को करके रक्त गन्ध आदि से भूषित हो देश काल का स्मरण करके 'मेरे तीसरे मानुषी-विवाहसे उत्पन्न दोष परिहार के लिये तीसरा अर्क विवाह करूंगा आचार्य का वरण कर नान्दीश्राद्धपर्यन्त कर्म करे। दाता मधुपर्क, यज्ञोपवीत, वस्त्र, गन्ध और माला आदि से वर की पूजा करे।

---

१. मत्स्यपुराण में तृतीय विवाह का निषेध किया है-'उद्वहेद्रतिसिद्ध्यर्थं तृतीयां न कदाचन। मोहादज्ञानतो वाऽपि यदि गच्छेत्तु मानुषीम् ॥ नश्यत्येव न सन्देहो गर्गस्य वचनं यथा।' संग्रह में—'तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत्। चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत् ॥' इति।

गदाधरभाष्यादि में अर्कविवाह के ब्रह्मपुराणोक्त मूलवचन हैं—'आदित्यदिवसे वाऽपि हस्तर्क्षे वा शनैश्चरे। शुभे दिने वा पूर्वाह्ने कुर्यादर्कविवाहकम् ॥' विवाह का प्रदेश—'ग्रामाद् प्राच्यामुदीच्यां वा सपुष्पफलसंयुतम्। परीक्ष्यार्कं ततोऽधस्तात् स्थण्डिलादि यथाविधि ॥ कृत्वाऽर्कं पुरतस्तिष्ठन् प्रार्थयेत द्विजोत्तमः। त्रिलोकवासिन्०······सुखं कुरु ॥ तत्राध्यारोप्य देवेशं छायया सहितं रविम्। वस्त्रैर्माल्यैस्तथा गन्धैस्तन्मन्त्रेणैव पूजयेत् ॥ स्मृत्यन्तरे—'श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य तथा कार्पासतन्तुभिः। गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य अब्लिङ्गैरभिषिच्य च ॥ गुडौदनं च नैवेद्यं ताम्बूलं च समर्पयेत्।'

ततः—'अर्ककन्याप्रदानार्थमाचार्यं कल्पयेत्पुरा। अर्कसन्निधिमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत् ॥ नान्दीश्राद्धे हिरण्येन अष्टवर्गान् प्रपूजयेत्। पूजयेन्मधुपर्केण वरं विप्रस्य हस्ततः ॥ अर्कं प्रदक्षिणं कुर्वन् जपेन्मन्त्रमिमं पुनः। मम प्रीतिकरा चेयं०···मृत्युं चाशु विनाशय ॥ ततश्च कन्यावरणं त्रिपुरुषं कुलमुच्चरेत्। आदित्यः सविता सूर्यः पुत्री पौत्री च नप्त्रिका ॥ गोत्रं काश्यप इत्युक्तं लोके लौकिकमाचरेत्। सुमुहूर्तेऽर्कमीक्षेत स्वस्तिसूक्तमुदीरयन् ॥ आशीर्भिः सहितैः कुर्यादाचार्यप्रमुखैर्द्विजैः। अथाचार्यं समाहूय विधिना तन्मुखाच्च ताम् ॥ प्रतिगृह्य ततो होमं गृह्योक्तविधिनाऽऽचरेत्।' अवशिष्ट वचन और विशिष्ट विधि अन्यत्र देखें।

अर्क के आगे खड़ा होकर प्रार्थना करे—हे त्रिलोकवासिन्! सात घोड़े वाले हे सूर्य! छाया के सहित आप तीसरे विवाह से उत्पन्न दोष का निवारण करें और सुखी करें।

छायायुतं रविमर्के ध्यात्वाऽब्लिङ्गैरभिषिच्य वस्त्रादिभिराकृष्णेनेति मन्त्रेण[१] संपूज्य श्वेतवस्त्रेण सूत्रेण चावेष्ट्य गुडौदनं निवेद्य ताम्बूलं दद्यात्।

मम प्रीतिकरा येयं मया स्पृष्टा पुरातनी।
अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टाऽद्यास्मान्संप्रति रक्षतु॥ इत्यर्कं प्रदक्षिणीकृत्य,
नमस्ते मङ्गले देवि नमः सवितुरात्मजे।
त्राहि मां कृपया देवि पत्नीत्वं म इहागता॥
अर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय वै।
वृक्षाणामधिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्धन॥
तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय। इति च प्रदक्षिणीकुर्यात्।

छायायुक्त सूर्य को अर्क में ध्यान करके अब्लिंग मन्त्रों से अभिषेक कर वस्त्र आदि से 'आकृष्णेन' इस मन्त्र से पूजा कर श्वेत वस्त्र या सूत से वेष्ठित कर गुड़ और भात निवेदन करके ताम्बूल दे। जो मेरी प्रीति करने वाली यह है मुझसे स्पर्श की हुई पुरातनी सूर्य से उत्पन्न ब्रह्मा से सृष्टि की गई आज हम लोगों की रक्षा करें। इस प्रकार आक की प्रदक्षिणा करके हे मंगले देवि! सूर्य की पुत्रि! तुमको नमस्कार है कृपा करके मेरी पत्नी होकर यहां आई हो, मेरी रक्षा करो। हे अर्क! सब जीवों के हित के लिये ब्रह्मा से बनाये गये तुम देवताओं की प्रीति बढ़ाने वाले वृक्षों के जीव तीसरे विवाह से उत्पन्न पाप और मृत्यु को शीघ्र नष्ट करो। इसको कह कर प्रदक्षिणा करे।

अन्तःपटधारणादिकन्यादानपर्यन्तं विधिं कृत्वा कन्यादाता—'आदित्यस्य प्रपौत्रीं सवितुः पौत्रीमर्कस्य पुत्रीं काश्यपगोत्रामर्ककन्याममुकगोत्राय वराय तुभ्यं सम्प्रददे'।

अर्ककन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम्।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय॥

दक्षिणां दत्त्वा गायत्र्या वेष्टितसूत्रेण बृहत्सामेति मन्त्रेण अर्कवरयोः कङ्कणं बध्वाऽर्कस्य चतुर्दिक्षु कुम्भेषु विष्णुं नाममन्त्रेण षोडशोपचारैः संपूज्य अर्कस्योत्तरेऽर्कपत्न्यान्वारब्धो वरः 'अस्याः सम्यग् भार्यात्वसिद्ध्यर्थं पाणिग्रहहोमं करिष्ये'।

अन्तःपट धारण से लेकर कन्यादानपर्यन्त विधि करके कन्यादाता 'सूर्य की प्रपौत्री सविता की पौत्री, अर्क की पुत्री काश्यप गोत्र वाली अर्ककन्या को अमुक गोत्र वर को तुझे देता हूँ'। हे ब्राह्मण! अमुक शर्मा अमुक गोत्र तुझको मुझसे दी हुई यथाशक्ति विभूषित इस अर्ककन्या को अपने आश्रय में रखो। दक्षिणा देकर गायत्री से सूत से वेष्ठित कर 'बृहत्साम' इस मन्त्र से अर्क और वर को कंकण बांध कर अर्क के चारो दिशाओं में कलशों में विष्णु को नाममन्त्रों से षोडशोपचार से पूजकर अर्क के उत्तर अर्क की पत्नी के पास वर कहे—'इसके सम्यक् भार्यात्वसिद्धि के लिये विवाह होम करता हूँ'।

---

१. यजुर्वेद का पूर्ण मन्त्र यों है—'आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च। हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन्॥' इति।

[1]आधारदेवते आज्येनेत्यन्ते बृहस्पतिम् अग्निम् अग्नि वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्यद्रव्येण, शेषेण स्विष्टकृतम् आधारान्तं कृत्वा, संगोभिरित्यस्याङ्गिरसो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् आज्यहोमे विनियोगः । ॐ संगोभिराङ्गिरसो०, बृहस्पतय इदं० । यस्मै त्वेति वामदेवोग्निस्त्रिष्टुप् । यस्मै त्वाकामकामाय वयं सम्राड् यजामहे । तमस्मभ्यं कामं दत्त्वाथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा, अग्नय इदं० । ततो व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा होमशेषं समाप्य,

मयाकृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा ।
अर्कापत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥

इति प्रार्थ्य शांतिसूक्तपाठान्ते गोयुग्ममाचार्याय दत्त्वा स्वधृतवस्त्राणि गुरवे दत्त्वाऽन्यानि धारयेत् । दश त्रयो वा विप्रा भोज्याः । इत्यर्कविवाहः ।

आधार देवता को घृत से आहुति देकर अन्त में बृहस्पति, अग्नि, अग्नि वायु, सूर्य और प्रजापति को घृतद्रव्य से आहुति दे । बचे हुऐ से स्विष्टकृत् आधार तक करके 'संगोभिः' इस मंत्र के आंगिरस बृहस्पति देवता, त्रिष्टुप् छन्द घृतहोम में विनियोग करे । 'ॐ संगोभिरांगिरसो०' बृहस्पतये इदं० । 'यस्मै त्वा' इसका वामदेवोग्नि ऋषि त्रिष्टुप् छन्द घृतहोम में विनियोग है । 'ॐयस्मै त्वा कामकामाय०' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से आहुति दे । तदनन्तर व्यस्त समस्त व्याहृतियों से होम करके शेष होम को समाप्त कर प्रार्थना करे—हे अर्क ! मैंने स्थावरों में इस कर्म को किया मुझे सन्तान दो अपराधों को क्षमा करो । ऐसी प्रार्थना कर शान्ति-सूक्त पढ़ने के बाद आचार्य को दो गाय देकरसमस्त अपने धारण किये हुए वस्त्रों को गुरु को देकर स्वयं अन्य वस्त्र पहने । दस या तीन ब्राह्मणों का भोजन करावे । अर्कविवाह समाप्त ।

अथाह्निकप्रारम्भः

श्रीमन्नाथाङ्घ्रिकमलं दीनानाथदयार्णवम् ।
स्मारं स्मारं कामपूरमाह्निकाचरणं ब्रुवे ॥ १ ॥
प्रथमोक्तो बह्वृचानां प्रकारः स तु याजुषैः ।
ग्राह्यो यत्र स्वसूत्रोक्तो विशेषः स्यान्न बाधकः ॥ २ ॥

दीन और अनाथों के दयासमुद्र, कामना को पूर्ण करनेवाले श्रीनाथ के चरण-कमलों को स्मरण करके आह्निक-आचार कहता हूँ । बह्वृचों का आह्निक-प्रकार जो पहिले कहा है वह यजुर्वेदियों को ग्रहण करना चाहिये, जिसमें अपने सूत्र का कहा हुआ विशेष बाधक न हो ॥ १-२ ॥

[2]ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय श्रीविष्णुं स्मृत्वा गजेन्द्रमोक्षादि पठित्वा इष्टदेवतादिस्मरेत् ।

---

१. इसके पहले मूल में लिखा 'बृहत्साम' यह तैत्तिरीय मन्त्र पूरा यों है—'बृहत्साम क्षत्रभृद्वृद्धवृष्ण्यं त्रिष्टुभौजः शुभितमुग्रवीरम् । इन्द्र स्तोमेन पञ्चदशेन मध्यमिदं वातेन सगरेण रक्ष ॥' इति ।

२. विष्णुपुराणोक्त ब्राह्ममुहूर्त—'रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः । स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने ॥ पञ्च पञ्च उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः । अष्टपञ्च भवेत् प्रातस्ततः सूर्योदयः स्मृतः ॥' रत्नावली में ब्राह्ममुहूर्त में नहीं उठने पर दोष कहा है—'ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी । तां करोति द्विजो मोहात् पादकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥' इति ।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इति भूमिं प्रार्थ्य गवादिमङ्गलानि[1] पश्येत् ।

ब्राह्म-मुहूर्त्त में उठकर श्रीविष्णु का स्मरणपूर्वक गजेन्द्रमोक्ष आदि का पाठ कर अपने इष्ट-देवता आदि का स्मरण करे। हे विष्णुपत्नि! हे देवि! आपका वस्त्र समुद्र है। पर्वतरूप स्तनों से भूषित हैं। आपको नमस्कार है। मेरे चरण का स्पर्श क्षम्य है। इस प्रकार भूमि की प्रार्थना कर गौ आदि मांगलिक द्रव्य का दर्शन करे।

अथ मूत्रपुरीषोत्सर्गादिविधिः

तृणाद्यन्तर्हितभूमौ शिरः प्रावृत्य यज्ञोपवीतं निवीतं पृष्ठतः कर्णे[2] वा कृत्वा घ्राणपिधानं कृत्वा दिवासंध्ययोरुदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणामुखो मौनी अनुपानत्क आसीनो मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात् । यज्ञोपवीतस्य [2]निवीतत्वं विनैव कर्णे धारण-मनाचारः । मार्गजलदेवालयनदीतीरादौ मलोत्सर्गो निषिद्धः ।

पृथ्वी को तृण आदि से और अपने सिर को वस्त्र से ढककर यज्ञोपवीत को गले में करके पीछे या कान पर रख कर नाक को ढककर दिन में और दोनों सन्ध्या में उत्तरमुख होकर तथा रात में दक्षिणमुख मौन होकर बिना जूते के बैठकर मूत्र और मल का त्याग करे। जनेऊ को गले में नहीं करके कान पर चढ़ाना आचारविरुद्ध है। रास्ता, जल, देवालय और नदीतट आदि में मल का त्याग निषिद्ध है।

हस्तान्द्वादश संत्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात् ।
अवकाशे षोडश वा पुरीषे तु चतुर्गुणम् ॥

प्रत्यर्कादिमेहने स्वशकृद्दर्शने च सूर्यं गां वा पश्येत् । ततो गृहीतशिश्न

---

१. आदि पद से प्रभात में स्वकरतलादि का अवलोकन है—'कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती। करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम् ॥' कात्यायनः—'रोचनं चन्दनं हेम मृदङ्गं दर्पणं मणिम्। गुरुमग्निं तथा सूर्यं प्रातः पश्येत् सदा बुधः ॥' नागदेवः—'पूर्वं च सर्पिर्दधिसर्षपांश्च धेनुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम्। मृद्गोमयं स्वस्तिकमक्षतांश्च वह्निं मधु ब्राह्मणकन्यकाश्च ॥ श्वेतानि वस्त्राणि तथा श्वमिं च हुताशनं चन्दनकल्पबीजम्। अश्वत्थवृक्षं च समालभेत ततश्च कुर्यान्निजधर्मकार्यम् ॥ लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः। हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः ॥ एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्चयेद् बुधः। प्रदक्षिणानि कुर्वीत तस्यायुर्न च हीयते ॥' आचार प्रदीप में नागदेव—'श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितं तथा। प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥' अन्यच्च – 'भारद्वाजमयूराणां चाषस्य नकुलस्य च। प्रभाते दर्शनं श्रेष्ठं वामपृष्ठे विशेषतः ॥'

अदर्शनयोग्य पदार्थ—'पापिष्ठं दुर्भगं चान्धं नग्नमुत्कृत्तनासिकम्। प्रातरुत्थाय यः पश्येत्तत्कलेरुपलक्षणम् ॥ भल्लातकं कर्षफलं काकमार्जारमूषकान्। क्लीबं च गर्दभं चैव न पश्येत् प्रातरेव हि ॥' इति।

२. यज्ञोपवीत को माला की तरह किये बिना 'निवीतं कण्ठलम्बितम्'। अङ्गिराः—'कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम्। विण्मूत्रे तु गृही कुर्याद् वामकर्णे समाहितः ॥' सायणीये—'मलमूत्रं त्यजेद् विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक्। उपवीतं तदुत्सृज्य धार्यमन्यन्नवं तदा ॥' इति।

उत्थाय शौचं कुर्यात् । मूत्रोत्सर्गे शुद्धमृदं सकृत् लिङ्गे त्रिधारं वामकरे द्विवार-मुभयोः करयोर्दत्त्वा तावद्वारं जलेन क्षालयेत् ।

मूत्रात्तु द्विगुणं शुक्रे मैथुने त्रिगुणं स्मृतम् । पुरीषे तु—
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश ॥
उभयोः करयोः सप्त सप्त त्रिर्वापि पादयोः ।
द्विगुणं ब्रह्मचर्ये स्याद्यतीनां च चतुर्गुणम् ॥
एवं मृद्भिर्जलैः शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् ।
तदर्धमातुरे शूद्रस्त्रीबालानां तदर्धतः ॥

जलाशय से १२ हाथ जमीन छोड़ कर मूत्रत्याग करे। यदि जगह हो तो १६ हाथ छोड़ कर करे। मलत्याग करने में चौगुना अवकाश छोड़े। सूर्य आदि के सामने मलमूत्र करने और अपने मल को देखने में भी सूर्य या गौ को देखे। तदनन्तर मूत्रेन्द्रिय पकड़ कर उठकर शौच करे। मूत्रत्याग में शुद्ध मिट्टी एक बार लिंग में, तीन बार बायें हाथ में, दो बार दोनों हाथों में देकर उतनी ही बार जल से धोवे। मूत्र से दूना शौच वीर्य के त्याग में, मैथुन में तिगुना कहा है। मलत्याग में तो लिंग में एक बार, गुदा में तीन बार, बायें हाथ में दस बार, दोनों हाथों में सात सात बार, पैरों में तीन बार मिट्टी लगाकर धोवे। उक्त मिट्टी की शुद्धि से ब्रह्मचर्य में दूनी, संन्यासी को चौगुनी शुद्धि करनी चाहिये। इस प्रकार मिट्टी और जल से जो शुद्धि कही है वह रात में उसकी आधी करनी चाहिये। उसकी आधी बीमारी में और इसकी आधी शूद्र, स्त्री और बालकों की होती है।

उक्तसंख्यया गन्धलेपक्षयाभावे यावता तत्क्षयस्तावच्छौचम्। मृदार्द्रामलकमात्रा जलालाभेन शौचविलम्बे सचैलं स्नानम्। यथोक्तशौचाकरणे तु—'गायत्र्यष्टशतं जप्त्वा प्राणायामत्रयं चरेत्'। अथ मूत्रे चत्वारो गण्डूषाः पुरीषे द्वादशाष्टौ वा भोजनान्ते षोडश कार्याः ।

कही हुई संख्या से मल आदि का गन्ध और लेप नष्ट न हो तो जितने से वह हटे उतनी बार शुद्धि करे। गीले आंवले के बराबर मिट्टीका प्रमाण है। जल न मिलने से शौच में विलम्ब हो तो वस्त्रसहित स्नान करे। जैसा कहा गया है शुद्धि के न करने पर तो १०८ गायत्रीजप और तीन प्राणायाम करे। मूत्रत्याग में चार, मलत्याग में बारह या आठ कुल्ला करे। भोजन के अन्त में सोलह कुल्ला करना चाहिये।

अथाचमनविधिः

अप्रावृतशिरःकण्ठ उपविष्टः उपवीती प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा अंगुष्ठमूलेन मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठहस्तेनानुष्णं फेनादिरहितं जलं हृदयगतं[1] त्रिः पिबेत्।

---

१. मनुः—'हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः। वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥' अर्थात् आचमन करते समय ब्राह्मण हृदयपर्यन्त क्षत्रिय कण्ठ तक वैश्य मुख तक पहुँचे हुये तथा शूद्र ओष्ठ तक स्पर्श हुये जल से शुद्ध हो जाता है। 'देवार्चनादिकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम्। कुर्वीत सम्यगाचम्य प्रयतोऽपि सदा द्विजः ॥'—

केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वैकेन दक्षकरं मृजेत् ।
द्वाभ्यामोष्ठौ च संमृज्य एकेनोन्मार्जयेच्च तौ ॥
जलमेकेन संमन्त्र्यैकेन वामकरं मृजेत् ।
एकेन दक्षिणं पादं वाममेकेन चैव हि ॥
संप्रोक्ष्यैकेन मूर्धानमूर्ध्वोष्ठं नासिकाद्वयम् ।
नेत्रयुग्मं श्रोत्रयुग्मं दक्षिणोपक्रमं क्रमात् ॥
नाभिं हृदयमूर्धानौ दक्षवामभुजौ स्पृशेत् ।

बिना कंठ और सिर ढके बैठ कर बाएं कन्धे पर यज्ञोपवीत करके पूरब या उत्तर मुख होकर अंगुष्ठा-मूल से अंगुष्ठ-कनिष्ठा-मुक्त हाथ से ठंढे फेन आदि से रहित हृदयपर्यन्त जाने वाले जल को तीन बार पीये। केशव आदि तीन नामों से पीकर एक से दाहिना हाथ धोवे। दो से दोनों ओठ

विश्वामित्र कल्प में आचमन के छ प्रकार हैं—'शुद्धं स्मार्तं तथा चैव पौराणं वैदिकं तथा। तान्त्रिकं श्रौतस्मार्तं च षड्विधं श्रुतिनोदितम् ॥ विण्मूत्रादिकशौचेषु शुद्धं च परिकीर्तितम्। स्मार्तं पौराणिके कर्मण्याचमेद् विधिपूर्वकम् ॥ वैदिकं श्रौतमित्यादि ब्रह्मयज्ञादिपूर्वकम्। अस्त्रविद्यादि-कार्याणां तान्त्रिको विधिरुच्यते ॥'—

आह्निककारिका में श्रौताचमन—'प्रणवं पूर्वमुच्चार्य सावित्रीं तदनन्तरम्। तथैव व्याहृतीस्तिस्रः श्रौताचमनमुच्यते ॥' आचारतिलक में वैदिकाचमन—'कर्माङ्गे तु त्रिराचम्य प्राणायामत्रयं स्मृतम्। प्राङ्मुखो वाऽपि कर्तव्यं कर्म कुर्यात् प्रयत्नतः ॥'—

दक्षस्मृत्युक्त स्मार्ताचमन—'प्रक्षाल्य पाणी पादौ च त्रिः पिबेदम्बु वीक्षितम्। संवृत्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ संहृत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुपमुपस्पृशेत्। अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम् ॥ अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः। नाभिं कनिष्ठाङ्गुष्ठेन हृदयं तु तलेन वै ॥ सर्वाभिश्च शिरः पश्चाद् बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥'—

स्मार्ताचमनप्रयोगः—प्रथमं जलेन करौ प्रक्षाल्य अङ्गुष्ठमूलेन ओष्ठौ सम्मृज्य तेनैव मुखमुन्मार्ज्य जलेन वामकरं सम्प्रोक्ष्य पादौ मूर्धानं च प्रोक्षयेत्। ततः संहतमध्यमाङ्गुलित्रयेण आस्यं संपृश्य द्वाभ्यामङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां नासापुटं संस्पृशेत्। ततो द्वाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी संस्पृश्य ताभ्यामेव श्रोत्रे संस्पृश्य कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां नाभिं संस्पृश्य पाणितलेन हृदयं शिरः दक्षिणेन बाहुमूले च स्पृशेत्। इदं स्मार्ताचमनं 'द्विराचामः क्रियादिषु' इति वचनाद् द्विराचमने सम्पूर्णमावर्तनीयम्। अशक्तौ आचारार्कः—'त्रिः पीत्वा हस्तं प्रक्षाल्य श्रोत्रं स्पृशेत्।'—

नित्यकृत्यार्णवे पौराणमाचमनम्—ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ विष्णवे नमः, इति द्वाभ्यां करौ प्रक्षाल्य ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः इति द्वाभ्यां अङ्गुष्ठमूलेन ओष्ठौ सम्मृज्य ॐ वामनाय नमः, ॐ श्रीधराय नमः इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठमूलेन मुखमुन्मर्ज्य ॐ हृषीकेशाय नामः, इति वामकरं प्रोक्ष्य ॐ पद्मनाभाय नमः इति पादौ सम्प्रोक्ष्य ॐ दामोदराय नमः इति मूर्धानं प्रोक्षयेत्। ततः संहतमध्यमाङ्गुलित्रयेण ॐ सङ्कर्षणाय नमः इति आस्यं संस्पृश्य ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ प्रद्युम्नाय नमः इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां नासापुटे संस्पृश्य ॐ अनिरुद्धाय नमः, ॐ पुरुषोत्तमाय नमः इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी संस्पृश्य ॐ अधोक्षजाय नमः, ॐ नारसिंहाय नमः इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाभ्यां श्रोत्रे संस्पृश्य ॐ अच्युताय नमः इति कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां नाभिं संस्पृश्य ॐ जनार्दनाय नमः इति पाणितलेन हृदयं स्पृष्ट्वा ॐ उपेन्द्राय नमः इति शिरः संस्पृश्य ॐ हरये नमः, ॐ कृष्णाय नमः इति द्वाभ्यां दक्षिणवामबाहुमूले च स्पृशेत्। इति।

धोकर एक से दोनों ओठ शुद्ध करे। एक से जल को अभिमन्त्रण कर एक से बायां हाथ शुद्ध करे। एक से दाहिना और एक से बायां पैर शुद्ध करे। अच्छा प्रकार पोंछ कर एक से सिर को ऊपर के ओठ को, दोनों नाक के छेद को, दोनों नेत्र को और दोनों कानों को क्रम से दक्षिण से प्रारम्भ कर नाभि हृदय, सिर, दाहिने और बाएं हाथ का स्पर्श करे।

केचित्—केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ।
गण्डोष्ठौ मार्जयेद् द्विर्द्विरेकैकं पाणिपादयोः॥ यद्वा

ओष्ठं मार्ज्योन्मृजेद् द्विर्द्विरेकैकं पाणिपादयोः। शेषं प्राग्वदित्याहुः।

तत्रोर्ध्वोष्ठस्यांगुल्यग्रैः स्पर्शः, अंगुष्ठतर्जनीभ्यां नासिकयोः, अंगुष्ठानामिकाभ्यां नेत्रयोः, अंगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां कर्णयोर्नाभेश्च, तलेन हृदयस्य, पाणिना मूर्ध्नः, अंगुल्यग्रैर्भुजयोः, एतावदाचमनविधावशक्तस्त्रिः पीत्वा करं प्रक्षाल्य दक्षिणकर्णं स्पृशेत्। कांस्यायःसीसत्रपुपित्तलपात्रैर्नाचामेत्। श्रौताचमनं तु देव्यास्त्रयः पादा आपोहिष्ठेति नवपादाः सप्तव्याहृतयो देवीपादत्रयं द्वेधा विभक्तं देवीशिरश्चेति चतुर्विंशतिस्थानानि।

कुछ लोग—केशव आदि तीन मन्त्रों से जल पीकर और केशव आदि दो मन्त्रों से हाथ धोकर गाल और ओठ की दो दो बार शुद्धि करे और हाथ पैर की एक एक बार। अथवा ओठ की शुद्धि करके दो दो बार फिर धोवे और एक एक बार हाथ पैर को धोवे, शेष पहिले के समान है, ऐसा कहते हैं। उसमें ऊपर के ओठ को अंगुली के अग्रभागसे स्पर्श करे। अंगूठा तथा तर्जनी से नाक का स्पर्श करे। अंगुष्ठ और अनामिका से नेत्र का स्पर्श करे। अंगुष्ठ तथा कनिष्ठिका से कान और नाभि का स्पर्श करे। हृदय का अंगुष्ठ-तल से स्पर्श करे। हाथ से सिर का स्पर्श करे। अंगुली के अग्रभाग से दोनों हाथों का स्पर्श करे। इतना आचमन करने में अशक्त जन तीन बार जलपीकर हाथ धोकर दाहिने कान का स्पर्श करें। कांसा, लोहा, शीशा, त्रपु तथा पित्तल के पात्रों से आचमन न करे। श्रौत-आचमन तो देवी के तीन पाद, आपोहिष्ठा के नव पाद, सातों व्याहृतियाँ देवी के तीन पाद और इनको दो विभाग करके देवी का सिर; ये चौबीस स्थान हैं।

अथाचमननिमित्तानि

कर्म कुर्वन्नधोवायुनिःसरणेऽश्रुपाते क्रोधे मार्जारस्पर्शे क्षुते वस्त्रपरिधाने रजकाद्यन्त्यजदर्शने आचामेत्। स्नात्वा पीत्वा भुक्त्वा सुप्त्वा चाचामेत्[१]। विण्मूत्ररेतःशौचान्ते आचामेत्। सर्वत्राचमनासंभवे दक्षिणकर्णस्पर्शः। दन्तलग्नान्नं मृदूपायेन निर्हरेत्, रक्तनिर्गमे दोषोक्तेः। दन्तलग्नं च दन्तवत्। तस्यान्नस्य कालान्तरे निर्गमे आचमनम्।

---

१. आह्निककारिकायाम्—'प्रणवं पूर्वमुच्चार्य चतुर्विंशतिसंख्यया। स्वाहान्तं प्राशयेद्वारि नमोऽन्तं स्पर्शयेत्तथा॥ स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्यापसर्पणे। आचान्तः पुनराचामेद् वासस परिधाय च॥ दक्षिणेनोदकं पेयं दक्षं वामेन संस्पृशेत्। तावन्न शुद्ध्यते तोयं यावद्वामो न युज्यते॥ गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत्।' इति।

वामहस्तस्थिते दर्भे दक्षिणेन न चाचमेत् ।
करद्वयस्थिते दर्भे आचामेत्सोमपो भवेत् ॥

न चोच्छिष्टं पवित्रं तद्भुक्ते पित्र्ये च संत्यजेत् । विण्मूत्रोत्सर्गे च त्यजेत् ।

कर्म करते हुए अधोवायु के निकलने पर आंसू गिरने पर क्रोध में बिलार के स्पर्श में, छींकने, धोती पहनने और रजक आदि अन्त्यज के देखने पर आचमन करे। सब जगह आचमन संभव न हो तो दाहिने कान का स्पर्श करे। स्नान करने, जल पीने, भोजन करने और सोने के बाद आचमन करे। दांत में लगा हुआ अन्न कोमल उपाय से निकाले, क्योंकि खून निकलने पर दोष कहा है। दांत में लगा हुआ दांत की तरह होता है। उस अन्न के दूसरे समय में निकलने पर आचमन करे। बाएं हाथ में कुश रहे तो दाहिने हाथ से आचमन करे। दोनों हाथ में कुश रक्खे आचमन करे तो वह सोम पीने वाला होता है और वह पवित्र उच्छिष्ट नहीं होता। भोजन में और पितृकर्म में उसका त्याग करे। मल-मूत्र त्याग में भी उसका त्याग करे।

अथ दन्तधावनम्

[1]कण्टकिक्षीरवृक्षापामार्गादिकाष्ठैः कार्यम् । काष्ठालाभे श्राद्धोपवासादिनिषिद्धदिने च पर्णादिना प्रदेशिनीवर्ज्याङ्गुल्या वा द्वादशगण्डूषैर्वा दन्तान् शोधयेत् ।

कांटे और दूध वाले वृक्ष तथा अपामार्ग आदि काष्ठ से दन्तधावन करे। काष्ठ न मिलने पर श्राद्ध में, उपवास आदि निषिद्ध दिनों में पत्ते आदि से या प्रदेशिनी को छोड़ कर भिन्न अंगुली से या बारह कुल्ला करके दांतों को शुद्ध करे।

अथ संक्षेपतः स्नानविधिः

नद्यादौ गत्वा शिखां[2] बध्वा जानूर्ध्वजले तिष्ठन्नन्यथा तूपविश्याचम्य 'मम

---

१. नागदेवोक्त दन्तधावनकाष्ठ—'करञ्जोदुम्बरौ चूतः कदम्बो लोध्रचम्पकौ । बदरीति द्रुमाश्चैते प्रोक्ता दन्तप्रधावने ॥' वाचस्पतिः—'अथो मुखविशुद्धयर्थं गृह्णीयाद्दन्तधावनम् । आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥ आम्राम्रातकधात्रीजमङ्कोटखदिरोद्भवम् । शम्यपामार्गखर्जूरीशेलुश्रीपर्णिपीलुजम् ॥ राजादनं च नारङ्गं कषायं कटुकण्टकम् । क्षीरवृक्षोद्भवं वाऽपि प्रशस्तं दन्तधावने ॥'

दन्तधावन काष्ठ के नृसिंहपुराणोक्त गुण—'तिन्तिणिर्वेणुपृष्ठं च आम्रनिम्बौ तथैव च । सर्जे धैर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो रणे ॥ प्लक्षजे चार्थसम्पत्तिर्बदर्यां मधुरः स्वरः । खादिरे चैव सौभाग्यं बिल्वे तु विपुलं धनम् ॥ उदुम्बरे च वाक्सिद्धिर्बन्धूके च दृढा मतिः । रौध्रे च कीर्तिः सौभाग्यं पालाशे सिद्धिरुत्तमा ॥ कदम्बे सकला लक्ष्मीराम्रे आरोग्यमेव च । अपामार्गे स्मृतिर्मेधा प्रज्ञा वाणी वपुर्धृतिः ॥ आयुः शीलं यशो लक्ष्मीः सौभाग्यं च प्रजायते । अर्केण हन्ति रोगांस्तु बीजपूरेण तु व्यथाम् ॥ दाडिमे सिन्दुवारे च उटजे कुटजे तथा । जाती च करमर्दो च दुःस्वप्नं नाशयेदिति ॥ ककुभेन तथाऽऽयुष्मान् भवेत् पलितवर्जितः । तस्माच्छुष्कं तथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥'

दन्तधावन का वर्ज्य काल—'श्राद्धे जन्मदिने चैव विवाहेऽजीर्णसम्भवे । व्रते चैवोपवासे च वर्जयेद्दन्तधावनम् ॥' विष्णुः—'प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु चतुर्दश्यष्टमीषु च । नवम्यां भानुवारे च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥' नारदः—'चतुर्दश्यष्टमी पौर्णमासी संक्रमणेषु च । नन्दासु च नवम्यां च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ वसिष्ठः—'शन्यर्कशुक्रवारेषु कुजाहे व्रतवासरे । जन्माहे श्राद्धदिवसे दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥' व्यासः—'अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तथा तिथौ । अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम् ॥' यद्वा 'तृणपर्णोदकैरङ्गुल्या वा दन्तान् धावयेत् ॥' इति ।

२. स्नानादि में ग्रन्थान्तरोक्त शिखाबन्धन का विचार—'स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां

कायिकवाचिकमानसिकदोषनिरसनपूर्वकं सर्वकर्मसुशुद्धिसिद्ध्यर्थं प्रातःस्नानं[1] करिष्ये' इति संकल्प्य जलं नत्वा प्राङ्मुखः प्रवाहाभिमुखो वा त्रिरवगाह्याङ्गानि निमृज्य स्नात्वा द्विराचम्यापोहिष्ठेति मार्जनं कृत्वा इमं मे गंगे इति त्रिर्जलमालोड्याघमर्षणं त्रिरावृत्तेन ऋतं चेति सूक्तेन कात्यायनैर्द्रुपदेति ऋचा जलनिमग्नतया कृत्वाऽऽप्लुत्याचम्य जलतर्पणं कुर्यान्न वा ।

नदी आदि में जाकर शिखा बांध कर ठेहुनी भर से अधिक जल में खड़े होकर, नहीं तो बैठकर आचमन करके 'मेरे कायिक वाचिक और मानसिक दोष निवृत्तिपूर्वक सब कर्मों में शुद्धि के लिये प्रातःस्नान करूँगा' ऐसा संकल्प कर जल को प्रणाम कर पूर्वाभिमुख अथवा प्रवाहाभिमुख तीन बार डुबकी लगाकर अंगों को मल कर स्नान करके दो बार आचमन करके 'आपोहिष्ठा' इस मन्त्र से मार्जन करके 'इमं मे गंगे' इस मन्त्र से तीन बार जल का आलोड़न और 'ऋतं च' इस सूक्त से तीन आवृत्ति करके अघमर्षण करें । कात्यायन वाले 'द्रुपदा' इस ऋचा से जल में गोता लगा निकल कर आचमन करके जल से तर्पण करे या न करे ।

तदित्थम्—उपवीती ब्रह्मादयो ये देवास्तान्देवांस्त० भूर्देवानित्यादि । निवीती कृष्णद्वैपायनादयो ये ऋषयस्तानित्यादि । प्राचीनावीती सोमः पितृमान्यमोऽङ्गिरस्वानग्निष्वात्तादयो ये पितरस्तानित्यादि । एकनद्यां स्नाने अन्यां

देवतार्चने । शिखाग्रन्थिं विना कर्म न कुर्याद्वै कदाचन ।।' शिखामुक्ति का विचार—'शौचेऽथ शयने सङ्गे भोजने दन्तधावने । शिखामुक्तिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत् ।।' इति ।

१. हरिहरभाष्ये—'नद्यासु देवखातेषु प्रातः स्नायाद्दिने दिने । तदभावे तडागे वा कूपे स्नानं समाचरेत् ।। उत्तमं तु नदीस्नानं तडागे मध्यमं स्मृतम् । कूपस्नानं तु सामान्यं भाण्डस्नानं वृथा वृथा ।।' अग्निपुराणे—'नदीदेवनिखातेषु तडागेषु सरस्सु च । स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ।। निपानादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् । ततोऽपि सारसं पुण्यं ततो नादेयमुच्यते ।। तीर्थतोयं ततः पुण्यं गङ्गातोयं ततोऽधिकम् ।'—

दक्षोक्त स्नानकाल—'प्रातःस्नानं चरित्वाऽथ शुद्धे तीर्थे विशेषतः । प्रातःस्नानाद् यतः शुद्ध्येत् कायोऽयं मलिनः सदा ।। नोपसर्पन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायिजनं क्वचित् । दृष्टादृष्टफलं तस्मात् प्रातःस्नानं समाचरेत् ।।'—

याज्ञवल्क्योक्त प्रातःस्नान का फल—'गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपं च तेजश्च बलं च शौचम् । आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्ननाशश्च यशश्च मेधा ।। नागदेवः—'अगम्यागमनाच्चैव पापेभ्यश्च परिग्रहात् । रहस्यचरितात् पापान्मुच्यते स्नानयोगतः ।।' प्रातः स्नान के विशेष फल आयुर्वेदीय ग्रन्थों में देखें ।—

प्रातःस्नान नहीं करने पर योगियाज्ञवल्क्योक्त दोष—'स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम् । तस्मात् स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्धनम् ।।' मार्कण्डेयपुराण में शिरःस्नान के विषय—'शिरःस्नानं प्रकुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि वा । उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा' । पारस्कर के हरिहर भाष्य में आकण्ठ स्नान के विषय—'जटिलस्य शिरोरोगिणश्चाकण्ठमज्जनं स्नानम् । सभर्तृकयोषितां च ग्रहणादिनिमित्तं गङ्गादितीर्थेषु संक्रान्त्यादिपर्वनिमित्तं च फलप्रदम् ।' स्मृत्यन्तर में मङ्गल स्नान—'सर्वौषधी कृष्णतिलागन्धमामलकैस्तथा । सुगन्धिना चम्पकादि तैलं युक्तं सचूर्णकैः । उद्वर्त्याङ्गानि चूर्णं तद् मङ्गलस्नानमाचरेत् ।' विष्णुः—'माङ्गल्यं विद्यते स्नानं वृद्धिपूर्तमहोत्सवे । स्नेहमात्रसमायुक्तं मध्याह्नात्प्राक् तदिष्यते ।।'

नदीं न स्मरेत्। अत्र तैत्तिरीयादिभिस्तर्पणे ऋष्यादीनां नामान्तराण्युक्तानि। संक्षेपविधौ तस्य तर्पणस्य कृताकृतत्वान्नोक्तानि।

वह इस प्रकार करे—सव्य होकर ब्रह्मा आदि जो देवता हैं उन देवताओं का तर्पण करता हूँ। 'भूर्देवान्' इत्यादि करे। गले में यज्ञोपवीत करके द्वैपायन आदि जो ऋषि हैं उनका तर्पण करता हूँ इत्यादि। अपसव्य होकर सोमः पितृमान्, यमोंगिरस्वान्, अग्निष्वात्ता आदि जो पितर हैं उनका तर्पण करता हूँ इत्यादि। एक नदी में स्नान करे तो दूसरी नदी का स्मरण न करे। इसमें तैत्तिरीय आदि के द्वारा ऋषि आदि के दूसरे नाम कहे हैं। संक्षिप्त विधि में उस तर्पण का करना न करना समान होने से नहीं कहा है।

अथ गृहे उष्णोदकेन स्नानं न तु शीतोदकेन। तद्विधिश्च—पात्रे शीतोदकं प्रक्षिप्य तदुपरि उष्णोदकेनापूर्य ॐ शंनो देवी०। ॐ आपः पुनंतु०। ॐ द्रुपदादिव०। ॐ ऋतं च०। ॐ आपोहिष्ठेति पंचभिर्ऋग्भिरभिमन्त्र्य इमं मे इत्यादिना तीर्थानि स्मरन् स्नायात्। गृहे स्नाने संकल्प आचमनमघमर्षणं तर्पणं च न। अन्ते आचमनं मार्जनं च कार्यम्।

घर में गर्म जल से स्नान करे न कि ठंढे जल से। उसकी विधि—पात्र में ठंढा जल रख कर उसके ऊपर गर्म जल से भर कर उसको 'ॐ शन्नो देवी०, ॐ आपः पुनन्तु०, ॐ द्रुपदादिव०, ॐ ऋतं च० और 'ॐ आपोहिष्ठा' इन पांच ऋचाओं से अभिमन्त्रित करके 'इमं मे' इत्यादि मन्त्र से तीर्थों का स्मरण करते हुए स्नान करे। घर में स्नान करने में संकल्प, आचमन, अघमर्षण और तर्पण नहीं है। स्नान के अन्त में आचमन और मार्जन करे।

अथ वस्त्रधारणविधिः

एवं स्नात्वा वस्त्रेण पाणिना वा जलापनयनमकृत्वा शुष्कं शुभ्रकार्पासवस्त्रं परिधाय स्नानार्द्रवस्त्रमूर्ध्वत उत्तारयेत्[1]। विकच्छोऽनुत्तरीयश्च नग्नश्चावस्त्र एव च श्रौतस्मार्तं नैव कुर्यात्। द्विगुणवस्त्रो [2]दग्धवस्त्रः स्यूतग्रथितवस्त्रः काषायवस्त्रा-

---

१. आह्निककारिकासु—'गृहस्नानं यदा कुर्याद् वस्त्रमूर्ध्वं परित्यजेत्। अधोग्रेण च सम्पीड्य पराशरवचो यथा॥ स्नानं कृत्वार्द्रवस्त्रं च ऊर्ध्वमुत्तारयेद् द्विजः। आर्द्रवस्त्रमधः क्षिप्त्वा पुनः स्नानेन शुद्धयति॥' इति।

२. आपस्तम्बः—'न स्यूतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषतः। मूषकोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद् विचक्षणः॥' दक्षः—'ईषद्धौतं स्त्रिया धौतं शूद्रधौतं तथैव च। प्रसारितं यमदिशि गर्हितं सर्वकर्मसु॥' आह्निककारिकासु—'आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम्। शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम्॥ नानारङ्गविराजितं गतदशं कोशोद्भवं वासितं नीलीरङ्गसमन्वितं च समलं नैवायतं चास्ति यत्। दग्धं चैव च खण्डितं च बहुधा युद्धादिकैश्चित्रितं तद्वर्ज्यं खलु देवपूजनविधौ वस्त्रं कुसुम्भारुणम्॥ 'नीलीरक्तं च यद्वस्त्रं दूरतः परिवर्जयेत्। द्रव्यान्तरयुतानीली न दुष्यति कदाचन॥' 'कम्बले पट्टवस्त्रे च नीलीदोषो न विद्यते। स्त्रिया वस्त्रं सदा त्याज्यमन्यवस्त्रं विवर्जयेत्॥' वृद्धमनुः—'खण्डवस्त्रावृतश्चैव वस्त्रार्धालम्बितस्तथा। उत्तरीयव्यपेतश्च तत्कृतं निष्फलं भवेत्॥' गौतमः—'एकवस्त्रो न भुञ्जीत श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। न कुर्याद्देवकार्याणि दानं होमं जपं तथा॥' आपस्तम्बः—'आर्द्रवासा तु यः कुर्याज्जपहोमप्रतिग्रहान्। सर्वं तद् राक्षसं विद्याद् बहिर्जानु च यत्कृतम्॥' इति।

दयो दिगम्बरश्च नग्नाः। निष्पीडितं वस्त्रं न स्कन्धे क्षिपेत्। चतुर्गुणीकृत्य वस्त्रं गृहेऽधोदशं नद्यामूर्ध्वदशं स्थले निष्पीडयेद्, न तु त्रिगुणम्। उत्तरीयं जीवत्पितृकजीवज्ज्येष्ठभ्रातृकैर्न धार्यम्। प्रावारवस्त्रं तु सर्वैर्धार्यम्। इति प्रातर्नित्यस्नानम्।

इस प्रकार स्नान करके वस्त्र से या हाथ से जल न हटाते हुए सूखे श्वेत कपास का वस्त्र पहिन कर स्नान से गीले वस्त्र को ऊपर से उतार ले। बिना कच्छ के, बिना उत्तरीय के, नंगे होकर वस्त्र न पहनते हुए श्रौत तथा स्मार्त कर्म न करे। दोहरा वस्त्र, जला हुआ, सीया हुआ, गांठ दिया हुआ, काषाय से रंगा हुआ वस्त्र आदि और दिगम्बर नंगे ही कहलाते हैं। निचोड़ा हुआ वस्त्र कन्धे पर न रखे। वस्त्र को दोहरा कर नीचे किनारी करके घर या नदी में स्नान करने पर ऊपर किनारी करके स्थल में निचोड़े, तेहरा न करे। जिसके पिता और जेठे भाई जीते हों उसको उत्तरीय (दुपट्टा) नहीं धारण करना चाहिये। कमर के ऊपर के वस्त्र तो सबको धारण करना चाहिये। प्रातः नित्यस्नान समाप्त।

अथ स्नाननिमित्तानि

मध्याह्नस्नानमपि नित्यमित्यन्ये। चण्डालसूतकिसूतिकोदक्याचितिकाष्ठशवचण्डालच्छायादिस्पर्शे स्नानम्। चाण्डालादिस्पर्शिनमारभ्य तत्स्पृष्टस्पृष्टेषु तृतीयपर्यन्तं सचैलं स्नानम्। चतुर्थस्याचमनमात्रम्। तदूर्ध्वं प्रोक्षणम्। द्वितीयादेर्दण्डतृणाद्यन्तरितस्पर्शे त्वाचमनमेव। वस्त्रान्तरितः साक्षात्स्पर्श एवेति तत्र चतुर्थस्यैवाचमनम्। नैमित्तिकस्नानं रात्रावपि।

मध्याह्न-स्नान भी नित्य है, ऐसा कोई कहते हैं। चाण्डाल, सूतकी, प्रसूती, रजस्वला, चिता का काष्ठ, मुर्दा और चाण्डाल आदि की छाया के स्पर्श में स्नान करे। चाण्डाल आदि को स्पर्श करने वाले से लेकर उसको स्पर्श करने वाला और उसको भी स्पर्श करने वाला इस प्रकार तृतीयपर्यन्त वस्त्रसहित स्नान करे। चौथे को केवल आचमन करना चाहिये। उसके बाद वाले प्रोक्षण करें। दूसरे आदि का छड़ी-तृण आदि के अन्तर से स्पर्श करने पर आचमन ही है। वस्त्र से अन्तर होने पर साक्षात् स्पर्श ही होता है इसलिये उसमें चौथे ही को आचमन है। नैमित्तिक-स्नान रात में भी होता है।

मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा।
अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा[1]॥

नैमित्तिके जलतर्पणादिविधिर्न। नित्यस्नानमकृत्वा भुक्तौ उपवासः। ग्रहसंक्रान्त्यादिनैमित्तिकस्नानमकृत्वा भोजने पाने अष्टसहस्रजपः। शूद्रादिस्पर्शनिमित्ते उपवासः। श्वकाकचण्डालादिस्पर्शे स्नानमकृत्वा भुक्तौ पाने च त्रिरात्रम्। रजकादिस्पर्शे तदर्धम्। इति नैमित्तिकस्नानम्।

---

१. वृद्ध मनु की विशेषोक्ति है—'संक्रान्त्यां रविवारे च सप्तम्यां राहुदर्शने। आरोग्ये पुत्रमित्रार्थे न स्नायादुष्णवारिणा॥' रोगग्रस्त हो तो ग्रहण में उष्ण जल से स्नान करे जैसा व्याघ्र ने बतलाया है—'आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतं च वह्निना। अतो व्याध्यातुरः स्नायाद् ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा॥' इति।

मरण, जन्म, संक्रान्ति, श्राद्ध, जन्मदिन और अस्पृश्य के स्पर्श करने में गर्म जल से न नहाये। नैमित्तिक-स्नान में जलतर्पण आदि विधि नहीं है। नित्य-स्नान न करके भोजन करने पर उपवास करे। ग्रहण, संक्रान्ति आदि नैमित्तिक-स्नान न करके खाने पीने में आठ हजार जप करे। शूद्र आदि के स्पर्श-निमित्त में उपवास करे। कुत्ता, कौवा, चाण्डाल आदि के स्पर्श में विना नहाये खाने पीने में तीन रात्रि का उपवास है। धोबी आदि के स्पर्श में उसका आधा डेढ़ दिन उपवास है। नैमित्तिकस्नान समाप्त।

अथ काम्यस्नानम्

दर्शव्यतीपातरथसप्तम्यादौ स्नानं कार्तिकस्नानमाघस्नानादिकं च काम्यम्। इति जलावगाहादिरूपवारुणस्नानानि।

अमावास्या, व्यतीपात, रथसप्तमी आदि में स्नान और कार्तिक माघ स्नान आदि काम्य स्नान है। यह जल में अवगाह आदि रूप वारुण-स्नान है।

अथ गौणस्नानानि

आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः प्रोक्षणं [1]मन्त्रस्नानम्। गायत्र्या दशकृत्वो जलमभिमन्त्र्य तेन सर्वाङ्गप्रोक्षणं गायत्रम्। भस्मस्नानमाग्नेयम्। आर्द्रवस्त्रेणाङ्गमार्जनं कापिलम्। विष्णुपादोदकविप्रपादोदकप्रोक्षणविष्णुध्यानादिभिश्च स्नानान्तराणि। गौणस्नानैर्जपसंध्यादौ शुद्धिर्न तु श्राद्धदेवार्चनादौ। ब्रह्मयज्ञे विकल्पः।

'आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से अंग का पोछना 'मन्त्र' स्नान होता है। गायत्री से दस बार जल का अभिमन्त्रण कर उस जल से सर्वांग का प्रोक्षण 'गायत्र' स्नान कहलाता है। भस्म से स्नान करना 'आग्नेय' स्नान है। गीले वस्त्र से अंग का मार्जन 'कापिल' स्नान है। विष्णु के चरणोदक और ब्राह्मण के पादोदक से प्रोक्षण करना तथा विष्णु के ध्यान आदि से भी अन्य स्नान कहे गये हैं। गौण स्नान से जप सन्ध्या आदि में शुद्धि होती है, श्राद्ध और देवपूजन आदि में शुद्धि नहीं नहीं होती। ब्रह्मयज्ञ में विकल्प है।

अथ तिलकविधिः

प्रातः पुण्ड्रं मृदा कुर्याद्धुत्वा चैव तु भस्मना। मृदश्च गोपीचन्दनतुलसीमूल-

---

१. प्रत्यक्ष स्नान के अभाव में नागदेवोक्त मन्त्रादि स्नान—'असामर्थ्याच्छरीरस्य देशकालाद्यपेक्षया। मन्त्रस्नानादिकाः सप्त केचिदिच्छन्ति सूरयः॥' योगि-याज्ञवल्क्यः—'मान्त्रं भौमं तथाऽऽग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च। वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानान्यनुक्रमात्॥ आपोहिष्ठादिभि'र्मान्त्रं' मृदालम्भं च 'पार्थिवम्'। 'आग्नेयं' भस्मना स्नानं 'वायव्यं' गोरजः स्मृतम्॥ यत्तु सातपवर्षेण स्नानं त'द्दिव्य'मुच्यते। 'वारुणं' चावगाहं त 'मानसं' ह्यात्मचिन्तनम्॥' व्याससंहितायाम्—'आर्द्रेण वाससा वाङ्गमार्जनं 'कापिलं' स्मृतम्। अप्राशस्त्ये समुत्पन्ने स्नानमेव समाचरेत्॥ 'ब्राह्मं' तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः। 'यौगिकं' स्नानमाख्यातं योगोऽयं विष्णुचिन्तनम्॥'—

जाबालिः—'अशिरस्कं भवेत् स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्। आर्द्रेण वाससा वाऽपि मार्जनं दैहिकं विदुः॥ ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता। कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा॥ चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते स्पृशेदन्यां तु तां स्त्रियम्। सा सचैलाऽवगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत्॥ दशद्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनः पुनः। अन्ते च वाससां त्यागस्तथा शुद्धा भवेत्तु सा॥' इति।

सिन्धुतीरजाह्नवीतीरवल्मीकादिस्थाः । [1]ललाटोदरहृदयकण्ठे दक्षिणपार्श्वबाहुकर्ण-देशे पृष्ठे ककुदि चेति द्वादशस्थानेषु शुक्ले केशवादिनामभिः कृष्णपक्षे संकर्षणादि-नामभिः शिरसि वासुदेवेति मृदा तिलको विधेयः ।

प्रातःकाल मिट्टी से और होम के बाद भस्म से पुण्ड्र करे । गोपीचन्दन, तुलसी की जड़ की, समुद्र के तीर की, भागीरथी तट की और वल्मीक की मिट्टी से ललाट, पेट, छाती, कण्ठ, दाहिने तरफ के बाहु-कान, बायें तरफ के बाहु और कान, पीठ और ककुत् में इस प्रकार बारह स्थानों में तिलक करे । शुक्लपक्ष में केशव आदि नामों से और कृष्णपक्ष में संकर्षण आदि नामों से, सिर में वासुदेव इस नाम से मृत्तिका से तिलक करना चाहिये ।

अथ भस्मत्रिपुण्ड्रः

श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ।
भस्मत्रिपुण्ड्रैः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ।

भस्म गृहीत्वा अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वँ ह्वा इदं भस्म मन एतानि चक्षुँषि भस्मानीति मन्त्रे-णाभिमन्त्र्य जलमिश्रितेन मध्यमाङ्गुलित्रयगृहीतेन ललाटहृदयनाभिगलांसबाहुसं-धिपृष्ठशिरःस्थानेषु शिवमन्त्रेण नारायणाष्टाक्षरेण वा गायत्र्या वा प्रणवेन वा त्रिपुण्ड्रान्कुर्यात् ।

श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव और देवपूजा में भस्म के त्रिपुण्ड्र लगाने से पवित्रात्मा मनुष्य मृत्यु को जीतता है । भस्म को लेकर 'अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जल से मिली हुई मध्यमा आदि तीन अंगुलियों से भस्म लेकर ललाट, हृदय, नाभि, गला, कन्धा, बाहु की सन्धि, पीठ और सिर में शिव के मन्त्र से या अष्टाक्षर नारायण मन्त्र से या गायत्री से या प्रणव से, किसी एक से त्रिपुण्ड्र करे ।

अथ संध्याकालः

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ।
अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा[2] मता ॥

---

१. स्मृतिरत्नावल्याम्—'ललाटे हृदये नाभौ गलेंऽसे बाहुसन्धिषु । पृष्ठदेशे शिरस्येवं स्थानेष्वेतेषु धारयेत् ॥' काशीखण्डे—'भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदन्तो भवेद् भ्रुवोः । मध्यमानामि-काङ्गुल्योर्मध्ये तु प्रतिलोमतः ॥ अङ्गुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्रः सोऽभिधीयते ।' कात्यायनः—'ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्याद् भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम् । उभयं चन्दनेनैव अभ्यङ्गोत्सवरात्रिषु ॥ तिलकं कुङ्कुमेनैव सदा मङ्गलकर्मणि । कारयित्वा सुमतिमान् न श्वेतचन्दनादिना ॥' प्रयोगपारिजाते—'मृद्भस्म चन्दनं प्रोक्तं तोयं चैव चतुर्थकम् । स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्यात् प्रक्षाल्यैव तु भस्मना ॥ देवानभ्यर्च्य गन्धेन जलमध्ये जलेन तु ।' इति ।

२. नागदेवोक्त सन्ध्याकाल—'सूर्योदयात् पूर्वं द्वे घटिके सन्ध्याकालः ।' अत्रिस्मृतौ—'सन्ध्याकालः प्रागुदयाद् विप्रस्य द्विमुहूर्तकः । क्षत्रियस्य तदर्धं स्यात्तदर्धं स्याद्विशोऽप्युत ॥' याज्ञ-वल्क्योक्त सन्ध्या का मन्त्रक्रम—'ओङ्कारो व्याहृतिश्चैव गायत्री सशिरा तथा । आपोहिष्ठा ऋच-

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा ।
अधमा तारकोपेता सायं संध्या त्रिधा मता ॥
अध्यर्धयामादासायं संध्या माध्याह्निकीष्यते ।

सर्वेषां संध्यात्रयं नद्यादौ बहिरेव प्रशस्तम् । साग्निकस्य तु प्रादुष्करणाद्यनुरोधेन सायं प्रातःसंध्ये गृहे कर्तव्ये ।

प्रातःसन्ध्या ताराओं से युक्त उत्तमा, तारे लुप्त हो जाने पर मध्यमा और सूर्योदय हो जाने पर अधमा कहलाती है। इसी प्रकार सायंसन्ध्या सूर्य के रहते उत्तमा, सूर्यास्त हो जाने पर मध्यमा, और तारा उग जाने पर अधमा कहलाती है। मध्याह्न सन्ध्या आधे प्रहर से सायं काल तक होती है। सभी के तीनों काल की सन्ध्या नदी आदि में बाहर ही उत्तम होती है। अग्निहोत्री को तो अग्नि का उत्पादन आदि के अनुरोध से सायं प्रातः दोनों सन्ध्याएं घर में करनी चाहिये।

अथ संक्षेपतः सन्ध्याप्रयोगो बह्वृचानाम्

दर्भद्वयकृते पवित्रे ग्रन्थियुते ग्रन्थिरहिते वा हस्तयोर्धृत्वा द्विराचम्य [1]प्राणायामं कुर्यात् । प्रणवस्य परब्रह्मऋषिः परमात्मा देवता दैवीगायत्रीच्छन्दः, सप्तानां

स्तिस्रः सूक्तमेवाघमर्षणम् ॥ आदित्यरक्षणार्थं तु सायं प्रातर्दिने दिने । सृष्टाः स्वयम्भुवा पूर्वं ब्रह्मणस्तन्मुखं स्मृतम् ॥'—

विश्वामित्र कल्प में सन्ध्या का महत्त्व—'विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् । तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥' अत्रि का कहा हुआ सन्ध्या का फल—'सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः । विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥' याज्ञवल्क्यः—'यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां हि विकर्मस्थास्तु वै द्विजाः । तेषां वै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयम्भुवा ॥ निशायां वा दिवा वाऽपि यदज्ञानकृतं भवेत् । त्रिकालसन्ध्याकरणात् तत्सर्वं हि प्रणश्यति ॥'—

दक्ष ने सन्ध्योपासन नहीं करने वाले का सभी कर्म निष्फल बतलाया है—'सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥' मरीचिः—'सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता । जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥' मनुः—'न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥' इति ।

१. याज्ञवल्क्य का कहा प्राणायाम का लक्षण—'सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥' शौनकः—'नासिकामङ्गुलीभिस्तु तर्जनीमध्यमाहते । सव्येन तु समाकृष्य दक्षिणेन विसर्जयेत् ॥ प्रणवं व्याहृतीः सप्त गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥' अगस्त्यसंहिता में—'प्राणायामैर्विना यद्यत्कृतं कर्म निरर्थकम् । अतो यत्नेन कर्तव्यः प्राणायामः शुभार्थिना ॥' देवीपुराण में—'श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः । अगर्भो ध्यानमात्रं तु स चामन्त्रः प्रकीर्तितः ॥' और भी—'प्राणानायम्य कुर्वीत सर्वकर्माणि संयतः । प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति ॥'—

अङ्गिराः—'दह्यमानोऽनुतापेन कृत्वा पापानि मानवः । शोचमानस्त्वहोरात्रं प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥ पीडयेद्दक्षिणां नाडीमङ्गुष्ठेन तथोत्तराम् । कनिष्ठिकानामिकाभ्यां मध्यमां तर्जनीं त्यजेत् ॥ नीलोत्पलदलश्यामं नाभिमध्ये प्रतिष्ठितम् । चतुर्भुजं महात्मानं पूरके चिन्तयेद्धरिम् ॥' याज्ञवल्क्योक्त प्राणायाम की विधि—'नासापुटेनानिलमेव बाह्यमाकृष्य तेनैव शनैः समस्तम् । नाडीषु सर्वासु च पूरयेद्यः स 'पूरको' नाम महान्निरोधः ॥ न रेचकं नैव तु पूरकं वा नासाग्रभागे स्थितमेव

व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगौतमात्रिवसिष्ठकश्यपा ऋषयः, अग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेंद्रविश्वेदेवा देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि, गायत्र्या विश्वामित्रऋषिः सविता देवता गायत्रीच्छन्दः, गायत्रीशिरसः प्रजापतिर्ऋषिः ब्रह्माग्निवाय्वादित्या देवताः यजुश्छन्दः प्राणायामे विनियोगः।

दो कुश के बनाये पवित्र में ग्रन्थियुक्त हो या ग्रन्थिरहित हो दोनों होथां में धारण कर दो आचमन करके प्राणायाम करे। प्रणव का परब्रह्म ऋषि, परमात्मा देवता, दैवी गायत्री छन्द है, सातों व्याहृतियों के विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ और कश्यप ऋषि हैं, अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र और विश्वेदेवा देवता हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं। गायत्री के विश्वामित्र ऋषि, सूर्य देवता, गायत्री छन्द हैं। गायत्री सिर के प्रजापति ऋषि, ब्रह्मा, अग्नि, वायु और सूर्य देवता, यजुःछन्द हैं; प्राणायाम में यह विनियोग है।

सर्वांगुलीभिस्तर्जनीमध्यमाभिन्नाभिर्वा नासां धृत्वा दक्षिणेन वायुमाकृष्य रोधयेत्—ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यम् ओं तत्सवितुर्वरेण्यं० यात् ओं आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् इति सप्रणवसप्तव्याहृतिगायत्रीशिरस्त्रिः पठित्वा वामनासया वायुं विसृजेदिति प्राणायामः सर्वशाखासाधारणः। 'ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसंध्यामुपासिष्ये'। आपोहिष्ठेति त्र्यृचस्याम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्री मार्जने विनियोगः।

सब अंगुलियों से या तर्जनी और मध्यमा से रहित अंगुलियों से नाक पकड़ कर दक्षिण से वायु खींचकर रोके और 'ॐभूः ॐभुवः ॐ स्वः' इत्यादि मूलोक्त प्रणवसहित सात व्याहृति गायत्री सिर के सहित तीन बार पढ़कर बाईं नाक से वायु को छोड़े, यह सब शाखाओं का साधारण प्राणामय है। 'मेरे गृहीत पापनाश के द्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये प्रातःसन्ध्या की उपासना करूँगा' ऐसा संकल्प करे। 'आपोहिष्ठा' इन तीनों ऋचाओं के अम्बरीष ऋषि, सिन्धुद्वीप, जल देवता, गायत्री छन्द यह मार्जन का विनियोग है।

आपोहिष्ठेति नवभिः पादैः सप्रणवैः कुशोदकेन मूर्ध्नि नवकृत्वो मार्जयेत्। यस्य क्षयायेत्यधो मार्जयेत्। नद्यादौ तीर्थस्थं ताम्रमृन्मयादिभूमिष्ठपात्रस्थं वा वामकरस्थं वा जलं दर्भादिनाऽऽदाय [1]मार्जनं सर्वत्र न तु धाराच्युतजलेन।

वायुम्। सुनिश्चलं धारयति क्रमेण 'कुम्भाख्य'मेतं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥ निःसार्य नासाविवरादशेषं प्राणं बहिः शून्य इवानलेन। निरुच्छ्वसंस्तिष्ठति चोर्ध्ववायुः स 'रेचको' नाम महान्निरोधः॥ नासिकाविष्ट उच्छ्वासो ध्मातः 'पूरक' उच्यते। 'कुम्भो' निश्चलनिःश्वासो रिच्यमानस्तु 'रेचकः'॥ न प्राणेनाप्यपानेन वेगाद् वायुं समुत्सृजेत्। येन सक्तून् करस्थांश्च निःश्वासो नैव चालयेत्॥ शनैर्नासापुटाद् वायुमुत्सृजेन्न तु वेगतः।' विशेष अन्यत्र द्रष्टव्य है।

१. छन्दोगपरिशिष्ट में मार्जन का प्रयोजन—'रक्षार्थं वारिणाऽऽत्मानं परिक्षिप्य समन्ततः। शिरसो मार्जनं कुर्यात् कुशैः सोदकविन्दुभिः॥' याज्ञवल्क्यः—'अधोभागे विसृष्टाभिरसुरा यान्ति संक्षयम्। सर्वतीर्थाभिषेकं च ऊर्ध्वसम्मार्जनाद् भवेत्॥' इति।

'आपोहिष्ठा' इस मन्त्र के प्रणवसहित नवों चरणों से कुश के जल से नव बार सिर में माजन करे। 'यस्य क्षयाय' इस मन्त्र से नीचे मार्जन करे। नदी आदि तीर्थ में स्थित, तांमे मिट्टी या भूमिस्थित पात्र के या बायें हाथ में स्थित जल से कुश आदि से सर्वत्र मार्जन करे। धारा की तरह गिरते जल से न करे।

अथ मन्त्राचमनम्

सूर्यश्चेति मन्त्रस्य याज्ञवल्क्य उपनिषद ऋषिः सूर्यमन्युपतयो रात्रिश्च देवताः प्रकृतिश्छन्दः मन्त्राचमने विनियोगः। ॐ सूर्यश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा इति जलं पिबेत्।

'सूर्यश्च' इस मन्त्र का याज्ञवल्क्य उपनिषद् ऋषि, सूर्य मन्युपति और रात्रि देवता, प्रकृति छन्द, यह मन्त्राचमन का विनियोग है। 'ॐ सूयश्च मा मन्युश्च' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से आचमन करे।

आचम्य आपोहिष्ठेति नवर्चस्याम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्री पञ्चमी वर्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा अन्त्ये द्वे अनुष्टुभौ मार्जने विनियोगः।

प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवान्तया।
आपोहिष्ठेति सूक्तेन मार्जनं च चतुर्थकम्॥
ऋगन्तेऽर्धऋचान्ते वा पादान्ते वाऽपि मार्जयेत्।
गायत्रीशिरसा चान्ते मार्जयित्वाऽघमर्षणम्[1]॥

ऋतं चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षणो भाववृत्तमनुष्टुप् अघमर्षणे विनियोगः। दक्षिणहस्ते जलं कृत्वा ऋतं चेति ऋक्त्रयं [2]द्रुपदेति ऋचं वा जप्त्वा दक्षिणनासया पापपुरुषं निरस्य तज्जलं नावलोक्य वामभागे क्षितौ क्षिपेत्।

आचमन के अनन्तर 'आपोहिष्टा'इन नव ऋचाओं के अम्बरीष-सिन्धुद्वीप-जलऋषि, गायत्री छन्द, पंचमी वर्द्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा अन्त की दो ऋचाओं का अनुष्टुप् छन्द मार्जन में विनियोग है। चौथा मार्जन प्रणव से व्याहृति से और प्रणवसहित गायत्री से 'आपोहिष्ठा' इस सूक्त से ऋचा के अन्त में या आधी ऋचा के अन्त में अथवा चरण के अन्त में करे। गायत्री सिर से अन्त में मार्जन करके अघमर्षण करे। 'ऋतञ्च' इन तीन ऋचाओं के माधुच्छन्दस-अघमर्षण-भाववृत्त ऋषि अनुष्टुप्

---

१. शौनकोक्त अघमर्षण-विधि—'उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत् कृते। निःश्वासं नासिकाग्रे तु पाप्मानं पुरुषं स्मरेत्। ऋतं चेति त्र्यृचं वाऽपि द्रुपदां वा जपेद् ऋचम्॥ दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत्॥ तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत्।' स्मृत्यन्तरे—'तत्संयोगिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम्। उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम्॥ खड्गचर्मधरं कृष्णं कुक्षौ पापं विचिन्तयेत्।' इति।

२. याज्ञवल्क्योक्त द्रुपदागायत्री का महत्त्व—'द्रुपदा नाम सा देवी यजुर्वेदे प्रतिष्ठिता। अन्तर्जले त्रिरावर्त्य मुच्यते ब्रह्महत्यया॥' बृहस्पतिः—'द्रुपदा नाम यो मन्त्रो वेदे वाजसनेयके। अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥' इति।

छंद अघमर्षण में विनियोग है। दाहिने हाथ में जल लेकर 'ऋतं च' इत्यादि इन तीन ऋचाओं को अथवा 'द्रुपदा दिव' इत्यादि एक ऋचा को जप कर दाहिने नाक से पाप-पुरुष को निकाल कर उस जल को बिना देखे बाईं ओर जमीन पर फेंक दे।

अथार्घ्यदानम्

आचम्य गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री श्रीसूर्यायार्घ्यदाने वि०। प्रणवव्याहृतिपूर्वया गायत्र्या तिष्ठन्सूर्योन्मुखः[1] जलाञ्जलिं त्रिः क्षिपेत्। कालातिक्रमे प्रायश्चित्तार्थं चतुर्थम्। असावादित्यो ब्रह्मेति प्रदक्षिणं भ्रमन् जलं सिञ्चेत्। अर्घ्याञ्जलौ तर्जन्यङ्गुष्ठयोगो न कार्यः। इदमर्घ्यदानं प्रधानमित्येके। अङ्गमिति परे।

आचमन के पश्चात् गायत्री का विश्वामित्र ऋषि, सविता देवता, गायत्री छन्द है। सूर्य को अर्घ्य देने में विनियोग है। प्रणव और व्याहृतिसहित गायत्री मंत्र से सूर्य की ओर खड़े होकर तीन अंजुलि-जल गिरावे। समय बीतने पर प्रायश्चित्त के लिए चौथी अंजुलि से जल गिरावे। 'असावादित्यो ब्रह्म' इससे प्रदक्षिण क्रम से घूमते हुए जल को गिरावे। अर्घ्य की अंजुलि में तर्जनी और अंगुष्ठ का योग न करे। यह अर्घ्यदान प्रधान है, ऐसा कोई कहते हैं। दूसरे अंग कहते हैं।

अथ गायत्रीजपः

प्राणायामं कृत्वा गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्रीजपे वि०। तत्सवितुर्हृदयाय नमः, वरेण्यं शिरसे स्वाहा, भर्गो देवस्य शिखायै वषट्, धीमहि कवचाय हुम्, धियो यो नो नेत्रत्रयाय वौषट्, प्रचोदयात् अस्त्रायफट्, इति षडङ्गन्यासः कार्यः न वा कार्यो न्यासविधेरवैदिकत्वादिति गृह्यपरिशिष्टे स्पष्टम्। एतेनाक्षरन्यासपादन्यासादीनां मुद्रादिविधेः शापमोचनादिविधेश्च तान्त्रिकत्वेनावैदिकत्वादनावश्यकत्वं वेदितव्यम्। मन्त्रदेवतां ध्यायेत्।

प्राणायाम करके गायत्री का विश्वामित्रऋषि सविता देवता गायत्री छन्द जप में विनियोग है। 'तत्सवितु' इससे हृदय का, 'वरेण्यं शिरसे स्वाहा' इससे सिर का, 'भर्गो देवस्य शिखायै वषट्' इससे शिखा का, 'धीमहि कवचाय हुँ' इससे एक साथ दोनों हाथों से कन्धे का, 'यो नो नेत्रत्रयाय वौषट्' इससे तीनों नेत्र का, 'प्रचोदयात् अस्त्राय फट्' इससे अस्त्र मुद्रा से थपौड़ी बजावे। इस प्रकार षडंगन्यास करे या न करे, क्योंकि न्यास-विधि वैदिक नहीं है, ऐसा गृह्यपरिशिष्ट में स्पष्ट है। इससे अक्षरन्यास, पदन्यास आदि, मुद्रा आदि विधि और शाप मोचन आदि विधि की अवैदिक होने से आवश्यकता नहीं है, यह जानना चाहिये। मन्त्रदेवता का ध्यान करे।

केचिद् गायत्र्यादिध्यानं वदन्ति—

आगच्छ वरदे देवि जपे मे सन्निधौ भव।
गायन्तं त्रायसे यस्माद् गायत्री त्वं ततः स्मृता॥ इति तामावाह्य,
यो देवः सवितास्माकं धियो धर्मादिगोचरे।
प्रेरयेत्तस्य तद्भर्गस्तद्वरेण्यमुपास्महे॥

---

१. व्यासः—'कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्। आदित्याभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिरूर्ध्वं सन्ध्ययोः क्षिपेत्॥' शौनकः—'ईषन्नम्रः प्रभाते तु मध्याह्ने ऋजुसंस्थितः। द्विजोऽर्घ्यं प्रक्षिपेद्देव्या सायं तूपविशन् भुवि॥' इति।

इति मन्त्रार्थं चिन्तयन् मौनी प्रातः सूर्याभिमुखस्तिष्ठन्नामण्डलदर्शनात्सप्रणवव्याहृतिकायाः गायत्र्या अष्टशतमष्टाविंशतिं दशकं वा [1]जपेत्। सायं वायव्याभिमुख आनक्षत्रदर्शनादिति विशेषः।

कुछ लोग गायत्री आदि का ध्यान कहते हैं—हे देवि! वर देने वाली आइये आप मेरे जप की सन्निधि में रहें। जपकर्त्ता की आप रक्षा करती हैं इसलिये आप का नाम गायत्री है। इस प्रकार गायत्री का आवाहन कर, जो सूर्य-देव हमारी बुद्धि को धर्मादि में प्रेरित करते हैं, उनके उस श्रेष्ठ तेज की हम उपासना करते हैं। इस आशय के गायत्री मन्त्र के अर्थ को सोचते हुए मौन होकर प्रातः सूर्य के सामने खड़ा होकर सूर्यमण्डल दर्शनपर्यन्त प्रणव-व्याहृति-सहित गायत्री का १०८ या २८ अथवा १० बार जप करे। सायं काल वायव्य दिशा की ओर मुख करके नक्षत्र-दर्शन पर्यन्त जप करे, इतनी विशेषता है।

अनध्यायेऽष्टाविंशतिं प्रदोषे दशैव जपेदिति कारिकायाम्। रुद्राक्षविद्रुमादिमालाभिरङ्गुलीपर्वभिर्वा जपः। अष्टशतं चतुःपञ्चाशत् सप्तविंशतिर्वा मालामणयः। उत्तरन्यासं कृत्वोपस्थानम्—ओं जातवेदसे०, ओं तच्छं यो०, ओं नमो ब्रह्मण, इति मन्त्रैः सायं प्रातश्चोपतिष्ठेदिति परिशिष्टमतम्। स्मृत्यन्तरे मित्रस्य चर्षणीत्यादिमित्रदेवताकैः प्रातः, इमं मे वरुणेत्यादिभिर्वरुणपदोपेतैः सायं सूर्योपस्थानमुक्तम्।

अनध्याय में २८ बार, प्रदोष में १० बार ही जपे, ऐसा कारिका में लिखा है। रुद्राक्ष, मूंगा आदि की मालाओं से या अंगुलि के पर्व से अथवा सत्ताइस दाने की माला से जप एक सौ या चौवन बार करे। उत्तर न्यास करके 'ओं जातवेदसे०, ओं तच्छं यो०, ओं नमो ब्रह्मणे, इत्यादि मन्त्रों से सायंकाल प्रातःकाल उपस्थान करे, ऐसा परिशिष्ट का मत है। दूसरी स्मृतियों में 'मित्रस्य चर्षणी' इत्यादि मित्रदेवताक मन्त्रों से प्रातःकाल और 'इमं मे वरुण' इत्यादि वरुणपदयुक्त मन्त्रों से सायंकालीन सूर्योपस्थान कहा है।

---

१. व्यासोक्त जपसंख्या—'अष्टोत्तरशतं नित्यमष्टाविंशतिरेव वा। विधिना दशकं वाऽपि त्रिकालेषु जपेद् बुधः॥' अन्यत्र—'सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनभवं हरेत्। दशवार जपेनैव नश्येत् पापं दिवानिशम्॥ शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत्। सहस्रधा जपश्चैव कल्मषं वत्सरार्जितम्॥ लक्षो जन्मकृतं पापं दशलक्षान्यजन्मभम्। सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षाद् विनश्यति॥ करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्तत।' जप का महत्त्व—'विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः। उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥'—

विश्वामित्रोक्त वाचिक आदि जप का लक्षण—'यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः। मन्त्रमुच्चारयेद् वाचा 'वाचिको'ऽयं जपः स्मृतः॥ शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ च चालयेत्। अपरैर्न श्रुतः किञ्चित्स 'उपांशु'र्जपः स्मृतः॥ धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद् वर्णं पदात्पदम्। शब्दार्थचिन्तनं भूप कथ्यते 'मानसो'जपः॥'

मनु ने गायत्री के जानकार विप्र की श्रेष्ठता बतलायी है—'गायत्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः। नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥' छन्दोगपरिशिष्टे—'सर्वेषामेव वेदानां गुह्योपनिषदां तथा। सारभूता तु गायत्री निर्गता ब्रह्मणो मुखात्॥ बृहद्यमः—'न तथा वेदजपतः पापं निर्दहति द्विजः। यथा सावित्रीं जपतः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥'—

प्राच्यै दिशे नमः इन्द्राय नमः, आग्नेय्यै दिशे० अग्नये नमः, इत्यादिना दशदिग्वन्दनाते संध्यायै नमः, गायत्र्यै नमः, सावित्र्यै०, सरस्वत्यै०, सर्वाभ्यो देवताभ्यो नम इति नत्वा—

उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥

इति विसृज्य भद्रन्नो अपि वातयमनः इति त्रिरुक्त्वा प्रदक्षिणं भ्रमन्—

आसत्यलोकादापातालादालोकालोकपर्वतात् ।
ये सन्ति ब्राह्मणा देवास्तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥

इति भूम्युपसंग्रहं नमस्कृत्य द्विराचामेदिति ।

प्राच्यै दिशे नमः इन्द्राय नमः, आग्नेय्यै दिशे नमः अग्नये नमः, इत्यादि से दसों दिशाओं की वन्दना के बाद सन्ध्यायै नमः, 'गायत्र्यै नमः, सावित्र्यै नमः, सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमः' इस प्रकार नमस्कार करके—उत्तम शिखर पर उत्पन्न होने वाली भूमि और पर्वत शिखर पर बसने वाली हे गायत्री देवि ! ब्राह्मणों की आज्ञा से सुखपूर्वक जाओ। इस आशय के मन्त्र से विसर्जन करके 'भद्रन्नो अपि वातयमनः' इसको तीन बार कह कर प्रदक्षिण क्रम से घूमते हुए सत्यलोक, पाताल-लोक और लोकालोक पर्वत तक के जो ब्राह्मण देवता हैं उनको नित्य नमस्कार है। इसके अनन्तर भूमि का उपसंग्रह कर नमस्कार करके दो बार आचमन करे।

अथ तैत्तिरीयाणां सन्ध्या

संकल्पान्तं पूर्ववत् गायत्रीं ध्यात्वा—

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसंमितम् ।
गायत्री छन्दसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे ॥
सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्ये सरस्वति ।
अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोस्तु ते ॥

ओजोसि सहोसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुः अभिभूरोम् गायत्रीमावाहयामि सावित्रीमावाहयामि

कूर्मपुराणे—'गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलया समतोलयत् । वेदा एकत्र साङ्गास्तु गायत्री चैकतः स्मृता ॥' याज्ञवल्क्योक्त जपविधि—'ध्यायेत्तु मनसा मन्त्रं जिह्वोष्ठौ न विचालयेत् । न कम्पयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च सिद्धविद्याधरा गणाः । यस्मात्प्रभावं गृह्णन्ति तस्माद् गुह्यं तु कारयेत् ॥' वृद्धमनुः—'वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सदा जपेत् । तस्य स्यात् सफलं जाप्यं तद्धीनमफलं स्मृतम् ॥'—

गायत्रीकल्प में करजप का प्रकार—'पर्वभिस्तु जपेद्देवीं माला काम्यजपे स्मृता । गायत्री वेदमूला स्याद् वेदः पर्वसु गीयते ॥ आरभ्यानामिकामध्यं पर्वाण्युक्तान्यनुक्रमात् । तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥ मध्यमाङ्गुलिमूले तु यत्पर्वद्वितयं भवेत् । तं वै मेरुं विजानीयाज्जपे तं नातिलङ्घयेत् ॥' श्रीकूर्मतंत्र में शक्तिमन्त्र-जप के विषय में तर्जनी के मध्य और अग्रपर्व को मेरु बतलाते हुये कहा है—'अनामिकात्रय पर्व कनिष्ठादित्रिपर्विका । मध्यमायाश्च त्रितयं तर्जनीमूलपर्वणि ॥ तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पापकृत् ।' इति ।

सरस्वतीमावाहया० छन्दऋषीनावाह० श्रियमा० ह्रियमावाहयामि इत्यावाह्य मार्जनं पूर्ववत्। ओं आपो वा इदꣳसर्वं विश्वाभूतान्यापः प्राणा वा आपः पशव आपोऽन्नमापोऽमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छन्दाꣳस्यापो ज्योतीꣳ-ष्यापो यजूꣳष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवः सुवराप आप ओमिति जलमभिमन्त्र्य सूर्यश्चेति पूर्ववन्मन्त्राचमनम्। दधिक्राव्णो अकारिषमिति ऋचमुक्त्वा आपोहिष्ठेति तिसृभिः हिरण्यवर्णा इति पवमानः सुवर्जन इत्यनुवाकेन च ऋगन्ते मार्जनान्तेऽघमर्षणं कृत्वा न कृत्वा वार्घ्यदानादि गायत्रीजपान्त-मावाहनमन्त्रवर्ज्यं पूर्ववत्।

तैत्तिरीयों का संकल्पपर्यन्त पहिले ही की तरह से है। गायत्री का ध्यान करके 'आयातु वरदा देवी' इत्यादि मूलोक्त मंत्र पढ़कर गायत्री का आवाहन करता हूँ, सावित्री का आवाहन करता हूँ, सरस्वती का आवाहन करता हूं, छन्द ऋषियों का आवाहन करता हूँ, श्री का आवाहन करता हूँ, ह्री का आवाहन करता हूँ, इस प्रकार आवाहन करके पहिले की तरह मार्जन करे। 'ॐ आपो वा इदं सर्वं' इत्यादि मूलोक्त मंत्र पढ़कर जल का अभिमन्त्रण करके 'सूर्यश्च' इत्यादि मन्त्र से पूर्ववत् मन्त्राचमन करे। 'दधिक्राव्णो अकारिषं' इस ऋचा को कहकर 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से 'हिरण्यवर्णा' इससे और 'पवमानः सुवर्जन' इस अनुवाक से ऋचा के अन्त तथा मार्जन के अन्त में अघमर्षण करके या न करके अर्घ्यदान आदि गायत्री-जप-पर्यन्त आवाहन-मन्त्र को छोड़ कर पहिले के समान है।

न्यासविधेरवैदिकत्वमुक्तमेव। जपान्ते उपस्थानम्—ओं मित्रस्य चर्षणी०, ओं मित्रो जनान्०, ओं प्रसमित्र०, ओं यच्चिद्धिते०, ओं यत्किंचेदं०, ओं कितवासो यद्रि०, इति षड्भिरुपस्थाय प्राच्यै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नम इत्यादिना अधरान्ताः षट् नत्वा अवान्तरायै दिशे याश्च देवता इति च नत्वा नमो गङ्गायमुनयोर्मध्ये इत्यादिना मुनिदेवान्नत्वा सꣳस्रवंतु दिशो० इति मन्त्रं पठित्वा गोत्राद्युच्चार्य पूर्ववद् भूम्युपसंग्रहं नत्वा पूर्ववत्संध्यां विसृजेदिति।

न्यासविधि को अवैदिक कह ही चुके हैं। जप के अन्त में उपस्थान करे—'ॐमित्रस्य चर्षणी०' 'ॐ मित्रो जनान्०' 'ॐ प्रसमित्र०' 'ॐ यच्चिद्धिते' 'ॐ यत्किञ्चेदं०' 'ॐ कितवासो यद्रि०' इन छ मन्त्रों से उपस्थान करके पूरब की दिशा के जो देवता इसमें रहते हैं उनको नमस्कार है इत्यादि से अधरपर्यन्त छ देवताओं को और अवान्तर दिशा वाले देवताओं को प्रणाम करके 'नमो गंगायमुनयोर्मध्ये' इत्यादि से मुनि और देवताओं को प्रणाम करके 'सꣳस्रवन्तु दिशो' इस मन्त्र को पढ़कर अपना गोत्र आदि का उच्चारण करके पहिले के समान भूमि का उपसंग्रहपूर्वक प्रणाम कर पहिले के समान सन्ध्या का विसर्जन करे।

अथ कात्यायनानां सन्ध्याप्रयोगः

आचम्य [1]भूः पुनातु भुवः पुनातु स्वः पुनातु भूर्भुवः स्वः पुनात्वित्यादिना

१. भू आदि तीनों व्याहृतियों का व्यापक अर्थ है—'भवन्ति चास्मिन् भूतानि स्थावराणि चराणि च। तस्माद् भूरिति विज्ञेया प्रथमा व्याहृतिः स्मृता॥ भवन्ति भूयो भूतानि उपभोगक्षये पुनः।

पावनं कृत्वा अपवित्रः पवित्रो वेति विष्णुं स्मृत्वा आसनादिविधिं कृत्वा द्विराचम्य प्राणानायम्य पूर्ववत्संकल्प्य—

गायत्रीं त्र्यक्षरां बालां साक्षसूत्रकमण्डलुम् ।
रक्तवस्त्रां चतुर्वक्त्रां हंसवाहनसंस्थिताम् ॥
ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम् ।
आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् ॥
आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ।
गायत्री छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोस्तु ते ॥

कात्यायन वाले आचमन करके 'भूः पुनातु' 'भुवः पुनातु' इत्यादि व्यस्त समस्त व्याहृतियों से अपने को पवित्र करके 'अपवित्रः पवित्रो वा' इससे विष्णु का स्मरण करके आसनादि विधि कर दो बार आचमन और प्राणायाम करके पूर्ववत् संकल्प कर तीन अक्षर वाली, अक्षसूत्र और कमण्डलुसहित रक्तवस्त्रधारिणी, चतुर्मुखी, हंसवाहन पर स्थित, ब्रह्मदेवता वाली और सूर्यमण्डल से आती हुई ब्रह्माणी गायत्री देवी का मैं आवाहन करता हूँ। हे ब्रह्मवादिनि ! वेदों की माता, ब्रह्मयोनि, वरदायिनी, तीन अक्षर वाली गायत्री देवि ! आइये आपको प्रणाम है।

इत्यावाह्य पूर्ववद् आपोहिष्ठेति त्र्यृचेन मार्जयेत् । सूर्यश्चेति मन्त्रस्य नारायणऋषिः सूर्योदेवता अनुष्टुप्छन्दः आचमने विनियोगः । सूर्यश्चेति जलं प्राश्याचम्य आपोहिष्ठेति नवऋग्भिर्मार्जनं कुर्यादिति केचिदाहुः । बहवस्तु संकल्पाद्यन्ते सूर्यश्चेति मन्त्राचमनं कृत्वाऽऽपोहिष्ठेति तिसृभिः प्रतिपादं मार्जनान्तेऽघमर्षणं कार्यं न तु मार्जनद्वयमित्याहुः । सुमित्र्या दुर्मित्र्या इति द्वयोः प्रजापतिर्ऋषिः आपोदेवता यजुश्छंदः आदानप्रक्षेपे वि० । ॐ सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु इति जलमादाय दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति वामभुवि क्षिपेत् ।

इस आशय के मन्त्र से आवाहन कर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं से पहिले के समान मार्जन करे। 'सूर्यश्च' इस मन्त्र का नारायण ऋषि, सूर्य देवता, अनुष्टुप् छन्द, इसका आचमन में विनियोग है। 'सूर्यश्च' इस मन्त्र से जल का प्राशन तथा आचमन कर 'आपोहिष्ठा' इन नव ऋचाओं से मार्जन करे, ऐसा कोई कहते हैं। बहुत लोग तो संकल्प आदि के बाद 'सूर्यश्च' इस मन्त्र से आचमन करके 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं के प्रत्येक चरण से मार्जन करके अघमर्षण करे न कि दो मार्जन करे, ऐसा कहते हैं। 'सुमित्र्या' 'दुर्मित्र्या' इन दोनों के प्रजापति ऋषि, जल देवता, यजुः छन्द, और आदान के प्रक्षेप में विनियोग है। 'ॐ सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु' इस मन्त्र से जल लेकर 'दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तु' इस मन्त्र से अथवा 'योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म' इस मन्त्र से बाईं ओर भूमि में छोड़ दे।

ततः ऋतं चेति त्र्यृचेन द्रुपदेति त्रिरुक्तऋचा वाघमर्षणं पूर्ववत् । सायं प्रातश्च त्रिरर्घ्यदानं पुष्पयुतजलेन पूर्ववत् । मध्याह्ने सकृद् गायत्र्या परित उक्ष-

---

कल्पान्ते उपभोगाय भुवस्तस्मात् प्रकीर्तिता ॥ शीतोष्णवृष्टितेजांसि जायन्ते तानि वै सदा । प्रलयः सुकृतीनां च स्वर्लोकः स उदाहृतः ॥' इति ।

णम् । अथोपस्थानम्[1]—उद्वयमुदुत्यमिति द्वयोः प्रस्कण्वः सूर्योनुष्टुप्गायत्र्यौ, चित्रं देवानामाङ्गिरसः कुत्सः सूर्यस्त्रिष्टुप्, तच्चक्षुर्दध्यङ्ङाथर्वणः सूर्यः पुर उष्णिक्, उपस्थाने० । ॐ उद्वयं तमस०, ॐ उदुत्यं जातवेदसं०, ॐ चित्रं देवानां०, ॐ तच्चक्षुर्देवहितं० इति ऊर्ध्वबाहुः सूर्यमुदीक्षमाणो यथाशाखं पठेत् ।

इसके बाद 'ऋतं च' इन तीन ऋचाओं से अथवा 'द्रुपदा' इस मन्त्र को तीन बार कह कर पूर्ववत् अघमर्षण करे। सायं प्रातः-काल तीन बार पुष्पयुक्त जल से अर्घ्य दान करे। पहिले की तरह मध्याह्न में एक बार अर्घ्य प्रदान करे। गायत्री से चारो ओर जल छोड़े। 'उद्वयं' और 'उदुत्यं' इन दोनों मन्त्रों का क्रम से प्रकण्व-सूर्य-देवता, अनुष्टुप्-गायत्री-छन्द, 'चित्रं देवानां' इसके आंगिरस-कुत्स-ऋषि, सूर्य देवता, त्रिष्टुप् छन्द, 'तच्चक्षुः' इस मन्त्र का दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि, सूर्य देवता, पुर उष्णिक् छन्द और इनका उपस्थान में विनियोग है। 'ॐ उद्वयं तमस०' 'ॐ उदुत्यं जात०' 'ॐचित्रं दे०' 'ओं तच्चक्षुर्देवहितं०' इन मन्त्रों को ऊपर की ओर दोनों बाहु उठाये और सूर्य को देखते हुए अपनी शाखा के अनुसार पढ़े।

प्राणायामादि विधाय न्यासमुद्रातर्पणादिविधिः कृताकृतः । तेजोऽसीति परमेष्ठी प्रजापतिराज्यं यजुः आवाहने० । ओं तेजोसि शुक्रमस्य मृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि । परोरजस इति । विमलः परमात्मानुष्टुप् गायत्र्युपस्था० । ओं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदोम् । ततो गायत्रीजपान्तं पूर्ववत् ।

प्राणायाम आदि करके न्यास-मुद्रा-तर्पण आदि विधि करना न करना समान है। 'तेजोसि' इस मन्त्र का परमेष्ठी ऋषि, प्रजापति देवता, यजुः छन्द आवाहन में विनियोग है। 'ओं तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि' इत्यादि मूल में मंत्र है। 'गायत्र्यस्येकपदी' इस मंत्र का विमल ऋषि, परमात्मा देवता, अनुष्टुप् छन्द, गायत्री के उपस्थान में विनियोग है। 'ओं गायत्र्यस्येकपदी' इत्यादि मंत्र मूल में है। इसके बाद गायत्री जप तो पहिले ही के समान करे।

ततः शक्तेन विभ्राडित्यनुवाकेन पुरुषसूक्तेन वा शिवसंकल्पेन वा मण्डलब्राह्मणेन वोपस्थानं कार्यम् । अत्र ऋक्शाखोक्तवद् दिग्वन्दनं केचित्कुर्वन्ति । तत उत्तमे शिखरे० देवागातु विदोगातुमिति मन्त्राभ्यां विसर्जनम् । भूम्युपसंग्रहं नमस्कारादि पूर्ववत् । इति कात्यायनसंध्या ।

तदनन्तर समर्थ-पुरुष 'विभ्राड्' इस अनुवाक, पुरुषसूक्त, शिवसंकल्प, मण्डल ब्राह्मण, इनमें किसी एक से उपस्थान करे। इसमें ऋक् शाखा में कहे हुए के समान दिशाओं का वन्दन,

---

[1]. उपस्थान के याज्ञवल्क्योक्त मन्त्र और उसकी विधि है—'गायत्र्यास्तु जपं कृत्वा पूर्वं चैव यथाविधि । उपस्थानं स्वकैर्मन्त्रैरादित्यस्य तु कारयेत् ।। उदुत्यं चित्रं देवानामुद्वयन्तमसस्परि । तच्चक्षुर्देव इति च एकचक्रेति वैधि च ।। उदगादित्ययं मन्त्र आकृष्णेनेति वै ऋचा । तृतात्मा सम्प्रयुञ्जीत शक्त्याऽन्यानि जपेत् सदा ।। सन्ध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेवमाहुर्मनीषिणः । मध्याह्ने उदये चैव विभ्राडादीच्छया भवेत् ।। तदसंयुक्तपार्ष्णिर्वा एकपादो द्विपादपि । जपेत् कृताञ्जलिर्वाऽपि ऊर्ध्वबाहुरथापि वा ।।' इति ।

कुछ लोग कहते हैं। इसके अनन्तर 'उत्तमे शिखरे' 'देवागातु विदोगातु' इन दो मन्त्रों से विसर्जन करे। भूमि का उपसंग्रहपूर्वक प्रणाम आदि पहले के समान है। कात्यायनसंध्या समाप्त।

अथ संध्याफलं तल्लोपप्रायश्चित्तादि च

संध्यामुपासते ये ते निष्पापा ब्रह्मलोकगाः।
अन्यकर्मफलं नास्ति संध्याहीनेऽशुचित्वतः॥
जीवमानो भवेच्छूद्रो[1] मृतः श्वा जायते ध्रुवम्।

संध्यात्रये कालातिक्रमे प्रायश्चित्तार्थमेकमर्घ्यमधिकं दत्त्वा रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिनोक्तकर्माणि कुर्यात्। ब्रह्मयज्ञं सौरं च वर्जयेत्। सर्वथा संध्यालोपे प्रतिसंध्यमेकोपवासोऽयुतमष्टोत्तरसहस्रं वा गायत्रीजपः। अत्यशक्तौ प्रतिसंध्यालोपं शतगायत्रीजपः। द्व्यहं त्र्यहं लोपे तदावृत्तिः। ततः परं कृच्छ्रादिकल्प्यम्।

जो लोग सन्ध्या की उपासना करते हैं वे पापरहित होकर ब्रह्मलोक में जाते हैं, सन्ध्यारहित होने की अपवित्रता से अन्य कोई कर्म का फल नहीं होता। सन्ध्या नहीं करने से जीते हुए शूद्र और मरने पर अवश्य कुत्ता होता है। तीनों सन्ध्या में समय का अतिक्रमण होने पर प्रायश्चित्त के लिये एक अधिक अर्घ्य देकर दिन का कर्म एक पहर रात तक करे। ब्रह्मयज्ञ और सौरकर्म का वर्जन करे। सब प्रकार से सन्ध्या न करने पर प्रतिसन्ध्या के लिये एक उपवास अथवा दस हजार या एक हजार आठ गायत्री का जप करे। अत्यन्त अशक्त होने पर सन्ध्या के लोप होने पर प्रतिसंध्या एक सौ बार गायत्री जप करे। दो तीन दिन सन्ध्या नहीं करने पर उपवास और जप की आवृत्ति करे। इससे अधिक होने पर कृच्छ्र आदि व्रत की कल्पना करे।

अथौपासनहोमे अधिकारिणः

[2]स्वयं होमो मुख्यः। अशक्तौ पत्नी पुत्रः कुमारी भ्राता शिष्यो भागिनेयो जामाता ऋत्विग्वा। पुत्रादिर्दम्पत्योः संनिधाने एकतरसंनिधाने वा जुहुयात्। त्यागं यजमानः पत्नी वा कुर्यात्। तस्या असंनिधौ तदाज्ञया ऋत्विगादिरपि। पत्न्या ऋतुप्रसवोन्मादादिदोषे तु तदाज्ञां विनापि ऋत्विगादिस्त्यागं कुर्यात्। स्वयं होमे फलं यत्स्यादन्यैर्होमे तदर्धकम्।

---

१. मनु ने भी सन्ध्योपासन नहीं करने पर सभी द्विजकर्मों से शूद्रवत् बहिष्करणीय बतलाया है—'न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥' याज्ञवल्क्यः—'यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां हि विकर्मस्थास्तु वै द्विजाः। तेषां वै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयम्भुवा॥ निशायां वा दिवा वाऽपि यदज्ञानकृतं भवेत्। त्रिकालसन्ध्याकरणात्तत्सर्वं हि प्रणश्यति॥' अत्रिः—'सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः। विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्॥' दक्षः—'सन्ध्याहीनोऽशुचिर्विप्रो ह्यनर्हः सर्वकर्मसु। यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥' इति।

२. स्मृतियों में स्वयं होम करने का महत्त्व—'अन्यैः शतहुताद्धोमादेकदा स्वहुतो वरम्। शिष्यैः शतहुताद्धोमादेकः पुत्रहुतो वरम्॥ पुत्रैः शतहुताद्धोमादेक आत्महुतो वरम्। तस्मात् सदैव होमं तु प्रकुर्वीत स्वयं द्विजः॥' कात्यायनः—'असमक्षं तु दम्पत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना। द्वयोरप्यसमक्षं तु भवेद् हुतमनर्थकम्॥' इति।

अपने से होम करना मुख्य है। असमर्थ होने पर पत्नी, पुत्र, कुमारी, भाई, शिष्य, भानजा, दामाद या ऋत्विक् करे। पुत्र आदि पति-पत्नी के रहने पर अथवा एक किसी के रहने पर होम करे। त्याग, यजमान अथवा पत्नी करे। उसके सन्निधि में नहीं रहने पर उसकी आज्ञा से ऋत्विक् आदि भी करें। पत्नी के रजस्वला, प्रसव और पागल आदि होने पर तो उसकी आज्ञा के विना भी ऋत्विक् आदि त्याग करें। अपने से होम करने पर जो फल होता है, वह दूसरों से कराने पर आधा फल होता है।

पर्वणि तु स्वयमेव जुहुयात्। तत्र प्रातः सूर्योदयात्प्राक् सायं सूर्यास्तात्प्राग्[१] अग्नीनां गृह्याग्नेर्वा प्रादुष्करणं[२] कृत्वा सूर्योदयास्तोत्तरं होमः कार्यः। प्रादुष्करणकालातिक्रमे ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहेति मन्त्रेण स्रुवाज्याहुतिरूपं सर्वप्रायश्चित्तमाज्यसंस्कारपूर्वकं कृत्वा होमः। सूर्योदयोत्तरं दशघटिकापर्यन्तं प्रातर्होमकालो मुख्यः, तत आसायं गौणः। सायं नवनाडिकापर्यन्तं मुख्यः। तत आप्रातर्गौणः।

पर्व में तो स्वयं ही होम करे। उसमें प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले, सायंकाल सूर्यास्त से से पहिले, अग्नियों का या गृह्याग्नि का उत्पादन कर सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के बाद होम करे। अग्निप्रज्वलन का समयातिक्रमण होने पर 'ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस मन्त्र से स्रुवा से घी की आहुतिरूप घृत-संस्कार-पूर्वक सर्वप्रायश्चित्त करके होम करे। सूर्योदय के बाद दस घटी तक होम का समय मुख्य उसके बाद सायंकाल तक गौण है। सायंकाल नव घड़ी तक मुख्य काल है। तदनन्तर प्रातःकाल तक गौण समय है।

मुख्यकालातिक्रमे कालातिक्रमनिमित्तप्रायश्चित्तपूर्वकम्'अमुकहोमं करिष्ये' इति संकल्प्याज्यं संस्कृत्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा सायंकाले दोषावस्तर्नमः स्वाहेति हुत्वा प्रातस्तु प्रातर्वस्तर्नमः स्वाहेति हुत्वा हौम्यं संस्कृत्य नित्यहोमः। श्रौतहोमं कृत्वा स्मार्तहोमः। केचित् स्मार्तहोमं पूर्वमाहुः। आधाने पुनराधाने सायमुपक्रमो होमः। सायं प्रातर्होमयोर्द्रव्यैक्यं कर्त्रैक्यं च। प्रातर्यजमानः कर्ता चेत्कर्तृभेदो न दोषाय।

मुख्य समय के अतिक्रमण होने पर 'समयातिक्रमण निमित्त प्रायश्चित्तपूर्वक अमुक होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर घृत का संस्कार करके स्रुवा में चार बार घृत ग्रहण कर सायंकाल में 'दोषावस्तर्नमः

---

१. कात्यायनः 'यावन्नापैति लौहित्यं तावत्सायं तु हूयते। प्रातः सूर्योदयात् पूर्वं प्रायश्चित्तमतः परम् ॥' जहाँ प्रायश्चित्त का विशेष विधान नहीं है वहां आचारार्क में व्याहृति से होम करने का निर्देश किया है—'प्रायश्चित्तविशेषेण यत्र नोक्तो भवेद्विधिः। होतव्याज्याहुतिस्तत्र भूर्भुवः स्वरितीति च ॥' तीनों व्याहृतियों की महत्ता—'भवन्ति चास्मिन् भूतानि स्थावराणि चराणि च। तस्माद् भूरिति विज्ञेया प्रथमा व्याहृतिः स्मृता ॥ भवन्ति भूयो भूतानि उपभोगक्षये पुनः। कल्पान्ते उपभोगाय भुवस्तस्मात् प्रकीर्तिता ॥ शीतोष्णवृष्टितेजांसि जायन्ते तानि वै सदा। प्रलयः सुकृतीनां च स्वर्लोकः स उदाहृतः ॥' इति।

२. प्रादुष्करणं = प्रज्वलनम्। अग्नि प्रज्वलनादि कार्य के अनुकल्पवर्ग—'दुहित्रा स्नुषया वाऽग्निविहारो न विरुध्यते। निर्लेपनं च पात्राणामुपलेपनमर्चनम् ॥' यहां आचारार्क में विहार शब्द का प्रादुष्करण (अग्निप्रज्वलन) अर्थ किया है।

स्वाहा' इस मन्त्र से होम करके होम की सामग्री का संस्कार कर नित्य होम करे। श्रौत-होम करके स्मार्त-होम करना चाहिये। कुछ लोग स्मार्त-होम पहिले करने की बात कहते हैं। आधान और पुनः आधान में सायंकाल आरंभ किया गया होम सायं-प्रातः-काल द्रव्यैक्य और कर्त्रैक्य से होना चाहिये। प्रातःकाल यदि यजमान करने वाला हो तो कर्ता के भेद होने में दोष नहीं है।

अथाश्वलायनस्मार्तहोमः

आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य 'श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायमौपासनहोमं प्रातरौपासनहोमं वामुकद्रव्येण करिष्ये'। चत्वारिशृङ्गेति ध्यात्वा सोदकहस्तेन त्रिः परिसमुह्य 'परिस्तीर्य त्रिः पर्युक्ष्य होमद्रव्यं समिद्युतमुत्तरतः स्थितं दर्भेणावज्वल्य प्रोक्ष्य त्रिः पर्यग्नि कृत्वाऽग्नेः पश्चिमतो दर्भेषु निधाय विश्वानि न इत्यभ्यर्च्य प्रजापतिं मनसा ध्यायन् समिधमग्नौ प्रक्षिप्य तथैव त्यक्त्वा समिधि दीप्तायां शततण्डुलैरग्नये स्वाहेति सायं प्रथमाहुतिः, सूर्याय स्वाहेति प्रातः प्रथमाहुतिः।

आचमन प्राणायाम कर देश काल को कह कर 'श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिए सायंकालीन औपासन होम अथवा प्रातःकाल का औपासन होम अमुक द्रव्य से करूँगा'। 'चत्वारिश्रृंगा' इत्यादि मन्त्र से ध्यान कर हाथ में जल लेकर तीन बार परिसमूहन और परिस्तरण कर तीन बार पर्युक्षण कर समिधा से युक्त उत्तर की ओर रखे हुए होम द्रव्य को कुश से प्रज्वलित और प्रोक्षण कर तीन पर्यग्नि करके अग्नि के पश्चिम की ओर कुशों पर रखकर 'विश्वानि न' इस मन्त्र से पूजन कर प्रजापति का मन से ध्यान करते हुए समिधा को अग्नि में छोड़कर उसी प्रकार त्याग कर समिधा के प्रज्वलित हो जाने पर सौ चावलों से 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से सायंकाल पहिली आहुति दे। प्रातःकाल 'सूर्याय स्वाहा' इस मन्त्र से पहिली आहुति दे।

शताधिकतण्डुलैः प्रजापतय इति मनसोच्चार्य होमत्यागाभ्यां द्वितीयाहुतिरुभयकाले। परिस्तरणं विसृज्य परिसमूहनपर्युक्षणे कृत्वोपस्थानम्। अग्न आयूंषीति तिसृणां शतं वैखानसा अग्निः पवमानो गायत्री अग्न्युपस्थाने विनियोगः। अग्ने त्वन्न इति चतसृणां गौपायनो लौपायनो वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चाग्निर्द्विपदा विराट् अग्न्युपस्थाने वि०। प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् प्राजापत्युपस्थाने विनियोगः। तन्तुं तन्वन्देवा अग्निर्जगती, यद्वा देवाः प्रजापतिर्जगती, उपस्थाने विनियोगः। हिरण्यगर्भो हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् प्राजापत्युप०। इति वायव्यदेशे तिष्ठन्नुपस्थाय उपविश्य मानस्तोक इत्यादिना विभूतिधारणं क्वचिदुक्तम्। विष्णुं स्मृत्वा अनेन होमकर्मणा परमेश्वरः प्रीयतामित्यर्पयेत्।

सौ से अधिक चावलों से 'प्रजापतये' इस मन्त्र को मन से उच्चारण कर दोनों समय में दूसरी आहुति दे। परिस्तरण को छोड़कर परिसमूहन और पर्युक्षण करके अग्नि का उपस्थान करे।

---

१. प्रयोगपारिजात में परिस्तरण कुश की संख्या—'बर्हितस्तु परित्यज्य द्वादशाङ्गुलतो बहिः। परिस्तरणदर्भास्तु षोडश द्वादशापि वा॥' अपि च—'ईशानकोणमारभ्य पुनरीशानकोणगा। कुशैस्त्रिभिस्त्रिभिः कुर्यात् सव्येनाग्नेः परिस्तृतिः॥' इति।

'अग्न आयूंषि' इन तीन ऋचाओं का शतं वैखानस ऋषि, अग्नि पवमान देवता, गायत्री छन्द, अग्नि के उपस्थान में विनियोग है। 'अग्ने त्वन्न' इन चार ऋचाओं का गौपायन या लौपायन बन्धु-सुबन्धु-श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु ये ऋषि, अग्नि देवता, द्विपदा विराट् छन्द, अग्नि के उपस्थान में विनियोग है। 'प्रजापते हिरण्यगर्भः' इस मन्त्र का हिरण्यगर्भ ऋषि, प्रजापति देवता, त्रिष्टुप् छन्द, उपस्थान में विनियोग है। 'तन्तुं तन्वन्देवा' इस मंत्र का अग्नि देवता, जगती छन्द, उपस्थान में विनियोग है। 'हिरण्यगर्भो हिरण्यगर्भः' इस मन्त्र का हिरण्यगर्भ ऋषि, प्रजापति देवता, त्रिष्टुप् छन्द, प्रजापति के उपस्थान का विनियोग है। इन मन्त्रों से वायव्य दिशा में खड़े होकर उपस्थान करके बैठकर 'मानस्तोक' इत्यादि मन्त्र से विभूति का धारण कहीं कहा है। विष्णु का स्मरण कर इस होम कर्म से परमेश्वर प्रसन्न हों यह कह कर अर्पण करे।

प्रातस्तु—सूर्यो नो दिवः सौर्यश्चक्षुः सूर्यो गायत्री सूर्योप०। उदुत्यं काण्वः प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्री सूर्योप०। चित्रं देवानामाङ्गिरसः कुत्सः सूर्यस्त्रिष्टुप् सूर्योप०। नमो मित्रस्य सौर्योऽभितपाः सूर्यो जगती सूर्यो०। इति चतुर्भिः पूर्वोक्तैस्त्रिभिः प्राजापत्यैश्चोपस्थानम्। केचित्प्रातस्तंतुं तन्वन्निति न पठन्ति। पत्नीकुमारीकर्तृकहोमे ध्यानोपस्थानादौ मन्त्रा वर्ज्याः।

प्रातःकाल में तो—'सूर्यो नो दिवः' इस मंत्र का सौर्यश्चक्षुः ऋषि, सूर्य देवता, गायत्री छन्द, यह सूर्योपस्थान का विनियोग है। 'उदुत्यं' इस मंत्र का काण्व-प्रस्कण्व-ऋषि, सूर्य देवता, गायत्री छन्द, यह सूर्योपस्थान का विनियोग है। 'चित्रं देवानां' इस मंत्र का आंगिरस-कुत्स-ऋषि, सूर्य देवता, त्रिष्टुप् छन्द, यह सूर्योपस्थान का विनियोग है। 'नमो मित्रस्य' इस मन्त्र का सौर्योभितपा ऋषि, सूर्य देवता, जगती छन्द, यह सूर्योपस्थान का विनियोग है। इन चारो से और पहिले कहे हुए तीन प्राजापत्यों से उपस्थान करे। कोई प्रातः 'तन्तुं तन्वन्' इस मन्त्र को नहीं पढ़ते। पत्नी और कुंमारी होम करने वाली हो तो उस होम में ध्यान और उपस्थान आदि में मंत्रोच्चारण न करे।

अथ हिरण्यकेशीयानां होमः

पूर्वोक्तसंकल्पाद्यन्ते यथाह तद्वसव इति परिसमुह्य परिस्तीर्य अदितेऽनुमन्यस्वेति दक्षिणतः प्राचीनं पर्युक्षेत्। अनुमतेऽनुमन्यस्वेति पश्चादुदीचीनम्। सरस्वतेऽनुमन्यस्वेति उत्तरतः प्राचीनम्। देवसवितः प्रसुवेति सर्वतः। तूष्णीं समिधमाधाय होमादिप्राग्वत्। अदितेऽन्वमꣳस्थाः, अनुमतेन्वमꣳस्थाः, सरस्वतेन्वमꣳस्थाः, देवसवितः प्रासावीरिति पूर्ववत्परिषेचनम्। उदुत्यं चित्रं देवानामिति प्रातरुपस्थानम्। अग्निर्मूर्धादिव इति त्वामग्ने पुष्करादधीति द्वाभ्यां सायमुपस्थानम्।

पहिले कहे हुए संकल्प आदि के बाद 'यथाह तद्वसव' इस मन्त्र से परिसमूहन और परिस्तरण करके 'अदितेऽनुमन्यस्व' इससे दक्षिण से पूर्वपर्यन्त पर्युक्षण करे। 'अनुमतेऽनुमन्यस्व' इस मंत्र से पश्चिम से उत्तर तक पर्युक्षण करे। 'सरस्वतेऽनुमन्यस्व' इससे उत्तर की ओर से पूर्व तक, और 'देवसवितः प्रसुव' इससे चारो ओर पर्युक्षण करे। चुपचाप समिधा लेकर होम आदि पहिले के समान है। 'अदितेऽन्वमस्थाः, अनुमतेन्व०, सरस्वतेन्व०, देवसवितः प्रासावीः' इससे पहिले के समान परिषेचन करे। 'उदुत्यं' और 'चित्रं देवानां' इत्यादि मन्त्र से प्रातःकाल उपस्थान करे। 'अग्निर्मूर्धादिवः' और 'त्वामग्ने पुष्करादधि' इन दो मन्त्रों से सायंकाल में उपस्थान करे।

अथ आपस्तम्बानां होमः

आपस्तम्बानां सायमग्नये स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति द्वे आहुती। प्रातस्तु सूर्याय स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति विशेषः। शेषं हिरण्यकेशीयवत्।

आपस्तम्बों की सायंकाल में 'अग्नये स्वाहा' और 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इन दो मन्त्रों से दो आहुति है। प्रातःकाल तो 'सूर्याय स्वाहा' और 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इतना विशेष है। बाकी हिरण्यकेशीय की तरह है।

अथ कात्यायनानां होमः

कात्यायनानां सायमस्तमिते होमः। प्रातः सूर्येऽनुदिते[1] होमः। तत्र प्रातरुपस्थानान्तां संध्यां कृत्वा होमान्ते गायत्रीजपादिसंध्यासमापनम्। तत्र पूर्ववत्संकल्पान्ते उपयमनान्कुशानादाय सव्ये कृत्वा दक्षिणकरेण तिस्रः समिधोऽग्नावाधाय मणिकोदकेन पर्युक्ष्याग्निमर्चयित्वाऽग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति सायं दध्ना तण्डुलैर्वा हुत्वा प्रातस्तथैव सूर्याय प्रजापतये च जुहुयात्। समास्त्वेत्यनुवाकेन सायमुपस्थानं, प्रातस्तु विभ्राडित्यनुवाकेन। अत्र दधिहोमादौ संस्रावप्राशनमाहुः। होमलोपेऽष्टोत्तरसहस्रगायत्रीजपः। मुख्यकालातिक्रमे अनादिष्टहोमः।

कात्यायनों का होम सायंकाल सूर्यास्त में और प्रातःकाल सूर्योदय के पहिले होता है। उसमें प्रातःकाल उपस्थान तक सन्ध्या करके होम के बाद गायत्रीजप आदि सन्ध्या की समाप्ति होती है। पहिले की तरह संकल्प के बाद उपयमन से कुशों को लेकर सव्य होकर दाहिने हाथ से तीन समिधाओं को अग्नि में डाल कर मणिक-जल से पर्युक्षण करके अग्नि का पूजन कर 'अग्नये स्वाहा' 'प्रजापतये स्वाहा' इससे सायंकाल दही या चावल से होम करके प्रातःकाल उसी प्रकार सूर्य और प्रजापति का होम करे। 'समास्त्वा' इस अनुवाक से सायंकालीन उपस्थान करे। प्रातःकाल तो 'विभ्राट्' इस अनुवाक से उपस्थान करे। यहां दधि से होम आदि में संस्रव-प्राशन कहा है। होम न होने पर १००८ गायत्री का जप करे। मुख्य काल के अतिक्रमण होने पर अनादिष्ट होम करे।

अथ होमद्रव्याणि

[2]व्रीहिश्यामाकयवानां तण्डुलाः पयोदधिसर्पिर्यवव्रीहिगोधूमप्रियंगवः स्वरूपेणापि होम्याः। तिलास्तु स्वरूपेणैव। तण्डुलादयः शतसंख्या हस्तेन होतव्याः।

---

१. मनुः—'उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥' अर्थात् सूर्योदय होने पर सूर्योदय के न होने पर और अध्युषित समय में अग्निहोत्र सम्बन्धी होम करना चाहिये। अनुदित शब्द का भाव है। जब पूर्व दिशा में लालिमा हो जाय और छिट फुट एक दो तारे दिखाई पड़ते हों तथा अध्युषित का तात्पर्य है कि न तो सूर्योदय हुआ हो और न तो छिट-फुट तारे ही दिखाई पड़ते हों।

२. कात्यायनः—'कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम्। व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति वेद्यं त्रिधा बुधैः॥' स्मृत्यन्तरे—'हविष्यान्नं तिला माषा नीवारा व्रीहयो यवाः। इक्षवः शालयो मुद्गाः पयो दधि घृतं मधु॥ हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनुव्रीहयः स्मृताः। व्रीहीणामप्यभावे तु दध्ना वा पयसाऽपि वा॥ यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकल्पतः। यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः॥'

दध्यादिद्रवद्रव्यं स्रुवेण। सर्वत्रोत्तराहुतिः पूर्वतो भूयसी। 'समिधश्चार्कपलाशखदिरापामार्गपिप्पलोदुम्बरशमीदूर्वादर्भमया दश द्वादशाङ्गुलाः सत्वचः वटप्लक्षबिल्वादिजा हेमाद्रौ। होमाहुत्योः संसर्गे यत्र वेत्थेति मन्त्रेणाग्नये समिद्धोमः।

धान, सावां और जौ के चावल, दूध, दही, घी, जौ, धान, गेहूँ, ककुनी, ये भी अपने स्वरूप से होम के योग्य हैं। तिल तो स्वरूप से ही होम के योग्य है। चावल आदि का शतसंख्यक होम हाथ से करने योग्य है। दही आदि द्रव-द्रव्य का होम स्रुवा से करे। सब जगह बाद वाली आहुति पहिले से अधिक मात्रा में हों। समिधायें—अर्क, पलाश, खैर, अपामार्ग, (चिड़चिड़ी) पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश की, दस या बारह अंगुल की लम्बी, छिलके के साथ बड़, पाकड़ और बेल आदि की हेमाद्रि में कहा है। होम और आहुति के संसर्ग में 'यत्र वेत्थ' इस मन्त्र से अग्नि के लिये समिधा से होम करे।

अथ होमलोपे प्रायश्चित्तादि

नित्यहोमे त्वतिक्रान्ते आज्यं संस्कृत्य चतुर्गृहीत्वा मनोज्योतिर्जुषतामिति जुहुयात्। द्वादशदिनपर्यन्तं होमलोपे इदमेव प्रायश्चित्तं, ततः परमग्निनाशः। एवं होमलोपप्रायश्चित्तं कृत्वातिक्रान्तहोमार्थं द्रव्यं संस्कृत्य सायं प्रातः क्रमेण द्वे द्वे आहुती दिनगणनया जुहुयात्। अग्निसूर्यप्रजापतीनुपतिष्ठेन्न वा जुहुयात्, प्रायश्चित्तेन चारितार्थ्यात्। सूतकादिना होमलोपेऽप्येवम्।

नित्य होम के अतिक्रमण होने पर घृत का संस्कार करके स्रुवा से घृत को चार बार ग्रहण कर 'मनोज्योतिर्जुषतां' इस मन्त्र से होम करे। बारह दिन तक नित्य होम न होने पर यही प्रायश्चित्त है, इसके बाद अग्नि का नाश हो जाता है। इस प्रकार होम-लोप का प्रायश्चित्त करके अति-

---

बौधायनः—'व्रीहीणां वा यवानां वा शतमाहुतिरिष्यते।' संग्रहे—'द्रवं हविः स्रुवेणैव पाणिना कठिनं हविः। अङ्गुल्यग्रैर्न होतव्यं न कृत्वाऽङ्गुलिभेदनम्। अङ्गुल्युत्तरपार्श्वेन होतव्यमिति तु स्थितिः।'—

हरिहरभाष्य में होम का निषेध—'क्षुत्तृट्क्रोधसमायुक्तो हीनमन्त्रो जुहोति यः। अप्रवृद्धे सधूमे वा सोऽन्धः स्यादन्यजन्मनि॥ स्वल्पे रूक्षे सस्फुलिङ्गे वामावर्ते भयानके। ऊर्ध्वं काष्ठैश्च संपूर्णे फूत्कारवति पावके॥ कृष्णार्चिषि सुदुर्गन्धे तथा लिहति मेदिनीम्। आहुतिर्जुहुयाद्यस्तु तस्य नाशो भवेद् ध्रुवम्॥' इति।

१. होम में पलाश की समिधा मुख्य है उसके अभाव में खदिरादि की लेनी चाहिये—'पालाश्यः समिधः कार्याः खादिर्यस्तदभावतः। शमीरोहितकाश्वत्थास्तदभावेऽर्कवेतसौ॥' कात्यायनोक्त-ग्राह्य-समिधा—'प्रागग्राः समिधो देयास्ताश्च योगेषु पातिताः। शान्त्यर्थेषु प्रशस्तार्द्रा विपरीता जिघांसति॥ होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण संयुताः। प्रादेशमात्राः समिधो ग्राह्याः सर्वत्र चैव वा॥' अग्राह्य-समिधा—'नाङ्गुष्ठादधिका कार्या समित् स्थूलतया क्वचित्। न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥ प्रादेशान्नाधिका नोना तथा नैव द्विशाखिका। न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु च विजानता॥ विकर्णा विदलाऽरम्या वक्रा ससुषिरा कृशा। दीर्घा स्थूला घुणैर्जुष्टा कर्मसिद्धिविनाशिका॥' और भी—'विशीर्णा विदला ह्रस्वा वक्राः स्थूला द्विजा कृताः। कृमिदष्टाश्च दीर्घाश्च समिधो नैव कारयेत्॥' अग्राह्य समिधा से होम करने पर दोष—'विशीर्णायुःक्षयं कुर्याद् विदला पुत्रनाशिनी। ह्रस्वा नाशयते पत्नीं वक्रा बन्धुविनाशिनी॥ कृमिदष्टा रोगकरो विद्वेषकरणी द्विधा। पशून् मारयते दीर्घा स्थूला चार्थविनाशिनी॥' इति।

क्रमन हुए होम के लिये द्रव्य का संस्कार करके सायं और प्रातःकाल क्रम से दो दो आहुति दिन गिन कर होम करे। अग्नि, सूर्य और प्रजापति का उपस्थान करे होम न करे, क्योंकि वह प्रायश्चित्त से ही चरितार्थ है। आशौच आदि से होम-लोप होने पर भी ऐसा ही करे।

हिरण्यकेशीयानामप्येवम्। आपस्तम्बादीनां त्रिरात्रात्परमग्निनाशो भवतीति सूतकेऽपि स्वयं होमः कार्यः। समारोपोत्तरं सूतकपाते प्रत्यवरोहासंभवेन त्रिरात्रं होमलोपे पुनराधानम्।

हिरण्यकेशियों का भी इसी प्रकार होता है। आपस्तम्ब आदि का तीन रात के बाद अग्नि का नाश होता है। अतः आशौच में भी उन्हें स्वयं होम करना चाहिये। समारोप के बाद आशौच होने पर प्रत्यवरोह के असम्भव होने से तीन रात होम के लोप में पुनः अग्नि का आधान करना चाहिये।

अथ समस्यहोमः

'सायंप्रातर्होमौ समस्य करिष्ये'। पूर्ववत्सायंकालहोमान्तं कृत्वा पर्युक्ष्य पुनर्द्रव्यं संस्कृत्य समिधं प्रक्षिप्य सूर्यप्रजापत्याहुतीर्दत्त्वा हविष्पांतमित्युपतिष्ठत्। हविष्पांतमिति पञ्चर्चस्य वामदेवः सूर्यवैश्वानरौ त्रिष्टुप्। नित्यवत्प्रजापत्युपस्थानम्।

'सायं और प्रातः काल के दोनों होम समस्य करूँगा' पहिले की तरह सायंकाल का होम तक करके पर्युक्षण कर द्रव्य का पुनःसंस्कार करके समिधा छोड़कर सूर्य और प्रजापति की एक एक आहुति देकर 'हविष्पान्तं' इस मन्त्र से उपस्थान करे। 'हविष्पान्तं' इन पांच ऋचाओं के वामदेव सूर्य और वैश्वानर देवता, त्रिष्टुप् छन्द है। नित्य की तरह प्रजापति का उपस्थान करे।

अथ पक्षहोमशेषहोमौ

प्रतिपदि 'अद्य सायमारभ्य चतुर्दशीसायमवधिकान् पक्षहोमांस्तन्त्रेण करिष्ये'। सायं तण्डुलान् पात्रद्वये वृद्धिक्षयानुसारेण चतुर्दशादिवारं गृहीत्वा होमकालेऽग्नये स्वाहेति सर्वान् पूर्वपात्रस्थानेकदैव हुत्वा द्वितीयपात्रस्थान् प्रजापतये तथैव जुहुयात्।

प्रतिपदा के दिन 'आज सायंकाल से आरंभ कर चतुर्दशी के सायंकाल तक पक्षहोमों को तन्त्र से करूंगा।' सायंकाल चावलों को दो पात्रों में वृद्धि-क्षय के अनुसार चौदह आदि बार ग्रहण करके होम काल में 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से सब को पहिले पात्र में स्थित एक ही बार होम करके दूसरे पात्र वाले चावल से प्रजापति के लिये वैसे ही होम करे।

एवं द्वितीयायां प्रातः'अद्यावधि पर्वप्रातरवधिकान् पक्षहोमांस्तन्त्रेण करिष्ये' इत्यादि सायंवत्। विशेषस्तु प्रथमपात्रस्थान्सूर्याय स्वाहेति जुहुयात्। द्वितीयपात्रस्थान्प्रजापतये हुत्वोभयत्र समिदेकोपस्थानादि सकृत्।

इसी प्रकार द्वितीया के दिन प्रातः काल 'आज तक पर्व के प्रातः तक पक्षहोमों को तन्त्र से करूंगा' इत्यादि सायंकाल की तरह होम करे। विशेष तो पहिले पात्र वाले चावलों को 'सूर्याय स्वाहा' इस मन्त्र से होम करे दूसरे पात्र वाले चावलों का प्रजापति के लिये होम करके दोनों जगह एक ही समिधा रहेगी और एक ही बार उपस्थान होगा।

पक्षमध्ये आपत्प्राप्तौ तत्सायंकालाच्चतुर्दशीसायंपर्यन्तान् शेषहोमान्सायं पक्षहोमवद् हुत्वा पर्वप्रातर्होमान्तान्प्रातर्जुहुयात्। सर्वथा पर्वसायंहोमः प्रतिपत्प्रातर्होमश्च पृथगेव। इति पक्षहोमशेषहोमौ।

पक्ष के मध्य में आपत्ति प्राप्त होने पर उसके सायंकाल से चतुर्दशी के सायंकाल तक शेष होमों को सायं पक्षहोम की तरह होम करके पर्व के प्रातःकाल होम तक प्रातःकाल में होम करे। सब प्रकार पर्व का सायं होम और प्रतिपद् का प्रातः होम भी अलग होगा। पक्षहोम शेषहोम समाप्त।

पक्षमध्ये आपन्निवृत्तावपकृष्टहोमाः पुनः कार्याः। संततपक्षहोमत्रयेऽग्निनाशात्तृतीये पक्षे प्रतिदिनं होमः। सर्वथापन्निवृत्त्यभावे यावज्जीवं पक्षहोमाः।

पक्ष के मध्य में आपत्ति के निवृत्त होने पर बचे हुए होम फिर से करे। संतत पक्ष के तीन होमों में अग्नि के नाश होने से तीसरे पक्ष में प्रतिदिन होम करे। सब प्रकार से आपत्ति की निवृत्ति न हो तो जीवनपर्यन्त पक्षहोम करे।

अथ समारोपः

अयं ते योनिरित्यस्य विश्वामित्रोऽग्निरनुष्टुप्, अग्निसमारोपे वि०। अनेन मन्त्रेण होमोत्तरमरणीमश्वत्थसमिधं वा प्रताप्याग्निसमारोहं तत्र भावयेत्। होमादिकाले [1]अरणीं निर्मथ्य प्रत्यवरोहेति मन्त्रेण स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठापयेत्। समित्समारोपे श्रोत्रियागारादग्निं प्रतिष्ठाप्य प्रत्यवरोहेति मन्त्रेण तां समिधमग्नावादध्यात्। सूत्रान्तरे आजुह्वान उद्बुध्यस्वेति मन्त्राभ्यां प्रत्यवरोहणम्।

'अयं ते योनिः' इस मंत्र का विश्वामित्र ऋषि, अग्नि देवता, अनुष्टुप् छन्द, अग्नि समारोप में इसका विनियोग है। इस मन्त्र से होम के बाद अरणी को अथवा पीपल की समिधा को तपाकर उसमें अग्नि समारोह की भावना करे। होम आदि काल में अरणी का निर्मन्थन कर 'प्रत्यवरोह' इस मन्त्र से स्थण्डिल में अग्नि की स्थापना करे। समिधा के समारोप में श्रोत्रिय के घर से अग्नि की स्थापना कर 'प्रत्यवरोह' इस मन्त्र से उस समिधा को अग्नि में आधान करे। दूसरे सूत्रों में 'आजुह्वान' और 'उद्बुध्यस्व' इन दो मन्त्रों से प्रत्यवरोहण करे।

प्रत्यहं समारोपादिद्वादशदिनमेव[2]। पर्वणि सायंतनहोमकालपर्यन्तं प्रत्यवरोहणाभावेऽग्निनाश इति केचित्। समारोपप्रत्यवरोहौ यजमानकर्तृकावेव। तेन समारोपोत्तरं पर्वण्याशौचप्राप्तौ प्रत्यवरोहासंभवादग्निनाशः। इदमापस्तम्बादिपरम्। आश्वलायनानां तु द्वादशरात्रमध्ये पर्वणि प्रत्यवरोहाभावेऽपि नाग्निनाशः, किन्तु द्वादशरात्रोत्तरं होमलोप एवेत्यपरे। राजक्रान्त्यादिसंकटे ऋत्विग्द्वारापि समारोपादि।

प्रतिदिन समारोप आदि बारह दिन ही करे। पर्व में सायंकाल होमकालपर्यन्त प्रत्यवरोहण न होने पर अग्नि का नाश होता है, ऐसा कोई कहते हैं। समारोप और प्रत्यवरोह का कर्ता यज-

---

१. जिस यन्त्र-विशेष के घर्षण से अग्नि का प्रकटन किया जाता है उसका नाम 'अरणि' या 'अरणी' है। अग्नि-प्रकटन के लिये अरणि-उत्तरारणि-चात्र-ओविली-प्रमन्थ-नेत्र इन छ यन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। इनका लक्षणादि आगे 'अथ अग्निनाशकानि' शीर्षक की सुधा-विवृति में देखें।

मान ही होता है। इससे समारोप के अनन्तर पर्व में आशौच प्राप्त होने पर प्रत्यवरोह के सम्भव न होने से अग्नि का नाश होता है, यह आपस्तम्ब आदि के लिये है। आश्वलायनों का तो बारह दिन के बीच में पर्व में प्रत्यवरोह न होने पर भी अग्नि का नाश होता है। दूसरे कहते हैं कि बारह दिन के बाद होम का लोप होता है। राज्यक्रान्ति आदि संकट में ऋत्विक् के द्वारा भी समारोप आदि होता है।

केचिदृत्विगाद्यभावेनानन्यगतिकत्वे आशौचपातात्पूर्वं पर्वहोमसहितानपि होमानपकृष्य कृत्वा न कृत्वा वा समारोपं कृत्वा सूतकान्ते प्रत्यवरोहः कार्यो नात्र पर्वोल्लङ्घनदोष इत्याहुः।

कुछ लोग ऋत्विक् आदि के न होने से अनन्यगति की स्थिति में आशौच आने के पहिले पर्वहोम के सहित भी होमों का अपकर्ष करे अथवा न करे समारोप करके आशौच के बाद प्रत्यवरोह करना चाहिये। इसमें पर्व के उल्लंघन का दोष नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

अथ दम्पत्योः प्रवासे विधिः

समारोपोत्तरं दम्पत्योः प्रवासे सीमानद्योरुल्लङ्घनकाले उभाभ्यामन्यतरेण वा समिदाद्यन्वारम्भः कार्यः, अन्यथाऽग्निनाशः।

समारोप के अनन्तर पति-पत्नी के परदेश जाने के समय सीमा तथा नदी के उल्लंघन के समय में दोनों के द्वारा अथवा दो में से किसी एक के द्वारा समिधा का अन्वारम्भ करना चाहिये नहीं तो अग्नि का नाश होता है।

यजमानस्यैव प्रवासे कृत्यम्—अभयं वोभयं मेस्त्विति अग्निमुपस्थाय प्रवासं गच्छेत्। तत आगत्य गृहामाबिभीतो पवः स्वस्त्येवास्मासु च प्रजायध्वं मा च वो गोपतीरिषदिति मन्त्रेण स्वगृहं निरीक्ष्य गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये वीरघ्नो वीवतः सुवीरान्। इरांवहंतो घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमनाः संविशामीति गृहं प्रविश्य शिवं शग्मं शंयोः शंयोरिति पुनस्त्रिरनुवीक्ष्य नित्यहोमान्ते अभयं वोभयं मेस्त्विवत्यग्निमुपतिष्ठेत्।

यजमान ही के परदेश जाने पर यह कर्तव्य है—'अभयं वोभयं मेस्तु' इस मन्त्र से अग्नि का उपस्थान कर परदेश जाय। वहाँ से आकर 'गृहामाबिभीतो पवः' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से अपने घर का निरीक्षण कर 'गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये०' इत्यादि मूलोक्तमन्त्र से घर में प्रवेश कर 'शिव शग्मं शंयोः' इत्यादि मन्त्र से पुनः तीन बार देखकर नित्य होम के अन्त में 'अभयं वोभयं मेस्तु' इत्यादि मन्त्र से अग्नि का उपस्थान करे।

ज्येष्ठपुत्रशिरः पाणिभ्यां परिगृह्य अङ्गादङ्गात्संभवसीति मन्त्रं जपित्वा मूर्धानं त्रिर्जिघ्रेत्। एवमितरपुत्राणामप्रत्तकन्यानां तूष्णीं जिघ्रेत्। प्रवासादागतं प्रतिज्ञातमपि अप्रियं तद्दिने न वदेयुः। प्रोषिते पत्यौ पत्नी स्मार्तहोमौ स्वयं कृत्वा दर्शपूर्णमासस्थालीपाकपिण्डपितृयज्ञान्विप्रेण कारयेत्। अनुगतप्रायश्चित्तादि पत्न्यां रजस्वलायामपि ऋत्विक्कुर्यात्। पुनः संधानं तु पत्यौ प्रोषिते न भवेत्। नैमित्तिका जातेष्टिगृहदाहेष्टयोपि न भवन्ति। प्रायश्चित्तेष्टेः पूर्णाहुतिः।

ज्येष्ठ पुत्र के सिर को दोनों हाथों से पकड़ कर 'अंगादगात् संभवसि' इस मन्त्र को जप कर सिर को तीन बार सूंघे। इसी प्रकार दूसरे पुत्रों और अविवाहिता कन्याओं का चुपचाप सूंघे। प्रवास से आये हुए के प्रति जानी हुई भी अप्रिय बात उस दिन न कहे। पति के परदेश जाने पर पत्नी स्मार्त दोनों होमों को स्वयं करके दर्शपूर्णमास स्थालीपाक और पिण्डपितृयज्ञ को ब्राह्मण से करावे। अनुगत प्रायश्चित्त आदि पत्नी के रजस्वला अवस्था में भी ऋत्विक् करे। पुनःसंधान तो पति के प्रवास में नहीं होता। नैमित्तिक जातेष्टि और गृहदाहेष्टि भी नहीं होती। प्रायश्चित्तेष्टि की पूर्णाहुति होती है।

अथाग्न्यनुगमने प्रायश्चित्तादिविचारः

अथौपासनाग्न्यनुगमने 'गृह्याग्नेरनुगमप्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्य आयतनस्थं भस्म दूरीकृत्योपलेपादि कृत्वाग्निं प्रतिष्ठाप्याज्यं संस्कृत्य अयाश्चेति मन्त्रेणैकामाज्याहुतिं सर्वप्रायश्चित्तं च हुत्वा दम्पत्योरन्यतरेणापरहोमकालपर्यन्तमुपोषितेन स्थातव्यम्। एवं द्वादशरात्रपर्यन्तम्। केचिदुपवासमयाश्चेति होमं वा कुर्यात्, न द्वयमित्याहुः। एतद्वृत्तिकारमतम्।

औपासनाग्निके अनुगमन में 'गृह्याग्नि के अनुगमन का प्रायश्चित्त करूंगा' ऐसा संकल्प कर आयतन में स्थित भस्म को हटाकर उसका उपलेपन आदि करके स्थापना और घृत का संस्कार करके 'अयाश्च' इस मन्त्र से एक घृत की आहुति और सर्वप्रायश्चित्त का हवन कर पति-पत्नी में से कोई एक दूसरे होमकालपर्यन्त उपवास रहें। इसी प्रकार बारह दिन तक रहें। कोई कहते हैं—उपवास अथवा 'अयाश्च' इस मन्त्र से होम करें, दोनों नहीं करें। यह वृत्तिकार का मत है।

केचित्तु यद्यग्न्यनुगमने होमकालद्वयातिक्रमस्तदा नष्टाग्निसंधानम्। तत्र त्रिरात्रमग्निनाशे प्राणायामशतम्। तत आविंशतिरात्रमेकदिनोपवासः[1]। तत आमासद्वयं त्रिरात्रोपवासः। तत ऊर्ध्वं संवत्सरपर्यन्तं प्राजापत्यकृच्छ्रम्। ततः प्रतिवर्षं कृच्छ्रावृत्तिः। एवं प्रायश्चित्तं कृत्वा आधानोक्तसंभारान्निधाय 'नष्टस्य गृह्याग्नेः प्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्यायाश्चेत्याज्येन स्रुवाहुतिपत्न्युपवासादि पूर्ववत्। लाजहोमादिकं वा। एवं द्वादशरात्रपर्यन्तमग्न्युत्पत्तिरित्याहुः।

कुछ लोग तो यदि अग्नि के अनुगमन में दोनों होमकाल का अतिक्रमण होता हो तब नष्ट अग्नि का संधान करे। उसमें तीन दिन अग्नि का नाश होने पर सौ प्राणायाम करे। उसके बाद बीस दिन तक अग्नि का नाश होने पर एक दिन उपवास करे। तदनन्तर दो महीने तक तीन दिन का उपवास करे। इसके बाद वर्षपर्यन्त अग्निनाश की स्थिति में प्राजापत्य कृच्छ्र करे। तदनन्तर प्रतिवर्ष कृच्छ्र की आवृत्ति करे। इस प्रकार प्रायश्चित्त करके आधान में कहे हुए सामग्री को रख कर 'नष्ट हुई अग्नि का प्रायश्चित्त करूंगा' ऐसा संकल्प कर 'अयाश्च' इस मन्त्र से घी से स्रुवा के द्वारा आहुति, पत्नी का उपवास आदि पहिले के समान है। अथवा लाजाहोम आदि करे। इस प्रकार बारह दिन तक करने से अग्नि की उत्पत्ति होती है, ऐसा कहते हैं।

द्वादशदिनोत्तरं विच्छेदप्रायश्चित्तं होमादिद्रव्यदानं च कृत्वा विवाहहोमादिविधिना यथास्वस्वगृह्यं पुनःसंधानम्। अथान्वाहिताग्नेः प्राग् यागादनुगतौ अयाश्चेति पूर्ववदग्निमुत्पाद्य पुनरन्वाधानं कृत्वा भूर्भुवः स्वरित्युपस्थाय सर्व-

१. स्मृत्यर्थसारे विशेषः—'द्वादशाहातिक्रमे त्र्यहमुपवासः, मासातिक्रमे द्वादशाहमुपवासः, संवत्सरातिक्रमे मासमुपवासः, पयोभक्षणं वा' इति।

प्रायश्चित्तं हुत्वा स्थालीपाकं कुर्यात्। अन्वाधानोत्तरं प्रयाणप्राप्तौ तुभ्यं ता अंगिरस्तम इत्याज्याहुतिमग्नये हुत्वा सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वाग्निं समारोप्य गच्छेत्।

बारह दिन के बाद विच्छेद-प्रायश्चित्त और होम आदि के द्रव्य का दान करके विवाह होम आदि की विधि से अपने गृह्य के अनुसार अग्नि का पुनः सन्धान करे। अन्वाहिताग्नि का याग से पहिले 'अयाश्च' इस मन्त्र से पहिले के समान अग्नि का उत्पादन और पुनः अन्वाधान करके 'भूर्भुवः स्वः' इस व्याहृति से उपस्थान करके सर्वप्रायश्चित्त का होम कर स्थालीपाक करे। अन्वाधान के बाद कहीं जाना पड़े तो 'तुभ्यं ता अंगिरस्तमः' इस मन्त्र से अग्नि के लिये घी की आहुति और सर्वप्रायश्चित्त होम के अनन्तर अग्नि का समारोप करके जाये।

अथ पुनराधेयप्रायश्चित्तादिविचारः

समारूढसमिन्नाशे पुनराधेयमिष्यते। उपलेपादिकं कृत्वा नष्टाग्निप्रायश्चित्तं पुनराधेयं च संकल्प्य आधानोक्तसंभारान्निधायाग्निं प्रतिष्ठाप्य अयाश्चेति स्रुवाज्याहुतिं सर्वप्रायश्चित्तं च जुहुयादिति पुनराधेयम्। स्वाग्निभ्रमेणान्याग्नौ स्वयं यजने स्वाग्नावन्ययजने वा 'पथिकृत्स्थालीपाकं करिष्ये' इति संकल्प्य चरुः कार्योऽथवा 'पथिकृत्स्थाने पूर्णाहुतिं होष्यामि' इति संकल्प्य स्रुचि द्वादशवारं चतुर्वारं वाज्यं गृहीत्वा अग्नये पथिकृते स्वाहेति जुहुयात्।

अग्नि में दी हुई समिधा के नष्ट होने को पुनराधेय कहते हैं। स्थान का उपलेपन कर नष्टाग्नि का प्रायश्चित्त और पुनराधेय का संकल्प करके आधान में कहे हुए सामग्री को रख कर अग्नि की स्थापना कर 'अयाश्च' इत्यादि मन्त्र से स्रुवा के द्वारा घी की आहुति और सर्वप्रायश्चित्त का होम करे, यह पुनराधेय है। अपनी अग्नि के भ्रम से दूसरे की अग्नि में स्वयं यज्ञ करने अथवा अपनी अग्निमें दूसरे के द्वारा यज्ञ करने पर 'पथिकृत् स्थालीपाक करूंगा' ऐसा संकल्प कर चरु बनावे अथवा 'पथिकृत् के स्थान में पूर्णाहुति का होम करूंगा' ऐसा संकल्प कर स्रुवा में बारह बार या चार बार घृत लेकर 'अग्नये पथिकृते स्वाहा' इस मन्त्र से होम करे।

विवाहोत्तरमाधानोत्तरं वा पौर्णमास्यां स्थालीपाकारम्भः। प्रतिपदि यागोऽतिक्रान्तश्चेदागामिपर्वपूर्वतिथिषु चतुर्थीनवमीचतुर्दशीद्वितीयापञ्चम्यष्टमीर्विहाय कार्यः। नात्र कालातिक्रमप्रायश्चित्तम्। अन्वाधानोत्तरं प्रतिपदीष्ट्यकरणे तृतीयादितिथिषु सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वा पुनरन्वाधाय यागः। द्वितीयपर्वप्राप्तावतीतेष्टिः पथिकृच्चरुपूर्वकं पर्वणि कार्या।

विवाह या आधान के बाद पूर्णिमा में स्थालीपाक का आरंभ होता है। प्रतिपदा का यज्ञ यदि बीत जाय तो आने वाले पर्व की पहिली तिथियों में चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, द्वितीया, पंचमी तथा अष्टमी को छोड़ कर करे। इसमें समयातिक्रमण का प्रायश्चित्त नहीं होता। अन्वाधान के बाद प्रतिपदा में इष्टि नहीं करने पर तृतीया आदि तिथियों में सर्वप्रायश्चित्त का होम कर पुनः अन्वाधान करके याग करे। दूसरे पर्व की प्राप्ति होने पर अतीतेष्टि और पथिकृत् को चरुपूर्वक पर्व में करे।

तत्राप्यतिक्रमे द्वितीयप्रतिपदि लुप्तेष्टेः पादकृच्छ्रं कृत्वा प्राप्तकालयागः। द्वितीययागस्यापि आगामितिथिषु लोपे तत्पर्वणि पादकृच्छ्रपथिकृत्पूर्वकं द्वितीययागः।

इस समय के भी बीतने पर दूसरी प्रतिपदा में लुप्तेष्टि के लिये पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करके प्राप्त काल में याग करे। दूसरे याग का भी आने वाली तिथि में न होने पर वह पर्व में पादकृच्छ्र और पथिकृत् का होम कर दूसरा याग करे।

तत्राप्यतिक्रमे तृतीयप्रतिपदि अर्धकृच्छ्रं यागद्वयस्य कृत्वा प्राप्तयागः। तृतीययागस्योक्ततिथावर्धकृच्छ्रपथिकृत्पूर्वकं चतुर्थपर्वणि वा अकरणे अग्निनाशात्पुनराधेयम्। अत्र पुनराधेयस्वरूपं सम्भारनिधानपूर्वकमयाश्चेति स्रुवाज्याहुतिरित्यन्वारूढसमिन्नाशस्थले उक्तमेव। पुनराधानं तु विवाहहोमादिरूपं पुनराधेयाद्भिन्नम्। आयतनाद्बहिः शम्यापरासात्प्राग् वह्निपाते इदं त एकमित्यृचा तमायतने प्रक्षिप्य सर्वप्रायश्चित्तं जुहुयात्।

उसके भी अतिक्रमण होने पर तीसरी प्रतिपदा में दोनों यागों के लिये अर्धकृच्छ्र करके समय पर याग करे। तृतीय याग की कही हुई तिथि में अर्धकृच्छ्र और पथिकृत् करके या चौथे पर्व के न करने पर अग्नि के नाश होने में पुनराधेय करे। इसमें पुनराधेय का स्वरूप उसकी सामग्री का रखना 'अयाश्च' इस मन्त्र से स्रुवा के द्वारा घृत की आहुति इत्यादि समिधा के नाश-स्थल में कहा ही है। पुनराधान तो पुनराधेय से भिन्न विवाह होम आदि रूप है। घर से बाहर शम्यापरास से पहिले अग्निपात होने पर 'इदं त एकं' इस ऋचा से उसको घर में फेंक कर सर्वप्रायश्चित्त का होम करे।

अथ पर्वणि व्रतलोपेऽश्रुपाते च विधिः

पर्वणि व्रतलोपेऽग्नये व्रतपतये चरुः पूर्णाहुतिर्वा। पर्वणि दम्पत्योरन्यतराश्रुपातेऽग्नये व्रतभृते चरुः पूर्णाहुतिर्वा। पवित्रनाशेऽग्नये पवित्रवते चरुः पूर्णाहुतिर्वा। अन्वाधानेष्टिमध्ये चन्द्रग्रहणे अत्राह गोरिति चन्द्रायाज्यं हुत्वा नवो नवो इत्युपस्थायेध्माधानादियागः। सूर्योपरागे उद्वयमिति सूर्यायाज्यं हुत्वा चित्रं देवानामित्युपस्थानम्। अन्वाधानोत्तरं स्वप्ने रेतोविसर्गे इमं मे वरुण तत्त्वायामीति वरुणाय द्वे आज्याहुती रविपूजा, पुनर्मामैति सौत्रमन्त्रयोर्जपश्च।

पर्व में व्रत का लोप होने पर अग्नि व्रतपति के लिये चरु अथवा पूर्णाहुति दे। पर्व में पति-पत्नी में से किसी एक के आंसू गिरने पर अग्नि व्रतभृत् के लिये चरु अथवा पूर्णाहुति दे। पवित्र के नष्ट होने पर पवित्र के लिये चरु या पूर्णाहुति करे। अन्वाधानेष्टि के मध्य में चन्द्रग्रहण पड़ने पर इसमें 'अत्राह गोः' इस से चन्द्रमा को घृत की आहुति देकर 'नवो नवो' इस मन्त्र से उपस्थान कर इध्माधानादि याग करे। सूर्यग्रहण में 'उद्वयं' इस मन्त्र से सूर्य के लिये घृत का होम करके 'चित्रं देवानां' इस मन्त्र से उपस्थान करे। अन्वाधान के बाद स्वप्नदोष होने पर 'इमं मे वरुण' 'तत्त्वायामि' इनसे वरुण को दो घी की आहुति, रविपूजा और 'पुनर्मामैति' दो सौत्र-मन्त्रों का जप करे।

बुद्ध्या रेतोविसर्गेऽग्निव्रतपतिचरुः। अन्यदा स्वप्ने रेतोविसर्गे सूर्यनमस्कारत्रयम्। इध्माधानोत्तरं हविर्दोषे दुष्टस्थाने आज्यं प्रतिनिधिं कृत्वा यागं समाप्य दुष्टं जले त्यक्त्वान्वाधानादिस्तद्देवताकः पुनर्यागः। इध्माधानात्पूर्वं हविर्दोषे तद्देवताकं हविः पुनरुत्पाद्य यागः। स्विष्टकृदर्थहविर्दोषे आज्येन स्विष्टकृतं कुर्यात्। अङ्गहविर्दोषे तदाज्यं पुनरुत्पादयेत्।

जान बूझकर वीर्यपात करने पर व्रतपति अग्नि को चरु दे। अन्य समय स्वप्न में वीर्यपात होने पर सूर्य को तीन नमस्कार करे। अग्नि में लकड़ी डालने पर हवि में दोष होने पर दुष्ट स्थान में घी को प्रतिनिधि करके याग को समाप्त कर दोषयुक्त हवि को जल में छोड़कर उस देवता का अन्वाधानादि पुनः याग करे। लकड़ी छोड़ने के पहले हविष्य में दोष होने पर उस देवता की हवि को फिर बनाकर याग करे। स्विष्टकृत् के लिये हविष्य में दोष होने पर घी से स्विष्टकृत् करे। अङ्गहवि में दोष होने पर दूसरा घी लेकर करे।

हविर्दोषास्तु—प्रच्युतनखकेशैः कीटै रक्तास्थिविण्मूत्रश्लेष्माद्यैर्बीभत्सितैश्च मार्जारनकुलकाकैर्मुखजलबिन्दुघर्मनासिकामलाश्रुकर्णमलैः सूतिकारजस्वलाचाण्डालादिदृष्टिभिश्च संसर्गाः। देवताहविर्मन्त्रादिविपर्यासे यद्वो देवा इति मरुद्भ्य आज्यहोमः। कृत्स्नहविर्दाहे तद्धविरुत्पाद्य स एव यागो न पुनर्यागः।

हविष्य के दोष तो—गिरे हुए नख, केश, कीड़े, खून, हड्डी, विष्ठा, मूत्र और कफ आदि से, तथा बीभत्स बिलार, नेवला, कौआ, मुख के जलबिन्दु, पसीना, नाक के मल, आँसू, कान के मल से, एवं सूतिका रजस्वला और चाण्डाल आदि की दृष्टि के संसर्ग से होता है। देवता, हवि और मन्त्रों के उलटफेर से दोष हो तो 'यद्वो देवा' इस मन्त्र से मरुतों को घृत की आहुति दे। सम्पूर्ण हवि के जल जाने पर उस हवि को बनाकर उसी का याग करे, पुनर्याग नहीं करे।

अथ निमित्तविशेषेण प्रायश्चित्तानि

पूर्वादिचतुर्दिक्षु चरूत्सेके अग्नये यमाय वरुणाय सोमायेति क्रमेण हुत्वा सर्वत उत्सेके चतुर्भ्योऽपि हुत्वा कोणेषूत्सेके व्याहृतीर्हुत्वा चरुमाप्यायस्वसन्ते पयांसीति मन्त्राभ्यामाज्येनाप्याययति, अग्नौ मिन्दाहुती च द्वे इति केचित्। स्वगृह्याग्नेरन्यगृह्याग्निना संसर्गे उभौ यजमानौ युगपत्तमग्निं समारोप्योभौ प्रत्यवरोहणं कृत्वाऽग्नये विविचये चरुं कुर्याताम्।

पूर्व आदि चारों दिशाओं में चरु के उत्सेक होने पर अग्नि, यम, वरुण और सोम को क्रम से आहुति देकर सर्वत्र उत्सेक होने पर चारों देवताओं के लिये होम करके कोने में उत्सेक होने पर व्याहृति से होम करके चरु को 'आप्यायस्व' 'सन्ते पयांसि' इन दो मन्त्रों से घृत से पूर्ण करे और अग्नि में दो मिन्दाहुति दे, ऐसा कोई कहते हैं। अपने गृह्याग्नि से अन्य की गृह्याग्नि के सम्पर्क होने पर दोनों यजमान एक काल में ही अग्नि का समारोप कर दोनों प्रत्यवरोहण करके विविचि नामक अग्नि के लिये चरु का होम करे।

शवाग्निना संसर्गेऽग्नये शुचये चरुः। पचनाग्निना संसर्गे संवर्गायाग्नये चरुः। सर्वत्र संसर्गे समारोपप्रत्यवरोहणोत्तरं चरुः। स्वयमग्निप्रज्वलने उद्दीप्यस्व जातवेदो० मानो हिꣳसीर्जातवेदो गामश्वं पुरुषं जगत्। अबिभ्रदग्न आगहि श्रिया मा परिपातयेति द्वाभ्यां द्वे समिधावग्नये जुहुयात्।

मुर्दे की अग्नि से संसर्ग होने पर 'शुचि' अग्नि के लिये चरु होम करे। भोजनवाली अग्नि से संसर्ग होने पर संवर्ग नामक अग्नि के लिये चरु दे। सर्वत्र संसर्ग होने पर समारोप और प्रत्यवरोहण करने के बाद चरु से होम करे। स्वयं अग्नि के प्रज्वलित होने पर 'उद्दीप्यस्व जातवेदो०' 'मानो हिꣳसीर्जातवेदो०' इन दो मन्त्रों से दो समिधाओं का अग्नि में होम करे।

सर्वत्र विध्यपराधे साङ्गतार्थं सर्वप्रायश्चित्तम् । गृहदाहेऽग्नये क्षामवते चरुः । एवमन्यान्यपि प्रायश्चित्तानि बह्वृचब्राह्मणादिषूक्तानि ज्ञेयानि । यत्र तु प्रायश्चित्तविशेषो नोक्तस्तत्र सर्वप्रायश्चित्तम् । भूर्भुवःस्वरित्यनेनाज्याहुतेः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञा ।

सब जगह विधि के अपराध में सांगता के लिये सर्वप्रायश्चित्त करे । घर जलने पर क्षामवत् अग्नि के लिये चरु होम करे । इसी प्रकार बह्वृच आदि ब्राह्मणों में कहे हुए अन्य प्रायश्चित्तों को जानना चाहिये । जहाँ प्रायश्चित्त विशेष नहीं कहा है वहाँ सर्वप्रायश्चित्त करे । भूर्भुवः स्वः इस व्याहृति से घृत की आहुति का नाम सर्वप्रायश्चित्त है ।

अथाग्न्युपघातनिमित्तानि

श्वशूकररासभकाकसृगालमर्कटशूद्रान्त्यजपतितकुणपसूतिकारजस्वलाभिः पुरीषमूत्ररेतोऽश्रुपूयश्लेष्मशोणिताऽस्थिमांसादिभिरन्यैर्वा जुगुप्सितैरारोपितारणिस्पर्शेऽग्नेः स्पर्शे वाऽग्निनाशः । तत्रारणिगते वह्नौ नष्टे पुनराधेयमग्नेः स्पर्शे 'पुनराधानम् । यद्वा—ओं पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथयज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा । आदित्यरुद्रवसुब्रह्मभ्य इदं न ममेति समिद्धोमः स्रुवेणाज्याहुतिर्वा । अग्नौ जलोपघातेऽपीदमेव । स्वस्य जीविनो मृतशब्दश्रवणेऽग्नये सुरभिमते चरुः पूर्णाहुतिर्वा । प्रधानाहुतीनां स्विष्टकृता संसर्गे सर्वप्रायश्चित्तम् । पिण्डपितृयज्ञे अतिप्रणीतनाशे तत्राहोमपक्षे सर्वप्रायश्चित्तम्, होमपक्षे पुनः प्रणयनमपि ।

कुत्ता-सूअर-गदहा-कौआ-सियार-बानर-शूद्र-अन्त्यज-पतित-कुणप-सूतिका रजस्वला से, विष्ठा-मूत्र-वीर्य-आँसू-पीब-कफ-रक्त-हड्डी-मांस आदि से, अथवा अन्य निन्दित वस्तुओं से, आरोपित अरणी के स्पर्श या अग्नि के स्पर्श में अग्नि का नाश होता है । वहां अरणिगत अग्नि के नष्ट होने पर पुनराधेय करे और अग्नि के स्पर्श में पुनराधान करे । अथवा 'ॐ पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः' इत्यादि मन्त्र से आदित्य, रुद्र, वसु और ब्रह्मा के लिये समिधा से होम करे अथवा स्रुवा से घृत की आहुति दे । जल से अग्नि के नष्ट होने पर भी यही करे । जीते हुए अपने को मृत शब्द सुनने पर सुरभिमान् अग्नि के लिये चरु अथवा पूर्णाहुति करे । प्रधान आहुतियों का स्विष्टकृत् आहुति के संसर्ग होने पर सर्वप्रायश्चित्त करे । पिण्डपितृयज्ञ में अतिप्रणीत अग्नि के नाश होने पर उसमें होम न करने के पक्ष में सर्वप्रायश्चित्त करे और होम पक्ष में पुनः प्रणयन भी ।

---

१. कारिकायाम्—'श्वशूकररासभकाकशृगालैः कुक्कुटमर्कटशूद्रैः । अन्त्यजपातकिभिः कुणपैर्वा सूतकयाऽपि रजस्वलया वा ॥ रेतोविण्मूत्रपुरीषैर्वा पूयाश्रुश्लेष्मशोणितैः । दुष्टास्थिमांसमज्जाभिरन्यैर्वापि जुगुप्सितैः ॥ आरोपितारणिस्पर्शे कृतेऽग्नौ स्पर्शनेऽपि वा । आत्मारूढेषु मज्जेद्वा वदेद्वा पतितादिभिः ॥ अथवा योषितं गच्छेदनृतौ काममोहितः । वदन्त्येषु निमित्तेषु केचिदग्निविनाशनम् ॥ तत्रारणिगते वह्नौ नष्टे स्यात्पुनराहितिः । इतरेषु निमित्तेष्वग्न्याधेयं परिचक्षते ॥ यद्वा सर्वोपघातेषु पुनस्त्वेति समिन्धनम् ।' इत्यादयो गृह्यसूत्रभाष्ये द्रष्टव्याः, इति ।

आपस्तम्बानां प्रायश्चित्तान्ते प्रणयनमेव नित्यम्। पिण्डपितृयज्ञलोपे वैश्वानरश्चरुः सप्तहोत्राख्यमहाहविर्होतेत्यादिमन्त्रैः पूर्णाहुतिर्वा। श्रवणाकर्मसर्पबल्याश्वयुज्याग्रयणप्रत्यवरोहणकर्मणामन्यतमलोपे प्राजापत्यकृच्छ्रम्। अकृताग्रयणस्य नवान्नभक्षणेऽग्नये वैश्वानराय चरुः। अष्टकालोपे उपवासः। पूर्वेद्युःश्राद्धलोपेऽप्युपवासः, उपवासप्रत्याम्नाय एकविप्रभोजनं वा। अन्वष्टक्यालोपे एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिरिति ऋचः शतं जपः। सर्वत्र चरुस्थाने पूर्णाहुतिः।

आपस्तम्बियों को प्रायश्चित्त के अन्त में प्रणयन ही नित्य है। पिण्डपितृयज्ञ के लोप होने पर वैश्वानर चरु सप्तहोत्राख्य महाहवि की या 'होता' इत्यादि मन्त्रों से पूर्णाहुति दे। श्रवणाकर्म, सर्पबलि, आश्वयुजी, आग्रयण और प्रत्यवरोहण कर्मों में किसी एक के न करने पर प्राजापत्यकृच्छ्र करे। जिसने आग्रयण नहीं किया है उसके नवान्न-भक्षण में अग्नि के लिये वैश्वानर चरु दे। अष्टका न करने पर उपवास करे। पूर्वेद्युःश्राद्ध न करने पर भी उपवास या उपवास के बदले में एक ब्राह्मण को भोजन करावे। अन्वष्टका के न करने पर 'एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिः' इस ऋचा का सौ बार जप करे। सब जगह चरु के स्थान में पूर्णाहुति करे।

दर्शपूर्णमासानारम्भे आलस्यादिना पूर्णाहुतिकरणे तु यागपर्याप्तं व्रीह्याज्यं देयमिति गृह्याग्निसागरे। निषिद्धतिथ्यादौ स्वभार्यागमने अयाज्ययाजने लशुनादिगणिकान्नाद्यभोज्यभोजने निषिद्धप्रतिग्रहे पुनर्मामैत्विन्द्रियं० इमे ये धिष्ण्यास० इति द्वाभ्यामाज्यहोमः समिद्धोमो वा जपो वा।

दर्शपूर्णमास के आरंभ न करने पर आलस्य आदि से पूर्णाहुति करने पर तो याग के लिये धान और घी देना चाहिये, ऐसा गृह्याग्निसागर में कहा है। निषिद्ध तिथि आदि में अपनी स्त्री से संगम करने में, जिसको यज्ञ नहीं कराना चाहिये उसका यज्ञ कराने में, लहसुन आदि-वेश्या का अन्न आदि-अभोज्य भोजन करने में और निषिद्ध के प्रतिग्रह में 'पुनर्मामैत्विन्द्रियं०' 'इमे ये धिष्ण्यास०' इन दो मन्त्रों से घी अथवा समिधा से होम या जप करे।

गृहोपरि[1] कपोतोपवेशने देवाः कपोत इति पञ्चर्चसूक्तजपः प्रत्यृचमाज्यहोमो वा पाकयज्ञतन्त्रेण। दुःस्वप्नदर्शने यो मे राजन्युज्यो वेति ऋचा सूर्योपस्थानम्। आतुरत्वनाशाय यक्ष्मरोगनाशाय वा मुञ्चामि त्वेति सूक्तेन प्रत्यृचं चरोर्होमः। यक्ष्मनाशायेदं न ममेति पञ्चसु त्यागः। षष्ठं स्विष्टकृदिति। प्रोक्षणीप्रणीता-

---

१. घर के ऊपर गृध्रादि के बैठने का शान्तिग्रन्थों में फल यों है—'गृध्रः कङ्कः कपोतश्च उलूकः श्येन एव च। चिल्लश्च चर्मचिल्लश्च भासः पाण्डर एव च॥ गृहे यस्य पतन्त्येते गेहं तस्य विपद्यते। पक्षान्मासात्तथा वर्षान्मृत्युः स्याद् गृहमेधिनः॥' लोक में गृध्र और उलूक के बैठने पर दोष मानते हैं इससे भिन्न पक्षियों के बैठने पर दोष नहीं मानते।

गृह्यसूत्र का गदाधरभाष्य—'एतदेव ग्रहोत्पातनिमित्तेषूलूकः कङ्कः कपोतो गृध्रः श्येनो वा गृहं प्रविशेत् स्तम्भं प्ररोहेद् वल्मीकं मधुजालं वा भवेदुदकुम्भप्रज्वलनासनयानभङ्गेषु गृहगोधिकाकृकलासशरीरसर्पणे छत्रध्वजविनाशे सार्पे नैर्ऋते गण्डयोगेष्वन्येष्वप्युत्पातेषु भूकम्पोल्कापातकाकसर्पसङ्गमप्रेक्षणादिष्वेतदेव प्रायश्चित्तं ग्रहशान्त्युक्तेन विधिना कृत्वाऽऽचार्याय वरं दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वस्ति वाच्याशिषः प्रतिगृह्य शान्तिर्भवति।' इति।

स्थजलानां बिन्दुपाते स्रावे वा आपोहिष्ठेति त्र्यृचेन पुनः पूरणं, ततं मे अपस्त-दुतायते इत्यृचाऽऽज्याहुतिः ।

घर के ऊपर कबूतर बैठने पर 'देवाः कपोत' इस पांच ऋचा वाले सूक्त का जप अथवा प्रत्येक ऋचा से पाकयज्ञ तन्त्र से घृत का होम करे। दुःस्वप्न देखने में 'यो मे राजन्युज्यो वा' इस ऋचा से सूर्योपस्थान करे। रोग के नाश के लिये या यक्ष्मरोग के नाश के लिये 'मुञ्चामि त्वा' इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा से चरु का होम करे। 'यक्ष्मनाशाय इदं न मम' यह कहकर पाँच आहुति का त्याग करे। छठा स्विष्टकृत् करे। प्रोक्षणी और प्रणीता के जल के बिन्दु गिरने पर या चूने पर 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से पुनः पूर्ण करे और 'ततं मे अपस्तदुतायते' इस ऋचा से घृत की आहुति दे।

इध्माधानलोपे तस्याज्यभागोत्तरं स्मरणे विपर्यासप्रायश्चित्तं कृत्वेध्माधानं च कृत्वा प्रधानयागः। प्रधानयागोत्तरं स्मरणेऽग्निसमिन्धनरूपद्वारस्याभावाल्लोप एवेति प्रायश्चित्तेनैव सिद्धिः। अन्याङ्गेष्वप्येवमूह्यम्।

समिदाधान न करने पर उसके आज्यभाग के बाद स्मरण होने पर विपर्यास प्रायश्चित्त और समिदाधान करके प्रधानयाग करे। प्रधानयाग के बाद स्मरण होने पर अग्निसमिन्धनरूप द्वार के अभाव से लोप ही है इसलिये इसकी सिद्धि प्रायश्चित्त ही से होगी। अन्य अंगों में भी ऐसी ही कल्पना कर लेनी चाहिये।

अथाग्निनाशकानि

दम्पत्योरन्यतरोऽग्निसमीपे उदयास्तमयकाले वसेत्। उभौ दम्पती गृहसीमां ग्रामसीमां वा नदीं वोल्लङ्घ्य होमकाले बहिर्वसेतां तदा पुनराधानम्। अग्नीनामजस्रहरणे शम्यापरासात्प्रागुच्छ्वासेऽग्निनाशः। कर्माहरणेऽग्नीनां नानुच्छ्वासादि चोद्यते। आत्मसमारोपणपक्षेऽप्सु मज्जने मैथुने शूद्रादिस्पर्शनेऽग्निनाशः। पत्न्यनेकत्वेऽपि एकस्यामपि होमकाले गृहसीम्नोर्बहिर्गतायामग्निनाशः।

पति-पत्नी में से कोई एक उदय और अस्त के समय में अग्नि के समीप में रहे। दोनों पति-पत्नी गृह की सीमा या ग्राम की सीमा या नदी का उल्लंघन कर होमकाल में बाहर निवास करें तब पुनराधान करें। अग्नियों के निरन्तर हरण में शम्यापरास से पहिले उच्छ्वास में अग्नि का नाश होता है। अग्नियों के कर्म के लिये आहरण में अनुच्छ्वास आदि की प्रेरणा नही हैं। आत्म-समारोपण पक्ष में जल में मज्जन करने, मैथुन करने और शूद्र आदि से स्पर्श करने में अग्नि का नाश होता है। अनेक पत्नी के होने पर भी एक पत्नी भी होमकाल में गृह की सीमा से बाहर चली जाय तब अग्नि का नाश होता है।

ज्येष्ठायामग्निसमीपस्थायां कनिष्ठया सह यजमानप्रवासो न दोषाय। दम्पती उभावपि ग्रामगृहयोः सीम्नोर्बहिर्गत्वा होमकालात्पूर्वमागतौ चेन्न दोषः। यजमानेऽग्निसमीपस्थेऽपि होमकाले पत्न्या ग्रामान्तरस्थितौ पुनराधानमाहुः। प्रवासेऽन्यतरेण समारूढाग्नेरन्वारम्भासत्त्वे नदीसीम्नोरुल्लङ्घने पुनराधानम्।

अग्नि के समीप जेठी स्त्री के रहने पर छोटी के साथ यजमान के प्रवास करने में दोष नहीं है। यदि पति पत्नी दोनों ही ग्राम और गृह की सीमा से बाहर जाकर होमकाल से पहिले दोनों आ जायें

तब दोष नहीं है। यजमान के अग्नि के समीप रहने पर भी होमकाल में पत्नी के दूसरे ग्राम में रहने पर पुनराधान करना कहते हैं। प्रवास में पति-पत्नी में से एक समारूढ़ाग्नि के अन्वारम्भ के विना नदी के उल्लंघन करने पर पुनराधान करे।

अग्निं विहाय यजमानस्य शतयोजनगमने वर्षपर्यन्तं स्वयं होमाभावे वाग्निनाशः। तत्र पुनराधानं पवित्रेष्टिर्वा।

विनाग्निभिर्यदा पत्नी नदीमम्बुधिगामिनीम्।
अतिक्रमेत्तदाग्नीनां विनाशः स्यादिति श्रुतिः॥

अग्निसमीपे पत्यौ पत्न्यन्तरे वा पत्न्या नदीलङ्घने दोषो न।

अग्नि को छोड़कर यजमान के चार सौ कोस जाने अथवा एक वर्ष तक स्वयं होम न करने पर अग्नि का नाश होता है। उसमें पुनराधान या पवित्रेष्टि करे। यदि पत्नी अग्नियों के विना समुद्र-गामिनी नदी को पार करे तब अग्नि का नाश होता है, ऐसा श्रुति कहती है। अग्नि के समीप पति अथवा दूसरी पत्नी के रहने पर पत्नी को नदी-लंघन का दोष नहीं होता।

पतिप्रवासे पत्न्या अग्निभिः सह सीमोल्लङ्घनेऽग्निनाशः। एवं पत्युरपि पत्नी-प्रवासे। जलेन हेतुनाग्निरुपशान्तश्चेत्पुनराधेयम्।

तदैव पुनराधेयमग्नावनुगते सति।
असमाधाय चेत्स्वामी सीमामुल्लङ्घ्य गच्छति॥

समारोपणं विना शम्यापरासादूर्ध्वमग्नीनां हरणे नाशः।

रजोदोषे समुत्पन्ने सूतके मृतकेऽपि वा।
प्रवसन्नग्निमान्विप्रः पुनराधानमर्हति॥
बह्वीनामपि चैकस्यामुदक्यायां न तु व्रजेत्।
एकादशे चतुर्थेऽह्नि गन्तुमिच्छेन्निमित्ततः॥
न चाग्निहोमवेलायां प्रवसेन्न च पर्वणि।

पति के प्रवास में पत्नी के अग्नियों के साथ सीमा उल्लंघन करने पर अग्नि का नाश होता है। इसी प्रकार पत्नी के परदेश रहने पर पति का भी। जल के कारण अग्नि यदि शान्त हो जाय तो पुनराधेय करे। समारोपण के विना शम्यापरास से अधिक अग्नियों को ले जाने में अग्नियों का नाश होता है। रजोदोष होने और जन्म मरण के आशौच में भी अग्निमान् ब्राह्मण यदि प्रवास करता है तो पुनराधान के योग्य होता है। बहुत सी पत्नियों में से किसी एक के रजस्वला होने पर प्रवास न करे। किसी निमित्त से ग्यारहवें चौथे दिन जाना चाहे तो अग्निहोम के समय में और पर्व में प्रवास नहीं करे।

होमाद्व्यत्यये दर्शपूर्णमासात्यये पुनराधेयमापस्तम्बादिविषयम्।

पचानाग्नौ पचेदन्नं सूतके मृतकेऽपि वा।
अपक्त्वा तु वसेद्रात्रिं पुनराधानमर्हति॥ इदं कात्यायनादिपरम्।

पत्नीप्रवासे पुनराधानमुक्तं तदेकभार्यस्य। बहुभार्यस्य तु ज्येष्ठाप्रवास एव पुनराधानमिति केचित्। एतेषु निमित्तेषु स्थितानग्नीनुत्सृज्यान्येषामाधा-

नम्। आरादुपकारकाङ्गलोपे कर्मसमाप्तेः प्राक् प्रायश्चित्तं कृत्वा तदङ्गं कुर्यात्। कर्मसमाप्तौ प्रायश्चित्तमेव नाङ्गावृत्तिः। सन्निपत्योपकारकाङ्गस्य द्रव्यसंस्कार-रूपस्य लोपे प्रधानात्प्राक् तत्कार्यम्। प्रधानोत्तरं प्रायश्चित्तमेव नावृत्तिः।

दो होम के नाश होने पर, दर्शपूर्णमास होम के न होने पर, पुनराधेय आपस्तम्ब आदि के लिये है। अन्न बनाने वाली अग्नि में जननाशौच मरणाशौच में भी पकावे। बिना पकाये यदि रात भर कहीं निवास करता है तो पुनराधान के योग्य होता है, यह कात्यायन आदि के लिये है। पत्नी के प्रवास में जो पुनराधान कहा है वह एक पत्नी वाले के लिये है। अनेक पत्नी वाले को तो जेठी स्त्री के प्रवास में ही पुनराधान करे, ऐसा कोई कहते हैं। इन निमित्तों में स्थित अग्नियों का त्याग कर दूसरी अग्नियों का आधान करे। समीप के उपकारक अंग के लोप होने पर कर्मसमाप्ति से पहिले प्रायश्चित्त करके उस अंग को करे। कर्मसमाप्ति में प्रायश्चित्त ही करे, अंग की आवृत्ति न करे। सम्पर्क योग्य द्रव्यसंस्काररूप उपकारक अंग के लोप होने पर प्रधान से पहले उसे करे। प्रधान के बाद प्रायश्चित्त ही होता है, आवृत्ति नहीं होती।

अथ पूर्वं भार्यामृतौ अग्निदाहविचारः

मृतायै पत्न्यै दाहायार्धाग्निं दत्त्वाऽवशिष्टाग्नौ सायंप्रातर्होमस्थालीपाकाग्रयणानि कुर्यात्। कौस्तुभे तु अर्धाग्निदानादिकमुक्त्वा विधुरस्यापूर्वाधानप्रकार-स्तस्य विच्छेदे पुनराधानप्रकारश्चोक्तः। तत्राधानप्रकारोऽवशिष्टाग्नेः प्राग् होमान्नाशपरः। यद्वा श्रौताग्निषु भार्यायै अर्धाग्निदानं कृत्वा उत्सर्गेष्ट्या पूर्वाग्नीन् परित्यज्य पुनराधानं कृत्वाऽग्निहोत्रं कार्यमित्युक्तम्। तद्वदत्रापि उत्सर्गेष्ट्या पूर्वाग्नित्यागोत्तरमपूर्वाधानं कौस्तुभे उक्तमिति योज्यमिति भाति।

मृत पत्नी के दाह के लिये आधी अग्नि देकर बची हुई अग्नि में सायं-प्रातः-होम, स्थाली-पाक और आग्रयण करे। कौस्तुभ में तो आधी अग्नि के देने आदि को कह कर मृतभार्य को अपूर्व आधान प्रकार और उसके विच्छेदों में पुनराधान प्रकार भी कहा है। उसमें आधान का प्रकार बची हुई अग्नि के पहिले होम करने से नाश का बोधक है। अथवा श्रौताग्नि में से पत्नी के लिये आधी अग्नि देकर उत्सर्गेष्टि से पहले अग्नियों का परित्याग कर पुनराधान करके अग्निहोत्र करना चाहिये, ऐसा कहा है। उसी प्रकार यहाँ भी उत्सर्गेष्टि द्वारा प्रथम अग्नियों के त्याग के बाद अपूर्व अग्नि का आधान करे ऐसा कौस्तुभ में कहा है, यह योजना उचित मालूम होती है।

अरणिस्रुवादिपात्राणां लक्षणं वृक्षादिविचारोऽन्यत्र [1]ज्ञेयः। एतेषां विधीनां संकल्पादिविस्तरयुक्ताः प्रयोगा गृह्याग्निसागरे। प्रायश्चित्तादिविधयः प्रायः सर्वसूत्रेषु समाना एव। क्वचित्क्वचित्स्वस्वसूत्रोक्ता विशेषा ऊह्याः। विवाहहोमो

---

१. अग्नि-प्रकटन के लिये अरणि आदि यन्त्रों के परिचयार्थ चित्र एवं उन यन्त्रों का संक्षिप्त विवरण निम्नाङ्कित है—

—इस आकृति की 'अरणि' होती है। इसकी लम्बाई २४ अङ्गुल, चौड़ाई ६ अङ्गुल और ऊंचाई ४ अङ्गुल की होती है। इसके मूल से आठ अंगुल और अग्रभाग से बारह अंगुल के मध्य में गोल बिंदु देकर 'देवयोनि' का स्थान निर्दिष्ट है जिसमें प्रथम बार ही अग्नि प्रकटन के लिये मन्थन करने का नियम है।—

गृहप्रवेशनीयहोमेन समानतन्त्रोऽनुष्ठीयमानो बह्वृचानां पुनराधानम्। अन्येषां विवाहहोमाद्भिन्नमेवेति विशेषः।

अरणी, स्रुवा आदि पात्रों के लक्षण और वृक्ष आदि का विचार अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिये। इन विधियों का संकल्प आदि और विस्तृत प्रयोग गृह्याग्निसागर में है। प्रायश्चित्त आदि विधियां प्रायः सब सूत्रों में समान ही हैं। कहीं कहीं अपने-अपने सूत्रों के कहे विशेष कल्पनीय हैं। गृह प्रवेशनीय होम के समान तन्त्र से किया गया विवाहहोम बह्वृचों का पुनराधान कहलाता है। दूसरों का विवाहहोम से भिन्न ही होता है, इतना विशेष है।
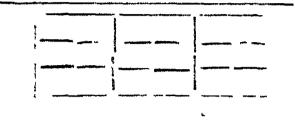
—ऐसी आकृति 'उत्तरारणि' की होती है। इसकी लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई अरणि की ही तरह होती है।

—इसका नाम 'चात्र' है। यह लंबाई में बारह अंगुल का होता है और इसमें नेत्र (रस्सी) लपेट कर मन्थन किया जाता है। इसमें यहां रस्सी लपेट कर दिखाया गया है। इसके नीचे के हिस्से में चौकोना स्थूल छिद्र होता है जिसमें प्रमन्थ लगाया जाता है। यन्त्र के नीचे घिसा हुआ छोटा सा प्रमन्थ लगा हुआ दिखाई पड़ रहा है।

—इस आकृति की 'ओविली' होती है। इसकी भी लंबाई बारह अंगुल की होती है। चात्र के ऊपर कील में समाने के लिये छिद्र बना रहता है जिसे बीच में गोल बिन्दु देकर दिखाया गया है।

—ऐसी आकृति 'प्रमन्थ' की होती है।—पूर्व प्रमन्थ के घिस जानेपर उत्तरारणि में बने चिह्न के अनुसार एक भाग पृथक् करके 'चात्र' के नीचे छिद्र में उसे लगाया जाता है।

रस्सी —इसे नेत्र कहते हैं। इसकी लम्बाई व्याम—(दोनों ओर अंगुलि के साथ फैलाये हुये दोनों हाथों के बीच)—मात्र है। यह नेत्र यहां चात्र में लपेटकर दिखलाया गया है।

विशेष—अग्नि,प्रकटन के समय अरणि को कम्बल या मृगचर्म आदि पर रखकर मन्थन करना चाहिये।

यज्ञपार्श्वसंग्रहकारिका में अरणि आदि का विशेष विवेचन है—'अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः। तस्य या प्राङ्मुखी शाखा उदीची चोर्ध्वगापि वा॥ अरणिस्तन्मयी ज्ञेया तन्मय्येवोत्तरारणिः। सारवद्दारवं चात्रमोविलो च प्रशस्यते॥ संसक्तमूलो यः शम्याः स शमीगर्भ उच्यते। अलाभे त्वशमीगर्भादाहरेदविलम्बितः। चतुर्विंशाङ्गुला दीर्घा विस्तारेण षडङ्गुला। चतुरङ्गुलमुत्सेधा अरणिर्याज्ञिकैः स्मृता॥ मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्राच्च द्वादशाङ्गुलम्। अन्तरं देवयोनिः स्यात्तत्र मथ्यो हुताशनः॥ मूर्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी। अङ्गुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यङ्गुष्ठं वक्ष उच्यते॥ अङ्गुष्ठमात्रं हृदयमङ्गुष्ठमुदरं तथा। एकाङ्गुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौ बस्तिर्द्वौ च गुह्यके॥ ऊरू जङ्घे च पादौ च चतुस्त्र्येकैर्यथाक्रमम्। अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिता॥—

यत्तद्गुह्यमिति प्रोक्तं देवयोनिः स उच्यते। तस्या यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते॥ प्रथमे मन्थने ह्येष नियमो नेतरेषु च। अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद् द्वादशाङ्गुलम्॥ ओविली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम्। गोबालैः शणसम्मिश्रैस्त्रिवृद्वृत्तमनंशुकम्॥ व्यामप्रमाणं नेत्रं स्यात्तेन मथ्यो हुताशनः। चात्रबुध्ने प्रमन्थाग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः॥'—

बहुत बार मन्थनादि के कारण प्रमन्थ के घिस जाने या नष्ट हो जाने पर—'उत्तराया अभावाद्धि ग्राह्यो मन्थोऽधरारणेः। व्याख्यातं कैश्चिदेवं तन्निर्मूलत्वादुपेक्ष्यते॥'—

अथ पराग्निपक्वनिषेधः

अथ कात्यायनोपयोगि किंचिदुच्यते—

पराग्निपक्वं नाश्नीयाद् गुडगोरसमन्तरा ।
आहिताग्नेरयं धर्मो याज्ञिकानां तु संमतः ॥
इक्षुक्षीरविकाराश्च भ्राष्ट्रभृष्टयवा अपि ।
पराग्निपक्वं न ज्ञेयं प्रवासे चाग्निहोत्रिणः ॥
यदन्नं वारिहीनं च पक्वं केवलपावके ।
तदन्नं फलवद् ग्राह्यमन्नदोषो न विद्यते ॥

गुड़ और गोरस को छोड़कर दूसरे की अग्नि में पकाया हुआ न खाय । यह धर्म याज्ञिकों के सम्मत अग्निहोत्री के लिये है । अग्निहोत्री के प्रवास में ऊख और दूध के बने (चीनी-पेड़ा आदि)

यज्ञपार्श्व में मान प्रकार—'शिरः चक्षुः कर्णमास्यं प्रथमेंऽशे प्रकीर्तितम् । द्वितीये कन्धरा वक्षो तृतीये ह्युदरं स्मृतम् ॥ चतुर्थे चैव योनिः स्यादूरुद्वन्द्वं च पञ्चमे । षष्ठे जङ्घे तथा पादौ पूर्णा चारणिरङ्गतः ॥ यदि मन्थेच्छिरस्यग्निं शिरोरोगैः प्रमीयते ॥ यजमानस्तथा कण्ठे ह्यंसे चैव विशेषतः ॥ मन्थेद्यो यजमानस्तु पक्षहीनो भवेद् ध्रुवम् । यो मन्थत्युदरे कर्ता क्षुधया म्रियते तु सः ॥ देवयोन्यां तु यो मन्थेद् देवसिद्धिः प्रजायते ।—

मन्थेदूरुद्वये यस्तु राक्षसं कर्म तस्य तत् । जङ्घायां यातुधानेभ्यः पादयोः स्यात् पिशाचके ॥ प्रथमे मन्थने ज्ञेयं द्वितीयादौ न शोधयेत् । अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याद्दीर्घो द्व्यङ्गुलविस्तृतः ॥ उत्सेधो द्व्यङ्गुलस्तस्य त्वैशानपूर्वं ऊर्ध्वगः । एवमष्टादश प्रोक्ताः प्रमन्था ह्युत्तरारणेः ॥ पादौ तस्याः स्मृतं मूलमग्रस्तु शिर उच्यते । अध्वर्युः प्राङ्मुखो मन्थेत् प्रत्यग्दिक्चरणा हि सा ॥—

ओविली यजमानेन धृत्वा गाढं च मन्थयेत् । मथ्नीयात् प्रथमं पत्नी यद्वा कश्चिद् दृढो द्विजः ॥ मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्राच्च द्वादशाङ्गुलम् । अन्तरा देवयोनिः स्यात्तत्र मथ्यो हुताशनः ॥ मूलादङ्गुलमुत्सृज्य अग्रात् सार्धाङ्गुलं तथा । योनिमध्ये पुनर्मानं कृत्वा मथ्यो हुताशनः ॥ नान्यवृक्षेण मथ्नीयान्न कुर्याद्योनिसङ्करम् । क्लेदिता स्फाटिता चैव सुषिरा ग्रन्थिमस्तका ॥ चतुर्विधाऽरणिस्त्याज्या श्रेयस्कामैर्द्विजातिभिः । क्लेदिता हरते पुत्रान् स्फाटिता शोकमावहेत् ॥ ग्रन्थिमूर्धा हरेत् पत्नीं सुषिरा पतिमारिणी ।—

इतरेषु च संस्कारेष्वरणिर्द्वादशाङ्गुला । मूलात्त्रिभागजननिस्तदर्धेनोत्तरारणिः । वक्ष्ये जातारणेः पक्षं कुमाराग्नेः प्रसिद्धये । निर्माय यन्त्रविहितं पिता संस्थाप्य यत्नतः । जाते कुमारे मथ्नीयादग्निं यथाविधि स्वयम् ॥ आयुष्यहोमान् जुहुयात्तस्मिन्नग्नौ समाहितः । तत्रान्नप्राशनं चौलं मौञ्जीबन्धनमेव च ॥ व्रतादेशश्च कर्तव्यस्तस्मिन् गोदानिकाः क्रियाः । कुर्याद् वैवाहिको होमो वह्नौ तस्मिन् समाहितः ॥ शालाऽग्निकर्म तत्रैव कुर्यात् पक्तिं च नैत्यकीम् । नित्यहोमं पञ्चयज्ञान् कुर्यात्तस्मिन्ननाहितः ॥ स्मार्तसंस्थादिकं यच्च तत्सर्वं तत्र गद्यते ।'इति । 'अश्वत्थस्यारणी ग्राह्या नान्यस्मादेव वृक्षतः' इति स्मृत्यन्तरे ।

यज्ञपार्श्वसंग्रहकारिका में यज्ञपात्रों का विचार यों है—'खादिरः स्फ्याकृतिर्वज्रोऽरत्निमात्रः प्रशस्यते । आसनं ब्रह्मणः कार्यं वारणं वा विकङ्कतम् ॥ हस्तमात्रं चतुःस्रक्तिमूलदण्डसमन्वितम् । द्विषडङ्गुलसंख्याको मूलदण्डो विकङ्कतः ॥ प्रस्थमात्रोदकग्राही प्रणीताचमसो भवेत् । वैकङ्कतं पाणिमात्रं प्रोक्षणीपात्रमुच्यते ॥ हंसमुखप्रसेकं च त्वग्बिलं चतुरङ्गुलम् ।—

और भाड़ में भूंजे हुए जौ भी दूसरे की अग्नि में पके हुए न समझे। जो अन्न-जल के बिना केवल अग्नि में पकाया हुआ हो वह अन्न फल के समान ग्राह्य है, इसमें अन्न का दोष नहीं होता।

अथ गृह्याग्नौ पाकविचारः

प्रातर्होमं तु निर्वर्त्य समुद्धृत्य हुताशनात्।
शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं समाचरेत्॥
पूर्वेण योजयित्वा तं तस्मिन्होमो विधीयते।
अतोऽस्मिन्वैश्वदेवादिकर्म कुर्यादतन्द्रितः॥

बह्वृचकारिकायाम्—

नित्यं पाकाय शालाग्नेरेकदेशस्य कार्यतः।
पाकार्थमुल्मुकं हृत्वा तत्र पक्त्वा महानसे॥
वैश्वदेवोऽग्न्यगारे स्यात्पाकार्थोऽग्निश्च लौकिकः।

प्रातःकाल का होम समाप्त करके अग्नि में से निकाल कर बाकी रसोई घर में रख कर उससे पाक बनावे। उसे पहिली अग्नि में मिला कर उसमें होम किया जाता है। अतः उस अग्नि में वैश्वदेव आदि कर्म आलस्य छोड़कर करे। बह्वृचकारिका में लिखा है—प्रतिदिन भोजन बनाने के लिये अग्निशाला के एकदेश से भोजन पकाने के लिये बरती हुई लकड़ी लेकर उससे रसोई घर में भोजन पकाकर अग्निशाला में वैश्वदेव करे और भोजन बनाने के लिये लौकिक अग्नि ले।

भूरिपाको भवेद्यत्र श्राद्धादावुत्सवेषु च॥
कृते च वैश्वदेवेऽथ लौकिको नैव कार्यतः।
दीपको धूपकश्चैव तापार्थं यश्च नीयते॥

आज्यस्थाली तु कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा॥ माहेयी वाऽपि कर्तव्या नित्यं सर्वाग्निकर्मसु। आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तद्यथाकामं तु कारयेत्॥ मृन्मय्यौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते। तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रदृढा नातिबृहन्मुखी॥ कुलालचक्रघटितमासुरं मृन्मयं स्मृतम्। तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि खलु दैविकम्॥ यज्ञवास्तुनि मुष्टौ च स्तम्बे दर्भवटौ तथा। दर्भसंख्या न विहिता विस्तरास्तरणेषु च॥—

अङ्गुष्ठपर्ववृत्तश्चारत्निमात्रः स्रुवो भवेत्। पुष्करार्धं भवेत् खातं पिण्डकार्धं स्रुचस्तथा॥ पिण्डकार्धं=मुष्ट्यर्धम्। यावताऽन्नेन भोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णैव जायते। तं वरार्थमतः कुर्यात् पूर्णपात्रमिति स्थितिः॥ यवैर्वा व्रीहिभिः पूर्णं भवेत्तत्पूर्णपात्रकम्। वरोऽभिलषितं द्रव्यं सारभूतं तदुच्यते॥ अष्टमुष्टि भवेत् किञ्चित् किञ्चिदष्टौ च पुष्कलम्। पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं विधीयते॥' इति। शूर्पादि अन्य पात्रों के लक्षण गृह्यसूत्र भाष्य में देखें।
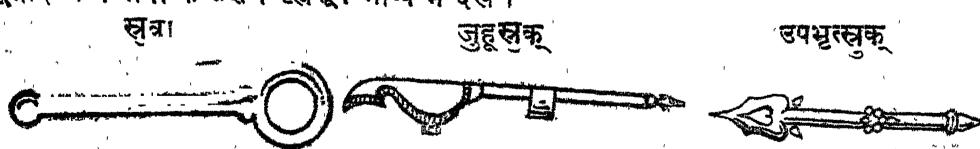
स्रुक्स्रुवादि-निर्माण के विशेष यज्ञीय-काष्ठों का निर्देश है 'रक्तचन्दनकाष्ठैश्च खदिराश्वत्थकिंशुकैः। अन्यैश्चैवापि यज्ञीयैः कर्तव्यं स्रुक्स्रुवादिकम्॥' संक्षिप्त होम में वसिष्ठ ने पलाश-पत्रादि से स्रुक्स्रुवा का विधान बतलाया है—'पलाशपत्रैर्निश्छिद्रैरुचिरौ स्रुक्स्रुवौ मतौ। विदध्याद् वाऽश्वत्थपत्रैः संक्षिप्ते होमकर्मणि॥' यहां पलाशपत्रैः में पलाश-पद यज्ञीयवृक्षों का उपलक्षण है इसलिये आम्रादि यज्ञीय-वृक्षों के पत्रों का भी बोधक होगा।

श्रीकाश्युपाध्यायवरो महात्मा बभूव विद्वद्द्विजराजराजः।
तस्मादुपाध्यायकुलावतंसौ यज्ञेश्वरोऽनन्त इमावभूताम्॥ १२॥
यज्ञेश्वरो यज्ञविधानदक्षो दैवज्ञवेदाङ्गसुशास्त्रशिक्षः।
भक्तोत्तमोऽनन्तगुणैकधामानन्ताह्वयोऽनन्तकलावतारः॥ १३॥
एषोऽत्यजज्जन्मभुवं स्वकीयां तां कौङ्कणाख्यां सुविरक्तिशाली।
श्रीपाण्डुरङ्गे वसतिं विधाय भीमातटे मुक्तिमगात्सुभक्त्या॥ १४॥
तस्यानन्ताभिधानस्योपाध्यायस्य सुतः कृती।
काशीनाथाभिधो धर्मसिन्धुसारं समातनोत्॥ १५॥

इति श्रीमत्काश्युपाध्यायसूरिसूनुयज्ञेश्वरोपाध्यायानुजानन्तोपाध्याय-
सूरिसुत-काशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिन्धुसारे
तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्धं समाप्तम्।
समाप्तोऽयं धर्मसिन्धुः।

शब्द और अर्थ से दोषयुक्त भी यह ग्रन्थ सज्जनों द्वारा प्रेम से संशोधन कर सेवनीय है जैसे भगवान् श्रीकृष्ण जी ने सुदामा मुनि के तुषयुक्त एक मुट्ठी चिउड़ा को सेवन किया था। विद्वान् द्विजराज के राजा श्री काशी उपाध्याय श्रेष्ठ महात्मा हुए थे उनसे उपाध्याय कुलभूषण यज्ञेश्वर एवं अनन्त नामक दो पुत्र हुए। यज्ञेश्वर जी यज्ञ विधान में निपुण और वेदाङ्ग ज्यौतिष शास्त्र में सुशिक्षित अनन्त गुणवान् उत्तम भक्त हुए। दूसरे अनन्त नामक पुत्र अनन्त गुणों के एक स्थान एवं अनन्त कला के अवतार यह वैराग्यशाली अपनी उस कौङ्कण नामक जन्मभूमि को त्याग कर भीमा नदी के तट पर श्रीपाण्डुरङ्ग में निवास कर अतिशय भक्ति से मुक्ति प्राप्त किये। उस श्री अनन्त उपाध्याय के कुशल पुत्र श्री काशीनाथ उपाध्याय ने धर्मसिन्धुसार नामक इस ग्रन्थ को बनाया है।

इति देवरियामण्डलान्तर्गत-मध्यपल्लीनरेशगुरुणा बलियामण्डलान्तर्गतमुनिछपरा-
ग्रामनिवासिना काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य भूतपूर्वधर्मशास्त्र-
प्राध्यापकेन श्रीवशिष्ठदत्तमिश्रधर्मशास्त्राचार्येण
विरचिता 'धर्मदीपिका' व्याख्या समाप्ता

---

१. स्वार्थ में अण् प्रत्यय करने पर कोङ्कण से कौङ्कण बना है। सह्याद्रि और समुद्र के मध्यवर्ती भूखण्ड का नाम 'कोङ्कण' है।

इति मुजफ्फरपुरमण्डलान्तर्गत-लालगंज-नगरस्थित-श्रीविहारिशुक्लसंस्कृतविद्यालयस्य
प्रधानाध्यापकेन रायबरेलीमण्डलान्तर्गतटेकारीराज्यस्य श्रीचन्द्रभानुपाठशालाया
भूतपूर्वप्रधानाध्यापकेन उक्तराजभवने अनुष्ठेय-देवपितृकार्येषु
प्राप्ताचार्यकेण टेकारीराज्यचन्द्रभानुट्रस्टमन्त्रिणा
श्रीसुदामामिश्रशास्त्रिणा विरचिता
सुधाविवृतिः समाप्ता